ॐ

श्री महर्षि व्यास प्रणीत

महाभारत।

भीष्म पर्व।

(भाषाभाष्य समेत)

भाषान्तरकर्ता और प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि सातारा)

संवत् १९८३
शक १८४८
सन १९२७

ॐ

श्री महर्षि व्यास प्रणीत

महाभारत ।

भीष्म पर्व ।

(भाषाभाष्य समेत)

भाषान्तरकर्ता और प्रकाशक

श्रीपाद दामोदर सातवळेकर

स्वाध्याय मंडल, औंध (जि सातारा)

संवत् १९८३

शक १८४८

सन १९२७

विजय !!!

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

महाभारत. भीष्म. अ. ४२ श्लो. ॥ ७८ ॥

मेरा मत है कि जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धर अर्जुन हैं वहीं श्री, विजय, शाश्वत ऐश्वर्य और नीति है ।

ॐ

श्री महर्षिव्यासप्रणीतम् ।

महाभारतम् ।

भीष्म पर्व ।

जम्बूखण्डनिर्माणपर्व ।

श्रीगणेशाय नमः । श्रीवेदव्यासाय नमः ।
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥
जनमेजय उवाच--कथं युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः ।
पार्थिवाः सुमहात्मानो नानादेशसमागताः ॥ १ ॥
वैशम्पायन उवाच-यथा युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः ।
कुरुक्षेत्रे तपःक्षेत्रे शृणु त्वं पृथिवीपते ॥ २ ॥
तेऽवतीर्य कुरुक्षेत्रं पाण्डवाः सहसोमकाः ।
कौरवाः समवर्त्तन्त जिगीषन्तो महाबलाः ॥ ३ ॥
वेदाध्ययनसम्पन्नाः सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।

भीष्म पर्वमें प्रथम अध्याय और

जम्बूखण्डनिर्माणपर्व ।

नारायण नरोत्तम नर और सरस्वती देवीको नमस्कार करके पुराणादि कीर्त्तन करते हैं । (१)

श्रीवैशम्पायनजीसे राजा जनमेजयने पूछा, हे ब्रह्मन् ! सुमहात्मा कुरु, पांडव और सोमक वीरगण तथा अनेक देशों मे आये हुए पार्थिवगणने किस तरह युद्ध किया ? (१)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे महीपते! कुरु, पाण्डव और सोमक वीरोंने तपः-क्षेत्र कुरुक्षेत्रमें जिस प्रकार युद्ध किया था सो सुनिये ॥ वेदाध्ययनमें निपुण, लडाके, जय चाहनेवाले और महाबली पाण्डवोंकी मत्र सेना सोमकोंके साथ

विजय !!!

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

महाभारत. भीष्म. अ. ४२ श्लो. ॥ ७८ ॥

मेरा मत है कि जहाँ योगेश्वर श्रीकृष्ण हैं और जहाँ धनुर्धर अर्जुन हैं वहीं श्री, विजय, शाश्वत ऐश्वर्य और नीति है ।

श्री महर्षिव्यासप्रणीतम् ।

म हा भा र त म् ।

भीष्म पर्व ।

जम्बूखण्डनिर्माणपर्व ।

श्रीगणेशाय नमः । श्रीवेदव्यासाय नमः ।
नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥ १ ॥
जनमेजय उवाच--कथं युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः ।
पार्थिवाः सुमहात्मानो नानादेशसमागताः ॥ १ ॥
वैशम्पायन उवाच-यथा युयुधिरे वीराः कुरुपाण्डवसोमकाः ।
कुरुक्षेत्रे तपःक्षेत्रे शृणु त्वं पृथिवीपते ॥ २ ॥
तेऽवतीर्य कुरुक्षेत्रं पाण्डवाः सहसोमकाः ।
कौरवाः समवर्त्तन्त जिगीषन्तो महाबलाः ॥ ३ ॥
वेदाध्ययनसम्पन्नाः सर्वे युद्धाभिनन्दिनः ।

भीष्म पर्वमें प्रथम अध्याय और

जम्बूखण्डनिर्माणपर्व ।

नारायण नरोत्तम नर और सरस्वती देवीको नमस्कार करके पुराणादि कीर्त्तन करते हैं। (१)

श्रीवैशम्पायनजीसे राजा जनमेजयने पूछा, हे ब्रह्मन् ! सुमहात्मा कुरु, पांडव और सोमक वीरगण तथा अनेक देशों मे आये हुए पार्थिवगणने किस तरह युद्ध किया ? (१)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे महीपते! कुरु, पाण्डव और सोमक वीरोंने तपः-क्षेत्र कुरुक्षेत्रमें जिस प्रकार युद्ध किया था सो सुनिये ॥ वेदाध्ययनमें निपुण, लडाके, जय चाहनेवाले और महाबली पाण्डवोंकी सब सेना सोमकोंके साथ

आशंसन्तो जयं युद्धे बलेनाऽभिमुखा रणे ॥ ४ ॥
अभियाय च दुर्धर्षा धार्त्तराष्ट्रस्य वाहिनीम् ।
प्राङ्मुखाः पश्चिमे भागे न्यविशन्त ससैनिकाः ॥ ५ ॥
समन्तपञ्चकाद्बाह्यं शिबिराणि सहस्रशः ।
कारयामास विधिवत्कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ ६ ॥
शून्या च पृथिवी सर्वा बालवृद्धावशेषिता ।
निरश्वपुरुषेवाऽऽसीद्रथकुञ्जरवर्जिता ॥ ७ ॥
यावत्तपति सूर्यो हि जम्बूद्वीपस्य मण्डलम् ।
तावदेव समायातं बलं पार्थिवसत्तम ॥ ८ ॥
एकस्थाः सर्ववर्णास्ते मण्डलं बहुयोजनम् ।
पर्याक्रामन्त देशांश्च नदीः शैलान्वनानि च ॥ ९ ॥
तेषां युधिष्ठिरो राजा सर्वेषां पुरुषर्षभ ।
व्यादिदेश सवाह्यानां भक्ष्यभोज्यमनुत्तमम् ॥ १० ॥
शय्याश्च विविधास्तात तेषां रात्रौ युधिष्ठिरः ।
एवंवेदी वेदितव्यः पाण्डवेयोऽयमित्युत ॥ ११ ॥

कुरुक्षेत्रमें आकर कौरवोंकी ओर चलीं ॥ वे दुराधर्ष पाण्डवपक्षीय वीर सैनिकोंके साथ युद्धमें विजय पानेकी इच्छा करते हुए दुर्योधनकी सेनाके सम्मुख होकर गये और पश्चिम ओर जाकर पूरब मुंह खडे हुए। (२—५)

कुन्तीनन्दन युधिष्ठिरने समन्तपञ्चक के बाहर यथोपयुक्त हजारों डेरेखडे कराये। हे पार्थिवसत्तम! उस समय समस्त भूमण्डल पुरुषशून्य, अश्वशून्य, रथशून्य और गजशून्य सा मालूम होता था। सब स्थानमें केवल लडके, बूढे और स्त्रियां ही बच गई थीं॥ जम्बूद्वीप मण्डलमें जिन जिन स्थानों तक सूर्यकी ज्योति पहुंचती है, उन सब स्थानोसे सब लोग कुरुक्षेत्रमें आकर सैन्यरूपसे उपस्थित हुए ॥ (६–८)

सब जातिके मनुष्योंने एकत्रित होकर कई योजनभूमिमें अनेक देश, नदी, पर्वत और वनोंको छा लिया ॥ कैवर्त म्लेच्छ आदिकोंसे समन्वित उन असंख्य योद्धाओंके खाने पीनेका बहुत उत्तम प्रबन्ध राजा युधिष्ठिरने कर दिया ॥ उस रात्रिमें राजा युधिष्ठिरने अनेक प्रकारकी शय्यायें भी उनको प्रदान की और लडाई के समय धोखा न हो इस लिये उन्होंने अपने पक्षके सैन्योंका एक नाम निर्दिष्ट कर

अभिज्ञानानि सर्वेषां संज्ञाश्चाऽऽभरणानि च ।
योजयामास कौरव्यो युद्धकाल उपस्थिते ॥ १२ ॥
दृष्ट्वा ध्वजाग्रं पार्थस्य धार्तराष्ट्रो महामनाः ।
सह सर्वैर्महीपालैः प्रत्यव्यूहत पाण्डवम् ॥ १३ ॥
पाण्डुरेणाऽऽतपत्रेण ध्रियमाणेन मूर्द्धनि
मध्ये नागसहस्रस्य भ्रातृभिः परिवारितः ॥ १४ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनं हृष्टाः पञ्चाला युद्धनान्दिनः ।
दध्मुः प्रीता महाशङ्खान्भेर्यश्च मधुरस्वनाः ॥ १५ ॥
ततः प्रहृष्टां तां सेनामभिवीक्ष्याऽथ पाण्डवाः ।
बभूवुर्हृष्टमनसो वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥
ततो हर्षं समागम्य वासुदेवधनञ्जयौ ।
दध्मतुः पुरुषव्याघ्रौ दिव्यौ शङ्खौ रथे स्थितौ ॥ १७ ॥
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषं देवदत्तस्य चोभयोः ।
श्रुत्वा तु निनदं योधाः शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ॥ १८ ॥
यथा सिंहस्य नदतः स्वनं श्रुत्वेतरे मृगाः ।
त्रसेयुर्निनदं श्रुत्वा तथाऽसीदत तद्बलम् ॥ १९ ॥

दिया, कि जो इस प्रकारका नाम कहेगा वह पाण्डवोंके पक्षका समझा जायगा ॥ अपने प्रत्येक दलका भी उन्होंने एक एक विशेष चिन्ह, विशेष नाम, अलंकार आदि निर्देश कर दी (९-१२)

उस तरफ श्वेत आतपत्रको शिर पर रखे, हजारों हाथियोंके बीचमें, अपने भाई लोगोंसे घिरे हुए, महामानी राजा दुर्योधन पाण्डवोंकी ध्वजाका अग्रभाग देखते हुए अपने पक्षके राजाओंके साथ होकर पाण्डवोंके विरुद्ध अपनी सेनाकी व्यूहरचना करने लगे ॥ (१३-१४)

युद्ध चाहनेवाले पाञ्चाल योद्धाओंने दुर्योधनको देखके अत्यन्त प्रसन्न होके बडे जोरसे शङ्ख, मीठी बोलीवाली भेरी आदि बजाने लगे ॥ पाण्डवों और वीर्यवान् वासुदेव उन सैन्य दलोंको उस प्रकार प्रसन्न देखकर बहुत खुश हुए ॥ रथमें बैठे हुए पुरुषव्याघ्र कृष्ण और अर्जुन प्रसन्न होकर अपना अपना दिव्य शङ्ख बजाने लगे ॥ उनके पाञ्चजन्य और देवदत्त शङ्खोंके भयङ्कर शब्दोंको सुनकर कायर योधोंको पखाना पिशाब होगई ॥ (१५-१८)

जैसे जोरसे बोलने वाले महासिंहकी गर्जना सुनके अन्य पशुवर्ग भयसे व्या-

उदतिष्ठद्रजो भौमं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
अस्तङ्गत इवाऽऽदित्ये सैन्येन सहसाऽऽवृते ॥ २० ॥
ववर्ष तत्र पर्जन्यो मांसशोणितवृष्टिमान् ।
दिक्षु सर्वाणि सैन्यानि तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २१ ॥
वायुस्ततः प्रादुरभून्नीचैः शर्करकर्षणः ।
विनिघ्नंस्तान्यनीकानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २२ ॥
उभे सैन्ये च राजेन्द्र युद्धाय मुदिते भृशम् ।
कुरुक्षेत्रे स्थिते यत्ते सागरक्षुभितोपमे ॥ २३ ॥
तयोस्तु सेनयोरासीदद्भुतः स तु सङ्गमः ।
युगान्ते समनुप्राप्ते द्वयोः सागरयोरिव ॥ २४ ॥
शून्याऽऽसीत्पृथिवी सर्वा वृद्धबालावशेषिता ।
निरश्वपुरुषेवाऽऽसीद्रथकुञ्जरवर्जिता ॥ २५ ॥
तेन सेनासमूहेन समानीतेन कौरवैः ।
ततस्ते समयं चक्रुः कुरुपाण्डवसोमकाः ॥ २६ ॥
धर्मान्संस्थापयामासुर्युद्धानां भरतर्षभ ।

कुल होजाते हैं, वैसेही उस दिव्य वारिज-स्वरको सुनके वह समूचा सैन्यदल धरा गया ॥ उस समय सेनाके कारण पृथ्वीसे इतनी धूल उडने लगी कि, उससे छिप जानेपर सूर्य डूब गये हुएसे मालूम होने लगे; कोई चीज नहीं दीख पडती थी ॥ तब सब दिशाओंमें समस्त सेनाओं के ऊपर वहां मेघसे मांस और लोहू बरसने लगा । ये सब बडे आश्चर्यके समान मालूम होने लगे ॥ उस समय ऐसी वायु बहने लगी, कि जिससे भूमिसे बालू उडने लगी, और उससे सैकडों सहस्रों योद्धागण आहत होने लगे । (१९–२२)

हे राजेन्द्र ! तौभी क्षुभित सागरके समान वे दोनों सैन्यदल युद्ध करनेके लिये बहुत इच्छुक और दृढचित्त होकर कुरुक्षेत्रमें खडे रहे ॥ लडनेवाली दोनों सेनाओंका ऐसा आश्चर्य समारोह हुआ जैसे युगके अन्तमें दो बडे समुद्रोंका होता है ॥ कौरव और पाण्डवोंसे सैन्य समूह एकत्र करनेसे पृथ्वी खाली सी होगई। सब पृथ्वीमें कहीं भी पुरुष, रथ, हाथी और घोडे नहीं दीख पडे केवल लडके, बूढे और स्त्रियां ही अपने अपने देशमें बच गयीं । (२३–२५)

हे भारतप्रवर ! कौरव, पाण्डव और सोमकोंने ऐसी प्रतिज्ञा और धर्म स्थापन

निवृत्ते विहिते युद्धे स्यात्प्रीतिर्नः परस्परम् ॥ २७ ॥
यथापरं यथायोगं न च स्यात्कस्यचित्पुनः ।
वाचा युद्धप्रवृत्तानां वाचैव प्रतियोधनम् ।
निष्क्रान्ताः पृतनामध्यान्न हन्तव्याः कदाचन ॥२८ ॥
रथी च रथिना योध्यो गजेन गजधूर्गतः ।
अश्वेनाऽश्वी पदातिश्च पादातेनैव भारत ॥ २९ ॥
यथायोगं यथाकामं यथोत्साहं यथाबलम् ।
समाभाष्य प्रहर्त्तव्यं न विश्वस्ते न विह्वले ॥ ३० ॥
एकेन सह संयुक्तः प्रपन्नो विमुखस्तथा ।
क्षीणशस्त्रो विवर्मा च न हन्तव्यः कदाचन ॥ ३१ ॥
न सूतेषु न धुर्येषु न च शस्त्रोपनायिषु ।
न भेरीशङ्खवादेषु प्रहर्त्तव्यं कथञ्चन ॥ ३२ ॥
एवं ते समयं कृत्वा कुरुपाण्डवसोमकाः ।
विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षमाणाः परस्परम् ॥ ३३ ॥
निर्विश्य च महात्मानस्ततस्ते पुरुषर्षभाः ।

किया ॥ न्यायानुसार युद्ध करनेके बाद निवृत्त होनेपर हम लोगोंके दलोंमें परस्पर प्रीति होगी ॥ केवल बराबरहीके लोग न्याय पूर्वक परस्पर युद्ध करेंगे; कोई आदमी किसी प्रकार छल नहीं करने पावेगा; जो वाग्युद्धमें प्रवृत्त होंगे, उनके साथ केवल वाक्यहीसे युद्ध किया जायगा; जो सेनाके बीचमें निष्क्रान्त हों उनपर आघात नहीं कर सकेगा॥ रथी रथीके साथ, गजारोही गजारोहीके साथ, घुडसवार घुडसवारके साथ, और पैदल पैदलके साथ युद्ध करेंगे ॥ (२६-२९)

योग्यता, अभिलाषा, उत्साह और पराक्रमके अनुसार बातचीत करके प्रहार किया जायगा, विश्वासयुक्त वा विह्वल होगये हुए ॥ शरण आये हुए युद्धसे पराङ्मुख हुए, शस्त्र रहित अथवा वर्महीन (बेबखतरके) लोगोंपर किसी प्रकार प्रहार नहीं किया जायगा ॥ और सारथी, वाहन, शस्त्रवाहक, भेरी शङ्खादि बजानेवाले, लोगोंपर आघात नहीं किया जायगा ॥ (३०-३२)

कौरव, पाण्डव और सोमक इस प्रकार प्रतिज्ञा करके अपनी अपनी सेना निरीक्षण करके बहुत विस्मयान्वित हुए ॥ इस तरहसे मनुष्योंमें प्रधान वे महात्मा लोग योद्धाओंके साथ सेनामें

उदतिष्ठद्रजो भौमं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
अस्तङ्गत इवाऽऽदित्ये सैन्येन सहसाऽऽवृते ॥ २० ॥
ववर्ष तत्र पर्जन्यो मांसशोणितवृष्टिमान् ।
दिक्षु सर्वाणि सैन्यानि तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २१ ॥
वायुस्ततः प्रादुरभून्नीचैः शर्करकर्षणः ।
विनिघ्नंस्तान्यनीकानि शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २२ ॥
उभे सैन्ये न राजेन्द्र युद्धाय मुदिते भृशम् ।
कुरुक्षेत्रे स्थिते यत्ते सागरक्षुभितोपमे ॥ २३ ॥
तयोस्तु सेनयोरासीदद्भुतः स तु सङ्गमः ।
युगान्ते समनुप्राप्ते द्वयोः सागरयोरिव ॥ २४ ॥
शून्याऽऽसीत्पृथिवी सर्वा वृद्धबालावशेषिता ।
निरश्वपुरुषेवाऽऽसीद्रथकुञ्जरवर्जिता ॥ २५ ॥
तेन सेनासमूहेन समानीतेन कौरवैः ।
ततस्ते समयं चक्रुः कुरुपाण्डवसोमकाः ॥ २६ ॥
धर्मान्संस्थापयामासुर्युद्धानां भरतर्षभ ।

इल होजाते हैं, वैसेही उस दिव्य वारिजस्वरको सुनके वह समूचा सैन्यदल भरा गया ॥ उस समय सेनाके कारण पृथ्वीमे इतनी धूल उडने लगी कि, उससे छिप जानेपर सूर्य डूब गये हुएसे मालूम होने लगे; कोई चीज नहीं दीख पडती थी ॥ तब सब दिशाओंमें समस्त सेनाओं के ऊपर वहां मेघसे मास और लोहू बरसने लगा । ये सब बडे आश्चर्यके समान मालूम होने लगे ॥ उस समय ऐसी वायु बहने लगी, कि जिससे भूमिसे बालु उडने लगी, और उससे सैकडो सहस्रो योद्धागण आहत होने लगे । (२०–२२)

हे राजेन्द्र ! तौभी क्षुभित सागरके समान वे दोनों सैन्यदल युद्ध करनेके लिये बहुत इच्छुक और दृढचित्त होकर कुरुक्षेत्रमें खडे रहे ॥ लडनेवाली दोनों सेनाओंका ऐसा आश्चर्य समारोह हुआ जैसे युगके अन्तमें दो बडे समुद्रोंका होता है ॥ कौरव और पाण्डवोसे सैन्य समूह एकत्र करनेसे पृथ्वी खाली सी होगई। सब पृथ्वीमें कहीं भी पुरुष, रथ, हाथी और घोडे नहीं दीख पडे केवल लडके, बूढे और स्त्रियां ही अपने अपने देशमें बच गयीं । (२३–२६)

हे भारतप्रवर ! कौरव, पाण्डव और सोमकोंने ऐसी प्रतिज्ञा और धर्म स्थापन

निवृत्ते विहिते युद्धे स्यात्प्रीतिर्नः परस्परम् ॥ २७ ॥
यथापरं यथायोगं न च स्यात्कस्यचित्पुनः ।
वाचा युद्धप्रवृत्तानां वाचैव प्रतियोधनम् ।
निष्क्रान्ताः पृतनामध्यान्न हन्तव्याः कदाचन ॥२८ ॥
रथी च रथिना योध्यो गजेन गजधूर्गतः ।
अश्वेनाऽश्वी पदातिश्च पादातेनैव भारत ॥ २९ ॥
यथायोगं यथाकामं यथोत्साहं यथाबलम् ।
समाभाष्य प्रहर्त्तव्यं न विश्वस्ते न विह्वले ॥ ३० ॥
एकेन सह संयुक्तः प्रपन्नो विमुखस्तथा ।
क्षीणशस्त्रो विवर्मा च न हन्तव्यः कदाचन ॥ ३१ ॥
न सूतेषु न धुर्येषु न च शस्त्रोपनायिषु ।
न भेरीशङ्खवादेषु प्रहर्त्तव्यं कथञ्चन ॥ ३२ ॥
एवं ते समयं कृत्वा कुरुपाण्डवसोमकाः ।
विस्मयं परमं जग्मुः प्रेक्षमाणाः परस्परम ॥ ३३ ॥
निर्विश्य च महात्मानस्ततस्ते पुरुषर्षभाः ।

किया ॥ न्यायानुसार युद्ध करनेके बाद निवृत्त होनेपर हम लोगोंके दलोंमें परस्पर प्रीति होगी ॥ केवल बराबरहीके लोग न्याय पूर्वक परस्पर युद्ध करेंगे; कोई आदमी किसी प्रकार छल नहीं करने पावेगा; जो वागयुद्धमें प्रवृत्त होंगे, उनके साथ केवल वाक्यहीसे युद्ध किया जायगा; जो सेनाके बीचसे निष्क्रान्त हों उनपर आघात नहीं कर सकेगा॥ रथी रथीके साथ, गजारोही गजारोहीके साथ, घुडसवार घुडसवारके साथः और पैदल पैदलके साथ युद्ध करेंगे ॥ (२६-२९)

योग्यता, अभिलाषा, उत्साह और पराक्रमके अनुसार बातचीत करके प्रहार किया जायगा, विश्वासयुक्त वा विह्वल होगये हुए ॥ शरण आये हुए युद्धसे पराङ्मुख हुए, शस्त्र रहित अथवा वर्महीन (बेबखतरके) लोगोंपर किसी प्रकार प्रहार नहीं किया जायगा ॥ और सारथी, वाहन, शस्त्रवाहक, भेरी शङ्खादि बजानेवाले, लोगोंपर आघात नहीं किया जायगा ॥ (३०-३२)

कौरव, पाण्डव और सोमक इस प्रकार प्रतिज्ञा करके अपनी अपनी सेना निरीक्षण करके बहुत विस्मयान्वित हुए ॥ इस तरहसे मनुष्योंमें प्रधान वे महात्मा लोग योद्धाओंके साथ सेनामें

हृष्टरूपाः सुमनसो बभूवुः सहसैनिकाः ॥ ३४ ॥ [३४]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि सैन्यशिक्षणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वैशम्पायन उवाच—ततः पूर्वापरे सैन्ये समीक्ष्य भगवानृषिः ।
सर्ववेदविदां श्रेष्ठो व्यासः सत्यवतीसुतः ॥ १ ॥
भविष्यति रणे घोरे भरतानां पितामहः ।
प्रत्यक्षदर्शी भगवान्भूतभव्यभविष्यवित् ॥ २ ॥
वैचित्रवीर्यं राजानं सरहस्यं ब्रवीदिदम् ।
शोचन्तमार्त्तं ध्यायन्तं पुत्राणामनयं तदा ॥ ३ ॥
व्यास उवाच— राजन्परीतकालास्ते पुत्राश्चाऽन्ये च पार्थिवाः ।
ते हिंसन्तीव संग्रामे समासाद्येतरेतरम् ॥ ४ ॥
तेषु कालपरीतेषु विनश्यत्स्वेव भारत ।
कालपर्यायमाज्ञाय मा स्म शोके मनः कृथाः ॥ ५ ॥
यदि चेच्छसि संग्रामे द्रष्टुमेतान्विशाम्पते ।
चक्षुर्ददामि ते पुत्र युद्धं तत्र निशामय ॥ ६ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—न रोचये ज्ञातिवधं द्रष्टुं ब्रह्मर्षिसत्तम ।

सन्निवेश करके बहुत प्रसन्न होकर युद्ध के लिये उत्सुक हुए ॥ (३२–३४) [३४]

भीष्मपर्वमें पहला अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें दूसरा अध्याय

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि इसके बाद, भूत भविष्यत् वर्त्तमानके जानने वाले प्रत्यक्ष देखने वाले, वेदके जानने वालोंमें सबसे श्रेष्ठ, भरतवंशीय लोगों के पितामह और सत्यवतीके पुत्र, भगवान् व्यास ऋषि होनेवाली दारुण लडाईके पूर्व पश्चिम भागमें खडे होकर इन सम्पूर्ण सेनाओंको देखके, अपने लडकों की दुर्नीतिके विचारसे व्याकुल होकर चिन्ताविचलित धृतराष्ट्रको एकान्तमें मिलकर कहने लगे ॥ (१–३)

व्यास बोले, हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रोंका और अन्यराजाओंका काल समीप आगया है। वे लोग लडाईमें परस्पर एकत्रित होकर एक दूसरेको मारेंगे ॥ काल आजानेसे वे लोग संहार दशाको प्राप्त होजायेंगे; कालकी चाल देख कर तुम, लोगोंके लिये शोक मत करो ॥ हे पुत्र ! अगर लडाईमें इन लोगोंको देखनेकी तुम्हारी इच्छा हो तो मै तुम्हें नयन प्रदान करूं; उससे तुम लडाई देख सकोगे ॥ (४–६)

धृतराष्ट्र बोले, हे ब्रह्मर्षिसत्तम ! ज्ञातिवध देखनेकी मेरी अभिलाषा नहीं

युद्धमेतत्त्वशेषेण श्रृणुयां तव तेजसा ॥ ७ ॥
वैशम्पायन उवाच–एतस्मिन्नेच्छति द्रष्टुं संग्रामं श्रोतुमिच्छति ।
वराणामीश्वरो व्यासः सञ्जयाय वरं ददौ ॥ ८ ॥
व्यास उवाच— एष ते सञ्जयो राजन्युद्धमेतद्वदिष्यति ।
एतस्य सर्वसंग्रामे न परोक्षं भविष्यति ॥ ९ ॥
चक्षुषा सञ्जयो राजन्दिव्येनैव समन्वितः ।
कथयिष्यति ते युद्धं सर्वज्ञश्च भविष्यति ॥ १० ॥
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा दिवा वा यदि वा निशि ।
मनसा चिन्तितमपि सर्वं वेत्स्यति सञ्जयः ॥ ११ ॥
नैनं शस्त्राणि छेत्स्यन्ति नैनं बाधिष्यते श्रमः ।
गावल्गणिरयं जीवन्युद्धादस्माद्विमोक्ष्यति ॥ १२ ॥
अहं तु कीर्तिमेतेषां कुरूणां भरतर्षभ ।
पाण्डवानां च सर्वेषां प्रथयिष्यामि मा शुचः॥ १३ ॥
दिष्टमेतन्नरव्याघ्र नाऽभिशोचितुमर्हसि ।
न चैव शक्यं संयन्तुं यतो धर्मस्ततो जयः ॥ १४ ॥

होती है पर आपके तेजःप्रभावसे इस लडाईका सब हाल सुननेकी इच्छा रखता हूं ॥ (७)

श्रीवैशम्पायनजी बोले, कि धृतराष्ट्रके लडाई देखनेकी अनिच्छा और उसका हाल सुननेकी इच्छा प्रगट करने पर, वर प्रदान करनेमें समर्थ व्यासजीने सञ्जय को वर दिया ॥ और धृतराष्ट्रसे कहा, कि इस लडाईका सब वृत्तान्त यह सञ्जय तुमसे कहेंगे, लडाईकी कोई बात इनसे छिपी नहीं रहेगी ॥ इनके दिव्य नेत्र हो जायेंगे उसीसे सब बातें जान सकेंगे; और युद्धके सब वृत्तान्त तुमसे कहेंगे ॥ प्रकाश हो वा गुप्त हो, दिनकी हो वा रातकी हो, और जो कोई मनमें भी विचार की हुई हो यह संजय सब बात जानेंगे ॥ (८–११)

शस्त्रोंके आघातसे यह नहीं मर सकेंगे । और परिश्रम करनेसे यह नहीं थक सकेंगे। हे सौम्य! यही गवल्गणके पुत्र सञ्जय इस लडाईसे सजीव अलग रह सकेंगे । हे भरतश्रेष्ठ ! शोकसे व्याकुल मत होना; कुरुपाण्डवोंकी यह कीर्त्ति मैं विख्यात करदूंगा ॥ हे नरेन्द्र ! इस उपस्थित व्यापारको देवताओंका किया हुआ जानना. देवताओंके किये हुए कामोंके लिये कभी शोक नहीं करना चाहिये । विशेष बात यह है, कि इसको

वैशम्पायन उवाच-एवमुक्त्वा स भगवान्कुरूणां प्रपितामहः।
पुनरेव महाभागो धृतराष्ट्रमुवाच ह ॥ १५ ॥
इह युद्धे महाराज भविष्यति महान्क्षयः।
तथेह च निमित्तानि भयदान्युपलक्षये ॥ १६ ॥
श्येना गृध्राश्च काकाश्च कङ्काश्च सहिता बकैः।
सम्पतन्ति नगाग्रेषु समवायांश्च कुर्वते ॥ १७ ॥
अभ्यग्रं च प्रपश्यन्ति युद्धमानन्दिनो द्विजाः।
क्रव्यादा भक्षयिष्यन्ति मांसानि गजवाजिनाम्॥१८॥
निर्दयं चाऽभिवाशन्तो भैरवा भयवेदिनः।
कङ्काः प्रयान्ति मध्येन दक्षिणामभितो दिशम् ॥१९॥
उभे पूर्वापरे सन्ध्ये नित्यं पश्यामि भारत।
उदयास्तमने सूर्यं कबन्धैः परिवारितम् ॥ २० ॥
श्वेतलोहितपर्यन्ताः कृष्णग्रीवाः सविद्युतः।
त्रिवर्णाः परिघाः सन्धौ भानुमन्तमवारयन् ॥ २१ ॥
ज्वलितार्केन्दु नक्षत्रं निर्विशेषदिनक्षयम्।

रोकनेका सामर्थ्य भी नहीं है, क्योंकि जिस पक्षमें धर्म रहेगा उसी पक्षकी जय होगी। (१३-१४)

श्रीवैशम्पायनजी बोले कि कौरवों और पाण्डवोंके पितामह महाभाग भगवान् व्यासजी धृतराष्ट्रको इतनी बात कहके फिर कहने लगे, कि हे महाराज! इस लडाईसे बहुत हानि होगी, इन निमित्तोंको बतानेवाली बहुतसी [illegible] मैं देख रहा हूं। श्येन, गिद्ध, कौए, कङ्क और बगुले आदि सब [illegible] वृक्षोंपर मिलकर आ आके बैठते हैं और एकत्रित होकर प्रसन्न मन [illegible] इस युद्धको देखते हैं। हाथी घोडे आदिका मांस गीदड कुत्ते आदि जानवर भक्षण करेंगे। (१५-१८)

विकटरूप वाले कंक पक्षी दया रहित होकर शब्द करके भय उत्पन्न करते हैं और दक्षिणदिशामें जाके मध्यस्थलमें एकत्र होते हैं॥ हे भारत! सुबह और शाम होनेके पहिले और पीछे नित्य मालूम होता है कि मानो सूर्यदेव कबन्धोंसे घिरे हैं॥ एक ओर सफेद, दूसरी ओर लाल और बीचमें काले वर्णके परिघ सन्ध्या समय सूर्यको चारों ओरसे घेरसे लेते हैं॥ (१९-२१)

मैंने देखा है कि अमावसके दिनमें चन्द्रमा और सूर्यके साथके नक्षत्र पाप-

अहोरात्रं मया दृष्टं तद्भयाय भविष्यति ॥ २२ ॥
अलक्ष्यः प्रभया हीनः पौर्णमासी च कार्त्तिकीम् ।
चन्द्रोऽभूदग्निवर्णश्च पद्मवर्णनभस्थले ॥ २३ ॥
स्वप्स्यन्ति निहता वीरा भूमिमावृत्य पार्थिवाः ।
राजानो राजपुत्राश्च शूराः परिघवाहवः ॥ २४ ॥
अन्तरिक्षे वराहस्य वृषदंशस्य चोभयोः ।
प्रणादं युद्ध्यतो रात्रौ रौद्रं नित्यं प्रलक्षये ॥ २५ ॥
देवताप्रतिमाश्चैव कम्पन्ति च हसन्ति च ।
वमन्ति रुधिरं चाऽऽस्यैः खिद्यन्ति प्रपतन्ति च ॥२६॥
अनाहता दुन्दुभयः प्रणदन्ति विशाम्पते ।
अयुक्ताश्च प्रवर्त्तन्ते क्षत्रियाणां महारथाः ॥ २७ ॥
कोकिलाः शतपत्राश्च चाषा भासाः शुकास्तथा ।
सारसाश्च मयूराश्च वाचो मुञ्चन्ति दारुणाः ॥ २८ ॥
गृहीतशस्त्राः क्रोशन्ति चर्म्मिणो वाजिपृष्ठगाः ।
अरुणोदये प्रदृश्यन्ते शतशः शलभव्रजाः ॥ २९ ॥
उभे सन्ध्ये प्रकाशन्ते दिशो दाहसमन्विते ।

ग्रहोंके साथ जो मिले है और उसी अहोरात्रमें व्यहस्पर्श हुआ है; केवल भय दिखलानेके लिये हुए है ॥ कार्त्तिक पूर्णिमाके पद्मवर्णके आकाशमें चन्द्रमा ज्योति रहित और लाल रङ्गके हो कर अलक्ष्य हो गये है ॥ इस लिये बहुतसे वीर्यशाली विशालबाहु, वीर राजा और राजपुत्र मारे जाकर पृथिवी तलमें शयन करेंगे ॥ (२२-२४)

रातको लडनेवाले शूकर और विडाल के घोर शब्द अन्तरिक्ष पथमें सुन पडते है ॥ देवमूर्त्तियां कभी कांपती है; कभी हंसती है, कभी मुखोंसे रुधिर वमती हैं; कभी खेदयुक्त होती है और कभी गिरती है ॥ हे नरपाल ! दुन्दुभियोंको कोई बजाता नहीं है पर तौभी सब बजने लगती है; क्षत्रियोंके प्रधान प्रधान रथोंमे कोई घोडा नहीं जोतता है, तौभी सब चलने लगते है ॥ २५-२७

कोकिल शतपत्र, चास, भास, शुक, सारस, मयूर आदि सब चिडियाएं बहुत कठोर घोर शब्द करती है ॥ कहीं घुडसवार लोग बखतर पहन कर और हथियार लेकर आक्रोश करते है अरुणोदयके समय फतिङ्गोंके सैकडों दल देख पडते है ॥ और सन्ध्या और सुबह

पर्जन्यः पांसुवर्षी च मांसवर्षी च भारत ॥ ३० ॥
या चैषा विश्रुता राजंस्त्रैलोक्ये साधुसम्मता ।
अरुन्धती तयाऽप्येष वसिष्ठः पृष्ठतः कृतः ॥ ३१ ॥
रोहिणीं पीडयन्नेष स्थितो राजञ्शनैश्चरः ।
व्यावृत्तं लक्ष्म सोमस्य भविष्यति महद्भयम् ॥ ३२ ॥
अनभ्रे च महाघोरः स्तनितः श्रूयते स्वनः ।
वाहनानां च रुदतां निपतन्त्यश्रुबिन्दवः ॥ ३३ ॥ [६७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि श्रीवेदव्यासप्रश्ने द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

व्यास उवाच— खरा गोषु प्रजायन्ते रमन्ते मातृभिः सुताः ।
अनार्तवं पुष्पफलं दर्शयन्ति वनद्रुमाः ॥ १ ॥
गर्भिण्योऽजातपुत्राश्च जनयन्ति विभीषणान् ।
क्रव्यादाः पक्षिभिश्चापि सहाऽश्नन्ति परस्परम् ॥ २ ॥
त्रिविषाणाश्चतुर्नेत्राः पञ्चपादा द्विमेहनाः ।
द्विशीर्षाश्च द्विपुच्छाश्च दंष्ट्रिणः पशवोऽशिवाः ॥ ३ ॥

जायन्ते विवृतास्याश्च व्याहरन्तोऽशिवा गिरः ।
त्रिपदाः शिखिनस्तार्क्ष्याश्चतुर्दंष्ट्रा विषाणिनः ॥ ४ ॥
तथैवाऽन्याश्च दृश्यन्ते स्त्रियो वै ब्रह्मवादिनाम् ।
वैनतेयान्मयूरांश्च जनयन्ति पुरे तव ॥ ५ ॥
गोवत्सं वडवा सूते श्वा शृगालं महीपते ।
कुक्कुरान्करभाश्चैव शुकाश्चाऽशुभवादिनः ॥ ६ ॥
स्त्रियः काश्चित्प्रजायन्ते चतस्रः पञ्च कन्यकाः ।
जातमात्राश्च नृत्यन्ति गायन्ति च हसन्ति च ॥ ७ ॥
पृथग्जनस्य सर्वस्य क्षुद्रकाः प्रहसन्ति च ।
नृत्यन्ति परिगायन्तो वेदयन्तो महद्भयम् ॥ ८ ॥
प्रतिमाश्चाऽऽलिखन्त्येताः सशस्त्राः कालचोदिताः ।
अन्योन्यमभिधावन्ति शिशवो दण्डपाणयः ॥ ९ ॥
अन्योन्यमभिमृद्नन्ति नगराणि युयुत्सवः ।
पद्मोत्पलानि वृक्षेषु जायन्ते कुमुदानि च ॥ १० ॥
विष्वग्वाताश्च वान्त्युग्रा रजो नाऽप्युपशाम्यति ।
अभीक्ष्णं वर्त्तते भूमिरर्कं राहुरुपैति च ॥ ११ ॥

विकट शरीर वाले पशु उत्पन्न होते है; और वे जनमते ही मुह वाय कर अमङ्गल ध्वनि करते है तीन पैर वाले मयूर और चार दांत, शिखायुक्त वा सींगयुक्त इत्यादि विकट रूपके तार्क्ष्य पक्षी उत्पन्न होते है। और तेरे नगरमे किसी किसी ब्रह्मवादियोंकी स्त्रियोंको गरुड पक्षी और मयूर पैदा हुआ है (१–५)

हे महीपते ! घोडीमे गायका बच्चे, कुत्तीको सियार और करभको मुरगे पैदा होते है तथा शुक अशुभ शब्द बोलते है ॥ कई स्त्रियोंको चार पांच लडकिया पैदा हुई है और ये कन्याएं और चाण्डाल आदि नाचते है, गाते है, और हसते है, इन सबसे बहुत भयकी आशङ्का होती है ॥ मानो कालसे प्रेरित होकर लडके लोग शस्त्र सहित प्रतिमा लिखते है, हाथमे लाठी लेकर परस्पर मारपीट करनेके लिये दौडते है ॥ और लडाई करके कृत्रिम नगरको भग्न करते है, कमल, उत्पल, कुमुद, कल्हार आदि जलपुष्प पेडोंमे उत्पन्न होते ! (६-१०)

चारो ओर प्रचण्ड वायुके बहनेसे बहुत धूल उडती है, लेकिन शान्त नहीं होती है। धीरे धीरे भूकम्प होता है, राहु सूर्यको सदा ग्रसते है। और

श्वेतो ग्रहस्तथा चित्रां समतिक्रम्य तिष्ठति।
अभावं हि विशेषेण कुरूणां तत्र पश्यति ॥ १२ ॥
धूमकेतुर्महाघोरः पुष्यं चाऽऽक्रम्य तिष्ठति।
सेनयोरशिवं घोरं करिष्यति महाग्रहः ॥ १३ ॥
मघास्वङ्गारको वक्रः श्रवणे च बृहस्पतिः।
भगं नक्षत्रमाक्रम्य सूर्यपुत्रेण पीड्यते ॥ १४ ॥
शुक्रः प्रोष्ठपदे पूर्वे समारुह्य विरोचते।
उत्तरे तु परिक्रम्य सहितः समुदीक्षते ॥ १५ ॥
श्वेतो ग्रहः प्रज्वलितः सधूम इव पावकः।
ऐन्द्रं तेजस्वि नक्षत्रं ज्येष्ठामाक्रम्य तिष्ठति ॥ १६ ॥
ध्रुवं प्रज्वलितो घोरमपसव्यं प्रवर्त्तते।
रोहिणीं पीडयत्येवमुभौ च शशिभास्करौ।
चित्रास्वात्यन्तरे चैव विष्ठितः परुषग्रहः ॥ १७ ॥
वक्रानुवक्रं कृत्वा च श्रवणं पावकप्रभः।
ब्रह्मराशिं समावृत्य लोहिताङ्गो व्यवस्थितः ॥ १८ ॥

संवत्सरस्थायिनौ च ग्रहौ प्रज्वलितावुभौ ।
विशाखायाः समीपस्थौ बृहस्पतिशनैश्चरौ ॥ २७ ॥
चन्द्रादित्यावुभौ ग्रस्तावेकाह्ना हि त्रयोदशीम् ।
अपर्वणि ग्रहं यातौ प्रजासंक्षयमिच्छतः ॥ २८ ॥
अशोभिता दिशः सर्वा पांसुवर्षैः समन्ततः ।
उत्पातमेघा रौद्राश्च रात्रौ वर्षन्ति शोणितम् ॥ २९ ॥
कृत्तिकां पीडयंस्तीक्ष्णैर्नक्षत्रं पृथिवीपते ।
अभीक्ष्णवाता वायन्ते धूमकेतुमवस्थिताः ॥ ३० ॥
विषमं जनयन्त्येत आक्रन्दजननं महत् ।
त्रिषु सर्वेषु नक्षत्रनक्षत्रेषु विशाम्पते ।
गृध्रः सम्पतते शीर्षे जनयन्भयमुत्तमम् ॥ ३१ ॥
चतुर्दशीं पञ्चदशीं भूतपूर्वां च षोडशीम् ।

इमां तु नाऽभिजानेऽहममावास्यां त्रयोदशीम् ।
चन्द्रसूर्यावुभौ ग्रस्तावेकमासीं त्रयोदशीम् ॥ ३२ ॥
अपर्वाणि ग्रहेणैतौ प्रजाः संक्षपयिष्यतः ।
मांसवर्ष पुनस्तीव्रमासीत्कृष्णचतुर्दशीम् ।
शोणितैर्वक्त्रसम्पूर्णा अतृप्तास्तत्र राक्षसाः ॥ ३३ ॥
प्रतिस्रोतो महानद्यः सरितः शोणितोदकाः ।
फेनायमानाः कूपाश्च कूर्दन्ति वृषभा इव ॥ ३४ ॥
पतन्त्युल्काः सनिर्घाताः शक्राशनिसमप्रभाः ।
अद्य चैव निशां व्युष्टामनयं समवाप्स्यथ ॥ ३५ ॥
विनिःसृत्य महोल्काभिस्तिमिरं सर्वतोदिशम् ।
अन्योन्यमुपतिष्ठद्भिस्तत्र चोक्तं महर्षिभिः ॥ ३६ ॥
भूमिपालसहस्राणां भूमिः पास्यति शोणितम् ।
कैलासमन्दराभ्यां तु तथा हिमवता विभो ॥ ३७ ॥
सहस्रशो महाशब्दः शिखराणि पतन्ति च ।

वा नहीं तो १५ वें दिन, और कभी एक पक्षमें एक तिथिकी वृद्धि होनेसे १६ वें दिन पूर्णिमा वा अमावास्यामें चन्द्रमा वा सूर्य राहुसे ग्रस्त होते हैं; किन्तु एक ही महीनेमें कृष्ण और शुक्ल दोनों पक्षोंमें एक एक तिथिकी क्षय होनेपर जो तेरहवें तेरहवें दिन पूर्णिमा और अमावास्यामें चन्द्रमा और सूर्य राहुसे ग्रस्त होते हैं सो मैंने कभी नहीं देखा था ॥ इस लिये जब चन्द्रमा और सूर्य दोनों ग्रह तेरहवें दिन राहुग्रस्त हुए हैं तो मुझे इससे कुछ शंका नहीं होती है कि वे प्रजाका संहार करेंगे । राक्षस लोग उस समय मुंह भर लोहू पीनेपर भी तृप्त नहीं होते ॥ (३२—३३)

महाराज ! महानदीकी धारा एकदम उलटी चलती है । सब नदियोंका पानी लोहूके रंगका होगया है । कुएं फेनसे भरकर बैलके समान डरकते हैं ॥ शुष्काशनिके समान देदीप्यमान उल्का गिरती है; और आज रात बीतनेपर सुबह होनेके समय आप अनीतिके फल को प्राप्त होंगे । सब दिशाओंमें अंधकार होनेके कारण चारों ओर जलती हुई उल्काओंके साथ निकलकर महर्षिलोगोंने एकत्र होकर ऐसा कहा है ॥ कि इस प्रकार उत्पात होनेसे हजारों हजार राजाओंके लोहूको पृथिवी पीयेगी। अलावे इसके हिमालय, कैलास और मन्दर गिरिके पास बडे जोरसे हजारों शब्द

महाभूता भूमिकम्पे चत्वारः सागराः पृथक् ।
वेलामुद्वर्त्तयन्तीव क्षोभयन्तो वसुन्धराम् ॥ ३८ ॥
वृक्षानुन्मथ्य वान्त्युग्रा वाताः शर्करकार्षिणः ।
आभग्नाः सुमहावातैरशनीभिः समाहताः ॥ ३९ ॥
वृक्षाः पतन्ति चैत्याश्च ग्रामेषु नगरेषु च ।
नीललोहितपीतश्च भवत्यग्निर्हुतो द्विजैः ॥ ४० ॥
वामार्चिर्दुष्टगन्धश्च मुञ्चन्वै दारुणं स्वनम् ।
स्पर्शा गन्धा रसाश्चैव विपरीता महीपते ॥ ४१ ॥
धूमं ध्वजा प्रमुञ्चन्ति कम्पमाना मुहुर्मुहुः ।
मुञ्चन्त्यङ्गारवर्षं च भेर्यश्च पटहास्तथा ॥ ४२ ॥
शिखराणां समृद्धानामुपरिष्टात्समन्ततः ।
वायसाश्च स्वन्त्युग्रं वामं मण्डलमाश्रिताः ॥ ४३ ॥
पक्कापक्केति सुभृशं वावाश्यन्ते वयांसि च ।
निलीयन्ते ध्वजाग्रेषु क्षयाय पृथिवीक्षिताम् ॥ ४४ ॥
ध्यायन्तः प्रकिरन्तश्च व्याला वेपथुसंयुताः ।
दीनास्तुरङ्गमाः सर्वे वारणाः सलिलाश्रयाः ॥ ४५ ॥

तथा बाईं ओर धाह फेंकती हुई जलती है। स्पर्श, गन्ध, रस आदि विपरीत भाव होते हैं। (३९-४१)

ध्वजा सब धीरे धीरे डोलती हुई धुंआ फेंकती हैं। भेरी, पटह आदि सब बाजोंमें आग निकलती है॥ चारों ओर कौए बहुत ऊंचे पेडोंकी फुनगियोंपर बाईं ओर मण्डली बांधकर बैठते हैं॥ और 'पक्का पक्का' कठोर शब्द करते हैं। और और पक्षी सब बार बार बोलते हुए राजाओंके क्षयकी सूचना करते हुए ध्वजाओंके अग्रभागपर आके बैठते हैं सर्प हुए हाथी सब कांपते हुए

एतच्छ्रुत्वा भवानत्र प्राप्तकालं व्यवस्यताम् ।
यथा लोकः समुच्छेदं नाऽयं गच्छेत भारत ॥ ४६ ॥
वैशम्पायन उवाच-पितुर्वचो निशम्यैतद्धृतराष्ट्रोऽब्रवीदिदम् ।
दिष्टमेतत्पुरा मन्ये भविष्यति नरक्षयः ॥ ४७ ॥
राजानः क्षत्रधर्मेण यदि वध्यन्ति संयुगे ।
वीरलोकं समासाद्य सुखं प्राप्स्यन्ति केवलम् ॥ ४८ ॥
इह कीर्तिं परे लोके दीर्घकालं महत्सुखम् ।
प्राप्स्यन्ति पुरुषव्याघ्राः प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे॥४९॥
वैशम्पायन उवाच-एवं मुनिस्तथेत्युक्त्वा कवीन्द्रो राजसत्तम ।
धृतराष्ट्रेण पुत्रेण ध्यानमन्वगमत्परम् ॥ ५० ॥
स मुहूर्त्तं तथा ध्यात्वा पुनरेवाऽब्रवीद्वचः ।
असंशयं पार्थिवेन्द्र कालः संक्षयते जगत् ॥ ५१ ॥
सृजते च पुनर्लोकान्नेह विद्यति शाश्वतम् ।
ज्ञातीनां वै कुरूणां च सम्बन्धिसुहृदां तथा ॥ ५२ ॥

पखाना तथा पिशाब करते है और हाथी घोडे दीन भावमे युक्त होगये हैं ॥ हे भारत ! तुमने इन सब घटनाओंकी बात सुनली । अब जिस कामसे लोगोंकी मृत्यु नहीं हो और वह काम कैसे करना उचित है, उन्ही बातोका अनुष्ठान करो । (४२-४६)

श्रीवैशम्पायन जी बोले, कि पिता व्यासदेवकी इन बातोंको सुनके धृतराष्ट्रने उत्तर दिया, कि इस समय जो मनुष्योंकी मृत्यु होगी उसे अवश्यही देवताओंकी की हुई कहनी चाहिये ॥ जो कुछ हो, यदि राजा लोग क्षत्रियोंके धर्मके अनुसार युद्ध करके मरें, तो वीरोंके लाभ करने योग्य स्वर्ग लोक प्राप्त करके अखण्ड सुख भोग सकेंगे ॥ मनुष्योंमें प्रधान लोग महा समरमें प्राण परित्याग करके इस लोकमें कीर्ति और परलोकमें दीर्घकाल महत् सुख लाभ करेंगे । (४७-४९)

श्रीवैशम्पायन जी बोले, हे राजसत्तम ! अपने पुत्र धृतराष्ट्रसे यह बात सुनकर कवीश्वर व्यास देवने चित्तको परम ध्यानमें लगाया ॥ एक मुहूर्त्त चिन्ता करनेके बाद उन्होने फिर कहा, हे राजेन्द्र ! काल ही जगत्के नाशके और पुनर्वार उत्पत्तिके कारण होते है ॥ इसमें कोई संशय नहीं कि इस संसारमें कोई वस्तु चिरस्थायी नहीं है । तोभी कुरु, पाण्डव और अन्यान्य मित्र और

धर्म्यं देशय पन्थानं समर्थो ह्यसि वारणे ।
क्षुद्रं ज्ञातिवधं प्राहुर्मा कुरुष्व ममाऽप्रियम् ॥ ५३ ॥
कालोऽयं पुत्ररूपेण तव जातो विशाम्पते ।
न वधः पूज्यते वेदे हितं नैव कथञ्चन ॥ ५४ ॥
हन्यात्स एनं यो हन्यात्कुलधर्मं स्विकां तनुम् ।
कालेनोत्पथगन्ताऽसि शक्ये सति यथाऽऽपदि ॥५५॥
कुलस्याऽस्य विनाशाय तथैव च महीक्षिताम् ।
अनर्थो राज्यरूपेण तव जातो विशाम्पते ॥ ५६ ॥
लुप्तधर्मा परेणाऽसि धर्मं दर्शय वै सुतान् ।
किं ते राज्येन दुर्धर्ष येन प्राप्तोऽसि किल्बिषम्॥५७ ॥
यशो धर्मं च कीर्तिं च पालयन्स्वर्गमाप्स्यसि ।
लभन्तां पाण्डवा राज्यं शमं गच्छन्तु कौरवाः ॥५८॥
एवं ब्रुवति विप्रेन्द्रे धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
आक्षिप्य वाक्यं वाक्यज्ञो वाक्यं नैवाऽब्रवीत्पुनः ॥५९॥

धृतराष्ट्र उवाच–यथा भवान्वेत्ति तथैव वेत्ता भावाभावौ विदितौ मे यथार्थौ।
स्वार्थे हि संमुह्यति तात लोको मां चापि लोकात्मकमेव विद्धि ॥ ६० ॥
प्रसादये त्वामतुलप्रभावं त्वं नो गतिर्दर्शयिता च धीरः ।
न चापि ते मद्वशगा महर्षे न चाऽधर्मं कर्तुमर्हो हि मे मतिः॥ ६१ ॥
त्वं हि धर्मप्रवृत्तिश्च यशः कीर्तिश्च भारती ।
कुरूणां पाण्डवानां च मान्यश्चापि पितामहः ॥ ६२ ॥
व्यास उवाच– वैचित्रवीर्य नृपते यत्ते मनसि वर्तते ।
अभिधत्स्व यथाकामं छेत्ताऽस्मि तव संशयम्॥ ६३ ॥
धृतराष्ट्र उवाच-यानि लिङ्गानि संग्रामे भवन्ति विजयिष्यताम् ।
तानि सर्वाणि भगवञ्छ्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः॥ ६४ ॥
व्यास उवाच—प्रसन्नभाः पावक ऊर्ध्वरश्मिः प्रदक्षिणावर्त्तशिखो विधूमः।
पुण्या गन्धाश्चाऽऽहुतीनां प्रवान्ति जयस्यैतद्भाविनो रूपमाहुः॥ ६५॥
गम्भीरघोषाश्च महास्वनाश्च शङ्खा मृदङ्गाश्च नदन्ति यत्र ।

बडे वक्ता फिर यह कहने लगे ॥ हे पिता ! आप जैसे भावाभाव जानते हैं: मुझको भी उसी तरहसे मालूम होता है । लेकिन मनुष्य स्वार्थमें स्वभावहीसे विमुग्ध होता है । मुझे भी आप एक साधारण मनुष्य समझिये ॥ हे बडे प्रभाके महर्षि ! आप धीर है, उपदेश-करनेवाले हैं और हम लोगोंके गति हैं, आप मुझपर प्रसन्न हो । मैं अधर्म करना नहीं चाहता हूं । लेकिन मेरे वे पुत्र आज्ञाकारी नहीं है ॥ आप भरत-वंशकी कीर्त्ति है । धर्म प्रवृत्ति और यशके आप आगर हैं और कुरुपाण्डवोंके मान्य पितामह हैं ॥ (५९-६२)

यह सुनकर व्यासदेव बोले, हे विचित्रवीर्यनन्दन महाराज ! अगर तुम्हारे मनमें कोई शंका हो तो जी खोलके उसे कहो, मैं उसे पूरा करूं ॥ (६३)

धृतराष्ट्र बोले, हे भगवन् ! लडाईमें जीतने वालेकी ओर जो जो शुभ बातें होती है सो सब यथार्थ रूपसे सुननेकी मुझे इच्छा होती है ॥ (६४)

तब वेदव्यासजी कहने लगे; आगमें आहुतियोंमे धुआं नहीं होता है, ज्योति निर्मल होती है, रोशनी ऊपरकी ओर और धाह दहिनी ओर जाता है, और अग्निमें जो आहुति दी जाती है उससे चारों ओर पवित्र सुगन्ध फैलता है । जीतने-वालोंके लक्षण पण्डितोंने यही सब कहे हैं ॥ शङ्ख और मृदङ्गकी ध्वनि गम्भीर होती है और बहुत दूर तक जाती है;तथा सूर्य और चन्द्रमा अत्यन्त विशुद्ध

विशुद्धवर्णोऽभिसम्प्रदक्षः स्वार्ची च जयस्यैतद्भाविनो रूपमाहुः ॥ ६६ ॥
दृष्टा वाचः प्रसृता वाश्यमानां सम्प्रस्थितानां च गमिष्यतां च।
ये पृष्ठतस्ते त्वरयन्ति राजन्ये चाऽग्रतस्ते प्रतिषेधयन्ति ॥ ६७ ॥
कल्याणवाचः शकुना राजहंसाः शुकाः क्रौञ्चाः शतपत्राश्च यत्र।
प्रदक्षिणाश्चैव भवन्ति संख्ये ध्रुवं जयस्तत्र वदन्ति विप्राः ॥६८॥
अलङ्कारैः कवचैः केतुभिश्च सुखप्रणादैर्हेषितैर्वा हयानाम्।
भ्राजिष्मती दुष्प्रतिवीक्षणीया येषां चमूस्ते विजयन्ति शत्रून्॥६९॥

हृष्टा वाचस्तथा सत्त्व योधानां यत्र भारत।
न म्लायन्ति स्रजश्चैव ते तरन्ति रणोदधिम् ॥ ७० ॥
इष्टा वाचः प्रविष्टस्य दक्षिणाः प्रविविक्षतः।
पश्चात्सन्नाहयन्त्यर्थमग्रे च प्रतिषेधिकाः ॥ ७१ ॥
शब्दरूपरसस्पर्शगन्धाश्चाऽविकृताः शुभाः।
सदा हर्षश्च योधानां जयतामिह लक्षणम् ॥ ७२ ॥

अनुगा वायवो वान्ति तथाऽभ्राणि वयांसि च ।
अनुप्लवन्ति मेघाश्च तथैवेन्द्रधनूंषि च ॥ ७३ ॥
एतानि जयमानानां लक्षणानि विशाम्पते ।
भवन्ति विपरीतानि मुमूर्षूणां जनाधिप ॥ ७४ ॥
अल्पायां वा महत्यां वा सेनायामिति निश्चयः ।
हर्षो योधगणस्यैको जयलक्षणमुच्यते ॥ ७५ ॥
एको दीर्णो दारयति सेनां सुमहतीमपि ।
तां दीर्णामनुदीर्यन्ते योधाः शूरतरा अपि ॥ ७६ ॥
दुर्निवर्त्या तदा चैव प्रभग्ना महती चमूः ।
अपामिव महावेगास्त्रस्ता मृगगणा इव ॥ ७७ ॥
नैव शक्या समाधातुं सन्निपाते महाचमूः ।
दीर्णामित्येव दीर्यन्ते सुविद्वांसोऽपि भारत ॥ ७८ ॥
भीतान्भग्नांश्च सम्प्रेक्ष्य भयं भूयोऽभिवर्द्धते ।
प्रभग्ना सहसा राजन्दिशो विद्रवते चमूः ॥ ७९ ॥
नैव स्थापयितुं शक्या शूरैरपि महाचमूः ।

और पक्षी सब उसके अनुकूलगामी होते हैं; और मेघ और इन्द्रधनुष पानी वरसाते हैं। हे राजन्! जय शीलोंके ये ही लक्षण देख पडते है; और जो हारने वाले है उनके ये सब विपरीत होते है ॥ (७१-७४

सेना थोडी हो वा अधिक हो योद्धाओंका प्रसन्न रहना ही जीतनेका एक प्रधान लक्षण कहा गया है। उत्साह रहित एक आदमी भी भाग कर बहुत बढिया वडी सेनाको भी छिन्न भिन्न कर दे सकता है। सेनाको भग्न होते देख कर अति शौर्य-शाली वीर पुरुष भी भाग जाता है॥ वह वडी सेना एक बार छिन्न भिन्न हो जानेपर अत्यन्त प्रबल नदीकी बाढ वा भयग्रस्त हरिणोंके झुण्डके समान, उसको फिर निवृत्त करना असम्भव हो जाता है। (७५-७७)

रणचतुर पुरुष भी एक बडी सेनाके बिखरनेपर उसे खडी नहीं कर सकते; बलिक उन सबको भागते देख कर स्वयं भी निरुत्साह हो जाते हैं॥ उनको डर और भग्न देखकर और वीर भी अधिक डर सकते है। इस लिये समस्त सेना छिन्न भिन्न होकर बहुत जल्द जिधर तिधर चली जाती है॥ तब शौर्यवान सेनाध्यक्ष लोग चतुरंगिणी सेनाके साथ रहनेपर भी उन सबको निवृत्त करनेमें असमर्थ होजाते

संकृत्य महतीं सेनां चतुरङ्गां महीपतिः।
उपायपूर्वं मेधावी यतेत सततोत्थितः ॥ ८० ॥
उपायविजयं श्रेष्ठमाहुर्भेदेन मध्यमम्।
जघन्य एष विजयो यो युद्धेन विशाम्पते ॥ ८१ ॥
महान्दोषः सन्निपातस्ततोऽन्यः क्षय उच्यते।
परस्परज्ञाः संहृष्टा व्यवधूताः सुनिश्चिताः ॥ ८२ ॥
अपि पञ्चाशतं शूरा मृद्नन्ति महतीं चमूम्।
अपि वा पञ्च षट् सप्त विजयन्त्यनिवर्तिनः ॥ ८३ ॥
न वैनतेयो गरुडः प्रशंसति महाजनम्।
दृष्ट्वा सुपर्णोपचितिं महतीमपि भारत ॥ ८४ ॥
न बाहुल्येन सेनाया जयो भवति नित्यशः।
अध्रुवो हि जयो नाम दैवं चात्र परायणम्।
जयवन्तो हि संग्रामे कृतकृत्या भवन्ति हि ॥ ८५ ॥ [१५२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि
जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि निमित्ताख्याने तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

भारी सेनाको भी हरा सकते हैं। और किसी प्रकार पीछे पांव नहीं देनेवाले पांच छः वा सात आदमी भी जय लाभ कर सकते हैं॥ (८१-८३)

विनताके पुत्र सुपर्ण गरुड, अपनेमें असंख्य सेनाका नाश करनेकी सामर्थ देख कर बहुत लोगोंकी प्रार्थना करते नहीं जाते॥ इसलिये, बडी सेना रहनेसे जय होगी सो कोई बात नहीं है, विजयकी कोई स्थिरता नहीं है, वह दैवके आधीन रहती है; विजय करनेके योग्य लोग भी लडाईमें हार सकते हैं। (८४-८५) [१५३]

वैशम्पायन उवाच-एवमुक्त्वा ययौ व्यासो धृतराष्ट्राय धीमते
धृतराष्ट्रोऽपि तच्छ्रुत्वा ध्यानमेवाऽन्वपद्यत ॥ १ ॥
स मुहूर्त्तमिव ध्यात्वा विनिःश्वस्य मुहुर्मुहुः ।
सञ्जयं संशितात्मानमपृच्छद्भरतर्षभ ॥ २ ॥
सञ्जयेमे महीपालाः शूरा युद्धाभिनन्दिनः ।
अन्योन्यमभिनिघ्नन्ति शस्त्रैरुच्चावचैरिह ॥ ३ ॥
पार्थिवाः पृथिवीहेतोः समभित्यज्य जीवितम् ।
न वा शाम्यन्ति निघ्नन्तो वर्धयन्ति यमक्षयम् ॥ ४ ॥
भौममैश्वर्यमिच्छन्तो न मृष्यन्ते परस्परम् ।
मन्ये बहुगुणा भूमिस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ ५ ॥
बहूनि च सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
कोट्यश्च लोकवीराणां समेताः कुरुजाङ्गले ॥ ६ ॥
देशानां च परीमाणं नगराणां च सञ्जय ।
श्रोतुमिच्छामि तत्त्वेन यत एते समागताः ॥ ७ ॥
दिव्यबुद्धिप्रदीपेन युक्तस्त्वं ज्ञानचक्षुषा ।

भीष्मपर्वमें चार अध्याय ।

श्रीवैशम्पायनजी बोले, हे भरतर्षभ! महात्मा व्यासदेवजी बुद्धिमान् धृतराष्ट्रको इतना कह कर चले गये। उनकी उन सब बातोंको सुन कर महाराज धृतराष्ट्र सोचने लगे॥ और एक मुहूर्त्त तक चिन्ता करनेके बाद बारबार श्वास छोडते हुए प्रशंसितात्मा सञ्जय से पूछने लगे॥ (१–२)

हे सञ्जय! जब मैं देखता हूं, कि लडाई चाहनेवाले ये सब शूर क्षत्रिय राजा लोग ऐश्वर्यकी इच्छासे पृथ्वीके लिये बहुतसे बडे बडे शस्त्रोंकी सहायतासे एक दूसरेपर आघात करनेको उद्यत हो रहे हैं॥ जानका मोह छोड कर एक दूसरेके दुश्मन बनते हैं, संहारके द्वारा यमके घरको भर देनेकी चेष्टा करते हैं॥ और इन सब कामोंमे बाज नहीं आते हैं, तब मुझे मालूम होता है, कि पृथिवीमें अवश्य ही बहुत प्रकारके गुण हैं; इस लिये आप कृपा कर पृथिवीके गुणोंका विस्तार रूपसे वर्णन मुझे सुनावें। (३–५)

इस कुरुक्षेत्रमें कई सहस्र करोड, बहुतसे अर्बुद वीर लोग हैं॥ वे लोग जिन जिन स्थानोंसे आये हैं, उन सब देश और नगरोंका परिमाण यथार्थरूपसे सुननेकी इच्छा होती है॥ उन

प्रभावात्तस्य विप्रर्षेर्व्यासस्याऽमिततेजसः ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच— यथाप्रज्ञं महाराज भौमान्वक्ष्यामि ते गुणान् ।
शास्त्रचक्षुरवेक्षस्व नमस्ते भरतर्षभ ॥ ९ ॥
द्विविधानीह भूतानि चराणि स्थावराणि च ।
चराणां त्रिविधा योनिरण्डस्वेदजरायुजाः ॥ १० ॥
त्रसानां खलु सर्वेषां श्रेष्ठा राजञ्जरायुजाः ।
जरायुजानां प्रवरा मानवाः पशवश्च ये ॥ ११ ॥
मानवाः प्रवरा राजंस्तेषां भेदाश्चतुर्दश ।
वेदोक्ताः पृथिवीपाल येषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥ १२ ॥
ग्राम्याणां पुरुषाः श्रेष्ठाः सिंहाश्चाऽरण्यवासिनाम् ।
सर्वेषामेव भूतानामन्योन्येनोपजीवनम् ॥ १३ ॥
उद्भिज्जाः स्थावराः प्रोक्तास्तेषां पञ्चैव जातयः ।
वृक्षगुल्मलता वल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः ॥ १४ ॥
तेषां विंशतिरेकोना महाभूतेषु पञ्चसु ।

चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा गायत्री लोकसम्मता ॥ १५ ॥
य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्विताम् ।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ स लोके न प्रणश्यति ॥ १६ ॥
अरण्यवासिनः सप्त सप्तैषां ग्रामवासिनः ।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च महिषा वारणास्तथा ॥ १७ ॥
ऋक्षाश्च वानराश्चैव सप्ताऽऽरण्याः स्मृता नृप ।
गौरजाविमनुष्याश्च अश्वाश्वतरगर्दभाः ॥ १८ ॥
एते ग्राम्याः समाख्याताः पशवः सप्त साधुभिः ।
एते वै पशवो राजन्ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥ १९ ॥
भूमौ च जायते सर्वं भूमौ सर्वं विनश्यति ।
भूमिः प्रतिष्ठा भूतानां भूमिरेव सनातनम् ॥ २० ॥
यस्य भूमिस्तस्य सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
तत्राऽतिगृद्धा राजानो विनिघ्नन्तीतरेतरम् ॥ २१ ॥ [१७३]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भौमगुणकथने चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच--नदीनां पर्वतानां च नामधेयानि सञ्जय ।
तथा जनपदानां च ये चाऽन्ये भूमिमाश्रिताः ॥ १ ॥

इन्ही चौवीसों कार्य कारणको चौवीस अक्षरवाली, तीनों लोकोंमें विख्यात, ब्रह्मरूप गायत्री कहा है ॥ हे भरतश्रेष्ठ! संसारमें जो मनुष्य सब गुणोंसे विभूषित, पवित्र, इस गायत्रीको प्रकृतरूपसे जानता है, उसका कभी विनाश नहीं होता है ॥ वे पशु १४ प्रकारके होते हैं; सिंह, बाघ, शूकर, भैसा, हाथी, भालू और बन्दर येही सात जंगली पशु है; मनुष्य, गाय, बकरी, भेडा, घोडा, खच्चर और गदहा येही सात ग्रामीण पशु हैं; साधुओंने ऐसा ही कहा है ॥ (१५-१९)

भूमिहीमें ये सब मिल जाते हैं; और भूमिमें ही सब विनाश को प्राप्त होते हैं, और भूमि ही सब भूतोंकी प्रतिष्ठा और सनातन आश्रयस्थान होती है ॥ जो मनुष्य भूमिका अधिकारी होता है उसके स्थावर, जङ्गम समस्त विश्वही मुट्ठीमें रहते है, इसी लिये राजा लोग भूमिके अभिलाषी होकर, एक दूसरेको मारनेके लिये आए हुए हैं ॥ (२०-२१) [१७३]

भीष्मपर्वमें चार अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें पांच अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे प्रमाणज्ञ सञ्जय! सम्पूर्ण जनपद और उसपर जितनी

प्रसादात्तस्य विप्रर्षेर्व्यासस्यामिततेजसः ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच— यथाप्रज्ञं महाप्राज्ञ भौमान्वक्ष्यामि ते गुणान् ।
शास्त्रचक्षुरवेक्षस्व नमस्ते भरतर्षभ ॥ ९ ॥
द्विविधानीह भूतानि चराणि स्थावराणि च ।
त्रसानां त्रिविधा योनिरण्डस्वेदजरायुजाः ॥ १० ॥
त्रसानां खलु सर्वेषां श्रेष्ठा राजञ्जरायुजाः ।
जरायुजानां प्रवरा मानवाः पशवश्च ये ॥ ११ ॥
नानारूपधरा राजंस्तेषां भेदाश्चतुर्दश ।
वेदोक्ताः पृथिवीपाल येषु यज्ञाः प्रतिष्ठिताः ॥ १२ ॥
ग्राम्याणां पुरुषाः श्रेष्ठाः सिंहाश्चारण्यवासिनाम् ।
सर्वेषामेव भूतानामन्योन्येनोपजीवनम् ॥ १३ ॥
उद्भिज्जाः स्थावराः प्रोक्तास्तेषां पञ्चैव जातयः ।
वृक्षगुल्मलतावल्ल्यस्त्वक्सारास्तृणजातयः ॥ १४ ॥
तेषां विंशतिरेकोना महाभूतेषु पञ्चसु ।

चतुर्विंशतिरुद्दिष्टा गायत्री लोकसम्मता ॥ १५ ॥
य एतां वेद गायत्रीं पुण्यां सर्वगुणान्विताम् ।
तत्त्वेन भरतश्रेष्ठ स लोके न प्रणश्यति ॥ १६ ॥
अरण्यवासिनः सप्त सप्तैषां ग्रामवासिनः ।
सिंहा व्याघ्रा वराहाश्च महिषा वारणास्तथा ॥ १७ ॥
ऋक्षाश्च वानराश्चैव सप्ताऽऽरण्याः स्मृता नृप ।
गौरजाविमनुष्याश्च अश्वाश्वतरगर्दभाः ॥ १८ ॥
एते ग्राम्याः समाख्याताः पशवः सप्त साधुभिः ।
एते वै पशवो राजन्ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥ १९ ॥
भूमौ च जायते सर्वं भूमौ सर्वं विनश्यति ।
भूमिः प्रतिष्ठा भूतानां भूमिरेव सनातनम् ॥ २० ॥
यस्य भूमिस्तस्य सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
तत्राऽतिगृद्धा राजानो विनिघ्नन्तीतरेतरम् ॥ २१ ॥ [१७३]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भौमगुणकथने चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच --नदीनां पर्वतानां च नामधेयानि सञ्जय ।
तथा जनपदानां च ये चाऽन्ये भूमिमाश्रिताः ॥ १ ॥

इन्हीं चौवीसों कार्य कारणको चौवीस अक्षरवाली, तीनों लोकोंमें विख्यात, ब्रह्मरूप गायत्री कहा है ॥ हे भरतश्रेष्ठ! संसारमें जो मनुष्य सब गुणोंसे विभूषित, पवित्र, इस गायत्रीको प्रकृतरूपसे जानता है, उसका कभी विनाश नहीं होता है ॥ वे पशु १४ प्रकारके होते हैं; सिंह, बाघ, शूकर, भैंसा, हाथी, भालू और बन्दर येही सात जंगली पशु हैं; मनुष्य, गाय,बकरी, भेडा, घोडा, खच्चर और गदहा येही सात ग्रामीण पशु हैं; साधुओंने ऐसा ही कहा है ॥ (१५-१९) भूमिहीमें ये सब मिल जाते हैं; और भूमिमें ही सब विनाश को प्राप्त होते हैं, और भूमि ही सब भूतोंकी प्रतिष्ठा और सनातन आश्रयस्थान होती है ॥ जो मनुष्य भूमिका अधिकारी होता है उसके स्थावर, जङ्गम समस्त विश्वही मुट्ठीमें रहते हैं, इसी लिये राजा लोग भूमिके अभिलाषी होकर, एक दूसरेको मारनेके लिये आए हुए हैं ॥ (२०-२१) [१७३]

भीष्मपर्वमें चार अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें पांच अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे प्रज्ञावान् . सम्पूर्ण जनपद और

प्रमाणं च प्रमाणज्ञ पृथिव्या मम सर्वतः।
निखिलेन समाचक्ष्व काननानि च सञ्जय ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच— पञ्चेमानि महाराज महाभूतानि संग्रहात्।
जगत्स्थानि सर्वाणि समान्याहुर्मनीषिणः ॥ ३ ॥
भूमिरापस्तथा वायुरग्निराकाशमेव च।
गुणोत्तराणि सर्वाणि तेषां भूमिः प्रधानतः ॥ ४ ॥
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः।
भूमेरेते गुणाः प्रोक्ता ऋषिभिस्तत्त्ववेदिभिः ॥ ५ ॥
चत्वारोऽप्सु गुणा राजन्गन्धस्तत्र न विद्यते।
शब्दः स्पर्शश्च रूपं च तेजसोऽथ गुणास्त्रयः।
शब्दः स्पर्शश्च वायोस्तु आकाशे शब्द एव तु ॥ ६ ॥
एते पञ्च गुणा राजन्महाभूतेषु पञ्चसु।
वर्तन्ते सर्वलोकेषु येषु भूताः प्रतिष्ठिताः ॥ ७ ॥
अन्योन्यं नाभिवर्तन्ते साम्यं भवति वै यदा ॥ ८ ॥
यदा तु विषमीभावमाविशन्ति परस्परम्।

तदा देहैर्देहवन्तो व्यतिरोहन्ति नाऽन्यथा ॥ ९ ॥
आनुपूर्व्या विनश्यन्ति जायन्ते चाऽनुपूर्वशः ।
सर्वाण्यपरिमेयाणि तदेषां रूपमैश्वरम् ॥ १० ॥
तत्र तत्र हि दृश्यन्ते धातवः पाञ्चभौतिकाः ।
तेषां मनुष्यास्तर्केण प्रमाणानि प्रचक्षते ॥ ११ ॥
अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण साधयेत् ।
प्रकृतिभ्यः परं यत्तु तदचिन्त्यस्य लक्षणम् ॥ १२ ॥
सुदर्शनं प्रवक्ष्यामि द्वीपं तु कुरुनन्दन ।
परिमण्डलो महाराज द्वीपोऽसौ चक्रसंस्थितः ॥ १३ ॥
नदीजलप्रतिच्छन्नः पर्वतैश्चाऽभ्रसन्निभैः ।
पुरैश्च विविधाकारै रम्यैर्जनपदैस्तथा ॥ १४ ॥
वृक्षैः पुष्पफलोपेतैः सम्पन्नधनधान्यवान् ।
लवणेन समुद्रेण समन्तात्परिवारितः ॥ १५ ॥

विषम परिमाणसे रहते है, तब संसारके सब भौतिक पदार्थ देह धारण करके रहते हैं; अर्थात् तब ही संसार स्थित रहता है। इससे अन्यथा कभी नहीं होता है ॥ इन सब महाभूतोंका क्रमानुसार ध्वंस होता है, और क्रमानुसार ही सृष्टि होती है। अर्थात् भूमि जलमें, जल अग्निमें, अग्नि वायुमें और वायु आकाशमें लीन होता है; और आकाशसे वायुकी, वायुसे अग्निकी, अग्निसे जलकी और जलसे भूमिकी उत्पत्ति होती है। (७—१०)

महाराज ! किसी भूतका परिमाण कहना कठिन है; सब ही अपरिमित और सब ही ऐश्वरिक है। सब पदार्थोंमें पाचों महाभूत पाये जाते हैं। तर्क करके मनुष्य कह सकता है कि सब पदार्थोंमें यह पांचों महाभूत विद्यमान रहते है; किन्तु जो विषय ध्यानमें नहीं आसकता है, उसके बारेमें तर्क करना उचित नहीं है। जो प्रकृतिके अतिरिक्त है वह ध्यानमें नहीं आता है। १०–१२

हे कुरुवर्द्धन ! सुदर्शन नामक एक जामुनका पेड है, उसके नामसे जो सुदर्शन द्वीप विख्यात है, उसकी कथा कहता हूं, आप सुनिये, वह गोलाकार है; चक्रकी तरह वह संस्थित है ॥ और नदी, और दूसरी दूसरी तरहके जलाशय, मेघोंके बराबर ऊंचे पहाड, बहुत तरहके आकारके शहर, रमणीय जनपद, ॥ फूल और फलोंसे लदे पेड, धन और धान्यसे सम्पन्न और चारों ओर क्षार समुद्र

सर्वधातुविचित्रश्च शृङ्गवान्नाम पर्वतः ।
एते वै पर्वता राजन्सिद्धचारणसेविताः ॥ ५ ॥
एषामन्तरविष्कम्भो योजनानि सहस्रशः ।
तत्र पुण्या जनपदास्तानि वर्षाणि भारत ॥ ६ ॥
वसन्ति तेषु सत्वानि नानाजातीनि सर्वशः ।
इदं तु भारतं वर्षं ततो हैमवतं परम् ॥ ७ ॥
हेमकूटात्परं चैव हरिवर्षं प्रचक्षते ।
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ॥ ८ ॥
प्रागायतो महाभाग माल्यवान्नाम पर्वतः ।
ततः परं माल्यवतः पर्वतो गन्धमादनः ॥ ९ ॥
परिमण्डलस्तयोर्मध्ये मेरुः कनकपर्वतः ।
आदित्यतरुणाभासो विधूम इव पावकः ॥ १० ॥
योजनानां सहस्राणि चतुरशीतिरुच्छ्रितः ।
अधस्ताच्चतुरशीतिर्योजनानां महीपते ॥ ११ ॥
ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक्च लोकानावृत्य तिष्ठति ।
तस्य पार्श्वेष्वमी द्वीपाश्चत्वारः संस्थिता विभो॥१२॥

समुद्र तक फैला हुआ, हिमवान, हेमकूट पहाड, नगोत्तम निषध, वैदूर्यमय नील, शशिसन्निभ श्वेत और सर्वधातु पिनद्ध शृङ्गवान यही छः वर्ष पहाड वहां हैं इन पहाडोंमें सिद्ध चारणलोग रहते है ॥ (१—५)

इन सबके आपसके बीचका स्थान हजार योजन है । वे स्थान पुण्य देश और वर्ष कहे गये हैं ॥ उन स्थानोंमें नाना जातिके प्राणि वास करते है । यह भारतवर्ष है, इसके उत्तर हेमवतवर्ष है ॥ और हेमकूटके उत्तरमें हरि वर्ष कहा गया है । हे महाराज ! नील गिरिकी दक्षिण ओर निषधकी उत्तर ओर पूर्वसे पश्चिमको आयत माल्यवान् नामक शैल है ॥ उस माल्यवानके बाद गन्ध मादन पर्वत है ॥ (६—९)

उन माल्यवान् और गन्धमादन पर्वतोंके बीचमें गोलाकार सोनेका पहाड मेरु है । तरुण सूर्य और धूंआ रहित अग्निके समान इस मेरुकी प्रभा है ॥ हे महीपते ! उसकी ऊंचाई चौरासी हजार योजन है, और चौरासी हजार योजन ही वह नीचे पृथ्वीमें घुसा है । उसके ऊपर, मध्य और नीचे प्रदेशोंमें सब लोक रहते है । उसकी चारों ओर भद्राश्व,

तत्र गच्छन्ति भद्रं ते सदा पर्वाणि पर्वाणि ॥ २१ ॥
तस्यैव मूर्धन्युशनाः काव्यो दैत्यैर्महीपते ।
इमानि तस्य रत्नानि तस्येमे रत्नपर्वताः ॥ २२ ॥
तस्मात्कुबेरो भगवांश्चतुर्थं भागमश्नुते ।
ततः कलांशं वित्तस्य मनुष्येभ्यः प्रयच्छति ॥ २३ ॥
पार्श्वे तस्योत्तरे दिव्यं सर्वर्तुकुसुमैश्चितम् ।
कर्णिकारवनं रम्यं शिलाजालसमुद्गतम् ॥ २४ ॥
तत्र साक्षात्पशुपतिर्दिव्यैर्भूतैः समावृतः ।
उमासहायो भगवान्रमते भूतभावनः ॥ २५ ॥
कर्णिकारमयीं मालां बिभ्रत्पादावलम्बिनीम् ।
त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्योतस्त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥ २६ ॥
तमुग्रतपसः सिद्धाः सुव्रताः सत्यवादिनः ।
पश्यन्ति न हि दुर्वृत्तैः शक्यो द्रष्टुं महेश्वरः ॥ २७ ॥
तस्य शैलस्य शिखरात्क्षीरधारा नरेश्वर ।
विश्वरूपाऽपरिमिता भीमानिर्घातनिःस्वना ॥ २८ ॥

है। और सप्तर्षियोंके सहित प्रजापति कश्यप पर्वोंमें वहाँ जाते है। (१८-२१)

हे महीपते! इसी पहाडके शिखर प्रदेशपर कवियोंमे प्रधान, दैत्योंके गुरु दैत्योंको लेकर सदा क्रीडा करते रहते हैं। जितने रत्नके पहाड और सोना आदि जितने रत्न है सब उसी सुमेरुके सम्बन्धीय है। भगवान् कुबेर वहीं उस रत्नका चौथा हिस्सा भोगते है, और सोलहवां हिस्सा मनुष्योंको देते है। (२२-२३)

मेरुकी उत्तर ओर सब ऋतुओंमें उत्पन्न फूलोंसे घिरा हुआ पत्थरोंके उत्तम चट्टानोंके द्वारा रमणीय और दिव्य कर्णिकार वन है॥ श्रीभूतभावन पशुपति दिव्य भूतगणोंको लेकर श्रीपार्वतीजीके साथ वहाँ विहार करते हैं॥ पैर तक लटकती हुई कर्णिकारकी माला पहिरे वह वहीं रहते हैं और उगते हुए तीन सूर्योंके समान उनके तीनों नेत्रोंसे तेज प्रकाश होता है। (२४-२६)

केवल बडे तपस्वी और सत्यवादी व्रतपरायण सिद्ध लोग ही उनका दर्शन पाते हैं; दुराचारी लोग उन्हें नहीं देख सकते है॥ हे नरनाथ! पुण्यात्मा लोगोंसे परिसेविता, शुभ, अपरिमित, विश्वरूपा, पुण्या, भागीरथी गङ्गा उसी मेरु पहाड के शिरसे दूधके समान साफ धारा

तत्र गच्छन्ति भद्रं ते सदा पर्वाणि पर्वणि ॥ २१ ॥
तस्यैव मूर्धन्युशनाः काव्यो दैत्यैर्महीपते ।
इमानि तस्य रत्नानि तस्येमे रत्नपर्वताः ॥ २२ ॥
तस्मात्कुबेरो भगवांश्चतुर्थं भागमश्नुते ।
ततः कलांशं वित्तस्य मनुष्येभ्यः प्रयच्छति ॥ २३ ॥
पार्श्वे तस्योत्तरे दिव्यं सर्वर्तुकुसुमैश्चितम् ।
कर्णिकारवनं रम्यं शिलाजालसमुद्गतम् ॥ २४ ॥
तत्र साक्षात्पशुपतिर्दिव्यैर्भूतैः समावृतः ।
उमासहायो भगवान्रमते भूतभावनः ॥ २५ ॥
कर्णिकारमयीं मालां बिभ्रत्पादावलम्बिनीम् ।
त्रिभिर्नेत्रैः कृतोद्योतस्त्रिभिः सूर्यैरिवोदितैः ॥ २६ ॥
तमुग्रतपसः सिद्धाः सुव्रताः सत्यवादिनः ।
पश्यन्ति न हि दुर्वृत्तैः शक्यो द्रष्टुं महेश्वरः ॥ २७ ॥
तस्य शैलस्य शिखरात्क्षीरधारा नरेश्वर ।
विश्वरूपाऽपरिमिता भीमानिर्घातनिःस्वना ॥ २८ ॥

है, । और सप्तर्षियोंके सहित प्रजापति कश्यप पर्वोंमें वहीं जाते है । (१८–२१)

हे महीपते ! इसी पहाडके शिखर प्रदेशपर कवियोंमे प्रधान, दैत्योंके गुरु दैत्योंको लेकर सदा क्रीडा करते रहते है। जितने रत्नके पहाड और सोना आदि जितने रत्न हैं सब उसी सुमेरुके सम्बन्धीय है ॥ भगवान् कुबेर वहीं उस रत्नका चौथा हिस्सा भोगते हैं, और सोलहवां हिस्सा मनुष्योंको देते है । (२२–२३)

मेरुकी उत्तर ओर सब ऋतुओंमें उत्पन्न फूलोंसे घिरा हुआ पत्थरोंके उत्तम चट्टानोंके द्वारा रमणीय और दिव्य कर्णिकार वन है ॥ श्रीभूतभावन पशुपति दिव्य भूतगणोंको लेकर श्रीपार्वतीजीके साथ वहीं विहार करते हैं॥ पैर तक लटकती हुई कर्णिकारकी माला पहिरे वह वहीं रहते हैं और उगते हुए तीन सूर्योंके समान उनके तीनों नेत्रोंसे तेज प्रकाश होता है । (२४–२६)

केवल वडे तपस्वी और सत्यवादी व्रतपरायण सिद्ध लोग ही उनका दर्शन पाते हैं; दुराचारी लोग उन्हें नहीं देख सकते है ॥ हे नरनाथ ! पुण्यात्मा लोगोंसे परिसेविता, शुभ, अपरिमित, विश्वरूपा, पुण्या, भागीरथी गङ्गा उसी मेरु पहाड के शिरसे दूधके समान साफ धारा

स्त्रियश्चोत्पलवर्णाभाः सर्वाः सुप्रियदर्शनाः ॥ ३६ ॥
निलात्परतरं श्वेतं श्वेताद्धैरण्यकं परम् ।
वर्षमैरावतं राजन्नानाजनपदावृतम् ॥ ३७ ॥
धनुःसंस्थे महाराज द्वे वर्षे दक्षिणोत्तरे ।
इलावृत्तं मध्यमं तु पञ्च वर्षाणि चैव हि ॥ ३८ ॥
उत्तरोत्तरमेतेभ्यो वर्षमुद्रिच्यते गुणैः ।
आयुःप्रमाणमारोग्यं धर्मतः कामतोऽर्थतः ॥ ३९ ॥
समन्वितानि भूतानि तेषु वर्षेषु भारत ।
एवमेषा महाराज पर्वतैः पृथिवी चिता ॥ ४० ॥
हेमकूटस्तु सुमहान्कैलासो नाम पर्वतः ।
यत्र वैश्रवणो राजन्गुह्यकैः सह मोदते ॥ ४१ ॥
अस्त्युत्तरेण कैलासं मैनाकं पर्वतं प्रति ।
हिरण्यशृङ्गः सुमहान्दिव्यो मणिमयो गिरिः ॥ ४२ ॥
तस्य पार्श्वे महद्दिव्यं शुभ्रं काञ्चनवालुकम् ।

महाबली होते हैं; स्त्रियां उत्पलपत्रके रङ्गकी और प्रियदर्शना होती है ॥ नील पर्वतके उत्तर श्वेतवर्ष हैं; श्वेतवर्षके उत्तर हैरण्यक वर्ष है; और उससे भी उत्तर विविध प्रकारके लोगोंसे निवसित ऐरावत वर्ष है। (३४—३७)

ऊपर कहे हुए सबसे उत्तरवाला ऐरावत वर्षका और ऊपर कहे हुए सबसे दक्षिण भारतवर्षका आकार धनुषके समान है। हे महाराज ! ऊपर कहे हुए श्वेत और हैरण्यक, दूसरा इलावृत वर्ष और ऊपर ही कहे हुए हरिवर्ष और हेमवत वर्ष, येही पांचों वर्ष बीचमें हैं; परन्तु सबके बीचमें इलावृत्त वर्ष है ॥ भारतवर्ष आदि सातों वर्षोंमें जैसे जैसे उत्तर जाइये वैसे वैसे क्रमानुसार धर्म, अर्थ, काम, आरोग्य और परमायुका परिमाण अधिक पाइएगा ॥ हे भारत ! इन सब वर्षोंके लोग आपसमें बहुत मित्रभाव रखते हैं। हे महाराज ! इसी तरहसे समूची पृथिवी पर्वतोंकी श्रेणियोंसे भरी है ॥ हे राजन् ! कैलास नाम करके जो बडा हेमकूट पहाड है, उसपर गुह्यकोंके साथ कुबेर आनंद किया करते है। (३८—४१)

कैलास पहाडके उत्तर मैनाक पहाडके समीप सोनेके शिखर वाला बहुत बडा दिव्य मणिमय पहाड है ॥ उसके पास सोनेकी बालूवाला रमणीय बडा शुभ, और दिव्य बिन्दु सरोवर उपस्थित है ॥

रम्यं बिन्दुसरो नाम यत्र राजा भगीरथः ॥ ४३ ॥
दृष्ट्वा भागीरथीं गङ्गामुवास बहुलाः समाः ।
यूपा मणिमयास्तत्र चैत्याश्चापि हिरण्मयाः ॥ ४४ ॥
तत्रेष्ट्वा तु गतः सिद्धिं सहस्राक्षो महायशाः ।
स्रष्टा भूतपतिर्यत्र सर्वलोकैः सनातन ॥ ४५ ॥
उपास्यते तिग्मतेजा यत्र भूतैः समन्ततः ।
नरनारायणौ ब्रह्मा मनुः स्थाणुश्च पञ्चमः ॥ ४६ ॥
तत्र दिव्या त्रिपथगा प्रथमं तु प्रतिष्ठिता ।
ब्रह्मलोकादपक्रान्ता सप्तधा प्रतिपद्यते ॥ ४७ ॥
वस्वौकसारा नलिनी पावनी च सरस्वती ।
जम्बूनदी च सीता च गङ्गा सिन्धुश्च सप्तमी ॥ ४८ ॥
अचिन्त्या दिव्यसङ्काशा प्रभोरेषैव संविधिः ।
उपासते यत्र सत्रं सहस्रयुगपर्यये ॥ ४९ ॥
दृश्यादृश्या च भवति तत्र तत्र सरस्वती ।
एता दिव्याः सप्त गङ्गास्त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥ ५० ॥
रक्षांसि वै हिमवति हेमकूटे तु गुह्यकाः ।

इसी स्थानमें गङ्गाजीका दर्शन पाकर राजा भगीरथ ने बहुत वर्षों तक वास किया था। इस जगह मणिमय यूप और हिरण्मय (सोनामय) चैत्य विद्यमान है। (४३—४४)

और सहस्राक्ष राजा इन्द्र यहीं यज्ञ करके सिद्धि लाभ करते हैं। यहां सब लोकोंके बनानेवाले, तिग्मतेजा, सनातन भूतपतिकी सब भूत उपासना करते हैं। यहीं नर, नारायण ब्रह्मा मनु और स्थाणु निवास करते हैं। त्रिपथगामिनी दिव्य गङ्गाजी ब्रह्मलोकसे निकल कर पहिले इसी स्थानमें आती हैं और वस्वौकसारा, नलिनी, पवित्रा, सरस्वती, जम्बूनदी सीता, गङ्गा और सिन्धु ये ही सातों नामकी सात धाराओंमें विभक्त होती है। (४५—४८)

विधाताने यहां अचिन्तनीय, दिव्य कान्तियुक्त सप्तविधा गङ्गाका विधान किया है। सहस्र युगके समयके बाद, जिस स्थानमें महर्षि, ऋषि, और देवता लोग यज्ञका अनुष्ठान करते हैं। उस स्थानमें सरस्वती कभी दृश्य होती है और कभी अदृश्यसी होती है। त्रैलोक्यमें विख्यात ये सात दिव्य गङ्गा हैं॥ हिमालयमें राक्षसलोग, हेमकूटमें गुह्यकलोग और

सर्पा नागाश्च निषधे गोकर्णं च तपोवनम् ॥ ५१ ॥
देवासुराणां सर्वेषां श्वेतपर्वत उच्यते ।
गन्धर्वा निषधे नित्यं नीले ब्रह्मर्षयस्तथा ।
शृङ्गवांस्तु महाराज देवानां प्रतिसञ्चरः ॥ ५२ ॥
इत्येतानि महाराज सप्त वर्षाणि भागशः ।
भूतान्युपनिविष्टानि गतिमन्ति ध्रुवाणि च ॥ ५३ ॥
तेषामृद्धिर्बहुविधा दृश्यते दैवमानुषी ।
अशक्या परिसंख्यातुं श्रद्धेया तु बुभूषता ॥ ५४ ॥
यां तु पृच्छसि मां राजन्दिव्यामेतां शशाकृतिम् ।
पार्श्वे शशस्य द्वे वर्षे उक्ते ये दक्षिणोत्तरे ।
कर्णौ तु नागद्वीपश्च काश्यपद्वीप एव च ॥ ५५ ॥
ताम्रपर्णशिलो राजञ्श्रीमान्मलयपर्वतः ।
एतद् द्वितीयं द्वीपस्य दृश्यते शशसंस्थितम् ॥ ५६ ॥ [२४७]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि भूम्यादिपरिमाणविवरणे षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- मेरोरथोत्तरं पार्श्वं पूर्वं चाऽऽचक्ष्व सञ्जय ।

निषध गिरिमें सर्प और नागलोग वास करते है । गोकर्ण पर्वत तपस्वीयोंका स्थान है ॥ और श्वेत पहाड देवताओं और असुरोंके निवासकी भूमि है । गन्धर्वलोग निषध पहाड पर और ब्रह्मर्षि लोग नील शैलपर नित्य रहते है । हे महाराज ! शृङ्गवान पहाडपर भी देवता लोग विहार करते है । ४९-५२

हे महाराज! विभागके हिसाबसे इन सातों वर्षका वर्णन किया; सातों वर्ष स्थावर जङ्गम और सर्वभूतोंकी आराम भूमि है ॥ यहा इतने देवता और मनुष्य रहते है, कि उनकी गिनती नहीं हो सकती । कल्याण चाहनेवाले यहा श्रद्धा करके रहते हैं ॥ हे महाराज ! आपने जो शशस्थानोंके विषयमें प्रश्न किया था सो उसकी बात मैंने इतनी कही; और उसकी दक्षिण ओर भारतवर्ष और उत्तर ओर ऐरावत वर्ष है, इन दोनों वर्षोंकी बात भी मैंने कह सुनाई । दूसरे नागद्वीप और काश्यपद्वीप, ये दोनों शशस्थानमें कर्ण स्वरूप है ॥ हे राजन् ! तांबेके पत्तेके समान शिलासे शुशोभित जो मलय पर्वत है, सो इस जम्बूद्वीपके शशस्थानका द्वितीय अवयव मालूम होता है। ५३-५६

भीष्मपर्वमें छः अध्याय समाप्त । [२४७]

भीष्मपर्वमें सात अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! मेरुकी

निखिलेन महाबुद्धे माल्यवन्तं च पर्वतम् ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच— दक्षिणेन तु नीलस्य मेरोः पार्श्वे तथोत्तरे।
उत्तराः कुरवो राजन्पुण्याः सिद्धनिषेविताः ॥ २ ॥
तत्र वृक्षा मधुफला नित्यपुष्पफलोपगाः।
पुष्पाणि च सुगन्धीनि रसवन्ति फलानि च ॥ ३ ॥
सर्वकामफलास्तत्र केचिद्वृक्षा जनाधिप।
अपरे क्षीरिणो नाम वृक्षास्तत्र नराधिप ॥ ४ ॥
ये क्षरन्ति सदा क्षीरं षड्रसं चाऽमृतोपमम्।
वस्त्राणि च प्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानि च ॥ ५ ॥
सर्वा मणिमयी भूमिः सूक्ष्मकाञ्चनवालुका।
सर्वर्तुसुखसंस्पर्शा निष्पङ्का च जनाधिप।
पुष्करिण्यः शुभास्तत्र सुखस्पर्शा मनोरमाः ॥ ६ ॥
देवलोकच्युताः सर्वे जायन्ते तत्र मानवाः।
शुक्लाभिजनसम्पन्नाः सर्वे सुप्रियदर्शनाः ॥ ७ ॥
मिथुनानि च जायन्ते स्त्रियश्चाऽप्सरसोपमाः।

उत्तर ओर और पूरब ओरका और माल्यवान पर्वतका वृत्तान्त विस्तार पूर्वक मुझे सुनादें। (१)

सञ्जय बोले, कि नीलगिरिके दक्षिण और मेरुके उत्तर सिद्धोंसे निवसित पवित्र उत्तर कुरु है॥ इस स्थानके पेडोंमें बहुत मीठे फल होते हैं, और पेडोंमें फूल फल नित्य निकलते हैं; सब फूल सुगन्धित और सब फल स्वादयुक्त होते हैं। हे नरनाथ! इस स्थानके वृक्षोंमें किसी किसी वृक्षमें इच्छानुसार फल होता है। क्षीरी नामके बहुतसे पेड हैं; उनमेंसे अमृतके ऐसे दूध और छः प्रकारके रस सदा बहते रहते हैं, और इसी पेडसे कपडे पैदा होते हैं॥ इन्हीं पेडोंके फलोंमे गहने उत्पन्न होते हैं। (२–५)

इस स्थानकी भूमि मणिमय है, और उसपर सोनेके छोटे छोटे बालू छिटे रहते है। यह स्थान सब ऋतुओंमें सुखस्पर्श रहता है, यहीं कीचड थोडाभी नहीं है और शुभ, सुखस्पर्श और मनोहर पुष्करिणी बहुत हैं॥ देवतालोकसे निकलने पर मनुष्योंका यहां जन्म होता है। विशुद्ध आभिजात्य संपन्न और मानिगन प्रिय दर्शन होते हैं। वहीं एक समयमें युग्म (जोडा) कन्या पुत्रका उत्पन्न होना है। स्त्रियां अप्सराओंके

तेषां ते क्षीरिणां क्षीरं पिबन्त्यमृतसन्निभम् ॥ ८ ॥
मिथुनं जायते काले समं तच्च प्रवर्धते ।
तुल्यरूपगुणोपेतं समवेषं तथैव च ॥ ९ ॥
एवमेवाऽनुरूपं च चक्रवाकसमं विभो ।
निरामयाश्च ते लोका नित्यं मुदितमानसाः ॥ १० ॥
दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
जीवन्ति ते महाराज न चाऽन्योन्यं जहत्युत ॥ ११ ॥
भारुण्डा नाम शकुनास्तीक्ष्णतुण्डा महाबलाः ।
तान्निर्हरन्तीह मृतान्दरीषु प्रक्षिपन्ति च ॥ १२ ॥
उत्तराः कुरवो राजन्व्याख्यातास्ते समासतः ।
मेरोः पार्श्वमहं पूर्वं वक्ष्याम्यथ यथातथम् ॥ १३ ॥
तस्य मूर्धाभिषेकस्तु भद्राश्वस्य विशाम्पते ।
भद्रसालवनं यत्र कालाम्रश्च महाद्रुमः ॥ १४ ॥
कालाम्रस्तु महाराज नित्यपुष्पफलः शुभः ।
द्रुमश्च योजनोत्सेधः सिद्धचारणसेवितः ॥ १५ ॥
तत्र ते पुरुषाः श्वेतास्तेजोयुक्ता महाबलाः ।

समान होती हैं। वे सब पूर्वोक्त क्षीर वृक्षका अमृतके समान दूध पीकर रहते हैं॥ जौंए लडके लडकिया समान रूपसे बढती हैं। वे सब तुल्य रूप, तुल्य गुण, तुल्य वेष और चकवाके समान परस्पर प्रेममें बद्ध होते हैं। हे विभो! उन लोगों को कभी रोग नहीं होता,सदा आनन्दसे रहते हैं। (६–१०)

हे महाराज! वहां लोग ११ हजार बरस जीते है, और सहोदर रहनेके कारण एक दूसरेको परित्याग नहीं करता॥ तीक्ष्णतुण्ड विशिष्ट बडे बलवान् भारुण्ड नामके पक्षी वहा होते हैं. वे मुरदोंको पकडकर पहाडकी गुफाओंमें लेजाते हैं॥ हे महाराज! उत्तर कुरुका यह वृत्तान्त संक्षेप रूपमे कहा है। (११–१३)

अब मेरुकी पूरब ओरकी बात यथा-वत् कहते हैं॥ हे प्रजापाल! मेरुके पूरब ओर भद्राश्व मुख्य स्थान है। इस स्थानमें भद्रसाल वन और कालाम्र नामका एक बडा पेड है॥ महाराज! वह कालाम्र पेड चार कोस उंचा, नित्य फूल फलसे भरा, शुभ करनेवाला और सिद्ध चारण लोगोंमे परिसेवित है। (१३—१५)

यहांके लोग बडे बलवान्, तेजस्वी

स्त्रियः कुमुदवर्णाश्च सुन्दर्यः प्रियदर्शनाः ॥ १६ ॥
चन्द्रप्रभाश्चन्द्रवर्णाः पूर्णचन्द्रनिभाननाः ।
चन्द्रशीतलगात्र्यश्च नृत्यगीतविशारदाः ॥ १७ ॥
दशवर्षसहस्राणि तत्राऽऽयुर्भरतर्षभ ।
कालाम्ररसपीतास्ते नित्यं संस्थितयौवनाः ॥ १८ ॥
दक्षिणेन तु नीलस्य निषधस्योत्तरेण तु ।
सुदर्शनो नाम महाञ्जम्बूवृक्षः सनातनः ॥ १९ ॥
सर्वकामफलः पुण्यः सिद्धचारणसेवितः ।
तस्य नाम्ना समाख्यातो जम्बुद्वीपः सनातनः ॥ २० ॥
योजनानां सहस्रं च शतं च भरतर्षभ ।
उत्सेधो वृक्षराजस्य दिवस्पृङ् मनुजेश्वर ॥ २१ ॥
अरत्नीनां सहस्रं च शतानि दश पञ्च च ।
परिणाहस्तु वृक्षस्य फलानां रसभेदिनाम् ॥ २२ ॥
पतमानानि तान्युर्वी कुर्वन्ति विपुलं स्वनम् ।
मुञ्चन्ति च रसं राजन्तस्मिन्रजतसन्निभम् ॥ २३ ॥
तस्या जम्ब्वाः फलरसो नदी भूत्वा जनाधिप ।
मेरुं प्रदक्षिणं कृत्वा सम्प्रयात्युत्तरान्कुरून् ॥ २४ ॥

और गोरे होते हैं। स्त्रियां कुमुदके रङ्गकी, सुन्दरी और प्रिय देखनेवाली होती हैं। उनकी कान्ति चन्द्रमाके समान, [illegible] पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान, चन्द्रमाके समान शीतल शरीर और वह नाचने गानेकी विद्यामें निपुण होती हैं। हे कुरुनन्दन! उन लोगोंकी परमायु दस हजार वर्षकी होती है और वे लोग कालाम्रका रस पीकर चिरकाल तक [illegible] रहते हैं॥ (१६-१८)

नीलके दक्षिण और निषधके उत्तर सुदर्शन नामका एक बडा जामुनका पेड है। वह वृक्ष सर्वकालमें समान रहता है॥ वह सिद्धचारण लोगोंसे सेवित है। यह पवित्र पेड सर्वकालमें फलता है उसी जामुनके पेडके लिये यह द्वीप जम्बुद्वीपके नामसे आजतक प्रसिद्ध है॥ हे भरतनन्दन मनुजेश्वर! यह पेड ग्यारह सौ योजन उंचा होकर आकाशको छूता है॥ उसके रसभेदी फल ढाई हजार अरत्निके होते हैं। १९-२२

जब वह पृथ्वीमें गिरता है, तब बडा शब्द होता है, और उससेंसे रजतके समान रस बहता है॥ उस जामुनके

तत्र तेषां मनःशान्तिर्न पिपासा जनाधिप ।
तस्मिन्फलरसे पीते न जरा बाधते च तान् ॥ २५ ॥
तत्र जाम्बूनदं नाम कनकं देवभूषणम् ।
इन्द्रगोपकसङ्काशं जायते भास्वरं तु तत् ॥ २६ ॥
तरुणादित्यवर्णाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ।
तथा माल्यवतः शृङ्गे दृश्यते हव्यवाट् सदा ॥ २७ ॥
नाम्ना संवर्त्तको नाम कालाग्निर्भरतर्षभ ।
तथा माल्यवतः शृङ्गे पूर्वपूर्वानुगुण्डिका ॥ २८ ॥
योजनानां सहस्राणि पञ्च षण्माल्यवानथ ।
महारजतसङ्काशा जायन्ते तत्र मानवाः ॥ २९ ॥
ब्रह्मलोकच्युताः सर्वे सर्वे सर्वेषु साधवः ।
तपस्तप्यन्ति ते तीव्रं भवन्ति ह्यूर्ध्वरेतसः ।
रक्षणार्थं तु भूतानां प्रविशन्ते दिवाकरम् ॥ ३० ॥
षष्टिस्तानि सहस्राणि षष्टिरेव शतानि च ।
अरुणस्याऽग्रतो यान्ति परिवार्य दिवाकरम् ॥ ३१ ॥
षष्टिं वर्षसहस्राणि षष्टिमेव शतानि च ।
आदित्यतापनप्तास्ते विशन्ति शशिमण्डलम् ॥ ३२ ॥[२७९]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डनिर्माणपर्वणि माल्यवद्वर्णने सप्तमोऽध्याय ॥ ७ ॥

रससे नदी निकलकर मेरुको प्रदक्षिण करती हुई उत्तर कुरुमें चली जाती है ॥ उस फलके रसको पीनेसे थकावट नहीं रहती है, प्यास बुझ जाती है और बुढापेका दुःख भोगना नहीं पडता है ॥ इस जगह उज्वल कान्तिका, इन्द्रगोपके समान जाम्बूनद नामका देवभूषण एक कनक उत्पन्न होता है ॥ वहीं लोगोके शरीरकी शोभा तरुण सूर्यके समान होती है । (२३-२७)

हे भरतनन्दन ! माल्यवान पहाडके शिखरपर संवर्त्तक नामकी कालाग्नि आग सदा दीख पडती है । इस पहाडका परिमाण ११ हजार योजन है और उसके पूर्व शृङ्ग पर छोटे छोटे पहाड पूरबकी ओर व्याप्त है । यहां सोनाकी कान्तिके समान कान्तिके लोग जन्म लेते है ॥ वे सब ब्रह्मलोकसे निकाले हुए ब्रह्मवादी कठोर तपश्चर्या करते है और ऊर्ध्वरेता होते है, और प्राणियोंके रक्षण के लिये सूर्यके समीप प्रवेश करते है ॥ वेही छासठ हजार पुरुष सूर्यको घेर कर

एकं मणिमयं तत्र तथैकं रौक्ममद्भुतम् ।
सर्वरत्नमयं चैकं भवनैरुपशोभितम् ॥ ९ ॥
तत्र स्वयम्प्रभा देवी नित्यं वसति शाण्डिली ।
उत्तरेण तु शृङ्गस्य समुद्रान्ते जनाधिप ॥ १० ॥
वर्षमैरावतं नाम तस्माच्छृङ्गमतः परम् ।
न तत्र सूर्यस्तपति न जीर्यन्ते च मानवाः ॥ ११ ॥
चन्द्रमाश्च सनक्षत्रो ज्योतिर्भूत इवाऽऽवृतः ।
पद्मप्रभाः पद्मवर्णाः पद्मपत्रनिभेक्षणाः ॥ १२ ॥
पद्मपत्रसुगन्धाश्च जायन्ते तत्र मानवाः ।
अनिष्यन्दा इष्टगन्धा निराहारा जितेन्द्रियाः ॥ १३ ॥
देवलोकच्युताः सर्वे तथा विरजसो नृप ।
त्रयोदश सहस्राणि वर्षाणां ते जनाधिप ॥ १४ ॥
आयुःप्रमाणं जीवन्ति नरा भरतसत्तम ।
क्षीरोदस्य समुद्रस्य तथैवोत्तरतः प्रभुः ।
हरिर्वसति वैकुण्ठः शकटे कनकामये ॥ १५ ॥
अष्टचक्रं हि तद्यान भूतयुक्तं मनोजवम् ।

शृङ्ग हैं ॥ एक मणिमय, एक अद्भुत सुवर्णमय और तीसरा सब रत्नोंसे भरा हुआ और अच्छे अच्छे मकानोंसे सुशोभित है॥ वहां स्वयंप्रभा शाण्डिली देवी नित्य निवास करती है। (९-१०)

शृङ्गवान् गिरिसे उत्तर समुद्र तक ऐरावत नाम वर्ष है । उसके पास उतने महिमासे युक्त शृङ्गवान पहाडके रहनेसे यह इतना श्रेष्ठ कहा गया है। वहां सूर्यका ताप नहीं होता है; मनुष्योंको बुढापा नहीं होता है; सब नक्षत्रोंसे घिरे चन्द्रमा वहीं मानो ज्योतिःस्वरूप होकर रहते हैं । वहां पद्मपलाश लोचन, पद्मवर्ण, पद्मके समान शोभायमान और पद्मदलके समान सुगन्धित मनुष्य उत्पन्न होते हैं । वे सब देवताओंके समान पसीनेसे रहित, इष्टगन्धान्वित, विना आहारके जीने वाले, जितेन्द्रिय, निष्पाप और देवलोकसे च्युत होते हैं । हे भरत सत्तम ! वे सब तेरह हजार वर्ष तक जीते हैं ॥ (१०—१५)

हे जनाधिप! वैसे ही क्षीरोदसमुद्रके उत्तर कनकमय शकटमें वैकुण्ठ प्रभु हरि वास करते हैं ॥ उस शकटमें आठ पहिये हैं । भूतोंसे घिरा, मनके समान शीघ्रगामी, अग्निवर्ण, महा तेजः सम्पन्न, और

अग्निवर्णं महातेजा जाम्बूनदविभूषितम् ॥ १६ ॥
स प्रभुः सर्वभूतानां विभुश्च भरतर्षभ ।
संक्षेपो विस्तरश्चैव कर्त्ता कारयिता तथा ॥ १७ ॥
पृथिव्यापस्तथाऽऽकाशं वायुस्तेजश्च पार्थिव ।
स यज्ञः सर्वभूतानामास्यं तस्य हुताशनः ॥ १८ ॥
वैशम्पायन उवाच एवमुक्तः सञ्जयेन धृतराष्ट्रो महामनाः ।
ध्यानमन्वगमद्राजन्पुत्रान्प्रति जनाधिप ॥ १९ ॥
स विचिन्त्य महातेजाः पुनरेवाऽब्रवीद्वचः ।
असंशयं सूतपुत्र कालः संक्षिपते जगत् ॥ २० ॥
सृजते च पुनः सर्वं नेह विद्यति शाश्वतम् ।
नरो नारायणश्चैव सर्वज्ञः सर्वभूतहृत् ॥ २१ ॥
देवा वैकुण्ठमित्याहुर्नरा विष्णुमिति प्रभुम् ॥ २२ ॥ [३०१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि
जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- यदिदं भारतं वर्षं यत्रेदं मूर्च्छितं बलम् ।
यत्राऽतिमात्रलुब्धोऽयं पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ १ ॥

यत्र गृद्धाः पाण्डुपुत्रा यत्र मे सज्जते मनः ।
एतन्मे तत्त्वमाचक्ष्व त्वं हि मे बुद्धिमान्मतः ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच— न तत्र पाण्डवा गृद्धा शृणु राजन्वचो मम ।
गृद्धो दुर्योधनस्तत्र शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ३ ॥
अपरे क्षत्रियाश्चैव नानाजनपदेश्वराः ।
ये गृद्धा भारते वर्षे न मृष्यन्ति परस्परम् ॥ ४ ॥
अत्र ते कीर्तयिष्यामि वर्षं भारत भारतम् ।
प्रियमिन्द्रस्य देवस्य मनोर्वैवस्वतस्य च ॥ ५ ॥
पृथोस्तु राजन्वैन्यस्य तथेक्ष्वाकोर्महात्मनः ।
ययातेरम्बरीषस्य मान्धातुर्नहुषस्य च ॥ ६ ॥
तथैव मुचुकुन्दस्य शिवेरौशीनरस्य च ।
ऋषभस्य तथैलस्य नृगस्य नृपतेस्तथा ॥ ७ ॥
कुशिकस्य च दुर्धर्ष गाधेश्चैव महात्मनः ।
सोमकस्य च दुर्धर्ष दिलीपस्य तथैव च ॥ ८ ॥
अन्येषां च महाराज क्षत्रियाणां बलीयसाम् ।
सर्वेषामेव राजेन्द्र प्रियं भारत भारतम् ॥ ९ ॥
तत्ते वर्षं प्रवक्ष्यामि यथायथमरिन्दम ।

दुर्योधन अत्यन्त लोभी और पाण्डव लोलुप हो रहे हैं, और हमारा मन भी मग्न हो रहा है, उसका यथार्थ विवरण आप विस्तार पूर्वक मुझे सुनाइये क्योंकि मैं समझता हूं, कि आप इस विषयमें विज्ञ हैं। (१—२)

सञ्जय बोले. महाराज ! मेरी बात सुनिये. पाण्डवोंको भारतवर्षका लोभ नहीं है। दुर्योधन. सुबलनन्दन शकुनि और अन्यान्य क्षत्रिय राजा लोग ही इस भारतवर्षके लिये लुब्ध हुए हैं। ये लोग इसी लिये एक दूसरेको क्षमा नहीं करते है ॥ (३—४)

इस भारतवर्षका विवरण मैं आपके समीप कहता हूं सुनिये। यह भारतवर्ष इन्द्र देवताका प्रिय है. और वैवस्वत मनु, ॥ वेनपुत्र पृथु, महात्मा इक्ष्वाकु. ययाति. अम्बरीष. मान्धाता, नहुष, ॥ मुचुकुन्द. उशीनरपुत्र शिबि, ऋषभ, ऐल. नृग, ॥ कुशिक, महात्मा गाधि, सोमक, राजर्षि दिलीप आदि राजा और अन्यान्य बलिष्ठ महात्मा क्षत्रियोंका भी प्रिय है ॥ हे अरिन्दम! आपने जो मुझ से इस भारतवर्षकी कथा पूछी, सो

शृणु मे गदतो राजन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥ १० ॥
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षवानपि ।
विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तैते कुलपर्वताः ॥ ११ ॥
तेषां सहस्रशो राजन्पर्वतास्ते समीपतः ।
अविज्ञाताः सारवन्तो विपुलाश्चित्रसानवः ॥ १२ ॥
अन्ये ततोऽपरिज्ञाता ह्रस्वा ह्रस्वोपजीविनः ।
आर्या म्लेच्छाश्च कौरव्य तैर्मिश्राः पुरुषा विभो॥ १३॥
नदीं पिबन्ति विपुलां गङ्गां सिन्धुं सरस्वतीम् ।
गोदावरीं नर्मदां च बाहुदां च महानदीम् ॥ १४ ॥
शतद्रुं चन्द्रभागां च यमुनां च महानदीम् ।
दृषद्वतीं विपाशां च विपापां स्थूलवालुकाम् ॥ १५ ॥
नदीं वेत्रवतीं चैव कृष्णवेणां च निम्नगाम् ।
इरावतीं वितस्तां च पयोष्णीं देविकामपि ॥ १६ ॥
वेदस्मृतां वेदवतीं त्रिदिवामिक्षुलां कृमिम् ।
करीषिणीं चित्रवहां चित्रसेनां च निम्नगाम् ॥ १७ ॥
गोमतीं धूतपापां च वन्दनां च महानदीम् ।
कौशिकीं त्रिदिवां कृत्यां निचितां लोहितारणीम्॥१८॥
रहस्यां शतकुम्भां च सरयूं च तथैव च ।

चर्मण्वतीं वेत्रवती हस्तिसोमां दिशं तथा ॥ १९ ॥
शरावतीं पयोष्णीं च वेणां भीमरथीमपि ।
कावेरीं चुलुकां चापि वाणीं शतबलामपि ॥ २० ॥
नीवारामहितां चापि सुप्रयोगां जनाधिप ।
पवित्रां कुण्डलीं सिन्धुं राजनीं पुरमालिनीम् ॥ २१॥
पूर्वाभिरामां वीरां च भीमामोघवतीं तथा ।
पाशाशिनीं पापहरां महेन्द्रां पाटलावतीम् ॥ २२ ॥
करीपिणीमसिक्नीं च कुशचीरां महानदीम् ।
मकरीं प्रवरां मेनां हेमां घृतवतीं तथा ॥ २३ ॥
पुरावतीमनुष्णां च शैब्यां कापीं च भारत ।
सदानीरामधृष्यां च कुशधारां महानदीम् ॥ २४ ॥
सदाकान्तां शिवां चैव तथा वीरवतीमपि ।
वस्त्रां सुवस्त्रां गौरीं च कम्पनां सहिरण्वतीम् ॥ २५ ॥
वरां वीरकरां चापि पञ्चमीं च महानदीम् ।
रथचित्रां ज्योतिरथां विश्वामित्रां कपिञ्जलाम् ॥ २६॥
उपेन्द्रां बहुलां चैव कुवीरामम्बुवाहिनीम् ।
विनदीं पिञ्जलां वेणां तुङ्गवेणां महानदीम् ॥ २७ ॥
विदिशां कृष्णवेणां च ताम्रां च कपिलामपि ।
खलुं सुवामां वेदाश्वां हरिश्रावां महापगाम् ॥ २८ ॥
शीघ्रां च पिच्छिलां चैव भारद्वाजीं च निम्नगाम् ।

वेत्रवती, हस्तिसोमा, दिश्, शरावती. पयोष्णी. वेणा, भीमरथी, कावेरी, चुलुका, वाणी. शतबला ॥ नीवारा, अहिता, सुप्रयोगा, पवित्रा, कुण्डली, सिन्धु, राजनी, पुरमालिनी, ॥ पूर्वाभिरामा, वीरा, भीमा, ओघवती, पाशाशिनी, पापहरा. महेन्द्रा, पाटलावती. करीपिणी, असिक्नी. कुशचीरा मकरी, प्रवरा, मेना, हेमा. घृतवती. पुरावती, अनुष्णा शैब्या. कापी, सदानीरा. अधृष्या. कुशधारा, ॥ सदाकान्ता. शिवा. वीरवती. वस्त्रा, सुवस्त्रा, गौरी, कम्पना, हिरण्वती, वरा. वीरकरा, पञ्चमी. रथचित्रा, ज्योतिरथा, विश्वामित्रा. कपिञ्जला ।। उपेन्द्रा, बहुला, कुवीरा. अम्बुवाहिनी, विनदी, पिञ्जला, वेणा, तुङ्गवेणा, विदिशा कृष्णवेणा, ताम्रा. कपिला खलु. सुवामा

उपावृत्तानुपावृत्ताः स्वराष्ट्राः केकयास्तथा ॥ ४८ ॥
कुन्दापरान्ता माहेयाः कक्षाः सामुद्रनिष्कुटाः ।
अन्ध्राश्च बहवो राजन्नन्तर्गिर्यास्तथैव च ॥ ४९ ॥
बहिर्गिर्याङ्गमलजा मगधा मानवर्जकाः ।
समन्तराः प्रावृषेया भार्गवाश्च जनाधिप ॥ ५० ॥
पुण्ड्रा भर्गाः किराताश्च सुदृष्टा यामुनास्तथा ।
शका निषादा निषधास्तथैवाऽऽनर्तनैर्ऋताः ॥ ५१ ॥
दुर्गालाः प्रतिमत्स्याश्च कुन्तलाः कोसलास्तथा ।
तीरग्रहाः शूरसेना ईजिकाः कन्यका गुणाः ॥ ५२ ॥
तिलभारा मसीराश्च मधुमन्तः सुकन्दकाः ।
काश्मीराः सिन्धुसौवीरा गान्धारा दर्शकास्तथा ॥ ५३ ॥
अभीसारा उलूताश्च शैवला बाह्लिकास्तथा ।
दार्वीचरा नवा दर्वा वातजामरथोरगाः ॥ ५४ ॥
बहुवाद्याश्च कौरव्य सुदामानः सुमल्लिकाः ।
वध्राः करीषकाश्चापि कुलिन्दोपत्यकास्तथा ॥ ५५ ॥
वनायवो दशा पार्श्वरोमाणः कुशबिन्दवः ।
कच्छा गोपालकक्षाश्च जाङ्गलाः कुरुवर्णकाः ॥ ५६ ॥
किराता बर्बराः सिद्धा वैदेहास्ताम्रलिप्तकाः ।
ओण्ड्रा म्लेच्छाः सैसिरिध्राः पार्वतीयाश्च मारिष ५७॥

अथाऽपरे जनपदा दक्षिणा भरतर्षभ ।
द्रविडाः केरलाः प्राच्या भूषिका वनवासिकाः ॥५८॥
कर्णाटका माहिषका विकल्पा मूषकास्तथा ।
झिल्लिकाः कुन्तलाश्चैव सौहृदा नभकाननाः ॥ ५९ ॥
कौकुट्टकास्तथा चोलाः कोङ्कणा मालवा नराः ।
समङ्गाः करकाश्चैव कुकुराङ्गारमारिषाः ॥ ६० ॥
ध्वजिन्युत्सवसङ्केतास्त्रिगर्त्ताः शाल्वसेनयः ।
व्यूकाः कोकवकाः प्रोष्ठाः समवेगवशास्तथा ॥ ६१ ॥
तथैव विन्ध्यचुलिकाः पुलिन्दा वल्कलैः सह ।
मालवा वल्लवाश्चैव तथैवाऽपरवल्लवाः ॥ ६२ ॥
कुलिन्दाः कालदाश्चैव कुण्डला करटास्तथा ।
मूषकास्तनवालाश्च सनीपा घटसृञ्जयाः ॥ ६३ ॥
अठिदापाः शिवाटाश्च तनया सुनयास्तथा ।
ऋषिका विदर्भा काकास्तङ्गणाः परतङ्गणाः ॥ ६४ ॥
उत्तराश्चाऽपरम्लेच्छाः क्रूरा भरतसत्तम ।
यवनाश्चीनकाम्बोजा दारुणा म्लेच्छजातयः ॥ ६५ ॥
सकृद्ग्रहाः कुलत्थाश्च हूणाः पारसिकैः सह ।
तथैव रमणाश्चीनास्तथैव दशमालिकाः ॥ ६६ ॥
क्षत्रियोपनिवेशाश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ।

और पार्वतीय ॥ (३८–५७)

हे भरतनन्दन ! अब दक्षिणदेशीय जनपदोंका नाम सुनिये । द्रविड, केरल, प्राच्य, भूषिक, वनवासिक ॥ कर्णाटक, महिषक, विकल्प, मूषक, झिल्लीक, कुन्तल सौहृद, नभकानन ॥ कोकुट्टक, चोल, कोङ्कण, मालव, नर, समङ्ग करक, कुकुर, अंगार, मारिष ॥ ध्वजिनी, उत्सव सङ्केत, त्रिगर्त्त, शाल्वसेनि, व्यूक, कोकवक, प्रोष्ठ समवेगवश ॥ विन्ध्य, चुलिक, पुलिन्द, वल्कल, मालव, वल्लव, अपरवल्लव ॥ कुलिन्द, कालद, कुण्डल, करट, मूषक, स्तनबाल, सनीप, घट, सृञ्जय, ॥ अठिदाप, शिवाट, तनय, सुनय, ऋषिक, विदर्भ, काक, तंगण और परतंगण ॥ (५८-६४)

महाराज ! अब और उत्तर देशोंकी कथा सुनिये । अपरम्लेच्छ, क्रूर, चीन, यवन, काम्बोज ॥ सकृद्ग्रह, कुलथ, हूण, पारसिक रमण, चीन और दशमालिक ।

कौशिकीं निम्नगां शोणां बाहुदामथ चन्द्रमाम् २९ ॥
दुर्गां चित्रशिलां चैव ब्रह्मवेध्यां बृहद्वतीम् ।
यवक्षामथ रोहीं च तथा जाम्बूनदीमपि ॥ ३० ॥
सुनसां तमसां दासीं वसामन्यां वराणसीम् ।
नीलां धृतवतीं चैव पर्णाशां च महानदीम् ॥ ३१ ॥
मानवीं वृषभां चैव ब्रह्ममेध्यां बृहद्धनीम् ।
एताश्चान्याश्च बहुधा महानद्यो जनाधिप ॥ ३२ ॥
सदानिरामयां कृष्णां मन्दगां मन्दवाहिनीम् ।
ब्राह्मणीं च महागौरीं दुर्गामपि च भारत ॥ ३३ ॥
चित्रोपलां चित्ररथां मंजुलां वाहिनीं तथा ।
मन्दाकिनीं वैतरणीं कोषां चापि महानदीम् ॥ ३४ ॥
शुक्तिमतीमनङ्गां च तथैव वृषसाह्वयाम ।
लोहित्यां करतोयां च तथैव वृषकाह्वयाम् ॥ ३५ ॥
कुमारीमृषिकुल्यां च मारिषां च सरस्वतीम् ।
मन्दाकिनीं सुपुण्यां च सर्वां गङ्गां च भारत ॥ ३६ ॥
विश्वस्य मातरः सर्वाः सर्वाश्चैव महाफलाः ।
तथा नद्यस्त्वप्रकाशाः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३७ ॥
इत्येताः सरितो राजन्समाख्याता यथास्मृति ।

अत ऊर्ध्वं जनपदान्निबोध गदतो मम ॥ ३८ ॥
तत्रेमे कुरुपाञ्चालाः शाल्वा माद्रेयजाङ्गलाः ।
शूरसेनाः पुलिन्दाश्च बोधा मालास्तथैव च ॥ ३९ ॥
मत्स्याः कुशल्याः सौशल्याः कुन्तयः कान्तिकोसलाः ।
चेदिमत्स्यकरूषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः ॥ ४० ॥
उत्तमाश्च दशार्णाश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
पञ्चालाः कोसलाश्चैव नैकपृष्ठा धुरन्धराः ॥ ४१ ॥
गोधा मद्रकलिङ्गाश्च काशयोऽपरकाशयः ।
जठराः कुकुराश्चैव सदशार्णाश्च भारत ॥ ४२ ॥
कुन्तयोऽवन्तयश्चैव तथैवाऽपरकुन्तयः ।
गोमन्ता मण्डकाः सण्डा विदर्भा रूपवाहिकाः॥४३॥
अश्मकाः पाण्डुराष्ट्राश्च गोपराष्ट्राः करीतयः ।
अधिराज्यकुशाद्याश्च मल्लराष्ट्रं च केवलम् ॥ ४४ ॥
वारवास्या यवाहाश्च चक्राश्चक्रातयः शकाः ।
विदेहा मगधाः स्वक्षा मलजा विजयास्तथा ॥ ४५ ॥
अङ्गा वङ्गाः कलिङ्गाश्च यकृल्लोमान एव च ।
मल्लाः सुदेष्णाः प्रह्लादा माहिकाः शशिकास्तथा॥४६॥
बाह्लिका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
अपरान्ताः परान्ताश्च पञ्चालाश्चर्मण्डलाः ॥ ४७ ॥
अटवीशिखराश्चैव मेरुभूताश्च मारिष ।

महाराज ! अब जनपदोंका नाम कहते है, सो सुनिये । कुरु, पाञ्चाल, शाल्व, माद्रेय, जाङ्गल, शूरसेन, पुलिन्द, बोध, माल, मत्स्य, कुशल्य, सौशल्य, कुन्ति, कान्ति, कोसल, चेदि, मत्स्य, करुष, भोज, सिंधु, पुलिन्दक, उत्तम दशार्ण, मेकल, उत्कल, पचाल कोसल, नैकपृष्ठ, धुरन्धर, गोध, मन्द्र कालिंग, काशी, अपरकाशी, जठर, कुकुर, दशार्ण, कुन्ति, अवन्ति, अपरकुन्ति, गोमन्त, मण्डक संड, विदर्भ, रूपवाहिक ॥ अश्मक, पाण्डुराष्ट्र, गोपराष्ट्र, करीति, अधिराज्य, कुशाद्य, केवल मल्लराष्ट्र, वारवास्य, यवाह, चक्र, चक्राति, शक, विदेह, मगध, स्वक्ष, मलज, विजय, अंग, वंग, कलिंग, यकृल्लोम, मल्ल सुदेष्ण, प्रह्लाद, माहिक शशिक बा-ल्हीक, वाटधान, आभीर, कालतोयक,

सान्ना भेदेन दानेन दण्डेनैव च भारत ॥ ७५ ॥
पिता भ्राता च पुत्राश्च खं द्यौश्च नरपुङ्गव।
भूमिर्भवति भूतानां सम्यगच्छिद्रदर्शना ॥ ७६ ॥ [३७७]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि जम्बूखण्डविनिर्माणपर्वणि भारतीयनदीदेशादिनामकथने नवमोऽध्याय ॥९॥

धृतराष्ट्र उवाच— भारतस्याऽस्य वर्षस्य तथा हैमवतस्य च।
प्रमाणमायुषः सूत बलं चापि शुभाशुभम् ॥ १ ॥
अनागतमतिक्रान्तं वर्त्तमानं च सञ्जय।
आचक्ष्व मे विस्तरेण हरिवर्षं तथैव च ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच— चत्वारि भारते वर्षे युगानि भरतर्षभ।
कृतं त्रेता द्वापरं च तिष्यं च कुरुवर्द्धन ॥ ३ ॥
पूर्वं कृतयुगं नाम ततस्त्रेतायुगं प्रभो।
संक्षेपाद् द्वापरस्याऽथ ततस्तिष्यं प्रवर्त्तते ॥ ४ ॥
चत्वारि तु सहस्राणि वर्षाणां कुरुसत्तम।
आयुःसंख्या कृतयुगे संख्याता राजसत्तम ॥ ५ ॥
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप।
द्वे सहस्रे द्वापरे तु भुवि तिष्ठन्ति साम्प्रतम् ॥ ६ ॥
न प्रमाणस्थितिर्ह्यस्ति तिष्येऽस्मिन्भरतर्षभ।
गर्भस्थाश्च म्रियन्तेऽत्र तथा जाता म्रियन्ति च ॥ ७ ॥

कुरु पाण्डव साम, भेद, दान, वा दण्ड द्वारा भूमि लेनेके लिये यत्न करते है॥ भूमि पर खूब ध्यान रखनेसे भूमि ही माता, पिता पुत्र आदिका आकाश और स्वर्गके समान अवलम्बन होती है॥ (७३-७६) [३७७]

भीष्मपर्वमें ९ अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें दस अध्याय।

धृतराष्ट्र बोले, हे सूत सञ्जय! हैमवतवर्ष, हरिवर्ष और यह भारतवर्षमें आयुःपरिमाण, बल, शुभ और अशुभ तथा भविष्य, भूत और वर्तमानके विषयमें आप सविस्तर कीर्तन करें। (१—२)

सञ्जय बोले, हे भारतेन्द्र! इस भारतवर्षमें सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि ये ही चार युग होते है॥ पहिले सत्य, तब त्रेता, उसके बाद द्वापर और सबके अन्तमें कलियुग होता है। मनुष्यकी आयुसंख्या सत्ययुगमें चार हजार वर्ष, त्रेता युगमें तीन हजार वर्ष और द्वापरमें दो हजार वर्ष, लेकिन कलियुगमें परमायुकी संख्या निरूपित नहीं है॥

अथ भूमिपर्व ।

धृतराष्ट्र उवाच—जम्बूखण्डस्त्वया प्रोक्तो यथावदिह सञ्जय ॥
विष्कम्भमस्य प्रब्रूहि परिमाणं तु तत्त्वतः ॥ १ ॥
समुद्रस्य प्रमाणं च सम्यगच्छिद्रदर्शनम् ॥
शाकद्वीपं च मे ब्रूहि कुशद्वीपं च सञ्जय ॥ २ ॥
शाल्मलिं चैव तत्त्वेन क्रौञ्चद्वीपं तथैव च ॥
ब्रूहि गावल्गणे सर्वं राहोः सोमार्कयोस्तथा ॥ ३ ॥
सञ्जय उवाच— राजन्सुबहवो द्वीपा यैरिदं सन्ततं जगत् ॥
सप्त द्वीपान्प्रवक्ष्यामि चन्द्रादित्यौ ग्रहं तथा ॥ ४ ॥
अष्टादशसहस्राणि योजनानि विशाम्पते ॥
षट्शतानि च पूर्णानि विष्कम्भो जम्बुपर्वतः ॥ ५ ॥
लावणस्य समुद्रस्य विष्कम्भो द्विगुणः स्मृतः ।
नानाजनपदाकीर्णो मणिविद्रुमचित्रितः ॥ ६ ॥
नैकधातुविचित्रैश्च पर्वतैरुपशोभितः ॥
सिद्धचारणसङ्कीर्णः सागरः परिमण्डलः ॥ ७ ॥
शाकद्वीपं च वक्ष्यामि यथावदिह पार्थिव ॥

इस भारतवर्षसे हेमवतवर्षमें गुण अधिक होता है; और उसमे भी हरिवर्षमें गुण अधिक होता है । (१२–१५)[३९८]

दस अध्याय और जम्बूखण्डविनिर्माण पर्व समाप्त ।

भीष्मपर्वमें ग्यारह अध्याय और भूमि पर्व ।

धृतराष्ट्र बोले. हे गवल्गणपुत्र सूत सम्यग्दर्शी सञ्जय! आपने जम्बूखण्डका विवरण यथावत वर्णन किया. अब उसका विस्तार और परिमाण यथार्थ मुझे कहिये ॥ और समुद्रका परिमाण शाकद्वीप. कुशद्वीप, शाल्मलिद्वीप, क्रौञ्चद्वीप. राहु. चन्द्र और सूर्यके विषयमें ठीक ठीक सब बातें कहिये । (१–३)

सञ्जय बोले, हे महाराज ! जिनके द्वारा यह जगत् विस्तारित हुआ है; वैसे बहुतसे द्वीप है। उनमेसे सातो द्वीप और चन्द्र सूर्य और राहुके विषयमें मै कहता हूं, आप सुनिये ! (४)

हे नराधिप ! जम्बूपहाडका अठारह हजार छःसौ योजन विस्तार है । इससे द्विगुण क्षार समुद्रका विस्तार है । इस क्षार समुद्रमें बहुतसे जनपद है. इसमें मणि और प्रवालके बहुत विचित्र विचित्र पेड है । वह समुद्र अनेक धातुओंसे सङ्कीर्ण है. नानापर्वतोंसे शोभित सिद्ध चारणोंसे सङ्कीर्ण और गोलाकार है ॥

ततः परेण कौरव्य जलधारो महागिरिः ॥ १६ ॥
ततो नित्यमुपादत्ते वासवः परमं जलम् ।
ततो वर्षं प्रभवति वर्षकाले जनेश्वर ॥ १७ ॥
उच्चैर्गिरी रैवतको यत्र नित्यं प्रतिष्ठिता ।
रेवती दिवि नक्षत्रं पितामहकृतो विधिः ॥ १८ ॥
उत्तरेण तु राजेन्द्र श्यामो नाम महागिरिः ।
नवमेघप्रभः प्रांशुः श्रीमानुज्ज्वलविग्रहः ॥ १९ ॥
यतः श्यामत्वमापन्नाः प्रजा जनपदेश्वर ।

धृतराष्ट्र उवाच— सुमहान्संशयो मेऽद्य प्रोक्तोऽयं सञ्जय त्वया ॥ २० ॥
प्रजाः कथं सूतपुत्र सम्प्राप्ताः श्यामतामिह ।

सञ्जय उवाच— सर्वेष्वेव महाराज द्वीपेषु कुरुनन्दन ॥ २१ ॥
गौरः कृष्णश्च पतगस्तयोर्वर्णान्तरे नृप ।
श्यामो यस्मात्प्रवृत्तो वै तस्माच्छ्यामो गिरिः स्मृतः ॥ २२ ॥
ततः परं कौरवेन्द्र दुर्गशैलो महोदयः ।
केसरः केसरयुतो यतो वातः प्रवर्त्तते ॥ २३ ॥
तेषां योजनविष्कम्भो द्विगुणः प्रविभागशः ।

है ॥ उससे मेघ उत्पन्न होकर चारों ओर फैलते है । उसके बाद जलधार गिरि नामका पहाड है ॥ इन्द्र इसी पहाडसे प्रतिदिन अच्छा पानी ग्रहण करते है; और वर्षाकालमें बरसाते है ॥ (१४–१७)

रैवतक पर्वत के ऊपर रेवती नक्षत्र नित्य रहता है । पितामह ब्रह्माकी यह सृष्टि बहुत दिनसे विदित है ॥ हे राजेन्द्र ! इसके उत्तरमें श्याम नामक महागिरि है, वह नये मेघके समान ज्योतिमान, ऊंचा, सुन्दर शोभायमान और उज्वल है ॥ इस पहाडका रंग श्याम है, इसी लिये यहांके लोग भी सांवले होते है । (१८—२०)

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! आपने जो कहा उससे हमे इसी समय एक भारी संशय हुआ है, वहाके लोग क्यों सांवले होते है । (२०—२१)

सञ्जय बोले, हे कुरुनन्दन ! सब द्वीपोंमे लोग गोरे, काले इन दोनों रंगोंके मिले हुए रंगके होते है, पर इस गिरिके लोग केवल सांवले होते है; और इसी लिये इस गिरिको श्याम गिरि कहते है ॥ इसके बाद महीधर दुर्ग शैल है, और तब केसरी पर्वत है । वायु केसर युक्त होकर इसी केसरी गिरिसे बहता है ॥ इसके

महानदी च कौरव्य तथा मणिजला नदी ॥ ३२ ॥
चक्षुर्वर्धनिका चैव नदी भरतसत्तम ।
तत्र प्रवृत्ताः पुण्योदा नद्यः कुरुकुलोद्वह ॥ ३३ ॥
सहस्राणां शतान्येव यतो वर्षति वासवः ।
न तासां नामधेयानि परिमाणं तथैव च ॥ ३४ ॥
शक्यन्ते परिसंख्यातुं पुण्यास्ता हि सरिद्वराः ।
तत्र पुण्या जनपदाश्चत्वारो लोकसम्मताः ॥ ३५ ॥
मङ्गाश्च मशकाश्चैव मानसा मन्दगास्तथा ।
मङ्गा ब्राह्मणभूयिष्ठाः स्वकर्मनिरता नृप ॥ ३६ ॥
मशकेषु तु राजन्या धार्मिकाः सर्वकामदाः ।
मानसाश्च महाराज वैश्यधर्मोपजीविनः ॥ ३७ ॥
सर्वकामसमायुक्ताः शूरा धर्मार्थनिश्चिताः ।
शूद्रास्तु मन्दगा नित्यं पुरुषा धर्मशीलिनः ॥ ३८ ॥
न तत्र राजा राजेन्द्र न दण्डो न च दाण्डिकः ।
स्वधर्मेणैव धर्मज्ञास्ते रक्षन्ति परस्परम् ॥ ३९ ॥
एतावदेव शक्यं तु तत्र द्वीपे प्रभाषितुम् ।

बहुत दूर तक बहती है; और सुकुमारी, कुमारी, शीताशी, वेणिका, महानदी, मणिजला और चक्षुवर्धनिका आदि लाखों नदियां पवित्र पानीवाली वहां है ॥ देवताओंके राजा इन्द्र इन नदियोंसे पानी लेकर बरसाते हैं । इन सब नदियोंका नाम बताना वा उनका परिमाण करना असम्भव है ॥ (२०–३४)

वे सब नदियां प्रधान और पुण्य देने वाली है । हे महाराज ! इस शाकद्वीपमें मग, मशक, मानस और मन्दग ये ही चार पुण्य देनेवाले लोक हैं । मगदेशमें बहुतसे ब्राह्मण अपने कर्ममें निरत रहते हैं ॥ मशक देशमें सब कामना देनेवाले धार्मिक क्षत्रिय लोग निवास करते है । हे महाराज ! मानस जनपदोंमें सब अभिलाषाओंसे पूर्ण धर्मात्मा, अपने धर्ममें जीते हुए शूर वैश्यलोग रहते हैं । और मन्दग भूमिमें धर्मशील, पौरुष-सम्पन्न शूद्र जाति सदा रहती है ॥ (३५–३८)

हे राजेन्द्र ! उस देशमें राजा नहीं है; दण्ड नहीं है और दण्डपानेके योग्य लोग भी नहीं है । वहांकी प्रजा स्वयं अपने अपने धर्मके अनुसार एक दूसरे की रक्षा करती है ॥ उस शाकद्वीपके

एतदेव च श्रोतव्यं शाकद्वीपे महौजसि ॥ ४० ॥ [४३२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्या संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि शाकद्वीपवर्णने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सञ्जय उवाच— उत्तरेषु च कौरव्य द्वीपेषु श्रूयते कथा ।
एवं तत्र महाराज ब्रुवतश्च निबोध मे ॥ १ ॥
घृततोयः समुद्रोऽत्र दधिमण्डोदकोऽपरः ।
सुरोदः सागरश्चैव तथाऽन्यो जलसागरः ॥ २ ॥
परस्परेण द्विगुणाः सर्वे द्वीपा नराधिप ।
पर्वताश्च महाराज समुद्रैः परिवारिताः ॥ ३ ॥
गौरस्तु मध्यमे द्वीपे गिरिर्मानःशिलो महान् ।
पर्वतः पश्चिमे कृष्णो नारायणसखो नृप ॥ ४ ॥
तत्र रत्नानि दिव्यानि स्वयं रक्षति केशवः ।
प्रसन्नश्चाऽभवत्तत्र प्रजानां व्यदधत्सुखम् ॥ ५ ॥
कुशस्तम्बः कुशद्वीपे मध्ये जनपदैः सह ।
सम्पूज्यते शाल्मलिश्च द्वीपे शाल्मलिके नृप ॥ ६ ॥
क्रौञ्चद्वीपे महाक्रौञ्चो गिरी रत्नचयाकरः ।
सम्पूज्यते महाराज चातुर्वर्ण्येन नित्यदा ॥ ७ ॥

विषयमें इतनी ही बातें कही जासकती है और इतनी ही सुननी उचित भी है ॥ (३९-४०) [४३२]

भीष्मपर्वमें ग्यारह अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें बारह अध्याय ।

इतनी कथा कहके सञ्जय बोले, हे महाराज ! उत्तर प्रदेशीय द्वीपोंकी कथा जहां तक मैने सुनी है सो कहता हूं आप चित्त लगाकर सुनें ॥ इन सब द्वीपोंके पास घीका समुद्र, दहीका समुद्र, मदिराका समुद्र, और दूसरा जलका समुद्र है ॥ हे नराधिप ! उन सब द्वीपोंमें क्रमसे पहले द्वीपसे दूसरा द्विगुण परिमाण का है, और पर्वत सब भी समुद्रोंसे घिरे है ॥ बीचवाले द्वीपोंमें सब धातुओंसे भरा हुआ मनःशिला का गौर नामक गिरि है; पश्चिम वाले द्वीपमें नारायणका प्रिय कृष्ण पर्वत है ॥ (१-४)

वहां स्वयं केशव प्रजाओंके सुखके लिये प्रसन्न होकर दिव्य रत्नोंकी रक्षा करते है ॥ कुशद्वीपमें जनपदोंके बीचवाले कुशस्तम्बकी, शाल्मली द्वीपमें शाल्मली वृक्षकी, और क्रौञ्चद्वीपमें सब रत्नोंकी खानवाली क्रौञ्चगिरिकी सब

गोमन्तः पर्वतो राजन्सुमहान्सर्वधातुकः ।
यत्र नित्यं निवसति श्रीमान्कमललोचनः ॥ ८ ॥
मोक्षिभिः सङ्गतो नित्यं प्रभुर्नारायणो हरिः ।
कुशद्वीपे तु राजेन्द्र पर्वतो विद्रुमैश्चितः ॥ ९ ॥
स्वनामनामा दुर्द्धर्षो द्वितीयो हेमपर्वतः ।
द्युतिमान्नाम कौरव्य तृतीयः कुमुदो गिरिः ॥ १० ॥
चतुर्थः पुष्पवान्नाम पञ्चमस्तु कुशेशयः ।
षष्ठो हरिगिरिर्नाम षडेते पर्वतोत्तमाः ॥ ११ ॥
तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः सर्वभागशः ।
औद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् ॥ १२ ॥
तृतीयं सुरथाकारं चतुर्थं कम्बलं स्मृतम् ।
धृतिमत्पञ्चमं वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ॥ १३ ॥
सप्तमं कापिलं वर्षं सप्तैते वर्षलम्भकाः ।
एतेषु देवगन्धर्वाः प्रजाश्च जगतीश्वर ॥ १४ ॥
विहरन्ते रमन्ते च न तेषु म्रियते जनः ।
न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्योऽपि वा नृप ॥ १५ ॥

प्रजा पूजा करती है।" हे राजेन्द्र! कुश द्वीपमें गोमन्त नामका एक पहाड है। यह बहुत बडा है और इसमें सब धातु पाये जाते हैं, इसीपर श्रीमान् प्रभु नारायण कमललोचन हरि मोक्ष पाये हुए लोगोंको सङ्ग लेकर सदा निवास करते हैं। (५-९)

हे राजश्रेष्ठ! कुशद्वीपमें प्रवालोंसे युक्त आरोहण के लिये दुर्गम, कुश नामक पर्वत है दूसरा सुवर्णका द्युतिमान् नामका पहाड है, तीसरा कुमुदगिरि, चौथा पुष्पवान् शैल, पांचवां कुशेशय, और छठा हरिगिरि नामका पहाड है। येही छओं पहाड प्रधान हैं॥ उन सबके बीचका स्थान एक दूसरेसे द्विगुण है। (९-१२)

सबसे पहिले औद्भिद वर्ष, दूसरा वेणु-मण्डल वर्ष, तीसरा सुरथाकार वर्ष, चौथा कम्बल वर्ष, पांचवां धृतिमत् वर्ष, छठा प्रभाकर वर्ष, और सातवां कापिल वर्ष, येही सातों वर्ष लम्भक पहाड है॥ हे पृथिवीश्वर! देव गन्धर्व अन्यान्य प्रजा लोग इन सब वर्षोंमें विहार करते हैं, रमते हैं और किसीको भी मृत्युका भय नहीं रहता है। हे नृप! वहां म्लेच्छ जाति और दस्युवृत्तिके लोग नहीं हैं॥

एतदेव च श्रोतव्यं शाकद्वीपे महौजसि ॥ ४० ॥ [४३२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्या संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि
शाकद्वीपवर्णने एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

सञ्जय उवाच— उत्तरेषु च कौरव्य द्वीपेषु श्रूयते कथा ।
एवं तत्र महाराज ब्रुवतश्च निबोध मे ॥ १ ॥
घृततोयः समुद्रोऽत्र दधिमण्डोदकोऽपरः ।
सुरोदः सागरश्चैव तथाऽन्यो जलसागरः ॥ २ ॥
परस्परेण द्विगुणाः सर्वे द्वीपा नराधिप ।
पर्वताश्च महाराज समुद्रैः परिवारिताः ॥ ३ ॥
गौरस्तु मध्यमे द्वीपे गिरिर्मानःशिलो महान् ।
पर्वतः पश्चिमे कृष्णो नारायणसखो नृप ॥ ४ ॥
तत्र रत्नानि दिव्यानि स्वयं रक्षति केशवः ।
प्रसन्नश्चाऽभवत्तत्र प्रजानां व्यदधत्सुखम् ॥ ५ ॥
कुशस्तम्बः कुशद्वीपे मध्ये जनपदैः सह ।
सम्पूज्यते शाल्मलिश्च द्वीपे शाल्मलिके नृप ॥ ६ ॥
क्रौञ्चद्वीपे महाक्रौञ्चो गिरी रत्नचयाकरः ।
सम्पूज्यते महाराज चातुर्वर्ण्येन नित्यदा ॥ ७ ॥

विषयमें इतनी ही बातें कही जासकती है और इतनी ही सुननी उचित भी है ॥ (३९–४०) [४३२]

भीष्मपर्वमें ग्यारह अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें बारह अध्याय ।

इतनी कथा कह सञ्जय बोले, हे महाराज ! उत्तर प्रदेशीय द्वीपोंकी कथा जहां तक मैंने सुनी है सो कहता हूं आप चित्त लगाकर सुनें ॥ इन सब द्वीपोंके पास घीका समुद्र, दहीका समुद्र, मदिराका समुद्र, और दूसरा जलका समुद्र है ॥ हे नराधिप ! उन सब द्वीपोंमें क्रमसे पहले द्वीपसे दूसरा द्वीगुण परिमाण का है, और पर्वत सब भी समुद्रोंसे घिरे है ॥ बीचवाले द्वीपोंमें सब धातुओंसे भरा हुआ मनःशिला का गौर नामक गिरि है; पश्चिम वाले द्वीपमें नारायणका प्रिय कृष्ण पर्वत है ॥ (१–४)

वहां स्वयं केशव प्रजाओंके सुखके लिये प्रसन्न होकर दिव्य रत्नोंकी रक्षा करते है ॥ कुशद्वीपमें जनपदोंके बीचवाले कुशस्तम्बकी, शाल्मली द्वीपमें शाल्मली वृक्षकी, और क्रौञ्चद्वीपमें सब रत्नोंकी खानवाली क्रौञ्चगिरिकी सब

गोमन्तः पर्वतो राजन्सुमहान्सर्वधातुकः ।
यत्र नित्यं निवसति श्रीमान्कमललोचनः ॥ ८ ॥
मोक्षिभिः सङ्गतो नित्यं प्रभुर्नारायणो हरिः ।
कुशद्वीपे तु राजेन्द्र पर्वतो विद्रुमैश्चितः ॥ ९ ॥
स्वनामनामा दुर्द्धर्षो द्वितीयो हेमपर्वतः ।
द्युतिमान्नाम कौरव्य तृतीयः कुमुदो गिरिः ॥ १० ॥
चतुर्थः पुष्पवान्नाम पञ्चमस्तु कुशेशयः ।
षष्ठो हरिगिरिर्नाम षडेते पर्वतोत्तमाः ॥ ११ ॥
तेषामन्तरविष्कम्भो द्विगुणः सर्वभागशः ।
औद्भिदं प्रथमं वर्षं द्वितीयं वेणुमण्डलम् ॥ १२ ॥
तृतीयं सुरथाकारं चतुर्थं कम्बलं स्मृतम् ।
धृतिमत्पञ्चमं वर्षं षष्ठं वर्षं प्रभाकरम् ॥ १३ ॥
सप्तमं कापिलं वर्षं सप्तैते वर्षलम्भकाः ।
एतेषु देवगन्धर्वाः प्रजाश्च जगतीश्वर ॥ १४ ॥
विहरन्ते रमन्ते च न तेषु म्रियते जनः ।
न तेषु दस्यवः सन्ति म्लेच्छजात्योऽपि वा नृप ॥ १५ ॥

प्रजा पूजा करती है। हे राजेन्द्र! कुश द्वीपमें गोमन्त नामका एक पहाड है। यह बहुत बडा है और इसमें सब धातु पाये जाते हैं इसीपर श्रीमान प्रभु नारायण कमललोचन हरि मोक्ष पाये हुए लोगोंको सङ्ग लेकर सदा निवास करते हैं। (५-९)

हे राजश्रेष्ठ! कुशद्वीपमें प्रवालोंसे युक्त आरोहण के लिये दुर्गम, कुश नामक पर्वत है, दूसरा सुवर्णका द्युतिमान् नामका पहाड है, तीसरा कुमुदगिरि, चौथा पुष्पवान् शैल, पांचवां कुशेशय, और छठा हरिगिरि नामका पहाड है। येही छओं पहाड प्रधान हैं॥ उन सबके बीचका स्थान एक दूसरेसे द्विगुण है। (९-१२)

सबसे पहिले औद्भिद वर्ष, दूसरा वेणुमण्डल वर्ष, तीसरा सुरथाकार वर्ष, चौथा कम्बल वर्ष, पांचवां धृतिमत् वर्ष, छठा प्रभाकर वर्ष, और सातवां कापिल वर्ष, येही सातों वर्ष लम्भक पहाड हैं॥ हे पृथिवीश्वर! देव गन्धर्व अन्यान्य प्रजा लोग इन सब वर्षोंमें विहार करते हैं, रमते हैं और किसीको भी मृत्युका भय नहीं रहता है। हे नृप! वहां म्लेच्छ जाति और दस्युवृत्तिके लोग नहीं हैं॥

गौरप्रायो जनः सर्वः सुकुमारश्च पार्थिव।
अवशिष्टेषु सर्वेषु वक्ष्यामि मनुजेश्वर ॥ १६ ॥
यथाश्रुतं महाराज तदव्यग्रमनाः शृणु।
क्रौञ्चद्वीपे महाराज क्रौञ्चो नाम महागिरिः ॥ १७ ॥
क्रौञ्चात्परो वामनको वामनादन्धकारकः।
अन्धकारात्परो राजन्मैनाकः पर्वतोत्तमः ॥ १८ ॥
मैनाकात्परतो राजन्गोविन्दो गिरिरुत्तमः।
गोविन्दात्परतो राजन्निबिडो नाम पर्वतः ॥ १९ ॥
परस्तु द्विगुणस्तेषां विष्कम्भो वंशवर्द्धन।
देशांस्तत्र प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु ॥ २० ॥
क्रौञ्चस्य कुशलो देशो वामनस्य मनोनुगः।
मनोनुगात्परश्चोष्णो देशः कुरुकुलोद्वह ॥ २१ ॥
उष्णात्परः प्रावरकः प्रावारादन्धकारकः।
अन्धकारकदेशात्तु मुनिदेशः परः स्मृतः ॥ २२ ॥
मुनिदेशात्परश्चैव प्रोच्यते दुन्दुभिस्वनः।
सिद्धचारणसङ्कीर्णो गौरप्रायो जनाधिप ॥ २३ ॥

प्रायः सब लोग गोरे और सुकुमार होते हैं। (१२-१६)

इतनी कथा सुना कर सञ्जय फिर बोले, हे मनुजेश्वर ! द्वीपोंके विषयमें मैंने जो कुछ सुनी है, सो सब बातें अब कहता हूं आप अव्यग्रचित्त होकर सुनिये। (१६—१७)

सञ्जय कहने लगे, कि क्रौञ्चद्वीपमें क्रौञ्च नामका एक बडा पहाड है॥ उस के बाद वामनक, वामनके बाद अन्धकारक, अन्धकारकके बाद पहाडोंमें उत्तम मैनाक मैनाकके बाद उत्कृष्ट गोविन्द गिरि और गोविन्दके बाद निबिड नामका पहाड है॥ हे वंशवर्धन! इन सबके बीचका अन्तर पहले सब से दूसरे सब मे द्विगुण है। इस समय इन्हीं देशों की कथा कहता हूं, आप सुनें॥ (१७-२०)

क्रौञ्चगिरिके बाद कुशलदेश है; वामन गिरिके बाद मनोनुग देश है, मनोनुगके बाद उष्णदेश है॥ उष्णदेशके बाद प्रावरक देश है; प्रावरक देशके बाद अन्धकारक देश है;अन्धकारक देशके बाद मुनिदेश है॥ और मुनिदेशके बाद वहीं दुन्दुभिस्वन जनपद है। हे जनाधिप! जहां सिद्ध चारण लोगोंके रहनेकी बात कही गई है। वहांके लोग प्राय

एते देशा महाराज देवगन्धर्वसेविताः ।
पुष्करे पुष्करो नाम पर्वतो मणिरत्नवान् ॥ २४ ॥
तत्र नित्यं प्रभवति स्वयं देवः प्रजापतिः ।
त पर्युपासते नित्यं देवाः सर्वे महर्षयः ॥ २५ ॥
वाग्भिर्मनोनुकूलाभिः पूजयन्तो जनाधिप ।
जम्बूद्वीपात्प्रवर्तन्ते रत्नानि विविधान्युत ॥ २६ ॥
द्वीपेषु तेषु सर्वेषु प्रजानां कुरुसत्तम ।
ब्रह्मचर्येण सत्येन प्रजानां हि दमेन च ॥ २७ ॥
आरोग्यायुःप्रमाणाभ्यां द्विगुणं द्विगुणं ततः ।
एको जनपदो राजन्द्वीपेष्वेतेषु भारत
उक्ता जनपदा येषु धर्मश्चैकः प्रदृश्यते ॥ २८ ॥
ईश्वरो दण्डमुद्यम्य स्वयमेव प्रजापतिः ।
द्वीपानेतान्महाराज रक्षंस्तिष्ठति नित्यदा ॥ २९ ॥
स राजा स शिवो राजन्स पिता प्रपितामहः ।
गोपायति नरश्रेष्ठ प्रजाः सजडपण्डिताः ॥ ३० ॥
भोजनं चाऽत्र कौरव्य प्रजाः स्वयमुपस्थितम् ।

गोरे होते है ॥ (२१-२३)

हे महाराज ! इन सब देशोंमे देव और गन्धर्व लोग विहार करते रहते है । पुष्कर द्वीपमें मणिरत्नोंकी खान वाला पुष्कर पहाड है ॥ वहां स्वयं प्रजापति देव नित्य रहते है । हे नराधिप ! सब देवता और ऋषि प्रतिदिन अपने अपने मनके अनुसार वाक्य कहके उनकी पूजा करते हुए उनकी उपासना करते है ॥ जम्बूद्वीपमें विविध प्रकारके रत्न निकलते है ॥ उन सब द्वीपों की प्रजाके ब्रह्मचर्य, शम, दम, आरोग्य और परमायु परिमाण, पहिले द्वीपोंमे क्रमशः उसके बादके द्वीपोंमे द्विगुण होता है । (२४-२८)

हे राजन् ! इन सब द्वीपोंमें जितने देश हैं, उन सबको एक ही देश कहना चाहिये, क्योंकि इन सब देशोंमें एकही धर्म देख पडता है ॥ नियन्ता प्रजापति स्वयं दण्ड लेकर इन सब देशोंकी सदा रक्षा करते है ॥ हे राजन् ! वही राजा, वही शिव, वही पिता और वही पितामह है तथा वही जड और पण्डित सब प्रजाकी रक्षा करते हैं ॥ हे कुरुकुलोत्पन्न ! उन्हींके कारण सदा रहने वाला अन्न वहां स्वयं ही उपस्थित होता है, और उस सिद्ध अन्नको

सिद्धमेव महाबाहो तद्धि भुञ्जन्ति नित्यदा ॥ ३१ ॥
ततः परं समा नाम दृश्यते लोकसंस्थितिः।
चतुरस्रं महाराज त्रयस्त्रिंशत्तु मण्डलम् ॥ ३२ ॥
तत्र तिष्ठन्ति कौरव्य चत्वारो लोकसम्मताः।
दिग्गजा भरतश्रेष्ठ वामनैरावतादयः ॥ ३३ ॥
सुप्रतीकस्तथा राजन्प्रभिन्नकरटामुखः।
तस्याऽहं परिमाणं तु न संख्यातुमिहोत्सहे ॥ ३४ ॥
असंख्यातः स नित्यं हि तिर्यगूर्ध्वमधस्तथा।
तत्र वै वायवो वान्ति दिग्भ्यः सर्वाभ्य एव हि॥ ३५॥
असम्बद्धा महाराज तान्निगृह्णन्ति ते गजाः।
पुष्करैः पद्मसङ्काशैर्विकसद्भिर्महाप्रभैः ॥ ३६ ॥
शतधा पुनरेवाऽऽशु ते तान्मुञ्चन्ति नित्यशः।
श्वसद्भिर्मुच्यमानास्तु दिग्गजैरिह मारुताः ॥ ३७ ॥
आगच्छन्ति महाराज ततस्तिष्ठन्ति वै प्रजाः।
धृतराष्ट्र उवाच—परो वै विस्तरोऽत्यर्थं त्वया सञ्जय कीर्तितः ॥ ३८ ॥
दर्शितं द्वीपसंस्थानमुत्तरं ब्रूहि सञ्जय।

खाकर प्रजा जीती है। (२८—३१)

हे महाराज! उसके बाद समा नामका चौकोन लोकालय है। उस स्थानमें तैंतीस मण्डालियां हैं॥ वहां लोकोंमें विख्यात वामन, ऐरावत, प्रभिन्न करटामुख, सुप्रतीक चार दिग्गज हैं, उनके परिमाणकी संख्या करनेका हमारा साहस नहीं होता है, क्योंकि उन गजोंके ऊपरका हिस्सा बीचका हिस्सा और नीचेका हिस्सा सदा अपरिमित रहता है। (३२-३५)

वहां वायु विश्रृङ्खल रूपसे नाना दिशासे बहती है॥ आकर्षण करने वाले वे दिग्गज सब कमलके समान प्रभायुक्त अपने सूण्डोंके अग्रभागसे उस वायुको लेते हैं और उसी समय उसको सौगुणा बढाके नित्य बाहर निकालते हैं। उन्हीं दिग्गजोंसे निकाली हुई वायु वहां आती है, और उसीसे प्रजा जीवित रहती है। (३५-३८)

इतनी कथा सुन धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! आपने द्वीपोंकी कथा विस्तार पूर्वक कही, और उनका स्थान भी बताया; पर अब कृपाकर आगेकी कथा कहिये। (३८—३९)

इस बातके सुनते ही सञ्जय बोले,

संजय उवाच— उक्ता द्वीपा महाराज ग्रहं वै शृणु तत्त्वतः ॥ ३९ ॥
स्वर्भानोः कौरवश्रेष्ठ यावदेव प्रमाणतः ।
परिमण्डलो महाराज स्वर्भानुः श्रूयते ग्रहः ॥ ४० ॥
योजनानां सहस्राणि विष्कम्भो द्वादशाऽस्य वै ।
परिणाहेन षट्त्रिंशद्विपुलत्वेन चाऽनघ ॥ ४१ ॥
षष्टिमाहुः शतान्यस्य बुधाः पौराणिकास्तथा ।
चन्द्रमास्तु सहस्राणि राजन्नेकादश स्मृतः ॥ ४२ ॥
विष्कम्भेण कुरुश्रेष्ठ त्रयस्त्रिंशत्तु मण्डलम् ।
एकोनषष्टिविष्कम्भं शीतरश्मेर्महात्मनः ॥ ४३ ॥
सूर्यस्त्वष्टौ सहस्राणि द्वे चाऽन्ये कुरुनन्दन ।
विष्कम्भेण ततो राजन्मण्डलं त्रिंशता समम् ॥ ४४ ॥
अष्टपञ्चाशतं राजन्विपुलत्वेन चाऽनघ ।
श्रूयते परमोदारः पतगोऽसौ विभावसुः ॥ ४५ ॥
एतत्प्रमाणमर्कस्य निर्दिष्टमिह भारत ।
स राहुश्छादयत्येतौ यथाकालं महत्तया ॥ ४६ ॥
चन्द्रादित्यौ महाराज संक्षेपोऽयमुदाहृतः ।
इत्येतत्ते महाराज पृच्छतः शास्त्रचक्षुषा ॥ ४७ ॥

हे महाराज ! सब द्वीपोंकी कथा मैंने कही अब चन्द्र सूर्य और और प्रभावान राहुग्रहके वृत्तान्त यथार्थ रूपसे कहता हूं, आप मन लगा कर सुनिये॥ हे महाराज ! सुना है, कि राहु ग्रह गोलाकार है॥ उसके व्यासका (बीचकी लकीरका) परिमाण बारह हजार योजन है; और परिधि (किनारे किनारे घेरेकी लकीर) छतीस हजार साठ सौ योजन है। पुराण जाननेवाले पण्डितोंने ऐसा ही कहा है। महात्मा चन्द्रमाका व्यास ग्यारह हजार योजन है, और परिधि तैंतीस हजार उनसठ सौ योजन है॥ (३९—४३)

परम उदार और शीघ्र जानेवाले सूर्यका व्यास दश हजार योजन है, और परिधि पैंतीस हजार आठ सौ योजन सुनते हैं॥ हे भारत ! इस संसारमें सूर्यका यही परिमाण निर्दिष्ट किया गया है। वही राहुग्रह चन्द्रमा और सूर्यको समय आनेपर छिपा लेता है। यह सब बातें संक्षेप रूपसे मैंने कहीं॥ हे महाराज ! आपने जो यह सब बातें पूछी थीं उन्हें मैंने शास्त्रानुसार यथा

सर्वमुक्तं यथातत्त्वं तस्माच्छममवाप्नुहि ।
यथोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सनिर्माणमिदं जगत् ॥ ४८ ॥
तस्मादाश्वस कौरव्य पुत्रं दुर्योधनं प्रति ।
श्रुत्वेदं भरतश्रेष्ठ भूमिपर्व मनोनुगम् ॥ ४९ ॥
श्रीमान् भवति राजन्यः सिद्धार्थः साधुसम्मतः ।
आयुर्बलं च कीर्तिश्च तस्य तेजश्च वर्धते ॥ ५० ॥
यः शृणोति महीपाल पर्वणीदं यतव्रतः ।
प्रीयन्ते पितरस्तस्य तथैव च पितामहाः ॥ ५१ ॥
इदं तु भारतं वर्षं यत्र वर्त्तामहे वयम् ।
पूर्वैः प्रवर्तितं पुण्यं तत्सर्वं श्रुतवानसि ॥ ५२ ॥ [४८४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि उत्तरद्वीपादिसंस्थानवर्णने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ समाप्तमिदं भूमिपर्व ।

अथभगवद्गीतापर्व ।

वैशम्पायन उवाच-अथ गावल्गणिर्विद्वान्संयुगादेत्य भारत ।
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य भूतभव्यभविष्यवित् ॥ १ ॥
ध्यायते धृतराष्ट्राय सहसोत्पत्य दुःखितः ।

नुरूप कहीं; अब आप कुछ शान्त भाव अवलम्बन करें। (४४—४८)

हे कुरुनन्दन! इस संसारके पदार्थोंके विषयमें उद्देशानुसार मैंने आपसे सब बातें कहीं॥ इस लिये अब आप अपने पुत्र दुर्योधनके ऊपर आश्वस्त हों। हे भरतेन्द्र! यह मनोनुगत भूमिपर्व यदि कोई क्षत्रिय सुने तो वह श्रीमान्, अर्थसिद्ध और साधुओंमें सम्मानित हो और उसकी आयु, बल, कीर्त्ति और तेज बढे॥ यदि कोई राजा व्रत करके इसको आदिसे सुने तो उसके पिता पितामहादि प्रसन्न हों॥ हम लोग जहां रहते है, सो भारतवर्ष है। यहां रह करके जो पुण्य लोगोंको होता है, सो सब आप सुन चुके हैं॥ (४९—५२) [४८४]

भीष्मपर्वमें बारह अध्याय और भूमिपर्व समाप्त।

भीष्मपर्वमें तेरह अध्याय और भगवद्गीता पर्व।

इतनी कथा कह श्रीवैशम्पायन जी बोले, हे भारत! तब राजा धृतराष्ट्र चिन्तामें निमग्न रहे; उसी समय भूत, भविष्य और वर्त्तमानके जाननेवाले, प्रत्यक्ष देखनेवाले गवल्गणके पुत्र विद्वान् सञ्जय रणक्षेत्रमे होकर बहुत जल्द

आचष्ट निहतं भीष्मं भरतानां पितामहम् ॥ २ ॥

संजय उवाच— सञ्जयोऽहं महाराज नमस्ते भरतर्षभ
हतो भीष्मः शान्तनवो भरतानां पितामहः ॥ ३ ॥
ककुदं सर्वयोधानां धाम सर्वधनुष्मताम् ।
शरतल्पगतः सोऽद्य शेते कुरुपितामहः ॥ ४ ॥
यस्य वीर्यं समाश्रित्य द्यूतं पुत्रस्तवाऽकरोत् ।
स शेते निहतो राजन्संख्ये भीष्मः शिखण्डिना ॥ ५ ॥
यः सर्वान्पृथिवीपालान्समवेतान्महामृधे ।
जिगायैकरथेनैव काशिपुर्यां महारथः ॥ ६ ॥
जामदग्न्यं रणे रामं यो युध्यदपसम्भ्रमः ।
न हतो जामदग्न्येन स हतोऽद्य शिखण्डिना ॥ ७ ॥
महेन्द्रसदृशः शौर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये सहिष्णुत्वे धरासमः ॥ ८ ॥
शरदंष्ट्रो धनुर्वक्त्रः खड्गजिह्वो दुरासदः ।
नरसिंहः पिता तेऽद्य पाञ्चाल्येन निपातितः ॥ ९ ॥
पाण्डवानां महासैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे ।

उनके समीप गये और दुःखित होकर भारत लोगोंके पितामह भीष्मके लडाई में हत होनका सवाद कहने लगे। १-२

सञ्जय बोले, हे महाराज भारतप्रवर! मै आपको नमस्कार करता हूं. मै सञ्जय हूं; भारतपितामह भीष्म मारे गये॥ सब योद्धाके प्रधान और सब धनुर्द्धरोंके तेज स्वरूप कुरुपितामह आज शरशय्या पर शयन कर रहे है॥ जिनके बल वीर्यका आश्रय करके आपके पुत्रने जूए का खेल खेला था, वही भीष्म युद्धमें शिखण्डी से निहत होकर शयन कर रहे है॥ जिन महारथने काशीपुरीमें आये हुए सब राजाओंका एक ही रथके द्वारा जय किया था॥ और जिन्होंने जामदग्न्य राममे दृढचित्त होकर लडाई की थी, पर जिनको जामदग्न्य राम नहीं मार सके थे, वही भीष्म शिखण्डीके हाथसे मारे गये है॥ (३-७)

जो शौर्यमें महेन्द्रके समान दृढतामें हिमालयके समान, गम्भीरतामें समुद्रके सदृश और सहिष्णुतामे पृथ्वीके समान थे॥ और जिनके दांत शर रूप, मुंह धनुष रूप और जीभ खड्ग रूप थे, सो ही दुरासद, नररूप सिंह आपके पिता भीष्म पाञ्चाल राजपुत्रके

सर्वमुक्तं यथातत्त्वं तस्माच्छममवाप्नुहि ।
यथोद्दिष्टं मया प्रोक्तं सनिर्माणमिदं जगत् ॥ ४८ ॥
तस्मादाश्वस कौरव्य पुत्रं दुर्योधनं प्रति ।
श्रुत्वेदं भरतश्रेष्ठ भूमिपर्व मनोनुगम् ॥ ४९ ॥
श्रीमान् भवति राजन्यः सिद्धार्थः साधुसम्मतः ।
आयुर्बलं च कीर्तिश्च तस्य तेजश्च वर्धते ॥ ५० ॥
यः शृणोति महीपाल पर्वणीदं यतव्रतः ।
प्रीयन्ते पितरस्तस्य तथैव च पितामहाः ॥ ५१ ॥
इदं तु भारतं वर्षं यत्र वर्त्तामहे वयम् ।
पूर्वैः प्रवर्तितं पुण्यं तत्सर्वं श्रुतवानसि ॥ ५२ ॥ [४८४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्या संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भूमिपर्वणि उत्तरद्वीपादिसंस्थानवर्णने द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ समाप्तमिदं भूमिपर्व ।

अथ भगवद्गीतापर्व ।

वैशम्पायन उवाच-अथ गावल्गणिर्विद्वान्संयुगादेत्य भारत ।
प्रत्यक्षदर्शी सर्वस्य भूतभव्यभविष्यवित् ॥ १ ॥
ध्यायते धृतराष्ट्राय सहसोत्पत्य दुःखितः ।

नुरूप कही; अब आप कुछ शान्त भाव अवलम्बन करें। (४८—४८)

हे कुरुनन्दन! इस संसारके पदार्थोंके विषयमें उद्देशानुसार मैंने आपसे सब बातें कहीं॥ इस लिये अब आप अपने पुत्र दुर्योधनके ऊपर आश्वस्त हों। हे भरतेन्द्र! यह मनोनुगत भूमिपर्व यदि कोई क्षत्रिय सुने तो वह श्रीमान्, अर्थसिद्ध और साधुओंमें सम्मानित हो और उसकी आयु, बल, कीर्त्ति और तेज बढे॥ यदि कोई राजा व्रत करके इसको आदिसे सुने तो उसके पिता पितामहादि प्रसन्न हों॥ हम लोग जहां रहते हैं, सो भारतवर्ष है। यहां रह करके जो पुण्य लोगोंको होता है, सो सब आप सुन चुके हैं॥ (४९—५२) [४८४]

भीष्मपर्वमें बारह अध्याय और भूमिपर्व समाप्त।

भीष्मपर्वमें तेरह अध्याय और भगवद्गीता पर्व।

इतनी कथा कह श्रीवैशम्पायन जी बोले, हे भारत! तब राजा धृतराष्ट्र चिन्तामें निमग्न रहे; उसी समय भूत, भविष्य और वर्त्तमानके जाननेवाले, प्रत्यक्ष देखनेवाले गवल्गणके पुत्र विद्वान् सञ्जय रणक्षेत्रसे होकर बहुत जल्द

आचष्ट निहतं भीष्मं भरतानां पितामहम् ॥ २ ॥
संजय उवाच— सञ्जयोऽहं महाराज नमस्ते भरतर्षभ
हतो भीष्मः शान्तनवो भरतानां पितामहः ॥ ३ ॥
ककुदं सर्वयोधानां धाम सर्वधनुष्मताम् ।
शरतल्पगतः सोऽद्य शेते कुरुपितामहः ॥ ४ ॥
यस्य वीर्यं समाश्रित्य द्यूतं पुत्रस्तवाऽकरोत् ।
स शेते निहतो राजन्संख्ये भीष्मः शिखण्डिना ॥ ५ ॥
यः सर्वान्पृथिवीपालान्समवेतान्महामृधे ।
जिगायैकरथेनैव काशिपुर्यां महारथः ॥ ६ ॥
जामदग्न्यं रणे रामं यो युध्यदपसम्भ्रमः ।
न हतो जामदग्न्येन स हतोऽद्य शिखण्डिना ॥ ७ ॥
महेन्द्रसदृशः शौर्ये स्थैर्ये च हिमवानिव ।
समुद्र इव गाम्भीर्ये सहिष्णुत्वे धरासमः ॥ ८ ॥
शरदंष्ट्रो धनुर्वक्त्रः खड्गजिह्वो दुरासदः ।
नरसिंहः पिता तेऽद्य पाञ्चाल्येन निपातितः ॥ ९ ॥
पाण्डवानां महासैन्यं यं दृष्ट्वोद्यतमाहवे ।

उनके समीप गये और दुःखित होकर भारत लोगोंके पितामह भीष्मके लडाईमें हत होनेका संवाद कहने लगे। १-२

सञ्जय बोले, हे महाराज भारतप्रवर! मैं आपको नमस्कार करता हूं मैं सञ्जय हूं; भारतपितामह भीष्म मारे गये॥ सब योद्धाके प्रधान और सब धनुर्द्धरोंके तेज स्वरूप कुरुपितामह आज शरशय्या पर शयन कर रहे हैं॥ जिनके बल वीर्यका आश्रय करके आपके पुत्रने जूए का खेल खेला था, वही भीष्म युद्धमें शिखण्डी से निहत होकर शयन कर रहे हैं॥ जिन महारथने काशीपुरीमें आये हुए सब राजाओंका एक ही रथके द्वारा जय किया था॥ और जिन्होंने जामदग्न्य रामसे दृढचित्त होकर लडाई की थी, पर जिनको जामदग्न्य राम नहीं मार सके थे, वही भीष्म शिखण्डीके हाथसे मारे गये हैं॥ (३-७)

जो शौर्यमें महेन्द्रके समान, दृढतामें हिमालयके समान, गम्भीरतामें समुद्रके सदृश, और सहिष्णुतामें पृथ्वीके समान थे॥ और जिनके दांत शर रूप, मुंह धनुष रूप और जीभ खड्ग रूप थे, सो ही दुरासद, नररूप सिंह आपके पिता भीष्म पाञ्चाल राजपुत्रके

प्रावेपत भयोद्विग्नं सिंहं दृष्ट्वेव गोगणः ॥ १० ॥
परिरक्ष्य स सेनां ते दशरात्रमनीकहा ।
जगामाऽस्तमिवाऽऽदित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम्॥११॥
यः स शक्र इवाऽक्षोभ्यो वर्षन्बाणान्सहस्रशः ।
जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ १२ ॥
स शेते निहतो भूमौ वातभग्न इव द्रुमः ।
तव दुर्मन्त्रिते राजन्यथा नाऽर्हः स भारत ॥ १३ ॥ [४९७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि
भगवद्गीतापर्वणि भीष्ममृत्युश्रवणे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच– कथं कुरूणामृषभो हतो भीष्मः शिखण्डिना ।
कथं रथात्स न्यपतत्पिता मे वासवोपमः ॥ १ ॥
कथमाचक्ष्व मे योधा हीना भीष्मेण सञ्जय ।
बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥ २ ॥
तस्मिन्हते महाप्राज्ञे महेष्वासे महाबले ।

द्वारा गिराये गये हैं ॥ रणस्थलमें जिनको देखके, लडनेको उद्यत पाण्डवोंकी बडी सेना, भयसे व्याकुल होकर सिंहको देखके घबडाई गायके समान कम्पित होती थी ॥ वह दस दिन तक आपकी सेनाकी रक्षा करके, पाण्डवोंकी सेनाको मारकर, आज वैसे ही अस्त होगये हैं जैसे अति दुष्कर कामको करके सूर्य डूब जाते हैं। (८–११)

जो इन्द्रके समान निर्भीक होकर ह-जारों बाण बरसाकर दस दिनोंमें लाख योद्धाओंको युद्धमें मारडाला है, वह वा-युसे उखडेहुए वृक्षके समान निहत होकर पृथ्वीपर पडे हैं। हे महाराज! वह भरतकुल-तिलक भीष्म इस घटनाके योग्य नहीं थे, परन्तु आपहीकी दुर्म-न्त्रणासे उनकी यह दुर्दशा हुई है। (१२—१३) [४९७]

भीष्मपर्वमें तेरह अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें चौदह अध्याय।

यह समाचार सुनकर धृतराष्ट्र बोले, हे संजय! इन्द्रके समान मेरे पिता और कुरुपितामह भीष्मको शिखण्डीने किस प्रकार मारा? वह किस प्रकार रथसे गिरे? ॥ जिन्होंने अपने पिताके लिये ब्रह्मचर्य अवलम्बन किया था, उन देवकल्प बलशाली भीष्मके नहीं रहनेसे हमारे योद्धा लोगोंकी क्या दशा हुई? ॥ उन महाप्राज्ञ, महाधनुर्द्धर, महाबल, महासत्त्व, नरश्रेष्ठके मारे जाने

महासत्वे नरव्याघ्रे किमु आसीन्मनस्तव ॥ ३ ॥
आर्त्तिं परामाविशति मनः शंससि मे हतम् ।
कुरूणामृषभं वीरमकम्पं पुरुषर्षभम् ॥ ४ ॥
के तं यान्तमनुप्राप्ताः के वाऽस्याऽऽसन्पुरोगमाः ।
केऽतिष्ठन्के न्यवर्त्तन्त केऽन्ववर्त्तन्त सञ्जय ॥ ५ ॥
के शूरा रथशार्दूलमच्युतं क्षत्रियर्षभम् ।
तथाऽनीकं गाहमानं सहसा पृष्ठतोऽन्वयुः ॥ ६ ॥
यस्तमोऽर्क इवाऽपोहन्परसैन्यममित्रहा ।
सहस्ररश्मिप्रतिमः परेषां भयमादधत् ॥ ७ ॥
अकरोद्दुष्करं कर्म रणे पाण्डुसुतेषु यः ।
ग्रसमानमनीकानि य एनं पर्यवारयन् ॥ ८ ॥
कृतिनं तं दुराधर्षं सञ्जयाऽस्य त्वमान्तिके ।
कथं शान्तनवं युद्धे पाण्डवाः प्रत्यवारयन् ॥ ९ ॥
निकृन्तन्तमनीकानि शरदंष्ट्रं मनस्विनम् ।
चापव्यात्ताननं घोरमसिजिह्वं दुरासदम् ॥ १० ॥

पर उस समय तेरा कैसा चित्त हुआ ? हे सञ्जय ! उन अविचलितचित्त कुरुवीर पुरुषश्रेष्ठके मारेजानेका समाचार सुनकर मेरा मन अत्यन्त व्यथित होगया है ॥ (१–४)

हे सञ्जय ! उनके लडाईमें जानेके समय कौन आदमी उनके पीछे गये ? कौन आगे गये, कौन साथ गये, कौन निवृत्त हुए और कौन अनुवर्त्ती हुए थे ? ॥ सेनाओंपर आक्रमण करनेवाले, क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ अच्युत उन महारथ कुरुश्रेष्ठकी पृष्ठरक्षा किन किन शूरोंने की थी ? वह सूर्यके समान तेजस्वी और जैसे सूर्यके द्वारा अन्धकारका नाश होता है, वैसे लडाईमें परपक्षी सेनाका विनाश करके पर पक्षको भय देनेवाले थे ॥ उन्होंने पाण्डवोंकी सेनापर बडा दुष्कर काम किया था, क्या उस सेनाको ग्रासकरनेवाले पुरुषका किसीने निवारण नहीं किया था ? (५–८)

हे संजय ! बाणकी वर्षा करनेवाले उन कृती दुराधर्ष शान्तनुनन्दनके समीप पाण्डव लोग किस प्रकार आकर लडाईमें निवारण कर सके ? ॥ जिनका शर दांतके समान, जिनका शरासन खोले हुए मुहके समान, खड्ग जीभके समान और जो कभी पराजित नहीं हुए वह इस प्रकारके भीषणरूप वाले, वृद्ध-

अनर्हं पुरुषव्याघ्रं ह्रीमन्तमपराजितम् ।
पातयामास कौन्तेयः कथं तमजितं युधि ॥ ११ ॥
उग्रधन्वानमुग्रेषुं वर्त्तमानं रथोत्तमे ।
परेषामुत्तमाङ्गानि प्रचिन्वन्तमथेषुभिः ॥ १२ ॥
पाण्डवानां महत्सैन्यं ये दृष्ट्वोद्यतमाहवे ।
कालाग्निमिव दुर्धर्षं समचेष्टत नित्यशः ॥ १३ ॥
परिकृष्य स सेनां तु दशरात्रमनीकहा ।
जगामाऽस्तमिवाऽऽदित्यः कृत्वा कर्म सुदुष्करम् ॥ १४ ॥
यः स शक्र इवाऽक्षय्यवर्षं शरमयं क्षिपन् ।
जघान युधि योधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥ १५ ॥
स शेते निहतो भूमौ वातभग्न इव द्रुमः ।
मम दुर्मन्त्रितेनाऽऽजौ यथा नाऽर्हति भारत ॥ १६ ॥
कथं शान्तनवं दृष्ट्वा पाण्डवानामनीकिनी ।
प्रहर्तुमशकत्तत्र भीष्मं भीमपराक्रमम् ॥ १७ ॥
कथं भीष्मेण संग्रामं प्राकुर्वन्पाण्डुनन्दनाः ।
कथं च नाऽजयद्भीष्मो द्रोणे जीवति सञ्जय ॥ १८ ॥

में मारेजानेके अयोग्य, लज्जाशील, महानुभाव, भीषण रूप थे उन अजित पुरुषव्याघ्रको किस प्रकारसे कुन्तीपुत्र-लोग लड़ाईमें मारसके? (९-११)

जो प्रधान रथमें बैठकर संग्राममें शत्रुओंके मस्तक छेदते थे, और पाण्डवोंकी बड़ी सेना जिन उग्रधन्वा, उग्र अस्त्रोंको काममें लानेवाले दुर्धर्ष पुरुषको लड़ाईमें देखकर सब क्षण कालाग्निके समान जानकर होशियार रहती थी। वह दस दिनतक दुश्मनकी सेनाको परिकर्षण करके विनष्ट हो गये। वह सूर्यके समान अत्यन्त दुष्कर काम करके अस्त हो गये हैं ॥ (१२-१४)

इन्द्रके समान अक्षय शरजालकी वर्षा करके दश दिनमें अर्बुद असंख्य योद्धाओंको जिन्होंने मारा है, सो आज लड़ाईमें निहत होकर वायुसे झकोरे पेड़के समान पृथ्वी में पड़े हैं। उन भारतकुलचूडामणिके ऊपर ऐसी दुर्घटना होनेका कारण एक मात्र मेरी दुर्मन्त्रणा ही है ॥ हे सञ्जय! शान्तनुके पुत्र बड़े पराक्रमवाले, उन भीष्मको देखकर वहां पाण्डव सेना किस प्रकार प्रहार करने लगी? (१५-१७)

पाण्डव ही लोग भीष्मके साथ कैसे

कृपे सन्निहिते तत्र भरद्वाजात्मजे तथा ।
भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः कथं स निधनं गतः ॥ १९ ॥
कथं चाऽतिरथस्तेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ।
भीष्मो विनिहतो युद्धे देवैरपि दुरासदः ॥ २० ॥
यः स्पर्द्धते रणे नित्यं जामदग्न्यं महाबलम् ।
अजितं जामदग्न्येन शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥ २१ ॥
तं हतं समरे भीष्मं महारथकुलोदितम् ।
सञ्जयाऽऽचक्ष्व मे वीर येन शर्म न विद्महे ॥ २२ ॥
मामकाः के महेष्वासा नाऽजहुः सञ्जयाऽच्युतम् ।
दुर्योधनसमादिष्टाः के वीराः पर्यवारयन् ॥ २३ ॥
यच्छिखण्डिमुखाः सर्वे पाण्डवा भीष्ममभ्ययुः ।
कच्चित्ते कुरवः सर्वे नाऽजहुः सञ्जयाऽच्युतम् ॥ २४ ॥
अश्मसारमयं नूनं हृदयं सुदृढं मम ।
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ॥ २५ ॥
यस्मिन्सत्यं च मेधा च नीतिश्च भरतर्षभे ।

लड़ाई करने लगे? आचार्य द्रोणके जीते रहनेपर भी भीष्म क्यों नहीं विजयी हुए?॥और द्रोणके बेटे और कृपके समीप रहनेपर भी प्रहारकोंमें प्रधान भीष्म क्यों मारे गये? ॥ जिन्हें देवता भी नहीं हरा सके उन अतिरथ भीष्मको किस तरहसे पाञ्चाल्य शिखण्डीने युद्धमें मारा? जो लड़ाईमें, बड़े बलवान् जामदग्न्य रामके ऊपर भी स्पर्धा कर सके थे और जिनको परशुराम भी जीत नहीं सके थे, महारथों के कुलमें जन्म लिये हुए इन्द्रके समान पराक्रमवाले उस वीरपुरुष के लड़ाईमें हारनेका सब समाचार आप मुझे कहिये, क्यों कि जबतक मैं वह नहीं सुनूंगा तबतक मेरा चित्त स्थिर नहीं होगा। (१८–२२)

हे सञ्जय! मेरे पक्षके किसी महाधनुर्धरने तो उन अटल वीरको परित्याग नहीं किया? दुर्योधनकी आज्ञासे किसी वीरहीने उनको तो ला नहीं घेरा था? हे सञ्जय! जब सब पाण्डव लोगोंने शिखण्डीको आगे करके भीष्मपर आक्रमण किया था, तब कुरुवीरोंने तो उन अटल वीरको छोड़ नहीं दिया था?॥ पुरुषश्रेष्ठ भीष्मके मरनेका वृत्तान्त सुनकर भी जो मेरा हृदय नहीं फट जाता है निश्चयसे यह पत्थरका बना हुआ प्रतीत होता है ॥ जिन भरतश्रेष्ठ दुर्धर्ष

अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ॥ २६ ॥
मौर्वीघोपस्तनयित्नुः पृषत्कपृषतो महान्।
धनुर्ह्रादमहाशब्दो महामेघ इवोन्नतः ॥ २७ ॥
योऽभ्यवर्षत कौन्तेयान्सपाञ्चालान्ससृञ्जयान्।
निघ्नन्पररथान्वीरो दानवानिव वज्रभृत् ॥ २८ ॥
इष्वस्त्रसागरं घोरं बाणग्राहं दुरासदम्।
कार्मुकोर्मिणमक्षय्यमद्वीपं चलमप्लवम् ॥ २९ ॥
गदासिमकरावासं हयावर्त्तं गजाकुलम्।
पदातिमत्स्यकलिलं शङ्खदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ३० ॥
हयान्गजपदातींश्च रथांश्च तरसा बहून्।
निमज्जयन्तं समरे परवीरापहारिणम् ॥ ३१ ॥
विदह्यमानं कोपेन तेजसा च परन्तपम्।
वेलेव मकरावासं के वीराः पर्यवारयन् ॥ ३२ ॥
भीष्मो यदकरोत्कर्म समरे सञ्जयाऽरिहा।

भीष्ममें सत्य, मेधा और नीति अतुलनीय थी, ऐसे भीष्म युद्धमें कैसे मारे गये? (२३–२६)

जिनके धनुषका टङ्कार वज्रनादके समान, जिनका बाण छोड़ना जलबिन्दुके समान, और जिनकी मौर्वीघोष गर्जनके समान ऐसे बड़े मेघके समान जिस वीरने जैसे इन्द्र वज्रसे दानवोंको उनका नाश करते हैं, वैसे पाञ्चाल और सृञ्जय आदिकोंके सहित पाण्डवोंके महारथोंको बाणोंकी वर्षा करके मार डाला था? ॥ और जो बड़े वेगसे जानेवाले बाणोंके भयानक समुद्रमें बाण रूप जन्तुके समान और धनुषकी डोरीकी तरङ्ग लहरके समान हुई थी, और जिससे पार उतरनेके लिये न कोई द्वीप और नाव थी, जिसमें गदा और खड्ग ही मानो मकरोंके घर थे, जिसमें घोड़े मानो आवर्त्तके समान हाथियोंसे समाकुल, पैदल सेना मछलीके समान दुरासद और अक्षोभ्य, और जिसका शब्द शङ्ख और दुन्दुभीके समान होता था, और जिस सागरमें बहुतसे हाथी, घोड़े, पैदल और रथ डूब जाते थे और क्रोध-स्वरूप बाडवानलमें जल जाते थे; उन्हीं वीर शत्रुहन्ता, शत्रुतापन भीष्म-रूप महाअस्त्र सागरको, जैसे समुद्रके तरंगको समुद्र किनारकी भूमि रोकती है वैसे किसी योद्धाने अवरोध किया था? (२७–३२)

दुर्योधनहितार्थाय के तस्याऽस्य पुरोऽभवन् ॥ ३३ ॥
केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं भीष्मस्याऽमिततेजसः ।
पृष्ठतः के परान्वीरानपासेधन्यतव्रताः ॥ ३४ ॥
के पुरस्तादवर्तन्त रक्षन्तो भीष्ममन्तिके ।
केऽरक्षन्नुत्तरं चक्रं वीरा वीरस्य युध्यतः ॥ ३५ ॥
वामे चक्रे वर्त्तमानाः केऽघ्नन्सञ्जय सृञ्जयान् ।
अग्रतोऽग्र्यमनीकेषु केऽभ्यरक्षन्दुरासदम् ॥ ३६ ॥
पार्श्वतः केऽभ्यरक्षन्त गच्छन्तो दुर्गमां गतिम् ।
समूहे के परान्वीरान्प्रत्ययुध्यन्त सञ्जय ॥ ३७ ॥
रक्ष्यमाणः कथं वीरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते ।
दुर्जयानामनीकानि नाऽजयंस्तरसा युधि ॥ ३८ ॥
सर्वलोकेश्वरस्येव परमेष्ठी प्रजापतेः ।
कथं प्रहर्तुमपि ते शेकुः सञ्जय पाण्डवा ॥ ३९ ॥

हे सञ्जय ! जब दुश्मनोंको मारनेवाले भीष्म दुर्योधनके निमित्त लडाई करने गये थे तब कौन कौन उनके सामने आये थे ? ॥ उन अमित तेजस्वी भीष्म के दाहिने चक्रकी किसने रक्षा की थी ? किस पुरुषने दृढ प्रतिज्ञा करके उनकी सहायता करनेके अभिप्रायसे उनका पृष्ठरक्षक होकर प्रधान वीरोंको रोका था ? ॥ किस वीरने भीष्मके आगे होकर उनकी रक्षा की थी और कौन वीर भीष्मके लडनेके समय उनके उत्तर चक्रकी रक्षा करते थे ? (३३–३५)

किसी वीरने उन लडनेवाले वीरके बांये चक्रकी रक्षा की थी ? कौन आदमी उनके पास रहकर आगेका भाग रक्षा करनेके लिये विद्यमान था ? किस वीरने उनकी बांई ओर रहकर सृञ्जय लोगोंको प्रहार किया था ? किसने उनकी आगेकी सेनाके नहीं जीतनेके योग्य अग्रभागकी रक्षा की थी ? ॥ किसने दुर्गम गति स्वीकार करके उनकी पार्श्व रक्षा की थी ? और उनकी रक्षा करनेके निमित्त, बराबरकी लडाईमें प्रधान वीरोंसे किसने लडाई की थी ? ॥ और किसकी उन्होंने (भीष्मने) रक्षा की थी ? और तब क्यों वे सब वीर लोग लडाई में बल करके दुर्जय पाण्डवोंकी सेनाको नहीं जीत सके ? (३६–३८)

हे सञ्जय ! सर्व लोकेश्वर परमेष्ठी ब्रह्माके समान उन भीष्मपर पाण्डव लोग किस तरहसे प्रहार कर सके ? ॥ जो हमते हुए लोगोंको द्वीपके समान

यस्मिन्द्वीपे समाश्वास्य युध्यन्ते कुरवः परैः।
तं निमग्नं नरव्याघ्रं भीष्मं शंससि सञ्जय ॥ ४० ॥
यस्य वीर्यं समाश्रित्य मम पुत्रो बृहद्बलः।
न पाण्डवानगणयत्कथं स निहतः परैः ॥ ४१ ॥
यः पुरा विबुधैः सर्वैः सहाये युद्धदुर्मदः।
कांक्षितो दानवान्घ्नद्भिः पिता मम महाव्रतः ॥ ४२ ॥
यस्मिञ्जाते महावीर्ये शान्तनुर्लोकविश्रुतः।
शोकं दैन्यं च दुःखं च प्राजहात्पुत्रलक्ष्मणि ॥ ४३ ॥
प्रोक्तं परायणं प्राज्ञं स्वधर्मनिरतं शुचिम्।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञं कथं शंससि मे हतम् ॥ ४४ ॥
सर्वास्त्रविनयोपेतं शान्तं दान्तं मनस्विनम्।
हतं शान्तनवं श्रुत्वा मन्ये शेषं हतं बलम् ॥ ४५ ॥
धर्माद्धर्मो बलवान्सम्प्राप्त इति मे मतिः।
यत्र वृद्धं गुरुं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ॥४६ ॥
जामदग्न्यः पुरा रामः सर्वास्त्रविदनुत्तमः।

आश्रय थे, जिनके आश्रयमें निर्भय होकर मेरे पुत्र लोग पाण्डवोंसे लड़ते थे वेही नरसिंह भीष्म रूप द्वीपके डूब जानेका वृत्तान्त आप सुनाते हैं? बड़े बलवान् मेरे पुत्र जिनके आसरे पाण्डवोंको गिनते भी नहीं करते थे, वे किस प्रकारसे पाण्डवों से मारे गये? (४०-४१)

राक्षसोंको मारनेके समय देवताओंने युद्धदुर्मद महाव्रत जिन मेरे पिता भीष्मकी सहायता पानेकी इच्छा की थी और पृथ्वीके राजाओंमें महाबल भीष्मके जन्म लेनेसे लोक विख्यात राजा शान्तनुने शोक, दुःख, दैन्य सब दूर कर दिया था, उन्हीं विख्यात, महाश्रय, प्राज्ञ, अपने धर्ममें दृढ, शुचि और वेदवेदाङ्गके तत्त्वोंको जाननेवाले भीष्मको मेरे सामने आप किस प्रकार मरा हुआ कहते हैं? (४२-४४)

हे सञ्जय! सब शस्त्रोंके जाननेवाले, शान्त और गुणी महानुभाव शान्तनुनन्दन भीष्मके मारे जानेका समाचार सुनकर हमको बोध होता है, कि मेरी ओरकी सम्पूर्ण सेना मारी गई॥ हे सञ्जय! हमारी समझमें होता है, कि धर्मसे अधर्म ही अधिक बलवान् होकर फैलता है, क्योंकि पाण्डव लोग वृद्ध गुरुको मारकर राज्यभोगकी अभिलाषा करते हैं॥ पूर्वकालमें सब शस्त्रोंके जानने

अम्बार्थमुद्यतः संख्ये भीष्मेण युधि निर्जितः ॥ ४७ ॥
तामिन्द्रसमकर्माणं ककुदं सर्वधन्विनाम् ।
हतं शंससि मे भीष्मं किं नु दुःखमतः परम् ॥ ४८ ॥
असकृत्क्षत्रियव्राताः संख्ये येन विनिर्जिताः ।
जामदग्न्येन वीरेण परवीरनिघातिना ॥ ४९ ॥
न हतो यो महाबुद्धिः स हतोऽद्य शिखण्डिना ।
तस्मान्नूनं महावीर्याद्भार्गवाद्युद्धदुर्मदात् ॥ ५० ॥
तेजोवीर्यबलैर्भूयाञ्शिखण्डी द्रुपदात्मजः ।
यः शूरं कृतिनं युद्धे सर्वशास्त्रविशारदम् ॥ ५१ ॥
परमास्त्रविदं वीरं जघान भरतर्षभम् ।
के वीरास्तममित्रघ्नमन्वयुः शस्त्रसंसदि ॥ ५२ ॥
शंस मे तद्यथा चाऽऽसीद्युद्धं भीष्मस्य पाण्डवैः ।
योषेव हतवीरा मे सेना पुत्रस्य सञ्जय ॥ ५३ ॥
अगोपमिव चोद्भ्रान्तं गोकुलं तद्बलं मम ।
पौरुषं सर्वलोकस्य परं यस्मिन्महाहवे ॥ ५४ ॥

वालोंमें बड़े जामदग्न्य राम अम्बाके लिये जिन भीष्मके साथ लड़ाई करके हार गये थे ?॥ धनुषधारियोंमें प्रधान, इन्द्रके समान कृती, उन्हीं भीष्मके मरनेका जो संवाद मुझे कहा, सो उससे बढ़कर अब क्या हो सकता है ? (४५-४८)

जिन्होंने क्षत्रियोंको बारबार पराजित किया था, शत्रुहन्ता जामदग्न्य राम जिन भीष्मको नहीं मार सके थे, सो आज शिखण्डीके हाथसे मारे गये, इस लिये युद्धदुर्मद, महावीर्यवान् भृगुनन्दन परशुरामसे भी द्रुपदपुत्र शिखण्डी को बड़ा कहनेमें कुछ संशय नहीं है। उसी शिखण्डीने युद्धविद्यामें निपुण, सब शास्त्रोंको जाननेवाले, परमास्त्रवेत्ता, शूर वीर भरतवंश प्रवर भीष्मको मारा है। (४९-५२)

हे सञ्जय ! उस लड़ाईमें पाण्डवोंसे मारे हुए उन वीरके कौन कौन साथी हुए और पाण्डवोंसे उनकी कैसी लड़ाई हुई सो सब आप मुझे कहिये । इस समय मेरे पुत्र दुर्योधनकी सेना पतिपुत्र विहीन स्त्रीके समान होरही है ॥ मेरे पक्षकी सम्पूर्ण सेना चरवाहेके विना गायके झुण्डके समान इस समय दौड़ गई है । वही लड़ाईमें जिसके परम पौरुषकी प्रशंसा सब लोगोंमें रहकर

परासक्ते च वस्तस्मिन्कथमासीन्मनस्तदा ।
जीवितेऽप्यद्य सामर्थ्यं किमिवाऽस्मासु सञ्जय ॥ ५५ ॥
घातयित्वा महावीर्यं पितरं लोकधार्मिकम् ।
अगाधे सलिले मग्नां नावं दृष्ट्वेव पारगाः ॥ ५६ ॥
भीष्मे हते भृशं दुःखानमन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
अद्रिसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय ॥ ५७ ॥
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं भीष्मं न दीर्यते ।
यस्मिन्नस्त्राणि मेधा च नीतिश्च पुरुषर्षभे ॥ ५८ ॥
अप्रमेयाणि दुर्धर्षे कथं स निहतो युधि ।
न चास्त्रेण न शौर्येण तपसा मेधया न च ॥ ५९ ॥
न धृत्या न पुनस्त्यागान्मृत्योः कश्चिद्विमुच्यते ।
कालो नूनं महावीर्यः सर्वलोकदुरत्ययः ॥ ६० ॥
यत्र शान्तनवं भीष्मं हतं शंससि सञ्जय ।
पुत्रशोकाभिसन्तप्तो महद्दुःखमचिन्तयम् ॥ ६१ ॥
आशंसेऽहं परं त्राणं भीष्माच्छान्तनुनन्दनात् ।

होता. वे ही महापुरुष जब मारे गये, तब आप लोगोंका मन कैसा हुआ था ? (५२—५५)

हे सञ्जय ! मेरे पिता, महाबली उन भीष्मजीके आज मारे जानेसे हम लोगोंके जीवनकी और क्या आशा रह गयी है ? हे सञ्जय! मुझे बोध होता है कि जैसे उस पार जानेवाले मनुष्य अगाध पानीमें डूबी हुई नावको देखकर व्याकुल होते हैं। वैसे ही भीष्मजीको मरा देखकर मेरे पुत्र सब [illegible] शोकसे [illegible] हो रहे हैं। हे सञ्जय ! मेरा हृदय पत्थरका [illegible] है, [illegible] पुरुषसिंहके मारे जानेकी खबर सुनकर मेरा हृदय विदीर्ण नहीं हुआ। जिन पुरुषसिंहके कारण अप्रमेय अस्त्र, मेधा और नीति विद्यमान थी ॥ और जो दुश्मनोंसे जीते जानेके योग्य नहीं थे, वे भी युद्धमें कैसे मारे गये ? (५७—५९)

कोई आदमी अस्त्र, शौर्य, तपस्या, मेधा, धैर्य, त्याग आदि किसी प्रकारसे मृत्युसे नहीं बच सकता है; महावीर कालरूपीको मनुष्य किसी प्रकारसे टाल नहीं सकता है ॥ हे सञ्जय! उसी काल-हीके कारण आप भीष्मके मरनेका वृत्तान्त मुझसे कह सके। पुत्रशोककी ज्वालामें कातर होकर बड़े दुःखकी

यदाऽऽदित्यमिवाऽपश्यत्पतितं भुवि सञ्जय ॥ ६२ ॥
दुर्योधनः शान्तनवं किं तदा प्रत्यपद्यत ।
नाऽहं स्वेषां परेषां वा बुद्ध्या सञ्जय चिन्तयन् ॥ ६३ ॥
शेषं किञ्चित्प्रपश्यामि प्रत्यनीके महीक्षिताम् ।
दारुणः क्षत्रधर्मोऽयमृषिभिः सम्प्रदर्शितः ॥ ६४ ॥
यत्र शान्तनवं हत्वा राज्यमिच्छन्ति पाण्डवाः ।
वयं वा राज्यमिच्छामो घातयित्वा महाव्रतम् ६५ ॥
क्षत्रधर्मे स्थिताः पार्था नाऽपराध्यन्ति पुत्रकाः ।
एतदार्येण कर्तव्यं कृच्छ्रास्वापत्सु सञ्जय ॥ ६६ ॥
पराक्रमः परा शक्तिस्तत्तु तस्मिन्प्रतिष्ठितम् ।
अनीकानि विनिघ्नन्तं ह्रीमन्तमपराजितम् ॥ ६७ ॥
कथं शान्तनवं तातं पाण्डुपुत्रा न्यवारयन् ।
यथा युक्तान्यनीकानि कथं युद्धं महात्मभिः ॥ ६८ ॥

चिन्ता करनेके समय में भीष्महीके द्वारा त्राण पानेकी आशा करता था। हे संजय! जब दुर्योधनने पृथ्वीपर गिरे हुए सूर्यके समान भीष्मको देखा, तब क्या किया? (५९–६३)

हे सञ्जय! क्या अपने पक्ष, क्या परपक्ष सब राजाओंकी सेनाके विषयमे बुद्धिके द्वारा चिन्ता करके देखता हूं, तो कुछ शेष समझ सकता हूं। ऋषिओंने इस वैरभावरूपी क्षत्रिय धर्मको कैसा निदारुण करके दिखलाया है ॥ जिस कारण पाण्डव लोग भीष्मको मारकर राज्यके अभिलाषी हुए हैं। हम लोग जो उन महाव्रत भीष्मको मरवाकर राज्य करनेकी इच्छा रखते हैं। ६३-६५

पाण्डव लोग जो उन भीष्म को मारकर राज्य भोग करनेकी अभिलाषा रखते है, वह उन लोगोंका अपराध नहीं हो सकता है, क्योंकि वे पाण्डव लोग क्षत्रियका धर्म पालते है। अत्यन्त कठिन आपत्ति आपडनेमे इस प्रकारका निष्ठुर काम आर्यलोगोंको करना उचित ही है॥ क्योंकि शत्रुपर आक्रमण करना, परम शक्तिको प्रकाशित करना, और उक्त प्रकारका निष्ठुर काम करना ही क्षत्रियोंका धर्म कहा गया है। हे सञ्जय! अपराजित लज्जाशील, पिता, महाशय, शान्तनुनन्दन भीष्म सेनाका नाश करते थे उनको पाण्डवोंने किस प्रकार रोका? किस तरहसे सेना नियुक्त की गई थी, और किस प्रकारसे महात्माओंके साथ उनका युद्ध हुआ? ॥ (६६ – ६८)

कथं वा निहतो भीष्मः पिता सञ्जय मे परैः ।
दुर्योधनश्च कर्णश्च शकुनिश्चापि सौबलः ॥ ६९ ॥
दुःशासनश्च कितवो हते भीष्मे किमब्रुवन् ।
यच्छरीरैरुपास्तीर्णां नरवारणवाजिनाम् ॥ ७० ॥
शरशक्तिमहाखड्गतोमराक्षां महाभयाम् ।
प्राविशन्कितवा मन्दाः सभां युद्धदुरासदाम् ॥ ७१ ॥
प्राणद्यूते प्रतिभये केऽदीव्यन्त नरर्षभाः ।
के जीयन्ते जितास्तत्र कृतलक्ष्या निपातिताः ॥ ७२ ॥
अन्ये भीष्माच्छान्तनवात्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ।
न हि मे शान्तिरस्तीह श्रुत्वा देवव्रतं हतम् ॥ ७३ ॥
पितरं भीमकर्माणं भीष्ममाहवशोभिनम् ।
आर्तिं मे हृदये रूढां महतीं पुत्रहानिजाम् ॥ ७४ ॥
त्वं हि मे सर्पिषेवाऽग्निमुद्दीपयसि सञ्जय ।
महान्तं भारमुद्यम्य विश्रुतं सार्वलौकिकम् ॥ ७५ ॥
दृष्ट्वा विनिहतं भीष्मं मन्ये शोचन्ति पुत्रकाः ।
श्रोष्यामि तानि दुःखानि दुर्योधनकृतान्यहम् ॥७६॥

और किस प्रकारसे मेरे पिता भीष्म [illegible] दुश्मनोंसे मारे गये? उनके [illegible] दुर्योधन कर्ण सुबलपुत्र [illegible] शकुनि और दुःशासनने क्या किया? जिस सभामें शर, शक्ति, गदा, खड्ग, तोमर प्रभृति सब अस्त्र शस्त्र-[illegible] हुए थे, नर वानर तथा [illegible] समूह विमान (आस्तरण) [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कौन [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] था? [illegible] कौन जयी कौन पराजित और कौन कृतलक्ष हुए थे? सो सब बातें आप मुझे समझाकर कहिये। (६९-७३)

हे सञ्जय! युद्धमें शोभनेवाले, देवताओंके समान व्रत करनेवाले, कठिन काम करनेवाले पिता भीष्मके मरनेका समाचार सुनके मुझे कुछ शक्ति नहीं रही। पुत्रकी हानिके लिये मेरे हृदयमें महा शोकानल जल उठा था, आपने मानो उस अग्निमें घी देकर उसे और भी प्रदीप्त कर दिया। सब लोकोंमें विख्यात भीष्मको महाभार ग्रहण करके मरते देखकर मालूम होता है, कि मेरे

तस्मान्मे सर्वमाचक्ष्व यद्वृत्तं तत्र सञ्जय ।
यद्वृत्तं तत्र संग्रामे मन्दस्याऽबुद्धिसम्भवम् ॥ ७७ ॥
अपनीतं सुनीतं यत्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ।
यत्कृतं तत्र संग्रामे भीष्मेण जयमिच्छता ॥ ७८ ॥
तेजोयुक्तं कृतास्त्रेण शंस तच्चाऽप्यशेषतः ।
तथा तदभवद्युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ॥ ७९ ॥
क्रमेण येन यस्मिंश्च काले यच्च यथाऽभवत् ॥ ८० ॥ [५७७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि
भगवद्गीतापर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

सञ्जय उवाच— त्वद्युक्तोऽयमनुप्रश्नो महाराज यथाऽर्हसि ।
न तु दुर्योधने दोषमिममासंक्तुमर्हसि ॥ १ ॥
य आत्मनो दुश्चरितादशुभं प्राप्नुयान्नरः ।
एनसा तेन नाऽन्यं स उपाशङ्कितुमर्हति ॥ २ ॥
महाराज मनुष्येषु निन्द्यं यः सर्वमाचरेत् ।
स वध्यः सर्वलोकस्य निन्दितानि समाचरन् ॥ ३ ॥

पुत्र सब शोकग्रस्त होगये हैं। हे सञ्जय! दुर्योधनको जो दुःख हुआ है सो सब सुननेकी मेरी इच्छा होती है; इस लिये वहां जो जो घटना और जो जो बातें हुई थीं सो सब मुझे कहिये। ७३-७७

उस लडाईके मैदानमें, मन्द लोगोंकी बुद्धिके दोषसे जो जो अनीति और सुनीति हुई थीं सो सब मुझे सुनाइये। उस रणक्षेत्रमें, जयकी इच्छा करनेवाले यमके समान भीष्मने तेजकी सहायतासे जो जो काम किये थे; और उस लडाईमें कुरुपाण्डवोंकी जितनी सेना, जिस प्रकारसे, जिस क्रमसे, जिस समय, जिस प्रकारकी हुई थी सो सब बातें आप मुझे अशेषरूपसे कहिये। (७७-८०)[५७७]

भीष्मपर्वमें चौदह अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें पन्द्रह अध्याय।

इतने प्रश्नोंको सुनकर सञ्जय बोले, हे महाराज! आपने जो प्रश्न किये हैं सो आपके योग्य ही है, किन्तु आप दुर्योधनके ऊपर यह दोष मत लगाइये॥ क्योंकि जो मनुष्य अपने बुरे कामोंसे फल पाते हैं, वे अपने अपराधको दूसरोंपर आशंका करनेके योग्य नहीं होते हैं॥ जो दूसरोंके ऊपर निन्दित कामोंका आचरण करता है, वही निन्दित काम करनेवाला मनुष्य सब लोगोंसे मारे जानेके योग्य होता है॥ सञ्जय

निकारो निकृतिप्रज्ञैः पाण्डवैस्त्वत्प्रतीक्षया।
अनुभूतः सहाऽमात्यैः क्षान्तश्च सुचिरं वने ॥ ४ ॥
हयानां च गजानां च राज्ञां चाऽमिततेजसाम्।
प्रत्यक्षं यन्मया दृष्टं दृष्टं योगबलेन च ॥ ५ ॥
शृणु तत्पृथिवीपाल मा च शोके मनः कृथाः।
दिष्टमेतत्पुरा नूनमिदमेव नराधिप ॥ ६ ॥
नमस्कृत्वा पितुस्तेऽहं पाराशर्याय धीमते।
यस्य प्रसादाद्दिव्यं तत्प्राप्तं ज्ञानमनुत्तमम् ॥ ७ ॥
दृष्टिश्चाऽतीन्द्रिया राजन्दूराच्छ्रवणमेव च।
परचित्तस्य विज्ञानमतीतानागतस्य च ॥ ८ ॥
व्युत्थितोत्पत्तिविज्ञानमाकाशे च गतिः शुभा।
अस्त्रैरसङ्गो युद्धेषु वरदानान्महात्मनः ॥ ९ ॥
शृणु मे विस्तरेणेदं विचित्रं परमाद्भुतम्।
भरतानामभूद्युद्धं यथा तल्लोमहर्षणम् ॥ १० ॥

हे भारत! पाण्डवोंने अपने परिवारके सहित आपकी आज्ञामें बहुत दिनतक अपकार सहा और वनवासी होकर बहुत दुःख सहा था; इस लिये उन लोगोंको दोषी ठहराना उचित नहीं है। (१-४)

इतनी बात कह सञ्जय फिर बोले, हे महाराज! घोडे हाथी और अमित तेजस्वी राजा लोगोंके विषयमें मैंने जो कुछ अपनी प्रत्यक्ष आंखोंसे देखा है और जो कुछ मैंने योगबलसे देखा है, वो सब मैं आपके निकट निवेदन करता हूं, आप चित्त लगाकर सुनिये और शोक मत कीजिये। वे सब [illegible] देखने [illegible] निश्चय था [illegible] (५—६)

जिनके प्रसादसे मैंने अनुत्तम दिव्य ज्ञान लाभ किया है; जिन महात्माके वरदानसे मैंने इस युद्धके विषयमें न देखने योग्य चीजोंको देखना, बहुत दूरकी बातोंको सुनना, दूसरेके मनकी बात तथा, बीते और आनेवाले विषयको जान लेना, शास्त्रोंके लङ्घनकारी लोगोंकी उत्पत्तिका कारण-ज्ञान, आकाशमें शुभ गति, और अस्त्र शस्त्रोंसे असङ्ग, आदि गुण प्राप्त किया है; आपके उन्हीं बुद्धिमान पिता पराशर-नन्दन व्यासदेवको नमस्कार करके मैं यह लोमहर्षणजनक कुरु पाण्डवीय परम अद्भुत विचित्र युद्धका वृत्तान्त सविस्तर वर्णन करता हूं, आप सुनिये। (७—१०)

तेष्वनीकेषु यत्तेषु व्यूढेषु च विधानतः ।
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमथाऽब्रवीत् ॥ ११ ॥
दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः ।
अनीकानि च सर्वाणि शीघ्रं त्वमनुचोदय ॥ १२ ॥
अयं स मामभिप्राप्तो वर्षपूगाभिचिन्तितः ।
पाण्डवानां ससैन्यानां कुरूणां च समागमः ॥ १३ ॥
नाऽतः कार्यतमं मन्ये रणे भीष्मस्य रक्षणात् ।
हन्याद्गुप्तो ह्यसौ पार्थान्सोमकांश्च ससृञ्जयान् ॥ १४ ॥
अब्रवीच्च विशुद्धात्मा नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
श्रूयते स्त्री ह्यसौ पूर्वं तस्माद्वर्ज्यो रणे मम ॥ १५ ॥
तस्माद्भीष्मो रक्षितव्यो विशेषेणेति मे मतिः ।
शिखण्डिनो वधे यत्ताः सर्वे तिष्ठन्तु मामकाः ॥ १६ ॥
तथा प्राच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्योत्तरापथाः ।
सर्वथाऽस्त्रेषु कुशलास्ते रक्षन्तु पितामहम् ॥ १७ ॥
अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात्सिंहं महाबलम् ।

उस सम्पूर्ण सेनाके यथाविधान व्यूह रचनामें खडे और सयत्न होजानेपर दुर्योधनने दुःशासनको आदेश किया॥ कि हे दुःशासन ! भीष्मकी रक्षा करने के लिये तुम सब रथोंको जल्द जुतवा लो और बहुत जल्द सब सेनाओंको नियोग करो॥ मैं इतने वरसोंसे कुरुपाण्डवोंकी जिस लडाईमें सेनाओंके एकत्र होनेकी चिन्ता करता था, सो ही आज मेरे सामने उपस्थित हुई है॥ इस लडाईमें भीष्मकी रक्षाको छोडकर और प्रधान काम नहीं मालूम होता है, क्योंकि इनकी रक्षा होनेसे यह पाण्डव, सोमक और सृञ्जय लोगोंका संहार कर सकेंगे॥ (११-१४)

विशुद्धात्मा भीष्म महाशयने कहा है कि " मैं शिखण्डीको नहीं मारूंगा, क्योंकि पहिलेहीसे सुनते आते हैं कि शिखण्डी स्त्री जाति है; इस लिये लडाईमें मैं शिखण्डीको नहीं मारूंगा। इस लिये मेरा विचार है, कि भीष्मकी खूब रक्षा की जाय और हमलोगोंकी ओरके सब लोग शिखण्डीको मारनेकी चेष्टा करें॥ सब शस्त्रोंकी विद्या जानने वाले बडे बडे वीर लोग उत्तर, पश्चिम दक्षिण और पूरब ओर खडे होकर पितामहकी रक्षा करें (१५-१७)

बडा बलवान सिंहको बडि शृगाल

राजेन्द्र तव पुत्राणां पाण्डवानां तथैव च ।
दुष्प्रधृष्याणि चाऽस्त्राणि सशस्त्रकवचानि च ॥ ५ ॥
ततः प्रकाशे सैन्यानि समदृश्यन्त भारत ।
त्वदीयानां परेषां च शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥ ६ ॥
तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदपरिष्कृताः ।
विभ्राजमाना दृश्यन्ते मेघा इव सविद्युतः ॥ ७ ॥
रथानीकान्यदृश्यन्त नगराणीव भूरिशः ।
अतीव शुशुभे तत्र पिता ते पूर्णचन्द्रवत् ॥ ८ ॥
धनुर्भिर्ऋष्टिभिः खड्गैर्गदाभिः शक्तितोमरैः ।
योधाः प्रहरणैः शुभ्रैस्तेष्वनीकेष्ववस्थिताः ॥ ९ ॥
गजाः पदाता रथिनस्तुरगाश्च विशां पते ।
व्यतिष्ठन्वागुराकाराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥
ध्वजा बहुविधाकारा व्यदृश्यन्त समुच्छ्रिताः ।
स्वेषां चैव परेषां च द्युतिमन्तः सहस्रशः ॥ ११ ॥
काञ्चना मणिचित्राङ्गा ज्वलन्त इव पावकाः ।
अर्चिष्मन्तो व्यरोचन्त गजारोहाः सहस्रशः ॥ १२ ॥
महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव ।

सूर्योदयके होनेपर आपके ओर और पाण्डवकी ओरके दुराधर्ष लोग अस्त्र शस्त्र और कवच लेने लगे॥ और दोनों ओर की सेना अस्त्र शस्त्र लिये दृष्टि-पथमें प्रगट होने लगी ॥ (४–६)

सोनेसे विभूषित रथ और हाथी सब बिजली सहित मेघके समान दीखने लगे ॥ और अनेकानेक रथोंके सहित समूची सेना नगरके तुल्य मालूम होने लगी । उसके बीचमें आपके पिता भीष्म पूर्णिमाके चांदके समान अत्यन्त शोभित होने लगे । देखा कि योधालोग धनुष, इषु खड्ग, गदा, शक्ति, तोमर आदि अच्छे अच्छे अस्त्रोंको लेकर अपने अपने दलमें रहते हैं॥ (७–९)

लाखों लाख हाथी, पैदल रथी और घोडे सब मालूम होते थे मानो शत्रुको पकडनेके लिये जाल फैलाये हुए हैं ॥ आपके ओर पाण्डवके पक्षकी चञ्चल चमकीली, हजार हजार अनेक आकारकी ध्वजा शोभा पा रही है ॥ जलती आग के समान मणिजटित सुवर्णमय, चमकीली, गजारोही वीरोंकी हजारों हजार सेना चमक रही थी ॥ [illegible]

अग्रतः सर्वसैन्यानां यत्र शान्तनवोऽग्रणीः ॥ २१ ॥
श्वेतोष्णीषं श्वेतहयं श्वेतवर्माणमच्युतम् ।
अपश्याम महाराज भीष्मं चन्द्रमिवोदितम् ॥ २२ ॥
हेमतालध्वजं भीष्मं राजते स्यन्दने स्थितम् ।
श्वेताभ्र इव तीक्ष्णांशुं ददृशुः कुरुपाण्डवाः ॥ २३ ॥
सृञ्जयाश्च महेष्वासा धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
जृम्भमाणं महासिंहं दृष्ट्वा क्षुद्रमृगा यथा ॥ २४ ॥
धृष्टद्युम्नमुखाः सर्वे समुद्विविजिरे मुहुः ।
एकादशैताः श्रीजुष्टा वाहिन्यस्तव पार्थिव ॥ २५ ॥
पाण्डवानां तथा सप्त महापुरुषपालिताः ।
उन्मत्तमकरावर्तौ महाग्राहसमाकुलौ ॥ २६ ॥
युगान्ते समवेतौ द्वौ दृश्येते सागराविव ।
नैव नस्तादृशो राजन्दृष्टपूर्वो न च श्रुतः ।
अनीकानां समेतानां कौरवाणां तथाविधः ॥ २७ ॥ [६२४]

इति श्रीमहाभारते ० भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने षडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इसके अलावे कौरवोंकी धार्तराष्ट्री एक अक्षौहिणी सेनाने उन दशों अक्षौहिणीयोंके आगे होकर ग्यारह अक्षौहिणी पूरी की और इस सरपूर्ण ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके प्रधान सेनापति शान्तनुपुत्र भीष्म हुए ॥ हे महाराज ! वह अक्षय पुरुष भीष्मके श्वेतवर्ण उष्णीष, घोडे और वर्मके द्वारा उनको उदय को प्राप्त हुए चन्द्रके समान देखने लगे ॥ जिसकी हेममय तालध्वजा शोभा पाती थी, उसी रजतमय रथमें बैठे भीष्मको कौरव और पाण्डव लोग शुभ्र मेघमें छिपे हुए सूर्यके समान देखने लगे ॥ २१-२३ ॥

आगे रहनेवाले धृष्टद्युम्न आदि बडे धनुर्द्धर सृञ्जय और पाण्डव लोग भीष्म को सन्मुख आये देखकर कांपने लगे । जिस तरहसे क्रोधित सिंहको देखके क्षुद्र मृग सब उद्विग्न होते है वैसे ही धृष्टद्युम्न आदि सब लोग बारबार घबडा गये । हे राजन् ! जैसे आपकी ओर यह ग्यारह दल श्री सम्पन्न सेना प्रधान प्रधान पुरुषोंके द्वारा रक्षित हुई थी ॥ वैसे ही पाण्डवोंकी ओर भी सात दल सेना प्रधान प्रधान पुरुषोंसे सुरक्षित हुई थी । इन दोनों दलोंकी दो दल सेना उन्मत्त मकराह समूहसे भरे, और बडे ग्राहोंसे पूर्ण हुए युगके अन्तकाल के समुद्रोंके समान दीखने लगी । हे

इदं वः क्षत्रिया द्वारं स्वर्गायाऽपावृतं महत्।
गच्छध्वं तेन शक्रस्य ब्रह्मणः सहलोकताम् ॥ ८ ॥
एष वः शाश्वतः पन्थाः पूर्वैः पूर्वतरैः कृतः।
सम्भावयध्वमात्मानमव्यग्रमनसो युधि ॥ ९ ॥
नाभागोऽथ ययातिश्च मान्धाता नहुषो नृगः।
संसिद्धाः परमं स्थानं गताः कर्मभिरीदृशैः ॥ १० ॥
अधर्मः क्षत्रियस्यैष यद्व्याधिमरणं गृहे।
यदाजौ निधनं याति सोऽस्य धर्मः सनातनः ॥ ११ ॥
एवमुक्ता महीपाला भीष्मेण भरतर्षभ।
निर्ययुः स्वान्यनीकानि शोभयन्तो रथोत्तमैः ॥ १२ ॥
स तु वैकर्त्तनः कर्णः सामात्यः सह बन्धुभिः।
न्यासितः समरे शस्त्रं भीष्मेण भरतर्षभ ॥ १३ ॥
अपेतकर्णाः पुत्रास्ते राजानश्चैव तावकाः।
निर्ययुः सिंहनादेन नादयन्तो दिशो दश ॥ १४ ॥
श्वेतैश्छत्रैः पताकाभिर्ध्वजवारणवाजिभिः।

बुलाकर कहने लगे॥ कि हे क्षत्रियो! आप लोगोंके लिये यह बडा स्वर्गद्वार खुला है इस द्वार होकर इन्द्रलोक और ब्रह्मलोक जाइये॥ पहिलेके ऋषियोंने आप लोगोंके लिये यही राह बतलाई है। इस लिये आप अव्यग्र चित्त होकर लडाईमें प्रवृत्त हो॥ नाभाग, ययाति मान्धाता, नहुष, और नृग आदि राजाओंने यही कर्म करके परम धाम पाया था। घरमें रहकर रोगसे साथ मरना ही क्षत्रियोंके लिये बडा भारी अधर्म है; और लडाईमें लडते शस्त्रसे मरजाना ही उनके लिये सनातन धर्म है। (८-११)

इतनी बात कह सञ्जय बोले हे भरतप्रवर! महीपाल लोगोंको जब भीष्म महाशय इस प्रकार कह चुके, तब सब राजालोग उत्तम उत्तम रथोंमें बैठकर शोभायमान होनेके उपरान्त अपनी अपनी सेनामें चले गये॥ हे भारत! विकर्त्तनके पुत्र कर्ण अपने अमात्यों तथा बन्धुओंको लेकर भीष्मके लिये अस्त्र परित्याग करनेके बाद लडाईसे निवृत्त हुए थे। तुम्हारे [illegible] उनको छोडकर आपके पक्षके राजा लोग और आपके बेटे सब सिंहनादसे दसों दिशाओंको [illegible] अपनी अपनी सेनामें गये। (१२-१४)

इस [illegible]

तेषामपि महोत्सेधाः शोभयन्तो रथोत्तमान्॥ २३ ॥
भ्राजमाना व्यरोचन्त जाम्बूनदमया ध्वजाः ।
जाम्बूनदमयी वेदी कमण्डलुविभूषिता ॥ २४ ॥
केतुराचार्यमुख्यस्य द्रोणस्य धनुषा सह ।
अनेकशतसाहस्रमनीकमनुकर्षतः ॥ २५ ॥
महान्दुर्योधनस्याऽऽसीन्नागो मणिमयो ध्वजः ।
तस्य पौरवकालिङ्गकाम्बोजाः ससुदक्षिणाः ॥ २६ ॥
क्षेमधन्वा च शल्यश्च तस्थुः प्रमुखतो रथाः ।
स्यन्दनेन महार्हेण केतुना वृषभेण च ।
प्रकर्षन्नेव सेनाग्रं मागधस्य कृपो ययौ ॥ २७ ॥
तदङ्गपतिना गुप्तं कृपेण च मनस्विना ।
शारदाम्बुधरप्रख्यं प्राच्यानां सुमहद्बलम् ॥ २८ ॥
अनीकप्रमुखे तिष्ठन्वराहेण महायशाः ।
शुशुभे केतुमुख्येन राजतेन जयद्रथः ॥ २९ ॥
शतं रथसहस्राणां तस्याऽऽसन्वशवर्त्तिनः ।
अष्टौ नागसहस्राणि सादिनामयुतानि षट् ॥ ३० ॥
तत्सिन्धुपतिना राज्ञा पालितं ध्वजिनीमुखम् ।

अश्वत्थामा आदिके पीछे चले। इन लोगोंकी चमकती हुई, सोनेरी लम्बी लम्बी पताका उत्कृष्ट रथोंको सुशोभित करके विराजमान होने लगी। १९-२४

आचार्योंमें प्रधान द्रोणकी ध्वजामें कमण्डलु और धनुषकी आकृतिसे विभूषित सोनेकी वेदी शोभा पाने लगी। लाखों सेनाओंके परिचालन करनेवाले दुर्योधनकी ध्वजामें मणिका नाग विराजमान हुआ। पौरव, कलिङ्गके राजा, काम्बोजके राजा सुदक्षिण क्षेमधन्वा और शल्य ये ही लोग रथी दुर्योधनके आगे चले। कृपाचार्य महार्ह रथपर सवार होके बैलके चिह्नवाली ध्वजासे सुशोभित होकर, मागध सेनाको परिचालन करके उसके आगे चले॥ २५-२७

शरत्कालकी घनघोर घटाके समान प्राच्य देशकी वह बड़ी सेना अङ्गराज कर्णपुत्र वृषकेतु तथा मनस्वी कृपसे रक्षित हुई। बड़े यशवाले जयद्रथ सूअरके चिह्नवाली प्रधान ध्वजासे सुशोभित होकर सेनाके सामने खड़े हुए। दुर्योधनके आज्ञाकारी जयद्रथके साथ सौ रथ, आठ हजार हाथी, और साठ हजार

द्रोणेन विहितो राजन्राज्ञा शान्तनवेन च ।
तथैवाऽऽचार्यपुत्रेण बाह्लीकेन कृपेण च ॥ ३९ ॥ [६६३]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच -- ततो मुहूर्तात्तुमुलः शब्दो हृदयकम्पनः ।
अश्रूयत महाराज योधानां प्रयुयुत्सताम् ॥ १ ॥
शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च वारणानां च बृंहितैः ।
नेमिघोषै रथानां च दीर्यतीव वसुन्धरा ॥ २ ॥
हयानां हेषमाणानां योधानां चैव गर्जताम् ।
क्षणेनैव नभो भूमिः शब्देनाऽऽपूरितं तदा ॥ ३ ॥
पुत्राणां तव दुर्धर्ष पाण्डवानां तथैव च ।
समकम्पन्त सैन्यानि परस्परसमागमे ॥ ४ ॥
तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ।
भ्राजमाना व्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ ५ ॥
ध्वजा बहुविधाकारास्तावकानां नराधिप ।
काञ्चनाङ्गदिनो रेजुर्ज्वलिता इव पावकाः ॥ ६ ॥
स्वेषां चैव परेषां च समदृश्यन्त भारत ।
महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव ॥ ७ ॥

लगी। (३६-३९) [६६३]

भीष्मपर्वमें सतरह अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें अठारह अध्याय।

इतनी कथा सुनाकर सञ्जय फिर कहने लगे, हे महाराज! तब एक मुहूर्तके बाद लडनेकी इच्छावाले योधोंके हृदय विदारक शब्द सुन पडने लगे। शङ्ख और दुन्दुभीकी बोली, हाथियोंका चीत्कार, रथोंकी घरघराहट आदि द्वारा पृथ्वी फटती सी मालूम होने लगी॥ तब घोडोंकी हिनहिनाहट और योधोंके चिल्लानेसे पृथ्वी और आकाश दोनों पूर्ण होगये। (१-३)

आपके लडकोंकी और पाण्डवोंकी सेना आपसके समागममें कांपने लगी॥ सब रणस्थलमें सोनेसे मढे रथ और हाथीके झुण्ड बिजली सहित मेघके समान शोभित होने लगे॥ हे नराधिप! आपकी ओर सोनेके कामवाली ध्वजा सब जलती हुई आगके समान चमकने लगी। जैसे महेन्द्रके घरमें उत्तम महेन्द्रकेतु होता है वैसे आपके पक्षकी और पाण्डवोंके पक्षकी पताका सब देख पडने लगी। (४-७)

द्रोणेन विहितो राजन्राज्ञा शान्तनवेन च ।
तथैवाऽऽचार्यपुत्रेण बाह्लीकेन कृपेण च ॥ ३९ ॥ [६६३]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच -- ततो मुहूर्त्तात्तुमुलः शब्दो हृदयकम्पनः ।
अश्रूयत महाराज योधानां प्रयुयुत्सताम् ॥ १ ॥
शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च वारणानां च बृंहितैः ।
नेमिघोषै रथानां च दीर्यतीव वसुन्धरा ॥ २ ॥
हयानां हेषमाणानां योधानां चैव गर्जताम् ।
क्षणेनैव नभो भूमिः शब्देनाऽऽपूरितं तदा ॥ ३ ॥
पुत्राणां तव दुर्धर्ष पाण्डवानां तथैव च ।
समकम्पन्त सैन्यानि परस्परसमागमे ॥ ४ ॥
तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ।
भ्राजमाना व्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ ५ ॥
ध्वजा बहुविधाकारास्तावकानां नराधिप ।
काञ्चनाङ्गदिनो रेजुर्ज्वलिता इव पावकाः ॥ ६ ॥
स्वेषां चैव परेषां च समदृश्यन्त भारत ।
महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव ॥ ७ ॥

लगी। (३६-३९)[६६३]

भीष्मपर्वमें सत्रह अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें अठारह अध्याय।

इतनी कथा सुनाकर सञ्जय फिर कहने लगे, हे महाराज! तब एक मुहूर्तके बाद लडनेकी इच्छावाले योधोंके हृदय विदारक शब्द सुन पडने लगे। शङ्ख और दुन्दुभीकी बोली, हाथियोंका चीत्कार, रथोंकी घरघराहट आदि द्वारा पृथ्वी फटती सी मालूम होने लगी॥ तब घोडोंकी हिनहिनाहट और योधोंके चिल्लानेसे पृथ्वी और आकाश दोनों पूर्ण होगये। (१-३)

आपके लडकोंकी और पाण्डवोंकी सेना आपसके समागममें कांपने लगी॥ सब रणस्थलमें सोनेसे मढे रथ और हाथीके झुण्ड बिजली सहित मेघके समान शोभित होने लगे॥ हे नराधिप! आपकी ओर सोनेके कामवाली ध्वजा सब जलती हुई आगके समान चमकने लगी। जैसे महेन्द्रके घरमें उत्तम महेन्द्रकेतु होते हैं वैसे आपके पक्षकी और पाण्डवोंके पक्षकी पताका सब देख पडने लगीं। (४-७)

अनन्तरथनागाश्वमशोभत महद्बलम् ॥ ३१ ॥
षष्ट्या रथसहस्रैस्तु नागानामयुतेन च ।
पतिः सर्वकलिङ्गानां ययौ केतुमता सह ॥ ३२ ॥
तस्य पर्वतसङ्काशा व्यरोचन्त महागजाः ।
यन्त्रतोमरतूणीरैः पताकाभिः सुशोभिताः ॥ ३३ ॥
शुशुभे केतुमुख्येन पावकेन कलिङ्गकः ।
श्वेतच्छत्रेण निष्केण चामरव्यजनेन च ॥ ३४ ॥
केतुमानपि मातङ्गं विचित्रपरमांकुशम् ।
आस्थितः समरे राजन्मेघस्थ इव भानुमान् ॥ ३५ ॥
तेजसा दीप्यमानस्तु वारणोत्तममास्थितः ।
भगदत्तो ययौ राजा यथा वज्रधरस्तथा ॥ ३६ ॥
गजस्कन्धगतावास्तां भगदत्तेन सम्मितौ ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ केतुमन्तमनुव्रतौ ॥ ३७ ॥
स रथानीकवान्व्यूहो हस्त्यङ्गो नृपशीर्षवान् ।
वाजिपक्षः पतत्युग्रः प्रहसन्सर्वतोमुखः ॥ ३८ ॥

घुडसवार थे। तब अनगिनत रथ हाथी घोडेवाली वह बडी सेना सिन्धुपति राजा जयद्रथसे रक्षित होने लगी ॥ (२८-३१)

तब समय कालिङ्ग देशके राजा केतुमान् साठ हजार रथ और अगणित हाथी लेकर चले ॥ इस सेनामें बडे पहाडोंके समान हाथियोंके झुण्ड चक्र, तोमर, तूणीर और पताकाओंसे शोभित होकर अत्यन्त सुन्दर दीखने लगे ॥ कलिङ्ग राज अग्निके समान मुख्यध्वजा, श्वेत छत्र, कंठा और चंवरसे शोभा पानेलगे ॥ केतुमान भी परम अंकुशयुक्त हाथीपर सवार होकर मेघमें बैठे सूर्यके समान समरमें समागम करने लगे ॥ (३२-३५)

तेजसे उजियारे राजा भगदत्त प्रधान हाथीपर सवार होकर वज्र रखने वाले इन्द्रके समान जाने लगे ॥ भगदत्त के समान अवन्ति देशके विन्द और अनुविन्दने केतुमान्के पीछे पीछे हाथी पर सवार होकर समरयात्रा की ॥ हे महाराज ! द्रोणाचार्य, राजा शान्तनुके पुत्र भीष्म, आचार्यके पुत्र अश्वत्थामा, वाह्लीक और कृपाचार्य, इन लोगोंने जिस रूपसे रथके साथ सेनाकी व्यूह रचना की, उस व्यूहके अङ्ग सब हाथी; मस्तक सब राजा, और पंख सब घोडे हुए। सर्वतोमुख ऐसी दारुण व्यूह की मानो हंसी करते हुए उत्पात्ति होने

द्रोणेन विहितो राजन्राज्ञा शान्तनवेन च ।
तथैवाऽऽचार्यपुत्रेण बाह्लीकेन कृपेण च ॥ ३९ ॥ [६६३]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

सञ्जय उवाच -- ततो मुहूर्त्तात्तुमुलः शब्दो हृदयकम्पनः ।
अश्रूयत महाराज योधानां प्रयुयुत्सताम् ॥ १ ॥
शङ्खदुन्दुभिघोषैश्च वारणानां च बृंहितैः ।
नेमिघोषै रथानां च दीर्यतीव वसुन्धरा ॥ २ ॥
हयानां हेषमाणानां योधानां चैव गर्जताम् ।
क्षणेनैव नभो भूमिः शब्देनाऽऽपूरितं तदा ॥ ३ ॥
पुत्राणां तव दुर्धर्ष पाण्डवानां तथैव च ।
समकम्पन्त सैन्यानि परस्परसमागमे ॥ ४ ॥
तत्र नागा रथाश्चैव जाम्बूनदविभूषिताः ।
भ्राजमाना व्यदृश्यन्त मेघा इव सविद्युतः ॥ ५ ॥
ध्वजा बहुविधाकारास्तावकानां नराधिप ।
काञ्चनाङ्गदिनो रेजुर्ज्वलिता इव पावकाः ॥ ६ ॥
स्वेषां चैव परेषां च समदृश्यन्त भारत ।
महेन्द्रकेतवः शुभ्रा महेन्द्रसदनेष्विव ॥ ७ ॥

लगी। (३६-३९) [६६३]

भीष्मपर्वमें सतरह अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें अठारह अध्याय।

इतनी कथा सुनाकर सञ्जय फिर कहने लगे, हे महाराज! तब एक मुहूर्तके बाद लडनेकी इच्छावाले योधाओंके हृदय विदारक शब्द सुन पडने लगे। शङ्ख और दुन्दुभीकी बोली, हाथियोंका चीत्कार, रथोंकी घरघराहट आदि द्वारा पृथ्वी फटती सी मालूम होने लगी॥ तब घोडोंकी हिनहिनाहट और योधोंके चिल्लानेसे पृथ्वी और आकाश दोनों पूर्ण होगये। (१-३)

आपके लडकोंकी और पाण्डवोंकी सेना आपसके समागममें कांपने लगी॥ सब रणस्थलमें सोनेसे मढे रथ और हाथीके झुण्ड बिजली सहित मेघके समान शोभित होने लगे॥ हे नराधिप! आपकी ओर सोनेके कामवाली ध्वजा सब जलती हुई आगके समान चमकने लगी। जैसे महेन्द्रके घरमें उत्तम महेन्द्रकेतु होता है, वैसे आपके पक्षकी और पाण्डवोंके पक्षकी पताका सब देख पडने लगी। (४-७)

काञ्चनैः कवचैर्वीरा ज्वलनार्कसमप्रभैः।
सन्नधाः समदृश्यन्त ज्वलनार्कसमप्रभाः ॥ ८ ॥
कुरुयोधवरा राजन्विचित्रायुधकार्मुकाः।
उद्यतैरायुधैश्चित्रैस्तलबद्धाः पताकिनः ॥ ९ ॥
ऋषभाक्षा महेष्वासाश्चमूमुखगता बभुः।
पृष्ठगोपास्तु भीष्मस्य पुत्रास्तव नराधिप।
दुःशासनो दुर्विषहो दुर्मुखो दुःसहस्तथा ॥ १० ॥
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः।
सत्यव्रतः पुरुमित्रो जयो भूरिश्रवाः शलः ॥ ११ ॥
रथा विंशतिसाहस्रास्तथैषामनुयायिनः।
अभीषाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः ॥ १२ ॥
शाल्वा मत्स्यास्तथाऽम्बष्ठास्त्रिगर्त्ताः केकयास्तथा।
सौवीराः कैतवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यवासिनः ॥१३॥
द्वादशैते जनपदाः सर्वे शूरास्तनुत्यजः।
महता रथवंशेन ते ररक्षुः पितामहम् ॥ १४ ॥
अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम्।
मागधो यत्र नृपतिस्तद्रथानीकमन्वयात् ॥ १५ ॥

चमकते हुए सूर्यके समान तेजवाले सोनेके कवचोंको पहिरे योधा लोग तेजमान सूर्यके समान दीखने लगे। हे महाराज! बड़ी बड़ी आंखवाले, महाधनुर्द्धारी, विचित्र आयुध और कार्मुक को रखनेवाले बलवान् कुरुपक्षी वीर लोग पताका और विचित्र अस्त्र शस्त्रोंके द्वारा सेनाके आगे बड़ी शोभा पाने लगे। हे नराधिप! आपके बेटे दुःशासन, दुर्विषह, दुर्मुख, विविंशति चित्रसेन, महारथ विकर्ण और सत्य जय, भूरिश्रवा, और शल यह लोग भी भीष्मकी रक्षा करने लगे। (८–१२)

बीस हजार रथी इनके साथ हुए और अभीषाह, शूरसेन, शिवि, वसाति, शाल्व, मत्स्य, अम्बष्ठ, त्रैगर्त्त, केकय, सौवीर, कितव और प्राच्य, पश्चिम, और उत्तर बारह जनपदोंके यह सब शूर तनुत्याग करनेकी प्रतिज्ञा करके बहुत रथोंको साथ लेकर कुरुपितामह भीष्मकी रक्षा करने लगे। मगधके राजा दस हजार हाथीकी सेना लेकर उस रथवाली सेनाके अनुगामी हुए ॥ (१३–१५)

रथानां चक्ररक्षाश्च पादरक्षाश्च दन्तिनाम्।
अभवन्वाहिनीमध्ये शतानामयुतानि षट् ॥ १६ ॥
पादाताश्चाऽग्रतोऽगच्छन्धनुश्चर्मासिपाणयः।
अनेकशतसाहस्रा नखरप्रासयोधिनः ॥ १७ ॥
अक्षौहिण्यो दशैका च तव पुत्रस्य भारत।
अदृश्यन्त महाराज गङ्गेव यमुनान्तरा ॥ १८ ॥ [६८१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- अक्षौहिण्यो दशैका च व्यूढा दृष्ट्वा युधिष्ठिरः।
कथमल्पेन सैन्येन प्रत्यव्यूहत पाण्डवः ॥ १ ॥
यो वेद मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम्।
कथं भीष्मं स कौन्तेयः प्रत्यव्यूहत सञ्जय ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच- धार्तराष्ट्राण्यनीकानि दृष्ट्वा व्यूढानि पाण्डवः।
अभ्यभाषत धर्मात्मा धर्मराजो धनञ्जयम् ॥ ३ ॥
महर्षेर्वचनात्तात वेदयन्ति बृहस्पतेः।
संहतान्योधयेदल्पान्कामं विस्तारयेद्बहून् ॥ ४ ॥

सबकी सेनामें साठ लाख आदमी रथमण्डलके चक्ररक्षक और दन्तिदलके पादरक्षक हुए ॥ नखर और प्रास अस्त्रयोधी कई लाख पैदल, असि चर्म और धनुष हाथमें लेकर आगे गये। हे महाराज! आपके पुत्रकी ग्यारह अक्षौहिणी सेना वैसी ही शोभती थी जैसे गंगाजीके बीचमें यमुनाजीका सङ्गम हुआ हो ॥ (१६-१८) [६८१]

भीष्मपर्वमें अठारह अध्याय समाप्त।

व्यूह रचनामें बंधी हुई देखकर अपनी छोटी सेनासे उनके विरुद्ध किस प्रकारसे व्यूहरचना की? ॥ जो लोग मनुष्योंकी, देवताओंकी, गन्धर्वोंकी और राक्षसोंकी व्यूहरचना जानते हैं उनके विरुद्ध पाण्डुपुत्रोंने किस प्रकार प्रतिव्यूह रचा? (१-२)

इतनी बात सुनकर सञ्जय बोले, कि धर्मात्मा धर्मराज युधिष्ठिर धृतराष्ट्रके पुत्रोंकी सेनाका व्यूह देखकर धनञ्जयसे कहने लगे ॥ हे अर्जुन! महर्षि बृहस्प-

सूचीमुखमनीकं स्यादल्पानां बहुभिः सह ।
अस्माकं च तथा सैन्यमल्पीयः सुतरां परैः ॥ ५ ॥
एतद्वचनमाज्ञाय महर्षेर्व्यूह पाण्डव ।
एतच्छ्रुत्वा धर्मराजं प्रत्यभाषत पाण्डवः ॥ ६ ॥
एष व्यूहामि ते व्यूहं राजसत्तम दुर्जयम् ।
अचलं नाम वज्राख्यं विहितं वज्रपाणिना ॥ ७ ॥
यः स वात इवोद्धूतः समरे दुःसहः परैः ।
स नः पुरो योत्स्यते वै भीमः प्रहरतां वरः ॥ ८ ॥
तेजांसि रिपुसैन्यानां मृद्नन्पुरुषसत्तमः ।
अग्रेऽग्रणीर्योत्स्यति नो युद्धोपायविचक्षणः ॥ ९ ॥
यं दृष्ट्वा कुरवः सर्वे दुर्योधनपुरोगमाः ।
निवर्तिष्यन्ति सन्त्रस्ताः सिंहं क्षुद्रमृगा यथा ॥ १० ॥
तं सर्वे संश्रयिष्यामः प्राकारमकुतोभयाः ।
भीमं प्रहरतां श्रेष्ठं देवराजमिवाऽमराः ॥ ११ ॥

नुसार विस्तार करके लडना चाहिये ॥ इस लिये बडी सेनासे लडनेके समय छोटी सेनाको चाहिये, कि सूचीमुख सैन्यव्यूह करे। सो विपक्षियोंकी अपेक्षा हम लोगोंकी सेना छोटी है ॥ इस कारण महर्षि बृहस्पतिकी बातोंको स्मरण करके सेनाका व्यूह रचो ॥ (३-६)

धर्मराजकी इन बातोंको सुनकर अर्जुनने उत्तर दिया ॥ हे राजसत्तम! वज्रपाणि इन्द्र जिस अचल व्यूहका विधान करते हैं, मैं वही दुर्जय व्यूह आपके निमित्त रचता हूं। इस व्यूहका नाम वज्र व्यूह है। जो चलती हुई तेज हवाके समान है, लडाईमें शत्रु जिन्हें जीत नहीं सकते और प्रहारकारोंमें जिनकी गिनती सबसे पहिले होती है, सो ही भीमसेन हम लोगोंके आगे रहकर लडाई करेंगे, वह युद्धके उपाय सोचनेमें विचक्षण है। वही पुरुषसत्तम भीमसेन हम लोगोंके सेनापति होकर दुश्मनोंकी सेनाको तेजसे मर्दन करते हमारे आगे आगे चलेंगे ॥ (६-९)

जैसे सिंहको देखकर क्षुद्र शृगाल सब डरसे कांपते भागते हैं, वैसे ही उनको देखकर दुर्योधन आदि बिलकुल पार्थिव लोग थर्रा जायंगे ॥ और जैसे देवता लोग देवराज इन्द्रके शरणागत होते हैं, वैसे ही हम लोग प्रहारक प्रधान भीमको प्राकार (कोटकी भीत) स्वरूप करके प्रस्थान करेंगे और सब

न हि सोऽस्ति पुमाँल्लोके यः संक्रुद्धं वृकोदरम् ।
द्रष्टुमत्युग्रकर्माणं विषहेत नरर्षभम् ॥ १२ ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुस्तथा चक्रे धनञ्जयः ।
व्यूह्य तानि बलान्याशु प्रययौ फाल्गुनस्तथा ॥ १३ ॥
सम्प्रयातान्कुरून्दृष्ट्वा पाण्डवानां महाचमूः ।
गङ्गेव पूर्णा स्तिमिता स्पन्दमाना व्यदृश्यत ॥ १४ ॥
भीमसेनोऽग्रणीस्तेषां धृष्टद्युम्नश्च वीर्यवान् ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टकेतुश्च पार्थिवः ॥ १५ ॥
विराटश्च ततः पश्चाद्राजाऽथाऽक्षौहिणीवृतः ।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षत पृष्ठतः ॥ १६ ॥
चक्ररक्षौ तु भीमस्य माद्रीपुत्रौ महाद्युती ।
द्रौपदेयाः ससौभद्राः पृष्ठगोपास्तरस्विनः ॥ १७ ॥
धृष्टद्युम्नश्च पाञ्चाल्यस्तेषां गोप्ता महारथः ।
सहितः पृतनाशूरै रथमुख्यैः प्रभद्रकैः ॥ १८ ॥
शिखण्डी तु ततः पश्चादर्जुनेनाऽभिरक्षितः ।

प्रकारके भयसे निश्चिन्त हो जायंगे। इस सं-
सारमें कोई मनुष्य ऐसा नहीं है जो अत्य-
न्त उग्र काम करनेवाले पुरुषप्रवर क्रोधि-
त भीमसेनको सामने देख सके ॥ १०-१२

इतनी बात कहकर महात्मा धनञ्जय
फाल्गुनने अपने कथनानुसार काम
किया और अपनी समूची सेनाकी जल्दी
व्यूह रचना करके आगे बढने लगे ॥
कौरवोंकी सेनाको भी आगे बढते दे-
खकर पाण्डवोंकी सेना ऐसे ही दीखने
लगी। जैसी जीव जन्तुओंके सहित
समुद्र और धीरे धीरे चलनेवाली श्री
गङ्गाजीकी छटा होती है। पाण्डवोंकी
सेनाके आगे आगे महात्मा भीमसेन, वीर्य-
वान् धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, राजा धृष्ट-
केतु और महाराज विराट चले। लेकिन
महाराज विराट अपनी एक अक्षौहिणी
सेनाको लिये अपने भाई और पुत्रोंके
सहित पाण्डव सेनाके पीछे जाकर उनके
पृष्ठरक्षक हुए ॥ (१३-१६)

भीमसेनकी चक्ररक्षाके लिये महा
तेजस्वी नकुल और सहदेव तत्पर हुए।
सुभद्राके वेगशील पुत्र और द्रौपदीके
बेटे सब भीमसेनके पृष्ठरक्षक हुए ॥
पाञ्चाल राजनन्दन महारथ धृष्टद्युम्न,
सेनाओंमें शूर और रथि प्रधान प्रभ-
द्रक लोगोंके साथ उन सबके रक्षक हुए ॥
तदनन्तर शिखण्डीकी रक्षा [illegible]

यत्तो भीष्मविनाशाय प्रययौ भरतर्षभ ॥ १९ ॥
पृष्ठतोऽप्यर्जुनस्याऽऽसीद्युयुधानो महाबलः ।
चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ ॥ २० ॥
कैकेयो धृष्टकेतुश्च चेकितानश्च वीर्यवान् ।
भीमसेनो गदां बिभ्रद्वज्रसारमयीं दृढाम् ॥
चरन्वेगेन महता समुद्रमपि शोषयेत् ॥ २१ ॥
एते तिष्ठन्ति सामात्याः प्रेक्षन्तस्ते जनाधिप ।
धृतराष्ट्रस्य दायादा इति बीभत्सुरब्रवीत् ॥ २२ ॥
भीमसेनं तदा राजन्दर्शयस्व महाबलम् ।
ब्रुवाणं तु तथा पार्थं सर्वसैन्यानि भारत ॥ २३ ॥
अपूजयंस्तदा वाग्भिरनुकूलाभिराहवे ।
राजा तु मध्यमानीके कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ २४ ॥
बृहद्भिः कुञ्जरैर्मत्तैश्चलद्भिरचलैरिव ।
अक्षौहिण्याऽथ पाञ्चाल्यो यज्ञसेनो महामनाः ।
विराटमन्वयात्पश्चात्पाण्डवार्थे पराक्रमी ॥ २५ ॥

करने लगे । तब भीष्मको मार डालनेके निमित्त शिखण्डी भी आगे बढे ॥ अर्जुनकी पृष्ठ-रक्षाके निमित्त महाबल युयुधान यत्न करने लगे और उनकी चक्र-रक्षा करनेमें पाञ्चाल युधामन्यु और उत्तमौजा तथा कैकेय लोग, धृष्टकेतु और वीर्यवान् चेकितान तत्पर हुए । (१९–२१)

इतनी कथा सुनाकर सञ्जय बोले, महाराज ! इसी समय महाबल भीमसेनको आगे दिखलाकर राजा युधिष्ठिरसे बीभत्सु कहने लगे कि हे जनाधिप ! यह भीमसेन यदि वज्रसारमय दृढ गदा लेकर अत्यन्त वेगसे विचरण करें तो समुद्रको भी सोख सकते हैं । और इन्हींको देखकर राजा धृतराष्ट्रके यह सब लडके अपने कुटुम्बोंके साथ अवस्थान कर रहे हैं । महाबल भीमसेनको इन सबसे दिखाओ । सञ्जय बोले, हे भारत ! जब अर्जुनने इस तरहकी बात रणभूमिमें कही तब लोगोंने भी उसी तरहकी बात कहकर उनकी प्रतिष्ठा की । २१–२४

परन्तु कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर सेनाके बीचमें चलते हुए पहाडोंके समान विशाल विशाल मत्त हाथीयोंसे घिरे ठहरे रहे । महामनस्वी पराक्रमशाली पाञ्चाल राज यज्ञसेन एक अक्षौहिणी सेना लेकर पाण्डवोंकी सहायता करनेके निमित्त विराटराजके पीछे जा खडे हुए ।

तेषामादित्यचन्द्राभाः कनकोत्तमभूषणाः ।
नानाचित्रधरा राजन्रथेष्वासन्महाध्वजाः ॥ २६ ॥
समुत्सार्य ततः पश्चाद्धृष्टद्युम्नो महारथः ।
भ्रातृभिः सह पुत्रैश्च सोऽभ्यरक्षद्युधिष्ठिरम् ॥ २७ ॥
त्वदीयानां परेषां च रथेषु विपुलान्ध्वजान् ।
अभिभूयाऽर्जुनस्यैको रथे तस्थौ महाकपिः ॥ २८ ॥
पदातास्त्वग्रतोऽगच्छन्नसिशक्त्यृष्टिपाणयः ।
अनेकशतसाहस्रा भीमसेनस्य रक्षिणः ॥ २९ ॥
वारणा दशसाहस्राः प्रभिन्नकरटामुखाः ।
शूरा हेममयैर्जालैर्दीप्यमाना इवाऽचलाः ॥ ३० ॥
क्षरन्त इव जीमूता महार्हाः पद्मगन्धिनः ।
राजानमन्वयुः पश्चाज्जीमूता इव वार्षिकाः ॥ ३१ ॥
भीमसेनो गदां भीमां प्रकर्षन्परिघोपमाम् ।
प्रचकर्ष महासैन्यं दुराधर्षो महामनाः ॥ ३२ ॥

इन सब राजाओंके रथपर सूर्य और चन्द्रमाके समान ज्योतिमती, उत्तम सोनेके गहनोंसे शोभित, अनेक प्रकारके चिन्होंसे उपलक्षित, बडी बडी ध्वजाएं विराज रही थीं ॥ महारथ धृष्टद्युम्न इन सब राजाओंके पीछे जाकर अपने लडके और भाइयोंको सङ्ग लेकर राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करनेमें तत्पर हुए ॥ अर्जुनकी ध्वजामें एक ही महाकपि पाण्डव और कौरवोंकी सब विपुल ध्वजाओंको अभिभव करते हुए बैठे थे। २५–२८

हाथी चले। ये हाथी, शौर्य सम्पन्न थे, इनके गण्डस्थलमें मद चूता था और उससे पद्मके समान सुगन्धि निकलती थी। इन हाथियोंपर यल ऐसी उत्तम थी, कि हाथी सब चमकीले दीखते थे। जैसे पानी बरसानेवाले मेघोंकी शोभा होती है, वैसे ही ये हेममय हाथी सब रणस्थलमें शोभित थे ॥ पृथ्वीके देश विभागोंको विभिन्न करनेवाले विशाल पहाडोंसे इन हाथियोंकी तुलना की जा सकती थी। (२९—३२)

तमर्कमिव दुष्प्रेक्ष्यं तपन्तमिव वाहिनीम् ।
न शेकुः सर्वयोधास्ते प्रतिवीक्षितुमन्तिके ॥ ३३ ॥
वज्रो नामैष स व्यूहो निर्भयः सर्वतोमुखः ।
चापविद्युद्ध्वजो घोरो गुप्तो गाण्डीवधन्वना ॥ ३४ ॥
यं प्रतिव्यूह्य तिष्ठन्ति पाण्डवास्तव वाहिनीम् ।
अजेयो मानुषे लोके पाण्डवैरभिरक्षितः ॥ ३५ ॥
सन्ध्यां तिष्ठत्सु सैन्येषु सूर्यस्योदयनं प्रति ।
प्रावात्सपृषतो वायुर्निरभ्रे स्तनयित्नुमान् ॥ ३६ ॥
विष्वग्वाताश्च विववुर्नीचैः शर्करकर्षिणः ।
रजश्चोद्धूयत महत्तम आच्छादयज्जगत् ॥ ३७ ॥
पपात महती चोल्का प्राङ्मुखी भरतर्षभ ।
उद्यन्तं सूर्यमाहत्य व्यशीर्यत महास्वना ॥ ३८ ॥
अथ संनह्यमानेषु सैन्येषु भरतर्षभ ।
निष्प्रभोऽभ्युदयौ सूर्यः सघोषं भूश्चचाल च ॥ ३९ ॥

समान दुष्प्रेक्षणीय उन भीमसेनके पास जानेका साहस उन सब योद्धा लोगोंका नहीं हुआ ॥ (३२—३३)

इतनी कथा सुनाकर सञ्जय फिर कहने लगे, हे पुरुषप्रवर ! इस प्रकारसे वज्रनामका घोर व्यूह रचा गया ! यह व्यूह सर्वतोमुख, शत्रुभय रहित, शरासनके समान अनेक चमकीली ध्वजाओंसे निविष्ट हुआ । महात्मा अर्जुन गाण्डीव धनुष लेकर उसकी रक्षा करने लगे । सो आपकी वाहिनी व्यूहके प्रतिपक्षमें यह वज्र नामका व्यूह रचके पाण्डव लोग स्थिर रहे । जब पाण्डव लोग इस व्यूहकी रक्षा करनेवाले हुए तब इसे मनुष्यलोकमें अजेय ही समझना चाहिये ॥ हे महाराज ! प्रातःसन्ध्याके समय समूची सेना जब व्यूहरचनाके क्रमसे खडी होगई, तब बिना मेघके बिजली चमकने लगी; पानीके बिन्दुओंके साथ वायु बहने लगी ॥ नीचेके स्थलोंसे कङ्कडोंको लेकर चारो ओर बडे वेगसे हवा चलने लगी, और सम्पूर्ण संसारको अन्धकारमें डुबाकर धूल आकाशमें फैल गई ॥ (३४—३७)

हे भरतप्रवर ! बडी बडी उल्का आगे की ओर गिरने लगी और महाशब्द करनेवाली वह उगे हुए सूर्यको आहत करती हुई टुकडे होने लगी ॥ हे महाराज ! जब समूची सेना तयार हो गई तब सूर्य ज्योतिरहित होकर उगे। पृथिवी

व्यशीर्यत सनादा च भूस्तदा भरतर्षभ ।
निर्घाता बहवो राजन्दिक्षु सर्वासु चाऽभवन् ॥ ४० ॥
प्रादुरासीद्रजस्तीव्रं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
ध्वजानां धूयमानानां सहसा मातरिश्वना ॥ ४१ ॥
किङ्किणीजालबद्धानां काञ्चनस्रग्वराम्बरैः ।
महतां सपताकानामादित्यसमतेजसाम् ॥ ४२ ॥
सर्वं झणझणीभूतमासीत्तालवनेष्विव ।
एवं ते पुरुषव्याघ्राः पाण्डवा युद्धनन्दिनः ॥ ४३ ॥
व्यवस्थिताः प्रतिव्यूह्य तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।
ग्रसन्त इव मज्जानो योधानां भरतर्षभ ॥ ४४ ॥
दृष्ट्वाऽग्रतो भीमसेनं गदापाणिमवस्थितम् ॥ ४५ ॥ [७२६]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि पाण्डवसैन्यव्यूहे एकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

धृतराष्ट्र उवाच– सूर्योदये सञ्जय के नु पूर्वं युयुत्सवो हृष्यमाणा इवाऽऽसन् ।
मामका वा भीष्मनेत्राः समीपे पाण्डवा वा भीमनेत्रास्तदानीम् ॥१॥

शब्दसे प्रकम्पमान और घोर शब्दके प्रतिशब्दसे विदीर्ण होने लगी। हे महाराज! तब चारों ओर अनेक निर्घात होने लगे ॥ (३८–४०)

इतनी धूल उडने लगी, कि किसी ओर कुछ नहीं देख पडता था। किङ्किणी समान शब्द करनेवाली सोनेकी लडियोंसे भूषित और सूर्यके समान पताकाओंसे सुशोभित बडी ध्वजा हवासे सहसा कम्पमान होने लगी ॥ और इससे ताड के पेडके वनके समान सब स्थानोंमें झन झन शब्द होने लगा। (४१–४३)

हे भरतप्रधान! जैसे जानवरोंमें बाघ होते हैं, वैसे ही मनुष्योंमें पाण्डव हैं। सो वह लोग आपके पुत्रोंके सैन्य-व्यूहके विपक्षमें अपना सैन्य व्यूह रच करके स्थित हुए और हाथमें गदा लिये हुए भीमसेनको आगे खडे देखकर ऐसे युद्धोत्साही मालुम होते थे। मानो हम लोगोंके योधाओंके मज्जाग्राम कर डालेंगे ॥ (४३ ४३) [७२६]

भीष्मवध पर्वमें उन्नीसवां अध्याय समाप्त।

भीष्मवध पर्वमें बीसवां अध्याय।

इतनी कथा सुनकर महाराज धृतराष्ट्रने सञ्जयसे पूछा, हे सञ्जय! सूर्योदय होनेके बाद भीष्मका अधिकार माननेवाली हम लोगोंकी सेना और भीमसेनका अधिकार माननेवाली पाण्डवोंकी सेना इन दोनों सेनाओंमें कौन सेना लडाईके निमित्त पहले सामने आई? ॥

केषां जघन्यौ सोमसूर्यौ सवायू केषां सेनां श्वापदाश्चाऽभपन्त।
केषां यूनां मुखवर्णाः प्रसन्नाः सर्वं मे त्वं ब्रूहि मेवं यथावत् ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच— उभे सेने तुल्यमिवोपयाते उभे व्यूहे हृष्टरूपे नरेन्द्र।
उभे चित्रे वनराजिप्रकाशे तथैवोभे नागरथाश्वपूर्णे ॥ ३ ॥
उभे सेने बृहत्यौ भीमरूपे तथैवोभे भारत दुर्विषह्ये।
तथैवोभे स्वर्गजयाय सृष्टे तथैवोभे सत्पुरुषोपजुष्टे ॥ ४ ॥
पश्चान्मुखाः कुरवो धार्तराष्ट्राः स्थिताः पार्थाः प्राङ्मुखा योत्स्यमानाः।
दैत्येन्द्रसेनेव च कौरवाणां देवेन्द्रसेनेव च पाण्डवानाम् ॥ ५ ॥
चक्रे वायुः पृष्ठतः पाण्डवानां धार्त्तराष्ट्राञ्श्वापदा व्याहरन्त।
गजेन्द्राणां मदगन्धांश्च तीव्रान्न सेहिरे तव पुत्रस्य नागाः ॥ ६ ॥
दुर्योधनो हस्तिनं पद्मवर्णं सुवर्णकक्षं जालवन्त प्रभिन्नम्।
समास्थितो मध्यगतः कुरूणां संस्तूयमानो वन्दिभिर्मागधैश्च ॥ ७ ॥

चन्द्रमा सूर्य और वायु किस सेनाके लिये अरिष्ट करनेवाले हुए? किस सेना की ओर श्वापदोंने अशुभ शब्द किया? और किन किन जवानोंके मुख पर प्रसन्नता झलकती थी? सो सब बातें आप मुझे विस्तरसे यथार्थ कह सुनाइये॥ (१-२)

इन बातोंको सुनते ही सञ्जयने कहा, हे नरेन्द्र! दोनों सेना बराबर ही उपक्रान्त हुई; व्यूहित होनेसे दोनों हृष्टरूप दीखती थीं; दोनों सुन्दर वनकी शोभा धारण करके अद्भुत रूपकी हुई, हाथी, रथ, घोडेसे दोनों भरी थी॥ दोनो ओरकी सेना बहुत बडी और भीषणाकृति दीखती थी, दोनों एक दूसरेके लिये असह्य मालूम होती थी। दोनों व्यूह स्वर्ग जय प्राप्त करनेके लिये निर्मित हुए थे और दोनों सत्पुरुषोंके द्वारा उपयुक्त किये गये थे॥ धृतराष्ट्रके पक्षकी कुरुसेना पूरब किनारे खडी तथा पश्चिम दिशाको मुह किये, और पाण्डवोंकी सेना पश्चिम किनारे खडी और पूरब दिशाको मुह किये युद्ध करनेको उत्सुक थी॥ (३—५)

उन दोनों सेनाओंकी ओर देखनेसे मालूम होता था जैसे कुरुसेना दैत्योंके राजाकी हो और पाण्डवोंकी सेना देवराज इन्द्रकी हो॥ हवा पाण्डवोंके पीछेसे पूरबकी ओर बहने लगी। श्वापद कुरुसेनाकी ओर शब्द करने लगे। पाण्डवोकी सेनाके गजेन्द्रोंके गण्डस्थलसे चूनेवाले मदकी सुगन्ध आपके पुत्रोंके हाथी सह नहीं सके॥ (५-६)

दुर्योधन सोनेके जालदार कक्षका पहिरे मदचूते हुए कमल रङ्गके हाथी-

चन्द्रप्रभं श्वेतमथाऽऽतपत्रं सौवर्णस्रग्भ्राजति चोत्तमाङ्गे ।
तं सर्वतः शकुनिः पार्वतीयैः सार्द्धं गान्धारैर्याति गान्धारराजः ॥ ८ ॥
भीष्मोऽग्रतः सर्वसैन्यस्य वृद्धः श्वेतच्छत्रः श्वेतधनुः सखड्गः ।
श्वेतोष्णीषः पाण्डुरेण ध्वजेन श्वेतैरश्वैः श्वेतशैलप्रकाशैः ॥ ९ ॥
तस्य सैन्ये धार्त्तराष्ट्राश्च सर्वे वाह्लीकानामेकदेशः शलश्च ।
ये चाऽम्बष्ठाः क्षत्रिया ये च सिन्धोस्तथा सौवीराः पञ्चनदाश्च शूराः ॥ १०
शोणैर्हयै रुक्मरथो महात्मा द्रोणो धनुष्पाणिरदीनसत्वः ।
आस्ते गुरुः प्रायशः सर्वराज्ञां पश्चाच्च भूमीन्द्र इवाऽभियाति ॥ ११ ॥
वार्धक्षत्रिः सर्वसैन्यस्य मध्ये भूरिश्रवाः पुरुमित्रो जयश्च ।
शाल्वा मत्स्याः केकयाश्चेति सर्वे गजानीकैर्भ्रातरो योत्स्यमानाः ॥ १२ ॥
शारद्वतश्चोत्तरधूर्महात्मा महेष्वासो गौतमश्चित्रयोधी ।
शकैः किरातैर्यवनैः पल्हवैश्च सार्धं चमूमुत्तरतोऽभियाति ॥ १३ ॥
महारथैर्वृष्णिभोजैः सुगुप्तं सुराष्ट्रकैर्विहितैरात्तशस्त्रैः ।

पर सवार होकर कुरुसेनाके बीचमें विराजमान रहे। मागध और वन्दी लोग उनकी स्तुति करने लगे॥ उनके शिरके ऊपर सोनेकी मालाओंसे विभूषित चन्द्रमाके समान चमकनेवाला सुपेद छाता लगाया हुआ शोभा पा रहा था। पहाडी गान्धार प्रदेशमें उत्पन्न सिपाहियोंकी सेनाको सङ्ग लिये गान्धारराज शकुनि उनके पीछे हुए॥ सुपेद तलवार सुपेद ध्वज, सुपेद धनुष्य, सुपेद पगडी, सुपेद छत्र, सुपेद पहाडकी तरह शोभायमान अश्व इन सबसे युक्त बूढे भीष्म सबकी सेनाके आगे हुए॥ ७–९

इनकी सेनामें धृतराष्ट्रके सब बेटे, वाहीक प्रदेशके एक अधिपति राजा शल, सिन्धु प्रदेशके सब क्षत्रिय और क्षत्रिय लोग, सौवीर और पञ्चनद प्रदेशीय शूरलोग निविष्ट रहे॥ लाल घोडेवाले रुक्मरथपर सवार होकर अदीनसत्व महात्मा गुरु द्रोण शरासन हाथमें लेकर प्राय सब राजाओंके पीछे पीछे इन्द्रकी तरह सेनाकी रक्षा करने लगे॥ वार्द्धक्षत्रि, भूरिश्रवा, पुरुमित्र, जय, शाल्व, मत्स्य और गजसैन्य साथ लेकर लडनेवाले केकयभाई लडाई करनेके लिये उस सैन्यके बीचमें उपस्थित हुए॥ १०-१२

जिनके रथका अग्रभाग उत्कृष्ट रहता है, सो ही महात्मा गौतमवंशीय शरद्वतके बेटे विचित्र योद्धा महाधनुर्धर कृप, शक, किरात, यवन और पह्लव लोगोंके साथ उत्तरकी ओर गये॥ विख्यात महारथी भोजदेशी वृष्णि

बृहद्बलं कृतवर्माभिगुप्तं बलं त्वदीयं दक्षिणेनाऽभियाति ॥ १४ ॥
संशप्तकानामयुतं रथानां मृत्युर्जयो वाऽर्जुनस्येति सृष्टाः।
येनाऽर्जुनस्तेन राजन्कृतास्त्राः प्रयातारस्ते त्रिगर्ताश्च शूराः॥ १५ ॥
साग्रं शतसहस्रं तु नागानां तव भारत।
नागे नागे रथशतं शतमश्वा रथे रथे ॥ १६ ॥
अश्वेऽश्वे दश धानुष्का धानुष्के शतचर्मिणः।
एवं व्यूढान्यनीकानि भीष्मेण तव भारत ॥ १७ ॥
संव्यूह्य मानुषं व्यूहं दैवं गान्धर्वमासुरम्।
दिवसे दिवसे प्राप्ते भीष्मः शान्तनवोऽग्रणीः ॥१८ ॥
महारथौघविपुलः समुद्र इव घोषवान्।
भीष्मेण धार्त्तराष्ट्राणां व्यूहः प्रत्यङ्मुखो युधि ॥ १९ ॥
अनन्तरूपा ध्वजिनी नरेन्द्र भीमा त्वदीया न तु पाण्डवानाम्।

और भोज लोग तथा शस्त्रधारी सौराष्ट्र देशीय योधा लोगोंके द्वारा रक्षित जो बडी सेना थी और जिसकी रक्षा कृतवर्मा करते थे सो ही बडी सेना आपकी सेनाके दक्षिण भागमें गई ॥ हे राजन्! अयुतसंख्याक रथी जो संशप्तक लोग थे, वे सब, "अर्जुनको हम ही लोग मार डालेंगे वा वही हम लोगोंको मार डालेंगे" यही सिद्धान्त करके और तैयार होके, जहां अर्जुन खडे थे वहीं, यमके समान चले गये; और शौर्य सम्पन्न शस्त्रधारी त्रिगर्त्तदेशके लोग भी वहीं चले गये ॥ (१३-१५)

हे भारत! आपकी सेनामें एक लाख प्रधान गजारोही योद्धा है। बहुतसे गजारोहियोंके पास एक एक सौ रथी, प्रत्येक रथीके पास एक एक सौ घुडसवार, ॥ प्रत्येक घुडसवारके पास दस दस धनुषधारी, और एक एक धनुषधारीके साथ सौ सौ आदमी चर्मी अवस्थित हुए। शान्तनुके पुत्र महात्मा भीष्मने प्रधान सेनापति होकर आपका सैन्यव्यूह इस तहरसे बनाया। वह किसी दिन मानुष व्यूह; किसी दिन दैव व्यूह, किसी दिन गान्धर्व व्यूह, और किसी दिन असुर व्यूह रचना करते थे॥ (१६—१८)

महारथियोंके समूहमें कई प्रकारकी होकर समुद्रकी तरह निर्घोषवान् कुरुसेना व्यूहयुद्धमें पश्चिम मुह अवस्थित रही। हे नरेन्द्र! आपकी सेना असीम संख्याक होनेके कारण भीषण रूपकी हुई। यद्यपि पाण्डवोंकी सेना इतनी बडी नहीं थी, तौभी उनकी सेना और भी बहुत बडी और दुर्धर्षणीय मालूम

तां चैव मन्ये बृहतीं दुष्प्रधर्षां यस्या नेता केशवश्चाऽर्जुनश्च ॥ २० ॥ [७४६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां० भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि सैन्यवर्णने विंशोऽध्यायः ॥२०॥

सञ्जय उवाच— बृहतीं धार्त्तराष्ट्रस्य सेनां दृष्ट्वा समुद्यताम् ।
विषादमगमद्राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ॥ १ ॥
व्यूहं भीष्मेण चाऽभेद्यं कल्पितं प्रेक्ष्य पाण्डवः ।
अभेद्यमिव सम्प्रेक्ष्य विवर्णोऽर्जुनमब्रवीत् ॥ २ ॥
धनञ्जय कथं शक्यमस्माभिर्योद्धुमाहवे ।
धार्त्तराष्ट्रैर्महाबाहो येषां योद्धा पितामहः ॥ ३ ॥
अक्षोभ्योऽयमभेद्यश्च भीष्मेणाऽमित्रकर्षिणा ।
कल्पितः शास्त्रदृष्टेन विधिना भूरिवर्चसा ॥ ४ ॥
ते वयं संशयं प्राप्ताः ससैन्याः शत्रुकर्षण ।
कथमस्मान्महाव्यूहादुत्थानं नो भविष्यति ॥ ५ ॥
अथाऽर्जुनोऽब्रवीत्पार्थं युधिष्ठिरममित्रहा ।
विषण्णमिव सम्प्रेक्ष्य तव राजन्ननीकिनीम् ॥ ६ ॥
प्रज्ञयाऽभ्यधिकाञ्छूरान्गुणयुक्तान्बहूनपि ।
जयन्त्यल्पतरा येन तन्निबोध विशाम्पते ॥ ७ ॥

होने लगी; क्योंकि केशव और अर्जुन उनके नेता थे ॥ (१८—२०)[७४६]

भीष्मपर्वमें बीस अध्याय समाप्त ।

भीष्म पर्वमें इक्कीस अध्याय ।

इतनी कथा कहकर सञ्जय फिर बोले हे महाराज! कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिर धार्त्तराष्ट्रीय सेनाको अत्यन्त बडी और उद्यत देखकर खिन्न होगये ॥ उन्होंने भीष्मका रचा हुआ व्यूह अभेद्य देखकर उसे वास्तवमें अभेद्य समझकर विवर्ण होगये और अर्जुनसे कहने लगे हे महाबाहु धनञ्जय! जिन लोगोंकी ओर पितामह योद्धा हुए हैं उस धार्त्त-राष्ट्रीय सेनाके साथ संग्राममें हम लोग किस प्रकारसे लड सकेंगे? ॥ भूरितेजा अमित्रकर्षण भीष्मने शास्त्रके अनुसार अक्षोभ्य और अभेद्य व्यूहरचना करडाली है ॥ हे शत्रुकर्षण! इससे मुझे और मेरी सेनाको संशय हो गया है, कि इस व्यूहसे हम लोग किस प्रकारसे जय प्राप्त कर सकते हैं? (१—५)

इतनी कथा कह सञ्जय फिर कहने लगे हे राजन्! शत्रुओंको मारनेवाले अर्जुन तेरी बडी सेनाको देखकर विषादयुक्त युधिष्ठिरसे कहने लगे ॥ हे राजन्! थोडेसे शूरलोग बुद्धिसे अधिक गुणयुक्त

तत्र ते कारणं राजन्प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
नारदस्तमृषिर्वेद भीष्मद्रोणौ च पाण्डव ॥ ८ ॥
एनमेवाऽर्थमाश्रित्य युद्धे देवासुरेऽब्रवीत् ।
पितामहः किल पुरा महेन्द्रादीन्दिवौकसः ॥ ९ ॥
न तथा बलवीर्याभ्यां जयन्ति विजिगीषवः ।
यथा सत्यानृशंस्याभ्यां धर्मेणैवोद्यमेन च ॥ १० ॥
ज्ञात्वा धर्ममधर्मं च लोभं चोत्तममास्थिताः ।
युद्ध्यध्वमनहंकारा यतो धर्मस्ततो जयः ॥ ११ ॥
एवं राजन्विजानीहि ध्रुवोऽस्माकं रणे जयः ।
यथा तु नारदः प्राह यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १२ ॥
गुणभूतो जयः कृष्णे पृष्ठतोऽभ्येति माधवम् ।
तद्यथा विजयश्चाऽस्य सन्नतिश्चाऽपरो गुणः ॥ १३ ॥
अनन्ततेजा गोविन्दः शत्रुपूगेषु निर्व्यथः ।
पुरुषः सनातनमयो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥ १४ ॥

बहु संख्य लोगोंको भी जीत सकते है सो आप सुनिये ॥ आप असूयारहित है; आपको मैं इसका कारण बतलाता हूं, आप सुनिये । श्रीनारद ऋषि इसको जानते हैं और भीष्म और द्रोणको भी यह बात मालूम है ॥ (६–८)

ऐसा ही अवसर पाकर पूर्वकालमें श्रीब्रह्माजीने देवासुर संग्राममें इन्द्रादि देवताओंको यह उपदेश दिया था॥" जय प्राप्त करनेवाले लोग बल वीर्यके द्वारा उतने विजयी नहीं होते हैं जितने सत्य, अनृमंशता, धर्म और उद्यमके द्वारा होते हैं ॥ इस लिये तुम लोग धर्माधर्मको जानकर, अहङ्कार रहित होकर,अच्छे लोभका आश्रय करके युद्ध करो, क्यों कि जहां धर्म है, वहीं जय भी रहता है ॥ (९–११)

हे राजन् ! आप भी ऐसा ही समझिये । लडाईमें हम ही लोग जीतेंगे । श्रीनारदजीने कहा है, कि जिस ओर श्रीकृष्णजी रहेंगे उसी ओर जय होगा। जय श्रीकृष्णजीके साथ गुणभूत होकर रहा है, इस लिये वह उन्हींके पीछे पीछे जाता है । उनका एक गुण जैसा विजय है, वैसे ही नम्रता भी एकगुण विराजमान है ॥ जो गोविन्द अनन्त तेजस्वी सनातनतम पुरुष शत्रु समूहमें भी विना क्लेशके रहते है, सो ही श्रीकृष्णजी जिस ओर है उसी ओर जय होगा ॥ (१२—१४)

पुरा ह्येष हरिर्भूत्वा विकुण्ठोऽकुण्ठसायकः।
सुरासुरानवस्फूर्जन्नब्रवीत्के जयन्त्विति ॥ १५ ॥
कथं कृष्ण जयेमेति यैरुक्तं तत्र तैर्जितम्
तत्प्रसादाद्धि त्रैलोक्यं प्राप्तं शक्रादिभिः सुरैः ॥ १६ ॥
तस्य ते न व्यथां काश्चिदिह पश्यामि भारत।
यस्य ते जयमाशास्ते विश्वभुक् त्रिदिवेश्वरः॥ १७ ॥ [७६३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि युधिष्ठिरार्जुनसंवादे एकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥

संजय उवाच— ततो युधिष्ठिरो राजा स्वां सेनां समनोदयत्।
प्रतिव्यूहन्ननीकानि भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ १ ॥
यथोद्दिष्टान्यनीकानि प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः।
स्वर्गं परममिच्छन्तः सुयुद्धेन कुरूद्वहाः ॥ २ ॥
मध्ये शिखण्डिनोऽनीकं रक्षितं सव्यसाचिना।
धृष्टद्युम्नश्चरन्नग्रे भीमसेनेन पालितः ॥ ३ ॥
अनीकं दक्षिणं राजन्युयुधानेन पालितम्।

अप्रतिहतशस्त्रवाले इन्हीं वैकुण्ठवासी हरिने पूर्व कालमें आविर्भूत होकर देवताओं और असुरोंसे अति गम्भीर स्वरमें पूछा था "कौन जयी होगा?"। उनके बाद जिन लोगोंने उस समय कहा "हे कृष्ण! हम लोग जयी हुए। वही श्रीकृष्ण जीके प्रसादसे इन्द्रादि देवता सबोंने इस तरहपर करके जयलाभ कर त्रैलोक्य प्राप्त किया था॥ इस लिये हे भारत! विश्वभुक त्रिदिवेश्वर वही हरि जब हम लोगोंके जय होनेके लिये इच्छा करते हैं, तो हम जयके होनेके विषयमें कुछ कष्ट इसे नहीं दीखता है॥ (१५–१७)

[illegible] [७६३]

भीष्मपर्वमें बाईस अध्याय

इतनी कथा सुनाकर सञ्जय फिर बोले हे भरतर्षभ! इनके बाद भीष्मकी सेनाके प्रतिपक्षमें व्यूह रचना कर लेनेके लिये अपनी सेनाको राजा युधिष्ठिर प्रेरित करने लगे॥ अनन्तर कुरुकुलश्रेष्ठ युद्धमें स्वर्गकी इच्छा करनेवाले पाण्डवोंने अपने शत्रुओंके प्रतिपक्षमें यथोद्दिष्ट अनीक व्यूहकी रचना कर ली॥ सव्यसाची अर्जुन मध्यभागमें शिखण्डीकी सेनाकी रक्षा करने लगे। सेनाके आगे चलनेवाले धृष्टद्युम्नकी रक्षा भीमसेन स्वयं करने लगे (१–३)

सात्वतोंके प्रधान महाबाहु श्री-

श्रीमता सात्वताग्र्येण शक्रेणेव धनुष्मता ॥ ४ ॥
महेन्द्रयानप्रतिमं रथं तु सोपस्करं हाटकरत्नचित्रम् ।
युधिष्ठिरः काञ्चनभाण्डयोक्त्रं समास्थितो नागपुरस्य मध्ये ॥ ५ ॥
समुच्छ्रितं दन्तशलाकमस्य सुपाण्डुरं छत्रमतीव भाति ।
प्रदक्षिणं चैनमुपाचरन्त महर्षयः संस्तुतिभिर्महेन्द्रम् ॥ ६ ॥
पुरोहिताः शत्रुवधं वदन्तो ब्रह्मर्षिसिद्धाः श्रुतवन्त एनम् ।
जप्यैश्च मन्त्रैश्च महौषधीभिः समन्ततः स्वस्त्ययनं ब्रुवन्तः ॥ ७ ॥
ततः स वस्त्राणि तथैव गाश्च फलानि पुष्पाणि तथैव निष्कान् ।
कुरूत्तमो ब्राह्मणसान्महात्मा कुर्वन्ययौ शक्र इवाऽमरेशः ॥ ८ ॥
सहस्रसूर्यः शतकिङ्किणीकः परार्द्ध्यजाम्बूनदहेमचित्रः ।
रथोऽर्जुनस्याऽग्निरिवाऽर्चिमाली विभ्राजते श्वेतहयः सुचक्रः ॥ ९ ॥
तमास्थितः केशवसंगृहीतं कपिध्वजो गाण्डिवबाणपाणिः ।
धनुर्धरो यस्य समः पृथिव्यां न विद्यते नो भविता कदाचित् ॥ १० ॥

मान् युयुधान इन्द्रके समान दक्षिण दिशामें अवस्थित सैनिक लोगोंकी रक्षा करने लगे ॥ नागसमूहके बीच राजा युधिष्ठिर रथपर सवार हुए । इस रथकी बनावटमें कारीगरी इतनी थी, कि यह इन्द्रके रथके समान दीखता था, उसमें सोने आदि रत्नोंका विचित्र काम किया हुआ था, उसके घोडोंके अलङ्कार भी काञ्चनमय थे ॥ हाथीदांतकी राठी सहित पीले रंगका छाता उनके सिरपर ताना हुआ बहुत शोभायमान मालूम होता था । महर्षि लोग प्रदक्षिणा करके उनकी स्तुति करने लगे । (४-६)

उनके चारों ओर पुरोहित और वेदके जाननेवाले ब्रह्मर्षि और सिद्ध लोग जप, मन्त्र और औषधि तथा स्वस्त्ययन वाक्य कहकर उनके शत्रुका वध मनाने लगे ॥ तब कुरुसत्तम महात्मा युधिष्ठिर वस्त्र, गो, फल, पुष्प, और निष्क ब्राह्मणोंको प्रदान करते हुए देवराज इन्द्रके समान गमन करने लगे ॥ अर्जुनके जिस रथके सारथी केशव हुए उसमें श्वेत घोडे जुते थे । सुचक्रयुक्त सौ घण्टियोंसे शोभित, सबसे उत्तम जाम्बूनद सुवर्णसे विचित्र सहस्र सूर्यके समान तेज रखनेवाला वह रथ अर्चिमाली अग्निके समान प्रकाश होने लगा । (७-९)

जिनके समान धनुर्द्धर पृथिवीपर आजतक कोई नहीं हुआ और शायद कोई होगा भी नहीं और जिनके रथ-ध्वजपर कपिवर श्रीहनुमानजी विराजमान थे, सो ही अर्जुन गाण्डीव धनुष्य

सञ्जय उवाच— धार्त्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम्।
अर्जुनस्य हितार्थाय कृष्णो वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥
श्रीभगवानुवाच—शुचिर्भूत्वा महाबाहो संग्रामाभिमुखे स्थितः।
पराजयाय शत्रूणां दुर्गास्तोत्रमुदीरय ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच— एवमुक्तोऽर्जुनः सङ्ख्ये वासुदेवेन धीमता।
अवतीर्य रथात्पार्थः स्तोत्रमाह कृताञ्जलिः ॥ ३ ॥
अर्जुन उवाच — नमस्ते सिद्धसेनानि आर्ये मन्दरवासिनि।
कुमारि कालि कापालि कपिले कृष्णपिङ्गले ॥ ४ ॥
भद्रकालि नमस्तुभ्यं महाकालि नमोऽस्तु ते।
चण्डि चण्डे नमस्तुभ्यं तारिणि वरवर्णिनि ॥ ५ ॥
कात्यायनि महाभागे करालि विजये जये।
शिखिपिच्छध्वजधरे नानाभरणभूषिते ॥ ६ ॥
अट्टशूलप्रहरणे खड्गखेटकधारिणि।
गोपेन्द्रस्याऽनुजे ज्येष्ठे नन्दगोपकुलोद्भवे ॥ ७ ॥

सेनाका नाश करके इन भरतवर भीष्म के साथ युद्ध करो। १४-१६ [७७९]

भीष्मपर्वमें बाईस अध्यास समाप्त।

भीष्मपर्वमें तेईस अध्याय।

इतनी कथा सुनाकर सञ्जय फिर कहने लगे, कि हे महाराज! श्रीकृष्ण धार्त्तराष्ट्रीय सेनाको लडनेके लिये प्रस्तुत देखकर अर्जुनकी भलाईके निमित्त फिर उनसे कहने लगे॥ श्रीकृष्ण बोले, हे महाबाहो! शत्रुको जीतनेके निमित्त तुम पवित्र होकर संग्रामकी ओर मुंह करके श्री दुर्गाजीका स्तोत्रपाठ करो।१-२

सञ्जय बोले, बुद्धिमान् वासुदेवजीने जब अर्जुनसे रणस्थलमें इतनी बात कही, तब अर्जुन रथसे पृथिवीपर उतर कर हाथ जोडके श्रीदुर्गाजीका स्तव करने लगे। (३)

अर्जुन बोले,हे मन्दरवासिनि! हे आर्ये! हे सिद्धसेनानि! हे कुमारि! हे कालि! हे कापालि! हे कपिले! हे कृष्णपिंगले! आपको मैं नमस्कार करता हू॥ हे भद्रकालि! आपको नमस्कार करता हूं। हे महाकालि! आपको नमस्कार करता हूं। हे चण्डि! हे चण्डे! हे तारिणि! हे वरवर्णिनि! आपको नमस्कार करता हूं॥ हे कात्यायनि! हे महाभागे! हे करालि! हे विजये! हे जये! हे शिखिपिच्छ ध्वजाधारिणि! हे नानाभरण-भूषिते!॥ हे अट्टशूलप्रहरणे! हे खड्ग-खेटक धारिणि! हे गोपेन्द्रकन्ये! हे ज्येष्ठे! हे नन्दगोपकुलोद्भवे!॥ हे

महिषासृक्प्रिये नित्यं कौशिकि पीतवासिनि ।
अट्टहासे कोकमुखे नमस्तेऽस्तु रणप्रिये ॥ ८ ॥
उमे शाकम्भरि श्वेते कृष्णे कैटभनाशिनि ।
हिरण्याक्षि विरूपाक्षि सुधूम्राक्षि नमोऽस्तु ते ॥ ९ ॥
वेदश्रुति महापुण्ये ब्रह्मण्ये जातवेदसि ।
जम्बूकटकचैत्येषु नित्यं सन्निहितालये ॥ १० ॥
त्वं ब्रह्मविद्या विद्यानां महानिद्रा च देहिनाम् ।
स्कन्दमातर्भगवति दुर्गे कान्तारवासिनि ॥ ११ ॥
स्वाहाकारः स्वधा चैव कला काष्ठा सरस्वती ।
सावित्री वेदमाता च तथा वेदान्त उच्यते ॥ १२ ॥
स्तुताऽसि त्वं महादेवि विशुद्धेनाऽन्तरात्मना ।
जयो भवतु मे नित्यं त्वत्प्रसादाद्रणाजिरे ॥ १३ ॥
कान्तारभयदुर्गेषु भक्तानां चाऽऽलयेषु च ।
नित्यं वससि पाताले युद्धे जयसि दानवान् ॥ १४ ॥
त्वं जम्भनी मोहिनी च माया ह्रीः श्रीस्तथैव च ।
सन्ध्या प्रभावती चैव सावित्री जननी तथा ॥ १५ ॥
तुष्टिः पुष्टिर्धृतिर्दीप्तिश्चन्द्रादित्यविवर्धिनी ।

सततमहिषरुधिरप्रिये ! हे कौशिकि ! हे पीतवासिनि ! हे अट्टहासिनि ! हे कोकमुखि ! हे रणप्रिये ! आपको नमस्कार करता हूं ॥ (३–८)

हे उमे ! हे शाकम्भरि ! हे श्वेते ! हे कृष्णे ! हे कैटभनाशिनि ! हे हिरण्याक्षि ! हे विरूपाक्षि ! हे सुधूम्राक्षि ! आपको नमस्कार करता हूं ॥ हे वेदश्रु- महानिद्रा है । हे स्कन्दमातः ! हे दुर्गे ! हे दुर्गमपथवासिनि ! आप स्वाहा, स्वधा, कला, काष्ठा, सरस्वती, सावित्री, वेदमाता वेदान्तमें कही गई है ॥ हे महादेवि ! मैं विशुद्ध चित्तसे आपका स्तव करता हूं। आपके प्रसादसे लडाईमें नित्य मेरी जीत हो। (९–१३)

भयके स्थलमें, घोर वनमें, दुर्गोमें,

भूतिर्भूतिमतां सङ्ख्ये वक्ष्यसे सिद्धचारणैः ॥ १६ ॥

सञ्जय उवाच—ततः पार्थस्य विज्ञाय भक्तिं मानववत्सला ।
अन्तरिक्षगतोवाच गोविन्दस्याऽग्रतः स्थिता ॥ १७ ॥

देव्युवाच— स्वल्पेनैव तु कालेन शत्रूञ्जेष्यसि पाण्डव ।
नरस्त्वमसि दुर्धर्ष नारायणसहायवान् ॥ १८ ॥
अजेयस्त्वं रणेऽरीणामपि वज्रभृतः स्वयम् ।
इत्येवमुक्त्वा वरदा क्षणेनाऽन्तरधीयत ॥ १९ ॥
लब्ध्वा वरं तु कौन्तेयो मेने विजयमात्मनः ।
आरुरोह ततः पार्थो रथं परमसम्मतम् ॥ २० ॥
कृष्णार्जुनावेकरथौ दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ।
य इदं पठते स्तोत्रं कल्य उत्थाय मानवः ॥ २१ ॥
यक्षरक्षःपिशाचेभ्यो न भयं विद्यते सदा ।
नऽचापि रिपवस्तेभ्यः सर्पाद्या ये च दंष्ट्रिणः ॥ २२ ॥
न भयं विद्यते तस्य सदा राजकुलादपि ।

प्रभावती, सावित्री जननी, तुष्टि, पुष्टि, धृति, दीप्ति, चन्द्र सूर्यको बढानेवाली, और युद्धमें भूतिशाली लोगोंके लिये भूति हैं और सिद्धचारण लोगोंके तत्त्वस्थानसे ज्ञानगम्या होती है। (१४–१६)

सञ्जय बोले, जब अर्जुनने भगवती श्रीदुर्गाजीका ऐसे स्तव किया तब मनुष्योंपर कृपा करनेवाली श्रीदुर्गाजी अर्जुनकी भक्ति देखकर अन्तरिक्षमें प्रगट हुई और श्रीगोविन्दके आगे खडी होकर अर्जुनसे कहनेलगीं ॥ (१७)

भगवती बोली, तुम थोडे ही समयमें शत्रुओंको जय कर लोगे, हे दुर्द्धर्ष ! तुम नारायणकी सहायता करनेवाले नर हो ॥ लडाईमें शत्रु तुमको जीत नहीं सकेंगे; स्वयं इन्द्र अपना वज्र लेकर आवेंगे तौभी तुमसे जीतकर नहीं जायंगे। सञ्जय बोले, इतना कहकर वर-देनेवाली भगवती उसी समय अन्तर्हित हो गई ॥ कुन्तीनन्दन अर्जुन वर लाभ करके मन ही मन कहने लगे, मै अवश्य जीतूंगा और इसके बाद सब लोगोंकी रायसे फिर रथपर सवार हुए ॥ श्रीकृष्ण जी और अर्जुन एक ही रथपर बैठकर दिव्य शङ्खध्वनि करने लगे।(१८--२१)

जो मनुष्य भोर ही उठकर इस स्तोत्रका पाठ किया करेंगे, ॥ उन्हें कभी यक्ष, राक्षस, और पिशाचका भय नहीं होगा; उनका कोई शत्रु नहीं रहेगा; और दांतसे काटनेवाले सर्प आदि

विवादे जयमाप्नोति बद्धो मुच्यति बन्धनात् ॥ २३ ॥
दुर्गं तरति चाऽवश्यं तथा चोरैर्विमुच्यते ।
संग्रामे विजयेन्नित्यं लक्ष्मीं प्राप्नोति केवलाम् ॥ २४ ॥
आरोग्यबलसम्पन्नो जीवेद्वर्षशतं तथा ।
एतद् दृष्टं प्रसादात्तु मया व्यासस्य धीमतः ॥ २५ ॥
मोहादेतौ न जानन्ति नरनारायणावृषी ।
तव पुत्रा दुरात्मानः सर्वे मन्युवशानुगाः ॥ २६ ॥
प्राप्तकालमिदं वाक्यं कालपाशेन गुण्ठिताः ।
द्वैपायनो नारदश्च कण्वो रामस्तथाऽनघः ।
अवारयंस्तव सुतं न चाऽसौ तद्गृहीतवान् ॥ २७ ॥
यत्र धर्मो द्युतिः कान्तिर्यत्र ह्रीः श्रीस्तथा मतिः ।
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ॥२८॥ [८०७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि
दुर्गास्तोत्रे त्रयोविंशोऽध्यायः॥ २३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—केषां प्रहृष्टास्तत्राऽग्रे योधा युध्यन्ति सञ्जय ।

जो हिंसक जीव हैं उनका और राजकुलका भय भी नहीं रहेगा ॥ हे लोग अवश्य ही विवादमें जय लाभ करेंगे; बद्ध बन्धनसे मुक्त होंगे ॥ दुर्गम स्थानसे निकल जायेंगे; संग्राममें नित्य विजय लाभ करेंगे; उन्हें चोरका भय नहीं रहेगा; लक्ष्मी उनके यहां सदा रहेंगी । और वे अरोग और बलवान् होकर सौ वर्ष जीवेंगे । (२१–२५)

हे भारत! हम धीमान् श्रीव्यासदेवजीकी कृपासे यह जानते हैं ॥ किन्तु [illegible] दुराशय एवं सब क्रोधके वश नहीं सकते हैं ॥ और यह भी नहीं जानते हैं कि यही राज्य काल होकर प्राप्त हुआ है। द्वैपायन, नारद, कण्व और अघरहित राम उन सब लोगोंने आपके पुत्रोंको निवारण किया था, पर उनकी बातोंको इन लोगोंने कुछ नहीं माना ॥ जहां धर्म, द्युति और कान्ति रहती है जहां लज्जा, श्री और मति रहती है, तथा जहां धर्म रहता है, वहीं श्रीकृष्णजी रहते हैं, और जहां श्रीकृष्णजी रहते हैं वहीं जय होती है । २५–२८ [८०७]

[illegible]

उदग्रमनसः के वा के वा दीना विचेतसः ॥ १ ॥
के पूर्वं प्राहरंस्तत्र युद्धे हृदयकम्पने ।
मामकाः पाण्डवेया वा तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥
कस्य सेनासमुदये गन्धमाल्यसमुद्भवः ।
वाचः प्रदक्षिणाश्चैव योधानामभिगर्जताम् ॥ ३ ॥
सञ्जय उवाच— उभयोः सेनयोस्तत्र योधा जहृषिरे तदा ।
स्रजः समाः सुगन्धानामुभयत्र समुद्भवः ॥ ४ ॥
संहतानामनीकानां व्यूढानां भरतर्षभ ।
संसर्गात्समुदीर्णानां विमर्दः सुमहानभूत् ॥ ५ ॥
वादित्रशब्दस्तुमुलः शङ्खभेरीविमिश्रितः ।
शूराणां रणशूराणां गर्जतामितरेतरम् ॥ ६ ॥
उभयोः सेनयो राजन्महान्व्यतिकरोऽभवत् ।
अन्योन्यं वीक्ष्यमाणानां योधानां भरतर्षभ ।
कुञ्जराणां च नदतां सैन्यानां च प्रहृष्यताम् ॥ ७ ॥ [८१४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भगवद्गीतापर्वणि
धृतराष्ट्रसंजयसंवादे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

बोले, हे सञ्जय ! उस लडाईमें किस पक्षके योधोंने प्रविष्ट होकर आगे लडाई की थी ? कौन उत्साहित चित्त थे और कौन दीनचित्त हुए थे ? ॥ कलेजा डोलानेवाली उस लडाईमें हमारे पक्षवाले ने वा पाण्डव पक्षवालेने पहिले प्रहार किया था ? किस ओरकी सेनाका गन्ध और मालाका प्रादुर्भाव हुआ था ? और किस पक्षके बहुत चिकरनेवाले योद्धा लोगोंकी अनुकूल बोली हुई थी ? ॥ ये सब बातें आप हमें समझाकर कहें। १ ३

इतनी बात सुनकर श्री सञ्जयजी बोले, कि दोनों पक्षोंके सेनाके योद्धा लोग हर्षान्वित होगये थे, दोनों पक्षोंमें माला और सुगन्धका समान ही प्रादुर्भाव हुआ था ॥ हे महाराज ! समुन्नत बद्धवर्मा व्यूहित समस्त सेनाके परस्पर संसर्गसे बडा भारी घोर शब्द हुआ ॥ शङ्ख, भेरीके बजनेसे और लडाके शूर लोगोंके आपसमें गरजनेसे बडी भारी ध्वनि हुई ॥ हे महाराज ! परस्परको देखनेवाले हृष्ट चित्त और निनादकारी दोनों पक्षकी सेनाके योद्धा लोग और हाथी सब व्यूहके बडे संघर्ष हुए ॥ (४–७) [८१४]

भीष्मपर्वमें चौवीस अध्याय समाप्त ।

पराक्रमी अर्जुन और योगेश्वर श्रीकृष्ण

श्रीमद्भगवद्गीता ॥

धृतराष्ट्र उवाच—धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच—दृष्ट्वा तु पाण्डवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा ।
आचार्यमुपसङ्गम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥
पश्यैतां पाण्डुपुत्राणामाचार्य महतीं चमूम् ।
व्यूढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥
अत्र शूरा महेष्वासा भीमार्जुनसमा युधि ।
युयुधानो विराटश्च द्रुपदश्च महारथः ॥ ४ ॥
धृष्टकेतुश्चेकितानः काशिराजश्च वीर्यवान् ।
पुरुजित्कुन्तिभोजश्च शैब्यश्च नरपुङ्गवः ॥ ५ ॥
युधामन्युश्च विक्रान्त उत्तमौजाश्च वीर्यवान् ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च सर्व एव महारथाः ॥ ६ ॥
अस्माकं तु विशिष्टा ये तान्निबोध द्विजोत्तम ।

भीष्मपर्वमें पचीस अध्याय ।
भगवद्गीतामें प्रथम अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! कुरुक्षेत्र की पुण्यभूमि में युद्धकी इच्छासे एकत्रित हुए मेरे और पाण्डुके पुत्रोंने क्या किया ? (१)

नायका मम सैन्यस्य संज्ञार्थं तान्ब्रवीमि ते ॥ ७ ॥
भवान्भीष्मश्च कर्णश्च कृपश्च समितिञ्जयः।
अश्वत्थामा विकर्णश्च सौमदत्तिर्जयद्रथः ॥ ८ ॥
अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविताः।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ९ ॥
अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ १० ॥
अयनेषु च सर्वेषु यथाभागमवस्थिताः।
भीष्ममेवाऽभिरक्षन्तु भवन्तः सर्व एव हि ॥ ११ ॥
तस्य सञ्जनयन्हर्षं कुरुवृद्धः पितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ १२ ॥
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पणवानकगोमुखाः।
सहसैवाऽभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥
ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।

हमारी ओर जितने प्रधान योद्धा हैं उनका नामभी सुनिये तथा सेना के जो मुख्य मुख्य नायक हैं उनके नाम भी मैं आपको सुनाता हूँ; ध्यान दे कर सुनिये। (७) आप और भीष्म, कर्ण, युद्धविजयी कृप, अश्वत्थामा, विकर्ण (दुर्योधन के सौभाइयों में से एक,) तथा सोमदत्त केपुत्र भूरिश्रवा, और जयद्रथ ८ एवं इनके सिवा बहुतेरे अन्यान्य शूर मेरे लिये प्राण देने को तैयार है, और सभी नानाप्रकारके शस्त्र चलानेमें निपुण तथा युद्धमें प्रवीण है। (९) इस प्रकारकी हमारी यह सेना, जिसकी रक्षा स्वयं भीष्म कर रहे है, अपरिमित है; किन्तु उन पाण्डवों की वह सेना जिसकी रक्षा भीम कर रहा है; वह पर्याप्त अर्थात् परिमित या मर्यादित है। (१०) (तो अब) नियुक्त के अनुसार सब अयनोंमें अर्थात् सेनाके भिन्न भिन्न प्रवेश द्वारोंमें रह कर तुम सबको मिल करके भीष्म की ही सभी ओरसे रक्षा करनी चाहिये। (११) (इतने में) दुर्योधनको खूश करते हुए प्रतापवान् कौरवोंमे वृद्ध पितामह सेनापति भीष्म ने सिंहके समान बडी गर्जनाकर लडाईकी सलामीके लिये अपना शंख फूंका। (१२) इसके साथ ही साथ अनेक शंख, भेरी (नौबतें), पणव, आनक और गोमुख ये लडाई के बाजे एक दम बजने लगे और इन बाजोंके नादसे चारो ओर भारी कोला-

माधवः पाण्डवश्चैव दिव्यौ शङ्खौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः ।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ १५ ॥
अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥
काश्यश्च परमेष्वासः शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्चाऽपराजितः ॥ १७ ॥
द्रुपदो द्रौपदेयाश्च सर्वशः पृथिवीपते ।
सौभद्रश्च महाबाहुः शङ्खान्दध्मुः पृथक् पृथक् ॥ १८ ॥
स घोषो धार्त्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयन् ॥ १९ ॥
अथ व्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ।
प्रवृत्ते शस्त्रसम्पाते धनुरुद्यम्य पाण्डवः ॥ २० ॥
हृषीकेशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ।
अर्जुन उवाच—सेनयोरुभयोर्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

हल होने लगा। (१३) अनन्तर सफेद घोड़ोंसे जुते हुए बड़े रथमें बैठे हुए माधव (श्रीकृष्ण) और पाण्डव अर्जुन ने (यह सूचना करने के लिये कि अपने पक्ष की भी तैयारी है, प्रत्युत्तर के तौर पर) दिव्य शंख बजाये (१४) हृषीकेश अर्थात् श्रीकृष्णने पाञ्चजन्य नामका शंख, धनञ्जय अर्जुनने देवदत्त शंख तथा भयङ्कर कर्म करनेवाले वृकोदर अर्थात् भीमसेनने पौण्ड्र नामक बड़ा

शिखण्डी, धृष्टद्युम्न, विराट, अपराजित सात्यकि, (१७) द्रुपद और द्रौपदीके पाँचों बेटे, तथा महाबाहु सौभद्र अभिमन्यु इन सबने हे राजन् धृतराष्ट्र! चारों ओर अपने अपने पृथक् पृथक् शंख बजाये। (१८) आकाश और पृथिवी को नादित करने वाले उस शब्द ध्वनि ने कौरवों का कलेजा फट गया। १९ अनन्तर कौरवों को व्यवस्थासे खड़े देख, परस्पर शस्त्र छूटने पर हनुमद्ध्वज

यावदेतान्निरीक्षेऽहं योद्धुकामानवस्थितान् ।
कैर्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥
योत्स्यमानानवेक्षेऽहं य एतेऽत्र समागताः ।
धार्त्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥ २४ ॥
भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षिताम् ।
उवाच पार्थ पश्यैतान्समवेतान्कुरूनिति ॥ २५ ॥
तत्राऽपश्यत्स्थितान्पार्थः पितृनथ पितामहान् ।
आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सर्वींस्तथा ॥२६ ॥
श्वशुरान्सुहृदश्चैव सेनयोरुभयोरपि ।
तान्समीक्ष्य स कौन्तेयः सर्वान्वन्धूनवस्थितान् २७ ॥
कृपया परयाऽऽविष्टो विषीदन्निदमब्रवीत् ।
अर्जुन उवाच— दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितम् ॥ २८ ॥

अर्जुने कहा, हे अच्युत ! मेरा रथ दोनों सेनाओं के वीच लेचल कर खडा करो। (२१) इतने में युद्धकी इच्छासे तैयार हुए इन लोगोंको मैं अवलोकन करता हूँ, और मुझे इस रणसंग्राम में किनके साथ लढना है, एवं (२२) युद्धमें दुर्बुद्धि दुर्योधन का कल्याण करने की इच्छा मे यहाँ जो लडने वाले जमा हुए है, उन्हें मै देख लूँ। (२३)

सञ्जय बोले, हे धृतराष्ट्र ! गुडाकेश अर्थात् आलस्य को जीत नेवाले अर्जुनके इस प्रकार कहने पर हृषीकेश अर्थात इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्ण ने (अर्जुनके) उत्तम रथको दोनो सेनाओं के मध्य भाग में लाकर खडा कर दिया, और –(२४) भीष्म द्रोण तथा सब राजाओं के सामने वे बोले, कि " हे अर्जुन ! यहाँ एकत्रित हुए इन कौरवोंको देखो "। (२५) उस सेनामें जब अर्जुनने देखा, तो इकठे हुए सब (अपनेही) बडे-बूडे, पितृस्थानीय, आजा, आचार्य, मामा, मित्र, (२६) ससुर और स्नेही दोनों ही सेनाओंमें हैं; और इस प्रकार यह देखकर कि वे सभी एकत्रित हमारे बान्धव है, कुन्तीपुत्र अर्जुन (२७) परम करुणासे व्याप्त और विषण्ण हो कर यह वचन बोले–

अर्जुन कहने लगे –– हे कृष्ण ! युद्ध करनेकी इच्छासे यहाँ आये हुए

सीदन्ति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥
गाण्डीवं स्रंसते हस्तात्त्वक्चैव परिदह्यते ।
न च शक्नोम्यवस्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥
निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ।
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥
न कांक्षे विजयं कृष्ण न च राज्यं सुखानि च ।
किं नो राज्येन गोविन्द किं भोगैर्जीवितेन वा ॥३२॥
येषामर्थे कांक्षितं नो राज्यं भोगाः सुखानि च ।
त इमेऽवस्थिता युद्धे प्राणांस्त्यक्त्वा धनानि च ॥३३॥
आचार्याः पितरः पुत्रास्तथैव च पितामहाः ।
मातुलाः श्वशुराः पौत्राः स्यालाः सम्बन्धिनस्तथा ॥३४॥
एतान्न हन्तुमिच्छामि घ्नतोऽपि मधुसूदन ।
अपि त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोः किन्नु महीकृते ॥ ३५ ॥
निहत्य धार्तराष्ट्रान्नः का प्रीतिः स्याज्जनार्दन ।

पापमेवाऽऽश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥
तस्मान्नाऽर्हा वयं हन्तुं धार्त्तराष्ट्रान्सबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥
यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्त्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥
कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥
अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ॥ ४१ ॥
सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥

प्रिय होगा ? यद्यपि ये आततायी है, तौ भी इनको मारनेसे हमें पाप ही आकर घेरेगा। (३६) इस लिये बान्धवोंके सहित धृतराष्ट्र पुत्रोको मारना हमें उचित नहीं है, क्योंकी, हे [illegible] ! [illegible] मार कर हम सुखे [illegible] ३७) यद्यपि लोभ [illegible] गई है, उन्हें [illegible] दोप और [illegible] क्षय [illegible] अतः [illegible] हमारे म [illegible] (३९) कु [illegible]

धर्म नष्ट होते है, और कुलधर्मोंके नष्ट होने मे समूचे कुल अधर्मसे पराभूत होता है, (४०) हे कृष्ण ! अधर्मके फैलने मे कुलस्त्रियॉ बिगडती हैं; हे वार्ष्णेय ! स्त्रियोंके बिगड जाने पर, वर्णसङ्करकी उत्पत्ति होती है । (४१) और वर्णसङ्कर होने से वह कुलघातकों को और समग्र [illegible] को निश्चय ही नरकमे ले जाता है, [illegible] और तर्पणादि क्रियाओं [illegible] जानेसे उनके पितर भी पतन [illegible] २) कुलघातकों के इन वर्ण- [illegible] मे सनातन जातिधर्म [illegible] होते है; (४३) [illegible] ! हम ऐसा सुनते

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥
अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥
यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

संजय उवाच— एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥ [८६१]

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ पर्वणि तु पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

संजय उवाच— तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच— कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

पापमेवाऽऽश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥
तस्मान्नाऽर्हा वयं हन्तुं धार्त्तराष्ट्रान्सबान्धवान् ।
स्वजनं हि कथं हत्वा सुखिनः स्याम माधव ॥ ३७ ॥
यद्यप्येते न पश्यन्ति लोभोपहतचेतसः ।
कुलक्षयकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकम् ॥ ३८ ॥
कथं न ज्ञेयमस्माभिः पापादस्मान्निवर्त्तितुम् ।
कुलक्षयकृतं दोषं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥
कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः ।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभिभवत्युत ॥ ४० ॥
अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः ।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसङ्करः ॥ ४१ ॥
सङ्करो नरकायैव कुलघ्नानां कुलस्य च ।
पतन्ति पितरो ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥
दोषैरेतैः कुलघ्नानां वर्णसङ्करकारकैः ।
उत्साद्यन्ते जातिधर्माः कुलधर्माश्च शाश्वताः ॥ ४३ ॥

प्रिय होगा ? यद्यपि ये आततायी है, तौ भी इनको मारनेसे हमें पाप ही आकर घेरेगा। (३६) इस लिये बान्धवोंके सहित धृतराष्ट्र पुत्रोंको मारना हमें उचित नहीं है, क्योंकी, हे माधव ! स्वजनोंको मार कर हम सुखी क्यों कर होंगे ? (३७) यद्यपि लोभ से जिनकी बुद्धि नष्ट हो गई है, उन्हें कुलके क्षय से होनेवाला दोष और मित्रद्रोह का पातक दिखाई नहीं देता, (३८) तथापि हे जनार्दन! कुलक्षय का दोष हमें स्पष्ट देख पड रहा है, अतः इस महा पाप से बचने की बात हमारे मन में आये बिना कैसे रहेगी, ? (३९) कुल का क्षय होने से सनातन कुल धर्म नष्ट होते है, और कुलधर्मोंके नष्ट होने से समूचे कुल अधर्मसे पराभूत होता है, (४०) हे कृष्ण ! अधर्मके फैलने से कुलस्त्रियॉ बिगडती है; हे वार्ष्णेय ! स्त्रियोंके बिगड जाने पर. वर्णसङ्करकी उत्पत्ति होती है । (४१) और वर्णसङ्कर होने से वह कुलघातकों को और समग्र कुल को निश्चय ही नरकमे ले जाता है, एवं पिण्डदान और तर्पणादि क्रियाओं के लुप्त हो जानेसे उनके पितर भी पतन पाते है। (४२) कुलघातकों के इन वर्णसङ्कर कारक दोषों से सनातन जातिधर्म और कुलधर्म विच्छिन्न होते है; (४३) और हे जनार्दन ! हम ऐसा सुनते

उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन ।
नरके नियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥
अहो बत महत्पापं कर्तुं व्यवसिता वयम् ।
यद्राज्यसुखलोभेन हन्तुं स्वजनमुद्यताः ॥ ४५ ॥
यदि मामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ।
धार्तराष्ट्रा रणे हन्युस्तन्मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥
संजय उवाच— एवमुक्त्वाऽर्जुनः संख्ये रथोपस्थ उपाविशत् ।
विसृज्य सशरं चापं शोकसंविग्नमानसः ॥ ४७ ॥ [८६१]

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादेऽर्जुन-
विषादयोगो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ भीष्मपर्वणि तु पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥

संजय उवाच— तं तथा कृपयाविष्टमश्रुपूर्णाकुलेक्षणम् ।
विषीदन्तमिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥
श्रीभगवानुवाच— कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम् ।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

आपने कहा कि जिन मनुष्योंके कुलधर्म विच्छिन्न हो जाते है, उनको निश्चय ही नरकवास होता है। (४४) देखो तो सही ! हम लोग राज्य-सुख लोभ से स्वजनों को मारने के लिये उद्यत हुए है, सचमुच यह हमने एक बड़ा भारी पाप करने की योजना की है ! (४५) इस-की अपेक्षा मेरा अधिक कल्याण तो इसमें होगा, कि मैं निःशस्त्र हो कर बैठ गये। (४७) [८६१]

भीष्मपर्वमें पचीसवां अध्याय समाप्त।
भगवद्गीतामें पहला अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें छब्बीसवां अध्याय।
भगवद्गीतामें दूसरा अध्याय।

सञ्जयने कहा— इस प्रकार करुणासे व्याप्त आँखों में आँसू भरे हुए और विषाद पानेवाले अर्जुन से मधुसूदन श्रीकृष्ण यूं बोले— (१)

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ॥ ३ ॥
अर्जुन उवाच— कथं भीष्ममहं संख्ये द्रोणं च मधुसूदन।
इषुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हावरिसूदन ॥ ४ ॥
गुरूनहत्वा हि महानुभावाञ्छ्रेयो भोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके।
हत्वाऽर्थकामांस्तु गुरूनिहैव भुञ्जीय भोगान्रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥
न चैतद्विद्मः कतरन्नो गरीयो यद्वा जयेम यदि वा नो जयेयुः।
यानेव हत्वा न जिजीविषामस्तेऽवस्थिताः प्रमुखे धार्त्तराष्ट्राः ॥ ६ ॥
कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसम्मूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥ ७ ॥
नहि प्रपश्यामि ममाऽपनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाऽऽधिपत्यम् ॥ ८ ॥
सञ्जय उवाच—एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परन्तप।

हे पार्थ! ऐसा नामर्द मत हो! यह तुझे शोभा नहीं देता। अरे! शत्रुओंको ताप देनेवाले! अंतःकरणकी इस क्षुद्र दुर्बलता को छोडकर (युद्धके लिये) खडा हो! (३)

अर्जुन बोले, हे शत्रुओंको मारनेवाले मधुसूदन! मै (परम) पूज्य भीष्म और द्रोणके साथ युद्धमें बाणोंसे कैसे लडूंगा? (४) महात्मा गुरु लोगोंको न मारकर इस लोकमें भीख माँग करके पेटपालना भी श्रेयस्कर है; परन्तु अर्थ-लोलुप हों, तो भी गुरु लोगोंको मार-कर इसी जगतमें मुझे रक्त से सने हुए भोग भोगने पडेंगे। (५) हम जय प्राप्त करें या हमें (वे लोग) जीतलें इन दोनों बातोंमें श्रेयस्कर कौन है, यह भी समझ नहीं पडता। जिन्हें मार-कर फिर जीवित रहने की इच्छा नहीं है, वे ही ये कौरव (युद्धके लिये) सामने खडे है! (६) दीनता से मेरी स्वाभाविक वृत्ति नष्ट हो गई है, मेरे चित्तमे अपने धर्म अर्थात् कर्त्तव्य कर्मके विषयमे मोह हो गया है, इस लिये मै तुमसे पूछता हूँ, कि जो निश्चय मे श्रेयस्कर हो, वह मुझे बतलाओ। मै तुम्हारा शिष्य हूँ, इसलिये मुझ शरणागत को समझाइये। (७) क्योंकि पृथ्वीका निष्कण्टक समृद्ध राज्य या देवताओं (स्वर्ग) का भी स्वामित्व मिल जाय, तथापि मुझे ऐसा कुछ भी (साधन) नहीं नजर आता, कि जो इन्द्रियोंको सुखाने वाले मेरे इसशोक को दूर करसके। (८)

न योत्स्य इति गोविन्दमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥
तमुवाच हृषीकेशः प्रहसन्निव भारत ।
सेनयोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वचः ॥ १० ॥
श्रीभगवानुवाच– अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नाऽनुशोचन्ति पण्डिताः ॥ ११ ॥
न त्वेवाऽहं जातु नाऽऽसं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
नचैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ॥ १२ ॥
देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥ १३ ॥
मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ॥ १४ ॥
यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

सञ्जय बोले, गुडाकेश अर्जुनने इस प्रकार शत्रुसन्तापी हृषीकेश अर्थात् इन्द्रियोंके स्वामी श्रीकृष्णसे कहा और "मैं न लड़ूँगा" कह कर वह चुप होगया। (९) हे भारत! दोनों सेनाओंके बीच विषण्ण होकर बैठे हुए अर्जुनसे हृषीकेश श्रीकृष्ण कुछ हँसते हुए से बोले। (१०)

श्रीभगवान्ने कहा–जिनका शोक न करना चाहिये तू उन्हीं का शोक कर रहा है और पण्डितोंके समान बातें करता है! किसीके प्राण चाहे जायें या चाहे रहें, ज्ञानी पुरुष उनके लिये शोक नहीं करते। (११) ऐसा कोई नहीं कह सकता, कि मैं पहिले कभी नहीं था, या आप पहिले कभी नहीं थे, या ये राजा लोग पहिले कभी नहीं थे, अथवा हम सब लोग इसके बाद कभी नहीं रहेंगे। (१२) जिस प्रकार देह धारण करनेवाले को इस देह में लड़कपन, जवानी, और बुढ़ापा प्राप्त होता है, उसी प्रकार आगे दूसरी देह प्राप्त हुआ करती है, इसलिये इस विषयमें धीर पुरुष मोहयुक्त नहीं होते। (१३) हे कुन्तिपुत्र! शीतोष्ण या सुख-दुःख देनेवाले, मात्राओं अर्थात् बाह्य सृष्टि के पदार्थोंके इन्द्रियोंसे जो संयोग होते हैं उनकी उत्पत्ति होती है और नाश होता है, इसलिये वे अनित्य अर्थात् विनाशशाली हैं। हे भारत! तू शोक न करके उनको सहन कर। (१४) हे पुरुषश्रेष्ठ! जिसको दुःख और सुख सम हैं, ऐसे जिस धीर पुरुषको उनकी व्यथा नहीं होती, वही अमृतत्व के [illegible]

नाऽसतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः ।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥
अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्याऽस्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥ १७ ॥
अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ १८ ॥
य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नाऽयं हन्ति न हन्यते ॥ १९ ॥
न जायते म्रियते वा कदाचिन्नाऽयं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ २० ॥
वेदाऽविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥ २१ ॥

अमृत ब्रह्म की स्थिति को प्राप्त करलेने में समर्थ होता है। (१५) जो नहीं है, यह हो ही नहीं सकता, और जो है, उसका ही अभाव नहीं होता; तत्त्वज्ञानियोंने सत् और असत्, उन दोनों का अन्त देख लिया है अर्थात् अन्त देख कर उनके स्वरूप का निर्णय किया है। (१६) स्मरण रहे कि, यह जगत् जिसने फैलाया अथवा व्याप्त किया है, वह मूल आत्मस्वरूप ब्रह्म अविनाशी है। इस अव्यय आत्मतत्त्व का विनाश करनेका सामर्थ किसीमें भी नहीं है। (१७) कहा है, कि जो शरीरका स्वामी (आत्मा) नित्य, नाशरहित और अचिन्त्य है, उसे प्राप्त होनेवाले ये शरीर नाशवान् अर्थात् अनित्य है। अतएव हे भारत ! तू युद्ध कर। (१८) जो पुरुष उस आत्मा को मारनेवाला मानता है, या ऐसा समझता है, कि वह मारा जाता है, उन दोनों ही उसको नहीं पहचानते है। क्योंकि किसीको यह आत्मा न तो मारता है और न किसीसे माराही जाता है। (१९) यह (आत्मा) न तो कभी जन्मलेता है और न मरता ही है; ऐसा भी नहीं है, कि यह एकबार होकर फिर होनेका नहीं; अज, नित्य, शाश्वत और पुराण (पूर्व हीसे नवीन) है, एवं शरीरके वध करने योग्य होने परभी यह मारा नहीं जाता। (२०) हे पार्थ ! जिसने जान लिया, कि यह आत्मा अविनाशी, नित्य, अज और अव्यय है, वह पुरुष किसीको मारेंगे किस प्रकारसे मारेंगे, वा किसके द्वारा मार डालेंगे? २१ जिसप्रकार कोई आदमी पुराने कपडेको

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही २२॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥२३ ॥
अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥ २४ ॥
अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नाऽनुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥
अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ।

परीत्याग कर दूसरे नये कपडेको पहनता है उसी प्रकार देही अर्थात शरीरका स्वामी आत्मा पुराने शरीर त्यागकर दूसरे नये शरीरको धारण करता है। (२२) इसे अर्थात आत्माको शस्त्र काट नहीं सकते, इसे आग जला नहीं सकती है, वैसेही इसे पानी भिगा या डुबा नहीं सकता और वायु सुखा भी नहीं सकती है। (२३) कभी भी न कटनेवाला न जलनेवाला, न भीगनेवाला और न सूखनेवाला यह आत्मा नित्य, सर्वगत, स्थिर, अचल और सनातन अर्थात् चिरन्तन है। (२४) इस आत्माको ही अव्यक्त अर्थात जो इन्द्रियों को गोचर नहीं हो सकता, अचिन्त्य अर्थात जो मनसे भी जाना नहीं जा सकता, और अविकार्य अर्थात जिसे किसी भी विकार की उपाधि नहीं है, ऐसा कहते हैं। इसलिये उस आत्माको इस प्रकार का समझ कर उसका शोक करना तुझको उचित नहीं है। (२५) अथवा, यदि तू ऐसा मानता हो, कि यह आत्मा शरीरके साथही सर्वदा जन्म लेता है, या शरीरके साथ सदा मरता है, तो भी हे महाबाहो ! उसका शोक करना तुझे उचित नहीं (२६) क्योंकि जो जन्मता है उसकी मृत्यु निश्चित है, और जो मरता है, उसका जन्म निश्चित है इसलिये इस अपरिहार्य बातका शोक करना तुझको उचित नहीं। (२७) सब भूत जन्मके पूर्व अव्यक्त, जन्मके बाद मध्यमें व्यक्त और मरने पर

अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥
आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चाऽन्यः ।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः श्रृणोति श्रुत्वाऽप्येनं वेद न चैव कश्चित् ॥ २९ ॥
देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥
स्वधर्ममपि चाऽवेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३१ ॥
यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥
अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥
अकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽव्ययाम् ।
सम्भावितस्य चाऽकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥
भयाद्रणादुपरतं मस्यन्ते त्वां महारथाः ।

फिर अव्यक्त होते हैं; (ऐसी यदि सभी की स्थिति है) तो हे भारत! उसमें शोक किस बातका? (२८) मानों कोई तो आश्चर्य (अद्भुत वस्तु) समझकर इसकी ओर देखते है, कोई आश्चर्य की तरह इसका वर्णन करता है, और कोई मानो आश्चर्य समझकर सुनता है। परन्तु (इस प्रकार देखकर, वर्णन कर और) सुनकर भी इनमे कोई इसे तत्त्वतः नहीं जानता है। (२९) सब के शरीर में रहने वाला शरीर का स्वामी (आत्मा) सर्वदा अवध्य अर्थात् कभी भी वध न किया जानेवाला है; अतएव हे भारत अर्जुन! सब अर्थात् किसी भी प्राणीके निमित्त शोक करना आपको उचित नहीं है। (३०) इसके सिवाय स्वधर्म की ओर ध्यान दीजिये तो भी इस समय कम्पित होना तुझे उचित नहीं है। क्योंकि क्षत्रियोंके लिये धर्मयुद्धसे बढकर और कोई भी श्रेयस्कर नहीं है। (३१) और हे पार्थ! यह युद्ध विना प्रार्थना किये हुए खुला हुआ स्वर्ग का द्वार ही है; ऐसा युद्ध भाग्यवान् क्षत्रियों ही को मिला करता है। (३२) इससमय पर यदि तू अपने धर्मके अनुकूल यह युद्ध न करेगा, तो स्वधर्म और कीर्ति खोकर पाप बटोरेगा; (३३) यही नहीं वलिक सब लोग तेरी अक्षय्य दुष्कीर्ति गाते रहेंगे! और सम्भावित पुरुष के लिये तो अकीर्ति मृत्यु

येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥
अवाच्यवादांश्च बहून्वदिष्यन्ति तवाऽहिताः ।
निन्दन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥
हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥
सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥
एषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां शृणु ।
बुद्ध्या युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥
नेहाऽभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥
व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन ।

से भी बढ़कर है। (३४) सब महारथ लोग समझेंगे, कि आप डर कर लड़ाईसे विमुख होगये हैं और जिन्हें आज आप बहुमान्य हो रहे हैं, वे ही लोग आपको हीन समझने लगेंगे। (३५) और सुनिये आपके सब शत्रु आप के सामर्थ्यकी निन्दा करेंगे और बहुतसी बातें ऐसी कहेंगे कि जिसे कहना भी उचित नहीं। कहिये तो इससे बढ़कर दुःखदायक और है ही क्या? (३६) हे कौन्तेय! यदि आप लड़ाईमें मारे जायंगे तो आपको स्वर्ग मिलेगा और यदि जीत गया तो पृथ्वी का राज्य भोगेगा। इसलिये हे अर्जुन! युद्ध का निश्चय करके उठ। (३७)

सुख, दुःख, लाभ, हानि, जय और पराजय को एकसा मान कर फिर युद्ध में लग जाओ। ऐसा करने से तुम्हें कोई भी पाप लगने का नहीं। (३८) सांख्य अर्थात संन्यासनिष्ठा के अनुसार तुझे यह बुद्धि अर्थात् ज्ञान या उपपत्ति बतलाई गई। अब जिस बुद्धि से युक्त होने पर कर्मों को करने पर भी हे पार्थ! तू कर्मबन्ध छोड़ेगा, ऐसी वह (कर्म) योग की बुद्धि अर्थात ज्ञान (तुझसे बतलाता हूं) सुनो। (३९) यहां अर्थात् इस कर्मयोगमार्ग में एकबार आरम्भ किये हुए कर्म का नाश नहीं होता और आगे कोई प्रत्यवाय भी नहीं उत्पन्न होता है। इस धर्मका थोड़ासा भी आचरण करनेसे बड़े बड़े भयसे संरक्षण करता है। (४०) हे कुरुनन्दन! इस मार्ग में व्यवसाय बुद्धि अर्थात् कार्य और अकार्य का निश्चय करने वाली (इन्द्रियरूपी) बुद्धि एक अर्थात् एकाग्र रहनी चाहिये।

बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥
यामिमां पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नाऽन्यदस्तीति वादिनः ॥ ४२ ॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति ॥ ४३ ॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते ॥ ४४ ॥
त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवाऽर्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥ ४५ ॥
यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ॥ ४६ ॥
कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।

क्योंकि जिनकी बुद्धिका इस प्रकार एक निश्चय नहीं होता, उनकी बुद्धि अर्थात् वासनाएँ अनेक शाखाओं से युक्त और अनन्त प्रकार की होती है। (४१)

हे पार्थ! कर्मकांडात्मक वेदों के फलश्रुति-युक्त वाक्यों से भूले हुए और यह कहने वाले मूढ वृत्ति लोग कि इसके अतिरिक्त दूसरा कुछ भी नहीं है; सदा कर कहा करते है, कि- (४२) " अनेक प्रकार के यज्ञ याग आदि कर्मोंसे ही फिर जन्म रूप फल प्राप्त होता है और जन्म-जन्मान्तरमें भोग तथा ऐश्वर्य मिलता है, " - स्वर्गके पीछे पडे हुए वे काम्य बुद्धि से युक्त लोग, (४३) उल्लिखित भाषण की ओर ही उनके मन आकर्षित हो जाता है इसमे भोग और ऐश्वर्य में ही गर्क रहते है, इस कारण उनकी व्यवसायात्मक अर्थात् कार्य-अकार्य का निश्चय करनेवाली बुद्धि कभी भी समाधिस्थ अर्थात एकस्थान में स्थिर रहने वाली नहीं होती। (४४) हे अर्जुन! कर्मकाण्डात्मक वेद इस रीतिसे त्रैगुण्य की बातोंसे भरे है, इसलिये तू निस्त्रैगुण्य अर्थात् त्रिगुणोंसे अतीत, नित्य सत्त्वस्थ और सुख-दुःख आदि द्वन्द्वोंसे अलिप्त हो एवं योग-क्षेम आदि स्वार्थोंमें न पड कर आत्मनिष्ठ हो। (४५) चारों ओर पानी की बाढ आजाने पर कुएँ का जितना अर्थ या प्रयोजन रह जाता है अर्थात् कुछ भी काम नहीं रह जाता है, उतना ही प्रयोजन ज्ञानप्राप्त ब्राह्मणको सब कर्मकाण्डात्मक वेदका रहता है अर्थात् सिर्फ काम्यकर्मरूपी वैदिक कर्मकाण्ड की उसे कुछभी जरूरत नहीं रहती। (४६)

मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥
योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ ४८ ॥
दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय ।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ॥ ४९ ॥
बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते ।
तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम् ॥ ५० ॥
कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः ।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम् ॥ ५१ ॥
यदा ते मोहकलिलं बुद्धिर्व्यतितरिष्यति ।
तदा गन्तासि निर्वेदं श्रोतव्यस्य श्रुतस्य च ॥ ५२ ॥
श्रुतिविप्रतिपन्ना ते यदा स्थास्यति निश्चला ।

तेरा अधिकार कर्म करने मात्र का है; फल मिलना या न मिलना कभी भी तेरे अधिकार अर्थात ताबे में नहीं इस लिये मेरे कर्मका अमुक फल मिले, यह हेतु मनमें रख कर काम करनेवाला न हो; और कर्म छोडनेका भी तू आग्रह न कर। (४७) हे धनञ्जय ! आसक्ति छोड कर और कर्म की सिद्धि हो या असिद्धि, दोनों को समान रूपसे ही मान कर, 'योगस्थ' हो करके कर्म कर, कर्मके सिद्ध होने या निष्फल होने में सम होकर रहने वाली समताकी मनोवृत्ति को ही कर्म योग कहते है। ४८ क्योंकि हे धनञ्जय बुद्धिके साम्य योग की अपेक्षा कोरा कर्म बहुत ही कनिष्ट है। अतएव इस साम्य बुद्धि की शरणमें जा। फलहेतुक अर्थात् फल पर दृष्टि रखकर काम करने वाले लोग कृपण अर्थात दीन या कम दर्जे के है। ४९ जो साम्य-बुद्धि से युक्त हो जाय, वह इस लोक में पाप और पुण्य दोनोंसे अलिप्त रहता है, इस लिये तू योगका आश्रय कर। पापपुण्य से अलिप्त रह कर कर्म करने की चतुराई कुशलता या युक्ति को ही कर्मयोग कहते है। (५०) समत्व बुद्धिसे युक्त ज्ञानी पुरुष कर्म फलका त्याग करके जन्मके बन्धसे मुक्त होकर परमेश्वर के दुःखविरहित पदको जा पहुँचते है। (५१) जब तेरी बुद्धि मोहके मलिन आवरणसे पार हो जायगी तब तू जो सुना है और सुनने को है उन बातोंसे विरक्त हो जायगा। ५२ नाना प्रकार के वेदवाक्यों से विचलित हुई तेरी बुद्धि जब समाधि वृत्तिमें स्थिर

न चाऽभावयत शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥६६ ॥
इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते ।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाऽम्भसि ॥ ६७ ॥
तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ६८ ॥
या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी ।
यस्यां जाग्रति भूतानि सा निशा पश्यतो मुनेः ॥६९॥
आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥७०॥
विहाय कामान्यः सर्वान्पुमांश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥
एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥७२॥[९३३]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे साङ्ख्ययोगो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ पर्वणि तु षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

नहीं उसे सुख कहाँसे मिलेगा ? (६६) विषयोंमें सञ्चरण अर्थात् व्यवहार करनेवाली इन्द्रियोंके पीछे पीछे जो मन जाने लगता है, वही पुरुष की बुद्धिको ऐसे हरण किया करता है, जैसे कि वायु पानी में नौका को खींचती है। (६७) इसलिये हे महाबाहो अर्जुन ! इन्द्रियोंके। स्पर्शादि विषयोंमें जिसकी इन्द्रियाँ चहुँ ओरसे अलग हुई हो, कहना चाहिये कि उसी की बुद्धि स्थिर हुई। (६८) सब लोगों की जो रात है, उसमें स्थितप्रज्ञ पुरुष जागृत रहता है और जिस समय समस्त प्राणिमात्र जागते रहते हैं, वह इस ज्ञानवान् पुरुष की रात होती है।

(६९) चारों ओरसे पानी भर जाने पर भी जिसकी मर्यादा स्थिर रहती है ऐसे समुद्रमें जिस प्रकार सब पानी चला जाता है, उसी प्रकार जिस पुरुष में समस्त विषय उसकी शान्ति भङ्ग हुए बिना ही प्रवेश करते हैं, उसे ही सच्ची शान्ति मिलती है। विषयों की इच्छा करने वाले को यह शान्ति नहीं मिलती। (७०) जो पुरुष सब काम, अर्थात् आसक्ति छोड कर और निःस्पृह हो करके व्यवहार में वर्तन करता है, एवं जिसे ममत्व और अहङ्कार नहीं होता, उसे ही शांति मिलती है। (७१) हे पार्थ ! यही ब्राह्मी स्थिती है। इसे

अर्जुन उवाच—ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥
व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥ २ ॥
श्रीभगवानुवाच—लोकेऽस्मिन्द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयाऽनघ ।
ज्ञानयोगेन सांख्यानां कर्मयोगेन योगिनाम् ॥ ३ ॥
न कर्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।
न च संन्यसनादेव सिद्धिं समधिगच्छति ॥ ४ ॥
न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत् ।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥
कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।

पाजाने पर कोई भी मोह में नहीं फस-ता और अन्तकालमे अर्थात मरने के समय में भी इस स्थिति में रह कर ब्रह्मनिर्वाण अर्थात ब्रह्म में मिल जाने के स्वरूप का मोक्ष पाता है । (७२)

भीष्मपर्वमें पच्चीस अध्याय समाप्त ।
भगवद्गीतामें दूसरा अध्याय समाप्त । [९१२

भीष्मपर्वमें सताइस अध्याय ।
भगवद्गीतामें तीसरा अध्याय ।

अर्जुन बोले, हे जनार्दन ! यदि तुम सांख्यबुद्धि ही को कर्मसे श्रेष्ठ समझते हो, तो हे केशव ! प्राणियोंके वधरूपी घोर कर्मसे मुझे क्यों नियुक्त करते हो ? (१) कभी कर्मकी प्रशंसा कभी ज्ञानको श्रेष्ठ करके वर्णन करते हो । इन मिलीजुली बातोंसे मेरी बुद्धिको क्यों मोहमें डालते हो ? इन दोनोंमें निश्चय करके जो उत्तम हो उसे कहो, जिसका अनुष्ठान करनेसे मेरा कल्याण हो । (२)

श्रीभगवान बोले, हे पापरहित अर्जुन ! इस लोकमें दो प्रकारकी निष्ठा है, यह मैंने प्रथम ही कह दिया है, ज्ञान योगमे सांख्यों की और कर्मयोगमे योगियोंकी । (३) बिना कर्मके अनुष्ठान किये पुरुष कदापि नैष्कर्म्य स्थितिको प्राप्त नहीं हो सकता, और केवल कर्मोंका त्याग करनेसेही मोक्षलाभका अधिकारी नहीं हो सकता है । (४) ज्ञानी हो, वा अज्ञानी हो, बिना कर्म किये क्षण मात्र भी कोई किसी अवस्थामें नहीं रह सकता क्योंकि प्रकृतिसे जो स्वाभाविक राग, द्वेष आदिक गुण उत्पन्न होते हैं, उनके वशमें होकर सबको परवश ही प्रवृत्त होना पड़ता है । (५) जो मनुष्य हाथ पांव आदि कर्मेन्द्रियोंको रोककर मनसे [illegible]

इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥
यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्याऽऽरभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥
नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः ॥ ८ ॥
यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मवन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ॥ ९ ॥
सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ॥ १० ॥
देवान्भावयताऽनेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥ १२ ॥

इन्द्रियोंके विषयोंका ध्यान करता है; यह मूढबुद्धि मिथ्याचारी झूठा वा पाखण्डी कहलाता है। (६) हे अर्जुन! जो पुरुष ज्ञानके इन्द्रियोंको मनसे रोकके और फलाभिलाषासे रहित होकर, कर्मेन्द्रियोंसे कर्मयोगका अनुष्ठान करता है, वही सबसे उत्तम है। (७) हे कुन्तीनन्दन! इससे तुम नियमित कर्मका निर्वाह करो, क्योंकि कर्म न करनेसे कर्मका करना ही उत्तम है। इस हेतु कर्मसे निवृत्त होनेपर तुम्हारे शरीरका निर्वाह ही नहीं होगा। (८) यज्ञके सिवाय अन्य जो कर्म है, उनसे सब प्राणी बंधे है। हे कुन्तीनन्दन! इससे तुम फलकी इच्छा छोडकर यज्ञके वास्ते कर्म करो। (९) प्रजापति (ब्रह्मा) ने ब्राह्मणादिक प्रजाओंको यज्ञके समेत उत्पन्न किया और उनसे कहा कि यज्ञसे ही तुम्हारी वृद्धि होगी, यह तुम्हारे अभीष्टकामनाओंके सिद्ध करनेवाला होगा। (१०) तुम लोग यज्ञसे देवताओंको प्रसन्न करोगे, और देवता लोग भी जलवृष्टि आदि उत्पन्न करके तुम्हारी वृद्धि करेंगे। इस प्रकार देवता और तुम लोग परस्पर एक दूसरेको सन्तुष्ट करते हुए परम कल्याणको प्राप्त होओगे। (११) यज्ञसे देवता लोग तृप्त और प्रसन्न होकर जल वृष्टि आदिसे तुम्हारी सकल अभिलषित और भोगप्रद वस्तु तुम्हें प्रदान करेंगे। इससे जो पुरुष उन देवताओंके दिये हुए अन्न आदिको उन्हें विना समर्पण किये ही स्वयं भोग करता है, उसको

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥
अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥
कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माऽक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥
एवं प्रवर्तितं चक्रं नाऽनुवर्त्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ॥ १६ ॥
यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानवः ।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥
नैव तस्य कृतेनाऽर्थो नाऽकृतेनेह कश्चन ।
न चाऽस्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥
तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।

चोर ही जानना चाहिये । (१२)

यज्ञसे बचे हुए भोगको जो महात्मा सेवन करते हैं वे सब पापोंसे बच जाते हैं और जो मनुष्य अपने ही वास्ते भोजन बनाते हैं, वे दुराचार केवल पाप ही भोगते रहते हैं । (१३) प्राणिमात्र अन्नसे ही उत्पन्न होते हैं, अन्न पर्जन्य से उत्पन्न होता है पर्जन्य यज्ञसे उत्पन्न होता है और यज्ञकी उत्पत्ति कर्मसे

सिद्ध जो पुरुष इस लोकमें उसका अनुवर्त्ती अर्थात् कर्मानुष्ठानका अनुयायी नहीं होता, उसकी अवस्था पापस्वरूप है । हे अर्जुन ! ऐसा मनुष्य केवल इन्द्रिय परायण वा इन्द्रियाराम इन्द्रियोंको सुख देने वाला है । वह वृथा जीवन धारण करता है । (१६) हे अर्जुन ! जो पुरुष केवल आत्मामेंही प्रीति और तृप्ति मानता है तथा आत्मा-

असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ॥ १९ ॥
कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥
यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥ २१ ॥
न मे पार्थाऽस्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किञ्चन।
नाऽनवाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥
यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः।
मम वर्त्माऽनुवर्त्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥
उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम्।
सङ्करस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥ २४ ॥
सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥ २५ ॥

(१८) तस्मात् ज्ञानी पुरुष जब कोई भी अपेक्षा नहीं रखता, तब तुम सदा मनसे फलासक्तिकी कामना छोडके, करने योग्य जो कर्म है, उनको अवश्य करते रहो; क्योंकि जो पुरुष फलकी कामना त्यागके कर्म करता है, उसको परम गति प्राप्त होती है। (१९) जनक आदि महात्माओंने निश्चय करके कर्मके द्वारा ही सम्पूर्ण रूपसे सिद्धि प्राप्त की थी। इसी प्रकार लोकसंग्रह पर दृष्टि करके भी तुम्हें कर्म करना उचित है। (२०) श्रेष्ठ लोग जिस कर्म को करते हैं, उसी कर्म को साधारण मनुष्य भी करने लगते हैं, श्रेष्ठ पुरुष जिस शास्त्रको प्रमाण मानके चलते है, उसीके अनुसार सब लोग चलते है। (२१) हे अर्जुन! मुझको तीनों लोकमें कुछ कर्म करनेकी आवश्यता नहीं है; क्योंकि मुझसे कोई पदार्थ अप्राप्त नहीं है, कि कर्म करनेसे प्राप्त हो; तौ भी मैं कर्म करनेमें लगा ही रहता हू। (२२) हे अर्जुन! जो मैं आलस त्यागके कर्म न करूं तो यह सम्पूर्ण लोग कर्मको छोडके मेरी राहपर चलने लगेंगे। (२३) यदि मैं कर्म न करूं, तो ये सब लोग कर्महीन होकर धर्म लोप होनेसे नष्ट हो जायँगे। जिसके नष्ट होनेसे हम लोग प्रजाके वर्णसङ्कर होनेके कारण और उनके नाशक समझे जायँगे। (२४) हे भारत! इससे अज्ञानी मनुष्य कर्म में आसक्त होकर जिस प्रकारसे कर्ममें प्रवृत्त रहते हैं; वैसे ही ज्ञानी पुरुषको भी लोक संग्रह

न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसङ्गिनाम्।
जोषयेत्सर्वकर्माणि विद्वान्युक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥
प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः।
अहङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताऽहमिति मन्यते ॥ २७ ॥
तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्त्तन्त इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥
प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु।
तानकृत्स्नविदो मन्दान्कृत्स्नविन्न विचालयेत्॥ २९ ॥
मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्याऽध्यात्मचेतसा।
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युध्यस्व विगतज्वरः ॥ ३० ॥
ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः॥ ३१ ॥
ये त्वेतदभ्यसूयन्तो नाऽनुतिष्ठन्ति मे मतम्।

के निमित्त अर्थात् अज्ञ लोगों को उपदेश देनेके लिये कर्म के फलकी आशा त्यागके कर्मका करना ही उचित है। (२५) जो अज्ञानी मनुष्य कर्म में आसक्त हैं, उन लोगोंकी बुद्धिमें दूसरा भाव उत्पन्न करना विद्वान्को कदापि उचित नहीं है; बल्कि स्वयं योगयुक्त होकर सब कर्मोंका आचरण करे, और लोगोंसे भी खुशीसे करावे। (२६) सब कर्म प्रकृतिके गुण सत्व, रज तमसे उत्पन्न होते हैं, जो पुरुष इन सब कर्मोंका कर्त्ता अपने ही को मानता है, उसकी बुद्धि अहङ्कारसे मूढ़ होगई है। (२७) हे महाबाहो! तत्त्ववित् लोग प्रकृतिके गुण और कर्मोंसे आत्माको पृथक् जानकर यह समझते हैं 'गुणोंका [illegible] परस्परमें खेल है' ऐसा विचार करके उसमें आसक्त नहीं होते। (२८) जो लोग प्रकृतिके सत्वादि गुणोंमें मोहित होकर गुण और कर्मोंमें फंसे रहते हैं उन अल्पज्ञ, मन्दबुद्धि लोगोंको ज्ञानी लोग विचलित नहीं करें। (२९) ऐसी अवस्थामें तुम अध्यात्म-ज्ञान द्वारा सब कर्मोंको मुझे अर्पण करके निष्काम होकर "यह कर्म मेरा फलसाधक है" इस प्रकारकी ममता, आशा और शोकसे रहित होकर युद्ध करो। (३०) जो लोग मेरी इस सम्मतिपर असूयारहित और श्रद्धावान् होकर मेरे इस मतका नित्य अनुष्ठान करते हैं, वे लोग धीरे धीरे कर्म करते हुए कर्मोंसे छूट जाते हैं। (३१) जो लोग मेरे इस मतकी निन्दा करते हैं,

सर्वज्ञानविमूढांस्तान्विद्धि नष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥
सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥
इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ ॥ ३४ ॥
श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥
अर्जुन उवाच—अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥
श्रीभगवानुवाच- काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥

और इसका अनुष्ठान नहीं करते, उनको दुष्टबुद्धि, सर्वज्ञानसे मूढ तथा नष्ट हुए जानना चाहिये। (३२) अपनी प्रकृतिके अनुकूल ज्ञानी मनुष्य भी कर्म करनेकी चेष्टा करते है। जब कि प्राणी मात्र ही प्रकृतिके अनुवर्ती है, तब ऐसे स्थलमें निग्रह (जबर्दस्ती) उन लोगोंका क्या कर सकती है। (३३) बल्कि हर एक इन्द्रियोंके अपने अपने विषय अनुकूल होनेसे उसमें अनुराग और प्रतिकूल होनेसे उसमें द्वेष उत्पन्न होता है, परन्तु ऐसा होने पर भी राग द्वेष आदिके वशमें होना उचित नहीं है, क्योंकि वह मोक्षकी इच्छा करने वाले पुरुषका विरोधी है। (३४) और सम्पूर्ण रूपसे अनुष्ठित पराये धर्मसे अपना धर्म अङ्गहीन भी हो, तो भी उत्तम है, क्योंकि अपने धर्म में मरण भी श्रेष्ठ है, अर्थात् अपने धर्ममें मर जाना भी इस लोकमें यश और स्वर्गसाधनका मूल है, परन्तु दूसरेका धर्म उत्तमतासे भी ग्रहण किया जावे, तो भी इस लोकमें अपयश और मरनेसे परलोकमें नरक साधनका मूल होता है। (३५)

अर्जुन बोले, हे वृष्णिनन्दन! पुरुष विना इच्छाके भी किसकी प्रेरणासे पाप कर्ममें नियुक्त होता है? जैसे कोई बल पूर्वक उसको पाप कर्म करनेमें नियुक्त करता है, इसमें पुरुष किसकी इच्छासे प्रेरित होकर पापाचरण करता है? (३६) श्रीकृष्ण भगवान् बोले, हे अर्जुन! तुमने जो पुरुषके पापाचरणके विषयमें मुझसे प्रश्न किया; वह महापापी बडा खानेवाला, और रजोगुणसे उत्पन्न होने वाला काम और क्रोध है, इसे ही अपना शत्रु समझना चाहिये। (३७)

धूमेनाऽऽव्रियते वह्निर्यथाऽऽदर्शो मलेन च ।
यथोल्बेनाऽऽवृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥
आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणाऽनलेन च ॥ ३९ ॥
इन्द्रियाणि मनो बुद्धिरस्याऽधिष्ठानमुच्यते ।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥ ४० ॥
तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥
इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धेः परतस्तु सः ॥ ४२ ॥
एवं बुद्धेः परं बुद्ध्वा संस्तभ्याऽऽत्मानमात्मना ।
जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम् ॥ ४३ ॥ [१७८]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
कर्मयोगो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ पर्वाणि तु सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

जैसे धूएँसे आग, मलसे दर्पण और जरायुसे (झिल्ली) गर्भ छिपा रहता है, वैसे ही कामसे यह सब छिप जाता है। (३८) हे कुन्तीनन्दन! वह काम कभी तृप्त न होनेवाले अग्निके समान है, और ज्ञानी लोगोंका नित्य वैरी है; वह ज्ञानको छिपा देता है। (३९) इन्द्रिय, मन और बुद्धिको इस कामके

शरीरको धारण करती है, इससे शरीरसे इन्द्रिय सूक्ष्म और उसकी प्रकाशक है। इस वास्ते इन्द्रियोंको पण्डितोंने शरीरसे श्रेष्ठ कहा है। मन इन्द्रियोंको अपने अपने विषयमें प्रवृत्त और निवृत्त करता है, इस वास्ते इन्द्रियोंसे मन श्रेष्ठ है; मनसे बुद्धि और बुद्धिसे परे साक्षी स्व-रूपसे जो अनुसन्धान करता है, वही [illegible]

श्रीभगवानुवाच—इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥ १ ॥
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ॥ २ ॥
स एवाऽयं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ॥ ३ ॥
अर्जुन उवाच— अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः।
कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥
श्रीभगवानुवाच- बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चाऽर्जुन।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ॥ ५ ॥
अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया ॥ ६ ॥
यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदाऽऽत्मानं सृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

भीष्मपर्वमें अठाईस अध्याय।

भगवद्गीतामें चार अध्याय।

श्रीभगवान् बोले, हे शत्रु नाशन! इस अव्यय, त्रिकालमें अबाधित नाश रहित कर्म योगको मैंने पहले पहल विवस्वान् आदित्य सूर्य से कहा था, सूर्यने अपने पुत्र मनुसे कहा और वैवस्वत मनुने राजा इक्ष्वाकुसे कहा था। (१) इसी प्रकार परम्परासे प्राप्त होता हुआ यह कर्म योग राजर्षि लोगोंको मालूम होता चला आया। बहुत दिन बीत जानेसे अब यह कर्म योग लोप हो गया है, (२) उसी पुराने उत्तम रहस्य मय कर्म योगको मैंने तुम्हें अपना भक्त तथा सखा जान कर कहा है। (३)

अर्जुन बोले, विवस्वान् सूर्यका जन्म प्रथम, और तुम्हारा जन्म इस कालमें हुआ है; तब मैं किस प्रकारसे जानूं कि तुमने पहले विवस्वान् आदित्यसे इस योगका वर्णन किया था? (४)

श्रीभगवान् बोले, हे शत्रुओंके नाश करनेवाले अर्जुन! मेरे और तुम्हारे बहुतेरे जन्म बीत गये, किन्तु मैं उन बीते हुए सब जन्मोंको जानता हूं; परन्तु तुम उन बीते हुए जन्मोंको नहीं जानते हो। (५) मैं जन्म मरण रहित अविनाशी और सब प्राणियोंका ईश्वर होकर भी अपनी प्रकृतिको अवलम्बन करके अपनी माया से जन्म धारण करता हूं। (६) हे भारत! जब जब धर्मकी हानि और

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे ॥ ८ ॥
जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ॥ ९ ॥
वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ॥ १० ॥
ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ ११ ॥
कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥
चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ।
तस्य कर्त्तारमपि मां विद्ध्यकर्त्तारमव्ययम् ॥ १३ ॥
न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।

अधर्मकी बढती होती है; तब तब मैं स्वयं ही जन्म (अवतार) लिया करता हूं। (७) साधुओंके क्लेश दूर करनेके निमित्त और अधर्मी दुष्कर्मी, दुष्टलोगोंको दमन करनेके वास्ते तथा धर्मको पुनः स्थापन करनेके लिये, युग युगमें इच्छानुसार अवतार लेता हूं। (८) हे अर्जुन! जो लोग हमारे इन अलौकिक जन्म कर्मको यथार्थ रूपसे जानता है, उसे शरीर छोडनेपर फिर जन्म नहीं लेना पडता; वरन वह मुझे पाता है। (९) बहुतसे पुरुष राग, द्वेष और क्रोधको जीतकर मुझमें निष्ठा और मेरा ही आसरा लेकर ज्ञानरूप तपसे शुद्ध होकर मेरे स्वरूपको प्राप्त भये हैं। (१०) हे अर्जुन! जो जिस प्रकारसे मेरा भजन वा सेवा करता है, मैं उसीके अनुसार उसको वैसा ही फल देनेका यत्न करता हूं, क्योंकि वह चाहे कैसा ही क्यों न हो, किन्तु मेरे ही मार्गमें आकर मिलता है। (११) इस मर्त्य लोकमें प्रायः मनुष्य लोग कर्मके फल की इच्छासे ही देवताओंके निमित्त यज्ञ करते हैं, क्योंकि कर्मसे उत्पन्न हुआ फल उनको शीघ्र ही मिलता है। (१२) गुण कर्मके विभागसे मैंने चारों वर्णोंको उत्पन्न किया है। मैं इन सब कार्योंका करनेवाला हूं, तो भी तुम मुझे न करनेवाला अकर्त्ता ही जानो (१३) कर्मोंमें न मेरी फल भोगनेकी कुछ इच्छा है और न ये कर्म ही मुझे लिपटते हैं। जो मनुष्य मुझको इसी भांति जानता है;

इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ॥ १४ ॥
एवं ज्ञात्वा कृतं कर्म पूर्वैरपि मुमुक्षुभिः।
कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम् ॥ १५ ॥
किं कर्म किमकर्मेति कवयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्ते कर्म प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥१६॥
कर्मणो ह्यपि बोद्धव्यं बोद्धव्यं च विकर्मणः।
अकर्मणश्च बोद्धव्यं गहना कर्मणो गतिः ॥ १७ ॥
कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥
यस्य सर्वे समारम्भाः कामसङ्कल्पवर्जिताः।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहुः पण्डितं बुधाः ॥ १९ ॥
त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किञ्चित्करोति सः ॥ २० ॥
निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।

वह कर्मके बन्धनमें नहीं फंसता। १४ ऐसा ही समझके पुराने महात्मा ज्ञानी कर्म करते थे; इससे तुम भी पूर्व पुरुषोंके किये हुए अति प्राचीन कर्मका अनुष्ठान करो। (१५) कैसा कर्म करना उचित है और किस प्रकारका कर्म न करना चाहिये. इस विषयमें ज्ञानी लोग भी मोहित होजाते हैं। इससे जैसे कर्म करनेसे अशुभसे मुक्त होओगे, वह कर्म मैं कहता हूं. तुम सुनो। (१६) कर्मका तत्त्व ही जानना उचित है। विपरीत कर्मका तत्त्व ही जान लेना चाहिये तथा अकर्म (कर्म न करना) क्या है यह भी समझलेना आवश्यक है। क्योंकि कर्मोंकी गति जानना बहुत कठिन है। (१७) जो कर्ममें अकर्म और अकर्ममें कर्म देखता है वह पुरुष सब मनुष्योंमें ज्ञानी और वही युक्त अर्थात योग युक्त तथा समस्त कर्म करनेवाला होता है। (१८) जिसके सभी समारंभ अर्थात् उद्योग फल की कामनाओंसे रहित होते हैं, और ज्ञानाग्निसे जिसके सम्पूर्ण कर्म भस्म होजाते हैं ज्ञानियोंने ऐसे ही मनुष्यको पण्डित कहा है। (१९) जो लोग कर्मके फल की आसक्तिको छोडकर नित्य ही तृप्त रहते हैं किसीका आसरा नहीं करते, वे कर्मोंमें प्रवृत्त रहनेपर भी कुछ कर्म नहीं करते (२०) जो कामनासे रहित हैं, जिनके चित्त और देह स्वाधीन हैं, और जो सर्वसंगसे मुक्त

शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाऽऽप्नोति किल्बिषम् ॥ २१ ॥
यदृच्छालाभसन्तुष्टो द्वन्द्वातीतो विमत्सरः ।
समः सिद्धावसिद्धौ च कृत्वाऽपि न निबध्यते ॥ २२ ॥
गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाऽऽचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥
ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥ २४ ॥
दैवमेवाऽपरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ॥ २५ ॥
श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्य इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ॥ २६ ॥
सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चाऽपरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

केवल शरीरसे कर्म करते हैं; वे दोषी नहीं होते। (२१) जो बिना मांगे हुए ही यथा लाभमें सन्तुष्ट रहे, जो सर्दी, गर्मी, सुख, दुःख, वैर, प्रीति आदिका सहनशील हो; जिसमें वैर भाव न हो जिसे लाभ तथा नुकसानमें हर्ष विषाद न उत्पन्न होवे, वह कर्म करके भी बन्धनमें नहीं फँसता (२२) जो आसक्ति रहित और जो राग, द्वेषसे मुक्त है, जिसको कुछ भी कामना नहीं है जो ज्ञानमें चित्त स्थिर करता है, ऐसा मनुष्य केवल यज्ञके निमित्त यदि कर्म धारण करता है तो इसके समग्र कर्म लय हो जाते हैं। (२३) अर्पण करनेकी क्रिया ब्रह्म है, अर्पण करनेका द्रव्य [illegible]

अग्निही ब्रह्म है और उसमें जो हवन करता है वह भी ब्रह्म है इस प्रकार कर्मात्मक ब्रह्ममें जिसके चित्तकी एकाग्रता है, इसको मिलनेवाला फल ब्रह्म ही है, दूसरा कुछ भी नहीं। (२४) कोई कर्मयोगी ब्रह्मबुद्धिके बदले इन्द्र, वरुण आदि देवताओंके उद्देश्यसे यज्ञ करते हैं; और कोई दूसरे लोग पहिले कहे हुए ब्रह्मरूप अग्निमें यज्ञ करके यज्ञहीका होम करते हैं। (२५) और कोई लोग नाक कान इत्यादि इन्द्रियोंका संयमरूपी अग्निमें हवन करते हैं कोई लोग शब्द स्पर्श आदि विषयोंका इन्द्रियरूप अग्निमें हवन करते हैं। (२६) कोई [illegible] इन्द्रिय, प्राण कर्म इन्द्रिय [illegible]

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथाऽपरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥ २८ ॥
अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथाऽपरे ।
प्राणापानगती रुध्वा प्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥
अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥
यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नाऽयं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ ३१ ॥
एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे ।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥३२॥

सब कर्मोका ज्ञानमे जलता हुआ जो आत्मसंयम योगरूपी अग्नि है उसमें होम करते हैं। (२७) कोई कोई तीव्रव्रतकरने वाले यति लोग द्रव्यका दान रूप यज्ञ करते है; कोई कोई यत्न करनेवाले कठोर व्रती तपस्या रूपी यज्ञका अनुष्ठान करते है; कोई कोई चित्तकी वृत्तिको निरोध (रोक) करके समाधि रूपी यज्ञ करते है; कोई वेदाध्ययन रूपी यज्ञ करते है ; कोई कोई ज्ञान रूपी यज्ञ करते है; (२८) कोई प्राण वायुका अपानवायुमें होम कर पूरक नामक प्राणायाम करते है; कोई अपानवायुका प्राण वायुमें होम करके रेचक प्राणायाम करते है; कोई प्राण और अपान-वायुकी गति रोककर कुम्भक प्राणायाम करते है; (२९) और कोई कोई मित आहार करनेवाले होकर प्राण प्रभृति वायुमें प्राणवायुका ही हवन किया करते है, अर्थात् वे लोग प्राण और अपान वायु आदिमेंसे जिसकी गति रोक देते हैं, उसीमें अन्य वायु लीन प्राय हो जाती है—परन्तु ये सब ही यज्ञ करनेवाले तथा जाननेवाले है; इन लोगोंके ऊपर कहे हुए सभी यज्ञोंसे पापोंका नाश होता रहता है। (३०) वे यज्ञके कर्मोको समाप्त करके, उसके अवशिष्ट अमृतसंज्ञक अन्न भोजन करते है, ऐसे ही ज्ञानी लोग ज्ञानसे सनातन ब्रह्मको पाते हैं। हे कुरुसत्तम ! जो इन ऊपर कहे हुए यज्ञोंमेंसे किसी यज्ञका भी अनुष्ठान नहीं करते, उनके लिये यह थोडे सुखसे युक्त मनुष्यलोक ही नहीं रहता, तब बहुत सुखोंसे भरा हुआ स्वर्ग लोग क्यों मिलेगा? (३१) इसी प्रकारसे नाना प्रकारके यज्ञ जो वेदमें कहे हुए हैं, उन सबको ही कर्मोंसे सिद्ध होनेवाला जा-

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्वं कर्माऽखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥
तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥
यज्ज्ञात्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि पाण्डव ।
येन भूतान्यशेषेण द्रक्ष्यस्यात्मन्यथो मयि ॥ ३५ ॥
अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ॥ ३६ ॥
यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥ ३७ ॥
नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनाऽऽत्मनि विन्दति ॥ ३८ ॥
श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाऽधिगच्छति ॥ ३९ ॥

नना चाहिये, ऐसाही जान कर तुम इस संसारसे मुक्त होओगे। (३२) हे परन्तप पृथा-पुत्र ! द्रव्य मय दवता आदिके यज्ञोंसे ज्ञान यज्ञ ही उत्तम है, क्योंकि सब कर्म ज्ञानमें समाप्त हो जाते है। (३३) तुम पूरे सब बातोंके जानने वाले सम्यक् दर्शी महात्मा, ज्ञानी के पास जाकर भक्ति तथा श्रद्धाके सहित नमस्कार और उनकी सेवा करके, प्रश्नके द्वारा ज्ञान प्राप्त करो, वे लोग तुम्हें ज्ञानका उपदेश करेंगे। (३४) हे पाण्डुनन्दन ! उस ज्ञानको पाकर फिर तुम ऐसे मोहमें न पड़ोगे समस्त प्राणियोंको अपनी आत्माहीमें और मुझमें देखोगे; (३५) यदि तुम सम्पूर्ण पापियोंसे भी अधिक पापी होओगे, तौभी ज्ञानरूपी नौका पर चढ़के पाप रूपी समुद्रके पार हो जाओगे। (३६) हे अर्जुन ! जिस प्रकार जलती हुई अग्नि लकड़ियोंको भस्म कर देती है, उसी भांति ज्ञानरूपी अग्नि भी सब कर्मोंको नाश कर देती है (३७) इस संसारमें ज्ञानके समान पवित्र दूसरी कोई वस्तु नहीं है। वह आत्मज्ञान कर्मयोग में सिद्ध मनुष्यको समयानुसार अपनेसे अनायास स्वयं ही प्राप्त होजाता है। (३८) तत्परसे युक्त, जितेन्द्रिय श्रद्धावान् और [illegible] में निष्ठा रखनेवाले लोग ही ज्ञानको पाकरके और इस [illegible] परम [illegible] पाते

अज्ञश्चाऽश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नाऽयं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥४०॥
योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयम् ।
आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ॥ ४१ ॥
तस्मादज्ञानसम्भूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनाऽऽत्मनः ।
छित्वैनं संशयं योगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥ [१०१८]

इतिश्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे ज्ञानविभागयोगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ पर्वणि तु अष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८॥

अर्जुन उवाच— संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि ।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ॥ १ ॥
श्रीभगवानुवाच- संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥
ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ।

है। (३९) परन्तु ज्ञानरहित श्रद्धासे हीन और संशयमे युक्त लोग शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं, विशेष करके संशय ग्रस्त मनुष्य न इस लोक और न परलोकहीमें सुख पाते हैं। (४०) हे धनञ्जय! उस आत्मज्ञानी पुरुषको वे सब कर्म बन्धनमें नहीं फंसा सकते, जिसने कर्मयोगके आश्रयसे कर्म अर्थात् कर्म बंधन त्याग दिया है और ज्ञानसे जिसके सब सन्देह दूर हो गये हैं। (४१) इसमे हे भारत! तुम अज्ञानसे उत्पन्न हुए हृदयमें वास करनेवाले इस संशयको ज्ञान रूपी खड्गसे काट कर कर्म-योगका आसरा लेकर युद्ध करनेके निमित्त उठके खडे होजाओ। (४२) [१०१८]

भीष्मपर्वमें अट्ठाईस अध्याय समाप्त।

भगवद्गीतामें चार अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें उनतीस अध्याय।

भगवद्गीतामें पांच अध्याय।

अर्जुन बोले, हे कृष्ण! तुम एकबार संन्यासको भी कहते हो, और दूसरी बार कर्मोंके योग को ही कहते हो, इन दोनोंमें जो एक उत्तम हो, उसीको निश्चय करके मुझसे कहो। (१)

श्रीकृष्ण भगवान् बोले, कर्मका संन्यास और कर्म योग दोनों ही मोक्ष साधनके हेतु हैं, किन्तु इन दोनोंमेंसे कर्म त्यागसे कर्मयोगकी योग्यता विशेष है। (२) हे महाबाहो! जो सुख, दुःख तथा उसके साधनके निमित्त द्वेष और आकांक्षा नहीं करते, उन्हें कर्ममें प्रवृत्त होनेसे भी नित्य संन्यासी

निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ॥ ३ ॥
सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम् ॥ ४ ॥
यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥
संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म न चिरेणाऽधिगच्छति ॥ ६ ॥
योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ ७ ॥
नैव किञ्चित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित्।
पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन् ॥ ८ ॥
प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।

ही जानना चाहिये। क्योंकि वे सुख दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित हैं अतः विना आयास ही कर्मोंके सब बन्धोंसे मुक्त होते हैं। (३) अज्ञानी लोग सांख्य (कर्म सन्यास) और योग (कर्मयोग) दोनों विषयोंको अलग अलग कहते हैं; किन्तु पण्डित लोग ऐसा नहीं कहते, क्योंकि इन दोनोंमें से एकका अच्छी प्रकार अनुष्ठान करनेहीसे इन दोनोंका जो एक ही फल है वह मिलता है। (४) ज्ञान में निष्ठा रखनेवाले पुरुष जिस साक्षात् मोक्ष पदको पाते हैं, निष्काम (फलकी इच्छा त्यागकर) कर्म करनेवाले कर्मयोगी लोग भी [illegible] उसी मोक्ष पदको पाते हैं। इससे कर्म सन्यास और कर्म योग इन दोनोंको जो [illegible]

जानता है, उसीको यथार्थदर्शी कहना चाहिये। (५) हे महाभुज! कर्म-योगको छोड़कर संन्यास का प्राप्त करना केवल दुःखके निमित्त होता है; परन्तु कर्मयोग में युक्त मुनि लोग थोड़े ही समयमें ब्रह्मको प्राप्त होते हैं। (६) वे कर्मयोगयुक्त लोग निर्मल चित्त होकर शरीर और इन्द्रियोंको अपने वश में कर के आत्मा को सब प्राणियों की आत्मा-स्वरूप जानते हैं, तथा स्वाभाविक वा लौकिक कर्मोंका [illegible] नहीं फसते। (८) योगयुक्त तत्त्व-ज्ञानी [illegible] देखना सुनना [illegible] [illegible]

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्त्तन्त इति धारयन् ॥ ९ ॥
ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाऽम्भसा ॥ १० ॥
कायेन मनसा बुद्धया केवलैरिन्द्रियैरपि ।
योगिनः कर्म कुर्वन्ति सङ्गं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये॥ ११ ॥
युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम् ।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते ॥ १२ ॥
सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्याऽऽस्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥
न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥
नाऽऽदत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ।
अज्ञानेनाऽऽवृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥ १५ ॥
ज्ञानेन तु तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः ।

लना और बन्द करना आदि सब कर्मों को करते हुए भी यह जानते है, कि इन्द्रिया सब अपने अपने विषयमें प्रवृत्त रहती है। मैं कुछ नहीं करता। (८-९) जो लोग फलासक्तिको त्यागकर कर्मफल ब्रह्म को समर्पण करते हुए कर्म करते हैं, वे जल मे कमल के पत्ते की भांति पापमे लिप्त नहीं होते। (१०) कर्मयोगी लोग फलकी आसक्ति छोडकर आत्म शुद्धिके वास्ते केवल शरीरसे, केवल मनसे, केवल बुद्धिसे तथा केवल इन्द्रियोंसे कर्म करते है। (११) जो युक्त अर्थात् कर्मयोग मे युक्त हो गया, वह कर्मके फलोंको त्याग कर अन्तकी पूर्ण शान्ति पाता है और जो योगयुक्त नहीं हुआ वह कामसे अर्थात् वासनासे फलके विषयमें आसक्त होकर कर्म करने से पाप पुण्यसे बद्ध हो जाता है।१२ सब कर्मोंको मनसे (प्रत्यक्ष नहीं) त्यागकर जितेन्द्रिय देहवान् पुरुष नौ द्वारोंके इस देहरूपी नगरमें कुछ न करता और कराता हुआ आनंदसे रहता है। १३ परमेश्वरने जीवोंके कर्तृत्वको उनके कर्म वा उनको प्राप्त होने वाले फलके संयोग को नहीं उत्पन्न किया है, स्वभाव अर्थात प्रकृति ही कर्ममें प्रवृत्त होती है। (१४) सर्व व्यापक परमेश्वर किसी के पाप या पुण्यका ग्रहण नहीं करता। अज्ञानसे ज्ञान छिप जाता है, जिससे सब जीव मोहमे पडते है। (१५) परंतु ज्ञानसे

तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ॥ १६ ॥
तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥
विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ॥ १८ ॥
इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः ॥ १९ ॥
न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाऽप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसम्मूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥
बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥ २१ ॥
ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥ २२ ॥

जिनका अज्ञान नष्ट हो जाता है उनका वही ज्ञान जिस प्रकार सूर्य सब वस्तुओंको प्रकाशित करता है, उसी भाँति परमार्थ तत्त्वको प्रकाशित करता है। (१६) जिन की परमार्थतत्त्व विषयहीकी बुद्धि, प्रयत्न और निष्ठा है और जो परमार्थ तत्त्वको ही परम आश्रयका स्थान जानते हैं, उनको आत्मज्ञान मिलता है, जिससे समस्त दोष धो जाते हैं और वे फिर जन्म नहीं लेते। (१७) वही ज्ञानी पुरुष विद्या, विनयसे भरे हुए ब्राह्मण चाण्डाल, हाथी, गऊ और कुत्तोंमें समदर्शी होते हैं। (१८) जिनका मन समान भावमें स्थिर हो जाता है, वह यहीं [illegible] संसारको जीत लेता है क्योंकि ब्रह्म समान भावसे युक्त और निर्दोष है इसलिये समदर्शी ज्ञानी लोग ब्रह्म भावसे युक्त होकर ब्रह्महीमें लीन हो जाते हैं। (१९) जो कोई प्यारी वस्तुको पाके सन्तुष्ट नहीं होते और अप्रिय चीजोंको पाकर भी नहीं घबराते, तथा मोहसे निवृत्त होनेसे जिसकी बुद्धि स्थिर होजाती है उसी ब्रह्मवेत्ताको ब्रह्ममें स्थित हुआ समझो। (२०) जो बाह्यविषयोंमें अनासक्त चित्त होकर अन्तःकरणके उपशमसे आत्मिक - सात्विक सुख पाते हैं और जिन की आत्मा ब्रह्मके साथ एकदम [illegible] करती है उन्हें अक्षय सुख (मोक्ष) मिलता है। (२१) हे कुन्तीनन्दन! इन्द्रिय और विषयोंके संयोग से जितने भोग होते हैं वे सब ही दुःखके कारण होते हैं, उनका आदि अन्त भी है इससे ज्ञानी लोग उन

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात्
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः सुखी नरः ॥ २३ ॥
योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथाऽन्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ॥ २५ ॥
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम्।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ॥ २६ ॥
स्पर्शान्कृत्वा बहिर्बाह्यांश्चक्षुश्चैवाऽन्तरे भ्रुवोः।
प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तरचारिणौ॥ २७ ॥
यतेन्द्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥ २८ ॥

सब भोगोंमें अनुरक्त नहीं होते। (२२) शरीर त्यागके पूर्व अर्थात मरणपर्यन्त जो काम, क्रोधके वेगको सहनेमें समर्थ होता है, वही युक्त और वही सुखी है। (२३) जो इस प्रकार बाह्य सुखो की ही अपेक्षा न कर जो अन्तः सुखी अर्थात् अन्तः करणमें ही सुखी हो जाय, जो अपने आपमें ही आराम पाने लगे और ऐसे ही जिसे यह अन्तःप्रकाश मिल जाय वही योगी ब्रह्ममें स्थित होकर ब्रह्मदीमें लीन होजाता है (२४) जिन ऋषियोंकी द्वन्द्वबुद्धि छूट गई है, तथा जिनके पाप आदिक दोषोंका भी नाश हुआ है तथा जो आत्मसंयमी और सब भूतोंके हित करनेमें तत्पर है, वे ब्रह्मनिर्वाण को पाते है।(२५) काम क्रोधसे छूटे हुए, चित्त संयमी, आत्मतत्त्व जाननेवाले यतियों को अभितः आस पास अर्थात् संमुख रखा हुआ सा बैठे बिठाये ब्रह्मनिर्वाणरूप मोक्ष मिलजाता है। (२६) जो लोग संन्यास-युक्त मोक्ष परायण होके इच्छा भय और क्रोधका त्याग करते है, तथा इन्द्रिय, मन और बुद्धिको संयम पूर्वक रूप रस आदि बाह्य विषयोंको बाहर करके (अर्थात् जिनसे वे भीतर प्रवेश न कर सके) उनका चिन्तन छोडकर, नेत्रको अर्द्ध निमीलन करके भ्रूमध्य (नासिकाके अग्रभाग) में दृष्टिको लगाते है, और प्राण, अपान, ये दोनों वायु जिस प्रकार नासिकाके भीतर ही तक आवे और जाय, अर्थात् धीरे धीरे श्वास समान रूपसे युक्त हो जावे, इसी भांतिसे सर्वदा स्थित करते हैं; उन्हें मोक्ष मिलता

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ॥ २९ ॥१०४७

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ पर्वणि तु ऊनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

श्रीभगवानुवाच- अनाश्रितः कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः ।
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ॥ १ ॥
यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव ।
न ह्यसंन्यस्तसङ्कल्पो योगी भवति कश्चन ॥ २ ॥
आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥
यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते ।
सर्वसङ्कल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

है। (२७-२८) यज्ञ और तपस्याके भोक्ता और सब लोकोंका बड़ा ईश्वर तथा सम्पूर्ण प्राणियोंका निरपेक्ष उपकारी जो मैं हूं, मुझे जाननेसे शान्ति प्राप्त होती है। (२९) [१०४७]

भीष्मपर्वमें उनतीसवां अध्याय समाप्त ।
[illegible] नाम पांचवां अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें तीसवां अध्याय ।
भगवद्गीतामें छठा अध्याय ।

श्रीभगवान् बोले कर्म फल का आश्रय छोड़कर (अर्थात् मन में फलाशा को धारण न करके) जो अपने विहित कर्तव्य कर्म करता है, वही संन्यासी और वही कर्मयोगी है। निरग्नि अर्थात् अग्निहोत्र आदि कर्मों का त्याग करने वाला तथा [illegible] न करके [illegible] योगी नहीं है। (१) हे पाण्डव! जिसे संन्यास कहते हैं, उसी को कर्मयोग समझो। क्योंकि संकल्प अर्थात् फलाशाका त्याग किये बिना कोई भी कर्मयोगी नहीं होता। (२) (कर्म) योगारूढ होने की इच्छा रखने वाले मुनि के लिये कर्म को शम का कारण अर्थात् साधन कहा है और उसी पुरुषके योगारूढ अर्थात् पूर्ण योगी हो जाने पर उसके लिये आगे शम उसका कारण हो जाता है। (३) क्योंकि जब [illegible] इन्द्रियोंके शब्द स्पर्श आदि विषयों में और कर्मों में आसक्त नहीं होता तब सब संकल्प अर्थात् फलाशा के [illegible] कर्मों का नहीं त्याग करता है तब वह योगारूढ कहा जाता है [illegible]

उद्धरेदात्मनाऽऽत्मानं नाऽऽत्मानमवसादयेत् ।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥
बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनाऽऽत्मैवाऽऽत्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेताऽऽत्मैव शत्रुवत् ॥ ६ ॥
जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ॥ ७ ॥
ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ठाश्मकाञ्चनः ॥ ८ ॥
सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥
योगी युञ्जीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥
शुचौ देशे प्रतिष्ठाप्य स्थिरमासनमात्मनः ।

उद्धार करे। अपने आप को कभी भी गिरने न दे। क्योंकि प्रत्येक मनुष्य स्वयं ही अपना बन्धु या स्वयं ही अपना शत्रु होता है। (५) जिसने अपने आपको जीत लिया, वह स्वयं अपना बन्धु होता है; परन्तु जो अपने आप को नहीं जीतते वह स्वयं अपने साथ शत्रु के समान वर्तन करता है। (६) जिसने अपने आत्मा अर्थात् अन्तःकरण को जीत लिया है, और जो शान्त हुआ है, उसका 'परमात्मा' शीत-उष्ण, सुख-दुःख और मान-अपमान में समाहित अर्थात् सम एवं स्थिर रहता है। (७) जिसका आत्मा ज्ञान और विज्ञान अर्थात् विविध ज्ञान से तृप्त हो जाय जो अपनी इन्द्रियोंको जीत ले जो कूटस्थ अर्थात् मूलमें जा पहुँचे और मिट्टी, पत्थर तथा सोने को समान रूपसे मानने लगे, उसी कर्मयोगी पुरुष को 'युक्त' अर्थात् सिद्धावस्थाको पहुँचा हुआ कहते हैं। (८) सुहृद, मित्र, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष करने योग्य, बान्धव, सदाचारी, और दुष्टलोगोंके विषय में भी जिसकी बुद्धि सम हो गई हो, वही पुरुष सबमें योग्य है। (९) योगी अर्थात् कर्मयोगी एकान्त में अकेला रहकर चित्त और आत्मा का संयम करे, किसी भी काम्य वासना को छोड़ कर, परिग्रह अर्थात् पाश छोड़ करके नित्य अपने योग मे लगा रहे। (१०) योगी अभ्यासी पुरुष पवित्र स्थान पर अपना स्थिर आसन लगा कर, जो कि न बहुत

नाऽत्युच्छ्रितं नाऽतिनीचं चैलाजिनकुशोत्तरम् ॥ ११ ॥
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्याऽऽसने युञ्ज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥
समं कायशिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः ।
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशश्चाऽनवलोकयन् ॥ १३ ॥
प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचारिव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ॥ १४ ॥
युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी नियतमानसः ।
शान्तिं निर्वाणपरमां मत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥
नाऽत्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाऽतिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चाऽर्जुन ॥ १६ ॥
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥ १७ ॥
यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवाऽवतिष्ठते ।

ऊँचा हो और न नीचा तथा उस पर पहले दर्भ फिर मृगछाला और फिर वस्त्र बिछावे. (११) वहां मनको एकाग्र कर चित्त और इंद्रियोंके व्यापारको रोक कर आत्मशुद्धि के लिये आसन पर बैठ कर योग का अभ्यास करे। (१२) काय अर्थात् शरीरका मध्यभाग, सिर और गर्दनको सम करके अर्थात् सीधी खड़ी रेखा में अचल करके स्थिर होता हुआ दिशाओंको यानी इधर मत्परायण होता हुआ युक्त हो जाय। (१४) इस प्रकार सदा अपना योगाभ्यास जारी रखने से मन स्वाधीन होता है और ऐसे स्वाधीनचित्तवाले (कर्म) योगी को मुझमें रहनेवाली और अन्तमें निर्वाण-प्रद अर्थात् मेरे स्वरूप में लीन कर देनेवाली शान्ति प्राप्त होती है। (१५) हे अर्जुन! अतिशय भोजन करनेवाले या बिलकुल न खानेवाले और अत्यन्त सोनेवाले अथवा जागरण कर-

निस्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ १८ ॥
यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः ॥ १९ ॥
यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवाऽऽत्मनाऽऽत्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥२०॥
सुखमात्यन्तिकं यत्तद् बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम्।
वेत्ति यत्र न चैवाऽयं स्थितश्चलति तत्त्वतः ॥ २१ ॥
यं लब्ध्वा चाऽपरं लाभं मन्यते नाऽधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणाऽपि विचाल्यते ॥२२॥
तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगो निर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥
सङ्कल्पप्रभवान्कामांस्त्यक्त्वा सर्वानशेषतः।
मनसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समन्ततः ॥ २४ ॥
शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।

होता है। (१७) जब संयत हुआ मन आत्मामें ही स्थिर हो जाता है, और संपूर्ण उपभोगों की इच्छा नहीं रहती, तब कहते हैं, कि वह युक्त हो गया। (१८) निर्वात स्थान में रखे हुए दीपक की ज्योति जैसी अचल होती है, वही उपमा चित्तको संयत करके अपने योगाभ्यास में लगे हुए योगी को दी जाती है। (१९) योगानुष्ठानसे निरोधको प्राप्त हुआ चित्त जहाँ रम जाता है और जहाँ स्वयं आत्माको देखकर आत्मामें ही सन्तुष्ट हो रहता है, (२०) जहाँ (केवल) बुद्धिगम्य और इन्द्रियोंको अगोचर अत्यन्त सुख का उसे अनुभव होता है और जहाँ वह एक बार, स्थिर हुआ तो तत्त्व से कभी भी चलित नहीं होता। (२१) ऐसे ही जिस स्थितिको प्राप्त होने से उसकी अपेक्षा दूसरा कोई भी लाभ उसे अधिक नहीं जँचता, और जहाँ स्थिर होनेसे कोई बडा भारी दुःख भी (उसको) वहाँ से विचलित नहीं कर सकता, (२२) उस दुःख के संयोगसे वियोग को योग अर्थात् 'योग' नामकी स्थिति कहते हैं; और इस 'योग' का आचरण मनको उकताने न देकर निश्चय से करना उचित है। (२३) संकल्पसे उत्पन्न होनेवाली सब कामनाओं अर्थात् वासनाओं का निःशेष रूपसे त्याग कर और मनसे ही सब इन्द्रियोंका चारों ओर से संयम कर। (२४) धैर्य युक्त बुद्धिसे

आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत् ॥ २५ ॥
यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम् ।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥
प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥
युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी विगतकल्मषः ।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चाऽऽत्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥
यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याऽहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ।
सर्वथा वर्त्तमानोऽपि स योगी मयि वर्त्तते ॥ ३१ ॥
आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।

धीरे-धीरे शान्त होकर मनको आत्मामें स्थिर करके मनमें किसीका भी चिंतन न करे। (२५) इस रीति से धारणा करनेसे भी यह चञ्चल और अस्थिर मन अपनी स्वाभाविक चञ्चलतासे जिन जिन विषयों में जाता है, वहां वहांसे रोक कर उसको आत्मा ही में लगाना चाहिये। (२६) इस प्रकार शान्त चित्त, रजसे रहित, निर्दोष और ब्रह्मभूत कर्म योगीको उत्तम सुख प्राप्त होता है। (२७) इस रीति से निरन्तर अपना योगाभ्यास करनेवाला (कर्म) योगी पापोंसे छूट होकर ब्रह्म संयोगसे प्राप्त होने वाले अत्यन्त सुखका आनन्दसे उपभोग करता है। (२८) इस प्रकार जिसका आत्मा योगयुक्त हो गया है, वह समदृष्टि होता है और उसे सर्वत्र ऐसा देख पड़ने लगता है, कि मैं सब प्राणियों में हूं और सब प्राणी मुझ में हैं। (२९) जो मुझ परमेश्वर परमात्मा को सब स्थानों में तथा सब को मुझ में देखता है, उससे मैं अलग नहीं होता और न वही मुझ से कभी दूर होता है। (३०) जो कर्मी एकत्व बुद्धि अर्थात् सर्वभूतात्मैक्य-बुद्धिको मनमें रख सब प्राणियोंमें रहने वाले मुझ परमेश्वरको भजता है, वह कर्म-योगी सब प्रकार से [illegible] हुआ भी मुझ में रहता है। (३१) हे अर्जुन! [illegible] हो या दुःख [illegible] [illegible] होता है [illegible] [illegible]

सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥
योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याऽहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥ ३३ ॥
चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याऽहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥
श्रीभगवानुवाच– असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ॥ ३५ ॥
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ ३६ ॥
अर्जुन उवाच— अयतिः श्रद्धयोपेतो योगाच्चलितमानसः ।
अप्राप्य योगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण गच्छति ॥ ३७ ॥
कच्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ।
अप्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥

दृष्टिसे सबको देखता है, वह कर्मयोगी परम अर्थात् उत्कृष्ट माना जाता है। (३२)

अर्जुनने कहा, हे मधुसूदन! साम्य अथवा साम्यबुद्धिसे प्राप्त होनेवाला जो यह कर्म-योग तुमने मुझे बतलाया है, उस योगके मनकी चञ्चलता के कारण मुझे बहुत समयतक ठहरनेकी संभावना नहीं मालूम होती है। (३३) क्योंकि हे कृष्ण! यह मन स्वभावसेही चंचल, हठीला, बलवान् और दृढ है। वायुके समान अर्थात् हवाकी गठरी बांधने के समान, इसका निग्रह करना मुझे अत्यन्त कठिन दीखता है। (३४)

श्रीभगवान् ने कहा— हे महाबाहो अर्जुन! इसमें कुछ सन्देह नहीं, कि मन चञ्चल है, परन्तु हे कौन्तेय! अभ्यास और वैराग्य से वह स्वाधीन किया जा सकता है। (३५) मेरे मत में, जिसका मन अभ्यास और वैराग्य से स्वाधीन नहीं, उसको इस साम्यबुद्धि रूप योग का प्राप्त होना बहुत कठिन है, अन्तःकरण को अभ्यास और वैराग्यसे स्वाधीन रख कर प्रयत्न करते रहने पर उपायसे इस योग का प्राप्त होना सम्भव है। (३६)

अर्जुन बोले, हे कृष्ण! श्रद्धा तो हो परन्तु प्रकृति स्वभावसे पूरा प्रयत्न अथवा संयम न होनेके कारण जिसका मन साम्य बुद्धि रूप कर्म योगसे विचलित होता है, वह योग सिद्धि न पाकर किस गतिको जा पहुंचता है? ३७ हे महाबाहो श्रीकृष्ण! वह पुरुष मोहग्रस्त होकर ब्रह्म प्राप्तिके मार्ग में स्थिर न

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ॥ ५ ॥
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ ६ ॥
मत्तः परतरं नाऽन्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ॥ ७ ॥
रसोऽहमप्सु कौन्तेय प्रभाऽस्मि शशिसूर्ययोः ।
प्रणवः सर्ववेदेषु शब्दः खे पौरुषं नृषु ॥ ८ ॥
पुण्यो गन्धः पृथिव्यां च तेजश्चाऽस्मि विभावसौ ।
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चाऽस्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥
बीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनम् ।
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ॥ १० ॥
बलं बलवतां चाऽहं कामरागविवर्जितम् ।

आकाश (ये पाँच सूक्ष्म भूत), मन, बुद्धि और अहंकार इन आठ प्रकारोंमें मेरी प्रकृति विभाजित है। (४) यह अपरा अर्थात् निम्न श्रेणीकी (प्रकृति) है। हे महाबाहो अर्जुन! यह जानो कि इससे भिन्न, परा अर्थात् उच्च श्रेणीकी जीव स्वरूपी मेरी दूसरी प्रकृति है। जो जगतको धारण करती है। (५) समझ रखो कि इन्हीं दोनों से सब भूत मात्र उत्पन्न होते हैं। और जगत् का प्रभव अर्थात् उत्पत्ति स्थान और प्रलय अर्थात् अन्त मैं ही हूं। (६) हे धनञ्जय! मुझसे उत्तर और कुछ भी नहीं है। जैसे धागेमें मणि गुंथे रहते हैं [illegible] प्रकारसे मुझमें यह सब गुंथा हुआ है। (७) हे कौन्तेय! मैं ही जल में रस हूं, और मैं ही चन्द्र सूर्य में प्रभा हूं, सब वेदों में प्रणव अर्थात् ॐ कार मैं हूं, आकाश में शब्द मैं हूं, और सब पुरुषों का पौरुष मैं हूं। (८) पृथ्वीमें पुण्यगन्ध अर्थात् सुगन्धि एवं अग्निमें तेज मैं हूं। सब प्राणियोंकी जीवन शक्ति और तपस्वियोंका तप मैं हूं। (९) हे पार्थ! मुझको सब प्राणियोंका सनातन बीज समझो। मैं बुद्धिमानोंकी बुद्धि और तेजस्वियोंका तेज भी हूं। (१० [illegible] [illegible] और [illegible] विर- [illegible]

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम् ॥ ४५ ॥
तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्मिभ्यश्चाऽधिको योगी तस्माद्योगी भवाऽर्जुन ॥४६॥
योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनाऽन्तरात्मना ।
श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥४७॥ [१०९४]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अध्यात्मयोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ पर्वणि तु त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥

श्रीभगवानुवाच- मय्यासक्तमनाः पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रयः ।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु ॥ १ ॥
ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥
मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये ।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

है । (४४) इस प्रकार प्रयत्न पूर्वक उद्योग करते करते पापोंसे शुद्ध होता हुआ कर्मयोगी अनेक जन्मोंके अनन्तर सिद्धि पाकर अन्तमें उत्तम गति पा लेता है । (४५) तपस्वी लोगोंकी अपेक्षा कर्मयोगी श्रेष्ठ है और ज्ञानी पुरुषोंकी अपेक्षा भी कर्मयोगी श्रेष्ठ है और कर्मकाण्ड वालोंकी अपेक्षा भी कर्मयोगी श्रेष्ठ समझा जाता है; इसलिये हे अर्जुन ! तू योगी अर्थात् कर्मयोगी हो । (४६) तथापि सब कर्मयोगियोंमें भी मैं उसे ही सब में उत्तम युक्त अर्थात् सिद्ध कर्मयोगी समझता हूं, कि जो मुझमें अन्तःकरण रखकर श्रद्धासे मुझ को भजता है । (४७) [१०९४]

भीष्मपर्वमें तीसवां अध्याय समाप्त ।

भगवद्गीतामें छठा अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें इकतीस अध्याय ।

भगवद्गीतामें सातवा अध्याय ।

श्रीभगवान्‌ने कहा, हे पार्थ ! मुझमें मन को लगाकर और मेरा ही आश्रय करके कर्म योग का आचरण करते हुए तुझे जिस प्रकारसे या जिस विधि से मेरा पूर्ण और संशय विरहित ज्ञान होगा, उसे सुन । (१) विज्ञान समेत इस पूरे ज्ञान को मैं तुझसे कहता हूं, कि जिसके जान लेनेसे इस लोकमें फिर और कुछभी जानना बाकी नहीं रह जाता । (२) हजारों मनुष्योंके बीचमें कोई सिद्धि पाने का यत्न करता है, और प्रयत्न करनेवाले इन अनेक सिद्ध पुरुषों में से एक-आध को ही मेरा सच्चा ज्ञान हो जाता है । (३) पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु,

उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवाऽनुत्तमां गतिम् १८॥
बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥
कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ।
तं तं नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ २० ॥
यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयाऽर्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याऽचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ २१ ॥
स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याऽऽराधनमीहते ।
लभते च ततः कामान्मयैव विहितान्हि तान् ॥ २२ ॥
अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम् ।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि ॥ २३ ॥
अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ।

योग्यता विशेष है। ज्ञानी को मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और ज्ञानी मुझे अत्यन्त प्यारा होता है। (१७) ये सभी भक्त उदार अर्थात् अच्छे हैं परन्तु मेरा मत है, कि इनमें ज्ञानी तो मेरा आत्मा ही है क्योंकि वह मुझमें ही निष्ठावान् होकर सबसे उत्तम गति जो मैं हूँ मेरा आश्रय और मुझमें ही स्थिति (वास) करता है। (१८) अनेक जन्मों के अन्तमें यह अनुभव हो जाने से कि "जो कुछ

यमों को पालन कर दूसरे अनेक देवताओं को भजते रहते हैं। (२०) जो भक्त जिस रूप की अर्थात् देवता की श्रद्धा से उपासना किया चाहता है, मैं उसकी उसी श्रद्धा को अचल कर देता हूँ। (२१) फिर उस श्रद्धा से युक्त होकर वह उस देवता की आराधना करने की इच्छा करते हैं एवं उसको मेरे निर्माण किये हुए काम फल मिलते हैं। (२२) परन्तु इन अल्पमति लोगों

परं भावमजानन्तो ममाऽव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥
नाऽहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ।
मूढोऽयं नाऽभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५ ॥
वेदाऽहं समतीतानि वर्तमानानि चाऽर्जुन ।
भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन ॥ २६ ॥
इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वन्द्वमोहेन भारत ।
सर्वभूतानि संमोहं सर्गे यान्ति परन्तप ॥ २७ ॥
येषां त्वन्तगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वन्द्वमोहनिर्मुक्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥
जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये ।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाऽखिलम् ॥ २९ ॥
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः ।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥ [११२४]

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
ज्ञानयोगो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ पर्वणि तु एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

अव्यय स्वरूपको न जाननेसे मुझ अव्यक्त को व्यक्त हुआ मानते हैं ! (२४) मैं अपनी योगरूप माया से आवृत रहने के कारण सब को अपने स्वरूप से प्रकट नहीं दीखता । मूढलोग नहीं जानते हैं, कि मैं अज और अव्यय हूँ । (२५) हे अर्जुन ! भूत, वर्तमान और भविष्यत् (जो हो चुके हैं उन्हें, मौजूद और आगे होनेवाले) सभी प्राणियों को मैं जानता हूँ, परन्तु मुझे कोई भी नहीं जानता । (२६) क्योंकि हे शत्रुओंको तपाने वाले भारत ! इस सृष्टिमें इन्द्रियोंके इच्छा और द्वेषसे उपजने वाले सुख – दुःख आदि द्वन्द्वोंके मोहसे इस सृष्टि में समस्त प्राणी भ्रममें फँस जाते हैं । (२७) परन्तु जिन पुण्यात्माओं के पाप का अन्त हो गया है, वे सुखदुःख आदि द्वन्द्वोंके मोह से मुक्त हो कर दृढव्रत हो करके मेरा भजन करते हैं । (२८) इस प्रकार जो लोग मेरा आश्रय कर बूढापा और मरण अर्थात् पुनर्जन्म के चक्करसे छूटनेके लिये प्रयत्न करते हैं; वे सब ब्रह्म, सब अध्यात्म और सब कर्म को जान लेते हैं । २९ और अधिभूत, अधिदैव एवं अधियज्ञ सहित (अर्थात् इस प्रकार कि मैं ही सब हूँ) जो मुझे जानते हैं, वे युक्त चित्त होने के कारण मरण-काल में भी मुझे जानते

अर्जुन उवाच- किं तद्ब्रह्म किमध्यात्मं किं कर्म पुरुषोत्तम ।
अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किमुच्यते ॥ १ ॥
अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन्मधुसूदन ।
प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियतात्मभिः ॥ २ ॥
अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ॥ ३ ॥
अधिभूतं क्षरो भावः पुरुषश्चाऽधिदैवतम् ।
अधियज्ञोऽहमेवाऽत्र देहे देहभृतां वर ॥ ४ ॥
अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नाऽस्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥
यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावितः ॥ ६ ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥ ७ ॥
अभ्यासयोगयुक्तेन चेतसा नाऽन्यगामिना।
परमं पुरुषं दिव्यं याति पार्थाऽनुचिन्तयन् ॥ ८ ॥
कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्यः।
सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥ ९ ॥
प्रयाणकाले मनसाऽचलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव।
भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ॥ १० ॥
यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥
सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरुध्य च।
मूर्ध्न्याधायाऽऽत्मनः प्राणमास्थितो योगधारणाम् ॥१२॥
ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।

स्मरण करता हुआ अन्तमें शरीरको छोड़ता है, वह उसी भाव में जा मिलता है। (६) इस लिये तुम सर्वकाल — सर्वदा ही मेरा स्मरण करता रहो, और युद्ध कर। इसी प्रकारसे मुझ में मन और बुद्धि लगाने से युद्ध करने पर भी अवश्य ही तुम मुझे पाओगे इसमें कुछ भी संशय नहीं है। (७) हे पार्थ! चित्त को दूसरी ओर न जाने देकर अभ्यास रूपी उपायसे उसको स्थिर करके दिव्य परम पुरुष का ध्यान करते रहनेसे मनुष्य उसी पुरुष में मिलता है। (८) जो मनुष्य कवि अर्थात् सर्वज्ञ, पुरातन, शासक, छोटेसे भी छोटे, सबके धाता अर्थात् आधार या कर्त्ता, अचिन्त्यस्वरूप और अन्धकार से परे सूर्य के समान देदीप्यमान पुरुष का (९) अन्तकाल में इन्द्रिय निग्रहरूप योग के सामर्थ्यसे, भक्ति युक्त होकर मन को स्थिर करके दोनों भौंहों के बीच में प्राण को भली भाँति स्थापित कर स्मरण करता है, वह मनुष्य उसी दिव्य परम पुरुष में जा मिलता है। (१०) वेदके जानने वाले जिसे अविनाशी कहते हैं, वीतराग हो कर यति लोग जिसमें प्रविष्ट होते हैं और जिसकी चाहके निमित्त ब्रह्मचर्य व्रत का आचरण करते हैं, वह पद अर्थात् ॐकाररूप तुझे संक्षेप में बतलाता हूं। (११) नेत्र आदि इंद्रियरूपी दस दरवाजे को रोकके मनको हृदयमें ठहराके एवं मस्तकमें प्राण ले जा कर समाधियोग में स्थित होनेवाला,

यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम् ॥ १३ ॥
अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः ।
तस्याऽहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ॥ १४ ॥
मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाऽऽप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ॥१५॥
आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन ।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥
सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।
रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥
अव्यक्ताद्व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाऽव्यक्तसंज्ञके ॥ १८ ॥
भूतग्रामः स एवाऽयं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ।
रात्र्यागमेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

(१२) इस एकाक्षर ब्रह्म ओँकारका उच्चारण करके तथा बारंबार मेरा स्मरण करता हुआ जो मनुष्य देह छोड़कर जाता है, वह परम गतिको पाता है। (१३) हे पार्थ! जो सब ओरसे चित्तको हटाकर अर्थात् अनन्य भाव से सदा सर्वदा मेरा स्मरण करता रहता है, उस नित्य मिलनेवाले कर्म योगी को मैं सहज ही मिलता हूं। (१४) वे परम सिद्धिको प्राप्त हुए महात्मालोग मुझमें मिल जाने पर उस पुनर्जन्मको नहीं पाते, कि जो दुःखों का घर है और नाशवान है। (१५) हे कौन्तेय अर्जुन! ब्रह्मलोकतक स्वर्ग आदि जितने लोक हैं, वहां से कभी न कभी इस लोक में पुनरावर्त्तन अर्थात् लौटना पड़ता है; परन्तु हे कौन्तेय! मुझे पाकर फिर जन्म नहीं लेना होता है। (१६) अहोरात्र को (तत्त्वतः) जानने वाले लोग समझते हैं, कि कृत, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगों का एक महायुग होता है और ऐसे हजार महा युगोंका समय ब्रह्मदेवका एक दिन होता है, और ऐसे ही हजार युगों की उसकी एक रात्रि होती है। (१७) ब्रह्मदेवके दिन का आरम्भ होने पर अव्यक्त से सब व्यक्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं और रात्रिका आरम्भ होने पर वे उसी पूर्वोक्त अव्यक्त में लीन हो जाते हैं। (१८) हे पार्थ! भूतों का यही समुदाय इस प्रकार बार बार उत्पन्न होकर [illegible]

परस्तस्मात्तु भावोऽन्यो व्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः।
यः स सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु न विनश्यति ॥ २० ॥
अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ २१ ॥
पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया।
यस्यान्तःस्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम्॥ २२ ॥
यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥
अग्निर्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम्।
तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥
धूमो रात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासा दक्षिणायनम्।
तत्र चान्द्रमसं ज्योतिर्योगी प्राप्य निवर्त्तते ॥ २५ ॥
शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते।

एकया यात्यनावृत्तिमन्ययाऽऽवर्त्तते पुनः ॥ २६ ॥
नैते सृती पार्थ जानन्योगी मुह्यति कश्चन ।
तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवाऽर्जुन ॥ २७ ॥
वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम् । [११५२]
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैति चाऽऽद्यम् ॥ २८ ॥

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ पर्वणि तु द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥

श्रीभगवानुवाच—इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥ १ ॥
राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥
अश्रद्दधानाः पुरुषा धर्मस्यास्य परन्तप ।
अप्राप्य मां निवर्त्तन्ते मृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥
मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।

मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाऽहं तेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥
न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम् ।
भूतभृन्न च भूतस्थो ममाऽऽत्मा भूतभावनः ॥ ५ ॥
यथाऽऽकाशस्थितो नित्यं वायुः सर्वत्रगो महान् ।
तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥
सर्वभूतानि कौन्तेय प्रकृतिं यान्ति मामिकाम् ।
कल्पक्षये पुनस्तानि कल्पादौ विसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥
प्रकृतिं स्वामवष्टभ्य विसृजामि पुनः पुनः ।
भूतग्राममिमं कृत्स्नमवशं प्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥
न च मां तानि कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय ।
उदासीनवदासीनमसक्तं तेषु कर्मसु ॥ ९ ॥
मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरम् ।
हेतुनाऽनेन कौन्तेय जगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥
अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम् ।

परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥ ११ ॥
मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः ।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः ॥ १२ ॥
महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः ।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥ १३ ॥
सततं कीर्त्तयन्तो मां यतन्तश्च दृढव्रताः ।
नमस्यन्तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥
ज्ञानयज्ञेन चाऽप्यन्ये यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ॥ १५ ॥
अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहमहमेवाऽऽज्यमहमग्निरहं हुतम् ॥ १६ ॥
पिताऽहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोङ्कार ऋक्साम यजुरेव च ॥ १७ ॥

कि जो सब भूतों का महान् ईश्वर है; वे मुझे मानव - तनुधारी समझ कर मेरी अवहेलना करते हैं। (११) उनकी आशा व्यर्थ होती है, कर्म का फल उनको नहीं मिलता उनका ज्ञान निरर्थक रहता है और चित्त भ्रष्ट होता है, वे मोहात्मक राक्षसी और आसुरी स्वभाव का आसरा लेकर रहते हैं। (१२) परन्तु हे पार्थ! महात्मा लोग दैवी प्रकृतिका आश्रय लेकर सब भूतों के अव्यय आदिस्थान मुझको जान कर अनन्य भावसे मुझे भजते हैं।

भावसे, पृथक्त्व से अर्थात् भेद भाव से या अनेक भांति के ज्ञान यज्ञसे यजन कर सर्वतोमुख मेरी उपासना किया करते हैं। (१५) मैं क्रतु अर्थात् श्रौत यज्ञ हूं, मैं यज्ञ अर्थात् स्मार्त यज्ञ हूं, मैं स्वधा अर्थात् श्राद्ध में पितरों को अर्पण किया हुआ अन्न हूं, मैं औषध अर्थात् वनस्पतियों से उत्पन्न हुआ अन्न हूं, मैं यज्ञमें हवन करते समय पढ़े जानेवाले मन्त्र हूं, मैं घृत अग्नि और अग्निमें छोड़ी हुई आहुति भी

न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनाऽतश्च्यवन्ति ते॥ २४॥
यान्ति देवव्रता देवान्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् २५ ॥
पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥
यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥ २७ ॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः ।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥ २८ ॥
समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः ।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाऽप्यहम् २९ ॥
अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥ ३० ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ।

मुझे नहीं जानते, इसलिये वे लोग गिर जाया करते हैं। (२४) देवताओंका व्रत करने वाले देवताओंके पास, पितरों का व्रत करनेवाले पितरों के पास, भिन्न भिन्न भूतोंको पूजनेवाले उन भूतोंके पास जाते हैं, और मेरा यजन करनेवाले मेरे पास आते हैं। (२५) जो मुझे भक्ति से एक-आध पत्र, पुष्प, फल अथवा यथाशक्ति थोडासा जल भी अर्पण करता है, उस प्रयतात्म अर्थात् नियतचित्त पुरुष की भक्ति की भेटको मैं आनन्दसे ग्रहण करता हूं। (२६) हे कौन्तेय! तू जो कुछ करता है, जो खाता है, जो होमहवन करता है, जो दान करता है (और) जो तप करता है, वह (सब) मुझे अर्पण कर। (२७) इस प्रकार वर्तनेसे कर्म करके भी कर्मोंके शुभ-अशुभ फलरूप बन्धनोंसे तू मुक्त रहेगा, और (कर्मफलोंके) संन्यास करनेके इस योगसे युक्तात्मा अर्थात् शुद्ध अन्तःकरण हो कर मुक्त हो जायगा, एवं मुझमें मिल जायगा। (२८) मैं सब को एकसा हूं। न मुझे कोई द्वेष्य अर्थात् अप्रिय है और न कोई प्यारा है। भक्तिसे जो मेरा भजन करते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें हूं। (२९) बड़ा दुराचारी ही क्यों न हो, यदि वह मुझे अनन्य भाव से भजता है, तो उसे बड़ा साधु ही समझना चाहिये। क्योंकि [illegible]

असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥
बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवोऽभावो भयं चाऽभयमेव च ॥ ४ ॥
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ॥ ५ ॥
महर्षयः सप्त पूर्वे चत्वारो मनवस्तथा ।
मद्भावा मानसा जाता येषां लोक इमाः प्रजाः ॥ ६ ॥
एतां विभूतिं योगं च मम यो वेत्ति तत्त्वतः ।
सोऽविकम्पेन योगेन युज्यते नाऽत्र संशयः ॥ ७ ॥
अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्त्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥
मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम् ।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च ॥ ९ ॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।

मरणसे रहित अनादि और सब लोकों-
का ईश्वर जानते हैं, वे ही सब मनुष्यों-
के बीच मोहसे छूट कर सब पापोंसे
मुक्त होते हैं। (२) बुद्धि, ज्ञान, असंमोह,
क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख,
जन्म, मरण, डर, निर्भयता, (४) अहिंसा,
समता, तुष्टि तपस्या, दान, यश, अयश यह
सम्पूर्ण नाना भांतिके प्राणियोंके भाव
मुझसे ही उत्पन्न होते हैं। (५) भृगु
आदि सात महर्षि और उनसे भी पुराने
सनक आदि चार महा ऋषि, तथा स्वाय-
म्भुव मनु आदिक चौदह मनु मेरे ही
प्रभाव तथा संकल्प मात्रसे उत्पन्न हुए
हैं, जिनके पुत्र, पौत्र, सन्तान और
शिष्य आदिक यह सम्पूर्ण प्रजा इस
जगत्में विद्यमान है। (६) जो मनुष्य
भृगु प्रभृति मेरी इस विभूति तथा
योग सर्वज्ञतादि ऐश्वर्यको यथार्थ रूपसे
जानते हैं; वह अचल कर्म योगको
पाते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं
है। (७) मैं ही सब सृष्टिकी उत्पत्तिका
कारण हूं, मुझसे ही सबकी प्रवृत्ति
होती रहती है ऐसा जानकर ज्ञानी
पुरुष मुझमें भाव युक्त होकर मेरी उपा-
सना करते हैं। (८) मुझमें चित्त और
प्राणको लगाते हुए [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया ॥१७॥
विस्तरेणाऽऽत्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम् ॥१८॥
श्रीभगवानुवाच– हन्त ते कथयिष्यामि दिव्या ह्यात्मविभूतयः।
प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यन्तो विस्तरस्य मे ॥१९॥
अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः।
अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥२०॥
आदित्यानामहं विष्णुर्ज्योतिषां रविरंशुमान्।
मरीचिर्मरुतामस्मि नक्षत्राणामहं शशी ॥२१॥
वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः।
इन्द्रियाणां मनश्चाऽस्मि भूतानामस्मि चेतना ॥२२॥
रुद्राणां शङ्करश्चाऽस्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम्।
वसूनां पावकश्चाऽस्मि मेरुः शिखरिणामहम् ॥२३॥
पुरोधसां च मुख्यं मां विद्धि पार्थ बृहस्पतिम्।
सेनानीनामहं स्कन्दः सरसामस्मि सागरः ॥२४॥

चिन्तनमें मग्न रहता हूं, हे भगवन्! मैं तुम्हें किन किन पदार्थ में चिन्तन करूं? (१७) हे जनार्दन! तुम अपनी योग विभूतिको विस्तारपूर्वक फिर कहो; क्योंकि तुम्हारे अमृतके समान वचनोंको सुनकर मेरी तृप्ति नहीं होती है। (१८)

श्रीभगवान् बोले, हे कुरुकुलश्रेष्ठ! मेरी दिव्य विभूतियोंके विस्तारका अन्त नहीं है, उनमेंसे जो जो मुख्य विभूतियां हैं, उन्हें मैं तुमसे कहता हूं। (१९) हे गुडाकेश! मैं सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें निवास करनेवाला परमात्मा हूं। मैं सब भूतोंके जन्म मृत्यु और संहारका कारण हूं। (२०) मैं द्वादश आदित्योंमें विष्णु नाम आदित्य हूं; प्रकाशमें किरणधारी सूर्य हूं। मैं सम्पूर्ण वायुमें मरीचि नाम वायु, और मैं ही तारागणोंके बीचमें चन्द्रमा हूं। (२१) वेदोंमें सामवेद, देवताओंमें इन्द्र और एकादश इन्द्रियोंके बीचमें मन मेरा ही स्वरूप है। सब जीवोंमें चेतना विचार और ज्ञान शक्ति मैं ही हूं। (२२) एकादश रुद्रोंमें मैं शङ्कर नामक रुद्र हूं, यक्ष, राक्षसोंमें मैं कुबेर हूं; मैं आठों वसुओंमें अग्नि और पर्वतोंमें सुमेरु हूं। (२३) हे अर्जुन! तुम मुझे पुरोहितोंमें मुख्य बृहस्पति जानो। मैं सेनापतियोंमें स्वामि-कार्त्तिक हूं, और समुद्र जला-

अध्यात्मविद्या विद्यानां वादः प्रवदतामहम् ॥ ३२ ॥
अक्षराणामकारोऽस्मि द्वन्द्वः सामासिकस्य च ।
अहमेवाऽक्षयः कालो धाताऽहं विश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥
मृत्युः सर्वहरश्चाऽहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ॥३४॥
बृहत्साम तथा साम्नां गायत्री छन्दसामहम् ।
मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥
द्यूतं छलयतामस्मि तेजस्तेजस्विनामहम् ।
जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहम्॥३६॥
वृष्णीनां वासुदेवोऽस्मि पाण्डवानां धनञ्जयः ।
मुनीनामप्यहं व्यासः कवीनामुशना कविः ॥ ३७ ॥
दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवाऽस्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ॥ ३८ ॥
यच्चाऽपि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन ।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम् ॥ ३९ ॥
नाऽन्तोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परन्तप ।

का वाद हूं । (३२) अक्षरोंमें अकार, समासोंमें द्वन्द्व और प्रवाह रूपसे नाश न होनेवाला काल मै ही हूं । सर्वतो मुख अर्थात् चारों ओर मुखवाला धाता ब्रह्मा मै ही हूं । (३३) सबके संहार करनेमें मै मृत्यु हूं, मै ही होनेवालों की उत्पत्ति हूं, मै ही नारीयों में कीर्ति, लक्ष्मी, सरस्वती, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूं । (३४) साम वेद की ऋचाओं में बृहत्साम और छन्दो में गायत्री छन्द मै ही हूं । मै महीनोंमें मार्गशीर्ष और ऋतुओंमें वसन्त ऋतु हूं । (३५) छलियोंमे जूआ हूं, तेजवालोंमे तेज हूं और मै ही विजयी पुरुषोंमे विजय, निश्चयी पुरुषों मे निश्चय, तथा सत्वगुणी पुरुषोंमें सत्त्वगुण मै ही हूं । (३६) मै यदुवंशियोंमें वासुदेव और पाण्डवोंमें अर्जुन हूं । मुनियोंमें व्यास और कवियोंमें शुक्राचार्य हूं । (३७) दण्ड देनेवालोंमे मै ही दण्ड हूं । जय की इच्छा वाले लोगो में मै नीति हूं । मै गोपनीय विषयों मे मौन और ज्ञानियों का ज्ञान हूं । (३८) हे अर्जुन ! सब प्राणियोंका जो [illegible] [illegible]

एष तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥
यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।
तत्तदेवाऽवगच्छ त्वं मम तेजोऽशसम्भवम् ॥ ४१ ॥
अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तवाऽर्जुन ।
विष्टभ्याऽहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥४२॥ [१२२८]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ पर्वणि तु चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥

अर्जुन उवाच— मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसंज्ञितम् ।
यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १ ॥
भवाप्ययौ हि भूतानां श्रुतौ विस्तरशो मया ।
त्वत्तः कमलपत्राक्ष माहात्म्यमपि चाऽव्ययम् ॥ २ ॥
एवमेतद्यथाऽऽत्थ त्वमात्मानं परमेश्वर ।
द्रष्टुमिच्छामि ते रूपमैश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

[illegible] विभूतियोंका अन्त नहीं है, इस लिये सब नहीं कही जा सकती हैं, इसीसे मैंने तुमसे कुछ ही कहा है। (४०) [illegible] सब प्रकारकी [illegible] इत्यादि जो [illegible] हैं, उन सब को [illegible] है। (४१) हे अर्जुन! और इन सब विभूतियोंका [illegible] जाननेसे तुम्हें क्या प्रयोजन है, क्योंकि इस सम्पूर्ण जगत्‌को मैं अपने एक अंशसे धारण किये हुए हूं, इससे मुझसे [illegible] और कुछ नहीं है। (४२) [१२२८]

[illegible]

भीष्मपर्वमें पैंतीस और भगवद्गीतामें ग्यारह अध्याय

अर्जुन बोले, मुझपर अनुग्रह करनेके लिये तुमने जो परम गुप्त और जो अध्यात्म संज्ञक बात बतलाई, उससे "मैं इन लोगोंका मारनेवाला होऊंगा और मुझसे ये मारे जायेंगे," इत्यादि मेरा भ्रम नष्ट होगया। (१) हे कमलनेत्र कृष्ण! तुमसे ही सब जीवोंकी उत्पत्ति और उनका संहार होता है, उसे और तुम्हारे नाश रहित महात्म्य को विस्तार सहित मैंने सुना। (२) हे परमेश्वर! तुमने जिस प्रकारसे कहा, वह सब सत्य ही है तुममें मुझे कुछ भी अविश्वास नहीं है। हे पुरुषोंमें उत्तम कृष्ण! जैसा तुम अपनेको कहते हो, वैसे ही तुम्हारे ऐश्वर रूपके देखनेकी इच्छा है। (३)

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ।
योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शयाऽऽत्मानमव्ययम् ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच– पश्य मे पार्थ रूपाणि शतशोऽथ सहस्रशः ।
नानाविधानि दिव्यानि नानावर्णाकृतीनि च ॥ ५ ॥
पश्याऽऽदित्यान्वसून्रुद्रानश्विनौ मरुतस्तथा ।
बहून्यदृष्टपूर्वाणि पश्याऽऽश्चर्याणि भारत ॥ ६ ॥
इहैकस्थं जगत्कृत्स्नं पश्याऽद्य सचराचरम् ।
मम देहे गुडाकेश यच्चाऽन्यद् द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥
न तु मां शक्यसे द्रष्टुमनेनैव स्वचक्षुषा ।
दिव्यं ददामि ते चक्षुः पश्य मे योगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच —एवमुक्त्वा ततो राजन्महायोगेश्वरो हरिः ।
दर्शयामास पार्थाय परमं रूपमैश्वरम् ॥ ९ ॥
अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ।
अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधम् ॥ १० ॥
दिव्यमाल्याम्बरधरं दिव्यगन्धानुलेपनम् ।

हे प्रभो! हे योगियोंके ईश्वर! तुम यदि मुझे उस अपने रूपके देखने योग्य समझते हो, तो अपना अव्यय और अविनाशी रूप मुझे दिखाओ। (४)

श्रीभगवान्! बोले, हे अर्जुन! तुम अनेक वर्णोंके और नाना आकृतियोंके सैकड़ों, हजारों तथा अगनित आश्चर्यमय मेरे रूपोंको देखो। (५) हे भारत! तुम मेरे शरीरमें आदित्य, वसु, रुद्र अश्विनीकुमार और मरुद्गणको देखो। अनेक प्रकारके आश्चर्योंको जिनको तुमने या किसीने पहले नहीं देखा था, उनको देखो। (६) हे गुडाकेश! हमारे शरीरमें एकत्रित जङ्गम, स्थावर सहित सब जगतको और जो कुछ देखना हो इच्छा करते हो वह सब अभी देख लो। (७) परन्तु तुम अपनी इन चमड़ेकी आंखोंसे मेरा दिव्य रूप न देख सकोगे इस निमित्त मैं तुम्हें अलौकिक ज्ञानका नेत्र देता हूं, तुम मेरे बड़े तेजस्वी, प्रकाशमान और [illegible] ऐश्वर्यको देखो। (८)

पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥
त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥
अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ १९ ॥
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाऽद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥
अमी हि त्वा सुरसङ्घा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥२१॥
रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥
रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।

तेजसे भरे तथा अग्नि और सूर्यकी ज्योतिके समान प्रकाशमान, कठिनाईसे निश्चय करने और देखने योग्य तुम्हारा रूप चारों ओर देखता हूं। (१७) मैं तुम्हें अविनाशी परब्रह्म, मुमुक्षु लोगोंसे जानने योग्य, संसारके निवास स्थान, नित्य धर्मका पालन करने वाला और सनातन पुरुष समझता हूं। (१८) मैं तुम्हें उत्पत्ति, स्थिति और नाश रहित, अनन्त प्रभाव बहुतसी भुजाओंसे युक्त, तथा चन्द्रमा सूर्यको तुम्हारे नेत्र स्थानमें देखता हूं। जलती हुई अग्नि स्वरूप तुम्हारा मुख है और तुम्हारे तेजसे जगत् प्रकाशित होरहा है। (१९) आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष अर्थात् इन दोनोंका मध्य और सब दिशाओंमें तुम्हारा रूप पूर्ण होरहा है। हे परमात्मन्! तुम्हारे इस अद्भुत, भयानक और अपने तेजसे भरे हुए उग्र रूपको देख कर तीनों लोक भयसे व्याकुल होगये हैं। (२०) ये सब देवता लोग दीख पड़ते हैं, ये तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करने लगे हैं। इनमेंसे कोई कोई भयसे दुःखी होकर हाथ जोड़कर तुम्हारी स्तुति करते हैं। महर्षि और सिद्ध लोग जगत्के कल्याणके निमित्त तुम्हारी बहुत सराहना करके स्तुति करते हैं। (२१) ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य आठ वसु सम्पूर्ण देवता, अश्विनीकुमार मरुद्गण, पितर, गन्धर्व, यक्ष, विरोचन आदि असुर और सिद्ध लोग सभी इसे आश्चर्यित होकर तुम्हें देख रहे हैं (२२) हे महाबाहो! तुम्हारे बहुत मुख, बहुत [illegible] [illegible] है [illegible] बहुत [illegible]

पश्यामि त्वां दुर्निरीक्ष्यं समन्ताद्दीप्तानलार्कद्युतिमप्रमेयम् ॥ १७ ॥
त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥
अनादिमध्यान्तमनन्तवीर्यमनन्तबाहुं शशिसूर्यनेत्रम् ।
पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवक्त्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपन्तम् ॥ १९ ॥
द्यावापृथिव्योरिदमन्तरं हि व्याप्तं त्वयैकेन दिशश्च सर्वाः ।
दृष्ट्वाऽद्भुतं रूपमुग्रं तवेदं लोकत्रयं प्रव्यथितं महात्मन् ॥ २० ॥
अमी हि त्वा सुरसङ्घा विशन्ति केचिद्भीताः प्राञ्जलयो गृणन्ति ।
स्वस्तीत्युक्त्वा महर्षिसिद्धसङ्घाः स्तुवन्ति त्वां स्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥२१॥
रुद्रादित्या वसवो ये च साध्या विश्वेऽश्विनौ मरुतश्चोष्मपाश्च ।
गन्धर्वयक्षासुरसिद्धसङ्घा वीक्षन्ते त्वां विस्मिताश्चैव सर्वे ॥ २२ ॥
रूपं महत्ते बहुवक्त्रनेत्रं महाबाहो बहुबाहूरुपादम् ।

तेजसे भरे तथा अग्नि और सूर्यकी ज्योतिके समान प्रकाशमान, कठिनाईसे निश्चय करने और देखने योग्य तुम्हारा रूप चारों ओर देखता हूं। (१७) मैं तुम्हें अविनाशी, परब्रह्म, मुमुक्षु लोगोंसे जानने योग्य, संसारके निवास स्थान, नित्य धर्मका पालन करने वाला और सनातन पुरुष समझता हूं। (१८) मैं तुम्हें उत्पत्ति, स्थिति और नाश रहित, अनन्त प्रभाव, बहुतसी भुजाओंसे युक्त तथा चन्द्रमा सूर्यको तुम्हारे नेत्र स्थानमें देखता हूं। जलती हुई अग्निके सदृश तुम्हारा मुख है और तुम्हारे तेजसे जगत् प्रकाशित होरहा है। (१९) आकाश, पृथ्वी और अन्तरिक्ष अर्थात् इन दोनोंका मध्य और सब दिशाओंमें तुम्हारा रूप पूर्ण होरहा है। हे परमात्मन्! तुम्हारे इस अद्भुत, भयानक और अचरजसे भरे हुए उग्र रूपको देख कर तीनों लोक भयसे व्याकुल होगये हैं। (२०) ये सब देवता लोग दीख पड़ते हैं, ये तुम्हारे शरीरमें प्रवेश करने लगे हैं। इनमेंसे कोई कोई भयसे दुःखी होकर हाथ जोड़कर तुम्हारी स्तुति करते हैं। महर्षि और सिद्ध लोग जगत्के कल्याणके निमित्त तुम्हारी बहुत सराहना करके स्तुति करते हैं। (२१) ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, आठ वसु, साध्य देवता, अश्विनीकुमार, मरुद्गण, [illegible], यक्ष, निशाचर आदि असुर और सिद्ध लोग [illegible] देख रहे हैं। (२२) हे महाबाहो! तुम्हारे बहुत मुख, बहुत [illegible] बहुत उदर हैं तथा बहुत दा-

तथैव नाशाय विशन्ति लोकास्तवाऽपि वक्त्राणि समृद्धवेगाः ॥२९॥
लेलिह्यसे ग्रसमानः समन्ताल्लोकान्समग्रान्वदनैर्ज्वलद्भिः ।
तेजोभिरापूर्य जगत्समग्रं भासस्तवोग्राः प्रतपन्ति विष्णो ॥ ३० ॥
आख्याहि मे को भवानुग्ररूपो नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद ।
विज्ञातुमिच्छामि भवन्तमाद्यं न हि प्रजानामि तव प्रवृत्तिम् ॥ ३१ ॥
श्रीभगवानुवाच– कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्प्रवृद्धो लोकान्समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ।
ऋतेऽपि त्वा न भविष्यन्ति सर्वे येऽवस्थिताः प्रत्यनीकेषु योधाः ॥ ३२ ॥
तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥
द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथाऽन्यानपि योधवीरान् ।
मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युद्ध्यस्व जेतासि रणे सपत्नान् ॥३४॥

तैसे ही ये सब वीर लोग तुम्हारे वि-
कराल दांतोंसे युक्त मुखोंमें बडे वेगसे
घुसे जाते हैं। (२९) हे विष्णु!
तुम अपने अग्निके समान मुखोंसे
सब लोगोंको ग्रास तथा भक्षण कर रहे
हो। तुम्हारे तेजसे सम्पूर्ण संसार भर
गया है यह तुम्हारा रूप सबको दुःख
देता है और कठोर तेजसे सबको सन्तप्त
कर रहा है। (३०) ऐसे प्रचण्ड तथा
विकराल मूर्तिवाले तुम कौन हो? मैं
तुम्हें जाननेकी इच्छा करता हूं। हे
देवताओंमें उत्तम! मैं तुम्हें प्रणाम
करता हूं, मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। जिस
कारणसे तुम्हारी ऐसे कामोंमें प्रवृत्ति
है उसे मैं नहीं जान सकता हूं। क्या
तुम आदि पुरुष हो? मैं तुम्हें इसी
प्रकारसे जाननेकी इच्छा करता हूं (३१)
श्रीभगवान् बोले, मैं सब लोकोंका
नाश करनेवाला काल हूं। सब लोकोंके
संहार करनेके निमित्त इस समय प्रवृत्त
हुआ हूं। ये सब जितने योद्धा इस
सेनामें अलग अलग सेनाके बीच नि-
वास करते हैं उनमेंसे तू न हो तो भी
कोई जीते न बचेंगे। (३२) इससे
हे अर्जुन! तुम उठके खडे होजाओ,
शत्रुओंको जीतकर यश प्राप्त करो और
फलती हुई राजलक्ष्मीका भोग करो।
मैंने पहले हीसे इन सब लोगोंको निश्च-
यसे मारा हुआ है हे सव्यसाचिन्!
इस समय तुम केवल निमित्त मात्र
होजाओ। (३३) द्रोणाचार्य, भीष्म,
जयद्रथ, कर्ण, तथा और वीर लोग
जब मेरे हाथसे मारे जा रहे हैं तब
[illegible]
[illegible]

अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः ॥ ४० ॥
सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति ।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वाऽपि ॥ ४१ ॥
यच्चाऽवहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाऽप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥ ४२ ॥
पिताऽसि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव ॥ ४३ ॥
तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायाऽर्हसि देव सोढुम् ॥ ४४ ॥
अदृष्टपूर्वं हृषितोऽस्मि दृष्ट्वा भयेन च प्रव्यथितं मनो मे ।
तदेव मे दर्शय देव रूपं प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ ४५ ॥
किरीटिनं गदिनं चक्रहस्तमिच्छामि त्वां द्रष्टुमहं तथैव ।

भीतरसे व्यापक हो, इससे सब वस्तु तुम्हारे ही रूप हैं। (४०) हे अच्युत! मैं तुम्हारी इस महिमाको न जानकर, तुम्हें अपना मित्र मानके प्रमाद, प्रीति, उन्मत्तता, और हँसीमें जो कुछ अनादर तथा ढिठाई की है, (४१) तथा चलते, फिरते, खाते.पीते, सोते, बैठते, परिहास करते एवं अकेले अथवा लोगोंके आगे जो कुछ तुमसे बिना जाने अपराध हुआ हो,— उसके निमित्त मैं अप्रमेय तुमसे

स्तुति करनेके योग्य हो। इससे हे देवोंके देव! मैं तुम्हें दण्डवत (सब शरीरको पृथ्वी पर गिराके साष्टाङ्ग प्रणाम) करता हूं; तुम्हारे प्रसन्न होनेके निमित्त प्रार्थना करता हूं। जिस तरहसे पुत्रके अपराधको पिता और मित्रके अपराधको मित्र, तथा प्रियजनोंके अ-पराधोंको प्यारे मनुष्य क्षमा करते हैं, उसी प्रकार तुम मेरे अपराधोंको क्षमा करनेके योग्य हो। (४४) हे देवेश!

तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥
श्रीभगवानुवाच-मया प्रसन्नेन तवाऽर्जुनेदं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात्।
तेजोमयं विश्वमनन्तमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वम् ॥ ४७ ॥
न वेदयज्ञाध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरुग्रैः।
एवंरूपः शक्य अहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥
मा ते व्यथा मा च विमूढभावो दृष्ट्वा रूपं घोरमीदृङ् ममेदम्।
व्यपेतभीः प्रीतमनाः पुनस्त्वं तदेव मे रूपमिदं प्रपश्य ॥ ४९ ॥
संजय उवाच-इत्यर्जुनं वासुदेवस्तथोक्त्वा स्वकं रूपं दर्शयामास भूयः।
आश्वासयामास च भीतमेनं भूत्वा पुनः सौम्यवपुर्महात्मा ॥५०॥
अर्जुन उवाच- दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौम्यं जनार्दन।
इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ॥ ५१ ॥
श्रीभगवानुवाच- सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्टवानसि यन्मम।

(४५) मैं तुम्हें पहलेकी भांति किरीट युक्त, गदा और चक्र धारी देखनेकी इच्छा करता हूं। हे सहस्र भुजावाले! हे विश्वमूर्त्ति! अब इस विराट रूपको समेट कर वही चतुर्भुजी मूर्त्तिसे प्रकट होजाइये। (४६)

श्रीभगवान् बोले, हे अर्जुन! तुम क्यों डरते हो? मैंने तुम्हारे ऊपर प्रसन्न होकर यह अपने ऐश्वर्यसामर्थके हेतु, आदिभूत, विश्वात्मक, अनन्त- और प्रकाशमय अपना रूप तुम्हें दिखाया है, जिसको तुम्हें छोड और किसीने कभी इस लोकमें न देखा था। (४७) हे कुरुकुल प्रवीर! वेद, यज्ञ, अध्ययन, अग्निहोत्र आदि क्रियाके करनेवाले तथा चान्द्रायण आदि कठोर तपस्यासे भी मर्त्यलोकमें तुम्हें छोड कोई भी मेरे इस रूपका दर्शन करनेमें कभी समर्थ न हुआ। (४८) मेरे इस प्रकारके घोर तथा भयंकर रूपको देखकर तुम्हें भय और मोह उत्पन्न होता है; इस निमित्त जिससे तुम्हारे भय तथा दुःख छूट जावें, मैं तुम्हें वही अपना पूर्व रूप दिखाता हूं; तुम भय रहित होकर प्रीति पूर्वक वही रूप देखो। (४९)

सञ्जय बोले, हे राजा धृतराष्ट्र! अनन्तर महात्मा श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनको भयभीत देखकर उन्हें शान्त करते हुए अपनी प्रसन्न मूर्ति धारण करके जैसे पहले थे, वैसे ही होगये, और अर्जुनको आशा भरोसा दिया। (५०)

अनन्तर अर्जुन बोले, हे जनार्दन! अब मैं तुम्हारे इस सुकुमार मनुष्य रूप को देखकर सुखी हुआ, और मेरा चित्त

देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं दर्शनकाङ्क्षिणः ॥ ५२ ॥
नाऽहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ ५३ ॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परन्तप ॥ ५४ ॥
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥ ५५ ॥ [१२८३]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विश्वरूपदर्शनं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ पर्वणि तु पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

अर्जुन उवाच — एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते।
ये चाऽप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः॥ १ ॥
श्रीभगवानुवाच- मय्यावेश्य मनो ये मां नित्ययुक्ता उपासते।
श्रद्धया परयोपेतास्ते मे युक्ततमा मताः ॥ २ ॥

ये त्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते ।
सर्वत्रगमचिन्त्यं च कूटस्थमचलं ध्रुवम् ॥ ३ ॥
संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः ।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥
क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥
ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥ ६ ॥
तेषामहं समुद्धर्त्ता मृत्युसंसारसागरात् ।
भवामि न चिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम् ॥ ७ ॥
मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय ।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः ॥ ८ ॥
अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम् ।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाऽऽप्तुं धनञ्जय ॥ ९ ॥
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ।

पूरे योगी हैं । (२) और जो लोग सब प्राणियोंके हितमें रत और सर्वत्रसमान बुद्धि रखते है, और इन्द्रियोंके समूहको भली भांतिसे रोककर नाश रहित, इन्द्रियोंसे न जानने योग्य, निराकार, सर्वव्यापक और नित्यरूपकी उपासना करते हैं, वे लोग भी मुझे ही पाते है । (३–४) किन्तु इसमें विशेष बात यही है. कि रूपरहित अविनाशी ब्रह्ममें चित्त लगानेवालों को अधिक क्लेश होता है; क्योंकि शरीरधारियोंको निराकार ब्रह्मतक पहुंचना बहुत कष्टसाध्य अर्थात् अत्यन्त दुर्लभ है । (५) जो लोग मत्परायण होकर सब कर्मोंको मुझे समर्पण करते हुए अनन्य योगसे मेरा ध्यान कर मेरी उपासना करते हैं, (६) और हे अर्जुन ! जिनका मन मुझमें लगा है, मैं उनको मृत्युयुक्त संसार-सागरसे शीघ्र ही पार कर देता हूं; (७) इससे तुम मुझमें ही अपना मन ठहराओ और मुझमें बुद्धि लगाओ; ऐसा करनेसे तुम इस शरीरको छोडनेपर मुझमें मिल जाओगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है । (८) हे धनञ्जय ! यदि तुम चञ्चलचित्तको मुझमें न ठहरा सको, तो अभ्यास योगसे मुझमें मिलने तथा मुझे पानेकी इच्छा करो। (९) यदि अभ्यास करनेमें भी तुम असमर्थ हो, तो मेरी प्रीतिके निमित्त जो

मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि ॥ १० ॥
अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्त्तुं मद्योगमाश्रितः ।
सर्वकर्मफलत्यागं ततः कुरु यतात्मवान् ॥ ११ ॥
श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम् ॥ १२ ॥
अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥
सन्तुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मे भक्तः स मे प्रियः ॥ १४ ॥
यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ॥ १५ ॥
अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥ १६ ॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ॥ १७ ॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः ॥ १८ ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी सन्तुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ १९ ॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः ॥२० ॥ [१३०३]

इतिश्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे यज्ञविभागयोगो नाम द्वादशोऽध्याय ॥ ४ ॥ पर्वणि तु षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

अर्जुन उवाच–" प्रकृतिं पुरुषं चैव क्षेत्रं क्षेत्रज्ञमेव च ।
एतद्वेदितुमिच्छामि ज्ञानं ज्ञेयं च केशव " ॥ १ ॥ ❀
श्रीभगवानुवाच—इदं शरीरं कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते ।
एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति तद्विदः ॥ १ ॥

दिये हैं। (१६) जो न आनन्द मानता है, न द्वेष करता है, जो न शोक करता है, और इच्छा रखता है, जिसने कर्मके शुभ और अशुभ फल छोड दिये है वह भक्तिमान् पुरुष मुझे प्रिय है। (१७) जो शत्रु, मित्र, मान, अपमान, सर्दी गर्मी, सुख और दुःखको समान जानता है, तथा जो संगसे रहित है। (१८) और स्तुति निन्दाको बराबर जानता है; जिसके वचन परिमित हैं जो कुछ मिले उसीमें प्रसन्न और सन्तुष्ट रहनेवाला, जिसका कोई घर नहीं ऐसा स्थिरचित्तवाला जो मनुष्य है वही मेरा भक्त और मुझे प्यारा है। (१९) जो लोग श्रद्धावान् और मुझमें अनुरक्त होके इस ऊपर कहे हुए अमृतरूपी धर्मका अनुष्ठान तथा मेरी उपासना करते है; वे ही भक्त मुझे बहुत ही प्यारे होते हैं। (२०) [१३०३]

भीष्मपर्वमें छत्तीस अध्याय समाप्त ।
भगवद्गीतामें बारह अध्याय समाप्त ।
भीष्मपर्वमें सैंतीस अध्याय ।
भगवद्गीतामें तेरह अध्याय ।

अर्जुन बोले, हे केशव ? मैं प्रकृति और पुरुष, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ, ज्ञान और ज्ञेयके जाननेकी इच्छा रखता हूं। (१)

श्रीभगवान बोले, हे कुन्तीनन्दन ! यह शरीर क्षेत्र ठहराया गया है, इस शरीरको जो जानता है, तत्त्वके जानने

❀ यह श्लोक प्रक्षिप्त है, भाष्य कारों का भाष्य इसपर नहीं है। महाभारतके पुस्तकोंमें मिलता है अत यहा दिया है।

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्वक्षेत्रेषु भारत ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥
तत्क्षेत्रं यच्च यादृक् च यद्विकारि यतश्च यत् ।
स च यो यत्प्रभावश्च तत्समासेन मे शृणु ॥ ३ ॥
ऋषिभिर्बहुधा गीतं छन्दोभिर्विविधैः पृथक् ।
ब्रह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥
महाभूतान्यहङ्कारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पञ्च चेन्द्रियगोचराः ॥ ५ ॥
इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं सङ्घातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ॥ ६ ॥
अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥
इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहङ्कार एव च ।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥ ८ ॥

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥
मयि चाऽनन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम् ।
एतज्ज्ञानमिति प्रोक्तमज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥ ११ ॥
ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ।
अनादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नाऽसदुच्यते ॥ १२ ॥
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च ।
सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चाऽन्तिके च तत् ॥ १५ ॥
अविभक्तं च भूतेषु विभक्तमिव च स्थितम् ।

वस्तुओंमें आसक्ति को त्याग देना, प्रिय तथा अप्रिय वस्तुओंके मिलनेको चित्तमें-समान जानना, तथा, (९) मुझमें अनन्य योगसे दृढ भक्ति करना, एकान्त स्थानमें बैठना, और साधारण मनुष्यों-की संगतिसे अलग रहना। (१०) अध्यात्म ज्ञानमें निष्ठा रखना, और तत्व ज्ञान के निमित्त नित्य दृष्टि रखना इत्यादि-इन्हींको ज्ञान कहते है और इसके विरुद्ध अपने गुणोंकी प्रशंसा आदिको ज्ञानका विरोधी कहा गया है। (११)

ऊपर कहे हुए ज्ञानके साधनोंसे जो जानने योग्य अर्थात् ज्ञेय है, उसे कहता हूं, उसको जाननेसे मोक्ष होता है। वह आदि अन्तसे रहित परब्रह्म है। न उसे सत् कहते है और असत्। (१२) उसके हाथ, पांव, आंख, कान और मुख सब जगहोंमें मौजूद है; और वह सब जगत् तथा सब पदार्थोंमें व्यापक है। (१३) वह सब इन्द्रियों और उनके विषयोंका प्रकाशक है; और इन्द्रियादि-कोंसे रहित है। वह सङ्गसे अलग है, किन्तु सबका आधार है; वह सत्त्व आदि गुणोंसे रहित होनेपर भी उन गुणोंका उपभोग करता है। (१४) सम्पूर्ण सृष्टि और चराचरके बाहर भी-तर पूर्ण है; बहुत सूक्ष्म रहनेके कारण जाना नहीं जाता, वह दूर रहता है और

भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १६ ॥
ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य धिष्ठितम् ॥ १७ ॥
इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ।
मद्भक्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥
प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि ।
विकारांश्च गुणांश्चैव विद्धि प्रकृतिसम्भवान ॥ १९ ॥
कार्यकारणकर्तृत्वे हेतुः प्रकृतिरुच्यते ।
पुरुषः सुखदुःखानां भोक्तृत्वे हेतुरुच्यते ॥ २० ॥
पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥
उपद्रष्टाऽनुमन्ता च भर्ता भोक्ता महेश्वरः ।
परमात्मेति चाऽप्युक्तो देहेऽस्मिन्पुरुषः परः ॥ २२ ॥
य एवं वेत्ति पुरुषं प्रकृतिं च गुणैः सह ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि न स भूयोऽभिजायते ॥ २३ ॥

ध्यानेनाऽऽत्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना ।
अन्ये सांख्येन योगेन कर्मयोगेन चाऽपरे ॥ २४ ॥
अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वाऽन्येभ्य उपासते ।
तेऽपि चाऽतितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥
यावत्सञ्जायते किञ्चित्सत्त्वं स्थावरजङ्गमम् ।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्धि भरतर्षभ ॥ २६ ॥
समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम् ।
विनश्यत्स्वविनश्यन्तं यः पश्यति स पश्यति॥ २७ ॥
समं पश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरम् ।
न हिनस्त्यात्मनाऽऽत्मानं ततो याति परां गतिम् ॥ २८ ॥
प्रकृत्यैव च कर्माणि क्रियमाणानि सर्वशः ।
यः पश्यति तथाऽऽत्मानमकर्तारं स पश्यति ॥ २९ ॥
यदा भूतपृथग्भावमेकस्थमनुपश्यति ।

है; सब अवस्थाओंमें रहनेसे भी उसे फिर जन्म नहीं लेना पडता। (२३) कोई पुरुष अपने आप ही आत्माका ध्यान करते हुए उसका दर्शन करते हैं, कोई कोई सांख्ययोगसे अर्थात् प्रकृति, पुरुषकी आलोचना करते हुए उसका दर्शन करते हैं; और कोई कोई कर्मयोगसे उसे देखते हैं। (२४) कोई कोई पहले कही हुई साधनाओंको न जाननेसे दूसरोंसे सुनकर मेरी उपासना करते हैं, किन्तु दूसरोंसे सुनकर उपासना करनेवाले वे भी श्रद्धा पूर्वक धीरे धीरे मृत्युसे पार होजाते है। (२५) हे भारत ! जितने स्थावर अथवा जंगम आदि वस्तु उत्पन्न होती है, उन्हें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके संयोगसे ही जानना चाहिये (२६) जो जगत्की सब वस्तुओंमें परमेश्वरको विराजमान और उनके विनष्ट होने पर भी उसे अविनाशी जानता है, वही पूर्णदर्शी कहाता है। (२७) वह ईश्वरको सब जगहमें समय तथा सब वस्तुओं में समान निश्चयसे विराजमान देखता है, वह अपनी आत्मासे सच्चिदानन्द आत्माका तिरस्कार करके उसकी हिंसा नहीं करता, वही देह छोडने पर मोक्ष पाता है। (२८) जो प्रकृतिको ही सब कर्मोंका कारण जानता है, और आत्माको कर्मका कर्त्ता नहीं देखता, वही देखनेवाला कहाता है। (२९) जब स्थावर, जङ्गम आदि सृष्टिको पृथक् रूपसे आत्माहीमें देखता और उसी आत्मासे सम्पूर्ण संसार

तत एव च विस्तारं ब्रह्म सम्पद्यते तदा ॥ ३० ॥

अनादित्वान्निर्गुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः ।
शरीरस्थोऽपि कौन्तेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ।
सर्वत्राऽवस्थितो देहे तथाऽऽत्मा नोपलिप्यते ॥ ३२ ॥

यथा प्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ।
क्षेत्रं क्षेत्री तथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमन्तरं ज्ञानचक्षुषा ।
भूतप्रकृतिमोक्षं च ये विदुर्यान्ति ते परम् ॥ ३४ ॥ [१३३७]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे क्षेत्रक्षेत्रज्ञविभागयोगो नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ पर्वणि तु सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

श्रीभगवानुवाच– परं भूयः प्रवक्ष्यामि ज्ञानानां ज्ञानमुत्तमम् ।
यज्ज्ञात्वा मुनयः सर्वे परां सिद्धिमितो गताः ॥ १ ॥

इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागताः ।
सर्गेऽपि नोपजायन्ते प्रलये न व्यथन्ति च ॥ २ ॥
मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम् ।
सम्भवः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥
सर्वयोनिषु कौन्तेय मूर्तयः सम्भवन्ति याः ।
तासां ब्रह्म महद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥
सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसम्भवाः ।
निबध्नन्ति महाबाहो देहे देहिनमव्ययम् ॥ ५ ॥
तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।
सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चाऽनघ ॥ ६ ॥
रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासङ्गसमुद्भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ॥ ७ ॥
तमस्त्वज्ञानजं विद्धि मोहनं सर्वदेहिनाम् ।

प्राप्त हुए हैं। (१) इस ज्ञानका आसरा करके मनुष्य मुझे पाते हैं, और सृष्टिकी उत्पत्तिके समयमें भी नहीं जन्मते और न प्रलय कालके दुःखको ही भोगते हैं, तथा उनको पुनर्वार जन्म नहीं लेना पडता। (२) हे भारत ! देश और कालसे अपरिछिन्न और बीज बोनेका स्थान जो मेरी प्रकृति है, उसमें जगत्के विस्तारके वास्ते जो सब लोग प्रलय कालमें मुझमें लीन रहते हैं, उन्हींको उनके कर्मानुसार उत्पन्न करता हूं। (३) हे कुन्तीनन्दन ! सब योनियोंमें जो स्थावर, जङ्गम आदि मूर्त्ति उत्पन्न होती है, उनसबके उत्पत्तिका स्थान वही महत् ब्रह्म है, मै उन सबका पिता अर्थात् प्रकृतिमें बीज डालनेवाला हूं। (४) हे महाबाहो! देहमें आसक्त जो जीव अव्यय है, उसे प्रकृतिके सत्व, रज, तम आदि गुण सुख, दुःख और मोहमें बांध देते है । (५) हे पापरहित! ऊपर कहे हुए तीनों गुणोंमेंसे सत्वगुण निर्मल होनेके कारण वह प्रकाश करनेवाला, शान्तभावसे युक्त सुख तथा ज्ञानकी इच्छामें बांध देता है। (६) हे कुन्तीनन्दन ! रजोगुणको इच्छा और प्रीतिका स्वरूप तृष्णासे उत्पन्न हुआ समझो; रजोगुणसे अप्राप्तकी इच्छा और प्राप्त विषयोंमें आसक्ति होती है; इस लिये वह देहधारी जीवको स्वर्ग आदि फलोंके कर्मबन्धनमें बांध देता है। (७) तमोगुणको अज्ञान शक्तिसे युक्त प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ जानो, इस

प्रमादालस्यनिद्राभिस्तन्निबध्नाति भारत ॥ ८ ॥
सत्त्वं सुखे सञ्जयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे सञ्जयत्युत ॥ ९ ॥
रजस्तमश्चाऽभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्वं रजस्तथा ॥ १० ॥
सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥
लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥
अप्रकाशोऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ।
तमस्येतानि जायन्ते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥
यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत ।
तदोत्तमविदाँल्लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥
रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसङ्गिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ॥ १५ ॥

निमित्त वह सबको मोहनेवाला, उन्माद, निद्रा और आलस्यसे बांध देता है। (८) हे भारत! सत्त्वगुण सुखमें लगा देता है, रजोगुण कर्ममें प्रवृत्त करता है तथा तमोगुण ज्ञानको आवृत करके प्रमादयुक्त करता है। (९) रजोगुण और तमोगुणको अलग करके सत्त्वगुण प्रकाशित होता है; सत्त्वगुण और तमोगुणको दबाकर रजोगुण प्रकट होता है, और रजोगुण तथा सत्त्वगुणको दूर करके तमोगुण व्यक्त होता है। (१०) जिस समय सब [illegible] ज्ञानका प्रकाश होता है, उस समय सत्त्वगुणकी बढ़ती समझनी चाहिये।

(११) हे भरतकुल श्रेष्ठ! जिस समय लोभ प्रवृत्ति, कर्मोंका आरम्भ, कर्मोंका शमन न होना और अनेक संकल्प उठते हैं, उस समय रजोगुणकी बढ़ती समझना उचित है। (१२) हे कुरुनन्दन! जब तमोगुण बढ़ता है, तब अविवेक, किसी कार्यको करनेकी रुचि न होनी, प्रमाद और मोह इत्यादि लक्षण उत्पन्न होते हैं। (१३) जब सत्त्वगुणके बढ़नेपर देहधारी मरता है [illegible] (१४) [illegible]

कर्मणः सुकृतस्याऽऽहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ॥ १६ ॥
सत्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ॥ १७ ॥
ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः॥ १८ ॥
नाऽन्यं गुणेभ्यः कर्त्तारं यदा द्रष्टाऽनुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९ ॥
गुणानेतानतीत्य त्रीन्देही देहसमुद्भवान् ।
जन्ममृत्युजरादुःखैर्विमुक्तोऽमृतमश्नुते ॥ २० ॥
अर्जुन उवाच— कैर्लिङ्गैस्त्रीन्गुणानेतानतीतो भवति प्रभो ।
किमाचारः कथं चैतांस्त्रीन्गुणानातिवर्तते ॥ २१ ॥
श्रीभगवानुवाच— प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहमेव च पाण्डव ।

पाता है; और तमोगुणकी बढतीमें मरनेमे पशु आदि मूढ-योनियोंमें जन्म लेता है । (१५) पुण्य कर्मोंका फल निर्मल और सात्विक कहा है, रजोगुणका दुःख और तामसिक कर्मोंका फल अज्ञान है। (१६) सत्वगुणसे ज्ञान, रजोगुणसे लोभ और तमोगुणसे प्रमाद, मोह और अज्ञान पैदा होते है। (१७) सत्त्वगुणी पुरुष ऊपरके अर्थात् स्वर्ग आदि लोकोंमे जाते हैं । रजोगुणी पुरुष मनुष्य लोकमें रहते हैं, और तमोगुणी पुरुष प्रमाद, मोह आदिमे युक्त होकर अधोगतिको जाते हैं । (१८) जब उदासीनतामे देखनेवाला मनुष्य (प्रकृतिके) गुणोंसे अन्य किसीको भी कर्ता नहीं समझता, और आत्माको गुणोंमे अलग जानता है, तब वह मेरा भाव अर्थात् मुझे पाता है । (१९) देव आदि रूपसे जो ये तीनों गुण उत्पन्न होते हैं; उनसे रहित होनेपर शरीर धारी पुरुष जन्म, मृत्यु, बुढापा और दुःखोंसे छूटकर अमृतको पाते अर्थात् मुक्त होते है । (२०)

अर्जुन बोले, हे प्रभो कृष्ण ! किन लक्षणोंसे तथा किन उपायों और आचारोंसे इन तीनों गुणोंसे अलग हो सकते हैं ? (२१)

श्रीभगवान् बोले,हे अर्जुन!सत्वगुणका कार्य प्रकाशरूपी ज्ञान है, रजोगुणका कार्य कर्ममें प्रवृत्ति और तमोगुणका कार्य मोह आदि है; इनसे अतिरिक्त और दूसरे तामसिक राजस और सात्विक कार्योंके उपस्थित होनेपर उसमें न द्वेष

न द्वेष्टि सम्प्रवृत्तानि न निवृत्तानि काङ्क्षति ॥ २२ ॥
उदासीनवदासीनो गुणैर्यो न विचाल्यते ।
गुणा वर्तन्त इत्येव योऽवतिष्ठति नेङ्गते ॥ २३ ॥
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः ।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः ।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते ॥ २५ ॥
मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥
ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याऽव्ययस्य च ।
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च ॥२७॥ [१३३४]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयोगो नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥ पर्वणि तु अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३८ ॥

करे और न दुःखी हो; इनके निवृत्त होनेपर उनकी फिर इच्छा भी न करे। (२२) जो (कर्मफलके सम्बन्धमें) उदासीनकी भांति रहता है, (सत्त्व रज और तम) गुण जिसे चल विचल नहीं कर सकते जो इतना ही मान कर स्थिर रहता है, कि, सब गुण अपने अपने

सम्पूर्ण उद्योग कर्मोंके फलोंके त्याग करनेवाले हैं, ऐसे ज्ञानासे युक्त धीर पुरुषको सत्त्व रज और तमोगुणसे पृथक कहा है। (२५) जो लोग केवल मुझमें ही निष्ठावान होकर भक्ति योगसे मेरी सेवा करते हैं, वे इन सब गुणोंके पार होकर ब्रह्मपद अर्थात् मोक्ष पानेके योग्य

श्रीभगवानुवाच– ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्तं वेद स वेदवित् ॥ १ ॥
अधश्चोर्ध्वं प्रसृतास्तस्य शाखा गुणप्रवृद्धा विषयप्रवालाः ।
अधश्च मूलान्यनुसन्ततानि कर्मानुबन्धीनि मनुष्यलोके ॥ २ ॥
न रूपमस्येह तथोपलभ्यते नाऽन्तो न चाऽऽदिर्न च सम्प्रतिष्ठा ।
अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा ॥ ३ ॥
ततः पदं तत्परिमार्गितव्यं यस्मिन्गता न निवर्तन्ति भूयः ।
तमेव चाऽऽद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी ॥ ४ ॥
निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥ ५ ॥
न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः ।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥ ६ ॥

वृक्षका वर्णन ऐसा करते है, कि इसकी जड एक ऊपर और इसकी अनेक शाखाएं नीचे है, इसका कभी भी नाश नहीं होता, और वेदकी ऋचा इसके पत्ते है; जो इसको जानता है, वही वेदका जाननेवाला है। (१) इस वृक्षकी ऊपर और नीचे फैली हुई अनेक शाखाएं हैं, ये सम्पूर्ण शाखाएं सत्वगुण आदि वृत्तियोंसे बढती है, रूप, रस आदि विषयोंसे पल्लवित होती है। अन्तमें कर्मका रूप पाने वाली उसकी जडें नीचे मनुष्य लोकमें भी बढती बढती गहरी चली गई हैं। (२) इसका रूप इस लोक में नहीं पाया जाता, अथवा अन्त, आदि और आ-धार स्थान भी नहीं मिलता, इस लिये असंग अर्थात् अनासक्ति रूपी शस्त्रसे अत्यंत गहरी जडवाले इस वृक्ष-को काट कर, (३) फिर उस स्थान-को ढूंढना चाहिये, कि जहांसे फिर लौटना नहीं पडता और यह संकल्प करना उचित है, कि (सृष्टिकर्म की यह) पुरातन प्रवृत्ति जिससे उत्पन्न हुई है, उसी आद्यपुरुषको मैं जाता हूं। (४) जो मान और मोहसे रहित है, जिन्होंने सङ्ग अर्थात् आसक्ति दोष को जीत लिया है, और जिसकी आतम ज्ञानमें निष्ठा है, वह पुरुष सब कामना ओंसे छूटकर और सुख, दुःख आदि द्वन्द्वोंसे रहित होकर अविद्याके नाश होने पर उस अव्यय अविनाशी पदको पाते है। (५) जिस पदको पानेमे फिर जन्म लेना नहीं पडता, वही परम-धाम मेरा परमपद है; उस मेरे धाममें

ममैवांऽशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनःषष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥
शरीरं यदवाप्नोति यच्चाऽप्युत्क्रामतीश्वरः ।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाऽऽशयात् ॥ ८ ॥
श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चाऽयं विषयानुपसेवते ॥ ९ ॥
उत्क्रामन्तं स्थितं वाऽपि भुञ्जानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नाऽनुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥
यतन्तो योगिनश्चैनं पश्यन्त्यात्मन्यवस्थितम् ।
यतन्तोऽप्यकृतात्मानो नैनं पश्यन्त्यचेतसः ॥ ११ ॥
यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाऽग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥ १२ ॥
गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा ।

चन्द्रमा और अग्निका प्रकाश भी नहीं पहुंच सकता। (६) मेरा सनातन अंश जीवलोक अर्थात् कर्मभूमि में जीवरूप होकर प्रकृतिमें स्थित मन सहित छः अर्थात् मन और अन्य पांच (सूक्ष्म) इन्द्रियोंको अपनी ओर खींच लेता है (यही लिंग शरीर है।) (७) जब ईश्वर

शब्द आदि विषयोंको भोगता है। (९) मूढ लोग जीवको एक देहसे दूसरे शरीरमें जानेवाला तथा उसी देहमें वास करनेवाला, अथवा गुणोंसे युक्त होकर भोग भोगनेवाला नहीं देख सकते, परन्तु ज्ञाननेत्रवाले मनुष्य ही, उसे देख सकते हैं। (१०) इस

पुष्णामि चौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वा रसात्मकः॥१३॥
अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ १४ ॥
सर्वस्य चाऽहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाऽहम् ॥ १५ ॥
द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाऽक्षर एव च।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥
यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥
यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत ॥ १९ ॥

जगत् अर्थात् प्राणियोंको अपनी शक्तिसे धारण करता हूं। मैं रसात्मक चन्द्रमा होकर सब ओषधियोंका पोषण करता हूं; (१३) मै जठराग्नि होकर जीवधारियोंके शरीरमें निवास करता हूं, उनके प्राण तथा अपानके साथ मिल कर चारों प्रकारके अन्नको पचाता हूं।(१४) मैं सब जीवोंके हृदयमें निवास करता हूं, इससे मुझसे ही उनकी स्मृति, इन्द्रियोंके संयोगसे ज्ञान और इन दोनोंका अभाव भी होता है। मै ही सब वेदोंसे जाननेके योग्य हू;मैं ही सब वेदान्तज्ञान का करनेवाला हूं, और सपूर्ण वेदोंका जाननेवाला ही हूं। (१५) इस जगत्मे क्षर (नाशवान्) और अक्षर (नाशरहित) दो पुरुष प्रसिद्ध है, उनमेसे ब्रह्मासे लेकर स्थावर तकको क्षर नाशवान् कहते हैं, और शरीरके विनष्ट होने पर भी जिसका नाश नहीं होता उसको ज्ञानी लोग अक्षर अविनाशी कहते हैं। (१६) इस क्षर, और अक्षरसे भी दूसरा एक उत्तम पुरुष और है, जिसे परमात्मा कहते हैं; वह अविनाशी और सर्व सामर्थ्य युक्त है, नियन्ता रूपसे सब जगत्का पालन करता है। (१७) इस निमित्त मै नित्य, मुक्त स्वभाव होनेसे जगत्से अलग, क्षर और अक्षर दोनोंसे बाहर और सबसे उत्तम हूं, इससे मैं लोक और वेदमें पुरुषोत्तम प्रसिद्ध हूं। (१८) जो बुद्धिमान् पुरुष निश्चय पूर्वक ऊपर कही हुई रीतिसे मुझ पुरुषोत्तम को जानते हैं; वह सर्वज्ञ होकर

इति गुह्यतमं शास्त्रमिदमुक्तं मयाऽनघ ।
एतद् बुद्ध्वा बुद्धिमाँस्यात्कृतकृत्यश्च भारत ॥२०॥ [१३८४]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुषोत्तमयोगो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ पर्वणि तु ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच—अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥ १ ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥ २ ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥ ३ ॥
दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ॥ ४ ॥
दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायाऽऽसुरी मता ।

मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ॥ ५ ॥
द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ॥ ६ ॥
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः।
न शौचं नाऽपि चाऽऽचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥ ७ ॥
असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत्कामहैतुकम् ॥ ८ ॥
एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः ॥ ९ ॥
काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
मोहाद्गृहीत्वाऽसद्ग्राहान्प्रवर्त्तन्तेऽशुचिव्रताः ॥ १० ॥
चिन्तामपरिमेयां च प्रलयान्तामुपाश्रिताः।
कामोपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः ॥ ११ ॥

तुम दैवी सम्पत्तिमें उत्पन्न हुए हो, इस निमित्त तुम शोक मत करो। (५) हे अर्जुन! इस संसारमें दैव और आसुर दो प्रकारके प्राणी हुआ करते हैं; उनमेंसे मैंने दैव श्रेणीका वर्णन विस्तारसे कर दिया है, अब आसुरी श्रेणी का वर्णन सुनो। (६) आसुरी स्वभावके मनुष्य प्रवृत्ति क्या है और निवृत्ति क्या है ? अर्थात् कर्तव्य अकर्तव्य को नहीं जानते। उनमें पवित्रता, आचार और सत्य नहीं रहते। (७) वे (आसुर लोग) कहते हैं, कि यह सारा जगत् असत्य है, अप्रतिष्ठ अर्थात् निराधार है, और इसका बनानेवाला ईश्वर कोई नहीं है। यह जगत् अपरस्पर संभूत अर्थात एक दूसरेके बिना ही हुआ है; इसकी उत्पत्तिका और कारण कौन है ? स्त्री पुरुषके अभिलाष विशेष ही इस जगत्के प्रवाहरूपसे चले आनेका हेतु है। (८) वह लोग इसी तरह की दृष्टि ग्रहण करके, मलिनचित्त और तुच्छबुद्धिवाले, दुष्ट कर्म करनेवाले, और हिंसा करनेवाले, जगत्का नाश करनेके निमित्त उत्पन्न होते है। (९) वह संसारिक कामना जो कभी पुरी नहीं होती उसीका सहारा करके दम्भ, मान और मदसे भरे हुए, मोहसे युक्त होके झूठ मूठ विश्वास अर्थात् मनमानी कल्पना करके, गंदे काम करनेके लिये प्रवृत होते हैं। १० इसी प्रकार आमरणान्त (सुख भोगनेकी) अगणित चिन्ताओंमे ग्रस्त हुए, कामोपभोग में

आशापाशशतैर्बद्धाः कामक्रोधपरायणाः ।
ईहन्ते कामभोगार्थमन्यायेनाऽर्थसञ्चयान् ॥ १२ ॥
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥ १३ ॥
असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चाऽपरानपि ।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥ १४ ॥
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ।
यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥
अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ।
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥
आत्मसम्भाविताः स्तब्धा धनमानमदान्विताः ।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाऽविधिपूर्वकम् ॥ १७ ॥
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥

तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान्।
क्षिपाम्यजस्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ॥ १९ ॥
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम् ॥ २० ॥
त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥ २१ ॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् ॥ २२ ॥
यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ २३ ॥
तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहाऽर्हसि ॥२४॥ [१४०८]

इतिश्रीमहाभारते, भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसम्पद्विभागयोगो नाम षोडशोऽध्याय ॥ १६ ॥ पर्वणि तु चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥

अर्जुन उवाच— ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयाऽन्विताः।

संसार शत्रु, नीच लोगोंको आसुरी योनि अर्थात् पापयोनियों में ही डाल देता हूं। (१९) हे कुन्तीनन्दन! वे लोग आसुरी योनिमें जाकर प्रतिजन्ममें मुझे पाना तो दूर रहा, पानेका उपाय भी नहीं जान सकते; उन योनियोंसे भी फिर वह नीच योनि अर्थात् कीट पतङ्गकी योनिमे प्राप्त होते हैं। (२०) काम, क्रोध और लोभ यह तीनों आत्माके नाश करनेवाले नरकके दरवाजे हैं; इस निमित्त इन तीनोंको त्यागना उचित है। (२१) हे कुन्तीनन्दन! जो मनुष्य अंधकारके द्वार इन काम, क्रोध और लोभसे छूटनेपर ऐसा आचरण करता है, कि जिसमें उसका कल्याण हो, वह उत्तम गतिको प्राप्त होता है। (२२) जो शास्त्रोक्त विधि को त्याग कर इच्छानुसार कर्म को करता है, वह सिद्धि नहीं पाता; उसे सुख तथा उत्तम गति नहीं मिलती। (२३) इस लिये कार्याकार्यव्यवस्थिति को अर्थात् कर्तव्य और अकर्तव्यका निर्णय करनेके लिये तुझे शास्त्रोंका प्रमाण मानना योग्य है, और शास्त्रोंमे जो कुछ कहा है, उसको समझकर, तदनुसार इस लोकमें कर्म करना उचित है। (२४)

भीष्मपर्वमें चालीस अध्याय समाप्त।
भगवद्गीतामें सोलह अध्याय समाप्त। [१४०८]

तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच– त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ २ ॥

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ ३ ॥

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्चाऽन्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवाऽन्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान ॥ ६ ॥

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः॥ ८ ॥
कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥
यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चाऽमेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥
अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्विकः ॥ ११ ॥
अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १२ ॥
विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥
देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।

भी सुनो। (७) जिस आहारसे मनुष्यकी आयु, सत्त्व, सामर्थ्य, आरोग्य, चित्तकी प्रसन्नता, सुख और प्रीति आदिकी बढती हो, जो आहार रसीला, चिकना, बहुत काल तक गुण करने वाला मनभावना हो ऐसा आहार सत्वगुणी पुरुषोंका प्यारा होता है। (८) जो बहुत कडवा, तीखा, खारा और अत्यन्त कसैला आहार दुःख, शोक और रोग बढानेवाला होता है वह राजसी प्रकृतिके मनुष्योंको प्यारा है। (९) जिस अन्नको पाक हुए एक पहर काल बीत गया हो; जिसका स्वाद जाता रहे; जो बासी और दुर्गन्धसे युक्त हो, जूठा, और खानेके योग्य न हो; इस प्रकारका भोजन तमोगुणी पुरुषोंको प्यारा होता है। (१०) हे अर्जुन ! फलकी आकांक्षाको त्याग कर मनकी एकाग्रतासे शास्त्रकी आज्ञाओंको मान कर जो यज्ञका अनुष्ठान किया जाता है, उसे सात्विक यज्ञ कहते हैं। (११) हे भारत ! जो फलका आसरा करके दम्भ अर्थात् ऐश्वर्यको दिखलानेके वास्ते यज्ञ करते हैं, उसे राजसी यज्ञ कहते हैं। (१२) जो यज्ञ शास्त्रकी विधिसे पूरा नहीं होता, जिसमें ब्राह्मणोंके निमित्त अन्न सामग्री नहीं लगती, जो यज्ञ मन्त्र, दक्षिणा और श्रद्धासे रहित होता है, उसे पण्डित लोग तामसी यज्ञ कहते हैं। (१३) देवता, ब्राह्मण, गुरु, और ज्ञानियोंकी पूजा, पवित्रता, सीधापन, ब्रह्मचर्य और अहिंसा इन सबोंका अनुष्ठान शरीर

दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ २१ ॥
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥
ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ २३ ॥
तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः ।
प्रवर्त्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ २४ ॥
तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः ।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकांक्षिभिः॥ २५ ॥
सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ २६ ॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाऽभिधीयते ॥ २७ ॥
अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।

से, दुःख पूर्वक और क्लेशसे जो दान दिया जाता है, उसे राजसी दान कहते हैं। (२१) अपवित्र स्थानमें, अशुभ कालमें, मूर्ख और दुराचारी आदिको एवं विना सत्कार और अनादर पूर्वक जो दान दिया जाता है, उसे तामसी दान कहते है। (२२) ॐ तत् सत् यों तीन प्रकारसे शास्त्रमें ब्रह्मका निर्देश किया जाता है; उन्हींसे जगत्मे पहिले पहल वेद ब्राह्मण, और यज्ञकी रचना की है; (२३) इसी कारणसे ब्रह्मवादी लोग सब समय "प्रणव" का उच्चारण करते हुए दान तपस्या और शास्त्रमें कहे हुए कर्मोका अनुष्ठान करते है। (२४) तत् इस शब्दका उच्चारण करते हुए इच्छारहित फलकी कामनाओंको त्यागनेवाले तथा मुक्तिकी इच्छावाले भांति भांतिके यज्ञ दान तप आदि कर्मोंको करते है। (२५) हे अर्जुन! अस्तित्व, साधुता अर्थात् भली भावनाके लिये और प्रशस्त कर्मके लिये, सत् शब्दका प्रयोग किया जाता है। (२६) यज्ञ दान तपस्या में स्थिति अर्थात् स्थिर भावना रखने को भी सत् कहते है, तथा इनके निमित्त किये हुए कर्मोंमें भी सत् शब्द कहा जाता है; (२७) हे अर्जुन! होम, दान, तपस्या और उनसे पृथक् जो कर्म श्रद्धा रहित किये जाते है, वे सब असत् कहाते है; क्योंकि वे कर्म निष्प्रयोजन

नियतस्य तु संन्यासः कर्मणो नोपपद्यते।
मोहात्तस्य परित्यागस्तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥
दुःखमित्येव यत्कर्म कायक्लेशभयात्त्यजेत्।
स कृत्वा राजसं त्यागं नैव त्यागफलं लभेत् ॥ ८ ॥
कार्यमित्येव यत्कर्म नियतं क्रियतेऽर्जुन।
सङ्गं त्यक्त्वा फलं चैव स त्यागः सात्विको मतः ॥९॥
न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशले नाऽनुषज्जते।
त्यागी सत्त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ १० ॥
न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥
अनिष्टमिष्टं मिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलम्।
भवत्यत्यागिनां प्रेत्य न तु संन्यासिनां क्वचित् ॥ १२ ॥
पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे।

छोडकर इन कर्मोंको करना चाहिये;यह मेरे मतका पक्का निश्चय है। (६) जो कर्म (स्वधर्म के अनुसार) नियत अर्थात् स्थिरकर दिये है, उन कर्मो को कभी न छोडना चाहिये,जब मोहसे उनका त्याग होता है, तब उस त्यागको तामसी त्याग कहते है। (७) शरीर के क्लेशके भयसे जिस कर्मको दुःखका कारण जानके त्याग किया जाता है, उसे राजसी त्याग कहते है, जो इस प्रकारसे कर्मका त्याग करते है, वह त्यागका फल नहीं पाते। (८) हे अर्जुन! यह कर्म अवश्य कर्तव्य है, ऐसा विचारकर जो सङ्ग और कर्मफलको त्याग कर नियत कर्म किया जाता है, इस प्रकारके त्याग को सात्विकी त्याग कहते है। (९) जो त्यागी और सत्वगुणसे युक्त बुद्धिमान् संशय रहित पुरुष है, वह अकुशल अर्थात् अकल्याणकारक कर्मका द्वेष नहीं करता और कुशल अर्थात् कल्याण कारक अथवा हितकारी कर्मों में आसक्ति नहीं रखता है।१० जो देहधारी है,वह संपूर्ण कर्म का त्याग नहीं कर सकता इससे जो कर्म का अनुष्टान करता हुआ कर्मके फलको त्याग देता है, उसको ही यथार्थ त्यागी कहा जाता है। (११) अच्छे और बुरे तथा इन दोनोंसे मिले हुए कर्मके फल तीन प्रकारसे प्रसिद्ध है; वह सब अत्यागी (कर्मके फलोंको न त्यागनेवाले) स काम कर्म करनेवालोंको मृत्युके अनन्तर मिलते है। परन्तु संन्यासी अर्थात् कर्म के फलके त्यागीको नहीं मिलने अर्थात्

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
अविभक्तं विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम् ॥२०॥
पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम् ॥ २१ ॥
यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन्कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम् ॥ २२ ॥
नियतं सङ्गरहितमरागद्वेषतः कृतम्।
अफलप्रेप्सुना कर्म यत्तत्सात्विकमुच्यते ॥ २३ ॥
यत्तु कामेप्सुना कर्म साहङ्कारेण वा पुनः।
क्रियते बहुलायासं तद्राजसमुदाहृतम् ॥ २४ ॥
अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम्।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥
मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्त्ता सात्विक उच्यते ॥२६॥
रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः।

मालूम होता है, कि भिन्न भिन्न सब प्राणियों में एकही अविभक्त और अव्यय भाव अर्थात् तत्त्व है, उसे ही सात्विक ज्ञान जानना चाहिये। (२०) जिस ज्ञानसे भिन्नत्व ज्ञात होता है, कि सब प्राणियों में अनेक प्रकारके भिन्न भिन्न भाव है, उसे राजस ज्ञान कहते है। (२१) परन्तु जो निष्कारण और तत्त्वार्थको विना जाने बूझे एकही बात में यह समझकर आसक्त रहता है, कि यही सब कुछ है. वह अल्पज्ञान तामस कहा गया है। (२२) आसक्ति, फलकी कामना और राग. द्वेषको त्याग कर अवश्यकरणीय नियत जो कर्म किया जाता है,उसी कर्मको सात्विक कर्म कहते हैं। (२३) जो कर्म सकाम और अहङ्कारपूर्वक बहुत क्लेश और दुःख से किया जाता है; उसे राजस कर्म कहते हैं। (२४) जो कर्म करनेके पीछे होनेवाला परिणाम, क्षय, दूसरेकी पीडा और अपने आत्माके सामर्थ्य को विना विचारे केवल मोहसे किया जाता है,उसे तामसी कर्म कहते हैं। (२५) आसक्तिको त्यागनेवाला विना अभिमानके वचन बोलनेवाला, धीरज और उत्साह से भरा हुआ, कर्मके पूरा होने और अधूरा रहनेमें सुखी, दुःखी न हो,-इस प्रकारके कर्त्ताको पण्डितोंने सत्त्वगुणी

हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥
अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैकृतिकोऽलसः ।
विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥
बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ।
प्रोच्यमानमशेषेण पृथक्त्वेन धनञ्जय ॥ २९ ॥
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये ।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विकी ॥ ३० ॥
यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाऽकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी ॥ ३१ ॥
अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसाऽऽवृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥ ३२ ॥
धृत्या यया धारयते मनःप्राणेन्द्रियक्रियाः ।

योगेनाऽव्यभिचारिण्या धृतिः सा पार्थ सात्विकी ॥३३॥
यया तु धर्मकामार्थान्धृत्या धारयतेऽर्जुन।
प्रसङ्गेन फलाकांक्षी धृतिः सा पार्थ राजसी ॥ ३४ ॥
यया स्वप्नं भयं शोकं विषादं मदमेव च।
न विमुञ्चति दुर्मेधा धृतिः सा पार्थ तामसी ॥ ३५ ॥
सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।
अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति ॥ ३६ ॥
यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥ ३७ ॥
विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥ ३८ ॥
यदग्रे चाऽनुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ ३९ ॥
न तदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः।
सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्यात्त्रिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

के निमित्त मन, प्राण और इन्द्रियोंकी क्रियाका कर्मफल त्यागरूपी योगके द्वारा नियमित रूपसे निर्वाह होता है, वह धारणा सत्वगुणी है।(३३)हे पृथापुत्र! जिस धारणा शक्ति से मनुष्य धर्म, अर्थ और कामको धारण करके कभी परित्याग नहीं करते, और अहङ्कार पूर्वक फल चाहते हैं, वह रजोगुणी धृति है। (३४) जिससे दुर्बुद्धिसे युक्त होकर मनुष्य स्वप्न, भय, शोक, मद तथा पछतावा नहीं छोड़ते उस धृतिको तामसी कहते हैं। (३५) हे भरतर्षभ! तुम तीन प्रकारके सुखोंको मुझसे सुनो। जिसमें अभ्यास करनेसे मन रम जाता है, और दुःख समाप्त होजाता है। (३६) जो पहिले विषकी भांति और पीछे अमृतके समान हो, जो आत्म निष्ठ बुद्धिकी प्रसन्नतासे उत्पन्न होता है, वह सुख सत्वगुणी कहाता है। (३७) जो सुख इन्द्रिय और विषयोंके संयोगसे पहले अमृतके तुल्य पीछे विषके समान दुःखदायी होता है, उसे राजस-सुख कहते हैं। (३८) जो सुख आदि और अन्तमें भी मन और बुद्धिको मोहमें डालता है, जो निद्रा, आलस्य और प्रमाद आदिसे उत्पन्न होता है; उसको तामस सुख कहते हैं। (३९) मनुष्य लोक, आकाश अथवा स्वर्ग लोकमें भी कोई प्राणी ऐसा नहीं है, कि जो

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारम्भा हि दोषेण धूमेनाऽग्निरिवाऽऽवृताः ॥ ४८ ॥
असक्तबुद्धिः सर्वत्र जितात्मा विगतस्पृहः ।
नैष्कर्म्यसिद्धिं परमां संन्यासेनाऽधिगच्छति ॥ ४९ ॥
सिद्धिं प्राप्तो यथा ब्रह्म तथाऽऽप्नोति निबोध मे ।
समासेनैव कौन्तेय निष्ठा ज्ञानस्य या परा ॥ ५० ॥
बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्याऽऽत्मानं नियम्य च ।
शब्दादीन्विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च ॥५१॥
विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः ।
ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥
अहङ्कारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहम् ।
विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥ ५४ ॥

करनेवाला है, क्योंकि ऊपर कहे हुए स्वाभाविक धर्मके करनेमे मनुष्य पाप-ग्रस्त नहीं होता । (४७) हे कुन्तीनन्दन ! अपनी जातिके कर्मको दोषयुक्त होनेपर भी कभी न छोडना चाहिये, क्योंकि धुएंमे ढकी हुई अग्निकी भांति सब कर्मोंमें कुछ न कुछ दोष है। (४८) अत एव कहीं भी आसक्ति न रख कर, मन को अपने वशमें करके निष्काम बुद्धिसे चलने पर (कर्मफल) के सन्यास द्वारा परम नैष्कर्म्य सिद्धि प्राप्त हो जाती है। (४९) हे अर्जुन ! वे ही सिद्धिको पाये हुए मनुष्य ज्ञानकी परा निष्ठा पर ब्रह्मको पाते हैं; वे जिस प्रकारसे ब्रह्मको प्राप्त करते हैं, वह तुम संक्षेपसे मुझसे सुनो । (५०) शुद्ध बुद्धिसे युक्त होकर धैर्यसे आत्मसंयमन कर, शब्द आदि (इंद्रियोंके) विषयोंको छोडकरके, प्रीति और द्वेष को दूर कर, (५१) एकान्तमें रहकर परिमित भोजन, वाक् संयम, शरीरको वशमें करना, चित्तकी स्थिरता, और ध्यानयोगमें तत्पर और वैराग्य से युक्त हो कर । (५२) अहङ्कार, बल, दर्प, काम, क्रोध, परिग्रह आदिको छोडकर परम शान्तिपद पाकर ब्रह्मभूत होनेके लिये योग्य होजाता है । (५३) ब्रह्ममें वास करने योग्य पुरुष प्रसन्नचित्त होकर नष्ट हुई वस्तुओंका सोच नहीं करते; अनमिली चीजोंकी इच्छा नहीं करते; वह सब

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ॥६२॥
इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥
सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम् ॥ ६४ ॥
मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यासि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ ६५ ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६६॥
इदं ते नाऽतपस्काय नाऽभक्ताय कदाचन ।
न चाऽशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ॥६७॥
य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८ ॥

(जीवोंको) कठपुतलीकी भांति घुमाता है। (६१) हे भारत! तुम सर्वभावसे उसीके शरणमें जाओ, जिसकी कृपासे परम शान्ति,तथा शाश्वत नाशरहित,स्थानको पाओगे। (६२) इस गुह्यसे भी गुह्य ज्ञानको मैंने तुमसे कहा है, इसको भली भान्तिसे विचार करके जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा कर्म करो। (६३) हे अर्जुन ! सब गुह्य विषयोंसे भी परम गुह्य मेरी अन्तकी एक बात तुम फिर सुनो, क्योंकि तुम मेरे अत्यंत प्यारे हो, इस निमित्त तुमसे यह हितका वचन कहता हूं। (६४) तुम मुझमें मन लगाओ, मेरे भक्त बनो, मेरी पूजा और यज्ञ करो और मुझको प्रणाम करो; ऐसा करनेसे तुम मुझे पाओगे, इसमें कुछ सन्देह न करना। तुम मेरे प्यारे हो, इस निमित्त मैं तुमसे यह सच्ची प्रतिज्ञा करके कहता हूं। (६५) तुम सब कर्मोंको त्याग कर केवल मेरी ही शरणमें आओ, मैं तुमको सब पापोंसे छुडा दूंगा,कुछ सोच मत करो। (६६) तपस्या हीन,भक्ति हीन,आज्ञा न माननेवाले और मेरी निन्दा करनेवाले पुरुषोंको तुम कभी उस गुह्य का उपदेश न करना। (६७) जो मेरे भक्तोंमें इस उत्तम गुह्यको कहेंगे, वे मुझमें परम भक्ति करके निःसन्देह मुझको पावेंगे, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। (६८) जो मेरे भक्तोंके निकट

राजन्संस्मृत्य संस्मृत्य संवादमिममद्भुतम्।
केशवार्जुनयोः पुण्यं हृष्यामि च मुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥
तच्च संस्मृत्य संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः।
विस्मयो मे महान्राजन्हृष्यामि च पुनः पुनः ॥ ७७ ॥
यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥ [१५१४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सन्यासयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥
पर्वणि तु द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ समाप्तं भगवद्गीतापर्व।

की कृपासे अपनी कानोंसे सुना। (७५) मैं कृष्ण और अर्जुनके पुण्य देनेवाले संवादको स्मरण कर करके बारंबार प्रसन्न और हर्षित होता हूं। ७६ हे राजन् धृतराष्ट्र! हरिके उस परम अद्भुत रूपको बार बार स्मरण करके मुझे बहुत ही आश्चर्य होता है तथा मेरे शरीरके रोंएं खडे हुए जाते हैं। (७७) हे राजन्! जहां पर परम योगीश्वर श्रीकृष्ण और महाधनुर्द्धारी अर्जुन हैं, वहीं निश्चय करके राजलक्ष्मी, विजय, शाश्वत ऐश्वर्य और उत्तम नीति भी निवास करती है, यही मेरे विचारमें दृढ निश्चय है। (७८) [१५१४]

भीष्मपर्वमें बियालिस अध्याय समाप्त।

भगवद्गीतामें अठारह अध्याय समाप्त।

भगवद्गीतापर्व समाप्त।

अथ भीष्मवधपर्व ।

वैशम्पायन उवाच– गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रसंग्रहैः ।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥ १ ॥
सर्वशास्त्रमयी गीता सर्वदेवमयो हरिः ।
सर्वतीर्थमयी गङ्गा सर्ववेदमयो मनुः ॥ २ ॥
गीता गङ्गा च गायत्री गोविन्देति हृदि स्थिते ।
चतुर्गकारसंयुक्ते पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ३ ॥
षट्शतानि सविंशानि श्लोकानां प्राह केशवः ।
अर्जुनः सप्तपञ्चाशत्सप्तषष्टिं तु सञ्जयः ॥ ४ ॥
धृतराष्ट्रः श्लोकमेकं गीताया मानमुच्यते ।
भारतामृतसर्वस्वगीताया मथितस्य च ॥
सारमुद्धृत्य कृष्णेन अर्जुनस्य मुखे हुतम् ॥ ५ ॥
सञ्जय उवाच— ततो धनञ्जयं दृष्ट्वा बाणगाण्डीवधारिणम् ।
पुनरेव महानादं व्यसृजन्त महारथाः ॥ ६ ॥
पाण्डवाः सोमकाश्चैव ये चैषामनुयायिनः ।
दध्मुश्च मुदिताः शङ्खान्वीराः सागरसम्भवान् ॥ ७ ॥

ततो भेर्यश्च पेशयश्च क्रकचा गोविषाणिकाः ।
सहसैवाऽभ्यहन्यन्त ततः शब्दो महानभूत् ॥ ८ ॥
तथा देवाः सगन्धर्वाः पितरश्च जनाधिप ।
सिद्धचारणसङ्घाश्च समीयुस्ते दिदृक्षया ॥ ९ ॥
ऋषयश्च महाभागाः पुरस्कृत्य शतक्रतुम् ।
समीयुस्तत्र सहिता द्रष्टुं तद्वैशसं महत् ॥ १० ॥
ततो युधिष्ठिरो दृष्ट्वा युद्धाय समवस्थिते ।
ते सेने सागरप्रख्ये मुहुः प्रचलिते नृप ॥ ११ ॥
विमुच्य कवचं वीरो निक्षिप्य च वरायुधम् ।
अवरुह्य रथात्क्षिप्रं पद्भ्यामेव कृताञ्जलिः ॥ १२ ॥
पितामहमभिप्रेक्ष्य धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
वाग्यतः प्रययौ येन प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम्॥ १३ ॥
तं प्रयान्तमभिप्रेक्ष्य कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
अवतीर्य रथात्तूर्णं भ्रातृभिः सहितोऽन्वयात् ॥ १४ ॥
वासुदेवश्च भगवान्पृष्ठतोऽनुजगाम तम् ।

पृथक् होकर समुद्रमें उत्पन्न हुए अपने अपने शङ्ख बजाने लगे॥ अनन्तर शंख भेरी, नगाडे, काहली, क्रकच, गोश्रृंग आदि सब बाजे अत्यन्त वेगसे बजने लगे, उससे महा तुमुल शब्द उत्पन्न होने लगा ॥ (६-८)

हे प्रजानाथ ! अनन्तर देवता, गन्धर्व, पितर, सिद्ध और चारण गण युद्ध देखनेकी इच्छासे विमानों पर चढके आकाशमें आये॥ और महाभाग ऋषि मिल इन्द्रको आगे करके उस महाहत्याकी लीला देखनेके निमित्त आकाशमें विमानोंपर आके इकट्ठे हुए॥ (९-१०)

इसके अनन्तर धीरज धारण करने वाले धर्मराज वीर युधिष्ठिरने उन समुद्रकी तरह दोनों ओरकी सेनाओंको युद्धके निमित्त तैयार और बार बार आगे बढती हुई देख कवच उतारके अपने धनुषको फेंक दिया, फिर अपने रथसे शीघ्रताके साथ उतर कर पितामह भीष्मकी ओर देखते हुए चुपचाप दोनों हाथ जोडके शत्रुओंकी ओर पूर्व दिशाको पैदल ही जाने लगे॥ कुन्ती पुत्र धनञ्जय महाराज युधिष्ठिरको जाते हुए देख कर रथसे शीघ्र ही उतरे और धर्मराज जिस मार्गसे जारहे थे, उसी मार्गमें भाइयोंके सहित उनके पश्चाद्गामी हुए॥ हे राजन ! श्रीकृष्ण

तथा मुख्याश्च राजानस्तच्चित्ता जग्मुरुत्सुकाः ॥ १५ ॥

अर्जुन उवाच– किं ते व्यवसितं राजन्यदस्मानपहाय वै ।
पद्भ्यामेव प्रयातोऽसि प्राङ्मुखो रिपुवाहिनीम् ॥१६॥

भीमसेन उवाच– क्व गमिष्यसि राजेन्द्र निक्षिप्तकवचायुधः ।
दंशितेष्वरिसैन्येषु भ्रातॄनुत्सृज्य पार्थिव ॥ १७ ॥

नकुल उवाच— एवं गते त्वयि ज्येष्ठे मम भ्रातरि भारत ।
भीर्मे दुनोति हृदयं ब्रूहि गन्ता भवान्क्व नु ॥ १८ ॥

सहदेव उवाच— अस्मिन्रणसमूहे वै वर्तमाने महाभये ।
उत्सृज्य क्व नु गन्तासि शत्रूनभिमुखो नृप ॥ १९ ॥

सञ्जय उवाच— एवमाभाष्यमाणोऽपि भ्रातृभिः कुरुनन्दनः ।
नोवाच वाग्यतः किञ्चिद्गच्छत्येव युधिष्ठिरः ॥ २० ॥
तानुवाच महाप्राज्ञो वासुदेवो महामनाः ।
अभिप्रायोऽस्य विज्ञातो मयेति प्रहसन्निव ॥ २१ ॥
एष भीष्मं तथा द्रोणं गौतमं शल्यमेव च ।

चन्द्रजी भी उनके पीछे चले। अन्य राजा लोग भी कौतुक देखनेको उनके पीछे चले ॥ (११-१५)

अनन्तर अर्जुन धर्मराजको पुकारके बोले, हे राजन् ! आप यह क्या कार्य करते हैं ? आप हम लोगोंको छोड कर शत्रुओंकी सेनाकी तरफ पूर्व दिशामें पैदल ही क्यों चले जाते है ? (१६)

भीमसेन बोले, हे पार्थिव राजेन्द्र ! आप कवच और शस्त्रोंको फेंक कर और भाइयोंको भी त्याग कर युद्धके निमित्त खडी हुई शत्रुओंकी सेनाकी ओर कहां जायंगे ? (१७)

नकुल बोले, हे भरतनन्दन ! आप हम लोगोंके ज्येष्ठ भ्राता हैं आपको इस समय ऐसे भावसे गमन करते देख कर हम लोगोंका हृदय भयसे दुःखी हो रहा है, आप कहिये, कि कहां जायंगे। (१८)

सहदेव बोले, हे राजन् ! युद्ध करनेके वास्ते इस भयानक रण-समूहके (सेनाके) इकट्ठा होने पर आप शत्रुओंकी ओर कहां चले जाते हैं ? (१९)

सञ्जय बोले, हे कुरुनन्दन ! मौनावलम्बी राजा युधिष्ठिर भाइयोंके इस प्रकार बार बार पूछने पर कुछ भी उत्तर न देकर आगे ही बढने लगे ॥ महाबुद्धिमान्, महा-मना श्रीकृष्णचन्द्रजी हंसते हुए अर्जुन आदि सबसे कहने लगे, कि इनका अभिप्राय मुझे मालूम है ॥ ये भीष्म, द्रोणाचार्य , कृपाचार्य

अनुमान्य गुरून्सर्वान्योत्स्यते पार्थिवोऽरिभिः॥ २२॥
श्रूयते हि पुराकल्पे गुरूननुमान्य यः ।
युद्ध्यते स भवेद्व्यक्तमपध्यातो महत्तरैः ॥ २३ ॥
अनुमान्य यथाशास्त्रं यस्तु युद्ध्येन्महत्तरैः ।
ध्रुवस्तस्य जयो युद्धे भवेदिति मतिर्मम ॥ २४ ॥
एवं ब्रुवति कृष्णेऽत्र धार्त्तराष्ट्रचमूं प्रति ।
हाहाकारो महानासीन्निःशब्दास्त्वपरेऽभवन् ॥ २५ ॥
दृष्ट्वा युधिष्ठिरं दूराद्धार्त्तराष्ट्रस्य सैनिकाः ।
मिथः सङ्कथयाञ्चक्रुरेषो हि कुलपांसनः ॥ २६ ॥
व्यक्तं भीत इवाऽभ्येति राजाऽसौ भीष्ममान्तिकम् ।
युधिष्ठिरः ससोदर्यः शरणार्थं प्रयाचकः ॥ २७ ॥
धनञ्जये कथं नाथे पाण्डवे च वृकोदरे ।
नकुले सहदेवे च भीतिरभ्येति पाण्डवम् ॥ २८ ॥
न नूनं क्षत्रियकुले जातः सम्प्रथिते भुवि ।
यथाऽस्य हृदयं भीतमल्पसत्वस्य संयुगे ॥ २९ ॥

और शल्य आदिक समस्त गुरु जनोंके निकट जाकर उनसे युद्ध करनेको अनुमति लेंगे और उनकी आज्ञानुसार शत्रुओंसे युद्ध करेंगे। (२०-२२)

मैंने पुराने इतिहासोंको सुना है, कि जो मनुष्य गुरुजनोंकी अनुमति न लेकर युद्ध करता है, वह गुरुजनोंसे अनुगृहीत न होनेके कारण सफल भागी नहीं होता। परन्तु जो मनुष्य गुरुजनोंकी अनुमति लेकर गुरु वृद्ध आदिकोंके सङ्ग शास्त्रके अनुसार युद्ध करता है वह निश्चय विजयी होता है, यही मेरा मत है। (२३-२४)

कृष्णके ऐसा कहने पर कौरवी सेनामें महा हाहाकार शब्द होने लगा, कितने ही निःशब्द होकर खडे रहे॥ धृतराष्ट्रके पक्षवाले कितने ही निठुर सेनाके पुरुष युधिष्ठिरको इस प्रकार जाते हुए देख कर आपसमें कहने लगे, कि देखो यह कुलपांसन युधिष्ठिर यथार्थमें भयभीत होकर भीष्मके पास जारहा है। यह राजा भाइयोंके सहित शरणके निमित्त याचना करने आता है॥ (२५-२७)

पाण्डुपुत्र अर्जुन, भीम, नकुल और सहदेवकी सहायता पाने पर भी युधिष्ठिर किस कारणसे भयभीत होकर यहां आरहा है?॥ इस अल्प पुरुषार्थी युधिष्ठिरका अन्तःकरण जब युद्धके भयसे

ततस्ते सैनिकाः सर्वे प्रशंसन्ति स्म कौरवान् ।
हृष्टाः सुमनसो भूत्वा चैलानि दुधुवुश्च ह ॥ ३० ॥
व्यनिन्दंश्च तथा सर्वे योधास्तव विशाम्पते ।
युधिष्ठिरं समोदर्य सहितं केशवेन हि ॥ ३१ ॥
ततस्तत्कौरवं सैन्यं धिक्कृत्वा तु युधिष्ठिरम् ।
निःशब्दमभवत्तूर्णं पुनरेव विशाम्पते ॥ ३२ ॥
किं नु वक्ष्यति राजाऽसौ किं भीष्मः प्रतिवक्ष्यति ।
किं भीमः समरश्लाघी किं नु कृष्णार्जुनाविति ॥ ३३ ॥
विवक्षितं किमस्येति संशयः सुमहानभूत् ।
उभयोः सेनयो राजन्युधिष्ठिरकृते तदा ॥ ३४ ॥
सोऽवगाह्य चमूं शत्रोः शरशक्तिसमाकुलाम् ।
भीष्ममेवाऽभ्ययात्तूर्णं भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ३५ ॥
तमुवाच ततः पादौ कराभ्यां पीड्य पाण्डवः ।
भीष्मं शान्तनवं राजा युद्धाय समुपस्थितम् ॥ ३६ ॥
युधिष्ठिर उवाच—आमन्त्रये त्वां दुर्धर्ष त्वया योत्स्यामहे सह ।

व्याकुल हुआ है, तब पृथ्वीमें विख्यात यह युधिष्ठिर निश्चय ही क्षत्रियकुलमें नहीं जन्मा है ॥ (२८–२९)

इसके अनन्तर सम्पूर्ण सैनिक पुरुष अलग अलग कौरवोंकी प्रशंसा करने लगे और पुलकित होकर स्वच्छन्दचित्तसे अपने उत्तरीय वस्त्रोंको कम्पित करने लगे॥ हे नरनाथ! इसके अनन्तर तेरे सब वीर लोग कृष्ण और भाइयोंके सहित राजा युधिष्ठिरकी निन्दा करने लगे॥ हे नरेन्द्र! फिर कौरवी सेनाके वीर लोग राजा युधिष्ठिरको धिक्कार देकर ही सन्नाटा खींचके चुप होगये, क्योंकि राजा युधिष्ठिर भीष्मसे क्या कहेंगे और भीष्म उसको क्या उत्तर देंगे, युद्धमें प्रशंसित भीमसेन क्या कहेंगे और कृष्ण तथा अर्जुन ही क्या वचन कहेंगे; तथा युधिष्ठिरके बोलने योग्य क्या विषय है। युधिष्ठिरके निमित्त दोनों ओरकी सेनाओंमें इस प्रकारका बहुत सा संशय उत्पन्न हुआ था॥ (३०–३४)

महाराज युधिष्ठिर भाइयोंसे घिरे हुए शर और शक्तिसे युक्त शत्रुओंकी सेनामें प्रविष्ट होकर शीघ्र भीष्मके समीप जा पहुंचे, और युद्ध करनेके निमित्त उद्यत शान्तनुपुत्र भीष्मके दोनों चरणोंको अपने हाथोंसे पकड कर उनसे बोले। (३५–३६)

अनुजानीहि मां तात आशिषश्च प्रयोजय ॥ ३७ ॥

भीष्म उवाच— यद्येवं नाऽभिगच्छेथा युधि मां पृथिवीपते।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय भारत ॥ ३८ ॥
प्रीतोऽहं पुत्र युध्यस्व जयमाप्नुहि पाण्डव।
यत्तेऽभिलषितं चाऽन्यत्तदवाप्नुहि संयुगे ॥ ३९ ॥
व्रियतां च वरः पार्थ किमस्मत्तोऽभिकांक्षसि।
एवङ्गते महाराज न तवाऽस्ति पराजयः ॥ ४० ॥
अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ४१ ॥
अतस्त्वां क्लीबवद्वाक्यं ब्रवीमि कुरुनन्दन।
भृतोऽस्म्यर्थेन कौरव्य युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥ ४२ ॥

युधिष्ठिर उवाच—मन्त्रयस्व महाबाहो हितैषी मम नित्यशः।
युध्यस्व कौरवस्याऽर्थे ममैष सततं वरः ॥ ४३ ॥

भीष्म उवाच— राजन्किमत्र साह्यं ते करोमि कुरुनन्दन।

कामं योत्स्ये परस्याऽर्थे ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥ ४४ ॥

युधिष्ठिर उवाच—कथं जयेयं संग्रामे भवन्तमपराजितम्।
एतन्मे मन्त्रय हितं यदि श्रेयः प्रपश्यसि ॥ ४५ ॥

भीष्म उवाच— नैनं पश्यामि कौन्तेय यो मां युध्यन्तमाहवे।
विजयेत पुमान्कश्चित्साक्षादपि शतक्रतुः ॥ ४६ ॥

युधिष्ठिर उवाच—हन्त पृच्छामि तस्मात्त्वां पितामह नमोऽस्तु ते।
वधोपायं ब्रवीहि त्वमात्मनः समरे परैः ॥ ४७ ॥

भीष्म उवाच— न स्म तं तात पश्यामि समरे यो जयेत माम्।
न तावन्मृत्युकालोऽपि पुनरागमनं कुरु ॥ ४८ ॥

सञ्जय उवाच— ततो युधिष्ठिरो वाक्यं भीष्मस्य कुरुनन्दन।
शिरसा प्रतिजग्राह भूयस्तमभिवाद्य च ॥ ४९ ॥
प्रायात्पुनर्महाबाहुराचार्यस्य रथं प्रति।
पश्यतां सर्वसैन्यानां मध्येन भ्रातृभिः सह ॥ ५० ॥

कौरवोंके पक्षमे हम इच्छानुसार ही युद्ध करेंगे, अतएव हम तुम्हारी क्या सहायता करें? तुम्हारी जो कुछ कहनेकी इच्छा हो, वह प्रकट करो॥ (४४)

युधिष्ठिर बोले, आप युद्धमें अपराजित हैं, मै आपके निकट किस प्रकारसे युद्धमें विजयी हो सकूंगा, इस विषयमे आप यदि मेरा हितकर और कल्याणका मार्ग कुछ देखते हो, तो उसको विचार करके कहिये॥ (४५)

भीष्म बोले, हे कुन्तीनन्दन! मुझे संग्राममें युद्ध करते हुए जो कोई पुरुष पराजित करे ऐसा वीर मै किसीको भी नहीं देखता; साक्षात् इन्द्र भी युद्धमे मुझको नहीं जीत सकेंगे॥ (४६)

युधिष्ठिर बोले, हे पितामह! मै आपको प्रणाम करता हूं, मै इसी कारणसे आपसे पूछता हूं, कि आप युद्धमें शत्रुओंके द्वारा किस प्रकारसे मारे जायंगे, उसका उपाय कहिये॥ (४७)

भीष्म बोले हे तात! युद्धमें मुझे कोई जीत ले, ऐसा मै किसीको नहीं देखता और अभी मेरा मृत्युकाल भी नहीं आया है, इससे तुम फिर एक बेर मेरे पास आना॥ (४८)

सञ्जय बोले, हे कुरुनन्दन! अनन्तर महाबाहु युधिष्ठिर भीष्मकी वही बात सिरपर चढाके और उनको फिर प्रणाम करके॥ भाइयोंके सहित सब सेनाके सम्मुख होकर तथा सेनाके बीचमें गमन करते हुए द्रोणाचार्यके रथकी ओर चले॥ (४९—५०)

स द्रोणमभिवाद्याऽथ कृत्वा चाऽभिप्रदक्षिणम् ।
उवाच राजा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं वचः ॥ ५१ ॥
आमन्त्रये त्वां भगवन्योत्स्ये विगतकल्मषः ।
कथं जये रिपून्सर्वाननुज्ञातस्त्वया द्विज ॥ ५२ ॥
द्रोण उवाच— यदि मां नाऽभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय सर्वशः ॥ ५३ ॥
तद्युधिष्ठिर तुष्टोऽस्मि पूजितश्च त्वयाऽनघ ।
अनुजानामि युध्यस्व विजयं समवाप्नुहि ॥ ५४ ॥
करवाणि च ते कामं ब्रूहि त्वमभिकांक्षितम् ।
एवंगते महाराज युद्धादन्यत्किमिच्छसि ॥ ५५ ॥
अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।
इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ५६ ॥
ब्रवीम्येतत्क्लीबवत्त्वां युद्धादन्यत्किमिच्छसि ।
योत्स्येऽहं कौरवस्याऽर्थे तवाऽऽशास्यो जयो मया ॥ ५७ ॥

महाराज युधिष्ठिरने द्रोणाचार्यके पास जाकर उनकी प्रदक्षिणा और उन्हें प्रणाम किया, पश्चात् अपने कल्याणके निमित्त यह वचन बोले ॥ हे भगवन् द्विजसत्तम ! मैं किस प्रकारसे निर्दोष अन्तःकरणसे युद्ध कर सकूंगा और किस भांतिसे सब शत्रुओंको जीत सकूंगा ? इस विषयमें मैं आपको आमन्त्रण करता हूं, आप मुझे अनुमति दीजिये। ५१-५२

द्रोणाचार्य बोले, हे महाराज ! यदि तुम युद्धके निमित्त कृतनिश्चय होकर मेरे पास न आते, तो मैं तुम्हारे पराभवके हेतु सब तरहसे अभिशाप देता। हे निष्पाप युधिष्ठिर ! मैं तुमसे पूजित होकर तुम्हारे ऊपर सन्तुष्ट हुआ हूं, मैं आपसे अनुज्ञा देता हूं, कि आप युद्ध कीजिये, आप विजय पावेंगे॥ हे! महाराज! आपको जो कुछ कहनेकी इच्छा हो कहिये, मैं उसे पूरी करूंगा। इस उपस्थित समयमें आप युद्धके अतिरिक्त और क्या इच्छा करते हैं? ५३-५५

हे महाराज ! पुरुष अर्थका दास है, और अर्थ किसीका दास नहीं है, यही सत्य है हम लोग अर्थसे कौरवोंके निकट बद्ध हैं, इस लिये क्लीबके समान मैं कहता हूं, कि 'तुम युद्धके अतिरिक्त क्या चाहते हो ?' मैं कौरवोंकी ओरसे युद्ध अवश्य करूंगा, परन्तु आपके जयके निमित्त मैं अन्तःकरणसे प्रार्थना करूंगा। (५६—५७)

युधिष्ठिर उवाच– जयमाशास्व मे ब्रह्मन्मन्त्रयस्व च मद्धितम् ।
युद्ध्यस्व कौरवस्यार्ऽथे वर एष वृतो मया ॥ ५८ ॥

द्रोण उवाच– ध्रुवस्ते विजयो राजन्यस्य मन्त्री हरिस्तव ।
अहं त्वामभिजानामि रणे शत्रून्विमोक्ष्यसे ॥ ५९ ॥
यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जयः ।
युध्यस्व गच्छ कौन्तेय पृच्छ मां किं ब्रवीमि ते ॥ ६० ॥

युधिष्ठिर उवाच– पृच्छामि त्वां द्विजश्रेष्ठ शृणु यन्मेऽभिकांक्षितम् ।
कथं जयेयं संग्रामे भवन्तमपराजितम् ॥ ६१ ॥

द्रोण उवाच— न तेऽस्ति विजयस्तावद्यावद्युद्ध्याम्यहं रणे ।
ममाऽऽशु निधने राजन्यतस्व सह सोदरैः ॥ ६२ ॥

युधिष्ठिर उवाच– हन्त तस्मान्महाबाहो वधोपायं वदाऽऽत्मनः ।
आचार्य प्रणिपत्यैष पृच्छामि त्वां नमोऽस्तु ते ॥ ६३ ॥

द्रोण उवाच— न शत्रुं तात पश्यामि यो मां हन्याद्रथे स्थितम् ।

युधिष्ठिर बोले, हे ब्रह्मन् ! आपके निकट मैं यही प्रार्थना करता हूं, कि आप कौरवोंकी ओरसे युद्ध कीजिये, परन्तु मेरे विषयमें जय,आशीर्वाद और हमारे हित साधनके कार्योंमें मन्त्रणा (सलाह) दिया कीजिये ॥ (५८)

द्रोणाचार्य बोले, हे राजन् ! जब कृष्ण आपके मन्त्री है तब आपका विजय अवश्य होगा; हम भी आपको आशीर्वाद देते है, कि आप शत्रुओंको जीतेंगे ॥ हे कौन्तेय ! जहांपर धर्म है, वहां ही कृष्ण है; और जहांपर कृष्ण हैं, वहां ही विजय है। इससे आप जाइये, युद्धमें प्रवृत्त होइये। इस समय यदि मुझ से कुछ पूछना हो तो पूछो, मै उसका तुमसे उत्तर दूंगा ॥ (५९,– ६०)

युधिष्ठिर बोले, हे द्विज प्रधान! मुझे जो कहनेकी इच्छा है, वह कहता हूं, आप सुनिये; आप युद्धमें अजेय हैं, मैं आपको संग्राममें कैसे जीत सकूंगा?(६१)

द्रोणाचार्य बोले, हे राजन् ! मैं जब तक रणभूमिमें युद्ध करता रहूंगा, तबतक आपके विजयकी सम्भावना नहीं है; इससे आप भाइयोंके सहित शीघ्र ही मेरे मारनेका यत्न कीजियेगा ॥ (६२)

युधिष्ठिर बोले, हे महाबाहु आचार्य! इसी कारणसे मैं आप को नमस्कार करता हू और अत्यन्त दुःखके सहित आपसे पूछता हू, कि आप अपने मरने का उपाय मुझसे कहिये। (६३)

द्रोणाचार्य बोले, हे तात ! मैं रथमें स्थिर होकर उत्साह-पूर्वक बाणोंसे

युध्यमानं सुसंरब्धं शरवर्षौघवर्षिणम् ॥ ६४ ॥
ऋते प्रायगतं राजन्न्यस्तशस्त्रमचेतनम् ।
हन्यान्मां युधि योधानां सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६५ ॥
शस्त्रं चाऽहं रणे जह्यां श्रुत्वा तु महदप्रियम् ।
श्रद्धेयवाक्यात्पुरुषादेतत्सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ६६ ॥
सञ्जय उवाच— एतच्छ्रुत्वा महाराज भारद्वाजस्य धीमतः ।
अनुमान्य तमाचार्यं प्रायाच्छारद्वतं प्रति ॥ ६७ ॥
सोऽभिवाद्य कृपं राजा कृत्वा चाऽपि प्रदक्षिणम् ।
उवाच दुर्धर्षतमं वाक्यं वाक्यविदां वरः ॥ ६८ ॥
अनुमानये त्वां योत्स्येऽहं गुरो विगतकल्मषः ।
जयेयं च रिपून्सर्वाननुज्ञातस्त्वयाऽनघ ॥ ६९ ॥
कृप उवाच— यदि मां नाऽभिगच्छेथा युद्धाय कृतनिश्चयः ।
शपेयं त्वां महाराज पराभावाय सर्वशः ॥ ७० ॥
अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् ।

[illegible] यदि युद्ध करता रहूं, तो दूसरा वध करने वाला कोई नहीं दीखता ॥ इसके अतिरिक्त जब मैं रणभूमिमें इसको परित्याग करके योगमें आसक्त और मरनेके निमित्त निष्ठावान् होकर परमेश्वरके ध्यानमें तत्पर होऊंगा, उस समय कोई अश्वत्थामा भी मुझको मारेगा, वही मेरा वध कर सकेगा। ये सब मैंने तुमसे सत्य ही कहे हैं। जिसके वचनमें श्रद्धा की जाती है, ऐसे मनुष्यके मुखसे अत्यन्त अप्रिय वचन सुनकर मैं रणभूमिमें शस्त्रोंका परित्याग कर सकता हूं, यह भी मैंने तुमसे सच कह दिया ॥ (६४-६६)

सञ्जय बोले, हे महाराज ! राजा युधिष्ठिर बुद्धिमान द्रोणाचार्यके ये सब वचन सुनकर उनको प्रणाम करके शारद्वत कृपाचार्यके निकट पहुंचे ॥ वाक्यविशारद महाराज युधिष्ठिर कृपाचार्यकी प्रदक्षिणा और उनको प्रणाम करके यह वचन बोले ॥ हे विशुद्धात्मन आचार्य ! मैं आपके पास युद्धकी अनुमति चाहता हूं, जिससे निर्दोष अन्तःकरणसे युद्ध कर सकूं और सब शत्रुओंको जीत लूं यही आप मुझे बुद्धि दीजिये और युद्ध करनेकी आज्ञा दीजिये। (६७-६९)

कृपाचार्य बोले, हे महाराज ! यदि आप युद्ध करनेमें कृतनिश्चय होकर मेरे पास न आते तो मैं आपके पराजयके निमित्त सब प्रकारसे अभिशाप देता ॥ है

इति सत्यं महाराज बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ७१ ॥
तेषामर्थे महाराज योद्धव्यमिति मे मतिः ।
अतस्त्वां क्लीववद् ब्रूयां युद्धादन्यत्किमिच्छसि॥ ७२ ॥
युधिष्ठिर उवाच— हन्त पृच्छामि ते तस्मादाचार्य शृणु मे वचः ।
इत्युक्त्वा व्यथितो राजा नोवाच गतचेतनः ॥ ७३ ॥
सञ्जय उवाच— तं गौतमः प्रत्युवाच विज्ञायाऽस्य विवक्षितम् ।
अवध्योऽहं महीपाल युद्ध्यस्व जयमाप्नुहि ॥ ७४ ॥
प्रीतस्तेऽभिगमेनाऽहं जयं तव नराधिप ।
आशासिष्ये सदोत्थाय सत्यमेतद् ब्रवीमि ते ॥ ७५ ॥
एतच्छ्रुत्वा महाराज गौतमस्य विशाम्पते ।
अनुमान्य कृपं राजा प्रययौ येन मद्रराट् ॥ ७६ ॥
स शल्यमभिवाद्याऽथ कृत्वा चाऽभिप्रदक्षिणम् ।
उवाच राजा दुर्धर्षमात्मनिःश्रेयसं वचः ॥ ७७ ॥

महाराज ! पुरुष अर्थका दास है, अर्थ किसीका भी दास नहीं, यह ठीक ही है। मैं अर्थसे कौरवोंके वशीभूत हूं ॥ हे महाराज ! मेरा यह निश्चय है, कि मैं कौरवोंकी ओरसे युद्ध करूंगा; अतएव आपको यह निरर्थक वचन कहना पडता है, कि "युद्धके अतिरिक्त और क्या आप मुझसे चाहते है ?" (७०-७२)

युधिष्ठिर बोले, हे आचार्य ! मैं इसी कारणसे अति दुःखित अन्तःकरणसे आपके निकटमें आकर यह पूछता हूं, आप मेरी बातोंको सुनिये । ऐसा कहके राजा युधिष्ठिर व्यथित और मूर्च्छितसे होगये, और कुछ भी बात न कह सके ॥ (७३)

संजय बोले, कृपाचार्य उनके कहनेका अभिप्राय जान कर बोले, कि हे महाराज ! मुझे कोई नहीं मार सकता, किन्तु आप युद्ध कीजिये, आपका विजय होगा ॥ हे मनुष्योंके राजा ! आप जो मेरे पास आये, इससे मैं आपके ऊपर प्रसन्न हुआ हूं; मैं प्रतिदिन खडा होके आपके जयकी प्रार्थना करूंगा, यह मैं सत्य ही कहता हूं ॥ (७४-७५)

हे महाराज ! इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर गौतमनन्दन कृपाचार्यके वचनोंको सुन कर उन्हें प्रणाम कर वहांसे विदा होकर जहां मद्रराज शल्य थे, वहां पहुंचे ॥ वह प्रतापवान् शल्यके निकट खडे होकर उसकी प्रदक्षिणा की और प्रणाम करके अपने कल्याणके निमित्त यह वचन बोले ॥ हे प्रतापवान्

शल्य उवाच— किमत्र ब्रूहि साह्यं ते करोमि नृपसत्तम ।
कामं योत्स्ये परस्यार्थे बद्धोऽस्म्यर्थेन कौरवैः ॥ ८५ ॥

युधिष्ठिर उवाच—स एव मे वरः शल्य उद्योगे यस्त्वया कृतः ।
सूतपुत्रस्य सङ्ग्रामे कार्यस्तेजोवधस्त्वया ॥ ८६ ॥

शल्य उवाच— सम्पत्स्यत्येष ते कामः कुन्तीपुत्र यथेप्सितम् ।
गच्छ युध्यस्व विश्रब्धः प्रतिजाने वचस्तव ॥ ८७ ॥

सञ्जय उवाच— अनुमान्याऽथ कौन्तेयो मातुलं मद्रकेश्वरम् ।
निर्जगाम महासैन्याद्भ्रातृभिः परिवारितः ॥ ८८ ॥
वासुदेवस्तु राधेयमाहवेऽभिजगाम वै ।
तत एनमुवाचेदं पाण्डवार्थे गदाग्रजः ॥ ८९ ॥
श्रुतं मे कर्ण भीष्मस्य द्वेषात्किल न योत्स्यसे ।
अस्मान्वरय राधेय यावद्भीष्मो न हन्यते ॥ ९० ॥
हते तु भीष्मे राधेय पुनरेष्यासि संयुगम् ।

कीजिये परन्तु मैं आपसे यही मांगता हूं, कि मेरा जिसमें अत्यन्त कल्याण हो, उसीकी आप मन्त्रणा (सलाह) कीजियेगा । (८४)

शल्य बोले, हे नृपसत्तम ! मैं कौरवोंके अर्थसे उनका दास होरहा हूं, इससे मैं इच्छानुसार ही तुम्हारे विरुद्ध युद्ध करूंगा । ऐसे स्थल पर मैं तुम्हारी क्या सहायता करूं; वह मुझसे कहो । (८५)

युधिष्ठिर बोले, हे मातुल ! आपने युद्धके उद्योगके समय स्वीकार किया था, कि संग्रामभूमिमें कर्णके तेजका नाश करूंगा । वही वर मैं आपसे मांगता हूं । (८६)

शल्य बोले, हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर ! तुम्हारी यह अभिलाषा पूरी होगी, जाओ इच्छानुसार युद्ध करो, तुम्हारे विजयका उपाय करना मैंने अङ्गीकार किया । (८७)

संजय बोले, इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर मद्रराजकी अनुमति ले और उन्हें प्रणाम कर भाइयोंके सहित उस महा सेनाके बीचसे बाहर निकले । (८८)

गदाग्रज बलदेवजीके प्रिय भ्राता श्रीकृष्णचन्द्रजी युद्धकी भूमिमें सेनासे अलग राधापुत्र कर्णके निकट गये, और पाण्डवोंके प्रयोजन सिद्ध करनेके निमित्त कर्णको यह वचन बोले ॥ हे कर्ण ! मैंने सुना है, कि तुम भीष्मके द्वेषसे अभी युद्ध न करोगे, इससे जब तक भीष्म नहीं मारे जाते हैं, तब तक तुम हम लोगोंको वरण करो ॥ यदि तुम दोनों ही पक्षको समान जानते हो,

धार्तराष्ट्रस्य साहाय्यं यदि पश्यसि चेत्समम् ॥ ९१ ॥

कर्ण उवाच— न विप्रियं करिष्यामि धार्तराष्ट्रस्य केशव।
त्यक्तप्राणं हि मां विद्धि दुर्योधनहितैषिणम् ॥ ९२ ॥

सञ्जय उवाच— तच्छ्रुत्वा वचनं कृष्णः संन्यवर्तत भारत।
युधिष्ठिरपुरोगैश्च पाण्डवैः सह सङ्गतः ॥ ९३ ॥
अथ सैन्यस्य मध्ये तु प्राक्रोशत्पाण्डवाग्रजः।
योऽस्मान्वृणोति तमहं वरये साह्यकारणात् ॥ ९४ ॥
अथ तान्समभिप्रेक्ष्य युयुत्सुरिदमब्रवीत्।
प्रीतात्मा धर्मराजानं कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥ ९५ ॥
अहं योत्स्यामि भवतः संयुगे धृतराष्ट्रजान्।
युष्मदर्थे महाराज यदि मां वृणुषेऽनघ ॥ ९६ ॥

युधिष्ठिर उवाच—एह्येहि सर्वे योत्स्यामस्तव भ्रातॄनपण्डितान्।
युयुत्सो वासुदेवश्च वयं च ब्रूम सर्वशः ॥ ९७ ॥
वृणोमि त्वां महाबाहो युद्ध्यस्व मम कारणात्।
त्वयि पिण्डश्च तन्तुश्च धृतराष्ट्रस्य दृश्यते ॥ ९८ ॥

तो भीष्मके मरनेपर फिर दुर्योधनकी सहायता करनेके निमित्त पाण्डवोंके विरुद्ध युद्धमें प्रवृत्त होना। (८९-९१)

कर्ण बोले, हे केशव! मैं दुर्योधनका अप्रिय कार्य नहीं कर सकता हूं, तुम मुझको दुर्योधनका हितैषी और उसके निमित्त मुझे प्राणत्याग करनेवाला समझो। (९२)

सञ्जय बोले, हे भारत! कृष्ण कर्णकी ऐसी वाणी सुनकर वहांसे लौटे और युधिष्ठिर प्रभृति पाण्डवोंमें आकर मिल गये॥ अनन्तर राजा युधिष्ठिर सेनाके बीचमें यह वचन उच्च स्वरसे बोले, कि जो इस युद्धमें हमारी सहायताके निमित्त हम लोगोंको वरण करेंगे, मैं उनको ग्रहण करूंगा॥ (९३-९४)

इसके अनन्तर युयुत्सु उन लोगोंको इस प्रकार देख के प्रीतियुक्त चित्तसे कुन्तीपुत्र धर्मराज युधिष्ठिरसे बोले॥ कि हे धर्मराज! यदि आप मुझे वरण करें, तो मैं रणभूमिमें धृतराष्ट्रके पुत्रोंके विरुद्ध आपकी ओरसे युद्ध करूं॥ ९५-९६

युधिष्ठिर बोले, हे युयुत्सु! चले आओ, हम सब तुम्हारे मूर्ख भाइयोंके सङ्ग युद्ध करेंगे। श्रीकृष्ण और हम सब लोग तुमसे कहते हैं॥ कि हे महाबाहो! तुमको युद्ध करनेके निमित्त हम लोग वरण करते हैं; तुम हम लोगोंके निमित्त

भजस्वाऽस्मान्राजपुत्र भजमानान्महाद्युते ।
न भविष्यति दुर्बुद्धिर्धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ॥ ९९ ॥
सञ्जय उवाच— ततो युयुत्सुः कौरव्यान्परित्यज्य सुतांस्तव ।
जगाम पाण्डुपुत्राणां सेनां विश्राव्य दुन्दुभिम् ॥१००॥
ततो युधिष्ठिरो राजा सम्प्रहृष्टः सहानुजः ।
जग्राह कवचं भूयो दीप्तिमत्कनकोज्ज्वलम् ॥ १०१ ॥
प्रत्यपद्यन्त ते सर्वे स्वरथान्पुरुषर्षभाः ।
ततो व्यूहं यथापूर्वं प्रत्यव्यूहन्त ते पुनः ॥ १०२ ॥
अवादयन्दुन्दुभींश्च शतशश्चैव पुष्करान् ।
सिंहनादांश्च विविधान्विनेदुः पुरुषर्षभाः ॥ १०३ ॥
रथस्थान्पुरुषव्याघ्रान्पाण्डवान्प्रेक्ष्य पार्थिवाः ।
धृष्टद्युम्नादयः सर्वे पुनर्जहृषिरे तदा ॥ १०४ ॥
गौरवं पाण्डुपुत्राणां मान्यान्मानयतां च तान् ।
दृष्ट्वा महीक्षितस्तत्र पूजयाञ्चक्रिरे भृशम् ॥ १०५ ॥
सौहृदं च कृपां चैव प्राप्तकालं महात्मनाम् ।

युद्ध करो; धृतराष्ट्रके पिण्डकी आशा और वंशकी रक्षा तुमसे ही देखी जा रही है ॥ हे महा-उज्वल रूप सम्पन्न राजपुत्र ! तुमको हमलोग ग्रहण करनेके अभिलाषी है; तुम भी हमलोगोंको ग्रहण करो; अत्यन्त क्रोधी और नीचबुद्धि दुर्योधन अब जीता नहीं बचेगा । ९७-९९

सञ्जय बोले, हे महाराज ! इसके अनन्तर युयुत्सु आपके पुत्र तथा कौरवोंको परित्याग करके नगाडा बजवाते हुए पाण्डवोंकी सेनामें चले गये ॥ इसके बाद महाभुज राजा युधिष्ठिरने भाईयोंके सहित अत्यन्त प्रसन्न और आनन्दित होकर प्रकाशमान सोनेके कवचको फिर पहर लिया ॥ और वे सब पुरुषसिंह अपने अपने रथपर फिर चढे और अपने पहिलेके रचे हुए व्यूह को बनाके फिर दुरुस्त किया ॥ और वे सब पुरुषश्रेष्ठ सैकडों नगाडे और बहुतसे बाजोंके सहित नाना प्रकारके सिंहनाद करने लगे ॥ (१००—१०३)

धृष्टद्युम्न आदिक सब राजा लोग उस समय पाण्डवोंको रथके ऊपर चढे हुए देखकर प्रसन्न और हर्षित हुए ॥ उन सब मानी पुरुषोंके सम्मान रक्षा करनेवाले पाण्डवोंके गौरवको देख कर राजा लोग उनकी अत्यन्त प्रशंसा करने लगे ॥ और महात्मा पाण्डवोंके यथा समय पर

दयां च ज्ञातिषु परां कथयाञ्चक्रिरे नृपाः ॥ १०६ ॥
साधु साध्विति सर्वत्र निश्चेरुः स्तुतिसंहिताः ।
वाचः पुण्याः कीर्तिमतां मनोहृदयहर्षणाः ॥ १०७ ॥
म्लेच्छाश्चाऽऽर्याश्च ये तत्र ददृशुः शुश्रुवुस्तथा ।
वृत्तं तत्पाण्डुपुत्राणां रुरुदुस्ते सगद्गदाः ॥ १०८ ॥
ततो जघ्नुर्महाभेरीः शतशश्च सहस्रशः ।
शङ्खांश्च गोक्षीरनिभान्दध्मुर्हृष्टा मनस्विनः ॥१०९॥ [१६२१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मादिसम्मानने त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च ।
के पूर्वं प्राहरंस्तत्र कुरवः पाण्डवा नु किम् ॥ १ ॥
सञ्जय उवाच— भ्रातृभिः सहितो राजन्पुत्रो दुःशासनस्तव ।
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया ॥ २ ॥
तथैव पाण्डवाः सर्वे भीमसेनपुरोगमाः ।
भीष्मेण युद्धमिच्छन्तः प्रययुर्हृष्टमानसाः ॥ ३ ॥

सुहृद भाव कृपा स्वभाव और विशेषतः ज्ञातियोंके ऊपर उन परम दयाकी कथाओंको आपसमें कहने लगे ॥ उन कीर्तिमान् पुरुषसिंहों के प्रति चारों ओरसे "साधु साधु" और स्तुति युक्त पुण्य वाक्य सब ओर सुनाई पडने लगे, उससे वहां पर इकट्ठे हुए सबके मन और हृदय हर्षित होने लगे॥ (१०४-१०७)

म्लेच्छ वा आर्य पुरुष जिन जिनने वहां पर पाण्डवोंके चरित्रोंको देखा अथवा सुना, वे लोग गद्गद होकर आंसूकी धारा बहाने लगे ॥ अनन्तर वे मनस्वी वीर लोग प्रसन्न होकर सैकडों हजारों महाभेरी आदि पुष्कल बाजे और गऊके दूधके समान प्रकाशित उज्वल शंखोंको बजाने लगे। (१०८-१०९)

भीष्मपर्वमें तैतालीस अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें चौवालिस अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, मेरी और पाण्डवोंकी सेनाका व्यूह इस प्रकारसे रचा गया, इसके अनन्तर पाण्डवोंने वा कौरवोंने पहिले प्रहार आरम्भ किया ? (१)

सञ्जय बोले, आपका पुत्र दुःशासन अपने भाइयोंको सङ्ग लेकर भीष्मको आगे करके रणभूमिकी ओर बढा ॥ उसी तरहसे पाण्डव भी प्रसन्न चित्त होकर भीमसेनको सम्मुख करके भीष्मके सङ्ग युद्ध करनेकी अभिलाषासे आगे बढे ।

क्ष्वेडाः किलकिलाशब्दाः क्रकचा गोविषाणिकाः ।
भेरीमृदङ्गमुरजा हयकुञ्जरनिःस्वनाः ॥ ४ ॥
उभयोः सेनयोर्ह्यासंस्ततस्तेऽस्मान्समाद्रवन् ।
वयं तान्प्रतिनर्दन्तस्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥ ५ ॥
महान्त्यनीकानि महासमुच्छ्रये समागमे पाण्डवधार्त्तराष्ट्रयोः ।
चकम्पिरे शङ्खमृदङ्गनिःस्वनैः प्रकम्पितानीव वनानि वायुना॥६ ॥
नरेन्द्रनागाश्वरथाकुलानामभ्यागतानामशिवे मुहूर्ते ।
बभूव घोषस्तुमुलश्चमूनां वातोद्धुतानामिव सागराणाम् ॥ ७ ॥
तस्मिन्समुत्थिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ।
भीमसेनो महाबाहुः प्राणदद्गोवृषो यथा ॥ ८ ॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं वारणानां च बृंहितम् ।
सिंहनादं च सैन्यानां भीमसेनरवोऽभ्यभूत् ॥ ९ ॥
हयानां हेषमाणानामनीकेषु सहस्रशः ।
सर्वानभ्यभवच्छब्दान्भीमस्य नदतः स्वनः ॥ १० ॥
तं श्रुत्वा निनदं तस्य सैन्यास्तव वितत्रसुः ।

इसके अनन्तर क्रकच, गोशृंग, भेरी, मृदङ्ग, मुरज आदि विविध बाजे बजने लगे। उस समय घोडोंका महाघोर शब्द होने लगा, हाथी चिङ्घाड मारने लगे। वीरोंका सिंहनाद और किलकिला शब्द, दोनों सेनाओंके बीच होने लगा। वे शत्रु हमारी ओर दौडे, और हमलोग भी उनकी ओर तर्जन गर्जन करते हुए वेगसे दौडे. इससे दोनों सेनाके विविध शब्दोंसे महा तुमल शब्द उपस्थित हुआ। (२–५)

पाण्डव और धृतराष्ट्र दोनों पक्षकी महासेना उस महाभयङ्कर समागममें शंख और भेरी आदि शब्दोंसे वायुसे कांपते हुए वन वृक्षोंकी भांति कांपने लगी ॥ उस अशुभ समयमें वहां पर आये हुए राजाओंके हाथी, घोडे और रथोंसे युक्त सैनिक वीरोंका तुमुल शब्द वायुसे उठे हुए समुद्रोंके शब्दोंकी भांति प्रकट होने लगा ॥ (६–७)

इसप्रकारके रोएं खडे करनेवाले शब्दके उठने पर महाबाहु भीमसेन गो--वृषभकी भांति हांक देने लगे ।। भीमसेनका वह हांक देना शङ्ख, दुन्दुभी (नगाडे) आदिक बाजे, हाथियोंके चिङ्घाट, हजारों घोडोंके हिनहिनाहट और सेनाके सब पुरुषोंके सिंहनादको अतिक्रम उल्लंघन करके बढ गया ॥ बादलके

जीमूतस्येव नदतः शक्राशनिसमस्वनम् ॥ ११ ॥
वाहनानि च सर्वाणि शकृन्मूत्रं प्रसुस्रुवुः ।
शब्देन तस्य वीरस्य सिंहस्येवेतरे मृगाः ॥ १२ ॥
दर्शयन्घोरमात्मानं महाभ्रमिव नादयन् ।
विभीषयंस्तव सुतान्भीमसेनः समभ्ययात् ॥ १३ ॥
तमायान्तं महेष्वासं सोदर्याः पर्यवारयन् ।
छादयन्तः शरव्रातैर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ १४ ॥
दुर्योधनश्च पुत्रस्ते दुर्मुखो दुःशलः शलः ।
दुःशासनश्चाऽतिरथस्तथा दुर्मर्षणो नृपः ॥ १५ ॥
विविंशतिश्चित्रसेनो विकर्णश्च महारथः ।
पुरुमित्रो जयो भोजः सौमदत्तिश्च वीर्यवान् ॥ १६ ॥
महाचापानि धुन्वन्तो मेघा इव सविद्युतः ।
आददानाश्च नाराचान्निर्मुक्ताशीविषोपमान् ॥ १७ ॥
अथ ते द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ १८ ॥

समान गर्जना हुआ भीमसेनका वह महा शब्द इन्द्रके वज्रके समान हुआ, उसको सुनके आपकी सेनाके लोग भयभीत होगये ॥ (८–११)

जिस तरहसे सिंहका गर्जना सुनकर वनके सब पशु मल-मूत्र त्याग करने लगते हैं, उसी तरहसे सम्पूर्ण सवारीके वाहन घोडे और हाथी आदि उस महावीर भीमका हांकना (शब्द) सुनकर मल-मूत्र त्यागने लगे॥ वह वीर भीमसेन बादलोंकी भांति गर्जता हुआ भय उत्पन्न करनेवाली अपनी मूर्त्तिको दिखाकर आपके पुत्रोंको भयभीत करता हुआ उनकी ओर वेगसे जा पहुंचा ॥ (१२–१३)

महाधनुर्द्धारी भीमसेनको आया हुआ देखकर आपके पुत्र दुर्योधन, दुर्मुख, दुःशल, शल, अतिरथ दुःशासन, दुर्मर्षण, विविंशति, चित्रसेन, महारथ विकर्ण, पुरुमित्र, जय, भोज और सोमदत्ति आदि सबने जैसे बादलमें बिजली निकलती है, उसी प्रकारसे धनुषपर टङ्कार देते हुए सर्पके समान तीक्ष्ण बाणोंसे भीमसेनको ऐसे छिपा दिया, जैसे बादलोंके समूह सूर्यको छिपा देते हैं॥ (१४–१७)

इसके अनन्तर द्रौपदीके पांचों पुत्र और सुभद्रानन्दन अभिमन्यु तथा नकुल सहदेव और धृष्टद्युम्नने अपने

धार्तराष्ट्रान्प्रतिययुरर्दयन्तः शितैः शरैः ।
वज्रैरिव महावेगैः शिखराणि धराभृताम् ॥ १९ ॥
तस्मिन्प्रथमसंग्रामे भीमज्यातलनिःस्वने ।
तावकानां परेषां च नाऽऽसीत्कश्चित्पराङ्मुखः॥ २० ॥
लाघवं द्रोणशिष्याणामपश्यं भरतर्षभ ।
निमित्तवेधिनां चैव शरानुत्सृजतां भृशम् ॥ २१ ॥
नोपशाम्यति निर्घोषो धनुषां कूजतां तथा ।
विनिश्चेरुः शरा दीप्ता ज्योतींषीव नभस्तलात्॥ २२ ॥
सर्वे त्वन्ये महीपालाः प्रेक्षका इव भारत ।
ददृशुर्दर्शनीयं तं भीमं ज्ञातिसमागमम् ॥ २३ ॥
ततस्ते जातसंरम्भाः परस्परकृतागसः ।
अन्योन्यस्पर्धया राजन्व्यायच्छन्त महारथाः॥ २४ ॥
कुरुपाण्डवसेने ते हस्त्यश्वरथसङ्कुले ।
शुशुभाते रणेऽतीव पटे चित्रार्पिते इव ॥ २५ ॥
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे प्रगृहीतशरासनाः ।

चोखे वाणोंसे धृतराष्ट्रके पुत्रोंको इस प्रकारसे विदारण किया, जैसे इन्द्रने पर्वतोंके ऊपर वज्र चलाया था।। अनेक धनुर्द्धारियोंके धनुष और करतालियोंके भयानक शब्दसे युक्त उस प्रथम दिनकी लडाईमें तुम्हारे और पाण्डवोंके पक्षका कोई भी वीर पीछे न हटा ॥ (१८–२०)

हे भरतसिंह महाराज ! द्रोण-शिष्योंको मैंने वार वार वाण चलाते हुए उनके हस्तकी लाघवता (हाथकी फुर्त्ती) और लक्षका वेध करते हुए देखा ॥ उस समयमें धनुषोंका शब्द शान्त नहीं हुआ और आकाशमार्गसे वाणोंके झुण्ड प्रकाशमान चमकते हुए पदार्थोंकी भांति चलने लगे ॥ हे भारत ! अन्य राजा लोग उस समय देखनेवालोंकी तरह खडे होकर उस भयङ्कर लडाईका कौतुक और ज्ञातिवर्गोंका युद्ध देखने लगे ॥ (२१–२३)

अनन्तर वे महारथ लोग परस्पर अपराधी होनेके कारण क्रोधसे पूरित और एक दूसरेके वधके निमित्त इच्छा करते हुए आपसमें व्यायाम करने लगे। हाथी घोडे और रथोंसे युक्त वह कौरव और पाण्डवोंकी सेना कपडे के ऊपर लिखे हुए चित्रकी भांति रणभूमिमें अत्यन्त शोभायमान हुई। इसके अनन्तर सब राजा लोग तुम्हारे पुत्र दुर्योधनकी

सहसैन्याः समापेतुः पुत्रस्य तव शासनात् ॥ २६ ॥
युधिष्ठिरेण चाऽऽदिष्टाः पार्थिवास्ते सहस्रशः।
विनदन्तः समापेतुः पुत्रस्य तव वाहिनीम् ॥ २७ ॥
उभयोः सेनयोस्तीव्रः सैन्यानां स समागमः।
अन्तर्धीयत चाऽऽदित्यः सैन्येन रजसाऽऽवृतः ॥२८॥
प्रयुद्धानां प्रभग्नानां पुनरावर्तिनामपि।
नाऽत्र स्वेषां परेषां वा विशेषः समदृश्यत ॥ २९ ॥
तस्मिंस्तु तुमुले युद्धे वर्तमाने महाभये।
अतिसर्वाण्यनीकानि पिता तेऽभिव्यरोचत ॥ ३०॥ [१६५३]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि
भीष्मवधपर्वणि युद्धारम्भे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥

सञ्जय उवाच — पूर्वाह्णे तस्य रौद्रस्य युद्धमह्नो विशाम्पते।
प्रावर्तत महाघोरं राज्ञां देहावकर्तनम् ॥ १ ॥
कुरूणां सृञ्जयानां च जिगीषूणां परस्परम्
सिंहानामिव संह्रादो दिवमुर्वीं च नादयन् ॥ २ ॥
आसीत्किलकिलाशब्दस्तलशङ्खरवैः सह।

आज्ञानुसार अपने अपने धनुष और सेनाको साथ लेकर उस युद्धक्षेत्रमें आ पहुंचे। (२४–२६

उधरसे हजारों राजालोग महाराज युधिष्ठिरकी आज्ञासे गर्जते हुए आपकी सेनापर आपहुंचे॥ दोनों सेनाके पक्षके दलोंका विकराल रूप दीख पडने लगा। उन सब सेनाओंके सम्मिलित होनेपर वीरोंके चरणकी धूलिके उडनेसे आकाशमें सूर्य छिप गया॥ क्या स्वपक्षीय, क्या शत्रुपक्षीय किसीके भी युद्ध करने, भागने अथवा फिर युद्धमें प्रवृत्त होनेमें कुछ विशेष बात नहीं दीख पडी॥ उस महा भयङ्कर बहुत बडे रणभूमिके स्थान पर आपके पिता भीष्म इस प्रकारकी बहुतसी सेनाको लांघकर सेनाके आगे प्रकाशित होने लगे। (२७—३०)

भीष्मपर्वमें चौवालिस अध्याय समाप्त। [१६५३]

भीष्मपर्वमें पैंतालिस अध्याय।

सञ्जय बोले, हे राजन्! उस भयङ्कर दिनके पूर्व भागमें ही राजाओंके शरीरोंको काटनेवाला महायुद्ध आरम्भ हुआ॥ एक दूसरेके जीतनेकी इच्छा करते हुए, पाण्डव और सृञ्जयोंके सिंहनादसे पृथ्वी और आकाश पूरित होगया॥ शङ्खोंकी ध्वनि और वीरोंका किलकिला शब्द हो

जज्ञिरे सिंहनादाश्च शूराणां प्रतिगर्जताम् ॥ ३ ॥
तलत्राभिहताश्चैव ज्याशब्दा भरतर्षभ ।
पत्तीनां पादशब्दश्च वाजिनां च महास्वनः ॥ ४ ॥
तोत्राङ्कुशनिपातश्च आयुधानां च निःस्वनः ।
घण्टाशब्दश्च नागानामन्योन्यमभिधावताम् ॥ ५ ॥
तस्मिन्समुदिते शब्दे तुमुले लोमहर्षणे ।
बभूव रथनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ॥ ६ ॥
ते मनः क्रूरमाधाय समभित्यक्तजीविताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्व एवोच्छ्रितध्वजाः ॥ ७ ॥
अथ शान्तनवो राजन्नभ्यधावद्धनञ्जयम् ।
प्रगृह्य कार्मुकं घोरं कालदण्डोपमं रणे ॥ ८ ॥
अर्जुनोऽपि धनुर्गृह्य गाण्डीवं लोकविश्रुतम् ।
अभ्यधावत तेजस्वी गाङ्गेयं रणमूर्धनि ॥ ९ ॥
तावुभौ कुरुशार्दूलौ परस्परवधैषिणौ ।
गाङ्गेयस्तु रणे पार्थं विद्ध्वा नाऽकम्पयद्बली ॥ १० ॥
तथैव पाण्डवो राजन्भीष्मं नाऽकम्पयद्युधि ।
सात्यकिस्तु महेष्वासः कृतवर्माणमभ्ययात् ॥ ११ ॥

रहा था, उसपर भी सिंहनाद और तर्जन गर्जन का शब्द होने लगा। (१-३)

हे भरतसिंह! धनुषोंके चटाने और तनुत्राणोंके शब्द, पैदलोंके पावके शब्द, घोडोंकी घोर हिनहिनाहट, कोडे और अङ्कुशोंका चलाना, शस्त्रोंकी आवाज, एक दूसरेकी ओर दौडते हुए हाथियोंके घण्टेके शब्द और रथोंके चलनेसे बादल की भांति महा भयङ्कर गम्भीर और रोएं खडे करनेवाला विकराल शब्द होने लगा॥ (४—६)

कौरव लोग जीनेकी आशा छोड कृतनिश्चय और कडे चित्तसे पताकाओं को फहराते हुए पाण्डवोंकी सेनापर आपहुंचे॥ शान्तनुपुत्र भीष्म यमराजके दण्डके समान विकराल और भयङ्कर धनुष लेकर अर्जुनकी ओर वेगसे चढ आये॥ तेजस्वी अर्जुन भी जगद्विख्यात गाण्डीव धनुष लेकर रणभूमिकी ओर भीष्मके निकट वेगसे चढ दौडे॥ (७-९)

वे दोनों कुरु-शार्दूल एक दूसरेके वध-की इच्छा करने लगे। महाबलवान् गङ्गा-पुत्र भीष्म युद्धमें अर्जुनको पीछे न हटा सके, और इसी भांति अर्जुन भी भीष्म

तयोः समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
सात्यकिः कृतवर्माणं कृतवर्मा च सात्यकिम्॥ १२ ॥
आनर्च्छतुः शरैर्घोरैस्तक्षमाणौ परस्परम् ।
तौ शराचितसर्वाङ्गौ शुशुभाते महाबलौ ॥ १३ ॥
वसन्ते पुष्पशबलौ पुष्पिताविव किंशुकौ ।
अभिमन्युर्महेष्वासं बृहद्बलमयोधयत् ॥ १४ ॥
ततः कोसलराजाऽसावभिमन्योर्विशाम्पते ।
ध्वजं चिच्छेद समरे सारथिं च न्यपातयत् ॥ १५ ॥
सौभद्रस्तु ततः क्रुद्धः पातिते रथसारथौ ।
बृहद्बलं महाराज विव्याध नवभिः शरैः ॥ १६ ॥
अथाऽपराभ्यां भल्लाभ्यां शिताभ्यामरिमर्दनः ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद पार्ष्णिमेकेन सारथिम् ॥ १७ ॥
अन्योन्यं च शरैः क्रुद्धौ ततक्षाते परस्परम् ।
मानिनं समरे दृप्तं कृतवैरं महारथम् ॥ १८ ॥
भीमसेनस्तव सुतं दुर्योधनमयोधयत् ।

जो युद्धसे पीछे हटानेमें समर्थ न हुए। महाधनुर्धारी सात्यकि कृतवर्माके सम्मुख हुए॥ उन दोनोंका रोएं खडे करनेवाला भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ। सात्यकि कृतवर्माको और कृतवर्मा सात्यकिको अस्त्र शस्त्रोंका प्रहार करते हुए आपसमें तर्जन गर्जन करके एक दूसरेको आक्रमण करने लगे। (१०-१३)

इन दोनों सात्वत वंशीय पुरुषसिंहोंका समस्त शरीर बाणोंसे ऐसा भूषित हुआ जैसे वसन्तकालमें किंशुक (पलास) फूलनेसे शोभायमान लगता है। महाधनुर्धर अभिमन्युने कोसलपति बृहद्बलके साथ युद्ध किया। बृहद्बलने युद्धमें अभिमन्युकी ध्वजाको काटके गिरा दिया और उनके सारथीको भी मारके नीचे गिरा दिया॥ (१३-१५)

सारथीके मरने पर सुभद्रानन्दन अभिमन्युने महाक्रोध करके नौ बाणोंसे बृहद्बलको घायल किया॥ इसके अनन्तर उत्तम पानीसे बुझाये हुए एक चोखे बाणसे बृहद्बलकी पताका काटके गिराई। एक बाणसे सारथी और दूसरे बाणसे उनके पृष्ठरक्षकको काट डाला; इस प्रकार दोनों क्रुद्ध होकर एक दूसरेको बाणोंसे घायल करने लगे। (१६-१८)

हे महाराज! भीमसेनने युद्धमें प्रकाशमान, महारथ, मानी, शत्रुता की

तावुभौ नरशार्दूलौ कुरुमुख्यौ महाबलौ ॥ १९ ॥
अन्योन्यं शरवर्षाभ्यां ववृषाते रणाजिरे ।
तौ वीक्ष्य तु महात्मानौ कृतिनौ चित्रयोधिनौ ॥ २० ॥
विस्मयः सर्वभूतानां समपद्यत भारत ।
दुःशासनस्तु नकुलं प्रत्युद्याय महाबलम् ॥ २१ ॥
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्बहुभिर्मर्मभेदिभिः ।
तस्य माद्रीसुतः केतुं सशरं च शरासनम् ॥ २२ ॥
चिच्छेद निशितैर्बाणैः प्रहसन्निव भारत ।
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत् ॥ २३ ॥
पुत्रस्तु तव दुर्धर्षो नकुलस्य महाहवे ।
तुरङ्गांश्चिच्छिदे बाणैर्ध्वजं चैवाऽभ्यपातयत् ॥ २४ ॥
दुर्मुखः सहदेवं च प्रत्युद्याय महाबलम् ।
विव्याध शरवर्षेण यतमानं महाहवे ॥ २५ ॥
सहदेवस्ततो वीरो दुर्मुखस्य महारणे ।
शरेण भृशतीक्ष्णेन पातयामास सारथिम् ॥ २६ ॥
तावन्योन्यं समासाद्य समरे युद्धदुर्मदौ ।

जड़को उत्पन्न करनेवाले आपके पुत्र दुर्योधनपर आक्रमण किया। वे दोनों नरसिंह, महारथोंमें मुख्य, कुरुप्रधान वीर युद्धकी भूमिमें एक दूसरेपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। हे भारत! उन युद्धविद्याके जाननेवाले दोनों पुरुषोंको विचित्र युद्ध करते हुए देखकर सब प्राणियोंको महा विस्मय उत्पन्न हुआ॥ १८-२१

दुःशासनने नकुलपर आक्रमण करके उत्तम पानीमें बुझाये चोखे दश मर्मभेदी बाणोंसे विद्ध किया। माद्रीपुत्र नकुलने हंसकर उत्तम पानीमें बुझे हुए चोखे बाणोंसे दुःशासनके धनुषको बाणोंके समेत काटके पृथ्वीमें गिरा दिया और उसके रथ, घोडे और ध्वजाको भी काट डाला; अनन्तर नकुलने फिर दुःशासनकी ओर पचीस क्षुद्रक बाण चलाया। फिर तेरे पुत्र दुर्धर्ष दुःशासनने उस युद्धमें नकुलके रथ, घोडे और पताकाको काटके गिरा दिया। (२१-२४)

दुर्मुख उस महा युद्धमें बलवान सहदेवकी ओर अपने बाणोंकी वर्षासे उनको विद्ध करने लगा॥ अनन्तर वीर सहदेवने उस महायुद्धमें तीक्ष्ण बाणोंसे दुर्मुखके सारथीको मारके गिरा दिया॥ वे दोनों युद्धमें अन्योन्य [illegible]

त्रासयेतां शरैर्घोरैः कृतप्रतिकृतैषिणौ ॥ २७ ॥
युधिष्ठिरः स्वयं राजा मद्रराजानमभ्ययात् ।
तस्य मद्राधिपश्चापं द्विधा चिच्छेद मारिष ॥ २८ ॥
तदपास्य धनुश्छिन्नं कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
अन्यत्कार्मुकमादाय वेगवद्बलवत्तरम् ॥ २९ ॥
ततो मद्रेश्वरं राजा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छादयामास संक्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ३० ॥
धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणमभ्यद्रवत भारत ।
तस्य द्रोणः सुसंक्रुद्धः परासुकरणं दृढम् ॥ ३१ ॥
त्रिधा चिच्छेद समरे पाञ्चाल्यस्य तु कार्मुकम् ।
शरं चैव महाघोरं कालदण्डमिवाऽपरम् ॥ ३२ ॥
प्रेषयामास समरे सोऽस्य काये न्यमज्जत ।
अथाऽन्यद्धनुरादाय सायकांश्च चतुर्दश ॥ ३३ ॥
द्रोणं द्रुपदपुत्रस्तु प्रतिविव्याध संयुगे ।
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ चक्रतुः सुभृशं रणम् ॥ ३४ ॥
सौमदत्तिं रणे शङ्खो रभसं रभसो युधि ।

एक दूसरेपर आक्रमण करने लगे और एक दूसरेके प्रतिकारकी कोशिश करते हुए अपने बाणोंके समूहसे सबको भयभीत करने लगे ॥ (२६-२७)

धर्मराज युधिष्ठिरने मद्रराज शल्यपर आक्रमण किया। मद्रराज शल्यने उन की दृष्टिके सम्मुख ही युधिष्ठिरके धनुष को काटके दो टुकडे कर दिया॥ कुन्तीपुत्र युधिष्ठिरने उस कटे हुए धनुषको फेंक कर शीघ्रतासे दूसरा वेग-वान् और दृढ धनुष ग्रहण किया॥ और अत्यन्त क्रोध करके झुकेहुए पर्ववाले बाणोंसे मद्रराजको छिपा दिया और 'खडा रह' ऐसा वचन कहने लगे। (२८-३०)

अनन्तर धृष्टद्युम्न द्रोणाचार्यके सामने चढ आये। महारथ द्रोणाचार्यने अत्यन्त क्रोध करके पाञ्चालराजपुत्र धृष्टद्युम्नके मारनेके साधन दृढ धनुषको तीन जगहसे काट डाला और कालदण्डके समान एक भयङ्कर बाण धृष्टद्युम्न की ओर चलाया वह बाण उसके शरीर में घुस गया। द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्नने दूसरा धनुष लेकर चौदह बाणोंसे द्रोणाचार्यको विद्ध किया। वे दोनों महावीर आपसमें क्रुद्ध होकर परस्पर महायुद्ध

प्रत्युद्ययौ महाराज तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ३५ ॥
तस्य वै दक्षिणं वीरो निर्विभेद रणे भुजम् ।
सौमदत्तिस्तथा शङ्खं जत्रुदेशे समाहनत् ॥ ३६ ॥
तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं विशाम्पते ।
दृप्तयोः समरे पूर्वं वृत्रवासवयोरिव ॥ ३७ ॥
बाह्लीकं तु रणे क्रुद्धं क्रुद्धरूपो विशाम्पते ।
अभ्यद्रवदमेयात्मा धृष्टकेतुर्महारथः ॥ ३८ ॥
बाह्लीकस्तु रणे राजन्धृष्टकेतुममर्षणः ।
शरैर्बहुभिरानर्च्छत्सिंहनादमथाऽनदत् ॥ ३९ ॥
चेदिराजस्तु सङ्क्रुद्धो बाह्लीकं नवभिः शरैः ।
विव्याध समरे तूर्णं मत्तो मत्तमिव द्विपम् ॥ ४० ॥
तौ तत्र समरे क्रुद्धौ नर्दन्तौ च पुनः पुनः ।
समीयतुः सुसंक्रुद्धावङ्गारकबुधाविव ॥ ४१ ॥
राक्षसं रौद्रकर्माणं क्रूरकर्मा घटोत्कचः ।
अलम्बुषं प्रत्युदियाद्बलं शक्र इवाऽऽहवे ॥ ४२ ॥
घटोत्कचस्ततः क्रुद्धो राक्षसं तं महाबलम् ।

करने लगे ॥ (३१—३४)

शीघ्रगामी विराटपुत्र शङ्खने सोमदत्तके पुत्रको सत्वर आक्रमण किया और "खडा रह खडा रह" करके पुकारने लगा ॥ फिर उस वीरने अपने बाणसे सोमदत्त नन्दनकी दहनी भुजा विद्ध की। सोमदत्तके पुत्रने भी शङ्खका कोप-स्थान विद्ध किया। हे नरनाथ! उन दोनों अभिमानी वीरोंका भयानक युद्ध यथार्थमें पूर्वकालमें वृत्र और इन्द्रका युद्ध जैसा हुआ था वैसाही दीखने लगा। (३५-३७)

महात्मा महारथ धृष्टकेतु क्रुद्ध होकर क्रोधी बाह्लिककी ओर दौडे ॥ अनन्तर बाह्लिकने धृष्टकेतुको अनेक बाणोंसे मोहित कर दिया, फिर सिंहनाद करने लगे ॥ चेदिराज धृष्टकेतुने क्रोधके वशमें होकर मतवारे हाथीके समान बाह्लिकपर आक्रमण करते हुए नौ बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ वे दोनों क्रुद्ध होकर बार बार तर्जन गर्जन करते हुए मङ्गल और बुध ग्रहोंकी भांति आपसमें क्रोधपूर्वक युद्ध करने लगे ॥ (३८-४१)

क्रूर- कर्म करनेवाले घटोत्कच राक्षसने महाक्रूर अलम्बुष राक्षस पर इस प्रकारसे आक्रमण किया, जैसे इन्द्रने बलासुरके ऊपर आक्रमण किया था।

नवत्या सायकैस्तीक्ष्णैर्दारयामास भारत ॥ ४३ ॥
अलम्बुषस्तु समरे भैमसेनिं महाबलम् ।
बहुधा दारयामास शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४४ ॥
व्यभ्राजतां ततस्तौ तु संयुगे शरविक्षतौ ।
यथा देवासुरे युद्धे बलशक्रौ महाबलौ ॥ ४५ ॥
शिखण्डी समरे राजन्द्रौणिमभ्युद्ययौ बली ।
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धः शिखण्डिनमुपस्थितम् ॥ ४६ ॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं विध्वा व्यकम्पयत् ।
शिखण्ड्यपि ततो राजन्द्रोणपुत्रमताडयत् ॥ ४७ ॥
सायकेन सुपीतेन तीक्ष्णेन निशितेन च ।
तौ जघ्नतुस्तदाऽन्योन्यं शरैर्बहुविधैर्मृधे ॥ ४८ ॥
भगदत्तं रणे शूरं विराटो वाहिनीपतिः ।
अभ्ययात्त्वरितो राजंस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ४९ ॥
विराटो भगदत्तं तु शरवर्षेण भारत ।
अभ्यवर्षत्सुसंक्रुद्धो मेघो वृष्ट्या इवाऽचलम् ॥ ५० ॥

घटोत्कचने क्रोधित होकर तीखे बाणोंसे अलम्बुषको क्षत विक्षत (घायल) कर दिया ॥ अलम्बुषने भी भीमसेनके पुत्र घटोत्कचको अनेक अच्छे नतपर्व बाणोंसे मारके क्षत विक्षत (घायल) किया। वे दोनों वीर संग्रामभूमिमें बाणोंसे जर्जरित होकर इस प्रकारसे शोभित हुए, जैसे देवता और असुरोंके युद्धमें इन्द्र और बलासुरकी शोभा हुई थी ॥ (४३—४५)

हे महाराज ! पश्चात् शिखण्डी द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामासे युद्ध करनेके निमित्त आगे बढे । उसके अनन्तर अश्वत्थामाने क्रुद्ध होकर शिखण्डीको अत्यंत तीक्ष्ण नाराच बाणसे अत्यंत विद्ध करके कम्पित किया। फिर शिखण्डीने भी तीक्ष्ण और चोखे अच्छी प्रकारसे पानी चढे हुए बाणोंसे द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाको प्रहार किया, अनन्तर वे दोनों अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे एक दूसरे को मारने लगे। (४६—४८)

सेनापति विराट शीघ्रता सहित वीरतासे भरे हुए राजा भगदत्त पर चढ आये, अनन्तर उन दोनोंका घोर युद्ध आरम्भ हो गया ॥ हे भारत ! जिस प्रकारसे बादल पहाडो पर जलकी वर्षा करते हैं उसी प्रकारसे राजा विराटने

भगदत्तस्ततस्तूर्णं विराटं पृथिवीपतिम् ।
छादयामास समरे मेघः सूर्यमिवोदितम् ॥ ५१ ॥
बृहत्क्षत्रं तु कैकेयं कृपः शारद्वतो ययौ ।
तं कृपः शरवर्षेण च्छादयामास भारत ॥ ५२ ॥
गौतमं कैकयः क्रुद्धः शरवृष्ट्याऽभ्यपूरयत ।
तावन्योन्यं हयान्हत्वा धनुश्छित्वा च भारत ॥ ५३ ॥
विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्षणौ ।
तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं सुदारुणम् ॥ ५४ ॥
द्रुपदस्तु ततो राजन्सैन्धवं वै जयद्रथम् ।
अभ्युद्ययौ हृष्टरूपो हृष्टरूपं परन्तपः ॥ ५५ ॥
ततः सैन्धवको राजा द्रुपदं विशिखैस्त्रिभिः ।
ताडयामास समरे स च तं प्रत्यविध्यत ॥ ५६ ॥
तयोस्तदभवद्युद्धं घोररूपं सुदारुणम् ।
ईक्षणप्रीतिजननं शुक्राङ्गारकयोरिव ॥ ५७ ॥
विकर्णस्तु सुतस्तुभ्यं सुतसोमं महाबलम् ।

क्रुद्ध होकर अपने बाणोंकी वर्षासे भगदत्तको छिपा दिया। भगदत्तने भी जैसे बादलोंसे उदित सूर्य छिपा जाता है, उसी भांति बाणोंसे राजा विराटको शीघ्र ही छिपा दिया। (४९-५१)

कृपाचार्य केकयाधिपति बृहत्क्षत्रकी ओर चट धाये और अपने बाणोंकी वर्षासे कृपने उनको छिपा दिया॥ केकय-राजने भी अत्यन्त क्रोधसे अपने बाणोंसे कृपाचार्यको परिपूरित कर दिया॥ हे राजन्! अनन्तर उन दोनोंमें एक दूसरेके धनुष और अश्व तथा रथ छेदन करके दोनों बिना रथके होगये और वे दोनों तलवार खींचकर खडे होके खड्गहीसे युद्ध करने लगे; उन दोनोंका महा घोर युद्ध उस संग्रामभूमिमें दीखने लगा। (५२—५४)

राजा द्रुपदने हर्षित होकर आनंदसे भरे सिन्धुराज जयद्रथपर आक्रमण किया॥ इसके बाद सिन्धुराज जयद्रथने तीन बाण राजा द्रुपदके ऊपर चलाये, द्रुपदने भी उनके ऊपर प्रहार करना आरम्भ किया॥ शुक्र और मङ्गल ग्रहोंकी भांति उन दोनोंका ऐसा दारुण युद्ध होने लगा; कि जो दर्शक लोगोंकी प्रशंसा योग्य था। (५५—५७)

आपके पुत्र विकर्ण वेगवान् घोडोंसे युक्त रथपर चढके सुतसोमकी ओर चट

अभ्ययाज्जवनैरश्वैस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ५८ ॥
विकर्णः सुतसोमं तु विध्वा नाऽकम्पयच्छरैः ।
सुतसोमो विकर्णं च तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ५९ ॥
सुशर्माणं नरव्याघ्रश्चेकितानो महारथः ।
अभ्यद्रवत्सुसंक्रुद्धः पाण्डवार्थे पराक्रमी ॥ ६० ॥
सुशर्मा तु महाराज चेकितानं महारथम् ।
महता शरवर्षेण वारयामास संयुगे ॥ ६१ ॥
चेकितानोऽपि संरब्धः सुशर्माणं महाहवे ।
प्राच्छादयत्तमिषुभिर्महामेघ इवाऽचलम् ॥ ६२ ॥
शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु पराक्रान्तं पराक्रमी ।
अभ्यद्रवत राजेन्द्र मत्तः सिंह इव द्विपम् ॥ ६३ ॥
यौधिष्ठिरस्तु संक्रुद्धः सौबलं निशितैः शरैः ।
व्यदारयत संग्रामे मघवानिव दानवम् ॥ ६४ ॥
शकुनिः प्रतिविन्ध्यं तु प्रतिविध्यन्तमाहवे ।
व्यदारयन्महाप्राज्ञः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६५ ॥
श्रुतकर्माणं तु राजेन्द्र काम्बोजानां महारथम् ।

गये, अनन्तर उन दोनोंमें संग्राम होने लगा। विकर्ण सुतसोमको बाणोंसे मार कर उन्हें नहीं हटा सके; और सुतसोम भी विकर्णको युद्धमें नहीं विचलित कर सके; इन दोनोंका युद्ध अद्भुत प्रकारसे हुआ। (५८-५९)

पराक्रमी चेकितान उत्साहपूर्वक पाण्डवोंकी ओरसे सुशर्माकी ओर चढ धाये, उस युद्धमें सुशर्मा बहुतसे बाणोंसे चेकितानको निवारण करने लगे, अनन्तर चेकितानने सुशर्माको इस प्रकारसे बाणोंके जालसे ढांप दिया जैसे बादल पहाड़को पूर्ण ढांक कर डालता है। (६०—६२)

पराक्रमी शकुनि पराक्रमशील प्रतिविन्ध्यकी ओर इस प्रकारसे दौडे, जैसे मतवारे हाथीकी ओर सिंह दौडता है। युधिष्ठिरनन्दन प्रतिविन्ध्यने बहुत ही क्रोधसे भरकर अच्छे पानीसे बुझे हुए अनेक चोखे बाणोंसे सुबल-पुत्र शकुनिको इस प्रकारसे क्षत-विक्षत किया जैसे इन्द्रने दनुपुत्रोंको क्षतविक्षत किया था। पराक्रमी शकुनि भी युधिष्ठिरपुत्र प्रतिविन्ध्यको युद्धभूमिमें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे क्षतविक्षत करने लगे। (६३-६५)

श्रुतकर्मा काम्बोज-देशीय महारथ

श्रुतकर्मा पराक्रान्तमभ्यद्रवत संयुगे ॥ ६६ ॥
सुदक्षिणस्तु समरे साहदेविं महारथम् ।
विद्ध्वा नाऽकम्पयत वै मैनाकमिव पर्वतम् ॥ ६७ ॥
श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धः काम्बोजानां महारथम् ।
शरैर्बहुभिरानर्च्छद्दारयन्निव सर्वशः ॥ ६८ ॥
इरावानथ संक्रुद्धः श्रुतायुषमरिन्दमम् ।
प्रत्युद्ययौ रणे यत्तो यत्तरूपं परन्तपः ॥ ६९ ॥
आर्जुनिस्तस्य समरे हयान्हत्वा महारथः ।
ननाद बलवन्नादं तत्सैन्यं प्रत्यपूरयत् ॥ ७० ॥
श्रुतायुस्तु ततः क्रुद्धः फाल्गुनेः समरे हयान् ।
निजघान गदाग्रेण ततो युद्धमवर्तत ॥ ७१ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ कुन्तिभोजं महारथम् ।
ससेनं ससुतं वीरं संससज्जतुराहवे ॥ ७२ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम तयोर्घोरं पराक्रमम् ।
अयुध्येतां स्थिरौ भूत्वा महत्या सेनया सह ॥ ७३ ॥
अनुविन्दस्तु गदया कुन्तिभोजमताडयत् ।

पराक्रमी सुदक्षिणकी ओर चढ गये ॥ सुदक्षिण सहदेवपुत्र महारथ श्रुतकर्माको बाणोंसे विद्ध करने लगे परन्तु जैसे इन्द्र मैनाक पर्वतको कम्पित नहीं कर सके थे, उसी भांतिसे सुदक्षिण भी श्रुतकर्माको नहीं हटा सके ॥ फिर श्रुतकर्माने क्रोध करके अपने अनेक बाणोंसे काम्बोज-देशीय महारथ सुदक्षिणको क्षत-विक्षत करके सब प्रकारसे उन्हें मोहित कर दिया ॥ (६६-६८)

अनन्तर शत्रुओंके जलानेवाले अर्जुन-पुत्र इरावान् क्रोधसे पूरित होकर सावधान चित्तसे अमर्षण श्रुतायुकी ओर चढ गये ॥ अर्जुनपुत्र महारथ बलवान इरावानने श्रुतायुके सब घोडोंको मारकर ऐसा जोरसे शब्द किया, कि उसको सेनाके सब लोगोंने सुन लिया ॥ श्रुतायुने भी क्रोध करके इरावानके घोडोंको गदासे मारडाला, अनन्तर उन दोनोंका घोर युद्ध होने लगा ॥ ६९-७१

अवन्ति देशीय विन्द और अनुविन्द अपनी सेना और पुत्रके सहित महारथ कुन्तिभोजके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ उन दोनोंका आश्चर्य-रूपी महाघोर पराक्रम दीखने लगा; वह दोनों वीर सेनाके सहित स्थिर होकर युद्ध करने

कुन्तिभोजश्च तं तूर्णं शरव्रातैरवाकिरत् ॥ ७४ ॥
कुन्तिभोजसुतश्चाऽपि विन्दं विव्याध सायकैः ।
स च तं प्रतिविव्याध तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ७५ ॥
केकया भ्रातरः पञ्च गान्धारान्पञ्च मारिष ।
ससैन्यास्ते ससैन्यांश्च योधयामासुराहवे ॥ ७६ ॥
वीरबाहुश्च ते पुत्रो वैराटिं रथसत्तमम् ।
उत्तरं योधयामास विव्याध निशितैः शरैः ॥ ७७ ॥
उत्तरश्चाऽपि तं वीरं विव्याध निशितैः शरैः ।
चेदिराट् समरे राजन्नुलूकं समभिद्रवत् ॥ ७८ ॥
तथैव शरवर्षेण उलूकं समविध्यत ।
उलूकश्चाऽपि तं बाणैर्निशितैर्लोमवाहिभिः ॥ ७९ ॥
तयोर्युद्धं समभवद्घोररूपं विशाम्पते ।
दारयेतां भृशं क्रुद्धावन्योन्यमपराजितौ ॥ ८० ॥
एवं द्वन्द्वसहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ।
पदातीनां च समरे तव तेषां च संकुले ॥ ८१ ॥

मुहूर्तमिव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ८२ ॥
गजो गजेन समरे रथिनं च रथी ययौ ।
अश्वोऽश्वं समभिप्रायात्पदातिश्च पदातिनम् ॥ ८३ ॥
ततो युद्धं सुदुर्धर्षं व्याकुलं समपद्यत ।
शूराणां समरे तत्र समासाद्येतरेतरम् ॥ ८४ ॥
तत्र देवर्षयः सिद्धाश्चारणाश्च समागताः ।
प्रैक्षन्त तद्रणं घोरं देवासुरसमं भुवि ॥ ८५ ॥
ततो दन्तिसहस्राणि रथानां चाऽपि मारिष ।
अश्वौघाः पुरुषौघाश्च विपरीतं समाययुः ॥ ८६ ॥
तत्र तत्र प्रदृश्यन्ते रथवारणपत्तयः ।
सादिनश्च नरव्याघ्र युद्ध्यमाना मुहुर्मुहुः ॥ ८७ ॥ [१७४०]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

सञ्जय उवाच— राजञ्शतसहस्राणि तत्र तत्र पदातिनाम् ।
निर्मर्यादं प्रयुद्धानि तत्ते वक्ष्यामि भारत ॥ १ ॥
न पुत्रः पितरं जज्ञे पिता वा पुत्रमौरसम् ।

वीर एक दूसरेके सम्मुख होकर द्वन्द्वयुद्ध मुहूर्त भरके वास्ते अत्यन्त सुन्दर और मनोहर हुआ था; फिर वही युद्ध उन्मत्तोंके समान होने लगा; उस समयमें कुछ भी बोध नहीं होता था॥ हाथीवाले हाथीवालोंसे, रथी रथीसे, घुडसवार घुडसवारोंके सङ्ग और पैदल चलने वाले वीर लोग पैदलोंके सङ्ग युक्त होकर युद्ध करने लगे ॥ (८१-८३)

इसके अनन्तर एक दूसरेके सम्मुख होकर लडनेसे उस समय उन सब वीरोंका महाघोर तथा भयङ्कर संग्राम होने लगा। वहां सिद्ध, चारण, देवता और देवऋषि आ कर पृथ्वीमें देवअसुरोंके समान वह महा घोर संग्राम देखने लगे ॥ इसके अनन्तर पुरुष, घोडे, रथ और हाथियोंका विपरीत रीतिसे युद्ध होने लगा ॥ रथी, गजपति और घुडसवार लोग जगह जगह बार बार युद्ध करते हुए दिखाई देने लगे। ८४-८७

भीष्मपर्वमें पैंतालिस अध्याय समाप्त । १७४० ।

भीष्मपर्वमें छियालिस अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे महाराज ! सहस्रों पैदल चलनेवाले वीरोंका मर्यादाको त्यागकर जैसा महा युद्ध हुआ था, वह मैं तुम्हारे निकट यथार्थ वर्णन करता हूं। उस समयमें न पिताको पिता पुत्रको

न भ्राता भ्रातरं तत्र स्वस्रीयं न च मातुलः ॥ २ ॥
न मातुलं च स्वस्रीयो न सखायं सखा तथा ।
आविष्टा इव युध्यन्ते पाण्डवाः कुरुभिः सह ॥ ३ ॥
रथानीकं नरव्याघ्राः केचिदभ्यपतन्रथैः ।
अभज्यन्त युगैरेव युगानि भरतर्षभ ॥ ४ ॥
रथेषाश्च रथेषाभिः कूबरा रथकूबरैः ।
सङ्गतैः साहिताः केचित्परस्परजिघांसवः ॥ ५ ॥
न शेकुश्चलितुं केचित्सन्निपत्य रथा रथैः ।
प्रभिन्नास्तु महाकायाः सन्निपत्य गजा गजैः ॥ ६ ॥
बहुधाऽदारयन्क्रुद्धा विषाणैरितरेतरम् ।
सतोरणपताकैश्च वारणा वरवारणैः ॥ ७ ॥
अभिसृत्य महाराज वेगवद्भिर्महागजैः ।
दन्तैरभिहतास्तत्र चुक्रुशुः परमातुराः ॥ ८ ॥
अभिनीताश्च शिक्षाभिस्तोत्राङ्कुशसमाहताः ।
अप्रभिन्नाः प्रभिन्नानां सम्मुखाभिमुखा ययुः ॥ ९ ॥
प्रभिन्नैरपि संसक्ताः केचित्तत्र महागजाः ।

क्रौञ्चवन्निनदं कृत्वा दुद्रुवुः सर्वतोदिशम् ॥ १० ॥
सम्यक्प्रणीता नागाश्च प्रभिन्नकरटामुखाः ।
ऋष्टितोमरनाराचैर्निर्विद्धा वरवारणाः ॥ ११ ॥
प्रणेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः ।
प्राद्रवन्त दिशः केचिन्नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ १२ ॥
गजानां पादरक्षास्तु व्यूढोरस्काः प्रहारिणः ।
ऋष्टिभिश्च धनुर्भिश्च विमलैश्च परश्वधैः ॥ १३ ॥
गदाभिर्मुसलैश्चैव भिन्दिपालैः सतोमरैः ।
आयसैः परिघैश्चैव निस्त्रिंशैर्विमलैः शितैः ॥ १४ ॥
प्रगृहीतैः सुसंरब्धा द्रवमाणास्ततस्ततः ।
व्यदृश्यन्त महाराज परस्परजिघांसवः ॥ १५ ॥
राजमानाश्च निस्त्रिंशाः संसिक्ता नरशोणितैः ।
प्रत्यदृश्यन्त शूराणामन्योन्यमभिधावताम् ॥ १६ ॥
अवक्षिप्तावधूतानामसीनां वीरबाहुभिः ।
सञ्जज्ञे तुमुलः शब्दः पततां परमर्मसु ॥ १७ ॥
गदामुसलरुग्णानां भिन्नानां च वरासिभिः ।

क्रौञ्च पक्षीकी भांति शब्द करते हुए इधर उधर दौड़ने लगे ॥ (७-१०)

पूर्णरीतिसे शिक्षा पाये हुए वे सब उत्तम हाथी ऋष्टि, तोमर और बाणोंके प्रहारसे व्याकुल होने लगे ॥ उनके कई हाथी शस्त्रोंकी चोटसे मर्म भागमें पीड़ित होनेसे मरके पृथ्वीमें गिरने लगे और कोई कोई हाथी भयङ्कर शब्द करते हुए सब दिशाओंमें वेगसे दौड़ने लगे ॥ हे महाराज ! उस समयमें मैंने देखा, कि हाथियोंके पाद-रक्षक चौड़ी छातीवाले वीर पुरुष [illegible] होकर धनुष बाण, परशु, गदा तोमर, ऋष्टि भिन्दिपाल, मुसल, लोहेके परिघ और उत्तम पानीमें बुझाई हुई तेज तलवार लेकर एक दूसरेको मारनेकी इच्छासे इधर उधर प्रहार करते हुए दौड़ने लगे ॥ (११-१५)

एक दूसरेकी ओर चट धाये और उस समय वीरोंकी तलवार युद्ध करनेसे मनुष्योंके रक्तसे सिक्त होकर प्रकाशित होने लगी ॥ वीरोंके हाथोंसे चलती, कांपती और दूसरे पुरुषोंके मर्म स्थानों-पर गिरती हुई उन तलवारोंका महा-घोर शब्द होने लगा ॥ रणभूमिमें जगह जगह गदा और मुसलकी चोटसे पीड़ित, तलवारोंके प्रहारसे शरीरके

दन्तिदन्तावभिन्नानां मृदितानां च दन्तिभिः ॥ १८ ॥
तत्र तत्र नरौघाणां क्रोशतामितरेतरम् ।
शुश्रुवुर्दारुणा वाचः प्रेतानामिव भारत ॥ १९ ॥
हयैरपि हयारोहाश्चामरापीडधारिभिः ।
हंसैरिव महावेगैरन्योन्यमभिविद्रुताः ॥ २० ॥
तैर्विमुक्ता महाप्रासा जाम्बूनदविभूषणाः ।
आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः सम्पेतुर्भुजगोपमाः ॥ २१ ॥
अश्वैरग्र्यजवैः केचिदाप्लुत्य महतो रथान् ।
शिरांस्याददिरे वीरा रथिनामश्वसादिनः ॥ २२ ॥
बहूनपि हयारोहान्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ।
रथी जघान सम्प्राप्य बाणगोचरमागतान् ॥ २३ ॥
नवमेघप्रतीकाशाश्चाऽऽक्षिप्य तुरगान्गजाः ।
पादैरेव विमृद्नन्ति मत्ताः कनकभूषणाः ॥ २४ ॥
पाट्यमानेषु कुम्भेषु पार्श्वेष्वपि च वारणाः ।
प्रासैर्विनिहताः केचिद्विनेदुः परमातुराः ॥ २५ ॥
साश्वारोहान्हयान्कांश्चिदुन्मथ्य वरवारणाः ।

सहसा चिक्षिपुस्तत्र संकुले भैरवे सति ॥ २६ ॥
साश्वारोहान्विषाणाग्रैरुत्क्षिप्य तुरगान्गजाः ।
रथौघानभिमृद्नन्तः सध्वजानभिचक्रमुः ॥ २७ ॥
पुंस्त्वादतिमदत्वाच्च केचित्तत्र महागजाः ।
साश्वारोहान्हयाञ्जघ्नुः करैः सचरणैस्तथा ॥ २८ ॥
अश्वारोहैश्च समरे हस्तिसादिभिरेव च ।
प्रतिमानेषु गात्रेषु पार्श्वेष्वभि च वारणान् ।
आशुगा विमलास्तीक्ष्णाः सम्पेतुर्भुजगोपमाः ॥ २९ ॥
नराश्वकायान्निर्भिद्य लौहानि कवचानि च ।
निपेतुर्विमलाः शक्त्यो वीरबाहुभिरर्पिताः ॥ ३० ॥
महोल्काप्रतिमा घोरास्तत्र तत्र विशाम्पते ।
द्वीपिचर्मावनद्धैश्च व्याघ्रचर्मच्छदैरपि ॥ ३१ ॥
विकोशैर्विमलैः खड्गैरभिजग्मुः परान्रणे ।
अभिप्लुतमभिक्रुद्धमेकपार्श्वावदारितम् ॥ ३२ ॥
विदर्शयन्तः सम्पेतुः खड्गचर्मपरश्वधैः ।
केचिदाक्षिप्य करिणः साश्वानपि रथान्करैः ॥ ३३ ॥
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः सर्वशब्दगाः ।

विकाल करके दूर फेंकने लगे ॥ २३-२६

कितने ही हाथी अपने दांतोंकी नोकसे सवारोंके सहित घोडोंको फेंक कर ध्वजासे युक्त रथोंको मर्दन करते हुए रणभूमिमें घूमने लगे ॥ कोई कोई बडे शरीरवाले बडे वीर्यवान्, मद चूते हुए मतवारे हाथी अपने सूंड और पांवसे सवारोंके सहित घोडोंको मारनेमें प्रवृत्त हुए, हाथियोंके मस्तक पर पंखली और दूसरे अङ्गोंमें सर्पके समान घोर, तीक्ष्ण बाण वीरोंके धनुषसे छूटे हुए आकर घुसने लगे । (२७-२९)

हे महाराज ! इधर उधर रणभूमिमें वीर पुरुषोंकी भुजाओंसे छूटी हुई प्रकाशमान बडी उल्काके समान, उत्तम, चोखी और भयानक शक्ति लोहेके कवचको काटकर मनुष्य और घोडोंके शरीरमें प्रवेश करने लगी । अनेक वीर पुरुष व्याघ्र चर्मके दर्मसे तलवार निकालकर शत्रुओंके ऊपर चले और कोई क्रोधसे भर कर अपने दांतोंसे ओठ काटते हुए निडर होके हाथमें तलवार, ढाल और फरसा धारण करके [illegible] शत्रुओंके ऊपर और [illegible] । (३०-३३)

गदाभिर्दारिताः केचित्सम्भिन्नाश्च परश्वधैः ॥ ३४ ॥
हस्तिभिर्मृदिताः केचित्क्षुण्णाश्चाऽन्ये तुरङ्गमैः ।
रथनेमिनिकृत्ताश्च निकृत्ताश्च परश्वधैः ॥ ३५ ॥
व्याक्रोशन्त नरा राजंस्तत्र तत्र स्म बान्धवान् ।
पुत्रानन्ये पितॄनन्ये भ्रातॄंश्च सह बन्धुभिः ॥ ३६ ॥
मातुलान्भागिनेयांश्च परानपि च संयुगे ।
विकीर्णान्त्राः सुबहवो भग्नसक्थाश्च भारत ॥ ३७ ॥
बाहुभिश्चाऽपरे छिन्नैः पार्श्वेषु च विदारिताः ।
क्रन्दन्तः समदृश्यन्त तृषिता जीवितेप्सवः ॥ ३८ ॥
तृषापरिगताः केचिदल्पसत्वा विशाम्पते ।
भूमौ निपतिताः सङ्ख्ये मृगयाश्चक्रिरे जलम् ॥ ३९ ॥
शोणितौघपरिक्लिन्नाः क्लिश्यमानाश्च भारत ।
व्यनिन्दन्भृशमात्मानं तव पुत्रांश्च सङ्गतान् ॥ ४० ॥
अपरे क्षत्रियाः शूराः कृतवैराः परस्परम् ।
नैव शस्त्रं विमुञ्चन्ति नैव क्रन्दन्ति मारिष ॥ ४१ ॥

तर्जयन्ति च संहृष्टास्तत्र तत्र परस्परम् ।
आदश्य दशनैश्चाऽपि क्रोधात्स्वरदनच्छदम् ॥ ४२ ॥
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षन्ति च परस्परम् ।
अपरे क्लिश्यमानास्तु शरार्ता व्रणपीडिताः ॥ ४३ ॥
निष्कूजाः समपद्यन्त दृढसत्वा महाबलाः ।
अन्ये च विरथाः शूराः रथमन्यस्य संयुगे ॥ ४४ ॥
प्रार्थयाना निपतिताः सङ्क्षुण्णा वरवारणैः ।
अशोभन्त महाराज सपुष्पा इव किंशुकाः ॥ ४५ ॥
सम्बभूवुरनेकेषु बहवो भैरवस्वनाः ।
वर्तमाने महाभीमे तस्मिन्वीरवरक्षये ॥ ४६ ॥
निजघान पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं रणे ।
स्वस्रीयो मातुलं चाऽपि स्वस्रीयं चाऽपि मातुलः ॥४७॥
सखा सखायं च तथा सम्बन्धी बान्धवं तथा ।
एवं युयुधिरे तत्र कुरवः पाण्डवैः सह ॥ ४८ ॥
वर्त्तमाने तथा तस्मिन्निर्मर्यादे भयानके ।
भीष्ममासाद्य पार्थानां वाहिनी समकम्पत ॥ ४९ ॥

का त्याग तथा रोदन नहीं किया। वरन प्रसन्न होकर आपसमें तर्जन गर्जन करने लगे और दांतोंसे ओठ काटते हुए भृकुटी चढाकर तिरछी नजरसे एक दूसरेकी ओर देखने लगे। इसके अतिरिक्त बडे चित्तवाले अत्यन्त बलवान् कोई कोई वीर योद्धा लोग बाणोंके लगनेसे अत्यन्त पीडित और क्लेशित होकर भी चुपचाप ही रहे। कोई कोई वीर योद्धा मतवारे हाथियोंके सूंड और पावोंके आघातसे रथहीन होकर पृथ्वीमें गिरकर दूसरे पुरुष के रथको मांगने लगे। (४१–४५)

कितने ही वीर पुरुष फूले हुए पलाशके फूलके समान शोभित होने लगे॥ कितने ही सेनाके बीच बडे जोरसे चिल्ला रहे थे। उन महावीर पुरुषोंके नाश करनेवाले भयङ्कर युद्धमें पिता पुत्रको और पुत्र पिताको, मामा भानजेको और भानजा मामाको, मित्र मित्रको और भाई भाईको वध करने लगा। इसी प्रकारसे कौरवोंका पाण्डवोंके संग युद्ध होने लगा। (४६–४८)

हे भरतर्षभ ! उस मर्यादा-रहित महा घोर युद्धमें पाण्डवोंकी सेनाके वीर योद्धा भीष्म के निकट कांपने लगे॥

केतुना पञ्चतारेण तालेन भरतर्षभ ॥
राजतेन महाबाहुरुच्छ्रितेन महारथे।
बभौ भीष्मस्तदा राजंश्चन्द्रमा इव मेरुणा॥ ९० ॥[१७९०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि
भीष्मवधपर्वणि सङ्कुलयुद्धे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

सञ्जय उवाच—गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे।
वर्तमाने तथा रौद्रे महावीरवरक्षये ॥ १ ॥
दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विविंशतिः।
भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण चोदिताः ॥ २ ॥
एतैरतिरथैर्गुप्तः पञ्चभिर्भरतर्षभ ।
पाण्डवानामनीकानि विजगाहे महारथः ॥ ३ ॥
चेदिकाशिकरूषेषु पञ्चालेषु च भारत।
भीष्मस्य बहुधा तालश्चरन्केतुरदृश्यत ॥ ४ ॥
स शिरांसि रणेऽरीणां रथांश्च सयुगध्वजान्।
निचकर्त महावेगैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ ५ ॥
नृत्यतो रथमार्गेषु भीष्मस्य भरतर्षभ।

भृशमार्तस्वरं चक्रुर्नागा मर्माणि ताडिताः ॥ ६ ॥
अभिमन्युः सुसंक्रुद्धः पिशङ्गैस्तुरगोत्तमैः।
संयुक्तं रथमास्थाय प्रायाद्भीष्मरथं प्रति ॥ ७ ॥
जाम्बूनदविचित्रेण कर्णिकारेण केतुना।
अभ्यवर्तत भीष्मं च तांश्चैव रथसत्तमान् ॥ ८ ॥
स तालकेतोस्तीक्ष्णेन केतुमाहत्य पत्रिणा।
भीष्मेण युयुधे वीरस्तस्य चाऽनुरथैः सह ॥ ९ ॥
कृतवर्माणमेकेन शल्यं पञ्चभिराशुगैः।
विध्वा नवभिरानर्च्छच्छिताग्रैः प्रपितामहम् ॥ १० ॥
पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक्प्रणिहितेन च।
ध्वजमेकेन विव्याध जाम्बूनदपरिष्कृतम् ॥ ११ ॥
दुर्मुखस्य तु भल्लेन सर्वावरणभेदिना।
जहार सारथेः कायाच्छिरः सन्नतपर्वणा ॥ १२ ॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन कार्तस्वरविभूषितम्।
कृपस्य निशिताग्रेण तांश्च तीक्ष्णमुखैः शरैः ॥ १३ ॥
जघान परमक्रुद्धो नृत्यन्निव महारथः।

नृत्य करते हुएके समान बोध होने लगे। कितने ही हाथी भीष्मके बाणोंसे पीडित होकर आर्त्तनाद करने लगे॥ उसे देखकर अभिमन्यु अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर अपने पिङ्गलवर्णके उत्तम घोडे और सुवर्णचित्रित कर्णिकारकी ध्वजासे शोभित रथपर चढकर भीष्मकी ओर आये और भीष्म तथा उनके रक्षक उन पांच अतिरथियोंके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे। (६-८)

उस वीरने भीष्मकी ध्वजामें अपने तीखे बाण मार कर भीष्म तथा उनके पांचों रक्षक वीरोंसे युद्ध करना आरम्भ किया॥ कृतवर्माको एक तथा शल्यको पांच बाण मारे और पितामह भीष्मके ऊपर उत्तम पानीमें बुझाये हुए चोखे नौ बाण चलाये॥ अनन्तर धनुषको अच्छी प्रकारसे खींचकर एक बाणसे सुवर्णभूषित ध्वजा काटकर गिरादी। ९-११

इसके अनन्तर कवच आदिको काटनेवाले एक नतपर्व भल्लसे दुर्मुखके सारथीका सिर काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया॥ फिर उत्तम पानीमें बुझाये हुए चोखे एक भल्लसे कृपाचार्यका धनुष काटके गिराया, और वह महारथ अत्यन्त क्रुद्ध होकर मानो नृत्य करता

तस्य लाघवमुद्वीक्ष्य तुतुषुर्देवता अपि ॥ १४ ॥
तदालक्ष्यन्त तथा कार्ष्णेः सर्वे भीष्ममुखा रथाः ।
सत्त्ववन्तममन्यन्त साक्षादिव धनञ्जयम् ॥ १५ ॥
तस्य लाघवमार्गस्थमलातसदृशप्रभम् ।
दिशः पर्यपतच्चापं गाण्डीवमिव घोषवत् ॥ १६ ॥
तमासाद्य महावेगैर्भीष्मो नवभिराशुगैः ।
विव्याध समरे तूर्णमार्जुनिं परवीरहा ॥ १७ ॥
ध्वजं चास्य त्रिभिर्भल्लैश्चिच्छेद परमौजसः ।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैराजघान यतव्रतः ॥ १८ ॥
तथैव कृतवर्मा च कृपः शल्यश्च मारिषः ।
विद्धा नाकम्पयन्कार्ष्णिं मैनाकमिव पर्वतम् ॥ १९ ॥
स तैः परिवृतः शूरो धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
ववर्ष शरवर्षाणि कार्ष्णिः पञ्च रथान्प्रति ॥ २० ॥
ततस्तेषां महास्त्राणि संवार्य शरवृष्टिभिः ।
ननाद बलवान्कार्ष्णिर्भीष्माय विसृजञ्शरान् ॥ २१ ॥

तत्राऽस्य सुमहद्राजन्बाह्वोर्बलमदृश्यत ।
यतमानस्य समरे भीष्ममर्दयतः शरैः ॥ २२ ॥
पराक्रान्तस्य तस्यैव भीष्मोऽपि प्राहिणोच्छरान् ।
स तांश्चिच्छेद समरे भीष्मचापच्युताञ्शरान् ॥ २३ ॥
ततो ध्वजममोघेषुर्भीष्मस्य नवभिः शरैः ।
चिच्छेद समरे वीरस्तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥ २४ ॥
स राजतो महास्कन्धस्तालो हेमविभूषितः ।
सौभद्रविशिखैश्छिन्नः पपात भुवि भारत ॥ २५ ॥
तं तु सौभद्रविशिखैः पातितं भरतर्षभ ।
दृष्ट्वा भीमो ननादोच्चैः सौभद्रमभिहर्षयन् ॥ २६ ॥
अथ भीष्मो महास्त्राणि दिव्यानि सुबहूनि च ।
प्रादुश्चक्रे महारौद्रे रणे तस्मिन्महाबलः ॥ २७ ॥
ततः शरसहस्रेण सौभद्रं प्रपितामहः ।
अवाकिरदमेयात्मा तदद्भुतमिवाऽऽभवत ॥ २८ ॥
ततो दश महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ।

पूर्वक गर्जते हुए भीष्मके ऊपर अपने बाणोंको चलाने लगा ॥ (१९—२१)

हे राजन् ! जिस समय वह अपने बाणोंसे शल्यके सहित भीष्मको पीडित कर रहा था उस समय उसकी दोनों भुजाओंका खूब ही बल प्रकाशित हुआ था ॥ ऐसे पराक्रमी वीरके ऊपर भीष्म भी अच्छी प्रकार अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे, और वह भी भीष्मके धनुष-से छूटे हुए उन सब बाणोंको काटने लगा ॥ इसके अनन्तर उस पराक्रमी अभिमन्युने भीष्मकी ध्वजाको नौ बाणोंसे काटकर गिरा दिया; इसे देख-कर सब लोग अभिमन्युको धन्य धन्य कहने लगे ॥ हे भारत ! सुवर्णसे बनी हुई बहुत ऊंची वह तालध्वजा सुभद्रा-नन्दन अभिमन्युके बाणोंसे कटकर पृथ्वीमें गिर पडी ॥ (२२—२५)

भीष्मकी ध्वजाको अभिमन्युके बाणोंसे कटती हुई देखकर भरतश्रेष्ठ भीम प्रसन्न होकर सुभद्रानन्दन अभिमन्युको हर्षित करनेके निमित्त सिंहनाद करने लगे ॥ अनन्तर महाबली भीष्मने उस महा-भयङ्कर रणभूमिमें बहुतसे दिव्य महा अस्त्रोंको प्रकट किया ॥ अनन्तर पन्द्रह हजार बाण महात्मा भीष्मने अभिमन्युके ऊपर चलाये। यह बडा आश्चर्यसा हुआ ॥ (२६—२८)

पदा युगमधिष्ठाय जघान चतुरो हयान् ॥ ३७ ॥
स हताश्वे रथे तिष्ठन्मद्राधिपतिरायसीम्।
उत्तरान्तकरीं शक्तिं चिक्षेप भुजगोपमाम् ॥ ३८ ॥
तया भिन्नतनुत्राणः प्रविश्य विपुलं तमः।
स पपात गजस्कन्धात्प्रमुक्तांकुशतोमरः ॥ ३९ ॥
असिमादाय शल्योऽपि अवप्लुत्य रथोत्तमात्।
तस्य वारणराजस्य चिच्छेदाऽथ महाकरम् ॥ ४० ॥
भिन्नमर्मा शरशतैश्छिन्नहस्तः स वारणः।
भीममार्तस्वरं कृत्वा पपात च ममार च ॥ ४१ ॥
एतदीदृशकं कृत्वा मद्रराजो नराधिप।
आरुरोह रथं तूर्णं भास्वरं कृतवर्मणः ॥ ४२ ॥
उत्तरं वै हतं दृष्ट्वा वैराटिर्भ्रातरं तदा।
कृतवर्मणा च सहितं दृष्ट्वा शल्यमवस्थितम् ॥ ४३ ॥
श्वेतः क्रोधात्प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव।
स विस्फार्य महच्चापं शक्रचापोपमं बली ॥ ४४ ॥

आरम्भ किया। परन्तु उस हस्तिराजने क्रुद्ध होकर शल्यके रथको पकडकर अपने पांवसे उनके चारों उत्तम घोडोंको मारडाला ॥ (३५ –३७)

राजा शल्यने घोडोंके मारे जानेपर रथमें बैठकर सर्पके समान लोहमयी एक शक्ति उत्तरका नाश करनेके निमित्त चलाई; वह शक्ति उत्तरके कवचको काटकर शरीरमें पैठगई और इनके हाथसे अंकुश और तोमर भी छूटकर गिर गया। अनन्तर वह शक्तिके लगनेसे अत्यन्त ही मोहित होकर हाथीसे पृथ्वी पर गिर पडे ॥ तब शल्यने तलवार ग्रहण करके पराक्रमके सहित रथपरसे कूदकर उस गजराजके बडे सूंडको काट डाला ॥ वह हाथी पहिलेसे ही बाणोंके लगनेसे अत्यन्त पीडित हो रहा था; फिर सूंडके कटनेसे भयानक शब्द करता हुआ मर गया ॥ (३८–४१)

राजा शल्य ऐसे कठिन कर्मको करके शीघ्रताके सहित कृतवर्माके प्रकाशमान रथपर जाचढे ॥ इसके अनन्तर अपने भाई उत्तरको मरा हुआ और शल्यको कृतवर्माके सहित रथपर बैठा हुआ देख विराटका दूसरा पुत्र श्वेत क्रोधसे भर कर अग्निमें घृत डालनेके समान जलने लगा; वह बलवान् इन्द्रधनुषके समान बडा धनुष ग्रहण करके मद्रराजको युद्धमें

निकृत्तान्येव तानि स्म समदृश्यन्त भारत ।
ततस्ते तु निमेषार्धात्प्रत्यपद्यन्धनूंषि च ॥ ५३ ॥
सप्त चैव पृषत्कांश्च श्वेतस्योपर्यपातयन् ।
ततः पुनरमेयात्मा भल्लैः सप्तभिराशुगैः ॥
निचकर्त महाबाहुस्तेषां चापानि धन्विनाम् ॥ ५४ ॥
ते निकृत्तमहाचापास्त्वरमाणा महारथाः ।
रथशक्तीः परामृश्य विनेदुर्भैरवान्रवान् ॥ ५५ ॥
अन्वयुर्भरतश्रेष्ठ सप्त श्वेतरथं प्रति ।
ततस्ता ज्वलिताः सप्त महेन्द्राशनिनिःस्वनाः ॥ ५६ ॥
अप्राप्ताः सप्तभिर्भल्लैश्चिच्छेद परमास्त्रवित् ।
ततः समादाय शरं सर्वकायविदारणम् ॥ ५७ ॥
प्राहिणोद्भरतश्रेष्ठ श्वेतो रुक्मरथं प्रति ।
तस्य देहे निपतितो बाणो वज्रातिगो महान् ॥ ५८ ॥
ततो रुक्मरथो राजन्सायकेन दृढाहतः ।
निषसाद रथोपस्थे कश्मलं चाऽविशन्महत् ॥ ५९ ॥
तं विसंज्ञं विमनसं त्वरमाणस्तु सारथिः ।

छिन्न करके गिरादिये ॥ (५०-५२)

हे महाराज! उनके धनुष्य टूटते ही निमिषार्धके अंदर उन्होंने नये धनुष्य लिये और श्वेतके ऊपर सात बाण चलाये। परंतु वह श्वेत विशेष धैर्यशाली था। उस महाबाहुने फिर भी वेगवान बाणोंसे उन सातों धनुर्धारियोंके सातों धनुष्य काट डाले॥ फिर भी जब धनुष्य काटे गये तब उन महारथियोंने शीघ्रतासे अपने रथोंमेंसे शक्ति आयुध हाथमें पकड कर बडी गर्जना की और देकर शक्तियां श्वेतके रथपर छोड दीं॥ परंतु हे भरतश्रेष्ठ! इन्द्रके वज्रके समान चमकनेवाली और घोर शब्द करनेवाली वह सातों शक्तियां श्वेतके पास पहुंचनेके पूर्व ही उस अस्त्रनिपुण श्वेतने उनको सात भल्लोंसे छेद किया॥ (५३-५६)

तदनंतर, हे भरतश्रेष्ठ! हरएक शरीरको फाड सकनेवाला एक बाण श्वेतने रुक्मरथपर छोडा॥ वह वज्रसे भी तीक्ष्ण बाण रुक्मरथपर लग गया, जिस कारण वह घायल होकर रथके अग्र भागपर ही बैठगया और विशेष मूर्छित हो गया॥ उसका सारथी बडा धैर्यवान था। उन्होंने अपना रथी बेहोश और मूर्छित हुआ देख कर, न डरते

धृतराष्ट्र उवाच—एवं श्वेते महेष्वासे प्राप्ते शल्यरथं प्रति ।
कुरवः पाण्डवेयाश्च किमकुर्वत सञ्जय ॥ १ ॥
भीष्मः शान्तनवः किं वा तन्ममाऽऽचक्ष्व पृच्छतः ।
सञ्जय उवाच— राजञ्शतसहस्राणि ततः क्षत्रियपुङ्गवाः ॥ २ ॥
श्वेतं सेनापतिं शूरं पुरस्कृत्य महारथाः ।
राज्ञो बलं दर्शयन्तस्तव पुत्रस्य भारत ॥ ३ ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य त्रातुमैच्छन्महारथाः ।
अभ्यवर्तन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ ४ ॥
जिघांसन्तं युधां श्रेष्ठं तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ।
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि महावैशसमच्युत ॥ ५ ॥
तावकानां परेषां च यथा युद्धमवर्तत ।
तत्राऽकरोद्रथोपस्थाञ्छून्याञ्छान्तनवो बहून् ॥ ६ ॥
तत्राऽद्भुतं महच्चक्रे शरैराच्छेद्रथोत्तमान् ।
समावृणोच्छरैरर्कमर्कतुल्यप्रतापवान् ॥ ७ ॥

सात्यकि, कैकेय, विराट, पार्षत धृष्टद्युम्न इन नरश्रेष्ठ वीरोंपर और चेदि तथा मत्स्यों के सैन्यों पर बाणों की वृष्टि की ॥ (६४-६७) [१८५७]

भीष्मपर्वमें सैंतालीस अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें अडतालीस अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले- हे सञ्जय ! जब महा धनुर्धर श्वेत इस प्रकार शल्यके रथपर चढाई करके गया, तब कौरव पाण्डवोंने क्या किया ? और विशेष करके शन्तनु पुत्र भीष्मने क्या किया ? यह सब मुझे कहो । (१-२)

सञ्जय बोले- हे राजन् ! उस समय सैकडों और हजारों पाण्डव पक्षके महारथी [illegible] युधिष्ठिरके सामने तेरे पुत्रको दर्शानेके उद्देश्यसे शिखण्डीको आगे करके शूर सेनापति श्वेतका रक्षण करनेकी इच्छासे, भीष्मके सुवर्णमय रथपर चढाई करनेके लिये आगे बढे । उस समय वीरोंके अग्रणी भीष्म भी प्रतिपक्षी वीरोंके प्राण लेनेकी तयारी में थे ॥ (२-४)

हे राजन् ! उस समय उन पाण्डव वीरोंका तुम्हारे पुत्रोंके साथ हजारहा वीरोंका नाश करनेवाला भयङ्कर युद्ध हुआ, उसका वर्णन मैं तुमसे करता हूं ॥ सूर्यके समान तेजस्वी भीष्माचार्यजीने उस समय अद्भुत पराक्रम किया । उन्होंने बाणोंके जालोंसे सूर्य भी आच्छादित किया ॥ जिस प्रकार उदय हो

विस्रब्धहनवराश्च शतशः परिपीडिताः ॥ १५ ॥
तेन तेनाऽभ्यधावन्त विसृजन्तश्च भारत ।
मत्तो गजः पर्यवर्त्तद्धयांश्च हतसादिनः ॥ १६ ॥
सरथा रथिनश्चापि विमृद्नन्तः समन्ततः ।
स्यन्दनादपतत्कश्चिन्निहतोऽन्येन सायकैः ॥ १७ ॥
हतसारथिरप्युच्चैः पपात काष्ठवद्रथः ।
युध्यमानस्य संग्रामे व्यूढे रजसि चोत्थिते ॥ १८ ॥
धनुःकूजितविज्ञानं तत्राऽऽसीत्प्रतियुद्ध्यतः ।
गात्रस्पर्शेन योधानां व्यज्ञास्त परिपन्थिनम् ॥ १९ ॥
युद्ध्यमानं शरै राजन्सिञ्जिनीध्वजिनीरवात् ।
अन्योन्यं वीरसंशब्दो नाऽश्रूयत भटैः कृतः ॥ २० ॥
शब्दायमाने संग्रामे पटहे कर्णदारिणि ।
युध्यमानस्य संग्रामे कुर्वतः पौरुषं स्वकम् ॥ २१ ॥
नाऽश्रौषं नामगोत्राणि कीर्तनं च परस्परम् ।

जाते थे ॥ (१०-१४)

कई वीर सुवर्णके आभूषणोंसे मंडित तथा धनुष्य और तूणीरोंसे युक्त होते हुए भी कपटसे वध होनेके कारण घायल हो कर गिर गये थे ॥ इनमेंसे कईयोंने प्राण भी त्याग दिये । वीर मर गये हैं यह देख कर कई मतवारे हाथियों ने घोडोंको पटक कर मार दिया ॥ इधर कई रथी अपने रथोंको आस पास गिरे हुए वीरोंको पीसते हुए चला रहे थे; बीचमें किसीने रथीको बाणोंसे काट दिया तो वह मर जाता और रथसे गिर जाता था ॥ पश्चात् यदि सारथी भी मारा गया तो वह खाली रथ काष्ठवत् भूमिपर गिर जाता था ॥ (१५-१८)

हे राजन्! इस प्रकार जब बडा युद्ध होने लगा और रणमंडलमें बडी धूली उडी, तब धनुष्य की टंकारसे ही प्रतिपक्षका वीर कहां खडा है इसका ज्ञान होता था, क्योंकि आंखसे कुछ भी दिखता नहीं था ॥ कई वीर तो बाणके स्पर्शसे ही यह बाण इस वीर का है यह जान सकते थे। हे राजा! वीर परस्परों के नामोंसे घोषणा कर रहे थे ॥ परंतु धनुष्य की टंकार और सैन्यकी हलचल के कारण किसीको कुछ भी सुनाई नहीं देता था ॥ इस प्रकार सब संग्राम भरमें बडा कोलाहल मचनेपर, दुर्मदोंके कानोंको फाडनेवाले नगारों के शब्द भी मलिन हुए, इस कारण वीरोंके नामगोत्र

हयौघाश्च रथौघाश्च नरौघाश्चैव भारत ॥ ३० ॥
वारणाः शतशश्चैव हताः श्वेतेन भारत ।
वयं श्वेतभयाद्भीता विहाय रथसत्तमम् ॥ ३१ ॥
अपयातास्तथा पश्चाद्विभु पश्याम धृष्णवः ।
शरपातमतिक्रम्य कुरवः कुरुनन्दन ॥ ३२ ॥
भीष्मं शान्तनवं युद्धे स्थिताः पश्याम सर्वशः ।
अदीनो दीनसमये भीष्मोऽस्माकं महाहवे ॥ ३३ ॥
एकस्तस्थौ नरव्याघ्रो गिरिर्मेरुरिवाऽचलः ।
आददान इव प्राणान्सविता शिशिरात्यये ॥ ३४ ॥
गभस्तिभिरिवाऽऽदित्यस्तस्थौ शरमरीचिमान् ।
स मुमोच महेष्वासः शरसङ्घाननेकशः ॥ ३५ ॥
निघ्नन्नमित्रान्समरे वज्रपाणिरिवाऽसुरान् ।
ते वध्यमाना भीष्मेण प्रजहुस्तं महाबलम् ॥ ३६ ॥
स्वयूथादिव ते यूथान्मुक्तं भूमिषु दारुणम् ।

प्रजानाथ! श्वेतके शस्त्र प्रहारसे उसके आस पास वीरोंके कटे हुए भूषणयुक्त बाहु, उनके धनुष्य, रथोंके स्तंभ, रथचक्र, धुराएं, वीरोंके तूणीर, मूल्यवान् छत्र, पताका, तथा घायल हुए घोडोंके, रथियोंके और सैनिक गणोंके समुदाय तथा घायल हुए सकडों मतवारे हाथी दिखाई देते थे॥ (२७ ३०)

श्वेतके डरसे हम रथको छोडकर दूर भाग गये, इस लिये जीवित बचे हैं और राजा धृतराष्ट्रको आखोंसे देख रहे हैं। हे कुरु नंदन! भीष्मकी रक्षाके लिये आये हुए वीर श्वेतके बाणोंकी मारके पार जाकर खडे रहे थे सब हमने प्रत्यक्ष देखा है॥ तात्पर्य सबके समय में कभी न डरनेवाले नरश्रेष्ठ भीष्म ही अकेले अपने वीरोंमें अपने स्थानपर मेरुपर्वतके समान स्थिर रहे थे॥ हिमऋतुके समाप्त हो जानेपर अपने तीक्ष्ण किरणोंसे जीवोंके प्राण हरण करनेवाले सूर्यके समान वे भीष्माचार्य अपने बाण रूपी तेज किरणों से जीवों के प्राण लेते हुए शोभित हो रहे थे। (३१-३५)

उस महा धनुर्धरने अनेक बाण छोड कर शत्रुके वैसे प्राण लिये जैसे इंद्र दानवोंके प्राण लेता था। जब भीष्मने ऐसा क्रन्द किया तब श्वेतके पुत्रक और उस महाबली को समर भूमिमें अकेले ही छोडकर भाग गये। तथापि

पितामहं ततो दृष्ट्वा श्वेतेन विमुखीकृतम् ॥ ४४ ॥
प्रहर्षं पाण्डवा जग्मुः पुत्रस्ते विमना भवत् ।
ततो दुर्योधनः क्रुद्धः पार्थिवैः परिवारितः ॥ ४५ ॥
ससैन्यः पाण्डवानीकमभ्यद्रवत संयुगे ।
दुर्मुखः कृतवर्मा च कृपः शल्यो विशाम्पतिः ॥ ४६ ॥
भीष्मं जुगुपुरासाद्य तव पुत्रेण नोदिताः ।
दृष्ट्वा तु पार्थिवैः सर्वैर्दुर्योधनपुरोगमैः ॥ ४७ ॥
पाण्डवानामनीकानि वध्यमानानि संयुगे ।
श्वेतो गाङ्गेयमुत्सृज्य तव पुत्रस्य वाहिनीम् ॥ ४८ ॥
नाशयामास वेगेन वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
द्रावयित्वा चमूं राजन्वैराटिः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४९ ॥
आपतत्सहसा भूयो यत्र भीष्मो व्यवस्थितः ।
तौ तत्रोपगतौ राजञ्शरदीप्तौ महाबलौ ॥ ५० ॥
अयुध्येतां महात्मानौ यथोभौ वृत्रवासवौ ।
अन्योन्यं तु महाराज परस्परवधैषिणौ ॥ ५१ ॥
निगृह्य कार्मुकं श्वेतो भीष्मं विव्याध सप्तभिः ।

श्वेत भी चतुर वीर था इस लिये उन्हों-ने भीष्मको भी पीछे हटाया ॥ वह देख कर पाण्डव आनंदित हुए और दुर्योधनको दुःख हुआ ॥ (४३–४५)

अनन्तर राजाओं और सैनिकोंके साथ स्वयं दुर्योधन पाण्डव सेनापर दौड गये और उन्हीं की आज्ञासे दुर्मुख, कृतवर्मा, कृप तथा मद्रराज शल्य ये भीष्मके पास आकर उनकी रक्षा करने लगे ॥ इस प्रकार दुर्योधनादि राजालोग इस भूमिमें आकर पाण्डव सेनाका नाश कर रहे थे ॥ यह देख कर श्वेतने भीष्माचार्यको छोड दिया, और जिस प्रकार वायु वृक्षोंको तोड देता है, उस प्रकार तेरे पुत्रके सैन्यका उन्होंने नाश करना प्रारंभ किया ॥ (४६–४९)

हे राजा ! इस प्रकार तेरे सैन्यको भगा देनेके पश्चात् वह विराट पुत्र श्वेत क्रोधित होकर, जहां भीष्म सावधानता से खडे थे वहां एकदम पहुंचा ॥ हे महाराज ! बाणोंसे चमकनेवाले और परस्परका वध करनेकी इच्छा करनेवाले वे दोनों महाबलवान वीर आमने सामने आतेही ऐसे लडने लगे जैसे इन्द्र और वृत्रासुर लडे थे । श्वेतने धनुष्य का खींच कर भीष्मपर सात बाण चलाये।

यत्ता भीष्मं परीप्सध्वं रक्षमाणाः समन्ततः ।
मा नः प्रपश्यमानानां श्वेतान्मृत्युमवाप्स्यति ॥ ६१ ॥
भीष्मः शान्तनवः शूरस्तथा सत्यं ब्रवीमि वः ।
राज्ञस्तु वचनं श्रुत्वा त्वरमाणा महारथाः ॥ ६२ ॥
बलेन चतुरङ्गेण गाङ्गेयमन्वपालयन् ।
बाह्लीकः कृतवर्मा च शलः शल्यश्च भारत ॥ ६३ ॥
जलसन्धो विकर्णश्च चित्रसेनो विविंशतिः ।
त्वरमाणास्त्वराकाले परिवार्य समन्ततः ॥ ६४ ॥
शस्त्रवृष्टिं सुतुमुलां श्वेतस्योपर्यपातयन् ।
तान्क्रुद्धो निशितैर्बाणैस्त्वरमाणो महारथः ॥ ६५ ॥
अवारयदमेयात्मा दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
स निवार्य तु तान्सर्वान्केसरी कुञ्जरानिव ॥ ६६ ॥
महता शरवर्षेण भीष्मस्य धनुराच्छिनत् ।
ततोऽन्यद्धनुरादाय भीष्मः शान्तनवो युधि ॥ ६७ ॥
श्वेतं विव्याध राजेन्द्र कङ्कपत्रैः शितैः शरैः ।
ततः सेनापतिः क्रुद्धो भीष्मं बहुभिरायसैः ॥ ६८ ॥

अपने सैनिकोंको आज्ञा की कि, "ठीक प्रकार सावधान होकर भीष्मकी रक्षा करते हुए उनके चारों ओर खडे रहो, क्यों कि हमारे देखते हुए शूरवीर शन्तनु पुत्र भीष्मका वध श्वेतके द्वारा होना नहीं चाहिये यह मैं सच कह रहा हूं, तुम सब सुन लो ॥' (६१-६२)

राजाकी यह आज्ञा सुनते ही कौरवोंके महारथी शीघ्रतासे चतुरंग दलको साथ लेकर गंगानंदन भीष्मकी रक्षा करने लगे। उन महारथियोंमें बाह्लीक, कृतवर्मा, शल, शल्य, जलसन्ध, विकर्ण, चित्रसेन, विविंशति इत्यादि वीर थे [illegible] वह कठिन समय जानकर उन्होंने भीष्मके चारों ओर वलय बनाकर सबोंने एक ही समय श्वेतके ऊपर बाणोंकी वृष्टि शुरू की। परन्तु बुद्धिमान श्वेतने क्षण की भी देरी न करके ऐसा हस्त लाघव प्रकट किया कि, जिस प्रकार सिंह हाथियोंका निवारण करता है उसी प्रकार उस अकेलेने ही सबोंका निवारण किया और भीष्म पर प्रहार करके उनका धनुष्य तोड दिया। (६३-६६)

[illegible]

शिरश्चिच्छेद भल्लेन संक्रुद्धोऽलघुविक्रमः ।
हताश्वसूतात्स रथादवप्लुत्य महाबलः ॥ ७७ ॥
अमर्षवशमापन्नो व्याकुलः समपद्यत ।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं श्वेतं दृष्ट्वा पितामहः ॥ ७८ ॥
ताडयामास निशितैः शरसङ्घैः समन्ततः ।
स ताड्यमानः समरे भीष्मचापच्युतैः शरैः ॥ ७९ ॥
स्वरथे धनुरुत्सृज्य शक्तिं जग्राह काञ्चनीम् ।
ततः शक्तिं रणे श्वेतो जग्राहोग्रां महाभयाम् ॥ ८० ॥
कालदण्डोपमां घोरां मृत्योर्जिह्वामिव श्वसन् ।
अब्रवीच्च तदा श्वेतो भीष्मं शान्तनवं रणे ॥ ८१ ॥
तिष्ठेदानीं सुसंरब्धः पश्य मां पुरुषो भव ।
एवमुक्त्वा महेष्वासो भीष्मं युधि पराक्रमी ॥ ८२ ॥
ततः शक्तिममेयात्मा चिक्षेप भुजगोपमाम् ।
पाण्डवार्थे पराक्रान्तस्तवाऽनर्थं चिकीर्षुकः ॥ ८३ ॥
हाहाकारो महानासीत्पुत्राणां ते विशाम्पते ।
दृष्ट्वा शक्तिं महाघोरां मृत्योर्दण्डसमप्रभाम् ॥ ८४ ॥

तोड दिया और एक बाणसे सारथीका सिर काट दिया । ऐसा घोर पराक्रम भीष्मने दिखाया ॥ (७२—७७)

रथके घोडे और सारथी मारे गये यह देख कर श्वेतने रथके नीचे कूद कर क्रोधसे मूर्छितसा हो गया । महारथी श्वेत रथसे रहित हो गया यह देख कर भीष्मपितामहने तीक्ष्ण बाणोंको धारा और से मारना शुरू किया । भीष्मके बाणोंसे अपने शरीरपर बडे आघात हो रहे हैं यह देख कर श्वेतने अपना धनुष रथपर रखकर बडी उग्र स्वर्णमयी शक्ति हाथमें ली । मृत्युकी जिव्हा तथा कालदंड के समान भयंकर उस शक्तिको हाथमें लेकर वेगसे श्वास छोडता हुआ वीर श्वेत भीष्मसे बोला— " अब जोरके साथ खडा रह, डरकर मत पीछे हट, मर्द बन कर सामना कर, मैं अब तुझे अपना पराक्रम दिखा देता हूं, देख तो सही । " ऐसा कह कर पाण्डवोंका हित और तेरा नाश करनेकी इच्छा करनेवाले उस पराक्रमी वीरने सर्पके समान दारुण शक्ति भीष्मपर छोड दी ।" (७८—८३)

इन्द्र वज्रके समान महानाद और घंटियोंसे निकले हुए [illegible] समान

श्वेतः क्रोधसमाविष्टो भ्रामयित्वा तु तां गदाम्॥९२॥
रथं भीष्मस्य चिक्षेप यथा देवो धनेश्वरः।
तया भीष्मनिपातिन्या स रथो भस्मसात्कृतः॥९३॥
सध्वजः सह सूतेन साश्वः सयुगबन्धुरः।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं भीष्मं दृष्ट्वा रथोत्तमाः ॥ ९४ ॥
अभ्यधावन्त सहिताः शल्यप्रभृतयो रथाः।
ततोऽन्य रथमास्थाय धनुर्विस्फार्य दुर्मनाः ॥ ९५ ॥
शनकैरभ्ययाच्छ्वेतं गाङ्गेयः प्रहसन्निव।
एतस्मिन्नन्तरे भीष्मः शुश्राव विपुलां गिरम् ॥ ९६ ॥
आकाशादीरितां दिव्यामात्मनो हितसम्भवाम्।
भीष्म भीष्म महाबाहो शीघ्रं यत्न कुरुष्व वै॥ ९७ ॥
एष ह्यस्य जये कालो निर्दिष्टो विश्वयोनिना।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं देवदूतेन भाषितम् ॥ ९८ ॥
सम्प्रहृष्टमना भूत्वा वधे तस्य मनो दधे।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं श्वेतं दृष्ट्वा पदातिनम् ॥ ९९ ॥
सहितास्त्वभ्यवर्तन्त परीप्सन्तो महारथाः।

कूद कर बैठ गये। श्वेत क्रोधसे इतना अंधा हुआ कि उसके आंखोंसे कुछ भी दीखता न था, उन्होंने गदा को घुमा घुमा कर कुबेर के समान उस गदा को भीष्मके रथ पर फेंक दिया। भीष्मके लिये फेंकी हुई उस गदासे भीष्मका रथ, ध्वजा, सारथी, घोडे धुरा आदि सब चूर्ण हो गया। जब भीष्म रथ हीन हुए तब शल्य आदि महारथी उनके पास दौडते हुए आ पहुंचे॥ (९३-९४)

पश्चात् दूसरे रथपर सवार होकर भीष्मने अपना धनुष्य खींचा और मनमें खिन्न चित्त होकर भी [illegible] थोडे थोडे हंसते हुए उन्होंने श्वेतको संबोधित किया। इतनेमें, "हे भीष्म! हे भीष्म! हे महा बाहो! जल्दी यत्न करो मत ठहर जाओ; क्योंकि शत्रुपर जय प्राप्त करनेका यही अवसर है, यह विश्वकर्माने पहिले ही निश्चित किया है. इसलिये उसका साधन करो॥ (९५-९८)

भीष्माचार्यने यह आकाशवाणी विशेष स्पष्ट शब्दोंमें सुनी, तब बहुत हर्षित होकर श्वेतके वधके लिये उन्होंने अपनी तैयारी की। इधर महारथी श्वेत विरथ और पादचारी हुआ देख कर पाण्डवोंके महारथी उसकी सहायतार्थ

आजघ्ने भरतश्रेष्ठस्त्रिभिः सन्नतपर्वभिः ।
सात्यकिं च शतेनाऽऽजौ भरतानां पितामहः ॥ १०९ ॥
धृष्टद्युम्नं च विंशत्या कैकेयं चाऽपि पञ्चभिः ।
तांश्च सर्वान्महेष्वासान्पिता देवव्रतस्तव ॥ ११० ॥
वारयित्वा शरैर्घोरैः श्वेतमेवाऽभिदुद्रुवे ।
ततः शरं मृत्युसमं भारसाधनमुत्तमम् ॥ १११ ॥
विकृष्य बलवान्भीष्मः समाधत्त दुरासदम् ।
ब्रह्मास्त्रेण सुसंयुक्तं तं शरं लोमवाहिनम् ॥ ११२ ॥
ददृशुर्देवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
स तस्य कवचं भित्वा हृदयं चाऽमितौजसः ॥११३ ॥
जगाम धरणीं बाणो महाशनिरिव ज्वलन् ।
अस्तं गच्छन्यथाऽऽदित्यः प्रभामादाय सत्वरः ॥११४॥
एवं जीवितमादाय श्वेतदेहाज्जगाम ह ।
तं भीष्मेण नरव्याघ्रं तथा विनिहतं युधि ॥ ११५ ॥
प्रपतन्तमपश्याम गिरेः शृङ्गमिव च्युतम् ।
अशोचन्पाण्डवास्तत्र क्षत्रियाश्च महारथाः ॥ ११६ ॥

को, धृष्टद्युम्नको बीस और कैकेय को पांच बाण मारे। इस प्रकार उन सब महारथियोंका घोर बाणोंसे निवारण कर के अकेले श्वेत के पास आक्रमण किया ॥ (१०८-११०)

तब बलशाली भीष्मने अत्यंत बलवान, किसीसे भी पकडा न जानेवाला, पर लगा हुआ, साक्षात मृत्युरूप और ब्रह्मास्त्रसे मंत्रित एक बाण धनुष्यपर लगाया। उस समय देव, गन्धर्व पिशाच, उरग, राक्षस, इन सबकी आंखे उस बाणकी ओर लगी। वह बाण धनुष्य से निकलतेही श्वेतका कवच और हृदय भेदन करके भूमिमें घुस गया। सायं काल जिस प्रकार भगवान सूर्य जगत्‌का सब तेज साथ लेकर अस्तको जाते हैं, ठीक उस प्रकार वह बाण अतितेजस्वी वीर श्वेतके देहकी चैतन्य ज्योतिको साथ लेकर रसातल को प्रविष्ट हो गया ॥ (१११-११५)

जिस प्रकार पर्वत का शिखर गिर जाता है उस प्रकार वह नरश्रेष्ठ महादेही श्वेत भीष्मके बाणसे मृत होकर गिर गया यह हमने देखा। पाण्डव और पाण्डव पक्षके [illegible] लोगोंने [illegible] बहुत शोक प्रकट किया। तब मेरे

प्रहृष्टाश्च सुतास्तुभ्यं कुरवश्चाऽपि सर्वशः।
ततो दुःशासनो राजञ्श्वेतं दृष्ट्वा निपातितम् ॥ ११७ ॥
वादित्रनिनदैर्घोरैर्नृत्यति स्म समन्ततः।
तस्मिन्हते महेष्वासे भीष्मेणाऽऽहवशोभिना ॥११८॥
प्रावेपन्त महेष्वासाः शिखण्डिप्रमुखा रथाः।
ततो धनञ्जयो राजन्वार्ष्णेयश्चाऽपि सर्वशः ॥ ११९ ॥
अवहारं शनैश्चक्रुर्निहते वाहिनीपतौ।
ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च भारत ॥ १२० ॥
तावकानां परेषां च नर्दतां च मुहुर्मुहुः ॥
पार्था विमनसो भूत्वा न्यवर्तन्त महारथाः।
चिन्तयन्तो वधं घोरं द्वैरथेन परन्तपाः ॥ १२१ ॥ [१९७८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि
भीष्मवधपर्वणि श्वेतवधेऽष्टाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—श्वेते सेनापतौ तात संग्रामे निहते परैः।
किमकुर्वन्महेष्वासाः पञ्चाला पाण्डवैः सह ॥ १ ॥
सेनापतिं समाकर्ण्य श्वेतं युधि निपातितम्।
तदर्थं यततां चाऽपि परेषां प्रपलायिनाम् ॥ २ ॥

पुत्र तथा सब कौरव आनंदित हुए! हे राजन्! श्वेतका पतन सुनकर तेरा पुत्र दुःशासन जोरसे रणभेरी बजाते हुए आनंदसे नाचनेही लगा॥ ११५-११८

रणशूर भीष्म ने ऐसा बडा महारथी धनुर्धारी भी गिरा दिया यह देखकर शिखंडी प्रभृति पांडवपक्षके महा धनुर्धर डरने कांपने लगे। नंतर सेनापति श्वेत मारागया यह देखकर अर्जुन और वृष्णिकुलोत्पन्न कृष्ण इन दोनोंने अपने सब सैन्य पीछे हटाये॥ यह सैन्य पीछे हटने के समय तेरे पुत्रोंके तथा शत्रुओंके सब सैन्य वारंवार रणशब्दका पुकार कर रहे थे। परंतु पांडव खिन्न हुए और इस द्वैरथ युद्धमें भीष्मके किये इस श्वेतके वधके विषयमें वारंवार विचार करते हुए वे वापस हुए॥ (११८-१२१) १९७८

भीष्मपर्वमें अडतालीस अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें उनचास अध्याय।

धृतराष्ट्र बोले-हे संजय! शत्रुओंके द्वारा सेनापति श्वेत का वध हुआ देख कर महाधनुर्धर पाडवों और पांचालवीरों ने क्या किया? सेनापति श्वेत युद्धमें मारा गया और उसके लिये सहायता

मनः प्रीणाति मे वाक्यं जयं सञ्जय शृण्वतः ।
प्रत्युपायं चिन्तयन्तः सज्जनाः प्रस्रवन्ति मे ॥ ३ ॥
स हि वीरोऽनुरक्तश्च वृद्धः कुरुपतिस्तदा ।
कृतं वैरं सदा तेन पितुः पुत्रेण धीमता ॥ ४ ॥
तस्योद्वेगभयाच्चाऽपि संश्रितः पाण्डवान्पुरा ।
सर्वं बलं परित्यज्य दुर्गं संश्रित्य तिष्ठति ॥ ५ ॥
पाण्डवानां प्रतापेन दुर्गं देशं निवेश्य च ।
सपत्नान्सततं बाधन्नार्यवृत्तिमनुष्ठितः ॥ ६ ॥
आश्चर्यं वै सदा तेषां पुरा राज्ञां सुदुर्मतिः ।
ततो युधिष्ठिरे भक्तः कथं सञ्जय सूदितः ॥ ७ ॥
प्रक्षिप्तः स्वल्पमनः क्षुद्रः पुत्रो मे पुरुषाधमः ।
न युद्धं रोचयेद्भीष्मो न चाऽऽचार्यः कथञ्चन ॥ ८ ॥
न कृपो न च गान्धारी नाऽहं सञ्जय रोचये ।
न वासुदेवो वार्ष्णेयो धर्मराजश्च पाण्डवः ॥ ९ ॥
न भीमो नाऽर्जुनश्चैव न यमौ पुरुषर्षभौ ।

करनेवाले शत्रु भी भागगये ॥ यह जय की कथा श्रवण करके मेरा मन आनंदित होगया है । मेरे सज्जन मित्र भी युद्धमें जय प्राप्त करनेका उपाय सोचही रहे हैं ॥ वृद्ध कुरुपति वीर भीष्म सदा हमारा हितकारी ही है । पिताके सच्चे पुत्र इस बुद्धिमान वीरने अच्छी प्रकार वैरका बदला लिया ॥ उसके डरसेही पूर्वकालमें उन्होंने पाण्डवोंका आश्रय किया था । और वह सब सैन्य छोडकर दुर्गका आश्रय करके ही रहा था । पाण्डवोंके प्रतापसे दुर्गका आश्रय करके आर्यवृत्ति का आश्रय करता हुआ शत्रुओंको बाधा करता था । यह आश्चर्य ही होता है कि [illegible]

वह युधिष्ठिर का भक्त दुष्टबुद्धि राजा औरोंकी सहायता होते हुए भी कैसा मारा गया ? वस्तुतः मेरा पुत्र ही दुष्टबुद्धि और महानीच है । सचमुच देखा जाय तो यह युद्ध कोई भी भला मनुष्य पसंद नहीं करेगा ॥ भीष्म तथा द्रोणभी इस युद्ध को पसंद नहीं करते थे । कृपाचार्य तथा गांधारी भी इस युद्धके प्रतिकूल थे ॥ और हे संजय ! स्वयं मैं भी इसके विरुद्ध हूं । तथा विरुद्ध पक्षके पांडवादि वीरोंको भी यह युद्ध अभीष्ट नहीं था । [illegible] युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, [illegible] सहदेव, [illegible] भी, युद्ध को पसंद नहीं करते थे

वार्यमाणो मया नित्यं गान्धार्या विदुरेण च ॥ १० ॥
जामदग्न्येन रामेण व्यासेन च महात्मना।
दुर्योधनो युध्यमानो नित्यमेव हि सञ्जय ॥ ११ ॥
कर्णस्य मतमास्थाय सौबलस्य च पापकृत्।
दुःशासनस्य च तथा पाण्डवानन्वचिन्तयत् ॥ १२ ॥
तस्याऽहं व्यसनं घोरं मन्ये प्राप्तं तु सञ्जय।
श्वेतस्य च विनाशेन भीष्मस्य विजयेन चः ॥ १३ ॥
संक्रुद्धः कृष्णसहितः पार्थः किमकरोद्युधि।
अर्जुनाद्धि भयं भूयस्तन्मे तात न शाम्यति ॥ १४ ॥
स हि शूरश्च कौन्तेयः क्षिप्रकारी धनञ्जयः।
मन्ये शरैः शरीराणि शत्रूणां प्रमथिष्यति ॥ १५ ॥
ऐन्द्रिमिन्द्रानुजसमं महेन्द्रसदृशं बले।
अमोघक्रोधसङ्कल्पं दृष्ट्वा वः किमभून्मनः ॥ १६ ॥

हे संजय! मैं. तथा गांधारी और विदुर प्रतिदिन हमारे पुत्र दुर्योधनका निषेधही कर रहे थे ॥ (१-१०)

इसके अतिरिक्त जामदग्न्य परशुराम तथा व्यास मुनि इसका निषेधही करते रहे ॥ परंतु उस दुष्टने हमारे उपदेशको न सुनते हुए कर्ण, शकुनि और दुःशासनका वचन स्वीकार कर युद्धका आग्रह किया और पांडवोंके अंशका योग्य विचार न करते हुए उनमे वैसाही विचार किया॥ हे संजय! उसकी दुष्ट बुद्धि का दुष्ट फल मिलनेका यह अवसर आया है. ऐसाही मैं समझता हूं ॥ (११-१३)

भीष्मका जय हुआ. श्वेत सेनापति मारा गया, यह देखकर दुर्योधन आनं- इससे भिन्न ही है ॥ क्योंकि इस श्वे[त] वधके कारण कृष्ण और अर्जुन अ[ति] क्रुद्ध हो जायगे और वे इस युद्धमें क्य[ा] करेंगे इसका कोई नियम नहीं है ॥ [हे] संजय! अर्जुन का नाम सुनते ही डर[से] मैं कांपता हूं और कभी मुझे शांति नह[ीं] मिलती है ॥ क्योंकि वास्तविक अर्जुन से ही हमारे पक्ष वालोंको डर है ॥ व[ह] धनंजय बडा शूर और बडा ही चतुर है इस लिये मुझे प्रतीत होता है कि व[ह] शस्त्र प्रहारसे शत्रुओंके शरीरके टुकडे टुकडे कर देगा ॥ (१३-१५)

इन्द्रपुत्र धनंजय पराक्रममें इन्द्रके बराबरीका वीर है और उसके संकल्प और क्रोध कदापि वृथा नहीं जाते हैं।

तथैव वेदविच्छूरो ज्वलनार्कसमद्युतिः ।
इन्द्रास्त्रविदमेयात्मा प्रपतन्समितिञ्जयः ॥ १७ ॥
वज्रसंस्पर्शरूपाणामस्त्राणां च प्रयोजकः ।
सखड्गाक्षेपहस्तस्तु घोषं चक्रे महारथः ॥ १८ ॥
स सञ्जय महाप्राज्ञो द्रुपदस्याऽऽत्मजो बली ।
धृष्टद्युम्नः किमकरोच्छ्वेते युधि निपातिते ॥ १९ ॥
पुरा चैवाऽपराधेन वधेन च चमूपतेः ।
मन्ये मनः प्रजज्वाल पाण्डवानां महात्मनाम् ॥२०॥
तेषां क्रोधं चिन्तयंस्तु अहःसु च निशासु च ।
न शान्तिमधिगच्छामि दुर्योधनकृतेन हि ।
कथं चाऽभून्महायुद्धं सर्वमाचक्ष्व सञ्जय ॥ २१ ॥
सञ्जय उवाच—शृणु राजन्स्थिरो भूत्वा तवाऽपनयनो महान् ।
न च दुर्योधने दोषमिममाधातुमर्हसि ॥ २२ ॥

को है और वह स्वयं पूर्ण धनुर्वेदका ज्ञानी, शूर, सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी, महाशय तथा इन्द्रके शस्त्रास्त्र जाननेवाला है। वह जब शत्रुपर चढाई करेगा उस समय उसकी ही विजय होगा ॥ वह ऐसे ऐसे अस्त्र छोडता है कि उनमेंसे एक एक भी शत्रुको दुःसह हो जाता है ॥ वह तलवार चलानेमें बडा प्रवीण है, इसका सिंहनाद भी बडा भयङ्कर है ॥ इस प्रकार वह अर्जुन अपूर्व महारथी है ॥ हे सञ्जय! कहो तो सही उसे देख कर तुम्हारे मनकी अवस्था कैसी बनती है? मैं तो उसे बहुत घबराता हूं ॥ (१५-१८)

हे सञ्जय! युद्धमें जब श्वेत मारा गया तब द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्नने क्या किया? मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि पहिले से ही दुर्योधनने उसके अनेक अपराध किये थे, जब उसका सेनापति श्वेत मारागया तब महात्मा पाण्डवोंका मन अति सतप्त हुआ होगा ॥ उनके क्रोधका स्वरूप मेरे नेत्रोंके सन्मुख सदा खडा रहता है। और दुर्योधनके लिये मुझे अति भय उत्पन्न हो रहा है। किसी प्रकार मुझे शान्ति नहीं होती। इस लिये हे सञ्जय! वह महायुद्ध कैसा हुआ यह वृत्तान्त थोडासा कुछ भी न छोडते हुए मुझे कहो ॥ (१९-२१)

सञ्जय बोले- राजन्! स्थिर हो जाओ और दुर्योधनके ऊपर अन्याय का दोष न लगाते हुए [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] देखो। क्यों

वार्यमाणो मया नित्यं गान्धार्या विदुरेण च ॥ १० ॥
जामदग्न्येन रामेण व्यासेन च महात्मना ।
दुर्योधनो युध्यमानो नित्यमेव हि सञ्जय ॥ ११ ॥
कर्णस्य मतमास्थाय सौबलस्य च पापकृत् ।
दुःशासनस्य च तथा पाण्डवानन्वचिन्तयत् ॥ १२ ॥
तस्याऽहं व्यसनं घोरं मन्ये प्राप्तं तु सञ्जय ।
श्वेतस्य च विनाशेन भीष्मस्य विजयेन च ॥ १३ ॥
संक्रुद्धः कृष्णसहितः पार्थः किमकरोद्युधि ।
अर्जुनाद्धि भयं भूयस्तन्मे तात न शाम्यति ॥ १४ ॥
स हि शूरश्च कौन्तेयः क्षिप्रकारी धनञ्जयः ।
मन्ये शरैः शरीराणि शत्रूणां प्रमथिष्यति ॥ १५ ॥
ऐन्द्रिमिन्द्रानुजसमं महेन्द्रसदृशं बले ।
अमोघक्रोधसङ्कल्पं दृष्ट्वा वः किमभून्मनः ॥ १६ ॥

हे संजय! मैं, तथा गांधारी और विदुर प्रतिदिन हमारे पुत्र दुर्योधनका निषेधही कर रहे थे ॥ (९–१०)

इसके अतिरिक्त जामदग्न्य परशुराम तथा व्यास मुनि इसका निषेधही करते रहे ॥ परंतु उस दुष्टने हमारे उपदेशको न सुनते हुए कर्ण, शकुनि और दुःशासनका वचन स्वीकार कर युद्धका आरंभ किया और पांडवोंके अंशका थोडा विचार न करते हुए उनसे वैसाही विचार किया। हे संजय! उसकी दुष्ट बुद्धि का दुष्ट फल मिलनेका यह अवसर आया है, ऐसाही मैं समझता हूं ॥ (११-१३)

भीष्मका जय हुआ, श्वेत सेनापति मारा गया, यह देखकर दुर्योधन आनंदसे पूर्ण हुआ होगा, परंतु मेरा मन इससे भिन्न ही है ॥ क्योंकि इस श्वेत वधके कारण कृष्ण और अर्जुन अति क्रुद्ध हो जायंगे और वे इस युद्धमें क्या करेंगे इसका कोई नियम नहीं है ॥ हे संजय! अर्जुन का नाम सुनते ही डरसे मैं कांपता हूं और कभी मुझे शांति नहीं मिलती है ॥ क्योंकि वास्तविक अर्जुन से ही हमारे पक्ष वालोंको डर है ॥ वह धनंजय बडा शूर और बडा ही चतुर है। इस लिये मुझे प्रतीत होता है कि वह शस्त्र प्रहारसे शत्रुओंके शरीरोंके टुकडे टुकडे कर देगा ॥ (१३–१५)

इन्द्रपुत्र धनंजय पराक्रमसे इन्द्रके बराबरीका वीर है और उसके संकल्प और क्रोध कदापि वृथा नहीं जाते है ॥ तथा उपेन्द्र कृष्णकी पूर्ण सहायता उस-

तथैव वेदविच्छूरो ज्वलनार्कसमद्युतिः ।
इन्द्रास्त्रविदमेयात्मा प्रपतन्समितिंजयः ॥ १७ ॥
वज्रसंस्पर्शरूपाणामस्त्राणां च प्रयोजकः ।
सखड्गाक्षेपहस्तस्तु घोषं चक्रे महारथः ॥ १८ ॥
स सञ्जय महाप्राज्ञो द्रुपदस्याऽऽत्मजो बली ।
धृष्टद्युम्नः किमकरोच्छ्वेते युधि निपातिते ॥ १९ ॥
पुरा चैवाऽपराधेन वधेन च चमूपतेः ।
मन्ये मनः प्रजज्वाल पाण्डवानां महात्मनाम् ॥२०॥
तेषां क्रोधं चिन्तयंस्तु अहःसु च निशासु च ।
न शान्तिमधिगच्छामि दुर्योधनकृतेन हि ।
कथं चाऽभून्महायुद्धं सर्वमाचक्ष्व सञ्जय ॥ २१ ॥
सञ्जय उवाच—शृणु राजन्स्थिरो भूत्वा तवाऽपनयनो महान् ।
न च दुर्योधने दोषमिममाधातुमर्हसि ॥ २२ ॥

को है और वह स्वयं पूर्ण धनुर्वेदका ज्ञानी, शूर, सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी, महाशय तथा इन्द्रके शस्त्रास्त्र जाननेवाला है। वह जब शत्रुपर चढाई करेगा उस समय उसका ही विजय होगा ॥ वह ऐसे ऐसे अस्त्र छोडता है कि उनमेसे एक एक भी शत्रुको दुःसह हो जाता है ॥ वह तलवार चलानेमे बडा प्रवीण है, उसका सिंहनाद भी बडा भयंकर है ॥ इस प्रकार वह अर्जुन अपूर्व महारथी है ॥ हे सञ्जय! कहो तो सही उसे देख कर तुम्हारे मनकी अवस्था कैसी बनती है? मैं तो उसे बहुत डरता हूं ॥ (१५-१८)

हे सञ्जय! जबसे वह श्वेत मारा गया तब द्रुपद एवं धृष्टद्युम्नने क्या किया? मुझे ऐसा प्रतीत होता है, कि पहिले से ही दुर्योधनने उसके अनेक अपराध किये थे, अब उसका सेनापति श्वेत मारागया तब महात्मा पाण्डवोंका मन अति सतप्त हुआ होगा ॥ उनके क्रोधका स्वरूप मेरे नेत्रोंके सन्मुख सदा खडा रहता है। और दुर्योधनके लिये मुझे अति भय उत्पन्न हो रहा है। किसी प्रकार मुझे शान्ति नहीं होती। इस लिये हे सञ्जय! यह महायुद्ध कैसा हुआ यह वृत्तान्त कुछ भी न छोडते हुए मुझे कहो ॥ (१९-२१)

सञ्जय बोले- राजन्! स्थिर हो जाओ और दुर्योधनके अपराध का वर्णन न करते हुए अपने ही दोष [illegible] का फल कैसा प्राप्त हुआ सो देखो। [illegible]

गतोदके सेतुबन्धो यादृक्तादृङ्मतिस्तव।
सन्दीप्ते भवने यद्वत्कूपस्य खननं तथा ॥ २३ ॥
गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि दारुणे।
तावकानां परेषां च पुनर्युद्धमवर्तत ॥ २४ ॥
श्वेतं तु निहतं दृष्ट्वा विराटस्य चमूपतिम्।
कृतवर्मणा च सहितं दृष्ट्वा शल्यमवस्थितम् ॥ २५ ॥
शङ्खः क्रोधात्प्रजज्वाल हविषा हव्यवाडिव।
स विस्फार्य महच्चापं शक्रचापोपमं बली ॥ २६ ॥
अभ्यधावज्जिघांसन्वै शल्यं मद्राधिपं युधि।
महता रथसंघेन समन्तात्परिरक्षितः ॥ २७ ॥
सृजन्बाणमयं वर्षं प्रायाच्छल्यरथं प्रति।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मत्तवारणविक्रमम् ॥ २८ ॥
तावकानां रथाः सप्त समन्तात्पर्यवारयन्।
मद्रराजं परीप्सन्तो मृत्योर्दंष्ट्रान्तरं गतम् ॥ २९ ॥
बृहद्बलश्च कौसल्यो जयत्सेनश्च मागधः।
तथा रुक्मरथो राजन्पुत्रः शल्यस्य मानितः ॥ ३० ॥

कि "मैंने दुर्योधन का निषेध किया" ऐसा अभी तुमने कहा। परंतु वह तुम्हारा करना ऐसाही निष्फल था जैसा पानी बह जानेके बाद बंध लगाना अथवा घर जलनेके बाद कुआ खोदना व्यर्थ होता है। क्योंकि अवसर समयमें उपदेश करना व्यर्थ ही होता है। २०-२३

उसी दिन प्रायः दोपहरका तीन चौथाई समय व्यतीत होनेके पश्चात् दोनों दलोंका युद्ध फिर शुरू हुआ। विराटका सेनापति श्वेत मारा गया और शल्य कृतवर्माके रथमें उसके साथ बैठ गया यह देखके ही पुत्र शंख अग्निके समान विराट पुत्र शंख क्रोधसे जलने लगा। वह अपना इन्द्रचाप के समान प्रबल धनुष्य लगा कर मद्रपति शल्यके ऊपर दौडा, उस समय उसके चारों ओर रथोंका घेर लगा हुआ था ॥ २४-२७

बाणोंकी वृष्टि करता हुआ वह शंख शल्यके रथके पास पहुंचा। मतवारे हाथीके समान वह पराक्रमी वीर शल्य पर चढाई करेगा यह देखते ही शल्य को मृत्युमें बचानेके लिये तुम्हारे पक्षके सात वीरोंने उसे घेर लिया। वे सात वीर मागधराज जयत्सेन, शल्यपुत्र रुक्मरथ, अवन्ती देशके राजा विंद, और अनुविंद,

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च सुदक्षिणः।
बृहत्क्षत्रस्य दायादः सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ ३१ ॥
नानाधातुविचित्राणि कार्मुकाणि महात्मनाम्।
विस्फारितान्यदृश्यन्त तोयदेष्विव विद्युतः ॥ ३२ ॥
ते तु बाणमयं वर्षं शङ्खमूर्ध्नि न्यपातयन्।
निदाघान्तेऽनिलोद्धूता मेघा इव नगे जलम् ॥ ३३ ॥
ततः क्रुद्धो महेष्वासः सप्तभल्लैः सुतेजनैः।
धनूंषि तेषामाच्छिद्य ननर्द पृतनापतिः ॥ ३४ ॥
ततो भीष्मो महाबाहुर्विनद्य जलदो यथा।
तालमात्रं धनुर्गृह्य शङ्खमभ्यद्रवद्रणे ॥ ३५ ॥
तमुद्यन्तमुदीक्ष्याऽथ महेष्वासं महाबलम्।
सन्त्रस्ता पाण्डवी सेना वातवेगहतेव नौः ॥ ३६ ॥
ततोऽर्जुनः सन्त्वरितः शङ्खस्याऽऽसीत्पुरःसरः।
भीष्माद्रक्ष्योऽयमद्येति ततो युद्धमवर्तत ॥ ३७ ॥
हाहाकारो महानासीद्योधानां युधि युध्यताम्।

काम्बोज पति सुदक्षिण, और बृहत्क्षत्रका संबंधी सिंधुपति जयद्रथ ये थे। २८-३१

इन महात्माओंने नाना धातुओंसे चित्रविचित्र बने हुए अपने अपने धनुष्य जब खींचकर तैयार किये, तब मेघोंपर चमकने वाली बिजुलियोंका भास होने लगा। उष्ण ऋतुके अंतमें जिस प्रकार वायुसे चलाये मेघ पर्वत शिखरोंपर वृष्टि करते हैं, उस प्रकार इन वीरोंने शङ्ख के सिरपर बाणोंकी वृष्टि की ॥ तब वह महा धनुर्धर बलाढ्य क्रोधित हुआ। तब उस सेनापतिने उत्तम तीक्ष्ण सात बाणोंसे इनके धनुष्य काट डाले और बड़ा शब्द किया। ३२-३४

इसके अनन्तर महाबाहु भीष्म बादलके समान गर्जते हुए ताल प्रमाण धनुषको धारण करके शङ्खपर दौडे ॥ महा धनुर्धारी अत्यन्त बली भीष्मको आता हुआ देखकर पांडवोंकी सेना भय भीत होकर इस प्रकारसे तितर बितर होगई, जैसे वायुके वेगसे नौका इधरकी उधर होजाती है।" (३५-३६)

इस समय शङ्खकी रक्षा करना कर्तव्य कर्म समझकर अर्जुन [illegible] सहित शङ्खके आगे होनेसे तब युद्ध आरम्भ हुआ। इस समय युद्ध करनेवाले वीर योद्धाओंका बहुत बड़ा हाहाकार शब्द होने लगा, एक तेज दूसरे तेजसे मिलने

तेजस्तेजसि सम्पृक्तमित्येवं विस्मयं ययुः ॥ ३८ ॥
अथ शल्यो गदापाणिरवतीर्य महारथात्।
शङ्खस्य चतुरो वाहानहनद्भरतर्षभ ॥ ३९ ॥
स हताश्वाद्रथात्तूर्णं खड्गमादाय विद्रुतः।
बीभत्सोश्च रथं प्राप्य पुनः शान्तिमविन्दत ॥ ४० ॥
ततो भीष्मरथात्तूर्णमुत्पतन्ति पतत्रिणः।
यैरन्तरिक्षं भूमिश्च सर्वतः समवस्तृता ॥ ४१ ॥
पञ्चालानथ मत्स्यांश्च केकयांश्च प्रभद्रकान्।
भीष्मः प्रहरतां श्रेष्ठः पातयामास पत्रिभिः ॥ ४२ ॥
उत्सृज्य समरे राजन्पाण्डवं सव्यसाचिनम्।
अभ्यद्रवत पाञ्चाल्यं द्रुपदं सेनया वृतम् ॥ ४३ ॥
प्रियं सम्बन्धिनं राजञ्शरानवकिरन्बहून्।
अग्निनेव प्रदग्धानि वनानि शिशिरात्यये ॥ ४४ ॥
शरदग्धान्यदृश्यन्त सैन्यानि द्रुपदस्य ह।
अत्यतिष्ठद्रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥ ४५ ॥
मध्यन्दिने यथाऽऽदित्यं तपन्तमिव तेजसा।

लगे, — इसे देख कर सब आश्चर्य करने लगे॥ उधर शल्यने हाथमें गदा लेकर कृतवर्माके रथसे उतर कर शङ्खके रथमें जुते हुए चारों घोड़ोंको मार डाला। घोड़ोंके मारे जाने पर शङ्ख तलवार ग्रहण कर रथसे शीघ्र ही उतरे और अर्जुनके रथ पर चढ़के शान्ति अवलम्बन की॥ (३८-४०)

इसके अनन्तर भीष्मके रथसे अनेक बाण उनके धनुषसे छूट कर आकाश और पृथ्वी पर दीख पड़ने लगे। हे राजन्! भीष्म उन्हीं बाणोंसे पाञ्चाल, मत्स्य, केकय और प्रभद्रक वीरोंका संहार करने लगे॥ प्रहार करनेवालोंमें श्रेष्ठ भीष्मने अर्जुनको छोड कर बहुतसे बाणोंको चलाते हुए पाञ्चालराजकी सेना तथा प्यारे भाईसे युक्त राजा द्रुपदकी ओर गमन किया॥ राजा द्रुपद और उनकी सेनाको मानो शिशिर ऋतुके अनन्तर अग्निसे भस्म होते हुए वनकी भांति अपने बाणोंसे जलाने लगे। (४१—४५)

भीष्म पितामह धूएंसे रहित अग्निके समान उस समरमें बोध होने लगे॥ जिस प्रकारसे दोपहर दिनके समय अत्यन्त तपते हुए सूर्यके तेजको कोई

न शेकुः पाण्डवेयस्य योधा भीष्मं निरीक्षितुम्॥४६॥
वीक्षाञ्चक्रुः समन्तात्ते पाण्डवा भयपीडिताः ।
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त गावः शीतार्दिता इव ॥४७॥
सा तु यौधिष्ठिरी सेना गाङ्गेयशरपीडिता ।
सिंहेनेव विनिर्भिन्ना शुक्ला गौरिव गोपतेः ॥ ४८ ॥
हते विप्रद्रुते सैन्ये निरुत्साहे विमर्दिते ।
हाहाकारो महानासीत्पाण्डुसैन्येषु भारत ॥ ४९ ॥
ततो भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः ।
मुमोच बाणान्दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव ॥ ५० ॥
शरैरेकायनीकुर्वन्दिशः सर्वा यतव्रतः ।
जघान पाण्डवरथानादिश्याऽऽदिश्य भारत ॥ ५१ ॥
ततः सैन्येषु भग्नेषु मथितेषु च सर्वशः ।
प्राप्ते चाऽस्तं दिनकरे न प्राज्ञायत किञ्चन ॥ ५२ ॥
भीष्मं च समुदीर्यन्तं दृष्ट्वा पार्था महाहवे ।

नहीं सक सकता उसी भांतिसे पाण्डवोंके पक्षके वीर लोग भीष्मकी ओर देखनेसे भी समर्थ नहीं हुए ॥ भयसे विकल होके शीतसे दुःखित गावोंके समूहकी भांति उस समयमें उन लोगोंने चारों ओर किसीको अपना परित्राण करनेवाला होने लगा ॥ शान्तनुनन्दन भीष्म लगातार विषधारी सर्प के समान अपने बाणों को पाण्डवों की सेनापर चलाने लगे॥ उस समय उन का धनुष मण्डलाकार दीखने लगा ॥ दृढ़ व्रत धारण करनेवाले भीष्म बाणों

अवहारमकुर्वन्त सैन्यानां भरतर्षभ ॥ ५३ ॥ [२०३१]

इति श्रीमहाभारते॰भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि शङ्खयुद्धे प्रथमदिवसावहारे एकोनपञ्चाशत्तमोऽध्याय ॥४९॥

सञ्जय उवाच— कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रथमे भरतर्षभ ।
भीष्मे च युद्धसंरब्धे हृष्टे दुर्योधने तथा ॥ १ ॥
धर्मराजस्ततस्तूर्णमभिगम्य जनार्दनम् ।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः सर्वैश्चैव जनेश्वरैः ॥ २ ॥
शुचा परमया युक्तश्चिन्तयानः पराजयम् ।
वार्ष्णेयमब्रवीद्राजन्दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ॥ ३ ॥
कृष्ण पश्य महेष्वासं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
शरैर्दहन्तं सैन्यं मे ग्रीष्मे कक्षमिवाऽनलम् ॥ ४ ॥
कथमेनं महात्मानं शक्ष्यामः प्रतिवीक्षितुम् ।
लेलिह्यमानं सैन्यं मे हविष्मन्तमिवाऽनलम् ॥ ५ ॥
एतं हि पुरुषव्याघ्रं धनुष्मन्तं महाबलम् ।
दृष्ट्वा विप्रद्रुतं सैन्यं समरे मार्गणाहतम् ॥ ६ ॥
शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च संयुगे ।
वरुणः पाशभृच्चापि कुबेरो वा गदाधरः ॥ ७ ॥

न तु भीष्मो महातेजाः शक्यो जेतुं महाबलः ।
सोऽहमेवङ्गते मग्नो भीष्मागाधजलेऽप्लवे ॥ ८ ॥
आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद्भीष्ममासाद्य केशव ।
वनं यास्यामि वार्ष्णेय श्रेयो मे तत्र जीवितुम् ॥ ९ ॥
न त्वेनान्पृथिवीपालान्दातुं भीष्माय मृत्यवे ।
क्षपयिष्यति सेनां मे कृष्ण भीष्मो महास्त्रवित् ॥१०॥
यथाऽनलं प्रज्वलितं पतङ्गाः समभिद्रुताः ।
विनाशायोपगच्छन्ति तथा मे सैनिको जनः ॥ ११ ॥
क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी ।
भ्रातरश्चैव मे वीराः कर्शिताः शरपीडिताः ॥ १२ ॥
मत्कृते भ्रातृहार्देन राज्याद्भ्रष्टास्तथा सुखात् ।
जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम् ॥ १३ ॥
जीवितस्य च शेषेण तपस्तप्स्यामि दुश्चरम् ।
न घातयिष्यामि रणे मित्राणीमानि केशव ॥ १४ ॥

युद्धमें जीतना असम्भव हो सकता है ॥ परन्तु महाबली अत्यन्त पराक्रमी भीष्म को किसी प्रकारसे भी कोई पराजित नहीं कर सकता है ।(६-८)

ऐसी अवस्थामें मैं भीष्मरूपी नौका रहित अथाह जलमें पड़ कर डूब रहा हूं ॥ अपने बुद्धिकी दुर्बलताके कारण मैं रणभूमिमें भीष्मके सम्मुख हुआ हूं इससे तो वनमें ही हमलोगोंको जीवित रहना उत्तम है; इससे अब मैं वनको जानेकी इच्छा करता हूं । इन राजा-ओंको भीष्मरूपी कालके हाथमें सम-र्पण करना उचित नहीं है । महास्त्रोंके जाननेवाले भीष्म मेरी सेनाका [illegible] ही नाश कर देंगे । (९-१०)

जैसे पतङ्ग अपने शरीरके नाशके निमित्त ही दौड कर अग्निमें प्रवेश करते हैं; वैसे ही मेरे सैनिक पुरुष भी भीष्मके समीपमें गमन कर रहे हैं ॥ हे कृष्ण ! मैं राज्यके निमित्त पराक्रमी होकर अपना नाश कर रहा हूं मेरे वीर भाई भी भ्रातृस्नेहसे युक्त होके मेरे ही निमित्त राज्य और सुखसे रहि-त होकर बाणोंसे पीडित और दुःखसे विकल हो रहे हैं ; इस समयमें जीवन ही दुर्लभ है [illegible] रहना ही मैं बहुत [illegible] (११-१३)

मैं [illegible] इस [illegible] जीवनके समय- [illegible]

रथान्मे बहुसाहस्रान्दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः ।
घातयत्यनिशं भीष्मः प्रवराणां प्रहारिणाम् ॥ १५ ॥
किं नु कृत्वा हितं मे स्याद् ब्रूहि माधव मा चिरम् ।
मध्यस्थमिव पश्यामि समरे सव्यसाचिनम् ॥ १६ ॥
एको भीमः परं शक्त्या युध्यत्येव महाभुजः ।
केवलं बाहुवीर्येण क्षत्रधर्ममनुस्मरन् ॥ १७ ॥
गदया वीरघातिन्या यथोत्साहं महामनाः ।
करोत्यसुकरं कर्म रथाश्वनरदन्तिषु ॥ १८ ॥
नाऽलमेष क्षयं कर्तुं परसैन्यस्य मारिष ।
आर्जवेनैव युद्धेन वीर वर्षशतैरपि ॥ १९ ॥
एकोऽस्त्रवित्सखा तेऽयं सोऽप्यस्मान्समुपेक्षते ।
निर्दह्यमानान्भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ॥ २० ॥
दिव्यान्यस्त्राणि भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः ।
धक्ष्यन्ति क्षत्रियान्सर्वान्प्रयुक्तानि पुनः पुनः ॥ २१ ॥
कृष्ण भीष्मः सुसंरब्धः सहितः सर्वपार्थिवैः ।

क्षपयिष्यति नो नूनं यादृशोऽस्य पराक्रमः ॥ २२ ॥
स त्वं पश्य महाभाग योगेश्वर महारथम् ।
भीष्मं यः शमयेत्संख्ये दावाग्निं जलदो यथा ॥ २३ ॥
तव प्रसादाद्गोविन्द पाण्डवा निहतद्विषः ।
स्वराज्यमनुसम्प्राप्ता मोदिष्यन्ते सबान्धवाः ॥ २४ ॥
एवमुक्त्वा ततः पार्थो ध्यायन्नास्ते महामनाः ।
चिरमन्तर्मना भूत्वा शोकोपहतचेतनः ।
शोकार्तं तमथो ज्ञात्वा दुःखोपहतचेतसम् ॥ २५ ॥
अब्रवीत्तत्र गोविन्दो हर्षयन्सर्वपाण्डवान् ।
मा शुचो भरतश्रेष्ठ न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥
यस्य ते भ्रातरः शूराः सर्वलोकेषु धन्विनः ।
अहं च प्रियकृद्राजन्सात्यकिश्च महायशाः ॥ २७ ॥
विराटद्रुपदौ चोभौ धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
तथैव सबलाश्चेमे राजानो राजसत्तम ॥ २८ ॥
त्वत्प्रसादं प्रतीक्षन्ते त्वद्भक्ताश्च विशाम्पते ।

राजाओंके सङ्ग मिलकर अपने पराक्रमके अनुसार क्षत्रियों तथा हम लोगोंका नाश कर देंगे ॥ (२०—२२)

मनको मलिन कर अत्यन्त चिन्ता करने लगे । कृष्णने युधिष्ठिरको दुःख तथा शोकसे आर्त देखकर उन्हें सम्बोधन

एष ते पार्षतो नित्यं हितकामः प्रिये रतः ॥ २९ ॥
सैनापत्यमनुप्राप्तो धृष्टद्युम्नो महाबलः ।
शिखण्डी च महाबाहो भीष्मस्य निधनं किल ॥३०॥
एतच्छ्रुत्वा ततो धर्मो धृष्टद्युम्नं महारथम् ।
अब्रवीत्समितौ तस्यां वासुदेवस्य शृण्वतः ॥३१ ॥
धृष्टद्युम्न निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि मारिष।
नाऽतिक्रम्यं भवेत्तच्च वचनं मम भाषितम् ॥ ३२ ॥
भवान्सेनापतिर्मह्यं वासुदेवेन सम्मितः ।
कार्तिकेयो यथा नित्यं देवानामभवत्पुरा ॥ ३३ ॥
तथा त्वमपि पाण्डूनां सेनानीः पुरुषर्षभ ।
स त्वं पुरुषशार्दूल विक्रम्य जहि कौरवान् ॥ ३४ ॥
अहं च तेऽनुयास्यामि भीमः कृष्णश्च मारिष।
माद्रीपुत्रौ च सहितौ द्रौपदेयाश्च दंशिताः ॥ ३५ ॥
ये चाऽन्ये पृथिवीपालाः प्रधानाः पुरुषर्षभ ।
तत उद्धर्षयन्सर्वान्धृष्टद्युम्नोऽभ्यभाषत ॥ ३६ ॥

की प्रतीक्षा कर रहे है; विशेप करके ये सब लोग तुम्हारे भक्त है। हे महाबाहो ! यह पृपतनन्दन महारथ धृष्टद्युम्न सदासे तुम्हारे प्रियकार्य करनेमें रत होकर सेनापतिके कार्यमें प्रवृत्त हुए है। भीष्म के मृत्युस्वरूप शिखण्डी भी तुम्हारे हितैषी और प्रिय कार्य करनेमें रत हैं। (२९-३०)

इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर कृष्णकी यह बात सुनकर उस सभाके बीच महारथ धृष्टद्युम्नसे यह वचन बोले ॥ हे धृष्टद्युम्न ! मै जो कुछ तुमसे कहता हूं उसे तुम भली भांतिसे सुनो; मेरी बात खाली न जाने पावे ॥ श्रीकृष्णकी संमतिके अनुसार तुमने हमारे सेनापतिके पदको ग्रहण किया है। जिस प्रकारसे पहिले समयमें स्वामिकार्त्तिक सदा ही देवताओंके सेनापति बने थे ॥ हे पुरुपर्षभ ! उसी प्रकारसे तुम भी पाण्डवोंके सेनापति हुए हो। हे पुरुपसिंह ! इससे अब तुम अपने पराक्रमको प्रकाशित करके कौरवोंका नाश करो। (३१-३४)

भीमसेन, कृष्ण, नकुल, सहदेव आदि राजा, द्रौपदीके पुत्र तथा दूसरे प्रधान प्रधान राजा लोग जो युद्धके निमित्त हर्प पूर्वक इकट्ठे हुए है, ये सब तथा हम लोग तुम्हारे पीछे पीछे चलेंगे ॥ (३५-३६)

अहं द्रोणान्तकः पार्थ विहितः शम्भुना पुरा ।
रणे भीष्म कृपं द्रोणं तथा शल्यं जयद्रथम् ॥ ३७ ॥
सर्वांश्च रणे दृप्तान्प्रतियोत्स्यामि पार्थिव ।
अथोत्कृष्टं महेष्वासैः पाण्डवैर्युद्धदुर्मदैः ॥ ३८ ॥
समुद्यते पार्थिवेन्द्रे पार्षते शत्रुसूदने ।
तमब्रवीत्ततः पार्थः पार्षतं पृतनापतिम् ॥ ३९ ॥
व्यूहः क्रौञ्चारुणो नाम सर्वशत्रुनिबर्हणः ।
यं बृहस्पतिरिन्द्राय तदा देवासुरेऽब्रवीत् ॥ ४० ॥
तं यथावत्प्रतिव्यूहं परानीकविनाशनम् ।
अदृष्टपूर्वं राजानः पश्यन्तु कुरुभिः सह ॥ ४१ ॥
यथोक्तः स नृदेवेन विष्णुर्वज्रभृता यथा ।
प्रभाते सर्वसैन्यानामग्रे चक्रे धनञ्जयम् ॥ ४२ ॥
आदित्यपथगः केतुस्तस्याद्भुतमनोरमः ।
शासनात्पुरुहूतस्य निर्मितो विश्वकर्मणा ॥ ४३ ॥

इसके अनन्तर धृष्टद्युम्न वहां पर सबको हर्षित करते हुए यह वचन कहने लगे ॥ हे पार्थ ! भगवान् शङ्करने पहिलेहीसे इसको द्रोणाचार्यका वध करनेहीके वास्ते उत्पन्न किया है । आज से सबके सङ्ग मिल कर व्यूह बांध कर युद्धमें अभिमानी भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य शल्य और जयद्रथ आदि वीरोंके सङ्ग युद्ध करूंगा । (३६—३८)

हे धृष्टद्युम्न ! क्रौञ्चारुण नामका सब शत्रुओंका नाश करनेवाला एक व्यूह है, जिसको देवासुरोंके युद्धके समयमें बृहस्पति ने इन्द्रसे कहा था ॥ शत्रुओंकी सेनाका नाश करनेके निमित्त विधि पूर्वक तुम उसी क्रौञ्चारुण व्यूह की रचना करो, कौरव तथा दूसरे राजा लोग जिसको पहिले कभी नहीं देखा था, उस व्यूहको इस समयमें देखें। (३९-४१)

इन्द्रायुधसवर्णाभिः पताकाभिरलंकृतः ।
आकाशग इवाऽऽकाशे गन्धर्वनगरोपमः ॥ ४४ ॥
नृत्यमान इवाऽऽभाति रथचर्यासु मारिष ।
तेन रत्नवता पार्थः स च गाण्डीवधन्वना ॥ ४५ ॥
बभूव परमोपेतः सुमेरुरिव भानुना ।
शिरोऽभूद्द्रुपदो राजा महत्या सेनया वृतः ॥ ४६ ॥
कुन्तिभोजश्च चैद्यश्च चक्षुर्भ्यां तौ जनेश्वरौ ।
दाशार्णकाः प्रभद्राश्च दाशेरकगणैः सह ॥ ४७ ॥
अनूपकाः किराताश्च ग्रीवायां भरतर्षभ ।
पटच्चरैश्च पौण्ड्रैश्च राजन्पौरवकैस्तथा ॥ ४८ ॥
निषादैः सहितश्चाऽपि पृष्ठमासीद्युधिष्ठिरः ।
पक्षौ तु भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ४९ ॥
द्रौपदेयाभिमन्युश्च सात्यकिश्च महारथः ।
पिशाचा दारदाश्चैव पुण्ड्राः कुण्डीविषैः सह ॥ ५० ॥
मारुता धेनुकाश्चैव तङ्गणाः परतङ्गणाः ।
वाल्हिकास्तित्तिराश्चैव चोलाः पाण्ड्याश्च भारत॥ ५१ ॥

बनाया था, वह पताका सूर्यके मार्गसे गमन करनेवाली होकर अद्भुत रूपसे शोभित होने लगी॥ इन्द्रधनुषके समान वर्णवाला वह ध्वजा सब भांतिसे अलंकृत होकर गन्धर्व नगरकी भांति रथ चलनेके क्रमसे आकाशमण्डलमें मानो नृत्य करती हुई प्रकाशित होने लगी। वह रत्नोंसे युक्त ध्वजा गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनसे और अर्जुन रत्नोंसे भूषित उस ध्वजासे परस्पर ऐसे शोभायमान हुए जैसे सूर्यके समीपमें सुमेरु शोभित होते हैं। (४२—४५)

बडी सेनाके सहित राजा द्रुपद उस क्रौञ्चारुण व्यूहके मस्तक रूप हुए। कुन्तिभोज और चेदिपति दोनों राजा उस व्यूहके नेत्र हुए, दाशेरक वीरोंके सहित प्रभद्र,दशार्ण,अनूप और किरात देशीय राजा लोग उसकी ग्रीवा बने; पटच्चर, पौण्ड्र, पौरवक और निषाद आदि विदेशीय वीरोंके सहित राजा युधिष्ठिर उस व्यूहके पीठ हुए। (४६–४९)

भीमसेन, धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पांचों पुत्र, महारथ अभिमन्यु और सात्यकि ये लोग उसके दोनों पंखोंके मध्यस्थानमें नियत हुए। पिशाच, दारद,पौण्ड्र,कुण्डीविष, मारुत, धेनुक, तङ्गण, परतङ्गण,

एते जनपदा राजन्दक्षिणं पक्षमाश्रिताः ।
अग्निवेशास्तुहुण्डाश्च मालवा दानभारयः ॥ ५२ ॥
शबरा उद्भसाश्चैव वत्साश्च सह नाकुलैः ।
नकुलः सहदेवश्च वामं पक्षं समाश्रिताः ॥ ५३ ॥
रथानामयुतं पक्षौ शिरस्तु नियुतं तथा ।
पृष्ठमर्बुदमेवाऽऽसीत्सहस्राणि च विंशतिः ॥ ५४ ॥
ग्रीवायां नियुतं चापि सहस्राणि च सप्ततिः ।
पक्षकोटिप्रपक्षेषु पक्षान्तेषु च वारणाः ॥ ५५ ॥
जग्मुः परिवृता राजंश्चलन्त इव पर्वताः ।
जघनं पालयामास विराटः सह केकयैः ॥ ५६ ॥
काशिराजश्च शैब्यश्च रथानामयुतैस्त्रिभिः ।
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ॥ ५७ ॥
सूर्योदयं न इच्छन्तः स्थिता युद्धाय दंशिताः ।
तेषामादित्यवर्णानि विमलानि महान्ति च ॥
श्वेतच्छत्राण्यशोभन्त वारणेषु रथेषु च ॥ ५८ ॥ [२०८९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि क्रौञ्चव्यूहनिर्माणे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥

सञ्जय उवाच— क्रौञ्चं दृष्ट्वा ततो व्यूहमभेद्यं तनयस्तव।
रक्ष्यमाणं महाघोरं पार्थेनाऽमिततेजसा ॥ १ ॥
आचार्यमुपसङ्गम्य कृपं शल्यं च पार्थिव।
सौमदत्तिं विकर्णं च सोऽश्वत्थामानमेव च ॥ २ ॥
दुःशासनादीन्भ्रातॄंश्च सर्वानेव च भारत।
अन्यांश्च सुबहूञ्शूरान्युद्धाय समुपागतान् ॥ ३ ॥
प्राहेदं वचनं काले हर्षयंस्तनयस्तव।
नानाशस्त्रप्रहरणाः सर्वे युद्धविशारदाः ॥ ४ ॥
एकैकशः समर्था हि यूयं सर्वे महारथाः।
पाण्डुपुत्रान्रणे हन्तुं ससैन्यान्किमु संहताः ॥ ५ ॥
अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम्।
पर्याप्तमिदमेतेषां बलं भीमाभिरक्षितम् ॥ ६ ॥
संस्थानाः शूरसेनाश्च वेत्रिकाः कुकुरास्तथा।
आरोचकास्त्रिगर्ताश्च मद्रका यवनास्तथा ॥ ७ ॥
शत्रुञ्जयेन सहितास्तथा दुःशासनेन च।
विकर्णेन च वीरेण तथा नन्दोपनन्दकैः ॥ ८ ॥

भीष्मपर्वमें एकावन अध्याय।

सञ्जय बोले, हे महाराज! अत्यन्त तेजस्वी पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरका बनाया हुआ अच्छे प्रकारसे रचित उस क्रौञ्च नामके महाघोर अभेद व्यूहको देखकर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने आचार्य द्रोण, कृपाचार्य, शल्य, सोमदत्त, विकर्ण, अश्वत्थामा और दुःशासन आदि सब भाइयों तथा युद्धके निमित्त आये हुए सब वीर राजाओंको आवाहन करके उन्हें हर्षित करनेके निमित्त समयके अनुसार यह वचन कहा। (१-४)

तुम सब लोग महारथ, शास्त्रके जाननेवाले और नाना प्रकारके शस्त्रोंके चलानेमें समर्थ हो॥ तुम सब कोई अकेले ही पाण्डुपुत्रोंको वध कर सकते हो; तब सब कोई मिलकर तथा सेनाके सहित इकट्ठे होकर जो पाण्डवोंको मारोगे, इसमें कहना ही क्या है?॥ और हमारी सेना अधिक तथा भीष्मसे रक्षित है॥ पाण्डवोंकी थोडी सेना है, और वह भीमसे रक्षित है॥ (४—६)

शत्रुञ्जय, वीर दुःशासन, विकर्ण, नन्द, उपनन्द, चित्रसेन और परि मद्रकके सहित संस्थान, शूरसेन, विकर्ण, कुकुर, आरोचक, मद्रक और यवनदेशीय

चित्रसेनेन सहिताः सहिताः पारिभद्रकैः ।
भीष्ममेवाऽभिरक्षन्तु सहसैन्यपुरस्कृताः ॥ ९ ॥
ततो भीष्मश्च द्रोणश्च तव पुत्राश्च मारिष ।
अव्यूहन्त महाव्यूहं पाण्डूनां प्रतिबाधकम् ॥ १० ॥
भीष्मः सैन्येन महता समन्तात्परिवारितः ।
ययौ प्रकर्षन्महतीं वाहिनीं सुरराडिव ॥ ११ ॥
तमन्वयान्महेष्वासो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
कुन्तलैश्च दशार्णैश्च मागधैश्च विशाम्पते ॥ १२ ॥
विदर्भैर्मेकलैश्चैव कर्णप्रावरणैरपि ।
सहिताः सर्वसैन्येन भीष्ममाहवशोभिनम् ॥ १३ ॥
गान्धाराः सिन्धुसौवीराः शिबयोऽथ वसातयः ।
शकुनिश्च स्वसैन्येन भारद्वाजमपालयत् ॥ १४ ॥
ततो दुर्योधनो राजा सहितः सर्वसोदरैः ।
अश्वातकैर्विकर्णैश्च तथा चाऽम्बष्ठकोसलैः ॥ १५ ॥
दरदैश्च शकैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ।
अभ्यरक्षत संहृष्टः सौबलेयस्य वाहिनीम् ॥ १६ ॥
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ वामं पार्श्वमपालयन्॥ १७ ॥
सौमदत्तिः सुशर्मा च काम्बोजश्च सुदक्षिणः।
श्रुतायुश्चाऽच्युतायुश्च दक्षिणं पक्षमास्थिताः ॥ १८ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव कृतवर्मा च सात्वतः।
महत्या सेनया सार्धं सेनापृष्ठे व्यवस्थिताः ॥ १९ ॥
पृष्ठगोपास्तु तस्याऽऽसन्नानादेश्या जनेश्वराः।
केतुमान्वसुदानश्च पुत्रः काश्यस्य चाऽभिभूः॥ २० ॥
ततस्ते तावकाः सर्वे हृष्टा युद्धाय भारत।
दध्मुः शङ्खान्मुदा युक्ताः सिंहनादांस्तथोन्नदन्॥२१॥
तेषां श्रुत्वा तु हृष्टानां वृद्धः कुरुपितामहः।
सिंहनादं विनद्योच्चैः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ॥ २२ ॥
ततः शङ्खाश्च भेर्यश्च पेश्यश्च विविधाः परैः।
आनकाश्चाऽभ्यहन्यन्त स शब्दस्तुमुलोऽभवत्॥२३॥
ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महति स्यन्दने स्थितौ।
प्रदध्मतुः शङ्खवरौ हेमरत्नपरिष्कृतौ ॥ २४ ॥
पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः।
पौण्ड्रं दध्मौ महाशङ्खं भीमकर्मा वृकोदरः ॥ २५ ॥

वामपार्श्वकी रक्षा करने लगे। सौमदत्ति, सुशर्मा, काम्बोजराज सुदक्षिण, श्रुतायु और अच्युतायु दाहिने पार्श्वकी रक्षामें प्रवृत्त हुए। (१४–१८)

अश्वत्थामा, कृपाचार्य, सात्वत कृतवर्मा, नाना देशके राजा लोग, केतुमान्, वसुदान और अभिभू काशिराजके पुत्र वही सेनाके सहित सेनाके पीठ स्थानपर स्थित हुए। इसके अनन्तर तुम्हारे पक्षके सब वीर प्रसन्न होकर युद्धके निमित्त उत्साहपूर्वक शङ्ख बजाने और सिंहनाद करने लगे॥ (१९–२१)

उन लोगोंके हर्षसूचक सिंहनाद और शङ्खध्वनिको सुनकर कौरवोंके बूढे पितामह भीष्मने भी सिंहनाद करके अपना शङ्ख बजाया॥ उसके अनन्तर दूसरे सब लोग शङ्ख, भेरी, नगाडे, आदि जुझाऊ बाजोंको बजाने लगे, उससे महा घोर शब्द उत्पन्न हुआ॥ अनन्तर सफेद घोडोंसे युक्त बडे रथपर बैठे हुए हृषीकेश कृष्ण और अर्जुन सुवर्ण-रत्न भूषित अपने अपने श्रेष्ठ शङ्ख बजाने लगे॥ (२२–२४)

कृष्णने पाञ्चजन्य और अर्जुनने

अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
नकुलः सहदेवश्च सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ २६ ॥
काशिराजश्च शैब्यश्च शिखण्डी च महारथः ।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ २७ ॥
पाञ्चाल्याश्च महेष्वासा द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ।
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खान्सिंहनादांश्च नेदिरे ॥ २८ ॥
स घोषः सुमहांस्तत्र वीरैस्तैः समुदीरितः ।
नभश्च पृथिवीं चैव तुमुलो व्यनुनादयत् ॥ २९ ॥
एवमेते महाराज प्रहृष्टाः कुरुपाण्डवाः ।
पुनर्युद्धाय सञ्जग्मुस्तापयानाः परस्परम् ॥ ३० ॥ [२११९]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि क्रौञ्चव्यूहरचनायां एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५१ ॥

धृतराष्ट्र उवाच — एवं व्यूढेष्वनीकेषु मामकेष्वितरेषु च ।
कथं प्रहरतां श्रेष्ठाः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच — समं व्यूढेष्वनीकेषु सन्नद्धरुचिरध्वजम् ।

देवदत्त शङ्ख बजाया। भीम कर्म करने वाले वृकोदरने पौण्ड्र नामका महा शङ्ख और कुन्तीपुत्र राजा युधिष्ठिरने अनन्त विजय नाम शङ्ख बजाया। नकुलने सुघोष और सहदेवने मणिपुष्पक नामक शंख बजाये। काशिराज, शैब्य, महारथ शिखण्डी धृष्टद्युम्न, विराट, महारथ

गया॥ महाराज! कौरव और पाण्डवोंके पक्षके सब वीर योद्धा लोग आनन्दित और प्रसन्न होकर एक दूसरेको भय उत्पन्न कराते हुए फिर युद्ध करनेके निमित्त सज कर खडे हुए॥ (२९-३०)

[illegible] । [११२]

[illegible] ।

अपारमिव सन्दृश्य सागरप्रतिमं बलम् ॥ २ ॥
तेषां मध्ये स्थितो राजन्पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अब्रवीत्तावकान्सर्वान्युद्ध्यध्वमिति दंशिताः ॥ ३ ॥
ते मनः क्रूरमाधाय समभित्यक्तजीविनाः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त सर्वे एवोच्छ्रितध्वजाः ॥ ४ ॥
ततो युद्धं समभवत्तुमुलं लोमहर्षणम् ।
तावकानां परेषां च व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥ ५ ॥
मुक्तास्तु रथिभिर्बाणा रुक्मपुङ्खाः सुतेजसः ।
सन्निपेतुरकुण्ठाग्रा नागेषु च हयेषु च ॥ ६ ॥
तथा प्रवृत्ते संग्रामे धनुरुद्यम्य दंशितः ।
अभिपत्य महाबाहुर्भीष्मो भीमपराक्रमः ॥ ७ ॥
सौभद्रे भीमसेने च सात्यकौ च महारथे ।
कैकेये च विराटे च धृष्टद्युम्ने च पार्षते ॥ ८ ॥
एतेषु नरवीरेषु चेदिमत्स्येषु चाऽभिभूः ।
ववर्ष शरवर्षाणि वृद्धः कुरुपितामहः ॥ ९ ॥
अभिद्यत ततो व्यूहस्तस्मिन्वीरसमागमे ।

कर खडे हुए, उनकी मनोहर ध्वजा प्रकाशित होने लगीं। तुम्हारे पुत्र दुर्योधन अपनी समुद्रके समान महासेना को देखकर उसमें स्थित होकर सम्पूर्ण योद्धाओंसे यह वचन बोले, तुम सब लोग युद्ध करनेके निमित्त तैयार और व्यूह बांध कर खडे हुए हो; अब इस समय युद्ध करना आरम्भ करो।(२-३)

तब वह सब लोग जीनेकी आशा छोड कर निडर चित्तसे पाण्डवोंकी सेनाके सम्मुख दौडे; उन सब वीरोंकी ध्वजा उडलती हुई अत्यन्त ही शोभित होने लगी॥ अनन्तर तुम्हारे पक्षवाले और पाण्डवोंकी सेनासे रथी, गजपति आदि वीरोंका रोएंको खडा करनेवाला घोर संग्राम होने लगा॥ सोनेके पंखसे युक्त तेज और चोखे बाण रथियोंके धनुषसे छूटकर हाथी और घोडोंके ऊपर गिरने लगे॥ (४—६)

इस प्रकारसे संग्राम आरम्भ होने पर कवच तथा वर्म धारण करनेवाले अत्यन्त पराक्रमी महाबाहु भीष्म महारथ अभिमन्यु, भीमसेन, सात्यकि, कैकय, विराट, धृष्टद्युम्न, चेदि और मत्स्यराज; इन सब राजाओंके समीप गमन करके अपने बाणोंको बरसाने लगे। उस समय

सर्वेषामेव सैन्यानामासीद्व्यतिकरो महान् ॥ १० ॥
सादिनो ध्वजिनश्चैव हतप्रवरवाजिनः ।
विप्रद्रुतरथानीकाः समपद्यन्त पाण्डवाः ॥ ११ ॥
अर्जुनस्तु नरव्याघ्रो दृष्ट्वा भीष्मं महारथम् ।
वार्ष्णेयमब्रवीत्क्रुद्धो याहि यत्र पितामहः ॥ १२ ॥
एष भीष्मः सुसंक्रुद्धो वार्ष्णेय मम वाहिनीम् ।
नाशयिष्यति सुव्यक्तं दुर्योधनहिते रतः ॥ १३ ॥
एष द्रोणः कृपः शल्यो विकर्णश्च जनार्दन ।
धार्तराष्ट्राश्च सहिता दुर्योधनपुरोगमाः ॥ १४ ॥
पञ्चालान्निहनिष्यन्ति रक्षिता दृढधन्वना ।
सोऽहं भीष्मं वधिष्यामि सैन्यहेतोर्जनार्दन ॥ १५ ॥
तमब्रवीद्वासुदेवो यत्तो भव धनञ्जय ।
एष त्वां प्रापयिष्यामि पितामहरथं प्रति ॥ १६ ॥
एवमुक्त्वा ततः शौरी रथं तं लोकविश्रुतम् ।
प्रापयामास भीष्मस्य रथं प्रति जनेश्वर ॥ १७ ॥
चलद्बहुपताकेन बलाकावर्णवाजिना ।

समुच्छ्रितमहाभीमनदद्वानरकेतुना ॥ १८ ॥
महता मेघनादेन रथेनाऽमिततेजसा ।
विनिघ्नन्कौरवानीकं शूरसेनांश्च पाण्डवः ॥ १९ ॥
प्रायाच्छरणदः शीघ्रं सुहृदां हर्षवर्धनः ।
तमापतन्तं वेगेन प्रभिन्नमिव वारणम् ॥ २० ॥
त्रासयन्तं रणे शूरान्मर्दयन्तं च सायकैः ।
सैन्धवप्रमुखैर्गुप्तः प्राच्यसौवीरकेकयैः ॥ २१ ॥
सहसा प्रत्युदीयाय भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम् ।
को हि गाण्डीवधन्वानमन्यः कुरुपितामहात् ॥ २२ ॥
द्रोणवैकर्तनाभ्यां वा रथी संयातुमर्हति ।
ततो भीष्मो महाराज सर्वलोकमहारथः ॥ २३ ॥
अर्जुनं सप्तसप्तत्या नाराचानां समाचिनोत् ।
द्रोणश्च पञ्चविंशत्या कृपः पञ्चाशता शरैः ॥ २४ ॥
दुर्योधनश्चतुःषष्ट्या शल्यश्च नवभिः शरैः ।
सैन्धवो नवभिश्चैव शकुनिश्चाऽपि पञ्चभिः ॥ २५ ॥
विकर्णो दशभिर्भल्लै राजन्विव्याध पाण्डवम् ।

लगे ॥ अर्जुन उस समय बहुतसी पताकाओंसे युक्त बगुलेके समान श्वेत वर्णके घोडोंके सहित, महा भयङ्कर शब्द करनेवाले वानर राजसे युक्त, उछलती हुई पताकासे विराजमान, सूर्यके तेजसे युक्त, उस बडे रथ परसे मेघके समान गम्भीरस्वरसे शूरसेन और दूसरी कौरवोंकी सेनाका नाश करते हुए भीष्मकी ओर जाने लगे ॥ (१७-१९.)

सिन्धु, प्राच्य, सौवीर और केकय वीरोंसे अच्छे प्रकारसे रक्षित शान्तनुनन्दन भीष्म रणभूमिमें शत्रुपक्षके शूर-वीरोंको भयभीत करते और मारते हुए वेगके सहित दूसरे गजराजके समान शीघ्रतासे आते हुए, सुहृद लोगोंके आनन्द बढानेवाले अर्जुनके सम्मुख सहसा आकर उपस्थित हुए। महाराज! कौरवोंके पितामह भीष्म, द्रोणाचार्य अथवा कर्णके अतिरिक्त और कौन रथी गाण्डीव धनुष धारण करनेवाले अर्जुनके सङ्गमें युद्ध कर सकता है? ॥ २०-२३

अनन्तर सब लोगोंमें महारथी भीष्मने सतहत्तर, द्रोणाचार्यने पचीस, कृपाचार्यने पचास, दुर्योधनने चौसठ, शल्यने नौ, सिन्धुराजने नौ, शकुनिने पांच,

ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममाह जनेश्वरः ॥ ३४ ॥
पीडयमानं स्वकं सैन्यं दृष्ट्वा पार्थेन संयुगे।
एष पाण्डुसुतस्तात कृष्णेन सहितो बली ॥ ३५ ॥
यततां सर्वसैन्यानां मूलं नः परिकृन्तति।
त्वयि जीवति गाङ्गेय द्रोणे च रथिनां वरे ॥ ३६ ॥
त्वत्कृते चैव कर्णोऽपि न्यस्तशस्त्रो विशाम्पते।
न युध्यति रणे पार्थं हितकामः सदा मम ॥ ३७ ॥
स तथा कुरु गाङ्गेय यथा हन्येत फाल्गुनः।
एवमुक्तस्ततो राजन्पिता देवव्रतस्तव ॥ ३८ ॥
धिक्क्षात्रं धर्ममित्युक्त्वा प्रायात्पार्थरथं प्रति।
उभौ श्वेतहयौ राजन्संसक्तौ प्रेक्ष्य पार्थिवाः ॥ ३९ ॥
सिंहनादान्भृशं चक्रुः शङ्खान्दध्मुश्च मारिष।
द्रौणिर्दुर्योधनश्चैव विकर्णश्च तवाऽऽत्मजः ॥ ४० ॥
परिवार्य रणे भीष्मं स्थिता युद्धाय मारिष।
तथैव पाण्डवाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥ ४१ ॥
स्थिता युद्धाय महते ततो युद्धमवर्तत।
गाङ्गेयस्तु रणे पार्थमानर्च्छन्नवभिः शरैः ॥ ४२ ॥

हे महाराज! उस समय राजा दुर्योधन युद्धमें अपनी सेनाको अर्जुनके बाणोंसे पीडित देखकर भीष्मसे बोले, हे पितामह! रथियोंमें मुख्य तुम्हारे और द्रोणाचार्यके जीवित रहते ही यह बली अर्जुन कृष्णके सहित हमारी सेनाका नाश करता हुआ हम लोगोंकी जडको नष्ट कर रहा है। कर्ण हमारे हितैषी थे; वह तुम्हारे ही कारणसे अस्त्र शस्त्र त्याग कर युद्धसे अलग हुए हैं॥ इससे जिस प्रकारसे अर्जुन मारा जावे, तुम उसही उपायका विधान करो। (३४-३८)

महाराज! तुम्हारे पिता देवव्रती भीष्मने दुर्योधनकी बात सुनकर "क्षत्रियधर्मको धिक्कार है" ऐसा कहकर अर्जुनके रथके समीपमें गमन किया। दोनों श्वेतवाहन पुरुषसिंहोंको युद्धमें मिलता हुआ देखकर राजा लोग अत्यन्त ही सिंहनाद करके शङ्ख बजाने लगे। द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामा दुर्योधन और तुम्हारे पुत्र विकर्ण भीष्मको घेरकर युद्धके निमित्त स्थित हुए। (३८-४१)

वैसे ही पाण्डवोंके पक्षके वीर लोग अर्जुनको घेरकर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए;

वासुदेवं त्रिभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
भीष्मचापच्युतैस्तैस्तु निर्विद्धो मधुसूदनः ॥ ५१ ॥
विरराज रणे राजन्सपुष्प इव किंशुकः ।
ततोऽर्जुनो भृशं क्रुद्धो निर्विद्धं प्रेक्ष्य माधवम् ॥ ५२ ॥
सारथिं कुरुवृद्धस्य निर्बिभेद शितैः शरैः ।
यतमानौ तु तौ वीरावन्योन्यस्य वधं प्रति ॥ ५३ ॥
न शक्नुतां तदाऽन्योन्यमभिसन्धातुमाहवे ।
तौ मण्डलानि चित्राणि गतप्रत्यागतानि च ॥ ५४ ॥
अदर्शयेतां बहुधा सूतसामर्थ्यलाघवात् ।
अन्तरं च प्रहारेषु तर्कयन्तौ परस्परम् ॥ ५५ ॥
राजन्नन्तरमार्गस्थौ स्थितावास्तां मुहुर्मुहुः ।
उभौ सिंहरवोन्मिश्रं शङ्खशब्दं च चक्रतुः ॥ ५६ ॥
तथैव चापनिर्घोषं चक्रतुस्तौ महारथौ ।
तयोः शङ्खनिनादेन रथनेमिस्वनेन च ॥ ५७ ॥
दारिता सहसा भूमिश्चकम्पे च ननाद च ।
नोभयोरन्तरं कश्चिद्ददृशे भरतर्षभ ॥ ५८ ॥
बलिनौ युद्धदुर्धर्षावन्योन्यसदृशावुभौ ।

के सारथी कृष्णकी छातीमें तीन बाण मारे। कृष्ण भीष्मके धनुषसे छूटे हुए बाणोंसे विद्ध होकर फूले हुए पलाश वृक्ष के समान शोभित हुए ॥ (४८–५२)

अर्जुनने कृष्णको भीष्मके बाणोंसे विद्ध हुआ देख कर अत्यन्त क्रुद्ध हो भीष्मके सारथीको तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ इस समयमें वे दोनों वीर एक दूसरेके वधके लिये यत्नवान् होकर भी एक दूसरेको लक्षित करनेमें समर्थ नहीं हुए, क्योंकि दोनों ही सारथियोंके रथ चलाने की निपुणतासे रथकी मण्डलाकार विचित्र गति को देखने लगे। दोनों ही प्रहार करनेका अवकाश पाकर बाणोंका अनुसन्धान करते हुए फिर इधर उधर घूमने लगे और सिंहनादके सहित शंख बजाने लगे; फिर धनुषों पर टङ्कार देने लगे। (५२–५७)

उन लोगोंके शंखके शब्द और रथोंके निर्घोषसे पृथ्वी विदारित और कम्पित होने लगी तथा पृथ्वीमें प्रतिध्वनि उत्पन्न होने लगी; वे दोनों ही समान शूरवीर और बलवान् थे; दोनोंमें थोडा भी भेद नहीं दीख पडता था।

चिन्हमात्रेण भीष्मं तु प्रजज्ञुस्तत्र कौरवाः ॥ ५९ ॥
तथा पाण्डुसुताः पार्थं चिह्नमात्रेण जज्ञिरे ।
तयोर्नृवरयोर्दृष्ट्वा तादृशं तं पराक्रमम् ॥ ६० ॥
विस्मयं सर्वभूतानि जग्मुर्भारत संयुगे ।
न तयोर्विवरं कश्चिद्रणे पश्यति भारत ॥ ६१ ॥
धर्मे स्थितस्य हि यथा न कश्चिद्वृजिनं क्वचित् ।
उभौ च शरजालेन तावदृश्यौ बभूवतुः ॥ ६२ ॥
प्रकाशौ च पुनस्तूर्णं बभूवतुरुभौ रणे ।
तत्र देवाः सगन्धर्वाश्चारणाश्चर्षिभिः सह ॥ ६३ ॥
अन्योन्यं प्रत्यभाषन्त तयोर्दृष्ट्वा पराक्रमम् ।
न शक्यौ युधि संरब्धौ जेतुमेतौ कथञ्चन ॥ ६४ ॥
सदेवासुरगन्धर्वैर्लोकैरपि महारथौ ।
आश्चर्यभूतं लोकेषु युद्धमेतन्महाद्भुतम् ॥ ६५ ॥
नैतादृशानि युद्धानि भविष्यन्ति कथञ्चन ।
नहि शक्यो रणे जेतुं भीष्मः पार्थेन धीमता ॥ ६६ ॥
सधनुः सरथः साश्वः प्रवपन्सायकान्रणे ।

तथैव पाण्डवं युद्धे देवैरपि दुरासदम् ॥ ६७ ॥
न विजेतुं रणे भीष्म उत्सहेत धनुर्धरम् ।
आलोकादपि युद्धं हि सममेतद्भविष्यति ॥ ६८ ॥
इति स्म वाचोऽश्रूयन्त प्रोच्चरन्त्यस्ततस्ततः ।
गाङ्गेयार्जुनयोः संख्ये स्तवयुक्ता विशाम्पते ॥ ६९ ॥
त्वदीयास्तु तदा योधाः पाण्डवेयाश्च भारत ।
अन्योन्यं समरे जघ्नुस्तयोस्तत्र पराक्रमे ॥ ७० ॥
शितधारैस्तथा खड्गैर्विमलैश्च परश्वधैः ।
शरैरन्यैश्च बहुभिः शस्त्रैर्नानाविधैरपि ॥ ७१ ॥
उभयोः सेनयोः शूरा न्यकृन्तन्त परस्परम् ।
वर्तमाने तथा घोरे तस्मिन्युद्धे सुदारुणे ।
द्रोणपाञ्चाल्ययो राजन्महानासीत्समागमः ॥७२॥ [२१९१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
भीष्मार्जुनयुद्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥

धृतराष्ट्र उवाच- कथं द्रोणो महेष्वासः पाञ्चाल्यश्चाऽपि पार्षतः ।
उभौ समीयतुर्यत्तौ तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥

सकेंगे। इसी प्रकारसे भीष्म भी देवता ओंसे भी न जीतने योग्य धनुर्धारी अर्जुन को युद्धमें नहीं जीत सकेंगे। ये दोनों यदि प्रलय काल पर्यन्त युद्ध करते रहें, तौ भी यह युद्ध समान रूपसे ही होता रहेगा॥ इन दोनोंके विषयमें इसी प्रकार से स्तुति वचन इधर उधरसे सुनाई देने लगा॥ (६६-६९)

हे महाराज! उन दोनोंके पराक्रम प्रकाश करने पर तुम्हारे और पाण्डवोंकी ओरके योद्धा लोग एक दूसरेके अस्त्र शस्त्रोंकी चोटसे मरने लगे। दोनों ओरके शूरवीर योद्धा लोग उत्तम धार-वाले खड्ग, परशु, अनेक प्रकारके बाण तथा दूसरे शस्त्रोंसे आपसमें एक दूसरे-की चोटोंसे कट कर पृथ्वीमें गिरने लगे। उस महाभयङ्कर घोर संग्राममें द्रोणाचार्य और धृष्टद्युम्नका भी महाघोर युद्ध होने लगा। (६९-७२)[२१९१]

भीष्मपर्वमें बावन अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें तिरपन अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! महात्मा द्रोणाचार्य और पञ्चाल धृष्टद्युम्न किस प्रकारसे यत्नवान् होकर आपसमें युद्ध करनेके निमित्त प्रवृत्त हुए थे; वह तुम मेरे निकट वर्णन करो॥ हे सञ्जय!

दिष्टमेव परं मन्ये पौरुषादिति मे मतिः ।
यत्र शान्तनवो भीष्मो नाऽतरद्युधि पाण्डवम् ॥ २ ॥
भीष्मो हि समरे क्रुद्धो हन्याल्लोकांश्चराचरान् ।
स कथं पाण्डवं युद्धे नाऽतरत्सञ्जयौजसा ॥ ३ ॥

सञ्जय उवाच— शृणु राजन्स्थिरो भूत्वा युद्धमेतत्सुदारुणम् ।
न शक्याः पाण्डवा जेतुं देवैरपि सवासवैः ॥ ४ ॥
द्रोणस्तु निशितैर्बाणैर्धृष्टद्युम्नमविध्यत ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ५ ॥
तथाऽस्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः ।
पीडयामास संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥ ६ ॥
धृष्टद्युम्नस्ततो द्रोणं नवत्या निशितैः शरैः ।
विव्याध प्रहसन्वीरस्तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ७ ॥
ततः पुनरमेयात्मा भारद्वाजः प्रतापवान् ।
शरैः प्रच्छादयामास धृष्टद्युम्नममर्षणम् ॥ ८ ॥
आददे च शरं घोरं पार्षतान्तचिकीर्षया ।
शक्राशनिसमस्पर्शं कालदण्डमिवाऽपरम् ॥ ९ ॥

हाहाकारो महानासीत्सर्वसैन्येषु भारत।
तमिषुं सन्धितं दृष्ट्वा भारद्वाजेन संयुगे ॥ १० ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम धृष्टद्युम्नस्य पौरुषम्।
यदेकः समरे वीरस्तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ॥ ११ ॥
तं च दीप्तं शरं घोरमायान्तं मृत्युमात्मनः।
चिच्छेद शरवृष्टिं च भारद्वाजे मुमोच ह ॥ १२ ॥
तत उच्चुक्रुशुः सर्वे पञ्चालाः पाण्डवैः सह।
धृष्टद्युम्नेन तत्कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥ १३ ॥
ततः शक्तिं महावेगां स्वर्णवैदूर्यभूषिताम्।
द्रोणस्य निधनाकांक्षी चिक्षेप स पराक्रमी ॥ १४ ॥
तामापतन्तीं सहसा शक्तिं कनकभूषिताम्।
त्रिधा चिच्छेद समरे भारद्वाजो हसन्निव ॥ १५ ॥
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नः प्रतापवान्।
ववर्ष शरवर्षाणि द्रोणं प्रति जनेश्वर ॥ १६ ॥
शरवर्षं ततस्तत्तु सन्निवार्य महायशाः।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य मध्ये चिच्छेद कार्मुकम् ॥ १७ ॥

बाणको धनुषपर रखते ही सेनाके बीच में अत्यन्त हाहाकार शब्द होने लगा ॥ (७—१०)

हे महाराज ! उस समयमें मैंने धृष्टद्युम्नका बहुत पराक्रम देखा, कि वह वीर अकेला ही पर्वतके समान अचल होकर खडा था ॥ और अपने मृत्युस्वरूप आते हुए उस बाणको काटकर गिरा दिया, अनन्तर वह द्रोणाचार्यके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥ उसके इस भांतिके अति कठिन पराक्रमको देखकर पञ्चाल और पाण्डव लोग सिंहनाद करने लगे। (१२-१३)

अनन्तर पराक्रमशील महावीर धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्य के वध करने की इच्छा से सुवर्ण और वैदूर्य से भूषित अत्यन्त वेगशील एक शक्ति चलायी ॥ द्रोणाचार्यने हंसते हंसते उस प्रकाशमान शक्तिको अपने बाणोंसे तीन खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ प्रतापी धृष्टद्युम्नने शक्तिके खण्डित होनेपर द्रोणाचार्यके ऊपर बाणोंकी वर्षा करनी आरम्भ की ॥ (१३—१६)

महा यशस्वी द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नके बाणोंको निवारण करके धनुषका मध्यभाग अपने बाणोंसे काट दिया ॥

स च्छिन्नधन्वा समरे गदां गुर्वी महायशाः ।
द्रोणाय प्रेषयामास गिरिसारमयीं बली ॥ १८ ॥
सा गदा वेगवन्मुक्ता प्रायाद् द्रोणजिघांसया ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य पौरुषम् ॥ १९ ॥
लाघवाद्व्यंसयामास गदां हेमविभूषिताम् ।
व्यंसयित्वा गदां तां च प्रेषयामास पार्षतम् ॥ २० ॥
भल्लान्सुनिशितान्पीतान्रुक्मपुङ्खान्सुदारुणान् ।
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ २१ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय धृष्टद्युम्नो महारथः ।
द्रोणं युधि पराक्रम्य शरैर्विव्याध पञ्चभिः ॥ २२ ॥
रुधिराक्तौ ततस्तौ तु शुशुभाते नरर्षभौ ।
वसन्तसमये राजन्पुष्पिताविव किंशुकौ ॥ २३ ॥
अमर्षितस्ततो राजन्पराक्रम्य चमूमुखे ।
द्रोणो द्रुपदपुत्रस्य पुनश्चिच्छेद कार्मुकम् ॥ २४ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अवाकिरदमेयात्मा वृष्ट्या मेघ इवाऽचलम् ॥ २५ ॥

सारथिं चाऽस्य भल्लेन रथनीडादपातयत्।
अथाऽस्य चतुरो वाहांश्चतुर्भिर्निशितैः शरैः ॥ २६ ॥
पातयामास समरे सिंहनादं ननाद च।
ततोऽपरेण भल्लेन हस्ताच्चापमथाऽच्छिनत् ॥ २७ ॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः।
गदापाणिरवारोहत्ख्यापयन्पौरुषं महत् ॥ २८ ॥
तामस्य विशिखैस्तूर्णं पातयामास भारत।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ २९ ॥
ततः स विपुलं चर्म शतचन्द्रं च भानुमत्।
खड्गं च विपुलं दिव्यं प्रगृह्य सुभुजो बली ॥ ३० ॥
अभिदुद्राव वेगेन द्रोणस्य वधकांक्षया।
आमिषार्थी यथा सिंहो वने मत्तमिव द्विपम् ॥ ३१ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम भारद्वाजस्य पौरुषम्।
लाघवं चाऽस्त्रयोगं च बलं बाह्वोश्च भारत ॥ ३२ ॥
यदेनं शरवर्षेण वारयामास पार्षतम्।

पर्वतके ऊपर मेघकी जल वर्षाके समान उनके ऊपर पंखसे युक्त बाणोंको वर्षाने लगे; और एक भल्लसे उनके रथके सारथीको मारके पृथ्वीमें गिरा दिया। इसके अनन्तर चार शाणित बाणोंसे उनके रथके चारों घोडोंका संहार करके सिंहनाद करने लगे। अनन्तर और एक भल्लसे उनके अंगुलित्राणको काट दिया। (२३–२७)

धृष्टद्युम्न धनुषके कटने और सारथी तथा घोडोंके मरे जानेपर अत्यन्त पराक्रमके सहित गदा लेकर उतरने लगे. परन्तु रथसे उतरनेसे पहिले द्रोणाचार्यने कई एक बाणोंसे उनकी गदाको टुकडे टुकडे करके गिरा दिया, वह कर्म अद्भुत रूपसे प्रकाशित हुआ। इसके अनन्तर बलवान महाबाहु धृष्टद्युम्न सौ चन्द्र युक्त एक मनोहर सुन्दर ढाल और दिव्य खड्गको लेकर मतवारे हाथीकी ओर मांसकी इच्छा करने वाले सिंहके समान द्रोणाचार्यके वध करनेके निमित्त वेगसे दौडे। (२८–३१)

उस समयमें मैंने भरद्वाजपुत्र द्रोणके दोनो भुजाओं का बल, अस्त्रोंकी शीघ्रता और पराक्रम अद्भुत रूपसे अवलोकन किया कि उन्होंने अकेले ही अपने बाणोंकी वर्षासे धृष्टद्युम्नको मार्गमें ही रोक रक्खा। धृष्टद्युम्न परम बलवान

न शशाक ततो गन्तुं बलवानपि संयुगे ॥ ३३ ॥
निवारितस्तु द्रोणेन धृष्टद्युम्नो महारथः ।
न्यवारयच्छरौघांस्तांश्चर्मणा कृतहस्तवत् ॥ ३४ ॥
ततो भीमो महाबाहुः सहसाऽभ्यपतद्बली ।
साहाय्यकारी समरे पार्षतस्य महात्मनः ॥ ३५ ॥
स द्रोणं निशितैर्बाणै राजन्विव्याध सप्तभिः ।
पार्षतं च रथं तूर्णं स्वकमारोहयत्तदा ॥ ३६ ॥
ततो दुर्योधनो राजन्भानुमन्तमचोदयत् ।
सैन्येन महता युक्तं भारद्वाजस्य रक्षणे ॥ ३७ ॥
ततः सा महती सेना कलिङ्गानां जनेश्वर ।
भीममभ्युद्ययौ तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् ॥ ३८ ॥
पाञ्चाल्यमथ सन्त्यज्य द्रोणोऽपि रथिनां वरः ।
विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयामास संयुगे ॥ ३९ ॥
धृष्टद्युम्नोऽपि समरे धर्मराजानमभ्ययात् ।
ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ ४० ॥
कलिङ्गानां च समरे भीमस्य च महात्मनः ।
जगतः प्रक्षयकरं घोररूपं भयावहम् ॥ ४१ ॥ [२०३२]

धृतराष्ट्र उवाच— तथा प्रतिसमादिष्टः कालिङ्गो वाहिनीपतिः।
कथमद्भुतकर्माणं भीमसेनं महाबलम् ॥ १ ॥
चरन्तं गदया वीरं दण्डहस्तमिवाऽन्तकम्।
योधयामास समरे कालिंगः सह सेनया ॥ २ ॥
संजय उवाच— पुत्रेण तव राजेन्द्र स तथोक्तो महाबलः।
महत्या सेनया गुप्तः प्रायाद्भीमरथं प्रति ॥ ३ ॥
तामापतन्तीं महतीं कलिंगानां महाचमूम्।
रथाश्वनागकलिलां प्रगृहीतमहायुधाम् ॥ ४ ॥
भीमसेनः कलिंगानामाच्छेद्भारत वाहिनीम्।
केतुमन्तं च नैषादिमायान्तं सह चेदिभिः ॥ ५ ॥
ततः श्रुतायुः संक्रुद्धो राज्ञा केतुमता सह।
आससाद रणे भीमं व्यूढानीकेषु चेदिषु ॥ ६ ॥
रथैरनेकसाहस्रैः कलिंगानां नराधिप।
अयुतेन गजानां च निषादैः सह केतुमान् ॥ ७ ॥
भीमसेनं रणे राजन्समन्तात्पर्यवारयत्।

कलिङ्ग सेनाका महावीर गणोंको खडा करने वाला, भयङ्कर और जगत् नाश करने वाला अत्यन्त कठिन संग्राम होने लगा ॥ (३८-४१) [२०३२]

भीष्मवधपर्वमें तिरपन अध्याय समाप्त।

भीष्मवधपर्वमें चौवन अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! सेनापति कलिङ्गराजने दुर्योधनकी आज्ञाके अनुसार सेनाको सङ्ग लेकर दण्डधारी यमराजके समान गदा धारण करके सेनाके बीच भ्रमण करते हुए अद्भुत कर्म करने वाले महा बलवान् भीमसेनके सङ्ग किस प्रकारसे युद्ध [illegible] (१-२)

सञ्जय बोले, हे महाराज! कलिङ्गराजने तुम्हारे पुत्रके समीप ऐसी आज्ञा पाकर अपनी बडी सेनाको सङ्ग लेकर भीमके रथके निकट गमन किया॥ भीमसेनने चेदि देशीय वीरोंके सहित रथ, घोडे, हाथी से युक्त महा अस्त्र शस्त्र ग्रहण करने वाले कलिङ्ग देशीय बहुत बडे सेनाके दल और निषादतनय केतुमानको आया हुआ देखकर उनकी ओर वेगसे चले॥ राजा केतुमान के सङ्ग श्रुतायु भी क्रुद्ध होकर निज सेनाका व्यूह बनाके भीमके निकटमें गये। ३-६

कलिङ्गराजने कई हजार रथियों और निषाद योद्धाओं तथा दस हजार हाथि

चेदिमत्स्यकरूषाश्च भीमसेनपदानुगाः ॥ ८ ॥
अभ्यधावन्त समरे निषादान्सह राजभिः ।
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ ९ ॥
न प्राजानन्त योधाः स्वान्परस्परजिघांसया ।
घोरमासीत्ततो युद्धं भीमस्य सहसा परैः ॥ १० ॥
यथेन्द्रस्य महाराज महत्या दैत्यसेनया ।
तस्य सैन्यस्य संग्रामे युध्यमानस्य भारत ॥ ११ ॥
बभूव सुमहाञ्शब्दः सागरस्येव गर्जतः ।
अन्योन्यं स्म तदा योधा विकर्षन्तो विशाम्पते ॥१२॥
महीं चक्रुश्चितां सर्वां शशलोहितसन्निभाम् ।
योधांश्च स्वान्परान्वापि नाऽभ्यजानञ्जिघांसया ॥१३॥
स्वानप्याददते स्वाश्च शूराः परमदुर्जयाः ।
विमर्दः सुमहानासीदल्पानां बहुभिः सह ॥ १४ ॥
कलिंगैः सह चेदीनां निषादैश्च विशाम्पते ।
कृत्वा पुरुषकारं तु यथाशक्ति महाबलाः ॥ १५ ॥
भीमसेनं परित्यज्य संन्यवर्तन्त चेदयः ।

यों के सहित भीमसेन को चारों ओरसे घेर लिया। चेदि, मत्स्य करूष और दूसरे राजाओं के सहित भीमसेन सहसा निषाद वीरोंकी ओर दौड़े। उस समय महाघोर युद्ध होने लगा। इसके अनन्तर वीर योद्धा लोग स्वकीय योद्धाओंको न पहचान सके, एक दूसरेको मारनेकी इच्छा से घोर संग्राम करने लगे। (७-१०)

महाराज ! जैसे दैत्योंकी सेना के सङ्ग इन्द्रका युद्ध होता है, वैसेही कलिङ्ग सेनाके सङ्ग भीमसेनका महाघोर संग्राम होने लगा। उस वीर सेनाके संग्राममें समुद्रकी गरजके समान बड़ा घोर शब्द होने लगा। महाराज ! सेनाके वीरोंने एक दूसरेको काटते हुए मांस और रुधिरसे पृथ्वीको पूरित कर दिया। (१०-१३)

क्रोधके वशमें होकर योद्धाओं को अपने और शत्रुपक्षके वीरोंका भी ज्ञान न रहा, वह अपने पक्षके वीरोंके ऊपर प्रहार करने लगे। इसके निषाद और कलिङ्ग वीरों के संग्राम में थोडेसे चेदि देशीय योद्धाओंका [illegible] होने लगा [illegible]

सर्वैः कलिंगैरासन्नः सन्निवृत्तेषु चेदिषु ॥ १६ ॥
स्वबाहुबलमास्थाय सन्न्यवर्तत पाण्डवः ।
न चचाल रथोपस्थाद्भीमसेनो महाबलः ॥ १७ ॥
शितैरवाकिरद्बाणैः कलिंगानां वरूथिनीम् ।
कालिंगस्तु महेष्वासः पुत्रश्चास्य महारथः ॥ १८ ॥
शक्रदेव इति ख्यातो जघ्नतुः पाण्डवं शरैः ।
ततो भीमो महाबाहुर्विधुन्वन्रुचिरं धनुः ॥ १९ ॥
योधयामास कालिंगं स्वबाहुबलमाश्रितः ।
शक्रदेवस्तु समरे विसृजन्सायकान्बहून् ॥ २० ॥
अश्वाञ्जघान समरे भीमसेनस्य सायकैः ।
तं दृष्ट्वा विरथं तत्र भीमसेनमरिन्दमम् ॥ २१ ॥
शक्रदेवोऽभिदुद्राव शरैरवकिरञ्छितैः ।
भीमस्योपरि राजेन्द्र शक्रदेवो महाबलः ॥ २२ ॥
ववर्ष शरवर्षाणि तपान्ते जलदो यथा ।
हताश्वे तु रथे तिष्ठन्भीमसेनो महाबलः ॥ २३ ॥
शक्रदेवाय चिक्षेप सर्वशैक्यायसीं गदाम् ।

चेदि देशीय वीरोंके भाग जाने पर महाबली भीमसेन सम्पूर्ण कलिङ्ग-देशीय योद्धाओंसे घिरकर तथा उनसे आक्रान्त होकर भी युद्धसे निवृत्त नहीं हुए, वह अपने बाहुबलके आसरे ही से रणभूमिमें डटे रहे। (१३— १६)

महाराज ! महाबाहु भीमसेन अपने रथके ऊपरसे तनिक भी विचलित नहीं हुए और अपने चोखे बाणोंसे कलिङ्ग सेनाको विकल करने लगे। फिर महाधनुर्धर महारथी कलिङ्गराज और उनके पुत्र शक्रदेव ये दोनों भीमके ऊपर अपने बाणोंको चलाने लगे। इसके अनन्तर भीमसेन अपने बाहुबल के आसरेसे मनोहर धनुषको कंपाते हुए कालिङ्गके संग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए। शक्रदेवने भी युद्ध में बहुतसे बाण चलाकर भीमसेनके चारो घोडों को मार डाला। (१७—२१)

तब शत्रुनाशन भीमको रथहीन देखकर शक्रदेव अपने चोखे बाण चलाते हुए भीमकी ओर दौडे। जैसे ग्रीष्म ऋतुके अन्तमें बादल आकाशसे जलकी वर्षा करते हैं, वैसे ही महाबली शक्रदेव भीमसेनके ऊपर बाण बरसाने लगे। महाबली भीमसेनने घोडोंसे रहित रथ

स तया निहतो राजन्कालिङ्गतनयो रथात् ॥ २४ ॥
विरथः सह सूतेन जगाम धरणीतलम् ।
हतमात्मसुतं दृष्ट्वा कालिंगानां जनाधिपः ॥ २५ ॥
रथैरनेकसाहस्रैर्भीमस्यावारयद्दिशः ।
ततो भीमो महावेगां त्यक्त्वा गुर्वीं महागदाम् ॥२६॥
निस्त्रिंशमाददे घोरं चिकीर्षुः कर्म दारुणम् ।
चर्म चाऽप्रतिमं राजन्नार्षभं पुरुषर्षभ ॥ २७ ॥
नक्षत्रैरर्धचन्द्रैश्च शातकुम्भमयैश्चितम् ।
कालिंगस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्ज्यामवमृज्य च ॥ २८ ॥
प्रगृह्य च शरं घोरमेकं सर्पविषोपमम् ।
प्राहिणोद्भीमसेनाय वधाकांक्षी जनेश्वरः ॥ २९ ॥
तमापतन्तं वेगेन प्रेरितं निशितं शरम् ।
भीमसेनो द्विधा राजंश्चिच्छेद विपुलासिना ॥ ३० ॥
उदक्रोशच्च संहृष्टस्त्रासयानो वरूथिनीम् ।
कालिङ्गोऽथ ततः क्रुद्धो भीमसेनाय संयुगे ॥ ३१ ॥
तोमरान्प्राहिणोच्छीघ्रं चतुर्दश शिलाशितान् ।

तानप्राप्तान्महाबाहुः खगतानेव पाण्डवः ॥ ३२ ॥
चिच्छेद सहसा राजन्नसम्भ्रान्तो वरासिना ।
निकृत्य तु रणे भीमस्तोमरान्वै चतुर्दश ॥ ३३ ॥
भानुमन्तं ततो भीमः प्राद्रवत्पुरुषर्षभः ।
भानुमांस्तु ततो भीमं शरवर्षेण छादयन् ॥ ३४ ॥
ननाद बलवन्नादं नादयानो नभस्तलम् ।
न च तं ममृषे भीमः सिंहनादं महाहवे ॥ ३५ ॥
ततः शब्देन महता विननाद महास्वनः ।
तेन नादेन वित्रस्ता कलिंगानां वरूथिनी ॥ ३६ ॥
न भीमं समरे मेने मानुषं भरतर्षभ ।
ततो भीमो महाबाहुर्नर्दित्वा विपुलं स्वनम् ॥ ३७ ॥
सासिर्वेगवदाप्लुत्य दन्ताभ्यां वारणोत्तमम् ।
आरुरोह ततो मध्यं नागराजस्य मारिष ॥ ३८ ॥
ततो मुमोच कालिंगः शक्तिं तामकरोद् द्विधा ।
खड्गेन पृथुना मध्ये भानुमन्तमथाऽच्छिनत् ॥ ३९ ॥
सोऽन्तराऽऽयुधिनं हत्वा राजपुत्रमरिन्दमः ।

पर शाणित चौदह तोमर भीमके ऊपर चलाया ॥ महाबाहु भीम आकाश में उन बाणों को आता हुआ देखकर श- रीरमें न लगते ही लगते अपनी तलवार से उन्हें बीचहीमें काटा । युद्धमें उन चौदह तोमरोंको काटकर कलिंगराजके पुत्र भानुमान्‌को लक्ष्य करके उस की ओर दौड़े। भानुमान् भी अपने बाणों की वर्षासे भीमसेनको ढांपते हुए आ- काशको अपने शब्दसे पूरित करते हुए बलपूर्वक सिंहनाद करने लगे। ३२-३५

अनन्तर उस महायुद्ध में भीमसेन भा- नुमान्‌के सिंहनादको न सहकर बड़े ऊंचे स्वरसे महा घोर शब्द करने लगे । हे भरतश्रेष्ठ ! उस शब्दसे कलिंग देशीय सेना भयभीत होगई और युद्धमें भीमको मनुष्य नहीं समझती थी । महाराज ! अनन्तर तलवार लिये हुए भीमसेन महा घोर शब्द करके वेगके सहित कूदकर भानुमानके हस्तिराजके दोनों दांत पकड़ कर उसकी पीठपर जा चढे, तब कालिंगने उस पर शक्ति चलायी । भीमसेनने उसे काट दिया और उस ही समय अपने उस महा खड्गसे भानु- मानके शरीरको बीचो बीचसे काट कर गिराया । (३५—३९)

गुरुं भारसहं स्कन्धे नागस्याऽसिमपातयत् ॥ ४० ॥
छिन्नस्कन्धः स विनदन्पपात गजयूथपः ।
आरुग्णः सिन्धुवेगेन सानुमानिव पर्वतः ॥ ४१ ॥
ततस्तस्मादवप्लुत्य गजाद्भारत भारतः ।
खड्गपाणिरदीनात्मा तस्थौ भूमौ सुदंशितः ॥ ४२ ॥
स चचार बहून्मार्गानसिनः पातयन्गजान् ।
अग्निचक्रमिवाऽऽविद्धं सर्वतः प्रत्यदृश्यत ॥ ४३ ॥
अश्ववृन्देषु नागेषु रथानीकेषु चाऽभिभूः ।
पदातीनां च सङ्घेषु विनिघ्नञ्शोणितोक्षितः ॥ ४४ ॥
श्येनवद्व्यचरद्भीमो रणेऽरिषु बलोत्कटः ।
छिन्दंस्तेषां शरीराणि शिरांसि च महाबलः ॥ ४५ ॥
खड्गेन शितधारेण संयुगे गजयोधिनाम् ।
पदातिरेकः संक्रुद्धः शत्रूणां भयवर्धनः ॥ ४६ ॥
सम्मोहयामास स तान्कालान्तकयमोपमः ।
मूढाश्च ते तमेवाऽजौ विनदन्तः समाद्रवन् ॥ ४७ ॥

सासिमुत्तमवेगेन विचरन्तं महारणे।
निकृत्य रथिनां चाऽऽजौ रथेषाश्च युगानि च॥ ४८॥
जघान रथिनश्चाऽपि बलवानिरिपुमर्दनः।
भीमसेनश्चरन्मार्गान्सुबहून्प्रत्यदृश्यत॥ ४९॥
भ्रान्तमाविद्धमुद्भ्रान्तमाप्लुतं प्रसृतं प्लुतम्।
सम्पातं समुदीर्णं च दर्शयामास पाण्डवः॥ ५०॥
केचिदग्रासिना छिन्नाः पाण्डवेन महात्मना।
विनेदुर्भिन्नमर्माणो निपेतुश्च गतासवः॥ ५१॥
छिन्नदन्ताग्रहस्ताश्च भिन्नकुम्भास्तथा परे।
विमोघाः स्वान्यनीकानि जघ्नुर्भारत वारणाः॥ ५२॥
निपेतुरुर्व्यां च तथा विनदन्तो महारवान्।
छिन्नांश्च तोमरान्राजन्महामात्रशिरांसि च॥ ५३॥
परिस्तोमान्विचित्रांश्च कक्ष्याश्च कनकोज्ज्वलाः।
ग्रैवेयाण्यथ शक्तीश्च पताकाः कणपांस्तथा॥ ५४॥
तूणीरानथ यन्त्राणि विचित्राणि धनूंषि च।

जब वह महायुद्धमें अत्यन्त वेगके सहित हाथमें तलवार लेकर भ्रमण कर रहे थे उस समयमें भट लोग ही गर्ज गर्ज कर उनके सन्मुख युद्धके निमित्त दौड़ते थे। शत्रुनाशन महावीर भीम रथ रथके युग और रथके चक्रको तोड़ने तथा रथ पर चढ़े योद्धाओंको तलवारसे काटने लगे। उनको संग्राममें बहुत स्थानोंमें भ्रमण करते हुए सबने देखा वह चलना, फिरना, लौटना, दौड़ना, उछलना, कूदना वीरोंको मारना आदि शक्ति विक्रमसे रणभूमिको दिखाने लगे। (४८–५०)

वह समय कोई कोई हाथी तलवारसे कट कर कितने ही हाथी आर्त्तनाद करने लगे। कोई कोई हाथी मर्म स्थानोंके कटनेसे मर कर पृथ्वीमें गिरने लगे॥ कितने ही हाथियोंका दांत और सूंड कट गया; कितने हाथियोंका गंडस्थल फट गया. वे महारणमें रहित होकर अपने पक्षके योद्धाओंहीको मारने लगे॥ और महाघोर शब्दसे चिग्घाड मारते हुए पृथ्वीमें गिर पड़े (५१–५३)

हे महाराज! हस्तिपकोंके मस्तक, तोमर, विचित्र परिस्तोम, सुवर्ण भूषित हाथियोंके हौदे, हाथियोंके गलेके भूषण, शक्ति, पताका, सुन्दर तूणीर, यन्त्र, विचित्रताके धनुष, शुभ्र भिन्दिपाल,

भिन्दिपालानि शुभ्राणि तोत्त्राणि चांकुशैः सह ॥५५॥
घण्टाश्च विविधा राजन्हेमगर्भान्त्सरूनपि ।
पततः पातितांश्चैव पश्यामः सह सादिभिः ॥ ५६ ॥
छिन्नगात्रावरकरैर्निहतैश्चाऽपि वारणैः ।
आसीद् भूमिः समास्तीर्णा पतितैर्भूधरैरिव ॥ ५७ ॥
विमृद्यैवं महानागान्ममर्दाऽन्यान्महाबलः ।
अश्वारोहवरांश्चैव पातयामास संयुगे ॥ ५८ ॥
तद्घोरमभवद्युद्धं तस्य तेषां च भारत ।
खलीनान्यथ योक्त्राणि कक्ष्याश्च कनकोज्ज्वलाः ॥५९॥
परिस्तोमाश्च प्रासाश्च ऋष्टयश्च महाधनाः ।
कवचान्यथ चर्माणि चित्राण्यास्तरणानि च ॥ ६० ॥
तत्र तत्राऽपविद्धानि व्यदृश्यन्त महाहवे ।
प्राथयन्त्रैर्विचित्रैश्च शस्त्रैश्च विमलैस्तथा ॥ ६१ ॥
स चक्रे वसुधां कीर्णां शबलैः कुसुमैरिव ।
आप्लुत्य रथिनः कांश्चित्परामृश्य महाबलः ॥ ६२ ॥
पातयामास खड्गेन सध्वजानपि पाण्डवः ।
मुहुरुत्पततो दिक्षु धावतश्च यशस्विनः ॥ ६३ ॥

मार्गांश्च चरतश्चित्रं व्यस्मयन्त रणे जनाः।
स जघान पदा कांश्चिद्व्याक्षिप्यान्यानपोथयत् ॥६४॥
खड्गेनान्यांश्च चिच्छेद नादेनान्यांश्च भीषयन्।
ऊरुवेगेन चाप्यन्यान्पातयामास भूतले ॥ ६५ ॥
अपरे चैनमालोक्य भयात्पञ्चत्वमागताः।
एवं सा बहुला सेना कलिङ्गानां तरस्विनाम् ॥ ६६ ॥
परिवार्य रणे भीष्मं भीमसेनमुपाद्रवत्।
ततः कालिंगसैन्यानां प्रमुखे भरतर्षभ ॥ ६७ ॥
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य भीमसेनः समभ्ययात्।
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य कालिंगो नवभिः शरैः ॥ ६८ ॥
भीमसेनममेयात्मा प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे।
कालिंगबाणाभिहतस्तोत्रार्दित इव द्विपः ॥ ६९ ॥
भीमसेनः प्रजज्वाल क्रोधेनाग्निरिवेन्धितः।
अथाशोकः समादाय रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ ७० ॥
भीमं सम्पादयामास रथेन रथसारथिः।
तमारुह्य रथं तूर्णं कौन्तेयः शत्रुसूदनः ॥ ७१ ॥

कालिंगमभिदुद्राव तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ।
ततः श्रुतायुर्बलवान्भीमाय निशिताञ्शरान् ॥ ७२ ॥
प्रेषयामास संक्रुद्धो दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
स कार्मुकवरोत्सृष्टैर्नवभिर्निशितैः शरैः ॥ ७३ ॥
समाहतो महाराज कालिंगेन महात्मना ।
सञ्चुक्रुधे भृशं भीमो दण्डाहत इवोरगः ॥ ७४ ॥
क्रुद्धश्च चापमायम्य बलवद्बलिनां वरः ।
कालिंगमवधीत्पार्थो भीमः सप्तभिरायसैः ॥ ७५ ॥
क्षुराभ्यां चक्ररक्षौ च कालिंगस्य महाबलौ ।
सत्यदेवं च सत्यं च प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ७६ ॥
ततः पुनरमेयात्मा नाराचैर्निशितैस्त्रिभिः ।
केतुमन्तं रणे भीमोऽगमयद्यमसादनम् ॥ ७७ ॥
ततः कालिंगाः संक्रुद्धा भीमसेनममर्षणम् ।
अनीकैर्बहुसाहस्रैः क्षत्रियाः समवारयन् ॥ ७८ ॥
ततः शक्तिगदाखड्गतोमरर्ष्टिपरश्वधैः ।
कालिंगाश्च ततो राजन्भीमसेनमवारयन् ॥ ७९ ॥

सन्निवार्य स तां घोरां शरवृष्टिं समुत्थिताम् ।
गदामादाय तरसा सन्निपत्य महाबलः ॥ ८० ॥
भीमः सप्तगतान्वीराननयद्यमसादनम् ।
पुनश्चैव द्विसाहस्रान्कलिंगानरिमर्दनः ॥ ८१ ॥
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
एवं स तान्यनीकानि कलिंगानां पुनः पुनः ॥ ८२ ॥
बिभेद समरे तूर्णं प्रेक्ष्य भीष्मं महारथम् ।
हतारोहाश्च मातङ्गाः पाण्डवेन कृता रणे ॥ ८३ ॥
विप्रजग्मुरनीकेषु मेघा वातहता इव ।
मृद्नन्तः स्वान्यनीकानि विनदन्तः शरातुराः ॥ ८४ ॥
ततो भीमो महाबाहुः खड्गहस्तो महाभुजः ।
सम्प्रहृष्टो महाघोषं शङ्खं प्राध्मापयद्बली ॥ ८५ ॥
सर्वकालिंगसैन्यानां मनांसि समकम्पयत ।
मोहश्चापि कलिंगानामाविवेश परन्तप ॥ ८६ ॥
प्राकम्पन्त च सैन्यानि वाहनानि च सर्वशः ।
भीमेन समरे राजन्गजेन्द्रेणेव सर्वशः ॥ ८७ ॥
मार्गान्बहून्विचरता धावता च ततस्ततः ।

मुहुरुत्पतता चैव सम्मोहः समपद्यत ॥ ८८ ॥
भीमसेनभयत्रस्तं सैन्यं च समकम्पत ।
क्षोभ्यमाणमसम्बाधं ग्राहेणेव महत्सरः ॥ ८९ ॥
त्रासितेषु च सर्वेषु भीमेनाऽद्भुतकर्मणा ।
पुनरावर्तमानेषु विद्रवत्सु च संघशः ॥ ९० ॥
सर्वकालिंगयोधेषु पाण्डूनां ध्वजिनीपतिः ।
अब्रवीत्स्वान्यनीकानि युध्यध्वमिति पार्षतः ॥ ९१ ॥
सेनापतिवचः श्रुत्वा शिखण्डिप्रमुखा गणाः ।
भीममेवाऽभ्यवर्तन्त रथानीकैः प्रहारिभिः ॥ ९२ ॥
धर्मराजश्च तान्सर्वानुपजग्राह पाण्डवः ।
महता मेघवर्णेन नागानीकेन पृष्ठतः ॥ ९३ ॥
एवं सञ्चोद्य सर्वाणि स्वान्यनीकानि पार्षतः ।
भीमसेनस्य जग्राह पार्ष्णिं सत्पुरुषैर्वृतः ॥ ९४ ॥
नहि पञ्चालराजस्य लोके कश्चन विद्यते ।
भीमसात्यकयोरन्यः प्राणेभ्यः प्रियकृत्तमः ॥ ९५ ॥
सोऽपश्यद्ध कालिंगेषु चरन्तमरिसूदन ।

मोहित करने लगे ॥ जिस प्रकारसे बड़ा तालाब घड़ियालके डोलनेसे मथित होजाता है, वैसे ही कलिंगदेशकी सेना भीमसेनसे भय भीत और पीड़ित होकर तितर बितर होगई । (८५ - ८९)

प्रहार करनेमें निपुण रथ-सेनाके सहित भीमसेनके समीपमें जापहुंचे ॥ ९०-९२ ॥

धर्मराज युधिष्ठिर भी बादलके समान हाथियोंकी महासेना लेकर उनके पश्चात् ही वहांपर उपस्थित हुए । धृष्टद्युम्न

भीमसेनं महाबाहुं पार्षतः परवीरहा ॥ ९६ ॥
ननर्द बहुधा राजन्हृष्टश्चाऽऽसीत्परन्तपः ।
शङ्खं दध्मौ च समरे सिंहनादं ननाद च ॥ ९७ ॥
स च पारावताश्वस्य रथे हेमपरिष्कृते ।
कोविदारध्वजं दृष्ट्वा भीमसेनः समाश्वसत् ॥ ९८ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु तं दृष्ट्वा कलिंगैः समभिद्रुतम् ।
भीमसेनममेयात्मा त्राणायाऽऽजौ समभ्ययात् ॥ ९९ ॥
तौ दूरात्सात्यकिं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
कलिंगान्समरे वीरौ योधयेतां मनस्विनौ ॥ १०० ॥
स तत्र गत्वा शैनेयो जवेन जयतां वरः ।
पार्थपार्षतयोः पार्ष्णिं जग्राह पुरुषर्षभः ॥ १०१ ॥
स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीतशरासनः ।
आस्थितो रौद्रमात्मानं कलिंगानन्ववैक्षत ॥ १०२ ॥
कलिंगप्रभवां चैव मांसशोणितकर्दमां ।
रुधिरस्यन्दिनीं तत्र भीमः प्रावर्तयन्नदीम् ॥ १०३ ॥
अन्तरेण कलिंगानां पाण्डवानां च वाहिनीम् ।

तां सन्ततार दुस्तारां भीमसेनो महाबलः ॥ १०४ ॥
भीमसेनं तथा दृष्ट्वा प्राक्रोशंस्तावका नृप ।
कालोऽय भीमरूपेण कलिंगैः सह युध्यते ॥ १०५ ॥
ततः शान्तनवो भीष्मः श्रुत्वा तं निनदं रणे ।
अभ्ययात्त्वरितो भीमं व्यूढानीकः समन्ततः ॥ १०६॥
तं सात्यकिर्भीमसेनो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
अभ्यद्रवन्त भीष्मस्य रथं हेमपरिष्कृतम् ॥ १०७ ॥
परिवार्य तु ते सर्वे गाङ्गेयं तरसा रणे ।
त्रिभिस्त्रिभिः शरैर्घोरैर्भीष्ममानर्च्छुरोजसा॥ १०८ ॥
प्रत्यविध्यत तान्सर्वान्पिता देवव्रतस्तव ।
यतमानान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ १०९ ॥
ततः शरसहस्रेण सन्निवार्य महारथान् ।
हयान्काञ्चनसन्नाहान्भीमस्य न्यहनच्छरैः ॥ ११० ॥
हताश्वे स रथे तिष्ठन्भीमसेनः प्रतापवान् ।
शक्तिं चिक्षेप तरसा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ॥ १११ ॥
अप्राप्तामेव तां शक्तिं पिता देवव्रतस्तव ।

न तरने योग्य कलिंग सेनाके पार होने लगे। (१००—१०४)

महाराज ! भीमसेनको इस भांतिसे कलिंग वीरोंको मारता हुआ देख कर तुम्हारी ओरके सब योद्धा लोग ऊंचे स्वरसे ऐसा वचन कहने लगे "भीमसेन साक्षात कालरूप होकर कलिंग वीरोंका संहार कर रहे हैं!" इसके अनन्तर संग्रामके बीच शान्तनुपुत्र भीष्म इस शब्दको सुन कर चारों ओरसे व्यूहबद्ध सेनासे घिरके शीघ्र ही भीमके रथके समीप उपस्थित हुए॥ तब सात्यकि, भीमसेन और धृष्टद्युम्न [illegible] भीष्मके रथकी ओर दौडे॥ १०५-१०७

उन लोगोंने सहसा गंगानन्दनको चारों ओरसे शीघ्र ही घेर कर तीन तीन बाणोंसे उनको मारा॥ तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्मने भी यत्नपूर्वक उन महा धनुर्धर वीरोंके ऊपर तीन तीन बाण चलाये॥ अनन्तर भीष्मने [illegible] बाणोंसे महारथ वीरोंको निवारण करके सुवर्ण [illegible] भीमसेनके घोडोंको [illegible] बाणोंसे मार डाला १०८-११०

[illegible] भीमसेनने [illegible] रथ पर ही ठहर कर [illegible] रथकी ओर [illegible]

प्रहर्षयन्यदुव्याघ्रो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ॥ १२० ॥
दिष्ट्या कलिङ्गराजश्च राजपुत्रश्च केतुमान् ।
शक्रदेवश्च कालिङ्गः कलिङ्गाश्च मृधे हताः ॥ १२१ ॥
स्वबाहुबलवीर्येण नागाश्वरथसंकुलः ।
महापुरुषभूयिष्ठो वीरयोधनिषेवितः ॥ १२२ ॥
महाव्यूहः कलिङ्गानामेकेन मृदितस्त्वया ।
एवमुक्त्वा शिनेर्नप्ता दीर्घबाहुररिन्दम ॥ १२३ ॥
रथाद्रथमभिद्रुत्य पर्यष्वजत पाण्डवम् ।
ततः स्वरथमास्थाय पुनरेव महारथः ॥
तावकानवधीत्क्रुद्धो भीमस्य बलमादधत ॥ १२४ ॥ [२३७६]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वितीययुद्धदिवसे कलिङ्गराजवधे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५४ ॥

सञ्जय उवाच— गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत ।
रथनागाश्वपत्तीनां सादिनां च महाक्षये ॥ १ ॥
द्रोणपुत्रेण शल्येन कृपेण च महात्मना ।
समसज्जत पाञ्चाल्यस्त्रिभिरेतैर्महारथैः ॥ २ ॥
स लोकविदितानश्वान्निजघान महाबलः ।

द्रौणेः पाञ्चालदायादः शितैर्दशभिराशुगैः ॥ ३ ॥
ततः शल्यरथं तूर्णमास्थाय हतवाहनः ।
द्रौणिः पाञ्चालदायादमभ्यवर्षदथेषुभिः ॥ ४ ॥
धृष्टद्युम्नं तु संयुक्तं द्रौणिना वीक्ष्य भारत ।
सौभद्रोऽभ्यपतत्तूर्णं विकिरन्निशिताञ्शरान् ॥ ५ ॥
स शल्यं पञ्चविंशत्या कृपं च नवभिः शरैः ।
अश्वत्थामानमष्टाभिर्विव्याध पुरुषर्षभः ॥ ६ ॥
आर्जुनिं तु ततस्तूर्णं द्रौणिर्विव्याध पत्रिणा ।
शल्यश्च दशभिश्चैव कृपश्च निशितैस्त्रिभिः ॥ ७ ॥
लक्ष्मणस्तव पौत्रस्तु सौभद्रं समवस्थितम् ।
अभ्यवर्तत संहृष्टस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ८ ॥
दौर्योधनिः सुसंक्रुद्धः सौभद्रं परवीरहा ।
विव्याध समरे राजंस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ९ ॥
अभिमन्युः सुसंक्रुद्धो भ्रातरं भरतर्षभ ।
शरैः पञ्चाशता राजन्क्षिप्रहस्तोऽभ्यविध्यत ॥ १० ॥
लक्ष्मणोऽपि ततस्तस्य धनुश्चिच्छेद पत्रिणा ।

मुष्टिदेशे महाराज ततस्ते चुक्रुशुर्जनाः ॥ ११ ॥
तद्विहाय धनुश्छिन्नं सौभद्रः परवीरहा ।
अन्यदादत्तवांश्चित्रं कार्मुकं वेगवत्तरम् ॥ १२ ॥
तौ तत्र समरे युक्तौ कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
अन्योन्यं विशिखैस्तीक्ष्णैर्जघ्नतुः पुरुषर्षभौ ॥ १३ ॥
ततो दुर्योधनो राजा दृष्ट्वा पुत्रं महारथम् ।
पीडितं तव पौत्रेण प्रायात्तत्र प्रजेश्वरः ॥ १४ ॥
सन्निवृत्ते तव सुते सर्व एव जनाधिपाः ।
आर्जुनिं रथवंशेन समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १५ ॥
स तैः परिवृतः शूरैः शूरो युधि सुदुर्जयैः ।
न स्म प्रव्यथते राजन्कृष्णतुल्यपराक्रमः ॥ १६ ॥
सौभद्रमथ संसक्तं दृष्ट्वा तत्र धनञ्जयः ।
अभिदुद्राव वेगेन त्रातुकामः स्वमात्मजम् ॥ १७ ॥
ततः सरथनागाश्वा भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
अभ्यवर्तन्त राजानः सहिताः सव्यसाचिनम् ॥ १८ ॥
उद्धूतं सहसा भौमं नागाश्वरथपत्तिभिः ।

दिवाकररथं प्राप्य रजस्तीव्रमदृश्यत ॥ १९ ॥
तानि नागसहस्राणि भूमिपालशतानि च ।
तस्य चापपथं प्राप्य नाऽभ्यवर्तन्त सर्वशः ॥ २० ॥
प्रणेदुः सर्वभूतानि बभूवुस्तिमिरा दिशः ।
कुरूणां चाऽनयस्तीव्रः समदृश्यत दारुणः ॥ २१ ॥
नाऽप्यन्तरिक्षं न दिशो न भूमिर्न च भास्करः ।
प्रजज्ञे भरतश्रेष्ठ शरसङ्घैः किरीटिनः ॥ २२ ॥
सादिता रथनागाश्च हताश्वा रथिनो रणे ।
विप्रद्रुतरथाः केचिद् दृश्यन्ते रथयूथपाः ॥ २३ ॥
विरथा रथिनश्चाऽन्ये धावमानाः समन्ततः ।
तत्र तत्रैव दृश्यन्ते सायुधाः साङ्गदैर्भुजैः ॥ २४ ॥
हयारोहा हयांस्त्यक्त्वा गजारोहाश्च दन्तिनः ।
अर्जुनस्य भयाद्राजन्समन्ताद्विप्रदुद्रुवुः ॥ २५ ॥
रथेभ्यश्च गजेभ्यश्च हयेभ्यश्च नराधिपाः ।
पतिताः पात्यमानाश्च दृश्यन्तेऽर्जुनसायकैः ॥ २६ ॥
सगदानुद्यतान्बाहून्सखड्गांश्च विशाम्पते ।

सप्रासांश्च सतूणीरान्सशरान्सशरासनान् ॥ २७ ॥
सांकुशान्सपताकांश्च तत्र तत्राऽर्जुनो नृणाम् ।
निचकर्त शरैरुग्रै रौद्रं वपुरधारयत् ॥ २८ ॥
परिघाणां प्रदीप्तानां मुद्गराणां च मारिष ।
प्रासानां भिन्दिपालानां निस्त्रिंशानां च संयुगे ॥२९॥
परश्वधानां तीक्ष्णानां तोमराणां च भारत ।
वर्मणां चाऽपविद्धानां काञ्चनानां च भूमिप ॥ ३० ॥
ध्वजानां चर्मणां चैव व्यजनानां च सर्वशः ।
छत्राणां हेमदण्डानां तोमराणां च भारत ॥ ३१ ॥
प्रतोदानां च योक्त्राणां कशानां चैव मारिष ।
राशयः स्माऽत्र दृश्यन्ते विनिकीर्णा रणक्षितौ ॥ ३२ ॥
नाऽऽसीत्तत्र पुमान्कश्चित्तव सैन्यस्य भारत ।
योऽर्जुनं समरे शूरं प्रत्युद्यायात्कथञ्चन ॥ ३३ ॥
यो यो हि समरे पार्थं प्रत्युद्याति विशाम्पते ।
स स वै विशिखैस्तीक्ष्णैः परलोकाय नीयते ॥ ३४ ॥
तेषु विद्रवमाणेषु तव योधेषु सर्वशः ।
अर्जुनो वासुदेवश्च दध्मतुर्वारिजोत्तमौ ॥ ३५ ॥
तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा पिता देवव्रतस्तव ।
अब्रवीत्समरे शूरं भारद्वाजं स्मयन्निव ॥ ३६ ॥

एष पाण्डुसुतो वीर कृष्णेन सहितो बली।
तथा करोति सैन्यानि यथा कुर्याद्धनञ्जयः ॥ ३७ ॥
न ह्येष समरे शक्यो विजेतुं हि कथञ्चन।
यथाऽस्य दृश्यते रूपं कालान्तकयमोपमम् ॥ ३८ ॥
न निवर्तयितुं चाऽपि शक्येयं महती चमूः।
अन्योन्यप्रेक्षया पश्य द्रवतीयं वरूथिनी ॥ ३९ ॥
एष चास्तं गिरिश्रेष्ठं भानुमान्प्रतिपद्यते।
चक्षूंषि सर्वलोकस्य संहरन्निव सर्वथा ॥ ४० ॥
तत्राऽवहारं सम्प्राप्तं मन्येऽहं पुरुषर्षभ।
श्रान्ता भीताश्च नो योधा न योत्स्यन्ति कथञ्चन॥४१॥
एवमुक्त्वा ततो भीष्मो द्रोणमाचार्यसत्तमम्।
अवहारमथो चक्रे तावकानां महारथः ॥ ४२ ॥
ततोऽवहारः सैन्यानां तव तेषां च भारत।
अस्तं गच्छति सूर्येऽभूत्सन्ध्याकाले च वर्तति ॥४३॥ [२३०९]

सञ्जय उवाच— प्रभातायां च शर्वर्यां भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
अनीकान्यनुसंयाने व्यादिदेशाथ भारत ॥ १ ॥
गारुडं च महाव्यूहं चक्रे शान्तनवस्तदा ।
पुत्राणां ते जयाकांक्षी भीष्मः कुरुपितामहः ॥ २ ॥
गरुडस्य स्वयं तुण्डे पिता देवव्रतस्तव ।
चक्षुषी च भरद्वाजः कृतवर्मा च सात्वतः ॥ ३ ॥
अश्वत्थामा कृपश्चैव शीर्षमास्तां यशस्विनौ ।
त्रैगर्तैरथ कैकेयैर्वाटधानैश्च संयुगे ॥ ४ ॥
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
मद्रकाः सिन्धुसौवीरास्तथा पाञ्चनदाश्च ये ॥ ५ ॥
जयद्रथेन सहिता ग्रीवायां सन्निवेशिताः ।
पृष्ठे दुर्योधनो राजा सोदर्यैः सानुगैर्वृतः ॥ ६ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजश्च शकैः सह ।
पुच्छमासन्महाराज शूरसेनाश्च सर्वशः ॥ ७ ॥
मागधाश्च कलिङ्गाश्च दाशेरकगणैः सह ।
दक्षिणं पक्षमासाद्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥ ८ ॥

भीमसेनिस्ततो राजन्केकयाश्च महारथाः ।
ततोऽभूद् द्विपदां श्रेष्ठो वामं पार्श्वमुपाश्रितः ॥ १७ ॥
सर्वस्य जगतो गोप्ता गोप्ता यस्य जनार्दनः ।
एवमेतं महाव्यूहं प्रत्यव्यूहन्त पाण्डवाः ॥ १८ ॥
वधार्थं तव पुत्राणां तत्पक्षं ये च सङ्गताः ।
ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ॥ १९ ॥
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ।
हयौघाश्च रथौघाश्च तत्र तत्र विशाम्पते ॥ २० ॥
सम्पतन्तो व्यदृश्यन्त निघ्नन्तस्ते परस्परम् ।
धावतां च रथौघानां निघ्नतां च पृथक्पृथक् ॥ २१ ॥
बभूव तुमुलः शब्दो विमिश्रो दुन्दुभिस्वनैः ।
दिवस्पृक् नरवीराणां निघ्नतामितरेतरम् ॥
सम्प्रहारे सुतुमुले तव तेषां च भारत ॥ २२ ॥ [२४२१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि [illegible] परस्परव्यूहरचनायां सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

परिस्तोमैः कुथाभिश्च कम्बलैश्च महाधनैः ।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ स्रग्दामैरिव चित्रिता ॥ २६ ॥
नराश्वकायैः पतितैर्दन्तिभिश्च महाहवे ।
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ॥ २७ ॥
प्रशशाम रजो भौमं व्युक्षितं रणशोणितैः ।
दिशश्च विमलाः सर्वाः सम्बभूवुर्जनेश्वर ॥ २८ ॥
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ।
चिह्नभूतानि जगतो विनाशार्थाय भारत ॥ २९ ॥
तस्मिन्युद्धे महारौद्रे वर्तमाने सुदारुणे ।
प्रत्यदृश्यन्त रथिनो धावमानाः समन्ततः ॥ ३० ॥
ततो भीष्मश्च द्रोणश्च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
पुरुमित्रो जयो भोजः शल्यश्चापि ससौबलः ॥ ३१ ॥
एते समरदुर्धर्षाः सिंहतुल्यपराक्रमाः ।
पाण्डवानामनीकानि बभञ्जुः स्म पुनः पुनः ॥ ३२ ॥
तथैव भीमसेनोऽपि राक्षसश्च घटोत्कचः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्रौपदेयाश्च भारत ॥ ३३ ॥
तावकांस्तव पुत्रांश्च सहितान्सर्वराजभिः ।
द्रावयामासुराजौ ते त्रिदशा दानवानिव ॥ ३४ ॥

रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात्पर्यवारयत् ॥ १ ॥
अथैनं रथवृन्देन कोष्ठकीकृत्य भारत ।
शरैः सुबहुसाहस्रैः समन्तादभ्यवारयन् ॥ २ ॥
शक्तीश्च विमलास्तीक्ष्णा गदाश्च परिघैः सह ।
प्रासान्परश्वधांश्चैव मुद्गरान्मुसलानपि ॥ ३ ॥
चिक्षिपुः समरे क्रुद्धाः फाल्गुनस्य रथं प्रति ॥
शस्त्राणामथ तां वृष्टिं शलभानामिवाऽऽयतिम् ॥ ४ ॥
रुरोध सर्वतः पार्थः शरैः कनकभूषणैः ।
तत्र तल्लाघवं दृष्ट्वा बीभत्सोरतिमानुषम् ॥ ५ ॥
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
साधु साध्विति राजेन्द्र फाल्गुनं प्रत्यपूजयन् ॥ ६ ॥
सात्यकिश्चाऽभिमन्युश्च महत्या सेनया वृतौ ।
गान्धारान्समरे शूराञ्जग्मतुः सहसौबलान् ॥ ७ ॥
तत्र सौबलकाः क्रुद्धा वार्ष्णेयस्य रथोत्तमम् ।
तिलशश्चिच्छिदुः क्रोधाच्छस्त्रैर्नानाविधैर्युधि ॥ ८ ॥
सात्यकिस्तु रथं त्यक्त्वा वर्तमाने भयानके ।

तथा ते समरेऽन्योन्यं निघ्नन्तः क्षत्रियर्षभाः ।
रक्तोक्षिता घोररूपा विरेजुर्दानवा इव ॥ ३५ ॥
विनिर्जित्य रिपून्वीराः सेनयोरुभयोरपि ।
व्यदृश्यन्त महामात्रा ग्रहा इव नभस्तले ॥ ३६ ॥
ततो रथसहस्रेण पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अभ्ययात्पाण्डवं युद्धे राक्षसं च घटोत्कचम् ॥ ३७ ॥
तथैव पाण्डवाः सर्वे महत्या सेनया सह ।
द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ प्रत्युद्ययुररिन्दमौ ॥ ३८ ॥
किरीटी च ययौ क्रुद्धः समन्तात्पार्थिवोत्तमान् ।
आर्जुनिः सात्यकिश्चैव ययतुः सौबलं बलम् ॥ ३९ ॥
ततः प्रववृते भूयः संग्रामो लोमहर्षणः ।
तावकानां परेषां च समरे विजयैषिणाम् ॥ ४० ॥ [२४६१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीये युद्धदिवसे सकुलयुद्धे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५७ ॥

सञ्जय उवाच— ततस्ते पार्थिवाः क्रुद्धाः फाल्गुनं वीक्ष्य संयुगे ।

पुत्रों तथा कौरव पक्षीय वीरोंको इस प्रकारसे तितर बितर करने लगे, जैसे देवता लोग दानवोंको मारके छिन्न भिन्न करके भगा देते है ॥ वह सब क्षत्रिय श्रेष्ठ पुरुष युद्धमें एक दूसरेको मारते हुए रुधिरसे पूरित होकर राक्षसोंके समान भयानक रूपसे दीख पडने लगे ॥ (३३-३५)

दोनों ओरके मुख्य मुख्य वीर योद्धा-लोग विपक्ष वीरोंको जीतकर मानों आकाशमण्डलमें स्थित हुए बडे ग्रहों की भांति दिखाई पडने लगे ॥ तिसके अनन्तर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने सहस्र रथियोंके संग मिलकर पाण्डवगण तथा घटोत्कच राक्षसपर आक्रमण किया ॥ सम्पूर्ण पाण्डवोंने बडी सेनाके सहित मिलकर शत्रुनाशन भीष्म और द्रोणा-चार्यपर आक्रमण किया। (३६-३८)

अर्जुन भी क्रुद्ध होकर इधर उधर मुख्य मुख्य राजाओंसे युद्ध करने लगे। अभिमन्यु और सात्यकिने सुबलराजकी सेनाके संग युद्ध करनेके निमित्त यात्रा की ॥ तिसके अनन्तर एक दूसरेको मारनेकी इच्छासे तुम्हारे और पाण्डवोंकी ओरके वीरोंका फिर रोएंको खडा करनेवाला महा भयंकर संग्राम होने लगा। (३९--४०) [२४६१]

भीष्मपर्वमें सतावन अध्याय समाप्त।

रथैरनेकसाहस्रैः समन्तात्पर्यवारयन् ॥ १ ॥
अथैनं रथवृन्देन कोष्ठकीकृत्य भारत ।
शरैः सुबहुसाहस्रैः समन्तादभ्यवारयन् ॥ २ ॥
शक्तीश्च विमलास्तीक्ष्णा गदाश्च परिघैः सह ।
प्रासान्परश्वधांश्चैव मुद्गरान्मुसलानपि ॥ ३ ॥
चिक्षिपुः समरे क्रुद्धाः फाल्गुनस्य रथं प्रति ॥
शस्त्राणामथ तां वृष्टिं शलभानामिवाऽऽयतिम् ॥ ४ ॥
रुरोध सर्वतः पार्थः शरैः कनकभूषणैः ।
तत्र तल्लाघवं दृष्ट्वा बीभत्सोरतिमानुषम् ॥ ५ ॥
देवदानवगन्धर्वाः पिशाचोरगराक्षसाः ।
साधु साध्विति राजेन्द्र फाल्गुनं प्रत्यपूजयन् ॥ ६ ॥
सात्यकिश्चाऽभिमन्युश्च महत्या सेनया वृतौ ।
गान्धारान्समरे शूराञ्जघ्नतुः ससौबलान् ॥ ७ ॥
तत्र सौबलकाः क्रुद्धा वार्ष्णेयस्य रथोत्तमम् ।
तिलशश्चिच्छिदुः क्रोधाच्छस्त्रैर्नानाविधैर्युधि ॥ ८ ॥
सात्यकिस्तु रथं त्यक्त्वा वर्तमाने भयानके ।

अभिमन्यो रथं तूर्णमारुरोह परन्तपः ॥ ९ ॥
तावेकरथसंयुक्तौ सौवलेयस्य वाहिनीम् ।
व्यधमेतां शितैस्तूर्णं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १० ॥
द्रोणभीष्मौ रणे यत्तौ धर्मराजस्य वाहिनीम् ।
नाशयेतां शरैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रपरिच्छदैः ॥ ११ ॥
ततो धर्मसुतो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
मिपतां सर्वसैन्यानां द्रोणानीकमुपाद्रवन् ॥ १२ ॥
तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
यथा देवासुरं युद्धं पूर्वमासीत्सुदारुणम् ॥ १३ ॥
कुर्वाणौ सुमहत्कर्म भीमसेनघटोत्कचौ ।
दुर्योधनस्ततोऽभ्येत्य तावुभावप्यवारयन् ॥ १४ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम हैडिम्बस्य पराक्रमम् ।
अतीत्य पितरं युद्धे यदयुध्यत भारत ॥ १५ ॥
भीमसेनस्तु संक्रुद्धो दुर्योधनममर्षणम् ।
हृद्यविध्यत्पृषत्केन प्रहसन्निव पाण्डवः ॥ १६ ॥
ततो दुर्योधनो राजा प्रहारवरपीडितः ।

अभिमन्युके रथपर जा चढे॥ वह दोनों एक ही रथपर चढके शीघ्रताके सहित अपने चोखे वाणोंसे सौवलसेनाके वीरोंको मारने लगे ॥ (७-१०)

उस युद्धमें द्रोण और भीष्म सावधान होकर धर्मराज की सेनाको कंक पत्रोसे युक्त वाणोंसे नष्ट करनेलगे ॥ अनन्तर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर, नकुल और सहदेव सब सेनाके संमुख ही द्रोणसेनाकी ओर दौडे; जिस भांतिसे पहिले देवता और असुरोंका महा घोर युद्ध हुआ था; उसी प्रकारसे इन सब वीरोंका महा भयंकर रोंएको खडा करनेवाला घोर संग्राम होने लगा। (११-१३)

राजा दुर्योधन भीमसेन और घटोत्कच को संग्राममें बहुत वडे कार्यको करते हुए देखकर उन दोनोंके संमुख गमन करके उन्हें रोकनेमें प्रवृत्त हुए। महाराज ! इस स्थानपर हिडिम्बापुत्रका मैंने अद्भुत पराक्रम देखा, कि वह अपने पिता भीमसेनसे भी बढकर पराक्रम प्रकाशित करने लगा ॥ भीमसेनने भी क्रुद्ध होकर हंसते हुए शत्रुनाशन दुर्योधनके हृदयमें एक बाण मारा, तिसके अनन्तर राजा दुर्योधन उस कठिन बाणसे मोहित और मूर्च्छित होकर रथपर बैठ

निषसाद रथोपस्थे कश्मलं च जगाम ह ॥ १७ ॥
तं विसंज्ञं विदित्वा तु त्वरमाणोऽस्य सारथिः ।
अपोवाह रणाद्राजंस्ततः सैन्यमभज्यत ॥ १८ ॥
ततस्तां कौरवीं सेनां द्रवमाणां समन्ततः ।
निघ्नन्भीमः शरैस्तीक्ष्णैरनुवव्राज पृष्ठतः ॥ १९ ॥
पार्षतश्च रथश्रेष्ठो धर्मपुत्रश्च पाण्डवः ।
द्रोणस्य पश्यतः सैन्यं गाङ्गेयस्य च पश्यतः ॥ २० ॥
जघ्नतुर्विशिखैस्तीक्ष्णैः परानीकविनाशनैः ।
द्रवमाणं तु तत्सैन्यं तव पुत्रस्य संयुगे ॥ २१ ॥
नाऽशक्नुतां वारयितुं भीष्मद्रोणौ महारथौ ।
वार्यमाणं च भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ॥ २२ ॥
विद्रवत्येव तत्सैन्यं पश्यतोर्द्रोणभीष्मयोः ।
ततो रथसहस्रेषु विद्रवत्सु ततस्ततः ॥ २३ ॥
तावास्थितावेकरथं सौभद्रशिनिपुङ्गवौ ।
सौबलीं समरे सेनां शातयेतां समन्ततः ॥ २४ ॥
शुशुभाते तदा तौ तु शैनेयकुरुपुङ्गवौ ।
अमावास्यां गतौ यद्वत्सोमसूर्यौ नभस्तले ॥ २५ ॥

अर्जुनस्तु ततः क्रुद्धस्तवसैन्यं विशाम्पते ।
ववर्ष शरवर्षेण धाराभिरिव तोयदः ॥ २६ ॥
वध्यमानं ततस्तत्र शरैः पार्थस्य संयुगे ।
दुद्राव कौरवं सैन्यं विषादभयकम्पितम् ॥ २७ ॥
द्रवतस्तान्समालक्ष्य भीष्मद्रोणौ महारथौ ।
न्यवारयेतां संरब्धौ दुर्योधनहितैषिणौ ॥ २८ ॥
ततो दुर्योधनो राजा समाश्वस्य विशाम्पते ।
न्यवर्तयत तत्सैन्यं द्रवमाणं समन्ततः ॥ २९ ॥
यत्र यत्र सुतस्तुभ्यं यं यं पश्यति भारत ।
तत्र तत्र न्यवर्तन्त क्षत्रियाणां महारथाः ॥ ३० ॥
तान्निवृत्तान्समीक्ष्यैव ततोऽन्येऽपीतरे जनाः ।
अन्योन्यस्पर्धया राजँल्लज्जया चाऽवतस्थिरे ॥ ३१ ॥
पुनरावर्ततां तेषां वेग आसीद्विशाम्पते ।
पूर्यतः सागरस्येव चन्द्रस्योदयनं प्रति ॥ ३२ ॥
सन्निवृत्तांस्ततस्तांस्तु दृष्ट्वा राजा सुयोधनः ।
अब्रवीत्त्वरितो गत्वा भीष्मं शान्तनवं वचः ॥ ३३ ॥

सूर्य और चन्द्रमा आकाशमण्डलमें एक ही स्थान पर शोभित हों ॥ अर्जुन क्रुद्ध होकर तुम्हारी सेना पर अपने बाणोंको इस प्रकारसे वर्षाने लगे, जैसे बादल आकाशसे जल वर्षाता है। (२३-२६)

तब कौरवी सेना अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर भयसे कांपती हुई रणभूमि से भागने लगी॥ उस सेनाको भागती हुई देख कर दुर्योधनके हितैषी महाबली भीष्म और द्रोणाचार्य उसके निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ अनन्तर राजा दुर्योधनने उस सेनाको धीरज देके फिर युद्धके निमित्त लौटायी ॥ (२७-२९)

महारथी क्षत्रिय योद्धाओंने जहां जहांसे दुर्योधनको देखा, उस ही ओर से युद्धके निमित्त फिर लौट आये ॥ उन सब वीरोंको लौटता हुआ देखकर सब साधारण वीर लोग इच्छानुसार तथा कितने ही लज्जित होके फिर युद्धके निमित्त लौटे ॥ उस सम्पूर्ण सेनाके फिर युद्धके निमित्त लौटने पर ऐसा वेग हुआ, जैसे पूर्णमासीके दिन चन्द्रमाको देख कर समुद्रकी तरंग अत्यन्त वेगसे उठती है। (३०-३२)

राजा दुर्योधन सेनाको लौटी हुई देखकर शीघ्रताके सहित भीष्मके समीप

पितामह निबोधेदं यत्त्वां वक्ष्यामि भारत ।
नाऽनुरूपमहं मन्ये त्वयि जीवति कौरव ॥ ३४ ॥
द्रोणे चाऽस्त्रविदां श्रेष्ठे सपुत्रे ससुहृज्जने ।
कृपे चैव महेष्वासे द्रवते यद्वरूथिनी ॥ ३५ ॥
न पाण्डवान्प्रतिबलांस्तव मन्ये कथञ्चन ।
तथा द्रोणस्य संग्रामे द्रौणेश्चैव कृपस्य च ॥ ३६ ॥
अनुग्राह्याः पाण्डुसुतास्तव नूनं पितामह ।
यथेमां क्षमसे वीर वध्यमानां वरूथिनीम् ॥ ३७ ॥
सोऽस्मि वाच्यस्त्वया राजन्पूर्वमेव समागमे ।
न योत्स्ये पाण्डवान्संख्ये नाऽपि पार्षतसात्यकी ॥३८॥
श्रुत्वा तु वचनं तुभ्यमाचार्यस्य कृपस्य च ।
कर्णेन सहितः कृत्यं चिन्तयानस्तदैव हि ॥ ३९ ॥
यदि नाऽहं परित्याज्यो युवाभ्यामिह संयुगे ।
विक्रमेणाऽनुरूपेण युध्येतां पुरुषर्षभौ ॥ ४० ॥
एतच्छ्रुत्वा वचो भीष्मः प्रहसन्वै मुहुर्मुहुः ।

जाकर यह वचन बोले,—हे पितामह! मैं जो कुछ तुमसे कहता हूं, उसको सुनो । शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ पुत्र और सुहृद पुरुषों के सहित तुम्हारे तथा कृपाचार्यके विद्यमान रहते ही, जो यह सब सेना युद्धसे भागती है, मेरे विचारमें यह आप लोगोंके योग्य कार्य नहीं हो रहा है, युद्धमें मैं तुम्हारे तथा द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा वा कृपाचार्यके समान पाण्डवों को कभी नहीं समझता हूं । (३३-३६)

जब सेनाके वीरोंको मरता देख कर भी आप लोग क्षमा कर रहे हैं: तब निश्चय मुझे यही बोध हो रहा है, कि आप लोग पाण्डवोंके ऊपर कृपा कर रहे हैं ॥ इससे युद्ध आरम्भ होनेके पहिले ही आपको यह कहना उचित था, कि "मैं पाण्डव लोग, सात्यकि वा धृष्टद्युम्नके सङ्ग युद्ध नहीं करूंगा" ॥ ऐसा होनेपर मैं तुम्हारे और द्रोणाचार्यके इस वचनको सुन कर, उसी समय कर्णके संग विचार करके किसी प्रकारसे अपने कर्त्तव्य कार्यका निश्चय करता । सो हो अब इस उपस्थित युद्धमें यदि मैं तुम्हारे और आचार्य महाशयके परित्याग न किये जानेके योग्य होऊं, तो आप दोनों पुरुषसिंह अपने अपने पराक्रमके अनुसार युद्ध कीजिये ॥ (३७-४०)

अब्रवीत्तनयं तुभ्यं क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥ ४१ ॥
बहुशोऽसि मया राजंस्तथ्यमुक्तो हितं वचः।
अजेयाः पाण्डवा युद्धे देवैरपि सवासवैः ॥ ४२ ॥
यत्तु शक्यं मया कर्तुं वृद्धेनाद्य नृपोत्तम।
करिष्यामि यथाशक्ति प्रेक्षेदानीं सबान्धवः ॥ ४३ ॥
अद्य पाण्डुसुतानेकः ससैन्यान्सह बन्धुभिः।
सोऽहं निवारयिष्यामि सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ ४४ ॥
एवमुक्ते तु भीष्मेण पुत्रास्तव जनेश्वर।
दध्मुः शङ्खान्मुदा युक्ता भेरीः सञ्जघ्निरे भृशम् ॥४५॥
पाण्डवा हि ततो राजञ्श्रुत्वा तं निनदं महत्।
दध्मुः शङ्खांश्च भेरीश्च मुरजांश्चाऽप्यनादयन् ॥४६॥ [२५०७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीये युद्धदिवसे भीष्मदुर्योधनसंवादेऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच– प्रतिज्ञाते ततस्तस्मिन्युद्धे भीष्मेण दारुणे।
क्रोधितो मम पुत्रेण दुःखितेन विशेषतः ॥ १ ॥
भीष्मः किमकरोत्तत्र पाण्डवेयेषु भारत।

दुर्योधनकी बात सुन कर भीष्म हंसकर क्रोधसे नेत्र लाल करके उनसे बोले ॥ हे राजन्! मैंने बहुत बार तुमको हितकारी तथा पथ्य वचन कहा है, कि पाण्डव लोग युद्धमें इन्द्रके सहित देवताओंसे भी न जीतने योग्य है ॥ जो हो, अब इस संग्राम भूमिमें मेरी जहां तक शक्ति है, उसे मैं सामर्थ्य के अनुसार प्रकाशित करता हूं, तुम बन्धु-बान्धवोंके सहित मेरे पराक्रमको देखो॥ आज सब पुरुषोंके संमुखही सेनाके सहित वीर पाण्डवों को निवारण करूंगा। (४१-४४)

राजा दुर्योधन भीष्मके ऐसे वचन सुन हर्षके सहित अपना शंख बजाने लगे और भेरी, मृदङ्ग, नगाडे आदि बाजोंका शब्द होने लगा ॥ उन युद्धके बाजोंका शब्द सुनके पाण्डव लोग भी शंख, भेरी, मुरज आदि युद्धके बाजे बजाने लगे। (४५—४६)[२५०७]

भीष्मपर्वमें अठावन अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें उनसठ अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! उस महाभयङ्कर युद्धमें दुर्योधनकी बातसे विशेष क्रुद्ध होकर, भीष्मने प्रतिज्ञा करके पाण्डवोंसे किस प्रकार युद्ध किया।

पितामहे वा पञ्चालास्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ २ ॥

सञ्जय उवाच— गतपूर्वाह्णभूयिष्ठे तस्मिन्नहनि भारत ।
पश्चिमां दिशमास्थाय स्थिते चाऽपि दिवाकरे ॥ ३ ॥
जयं प्राप्तेषु हृष्टेषु पाण्डवेषु महात्मसु ।
सर्वधर्मविशेषज्ञः पिता देवव्रतस्तव ॥ ४ ॥
अभ्ययाज्जवनैरश्वैः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
महत्या सेनया गुप्तस्तव पुत्रैश्च सर्वशः ॥ ५ ॥
प्रावर्तत ततो युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
अस्माकं पाण्डवैः सार्धमनयात्तव भारत ॥ ६ ॥
धनुषां कूजतां तत्र तलानां चाऽभिहन्यताम् ।
महान्समभवच्छब्दो गिरीणामिव दीर्यताम् ॥ ७ ॥
तिष्ठ स्थितोऽस्मि विद्ध्यैनं निवर्तस्व स्थिरो भव ।
स्थिरोऽस्मि प्रहरस्वेति शब्दोऽश्रूयत सर्वशः ॥ ८ ॥
काञ्चनेषु तनुत्रेषु किरीटेषु ध्वजेषु च ।
शिलानामिव शैलेषु पतितानामभूद् ध्वनिः ॥ ९ ॥

और धृष्टद्युम्न आदि पांचाल वीरोंने भी भीष्मके संग कैसा संग्राम किया ? वह सब वृत्तान्त तुम मुझसे वर्णन करो । (१—२)

सञ्जय बोले, हे महाराज ! उस दिन पूर्वाह्ण व्यतीत हुआ और सूर्य पश्चिम दिशा की ओर जाने लगा तब महात्मा पाण्डव लोग दुर्योधनकी सेनाको हरा कर प्रसन्न हुए, उस समय विशेष धर्मज्ञ तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्म तुम्हारे सब पुत्रों और उस बड़ी सेनाको संग लेकर वेगके सहित पाण्डवोंकी ओर दौडे ॥ (३—५)

हे भारत ! अनन्तर पाण्डवोंके सङ्ग उनका महा भयङ्कर तुमुल संग्राम होने लगा । यह सब घटना आपके अनीति दोषसे ही हुई ॥ जो हो, तब उस समय पर्वतको भी भेद करनेवाली प्रचण्ड ध्वनि, धनुपटङ्कार और शस्त्रोंके घोर खटपट शब्द होने लगे; और " खडा रह, यहीं हूं, इनको मारो, उनको निवृत्त करो, चुप रहो, स्थिर हू, शस्त्र चलाओ " ;—इसी प्रकारके सब ओर शब्द सुनाई देने लगे ॥ सुवर्णके तनुत्राण, किरीट, ध्वजा आदि शस्त्रोंके लगनेसे कटके गिरने लगे । तब पर्वतोंके ऊपरसे गिरनेवाली शिलाओंके समान उनका शब्द होने लगा ॥ (६—९)

पतितान्युत्तमाङ्गानि बाहवश्च विभूषिताः ।
व्यचेष्टन्त महीं प्राप्य शतशोऽथ सहस्रशः ॥ १० ॥
हृतोत्तमाङ्गाः केचित्तु तथैवोद्यतकार्मुकाः ।
प्रगृहीतायुधाश्चापि तस्थुः पुरुषसत्तमाः ॥ ११ ॥
प्रावर्तत महावेगा नदी रुधिरवाहिनी ।
मातङ्गाङ्गशिला रौद्रा मांसशोणितकर्दमा ॥ १२ ॥
वराश्वनरनागानां शरीरप्रभवा तदा ।
परलोकार्णवमुखी गृध्रगोमायुमोदिनी ॥ १३ ॥
न दृष्टं न श्रुतं वापि युद्धमेतादृशं नृप ।
यथा तव सुतानां च पाण्डवानां च भारत ॥ १४ ॥
नाऽऽसीद्रथपथस्तत्र योधैर्युधि निपातितैः ।
गजैश्च पतितैर्नीलैर्गिरिशृङ्गैरिवाऽऽवृतः ॥ १५ ॥
विकीर्णैः कवचैश्चित्रैः शिरस्त्राणैश्च मारिष ।
शुशुभे तद्रणस्थानं शरदीव नभस्तलम् ॥ १६ ॥
विनिर्भिन्नाः शरैः केचिदन्त्रापीडप्रकर्षिणः ।

सैकडो तथा सहस्रों सिर और भूषणोंसे युक्त वीरोकी भुजाएं कटकर पृथ्वीमें गिरकर हल चल करने लगीं ॥ कितने ही पुरुष हाथमें शस्त्र वा धनुष लिये ही सिर कट जाने पर खडे ही रहे ॥ रणभूमिमें मरे हुए मनुष्य, घोडे और हाथियोंके शरीरके रुधिरसे गिद्ध, और सियारोंके हर्षको बढानेवाली महाघोर तरङ्गसे युक्त रुधिरकी नदी बह चली; हाथियोंके शरीर इस नदीमें पर्वतकी शिला, मांस कीचड और रुधिर जलरूपी था, वह परलोकरूपी समुद्रकी ओर बहने लगी। (१०–१३)

महाराज! मैने तुम्हारे पुत्रोंके संग पाण्डवोंका जैसा युद्ध देखा, वैसा पहिले न कभी देखनेमें आया और न मैने सुना ही था। उस रणभूमिमें मरे हुए योद्धाओंके और हाथियोंके शरीर इधर उधर पडे रहनेके कारणसे रथोंके गमन करनेका मार्ग नहीं रहा ॥ मरे हुए हाथियोंके शरीरसे रणभूमि इस प्रकारसे भर गई, मानो नील गिरिके शिखर पडे हुए है ॥ बहुतसे विचित्र कवच और मुकुटसे रणभूमि इस प्रकारसे शोभित हुई, जैसे शरद् ऋतुमें आकाश तारोंसे शोभायमान लगता है ॥ (१४–१६)

कितने ही भयरहित पुरुष शस्त्रोंकी चोटसे जिन की आंतें बाहर निकली है

भीष्माचार्य और भगवान् श्रीकृष्ण (भीष्मपर्व अ० ५९)

(स. सा. मुद्रणालय-अहमदाबाद)

अभीताः समरे शत्रूनभ्यधावन्त दर्पिताः ॥ १७ ॥
तात भ्रातः सखे बन्धो वयस्य मम मातुल ।
मा मां परित्यजेत्यन्ये चुक्रुशुः पतिता रणे ॥ १८ ॥
अथाऽभ्येहि त्वमागच्छ किं भीतोऽसि क्व यास्यसि ।
स्थितोऽहं समरे मा भैरिति चाऽन्ये विचुक्रुशुः ॥१९॥
तत्र भीष्मः शान्तनवो नित्यं मण्डलकार्मुकः ।
मुमोच बाणान्दीप्ताग्रानहीनाशीविषानिव ॥ २० ॥
शरैरेकायनीकुर्वन् दिशः सर्वा यतव्रतः ।
जघान पाण्डवरथानादिश्य भरतर्षभ ॥ २१ ॥
स नृत्यन्वै रथोपस्थे दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
अलातचक्रवद्राजंस्तत्र तत्र स्म दृश्यते ॥ २२ ॥
तमेकं समरे शूरं पाण्डवाः सृञ्जयैः सह ।
अनेकशतसाहस्रं समपश्यन्त लाघवात् ॥ २३ ॥
मायाकृतात्मानमिव भीष्मं तत्र स्म मेनिरे ।
पूर्वस्यां दिशि तं दृष्ट्वा प्रतीच्यां ददृशुर्जनाः ॥ २४ ॥

ऐसे होकर भी क्रोधपूर्वक दांत पीसते हुए शत्रुओंकी ओर दौडने लगे ॥ कितने ही रणभूमिमें शस्त्रकी चोटसे गिर कर पिता, भ्राता, सखा, बन्धु, और मामाका नाम लेकर 'मुझे छोडके मत जाओ' ऐसा कहकर रोदन करते हुए दीख पडे। बहुतेरे योद्धालोग; चले आओ, मेरे निकट आओ, क्या तुम डर गये हो ? कहां जाओगे ? मैं युद्धहीमें हूं, तुम कुछ भय मत करो; ऐसा कहकर पुकारते तथा चिल्लाते थे ॥ (१५–१९)

इस प्रकारसे संग्रामभूमिमें शान्तनु पुत्र भीष्म अपने मण्डलाकार धनुषको ग्रहण करके विषधर सर्पके समान सब प्रकाशमान बाणोंको चला रहे थे ॥ महाराज ! महाव्रत करनेवाले भीष्म अपने बाणोंसे सब दिशाओंका एक मार्ग बनाकर पाण्डवोंकी ओरके रथियोंका नाम ले लेकर उनका वध करते थे ॥ हे राजन ! वह अपने हाथकी फुर्ती दिखाते हुए रथसमेत अलात चक्रकी भांति सब ओर घूमते हुए दीख पडते थे। उनके हाथकी फुर्ती और युद्धमें निपुणताके कारण पाण्डव तथा सृञ्जयोंने उन एक ही भीष्मकी सैकडों तथा सहस्रों मूर्ति देखी ॥ (२०–२३)

वहांपर उनकी आत्माको उस समय सब पुरुष ऐन्द्रजालिक समझने लगे।

उदीच्यां चैवमालोक्य दक्षिणस्यां पुनः प्रभो ।
एवं स समरे शूरो गाङ्गेयः प्रत्यदृश्यत ॥ २५ ॥
न चैवं पाण्डवेयानां कश्चिच्छक्नोति वीक्षितुम् ।
विशिखानेव पश्यन्ति भीष्मचापच्युतान्बहून् ॥ २६ ॥
कुर्वाणं समरे कर्म सूदयानं च वाहिनीम् ।
व्याक्रोशन्त रणे तत्र नरा बहुविधा बहु ॥ २७ ॥
अमानुषेण रूपेण चरन्तं पितरं तव ।
शलभा इव राजानः पतन्ति विधिचोदिताः ॥ २८ ॥
भीष्माग्निमभिसंक्रुद्धं विनाशाय सहस्रशः ।
नहि मोघः शरः कश्चिदासीद्भीष्मस्य संयुगे ॥ २९ ॥
नरनागाश्वकायेषु बहुत्वाल्लघुयोधिनः ।
भिनत्त्येकेन बाणेन सुमुखेन पतत्त्रिणा ॥ ३० ॥
गजकण्टकसन्नद्धं वज्रेणेव शिलोच्चयम् ।
द्वौ त्रीनपि गजारोहान्पिण्डितान्वर्मितानपि ॥ ३१ ॥
नाराचेन सुमुक्तेन निजघान पिता तव ।
यो यो भीष्मं नरव्याघ्रमभ्येति युधि कश्चन ॥ ३२ ॥

उनको पूर्व दिशामें देखते थे और फिर क्षण भरमें पश्चिम ओर देखते थे ॥ फिर घूमकर उत्तर ओर भी भीष्मको देखते और फिर उस ही समय दक्षिण दिशामें लौटकर उन्हें उस ओर भी देखते थे ॥ पाण्डवोंकी सेनामें कोई भी उनको देखनेमें समर्थ न हुआ, केवल उनके धनुषसे छूटे हुए बाणोंको ही सब देखने लगे ॥ (२४–२६)

उन पितामह भीष्मको सब सेनाका नाश और अत्यन्त कठिन कर्म करते हुए देखकर बहुतेरे पुरुष दुःखित होकर आर्त्तनाद करने लगे ॥ सहस्रों क्षत्रिय वीर योद्धा अमानुषरूप से रणभूमिमें घूमनेवाले क्रोधसे युक्त भीष्मरूपी अग्निमें पतङ्गोंकी भांति भस्म होने लगे ॥ अत्यन्त शीघ्रताके सहित शस्त्रोंको चलानेपर भी उनका एक भी बाण मनुष्य, हाथी वा घोडोंके शरीरमें लगकर निष्फल नहीं होता था। धनुषसे छूटे हुए ही बाणसे वर्मसे युक्त हाथी मरकर इस भांतिसे पृथ्वीमें गिर पडते थे, जैसे वज्रसे टुकडे टुकडे होकर पर्वत गिर जाता है । (२७–३१)

उत्तम पानीसे बुझे हुए एकही बाण-से वह वर्मसे युक्त एकत्रित हुए दो

मुहूर्तदृष्टः स मया पतितो भुवि दृश्यते ।
एवं सा धर्मराजस्य वध्यमाना महाचमूः ॥ ३३ ॥
भीष्मेणाऽतुलवीर्येण व्यशीर्यत सहस्रधा ।
प्राकम्पत महासेना शरवर्षेण तापिता ॥ ३४ ॥
पश्यतो वासुदेवस्य पार्थस्याऽथ शिखण्डिनः ।
यतमानाऽपि ते वीरा द्रवमाणान्महारथान् ॥ ३५ ॥
नाऽशक्नुवन्वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडितान् ।
महेन्द्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः ॥ ३६ ॥
अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः ।
आविद्धनरनागाश्वं पतितध्वजकूबरम् ॥ ३७ ॥
अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम् ।
जघानाऽत्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ॥ ३८ ॥
प्रियं सखायं चाऽऽक्रन्दे सखा दैवबलात्कृतः ।
विमुच्य कवचान्यन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ॥ ३९ ॥
विमुक्तकेशा धावन्तः प्रत्यदृश्यन्त भारत ।

तीन हजारोंही पुरुषोंका संहार करते थे। युद्धमें जो कोई मनुष्य उस पुरुषसिंहके सम्मुख जाता था, वह क्षण ही भरमें मर कर पृथ्वीमें गिर पडता था। युधिष्ठिर की महासेना अत्यन्त पराक्रमी भीष्मके बाणोंसे विकल होके सहस्रों भागोंमें बटकर महात्मा कृष्ण और अर्जुनके संमुख ही भीष्मके बाणोंसे पीडित हो भयसे कांपने लगी। (३१-३५)

पाण्डवोंके पक्षके वीर लोग महात्मा भीष्मके बाणोंसे पीडित होकर रण-भूमिसे भागने लगे। सेनापति वीर लोग यत्नवान होकर भी अपनी सेनाको निवारण न कर सके। महाराज! मुख्य सेना भी इन्द्रके समान पराक्रमी भीष्मके बाणोंसे पीडित हो कर भागने लगी। सब वीर रणभूमिसे भागने लगे और भागते समय किसीने किसी पुरुषकी अपेक्षा नहीं की। पाण्डवोंकी सेनामें हाहाकार मच गया। वीर लोग चेतरहित होने लगे और उनके हाथी, घोडे, रथ, ध्वजा सवारोंसे रहित होके पृथ्वीमें कट कर गिरने लगे। (३५-३८)

इस युद्धमें मानो दैत्यका और से प्रेरित होकर पिता पुत्रका और पुत्र पिताका संहार करने लगा और सखा अपने प्यारे सखाको युद्धके निमित्त आवा-हन करने लगा। पाण्डव पक्षीय अनेक

तद्गोकुलमिवोद्भ्रान्तमुद्भ्रान्तरथयूथपम् ॥ ४० ॥
ददृशे पाण्डुपुत्रस्य सैन्यमार्तस्वरं तदा।
प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः ॥ ४१ ॥
उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम्।
अयं स कालः सम्प्राप्तः पार्थ यस्तेऽभिकांक्षितः॥४२॥
प्रहरस्व नरव्याघ्र न चेन्मोहाद्विमुह्यसे।
यत्त्वया कथितं वीर पुरा राज्ञां समागमे ॥ ४३ ॥
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान्।
सानुबन्धान्हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति संयुगे॥४४॥
इति तत्कुरु कौन्तेय सत्यं वाक्यमरिन्दम।
बीभत्सो पश्य सैन्यं स्वं भज्यमानं ततस्ततः॥४५ ॥
द्रवतश्च महीपालान्पश्य यौधिष्ठिरे बले।
दृष्ट्वा हि भीष्मं समरे व्यात्ताननमिवाऽन्तकम्॥४६॥
भयार्ताः प्रपलायन्ते सिंहात्क्षुद्रमृगा इव।
एवमुक्तः प्रत्युवाच वासुदेवं धनञ्जयः ॥ ४७ ॥

योद्धाओंको कवच रहित और नङ्गे सिर से मैंने भागते हुए देखा। पाण्डवोंकी सेना मानो सिंहके भयसे गौओंके समूहकी भांति भयभीत और विकल हो कर आर्त्तनाद करती हुई भागने लगी। (३८—४१)

यदुकुलभूषण कृष्ण सेनाको भागती हुई देख, रथको रोक कर अर्जुनसे कहने लगे, हे पुरुषसिंह अर्जुन! तुमने जिस समयकी इच्छा की थी, वह समय अब उपस्थित हुआ है॥ इसी अवसरमें भीष्मके ऊपर प्रहार करो, नहीं तो मोहको प्राप्त होओगे। हे वीर! तुमने पहिले राजाओंके समागमके समय कहा था, कि भीष्म, द्रोणाचार्य आदि धृतराष्ट्र सेनामेंसे जो पुरुष मेरे सङ्ग युद्ध करैगा, मैं उसका सेवकोंके सहित युद्धमें नाश करूंगा॥ (४१-४४)

इस समय अब अपना वह वचन सत्य करो। यह देखो, तुम्हारी सेना इधर उधर भाग रही है॥ यह देखो, युधिष्ठिरकी ओरके सब राजा लोग रणभूमिसे भाग रहे हैं। वह लोग भीष्मको शस्त्रधारी यमराजके समान जान कर इस प्रकारसे युद्धभूमिसे भाग रहे हैं, जैसे सिंहको देख कर साधारण मृग आदि पशु विकल होके भागते हैं। ४५ ४७

अर्जुनने कृष्णकी बात सुनकर उनसे

नोद्याऽश्वान्यतो भीष्मो विगाह्यैतद्बलार्णवम् ।
पातयिष्यामि दुर्धर्षं वृद्धं कुरुपितामहम् ॥ ४८ ॥

सञ्जय उवाच– ततोऽश्वान्रजतप्रख्यांश्चोदयामास माधवः ।
यतो भीष्मरथो राजन्दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिवानिव ॥ ४९ ॥
ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ।
दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे ॥ ५० ॥
ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठ सिंहवद्विनदन्मुहुः ।
धनञ्जयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ ५१ ॥
क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः ।
शरवर्षेण महता सञ्छन्नो न प्रकाशते ॥ ५२ ॥
वासुदेवस्त्वसम्भ्रान्तो धैर्यमास्थाय सत्त्ववान् ।
चोदयामास तानश्वान्विचितान्भीष्मसायकैः ॥ ५३ ॥
ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम् ।
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्वा त्रिभिः शरैः ॥ ५४ ॥
स च्छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद्धनुः ।
निमिषान्तरमात्रेण सज्जं चक्रे पिता तव ॥ ५५ ॥

कहा, कि जहां पर भीष्म हैं उसी स्थानमें इस सेना रूपी समुद्रको लांघ कर तुम मेरे रथको ले चलो; मैं युद्ध-दुर्मद कौरवोंके पितामह बूढे भीष्मको युद्धमें मार कर पृथ्वी पर गिराऊंगा। (४७ ४८)

सञ्जय बोले, हे महाराज ! अनन्तर जहां पर रश्मिवान् सूर्यके समान प्रकाशमान महात्मा भीष्मका रथ था, कृष्णने वहां पर ही चांदीके समान सुफेद अपने रथके घोडोंको चलाया ॥ अनन्तर युधिष्ठिरकी वह महासेना महाबाहु अर्जुनको भीष्मके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त आगे बढता हुआ देखकर फिर संग्राम के निमित्त लौटी ॥ (४९ ५०)

तब पराक्रमी भीष्मने बार बार सिंहनाद करके अपने बाणोंकी वर्षासे अर्जुनके रथको व्याप्त कर दिया ॥ वह रथ क्षण भरमें भीष्मके बहुतसे बाणोंकी वर्षामें ध्वजा और सारथीके सहित ऐसा छिप गया, कि देखभी नहीं पडता था ॥ पराक्रमी कृष्ण स्थिर-चित्तसे धीरज धरके भीष्मके बाणोंसे विकल हुए घोडोंको चलाने लगे। (५१-५३)

अनन्तर अर्जुनने बादलके गर्जनके समान शब्दसे युक्त दिव्य धनुष ग्रहण करके तीन बाणोंसे भीष्मके धनुषको

विचकर्ष ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिःस्वनम् ।
अथाऽस्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः ॥ ५६ ॥
तस्य तत्पूजयामास लाघवं शान्तनोः सुतः ।
साधु पार्थ महाबाहो साधु भो पाण्डुनन्दन ॥ ५७ ॥
त्वय्येवैतद्युक्तरूपं महत्कर्म धनञ्जय ।
प्रीतोऽस्मि सुभृशं पुत्र कुरु युद्धं मया सह ॥ ५८ ॥
इति पार्थं प्रशस्याऽथ प्रगृह्याऽन्यन्महद्धनुः ।
मुमोच समरे वीरः शरान्पार्थरथं प्रति ॥ ५९ ॥
अदर्शयद्वासुदेवो हययाने परं बलम् ।
मोघान्कुर्वञ्शरांस्तस्य मण्डलान्याचरल्लघु ॥ ६० ॥
तथा भीष्मस्तु सुदृढं वासुदेवधनञ्जयौ ।
विव्याध निशितैर्बाणैः सर्वगात्रेषु भारत ॥ ६१ ॥
शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ ।
गोवृषाविव संरब्धौ विषाणोल्लिखिताङ्कितौ ॥ ६२ ॥
पुनश्चाऽपि सुसंरब्धः शरैः शतसहस्रशः ।

काट कर गिरा दिया। धनुष कटने पर भीष्मने निमेष भरमें दूसरे धनुष पर रोदा चढा लिया॥ तब अर्जुनने क्रुद्ध हो कर महाधनुषको हाथोंसे ग्रहण करके भीष्मके धनुषको फिर काट डाला॥ ५४-५६

शान्तनुनन्दन भीष्मने अर्जुनके हाथ की फुर्तीकी प्रशसा की;- "हे महाबाहो पाण्डुनन्दन अर्जुन! तुम धन्य हो! तुम धन्य हो! ऐसा बडा कर्म करना तुम्हारे ही योग्य है। हे पुत्र! तुम्हारे ऊपर मै प्रसन्न हुआ, अब तुम मेरे सङ्ग दृढ युद्ध करो" ॥ उन्होंने इस प्रकारसे अर्जुनकी प्रशंसा करके फिर एक महा धनुष ग्रहण कर अर्जुनके रथके ऊपर बाण चलाये॥ (५७-५९)

तब कृष्ण शीघ्रताके सहित मण्डलाकार रथको चलाकर, भीष्मके चलाये हुए सब बाणोंको, विफलकर घोडोंके चलानेकी अत्यन्त निपुणता प्रकाशित करने लगे। परन्तु भीष्मने फिर शीघ्र ही उत्तम पानीमें बुझे हुए बाणोंसे कृष्ण और अर्जुनके सम्पूर्ण शरीरको विद्ध किया॥ वह दोनों पुरुषसिंह भीष्मके बाणोंसे क्षत विक्षत होकर सींगकी चोटके समान चिन्हित शरीर तथा हांक देनेवाले वृषभोंकी भांति शोभायमान होने लगे॥ (६०—६२)

भीष्मने क्रुद्ध होकर बार बार सैकडों

कृष्णयोर्युधि संरब्धो भीष्मोऽथाऽन्तरमदिशः ॥ ६३ ॥
वार्ष्णेयं च शरैस्तीक्ष्णैः कम्पयामास रोषितः ।
मुहुरभ्यर्दयन्भीष्मः प्रहस्य स्वनवत्तदा ॥ ६४ ॥
ततस्तु कृष्णः समरे दृष्ट्वा भीष्मपराक्रमम् ।
सम्प्रेक्ष्य च महाबाहुः पार्थस्य मृदुयुद्धताम् ॥ ६५ ॥
भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि ।
प्रतपन्तमिवाऽऽदित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः ॥ ६६ ॥
वरान्वरान्विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ।
युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले ॥ ६७ ॥
अमृष्यमाणो भगवान्केशवः परवीरहा ।
अचिन्तयदमेयात्मा नाऽस्ति यौधिष्ठिरं बलम् ॥ ६८ ॥
एकाह्ना हि रणे भीष्मो नाशयेद्देवदानवान् ।
किन्नु पाण्डुसुतान्युद्धे सबलान्सपदानुगान् ॥ ६९ ॥
द्रवते च महासैन्यं पाण्डवस्य महात्मनः ।
एते च कौरवास्तूर्णं प्रभग्नान्वीक्ष्य सोमकान् ॥ ७० ॥
प्राद्रवन्ति रणे दृष्ट्वा हर्षयन्तः पितामहम् ।

तथा सहस्रों बाणोंसे कृष्ण और अर्जुन को चारों ओरसे छिपा दिया, और क्रोधसे भरकर सिंहनादके सहित हंसी करके तथा विस्मय उत्पन्न करके कृष्णको कंपाने लगे ॥ (६३–६४)

इसके अनन्तर शत्रुनाशन वीर महाबाहु भगवान् कृष्ण युद्धमें भीष्मका पराक्रम और अर्जुनका सरल संग्राम देखकर चिन्ता करने लगे, कि भीष्म जो दोनों सेनाके बीच प्रचण्ड तेजसे युक्त सूर्यके समान होकर लगातार अपने बाणोंकी वर्षा कर पाण्डवोंकी सेनाके निमित्त प्रलय कालका समय उपस्थित कर रहे हैं; इस महासेनाके बीचमें मुख्य मुख्य सैनिक पुरुषोंका वध कर रहे हैं; इस प्रकारसे तो युधिष्ठिरकी सेना अब किसी भांति नहीं बच सकेगी ॥ (६५-६८)

भीष्म एक ही दिनके युद्धमें दैत्य दानवोंका नाश कर सकते हैं; तब जो सेनाके सहित युद्धमें अनुयायी राजाओंके समेत पाण्डवोंका नाश कर देंगे; उसमें कौनसा सन्देह है ? महात्मा युधिष्ठिर की सेना भाग रही है । ये सब कौरव लोग सोमकवंशियोंको रणभूमिसे भागता देखकर आनन्दपूर्वक भीष्म को हर्षित

सोऽहं भीष्मं निहन्म्यद्य पाण्डवार्थाय दंशितः ॥ ७१ ॥
भारमेनं विनेष्यामि पाण्डवानां महात्मनाम् ।
अर्जुनो हि शरैस्तीक्ष्णैर्वध्यमानोऽपि संयुगे ॥ ७२ ॥
कर्तव्यं नाऽभिजानाति रणे भीष्मस्य गौरवात् ।
तथा चिन्तयतस्तस्य भूय एव पितामहः ॥
प्रेषयामास संक्रुद्धः शरान्पार्थरथं प्रति ॥ ७३ ॥
तेषां बहुत्वात्तु भृशं शराणां दिशश्च सर्वाः पिहिता बभूवुः ।
न चाऽन्तरिक्षं न दिशो न भूमिर्न भास्करोऽदृश्यत रश्मिमाली ॥ ७४ ॥
ववुश्च वातास्तुमुलाः सधूमा दिशश्च सर्वाः क्षुभिता बभूवुः ।
द्रोणो विकर्णोऽथ जयद्रथश्च भूरिश्रवाः कृतवर्मा कृपश्च ॥ ७५ ॥
श्रुतायुरम्बष्ठपतिश्च राजा विन्दानुविन्दौ च सुदक्षिणश्च ।
प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे वसातयः क्षुद्रकमालवाश्च ॥ ७६ ॥
किरीटिनं त्वरमाणाऽभिसस्रुर्निदेशगाः शान्तनवस्य राज्ञः ।
तं वाजिपादातरथौघजालैरनेकसाहस्रशतैर्ददर्श ॥ ७७ ॥

करते हुए युद्ध करनेके निमित्त शीघ्रता के सहित आगे बढ रहे है ॥ इससे आज मैं महात्मा पाण्डवोंके निमित्त रणभूमिमें स्थित होके भीष्मका नाश करूं ॥ मैं इस कार्यको करके पाण्डवोंका दुःख दूर करूंगा, क्यों कि अर्जुन युद्धमें तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित होकर भी पितामहके गौरवसे बाध्य होके अपने कर्तव्य कार्यको नहीं समझ सकता है ॥ (६९-७३)

कृष्ण इस प्रकारसे मन ही मन विचार कर रहे थे और उधर भीष्म क्रुद्ध होकर अर्जुनके रथके ऊपर अपने अनेक बाणोंको चला रहे थे ॥ भीष्मके धनुषसे छूटे हुए अनेक बाणोंसे सम्पूर्ण दिशा पूरित होगई ॥ आकाश, दिशा, पृथ्वीका तल भाग और किरणधारी भगवान् सूर्य भी भीष्मके बाणोंसे ऐसे छिप गये, कि नेत्रसे दिखाई भी नहीं देते थे ॥ उस समय प्रचण्ड वायु बहने लगी, सब दिशाएं धूएंसे युक्त होकर क्षुभित दीखने लगीं ॥ (७३-७५)

द्रोणाचार्य, विकर्ण, जयद्रथ, भूरिश्रवा, कृतवर्मा, कृपाचार्य, श्रुतायु, राजा अम्बष्ठपति, विन्द, अनुविन्द, सुदक्षिण, पूर्वदेशीय वीर योद्धा, सौवीर देशीय योद्धा, सम्पूर्ण वसाति, क्षुद्रक और मालव देशके वीर लोग भीष्मकी आज्ञाके अनुसार शीघ्रताके सहित अर्जुनके निकट युद्ध करनेके निमित्त

किरीटिनं सम्परिवार्यमाणं शिनेर्नप्ता वारणयूथपैश्च ।
ततस्तु दृष्ट्वाऽर्जुनवासुदेवौ पदातिनागाश्वरथैः समन्तात् ॥ ७८ ॥
अभिद्रुतौ शस्त्रभृतां वरिष्ठौ शिनिप्रवीरोऽभिससार तूर्णम् ।
स तान्यनीकानि महाधनुष्माञ्शिनिप्रवीरः सहसाऽभिपत्य ॥७९॥
चकार साहाय्यमथाऽर्जुनस्य विष्णुर्यथा वृत्रनिषूदनस्य ।
विशीर्णनागाश्वरथध्वजौघं भीष्मेण वित्रासितसर्वयोधम् ॥ ८० ॥
युधिष्ठिरानीकमभिद्रवन्तं प्रोवाच सन्दृश्य शिनिप्रवीरः ।
क्व क्षत्रिया यास्यथ नैष धर्मः सतां पुरस्तात्कथितः पुराणैः ॥८१॥
मा स्वां प्रतिज्ञां त्यजत प्रवीराः स्वं वीरधर्मं परिपालयध्वम् ।
तान्वासवानन्तरजो निशाम्य नरेन्द्रमुख्यान्द्रवतः समन्तात् ॥८२॥
पार्थस्य दृष्ट्वा मृदुयुद्धतां च भीष्मं च संख्ये समुदीर्यमाणम् ।
अमृष्यमाणः स ततो महात्मा यशस्विनं सर्वदशार्हभर्ता ॥ ८३ ॥
उवाच शैनेयमभिप्रशंसन्दृष्ट्वा कुरूनापततः समग्रान् ।
ये यान्ति ते यान्तु शिनिप्रवीर येऽपि स्थिताः सात्वत तेऽपि यान्तु ८४

उपस्थित हुए। शिनिपौत्र सात्यकिने अर्जुनको सैकडों तथा सहस्रों हाथी, घोडे, पदाति और रथोंके बीच चारों ओरसे घिरा हुआ देखा। वह शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ कृष्ण अर्जुनको रथ, घोडे, हाथी और पैदलोंके बीचमें घिरा हुआ देखकर उनके निकट गये। (७५-७९)

जिस प्रकारसे विष्णु वृत्रासुरका नाश करनेवाले इन्द्रकी सहायता करते है, वैसे ही सात्यकि कौरवोंकी सेनाके बीचसे गमन करके अर्जुनकी सहायता करने में प्रवृत्त हुए। सात्यकि युधिष्ठिरकी सेनाको हाथी, घोडे, रथ, और ध्वजाओंके सहित तितर बितर तथा भीष्मके भयसे डर कर भागती हुई देखकर कहने लगे; हे क्षत्रिय वीरो! तुम लोग किधर जारहे हो? प्राचीन लोगोंने कहा है, कि रणभूमिसे भागना उत्तम क्षत्रिय पुरुषोंका धर्म नहीं है। हे वीरपुरुषो! तुम अपनी अपनी प्रतिज्ञाको क्यों परित्याग करते हो? तुम लोग अपने वीर धर्मका पालन करो। ७९-८२

सम्पूर्ण दशार्णगणके स्वामी महात्मा यशस्वी कृष्ण अर्जुनको इस भांति सरल युद्ध करते, और चारों ओर पाण्डवोंकी ओरके मुख्य मुख्य क्षत्रियोंको भागते, भीष्मके प्रज्वलित अग्निके समान सबको तपाते और कौरवोंकी सेनाके योद्धाओंको चारों ओरसे हटाते हुए चले आते देखकर क्रुद्ध होके सात्यकिकी प्रशंसा

भीष्मं रथात्पश्य निपात्यमानं द्रोणं च संख्ये सगणं मयाऽद्य।
न मे रथी सात्वत कौरवाणां क्रुद्धस्य मुच्येत रणेऽद्य कश्चित् ॥८५॥
तस्मादहं गृह्य रथाङ्गमुग्रं प्राणं हरिष्यामि महाव्रतस्य।
निहत्य भीष्मं सगणं तथाऽऽजौ द्रोणं च शैनेयरथप्रवीरौ ॥ ८६ ॥
प्रीतिं करिष्यामि धनञ्जयस्य राज्ञश्च भीमस्य तथाऽश्विनोश्च।
निहत्य सर्वान्धृतराष्ट्रपुत्रांस्तत्पक्षिणो ये च नरेन्द्रमुख्याः ॥ ८७ ॥
राज्येन राजानमजातशत्रुं सम्पादयिष्याम्यहमद्य हृष्टः।
ततः सुनाभं वसुदेवपुत्रः सूर्यप्रभं वज्रसमप्रभावम् ॥ ८८ ॥
क्षुरान्तमुद्यम्य भुजेन चक्रं रथादवप्लुत्य विसृज्य वाहान्।
सङ्कम्पयन्गां चरणैर्महात्मा वेगेन कृष्णः प्रससार भीष्मम् ॥८९॥
मदान्धमाजौ समुदीर्णदर्पं सिंहो जिघांसन्निव वारणेन्द्रम्।
सोऽभिद्रवन्भीष्ममनीकमध्ये क्रुद्धो महेन्द्रावरजः प्रमाथी ॥९०॥
व्यालम्बिपीतान्तपटश्चकाशे घनो यथा खे तडिताऽवनद्धः।

करते हुए कहने लगे। (८२-८४)

हे सात्यकि! जो लोग जाते हैं, वे जावें और जो लोग युद्धमें उपस्थित हैं, वे भी चले जावें, उन लोगोंके रहनेकी कुछ भी आवश्यकता नहीं है। देखो, आज मैं भीष्म और द्रोणाचार्यको उनके अनुयायियोंके सहित मारकर गिराता हूं। आज कौरवोंकी सेनामें कोई भी रथी पुरुष मेरे क्रोधके सम्मुख रणभूमिमें नहीं बच सकेगा॥ अब मैं भयङ्कर चक्र ग्रहण करके भीष्मका प्राण-संहार करूंगा। महारथ भीष्म और द्रोणाचार्यको उनके रक्षक तथा अनुयायियोंके सहित मार कर राजा युधिष्ठिर, अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेवकी प्रीतिका कार्य सम्पन्न करूगा। सब धृतराष्ट्र पुत्रोंको तथा और जितने मुख्य राजा लोग उनके पक्षमें है, उन सब लोगोंको भी मैं आज संहार करके अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरको हर्पके सहित सब राज्यका स्वामी बनाऊँगा (८४-८८)

वसुदेव पुत्र महात्मा कृष्ण ऐसा कह, घोडोंकी लगाम छोडकर सहस्र वज्रके समान क्षुरधारसे युक्त सूर्यकी भांति प्रकाशमान चक्रको हाथमें घूमाते और रथसे कूद कर अपने पांवोंसे पृथ्वीको कंपाते हुए भीष्मकी ओर जाने लगे॥ जैसे अत्यन्त अहंकारी मतवारे गजराज को मारनेकी अभिलाषासे सिंह दौडता है, वैसे ही शत्रुनाशन कृष्ण भीष्मके वध करनेकी इच्छासे उनकी सेनाके बीचमें दौडकर जाने लगे॥ (८८-९०)

सुदर्शनं चाऽस्य रराज शौरेस्तच्चक्रपद्मं सुभुजोरुनालम् ॥ ९१ ॥
यथाऽऽदिपद्मं तरुणार्कवर्णं रराज नारायणनाभिजातम् ।
तत्कृष्णकोपोदयसूर्यबुद्धं क्षुरान्ततीक्ष्णाग्रसुजातपत्रम् ॥ ९२ ॥
तस्यैव देहोरुसरः प्ररूढं रराज नारायणबाहुनालम् ।
तमात्तचक्रं प्रणदन्तमुच्चैः क्रुद्धं महेन्द्रावरजं समीक्ष्य ॥ ९३ ॥
सर्वाणि भूतानि भृशं विनेदुः क्षयं कुरूणामिव चिन्तयित्वा ।
स वासुदेवः प्रगृहीतचक्रः संवर्तयिष्यन्निव सर्वलोकम् ॥ ९४ ॥
अभ्युत्पतल्लोकगुरुर्बभासे भूतानि धक्ष्यन्निव धूमकेतुः ।
तमाद्रवन्तं प्रगृहीतचक्रं दृष्ट्वा देवं शान्तनवस्तदानीम् ॥ ९५ ॥
असम्भ्रमं तद्विचकर्ष दोर्भ्यां महाधनुर्गाण्डिवतुल्यघोषम् ।
उवाच भीष्मस्तमनन्तपौरुषं गोविन्दमाजावविमूढचेताः ॥ ९६ ॥
एह्येहि देवेश जगन्निवास नमोऽस्तु ते माधव चक्रपाणे ।

जैसे आकाशमण्डलमे बिजलीके तेज से युक्त बादल शोभायमान लगता है, वैसे ही वह पीले वर्णके वस्त्रोंके उडनेसे शोभित होने लगे। जिस प्रकारसे तरुण सूर्यके समान वर्णवाला प्रथम पद्मपुष्प विष्णुकी नाभिसे उत्पन्न होकर प्रकाशित हुआ था, उसी भांतिसे कृष्ण-का सुदर्शनचक्ररूपी पद्म उनके मनोहर और विशाल भुजमृणाल पर शोभित होने लगा॥ वह चक्र-पद्म कृष्णके क्रोध रूपी सूर्यके उदयसे प्रफुल्लित हुआ तथा उसके क्षुरान्तसदृश अग्रभाग पद्मदलके रूपसे प्रकाशित और कृष्णका विशाल शरीर मानो उससुन्दर मृणाल सहित सरो-वर रूपसे विराजित होने लगा। ९०-९३

कृष्णको क्रुद्ध, चक्रधारी और ऊंचे स्वरसे सिंहनाद करता हुआ देख कर सम्पूर्ण प्राणी, "यही अब कौरवोंके कुलका नाश हुआ" ऐसा समझ कर अत्यन्त ही विस्मित होके हाहाकार करने लगे। जैसे धूमकेतु स्थावर जङ्गम जीवोंको भस्म करनेके निमित्त प्रकट होता है, वैसे ही सब लोकोंके स्वामी वसुदेवपुत्र महात्मा कृष्ण सब प्राणी तथा लोकोंको जलानेवाली प्रलयकालकी अग्निके समान प्रज्वलित होके भीष्मके संमुख गमन करके प्रकाशित होने लगे। (९३-९५)

धनुर्धारियोंमें श्रेष्ठ शान्तनुनन्दन भीष्म पुरुषोत्तम कृष्णदेवको हाथमें चक्र ग्रहण किये हुए अपनी ओर आते देखकर निर्भय-चित्तसे गाण्डीवके समान शब्दवाले अपने धनुषको दोनों हाथोंसे खींच कर यह वचन कहने लगे:- आओ! आओ!

प्रसह्य मां पातय लोकनाथ रथोत्तमात्सर्वशरण्य संख्ये ॥ ९७ ॥
त्वया हतस्याऽपि ममाऽद्य कृष्ण श्रेयः परस्मिन्निह चैव लोके ।
सम्भावितोऽस्म्यन्धकवृष्णिनाथ लोकैस्त्रिभिर्वीर तवाऽभियानात् ॥९८॥
रथादवप्लुत्य ततस्त्वरावान्पार्थोऽप्यनुद्रुत्य यदुप्रवीरम् ।
जग्राह पीनोत्तमलम्बबाहुं बाह्वोर्हरिं व्यायतपीनबाहुः ॥ ९९ ॥
निगृह्यमाणश्च तदाऽऽदिदेवो भृशं सरोषः किल चाऽऽत्मयोगी ।
आदाय वेगेन जगाम विष्णुर्जिष्णुं महावात इवैकवृक्षम् ॥ १०० ॥
पार्थस्तु विष्टभ्य बलेन पादौ भीष्मान्तिकं तूर्णमभिद्रवन्तम् ।
बलान्निजग्राह हरिं किरीटी पदेऽथ राजन्दशमे कथञ्चित् ॥१०१ ॥
अवस्थितं च प्रणिपत्य कृष्णं प्रीतोऽर्जुनः काञ्चनचित्रमाली ।
उवाच कोपं प्रतिसंहरेति गतिर्भवान्केशव पाण्डवानाम् ॥ १०२ ॥

हे देवेश! हे जगन्निवास! तुमको नमस्कार है; हे माधव! हे हाथमें चक्र धारण करनेवाले! हे लोकोंके स्वामी! हे प्राणियोंको शरण देनेवाले! तुम युद्धमें रथसे बलपूर्वक मुझे मार कर पृथ्वीमें गिराओ। हे कृष्ण! आज यदि तुम मेरा वध करोगे, तो मेरी इस लोक और परलोकमें कीर्त्ति होगी। हे अन्धक और वृष्णि वंशियों के स्वामी! मै तुम्हारे हाथसे मरनेसे ही मङ्गलसे युक्त होऊंगा; मेरा प्रभाव तीनों लोकमें विख्यात होगा॥ (९६–९८)

भीष्म ऐसा ही कह रहे थे और कृष्ण वेगके सहित उनकी ओर चले जाते थे, यह देखकर विशालबाहु अर्जुन शीघ्रताके सहित रथसे उतर कर यदुवंशियोंमें श्रेष्ठ कृष्णके पीछे अत्यन्त शीघ्रतासे दौडकर उनकी दोनों विशाल तथा उत्तम भुजाओंको पकड लिया॥ परन्तु आदिदेव योगी कृष्ण अत्यन्त ही क्रुद्ध थे, इस ही कारणसे वह अर्जुनसे पकडे जाने तथा निवारण किये जाने पर भी, जैसे प्रबल वायु एक वृक्षको आकर्षण करके उडा ले जाता है, वैसे ही वेगके सहित अर्जुन को आकर्षित करके भीष्मकी ओर शीघ्रताके सहित नौ पग गये; दशवें पदमें महात्मा अर्जुनने उनके दोनों चरणोंको बलपूर्वक ग्रहण किया और धीरे धीरे बलसे किसी भांति उन्हें रोक रक्खा॥ (९९–१०१)

कृष्णके खडे होने पर अर्जुनने उनको नमस्कार किया और प्रसन्न होकर उनसे विनयपूर्वक कहने लगे। हे केशव! तुम पाण्डवोंकी गति हो, इससे क्रोध त्याग करो॥ हे पुरुषोत्तम कृष्ण! मैं पुत्र और

न हास्यते कर्म यथाप्रतिज्ञं पुत्रैः शपे केशव सोदरैश्च ।
अन्तं करिष्यामि यथा कुरूणां त्वयाऽहमिन्द्रानुज सम्प्रयुक्तः ॥१०३॥
ततः प्रतिज्ञां समयं च तस्य जनार्दनः प्रीतमना निशम्य ।
स्थितः प्रिये कौरवसत्तमस्य रथं सचक्रः पुनरारुरोह ॥ १०४ ॥
स तानभीषून्पुनराददानः प्रगृह्य शङ्खं द्विषतां निहन्ता ।
विनादयामास ततो दिशश्च स पाञ्चजन्यस्य रवेण शौरिः ॥ १०५ ॥
व्याविद्धनिष्काङ्गदकुण्डलं तं रजोविकीर्णाञ्चितपद्मनेत्रम् ।
विशुद्धदंष्ट्रं प्रगृहीतशङ्खं विचुक्रुशुः प्रेक्ष्य कुरुप्रवीराः ॥ १०६ ॥
मृदङ्गभेरीपणवप्रणादा नेमिस्वना दुन्दुभिनिःस्वनाश्च ।
ससिंहनादाश्च बभूवुरुग्राः सर्वेष्वनीकेषु ततः कुरूणाम् ॥ १०७ ॥
गाण्डीवघोषः स्तनयित्नुकल्पो जगाम पार्थस्य नभो दिशश्च ।
जग्मुश्च बाणा विमलाः प्रसन्नाः सर्वा दिशः पाण्डवचापमुक्ताः ॥ १०८॥
तं कौरवाणामधिपो जवेन भीष्मेण भूरिश्रवसा च सार्धम् ।

भाइयोकी शपथ करके कहता हूं, कि प्रतिज्ञाके अनुयायी कर्मको कभी परित्याग न करूंगा। तुम्हारी आज्ञाके अनुसार से कौरवोंके नाशके निमित्त अवश्य यत्न करूंगा। (१०२–१०३)

इसके अनन्तर जनार्दन कृष्ण अर्जुनकी प्रतिज्ञा और शपथको सुन कर हाथमे चक्र लिये हुए प्रसन्न चित्त होकर कौरव श्रेष्ठ अर्जुनके प्रिय साधन करनेके लिये पुनः उसके रथमें आरूढ हुए और फिर शत्रुनाशन श्रीकृष्णने घोडोंकी लगाम ग्रहण करके पाञ्चजन्य शङ्खको बजा कर उसके शब्दसे सब दिशाओंको पूरित कर दिया। कौरवोंके पक्षके सब वीर लोग चञ्चल निष्क अंगद और कुण्डल भूषित धूलिसे पूरित शरीर, कमल नयन और शुद्ध दांतोंसे शोभायमान कृष्णको फिर युद्धके निमित्त शङ्खधारी देख कर ऊंचे स्वरसे आक्रोश करने लगे॥ (१०४–१०६)

उन लोगोंकी सेनामें भी भेरी, मृदंग, पणव, और नगाडे बजने लगे, तथा रथोंकी पहियोंका शब्द होने लगा॥ उन सम्पूर्ण बाजोंका शब्द कौरवोंके वीरोंके सिंहनादके संग मिल कर महाघोर तुमुल शब्द होगया॥ इसके अनन्तर अर्जुनके गाण्डीव-धनुषका शब्द बादलके समान सब दिशा तथा आकाशमण्डलमें व्याप्त होगया और उनके धनुषसे छूटे हुए तेज बाण सब दिशाओंमें गमन करते दिखाई देने लगे। कौरवराज दुर्योधन हाथमें धनुष बाण ग्रहण कर

अभ्युद्ययावुद्यतवाणपाणिः कक्षं दिधक्षन्निव धूमकेतुः ॥ १०९ ॥
अथाऽर्जुनाय प्रजिघाय भल्लान्भूरिश्रवाः सप्त सुवर्णपुङ्खान् ।
दुर्योधनस्तोमरमुग्रवेगं शल्यो गदां शान्तनवश्च शक्तिम् ॥ ११० ॥
स सप्तभिः सप्त शरप्रवेकान्संवार्य भूरिश्रवसा विसृष्टान् ।
शितेन दुर्योधनबाहुमुक्तं क्षुरेण तत्तोमरमुन्ममाथ ॥ १११ ॥
ततः शुभामापततीं स शक्तिं विद्युत्प्रभां शान्तनवेन मुक्ताम् ।
गदां च मद्राधिपबाहुमुक्तां द्वाभ्यां शराभ्यां निचकर्त वीरः ॥११२॥
ततो भुजाभ्यां बलवद्विकृष्य चित्रं धनुर्गाण्डिवमप्रमेयम् ।
माहेन्द्रमस्त्रं विधिवत्सुघोरं प्रादुश्चकाराऽद्भुतमन्तरिक्षे ॥ ११३ ॥
तेनोत्तमास्त्रेण ततो महात्मा सर्वाण्यनीकानि महाधनुष्मान् ।
शरौघजालैर्विमलाग्निवर्णैर्निवारयामास किरीटमाली ॥ ११४ ॥
शिलीमुखाः पार्थधनुःप्रमुक्ता रथान्ध्वजाग्राणि धनूंषि बाहून् ।
निकृत्य देहान्विविशुः परेषां नरेन्द्रनागेन्द्रतुरङ्गमाणाम् ॥ ११५ ॥
ततो दिशः सोऽनुदिशश्च पार्थः शरैः सुधारैः समरे वितत्य ।
गाण्डीवशब्देन मनांसि तेषां किरीटमाली व्यथयाञ्चकार ॥११६॥

तृणको दहन करने वाले धूमकेतुके समान भीष्म, और भूरिश्रवाके सहित अर्जुनके सम्मुख आये । (१०७-१०९)

अनन्तर अर्जुनके ऊपर भूरिश्रवाने सुवर्ण पङ्खयुक्त सात भल्ल बाण, दुर्योधनने प्रचण्ड वेगवान् तोमर, शल्यने गदा और भीष्मने शक्ति चलाई ॥ महाधनुर्द्धारी महात्मा वीर अर्जुन भूरिश्रवाके चलाए हुए सात भल्ल सात बाणोंसे और दुर्योधन की भुजासे छूटे हुए तोमरको एक चोखे क्षुरास्त्रसे काट डाला ॥ भीष्मकी चलाई हुई वेगवान बिजलीके समान प्रकाशित शक्तिको एक बाण और शल्यकी गदाको एक बाणसे काट कर पृथ्वीमें गिरा दी ॥ (११०-११२)

इसके अनन्तर महाबलवान् अर्जुनने विचित्र गाण्डीव धनुषको ग्रहण कर अत्यन्त भयङ्कर माहेन्द्र शस्त्रको विधि-पूर्वक आकाशमें प्रकट किया ॥ उस प्रबल अस्त्रको उत्पन्न करके झुण्डके झुण्ड अग्निवर्णवाले सुन्दर बाणोंके जालसे कौरवोंकी सम्पूर्ण सेनाको निवारण करने लगे ॥ उनके धनुषसे छूटे हुए सब बाण शत्रुओंके रथ, ध्वजा, धनुष, वीरोंकी भुजाओंको काटते हुए राजाओं, गजों तथा घोडोंके शरीरमें प्रवेश करने लगे (११३--११५)

अर्जुनने उत्तम पानीमें बुझे हुए चोखे

तस्मिंस्तथा घोरतमे प्रवृत्ते शङ्खस्वना दुन्दुभिनिःस्वनाश्च ।
अन्तर्हिता गाण्डिवनिःस्वनेन बभूवुरुग्राश्वरथप्रणादाः ॥ ११७ ॥
गाण्डीवशब्दं तमथो विदित्वा विराटराजप्रमुखाः प्रवीराः ।
पाञ्चालराजो द्रुपदश्च वीरस्तं देशमाजग्मुरदीनसत्त्वाः ॥ ११८ ॥
सर्वाणि सैन्यानि तु तावकानि यतो यतो गाण्डिवजः प्रणादः ।
ततस्ततः सन्नतिमेव जग्मुर्न तं प्रतीपोऽभिससार कश्चित् ॥ ११९ ॥
तस्मिन्सुघोरे नृपसम्प्रहारे हताः प्रवीराः सरथाश्वसूताः ।
गजाश्च नाराचनिपाततप्ता महापताकाः शुभरुक्मकक्ष्याः ॥ १२० ॥
परीतसत्त्वाः सहसा निपेतुः किरीटिना भिन्नतनुत्रकायाः ।
दृढं हताः पत्रिभिरुग्रवेगैः पार्थेन भल्लैर्विमलैः शिताग्रैः ॥ १२१ ॥
निकृत्तयन्त्रा निहतेन्द्रकीला ध्वजा महान्तो ध्वजिनीमुखेषु ।
पदातिसङ्घाश्च रथाश्च संख्ये हयाश्च नागाश्च धनञ्जयेन ॥ १२२ ॥
बाणाहतास्तूर्णमपेतसत्त्वा विष्टभ्य गात्राणि निपेतुरुर्व्याम् ।
ऐन्द्रेण तेनाऽस्त्रवरेण राजन्महाहवे भिन्नतनुत्रदेहाः ॥ १२३ ॥
ततः शरौघैर्निशितैः किरीटिना नृदेहशस्त्रक्षतलोहितोदा ।

बाणोंसे सब दिशाओंको पूरित कर और अपने गाण्डीव धनुषके शब्दसे शत्रुओंके अन्तःकरण को पीडित किया॥ उस महा घोर शस्त्रोंके युद्धमें गाण्डीव धनुषके शब्दसे शंख, नगाडे, अश्व और रथोंका शब्द दब गया ॥ उस गाण्डीव धनुषका शब्द सुनकर विराट आदि पुरुषसिंह और पाञ्चालराज द्रुपद निर्भयचित्तसे वहांपर युद्धके निमित्त आपहुंचे । (११६-११८)

तुम्हारे पक्षके वीरोंने जहांपर गाण्डीव धनुषके शब्दको सुना, वहां पर ही शिथिल होगये उसके विरुद्ध होकर कोई भी युद्धके निमित्त आगे न बढे ॥ उस राजाओंके नाश करनेवाले महा घोर युद्धमें रथ, घोडे, सारथीके सहित वीर पुरुष और उत्तम सुवर्णके हौदे और पताकाओंसे युक्त हाथी अर्जुनके बाणोंसे कवच भिन्न होनेके कारण पीडित होके मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ (११९-१२१)

सेनामें सब राजाओंकी ध्वजा अर्जुनके महा वेगवान् तीक्ष्ण बाणोंसे कट कर गिरने लगी। हे राजन्! उस भयङ्कर युद्धमें अर्जुनके प्रबल ऐन्द्रास्त्रके प्रभावसे पैदल,रथ, घोडे और हाथीवाले सब वीर कवचके सहित बाणोंसे कट कट के शीघ्र शीघ्र ही मरकर गात्रसंकोच कर पृथ्वीमें गिरने लगे । (१२२-१२३)

नदी सुघोरा नरमेदफेना प्रवर्तिता तत्र रणाजिरे वै ॥ १२४ ॥
वेगेन साऽतीव पृथुप्रवाहा पतन्नागाश्वशरीररोधा ।
नरेन्द्रमज्जोच्छ्रितमांसपङ्का प्रभूतरक्षोगणभूतसेविता ॥ १२५ ॥
शिरःकपालाकुलकेशशाद्वला शरीरसङ्घातसहस्रवाहिनी ।
विशीर्णनानाकवचोर्मिसंकुला नराश्वनागास्थिनिकृत्तशर्करा ॥ १२६ ॥
श्वकङ्कशालावृकगृध्रकाकैः क्रव्यादसङ्घैश्च तरक्षुभिश्च ।
उपेतकूलां ददृशुर्मनुष्याः क्रूरां महावैतरणीप्रकाशाम् ॥ १२७ ॥
प्रवर्तितामर्जुनवाणसङ्घैर्मेदोवसासृक्प्रवहां सुभीमाम् ।
हतप्रवीरांश्च तथैव दृष्ट्वा सेनां कुरूणामथ फाल्गुनेन ॥ १२८ ॥
ते चेदिपाञ्चालकरूषमत्स्याः पार्थाश्च सर्वे सहिताः प्रणेदुः ।
जयप्रगल्भाः पुरुषप्रवीराः सन्त्रासयन्तः कुरुवीरयोधान् ॥ १२९ ॥
हतप्रवीराणि वलानि दृष्ट्वा किरीटिना शत्रुभयावहेन ।
वित्रास्य सेनां ध्वजिनीपतीनां सिंहो मृगाणामिव यूथसङ्घान् १३०

इसके अनन्तर उस रणभूमिमें महा घोर रुधिरकी नदी उत्पन्न होकर भयंकर रूपसे वेगके सहित बहने लगी। अर्जुनके बाणोंसे कटे हुए पुरुषोंके शरीरका रुधिर ही उस नदीका जल, मनुष्योंका मेद फेन, मरे हुए हाथी घोडोंका शरीर उसके तीर, मज्जा और मांस उस नदीके पङ्क, मनुष्योंके केशयुक्त शिर उसके भंवर, नाना भांतिके विचित्र कवच उसकी तरङ्ग, मनुष्य, हाथी, घोडोंकी हड्डिएं उसके बालू तथा पत्थरके किनके हुए और वह भयंकर नदी अनेक राक्षस तथा भूत प्रेतोंसे सेवित तथा रक्षित होकर बहने लगी ॥ १२४-१२६

सियार, भेडिये, गिद्ध बगुला आदि मांस भक्षण करनेवाले जीव उसके किनारे भ्रमण करने लगे। सब पुरुष अर्जुनके बाणोंके प्रभावसे उत्पन्न हुई उस रुधिर, मांस और चर्बी युक्त बहनेवाली महा भयङ्कर नदीको वैतरणीकी भांति देखने लगे ॥ महाराज! चेदी, पाञ्चाल, करूष, मत्स्य और पाण्डव आदि सम्पूर्ण वीर लोग कौरवोंकी सेनाके वीरोंको मरता हुआ देखकर सहसा सिंहनाद करने लगे। वे सब वीर पुरुष अर्जुनके शत्रुओंकी ओरके सब वीरोंको जयकी आशासे युक्त देख कर शत्रु सेनाको भयभीत करनेके निमित्त पाण्डवोंके जय सूचक शब्द करने लगे। (१२७-१२९)

गाण्डीवधनुषको धारण करनेवाले अर्जुन और कृष्ण भी हर्षके सहित सिंह जैसे मृगोंके समूहको भयभीत करता है,

विनेदतुस्तावतिहर्षयुक्तौ गाण्डीवधन्वा च जनार्दनश्च ।
ततो रविं संहृतरश्मिजालं दृष्ट्वा भृशं शस्त्रपरिक्षताङ्गाः ॥ १३१ ॥
तदैन्द्रमस्त्रं विततं च घोरमसह्यमुद्वीक्ष्य युगान्तकल्पम् ।
अथाऽपयानं कुरवः सभीष्माः सद्रोणदुर्योधनवाल्हिकाश्च ॥ १३२ ॥
चक्रुर्निशां सन्धिगतां समीक्ष्य विभावसोर्लोहितरागयुक्ताम् ।
अवाप्य कीर्तिं च यशश्च लोके विजित्य शत्रूंश्च धनञ्जयोऽपि ॥ १३३ ॥
ययौ नरेन्द्रैः सह सोदरैश्च समाप्तकर्मा शिविरं निशायाम् ।
ततः प्रजज्ञे तुमुलः कुरूणां निशामुखे घोरतमः प्रणादः ॥ १३४ ॥
रणे रथानामयुतं निहत्य हता गजाः सप्तशताऽर्जुनेन ।
प्राच्याश्च सौवीरगणाश्च सर्वे निपातिताः क्षुद्रकमालवाश्च ॥ १३५ ॥
महत्कृतं कर्म धनञ्जयेन कर्तुं यथा नाऽर्हति कश्चिदन्यः ।
श्रुतायुरम्बष्ठपतिश्च राजा तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ ॥ १३६ ॥
द्रोणः कृपः सैन्धववाह्लिकौ च भूरिश्रवाः शल्यशलौ च राजन् ।
अन्ये च योधाः शतशः समेताः क्रुद्धेन पार्थेन रणस्य मध्ये ॥ १३७ ॥
स्वबाहुवीर्येण जिताः सभीष्माः किरीटिना लोकमहारथेन ।

वैसे ही कौरवोंके सेनापतियोंकी सेनाको भयसे विकल करते हुए सिंहनाद करने लगे ॥ इसके अनन्तर अत्यन्त ही क्षत विक्षत शरीरसे भीष्म, द्रोणाचार्य, दुर्योधन और वाह्लिक आदि कौरव पक्षीय वीरोंने सूर्यको अस्त होता हुआ और अर्जुनके कालदण्डके समान ऐन्द्रास्त्रको न सहने योग्य देखकर अपनी सेनाको युद्धसे निवृत्त किया। (१३०-१३३)

अर्जुन भी युद्धमें शत्रुओंको मर्दन करके यश युक्त होके सूर्यको अस्त होता देखकर सब राजाओं तथा सहोदर भाइयोंके सहित सन्ध्याके समय अपने शिविरमें गये। इसके अनन्तर उस रात्रिके समय कौरवोंकी सेनामें महाघोर तुमुल शब्द होने लगा ॥ कि आज अर्जुनने दश हजार रथियोंको मारकर सात सौ हाथियोंका संहार किया है और प्राच्य, सौवीर, क्षुद्र और मालवदेशीय वीरोंका वध किया ॥ अर्जुनने जो आज बहुत बडा कार्य किया है, वैसा कर्म दूसरे किसीको भी करनेका सामर्थ्य नहीं है। (१३३-१३६)

हे महाराज ! अम्बष्ठपति श्रुतायु, दुर्मर्षण, चित्रसेन, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, जयद्रथ, वाह्लिक, भूरिश्रवा, शल्य और दूसरे सैकडों वीर योद्धा भीष्मके सहित युद्धमें इकट्टे होने पर भी पाण्डवोंके एक

इति ब्रुवन्तः शिबिराणि जग्मुः सर्वे गणा भारत ये त्वदीयाः॥१३८॥
उल्कासहस्रैश्च सुसम्प्रदीप्तैर्विभ्राजमानैश्च तथा प्रदीपैः।
किरीटिवित्रासितसर्वयोधा चक्रे निवेशं ध्वजिनी कुरूणाम् १३९[८६४८]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि तृतीयदिवसावहारे एकोनषष्टितमोऽध्यायः॥ ५९॥

सञ्जय उवाच– व्युष्टां निशां भारत भारतानामनीकिनीनां प्रमुखे महात्मा।
ययौ सपत्नान्प्रति जातकोपो वृतः समग्रेण बलेन भीष्मः॥ १॥
तं द्रोणदुर्योधनबाह्लिकाश्च तथैव दुर्मर्षणचित्रसेनौ।
जयद्रथश्चाऽतिबलो बलौघैर्नृपास्तथाऽन्ये प्रययुः समन्तात्॥ २॥
स तैर्महद्भिश्च महारथैश्च तेजस्विभिर्वीर्यवद्भिश्च राजन्।
रराज राजा स तु राजमुख्यैर्वृतः स देवैरिव वज्रपाणिः॥ ३॥
तस्मिन्ननीकप्रमुखे विषक्ता दोधूयमानाश्च महापताकाः।
सुरक्तपीतासितपाण्डुराभा महागजस्कन्धगता विरेजुः॥ ४॥
सा वाहिनी शान्तनवेन गुप्ता महारथैर्वारणवाजिभिश्च।
बभौ सविद्युत्स्तनयित्नुकल्पा जलागमे द्यौरिव जातमेघा॥ ५॥

महारथी अर्जुन ही ने उन सबको अपने बाहुबलसे पराजित किया है। ऐसे ही वचन कहते हुए तुम्हारी सेनाके सब योद्धा लोग अपने अपने शिविरोंमें गये॥ कुरुसेनाके सम्पूर्ण वीर लोग अर्जुनके भयसे विकल होके सहस्रों लुक तथा दीपक जला कर अपने शिविरोंमें प्रवेश किया। (१३६–१३९) [८६४८]

भीष्मपर्वमें उनसठ अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें साठ अध्याय।

सञ्जय बोले, हे भारत! महात्मा भीष्म क्रोधसे युक्त थे, इन्होंने रात्रिके बीतने पर सबेरे ही सब सेनाके सहित शत्रुओंके विरुद्ध युद्धके निमित्त यात्रा की। द्रोणाचार्य, दुर्योधन, बाह्लिक, दुर्मर्षण, चित्रसेन, महाबलवान् जयद्रथ और दूसरे सब राजाओंने युद्ध करनेके निमित्त भीष्मके सङ्ग गमन किया॥ जैसे देवतोंके राजा वज्रधारी इन्द्र देवताओंके बीच शोभायमान होते हैं, वैसे ही महात्मा भीष्म भी पराक्रमी तेजस्वी बडे बडे तथा प्रधान राजाओंके बीच विराजमान हुए॥ (१–३)

उस महासेनाके बीच हाथियोंके कन्धे पर लगी हुई, लाल, पीली, काली और पाण्डुरवर्णकी पताका फहराने लगी॥ वह सब सेना महारथ भीष्म और हाथी घोडोंसे युक्त होकर वर्षा कालकी बिजलीके सहित बादलोंकी भांति शोभित होने लगी। इसके अनन्तर शान्तनु-

ततो रणायाऽभिमुखी प्रयाता प्रत्यर्जुनं शान्तनवाभिगुप्ता ।
सेना महोग्रा सहसा कुरूणां वेगो यथा भीम इवाऽऽपगायाः ॥६॥
तं व्यालनानाविधगूढसारं गजाश्वपादातरथौघपक्षम् ।
व्यूहं महामेघसमं महात्मा ददर्श दूरात्कपिराजकेतुः ॥ ७ ॥
विनिर्ययौ केतुमता रथेन नरर्षभः श्वेतहयेन वीरः ।
वरूथिना सैन्यमुखे महात्मा वधे धृतः सर्वसपत्नयूनाम् ॥ ८ ॥
सूपस्करं सोत्तरबन्धुरेषं यत्तं यदूनामृषभेण संख्ये ।
कपिध्वजं प्रेक्ष्य विषेदुराजौ सहैव पुत्रैस्तव कौरवेयाः ॥ ९ ॥
प्रकर्षता गुप्तमुदायुधेन किरीटिना लोकमहारथेन ।
तं व्यूहराजं ददृशुस्त्वदीयाश्चतुश्चतुर्व्यालसहस्रकर्णम् ॥ १० ॥
यथा हि पूर्वेऽहनि धर्मराज्ञा व्यूहः कृतः कौरवसत्तमेन ।
तथा न भूतो भुवि मानुषेषु न दृष्टपूर्वो न च संश्रुतश्च ॥ ११ ॥
ततो यथादेशमुपेत्य तस्थुः पाञ्चालमुख्याः सह चेदिमुख्यैः ।
ततः समादेशसमाहतानि भेरीसहस्राणि विनेदुराजौ ॥ १२ ॥

नन्दन भीष्मसे रक्षित वह कौरवोंकी सेना शीघ्र ही अर्जुनसे युद्ध करनेके निमित्त भयङ्कर नदीके वेगके समान गमन करने लगी ॥ (४-६)

व्याल अर्थात् हाथी, घोडे, रथ, और पदातियोंसे युक्त पक्षके सहित उस व्याल व्यूहको कपिध्वज अर्जुनने दूरही से अवलोकन किया। पुरुष श्रेष्ठ महात्मा अर्जुनने अपनी सेनाके सहित सफेद घोडोंसे युक्त रथ पर चढके सेनाके आगे होकर शत्रुओंके सब युवा पुरुषोंके वधकी इच्छासे शत्रुओंकी ओर गमन किया ॥ तुम्हारे पुत्रोंके सहित सब कौरव लोग अर्जुनके सब सामग्रियोंसे युक्त जिसकी ध्वजामें कपि है, ऐसे उत्तम रथ और उनके सारथी कृष्णको देखकर उत्साह रहित होगये ॥ (७-९)

पाण्डवोंका जो व्यूह बनाया गया, उसके दोनों कर्ण स्थलमें चार चार हजार हाथी थे। ऐसे व्यालव्यूहकी लोकमें विख्यात अर्जुन शस्त्र धारण करके रक्षा करते थे, तुम्हारी ओरके सब वीर उस व्यूहको देखने लगे ॥ धर्मराज युधिष्ठिरने पहिले दिन जैसा व्यूह तयार किया था उस भांतिका व्यूह पहिले पृथ्वीमें देखा वा सुना नहीं गया था, यह व्यूह भी उसी भांति पहिले कभी मनुष्योंके देखने तथा सुननेमें नहीं [illegible] था ॥ इसके अनन्तर श्रेष्ठ चेदिवीरोंके सहित [illegible] मुख्य पाञ्चाल अपने अपने स्थानपर

शङ्खस्वनास्तूर्यरथस्वनाश्च सर्वेष्वनीकेषु ससिंहनादाः ।
ततः सघाणानि महास्वनानि विस्फार्यमाणानि धनूंषि वीरैः ॥१३॥
क्षणेन भेरीपणवप्रणादानन्तर्दधुः शङ्खमहास्वनाश्च ।
तच्छङ्खशब्दावृतमन्तरिक्षमुद्धूतभौमद्रुतरेणुजालम् ॥ १४ ॥
महावितानावततप्रकाशमालोक्य वीराः सहसाऽभिपेतुः ।
रथी रथेनाऽभिहतः ससूतः पपात साश्वः सरथः सकेतुः ॥ १५ ॥
गजो गजेनाऽभिहतः पपात पदातिना चाऽभिहतः पदातिः ।
आवर्तमानान्यभिवर्तमानैर्घोरीकृतान्यद्भुतदर्शनानि ॥ १६ ॥
प्रासैश्च खड्गैश्च समाहतानि सदश्ववृन्दानि सदश्ववृन्दैः ।
सुवर्णतारागणभूषितानि सूर्यप्रभाभानि शरावराणि ॥ १७ ॥
विदार्यमाणानि परश्वधैश्च प्रासैश्च खड्गैश्च निपेतुरुर्व्याम् ।
गजैर्विषाणैर्वरहस्तरुग्णाः केचित्ससूता रथिनः प्रपेतुः ॥ १८ ॥
गजर्षभाश्चाऽपि रथर्षभेण निपातिता बाणहताः पृथिव्याम् ।
गजौघवेगोद्धतसादितानां श्रुत्वा विषेदुः सहसा मनुष्याः ॥ १९ ॥

खडे हुए और रणभूमिमें सम्पूर्ण सेनाके बीच शंख, रथ, भेरी आदि बाजोंके सङ्ग वीरोंके सिंहनादका शब्द होने लगा। (१०-१३)

अनन्तर क्षण ही भरके बाद वीरोंके धनुष चढानेके शब्द तथा शङ्खकी ध्वनिसे भेरी आदि बाजोंका शब्द छिप गया; उस समय शंखके शब्दसे युक्त आकाश वीरोंके पांवकी धूलिसे पूरित होनेके कारण बडे छतसे छाये हुए के समान दीखने लगा। तब वीर लोग चिन्ह और अनुमानसे आगे बढने लगे। अनन्तर सारथी, घोडे, रथ और ध्वजाके सहित रथी रथियोंसे, हाथी हाथीसे और पैदल चलनेवाले वीर पैदल योद्धा-ओंसे लड कर पृथ्वीमें गिरने लगे। युद्ध करनेवाले उत्तम उत्तम सवार लोग अच्छे घुडसवारोंके प्रास और तलवारकी चोटसे अद्भुतरूपसे भयङ्कर मूर्छित होकर पृथ्वीमें गिरने लगे॥ सुवर्णयुक्त अनेक तारोंसे भूषित सूर्यके समान प्रकाशित ढाल, परशु प्रास और तलवारोंकी चोटसे कट कर पृथ्वीमें गिरने लगे। (१४-१८)

बहुतसे रथी सारथीके सहित हाथियोंके दांत और सूडोंसे पीडित हुए तथा बडे बडे हाथी भी रथियोंमें श्रेष्ठ पुरुषोंके बाणोंसे मर कर पृथ्वीमें गिर गये। कितने ही घुडसवार और पैदल वीर हाथियोंके समूहके बीचमें पड कर उनके पांव और सूंडसे पीडित होके अनेक स्थानों

आर्तस्वनं साद्रिपदातियूनां विषाणगात्रावरताडितानाम् ।
सम्भ्रान्तनागाश्वरथे सुहूर्ते महाक्षये सादिपदातियूनाम् ॥ २० ॥
महारथैः सम्परिवार्यमाणो ददर्श भीष्मः कपिराजकेतुम् ।
तं पञ्चतालोच्छ्रिततालकेतुः सदश्ववेगाद्भुतवीर्ययानः ॥ २१ ॥
महास्त्रबाणाशनिदीप्तिमन्तं किरीटिनं शान्तनवोऽभ्यधावत् ।
तथैव शक्रप्रतिमप्रभावमिन्द्रात्मजं द्रोणसुखा विससुः ॥ २२ ॥
कृपश्च शल्यश्च विविंशतिश्च दुर्योधनः सौमदत्तिश्च राजन् ।
ततो रथानां प्रमुखादुपेत्य सर्वास्त्रवित्काञ्चनचित्रवर्मा ॥ २३ ॥
जवेन शूरोऽभिससार सर्वास्तानर्जुनस्याऽऽत्मसुतोऽभिमन्युः ।
तेषां महास्त्राणि महारथानामसह्यकर्मा विनिहत्य कार्ष्णिः ॥२४॥
बभौ महामन्त्रहुतार्चिमाली वेदीगतः सन्भगवानिवाऽग्निः ।
ततः स तूर्णं रुधिरोदफेनां कृत्वा नदीमाशु रणे रिपूणाम् ॥ २५ ॥
जगाम सौभद्रस्तीत्य भीष्मं महारथं पार्थमदीनसत्त्वः ।

में आर्तनाद करने लगे। मनुष्य लोग उस आर्तनादको सुन कर शङ्कित होगये। (१८—२०)

इसी प्रकारसे सब सवार और पैदल चलनेवाले वीरोंका अत्यन्त ही नाश हो रहा था और हाथी, घोडे तथा रथी भयसे आतुर होरहे थे; उस ही समयसे महारथ वीरोंके बीचमें स्थित श्रेष्ठ महात्मा भीष्मने कपिराजकेतुवाले अर्जुनको देखा। जिस भीष्मका रथ पांच तालवृक्षके समान ऊंची ताल ध्वजासे युक्त और उत्तम घोडोंके वेगसे अद्भुत पराक्रमसे युक्त हुआ है। शान्तनुपुत्र भीष्मने देखा, कि अर्जुनने महा अस्त्रोंका वज्र चक्रके समान प्रकाशित होरहा है, यह देखकर भीष्म अर्जुनके सम्मुख हुए। (२०-२२)

उसी प्रकार उस इन्द्रपुत्र अर्जुनके संमुख कृपाचार्य, शल्य, विविंशति, दुर्योधन और सोमदत्तके पुत्रने द्रोणाचार्यको आगे करके गमन किया। इसके अनन्तर सुवर्णमय विचित्र वर्मको धारण करने वाले, पराक्रमी सब शस्त्रोंके जाननेवाले, अर्जुनके पुत्र अभिमन्युका रथ सेनासे निकलकर वेगके सहित उन सब लोगोंसे युद्ध करनेके निमित्त उपस्थित हुआ। कठिन कर्म करनेवाला अभिमन्यु कृपाचार्य आदि उन महाबली वीरोंके महाअस्त्रोंको विशेषरूपसे निवारण करके, महामन्त्रसे उत्पन्न हुई शिखासे युक्त वेदीकी अग्निके समान प्रकाशित होने लगा। (२३–२५)

अनन्तर महा पराक्रमी भीष्मने शत्रु

ततः प्रहस्याऽद्भुतविक्रमेण गाण्डीवमुक्तेन शिलाशितेन ॥ २६ ॥
विपाठजालेन महास्त्रजालं विनाशयामास किरीटमाली।
तमुत्तमं सर्वधनुर्धराणामसक्तकर्मा कपिराजकेतुः ॥ २७ ॥
भीष्मं महात्माऽभिववर्ष तूर्णं शरौघजालैर्विमलश्च भल्लैः।
तथैव भीष्माहतमन्तरिक्षे महास्त्रजालं कपिराजकेतोः ॥ २८ ॥
विशीर्यमाणं ददृशुस्त्वदीया दिवाकरेणेव तमोभिभूतम्।
एवंविधं कार्मुकभीमनादमदीनवत्सत्पुरुषोत्तमाभ्याम् ॥
ददर्श लोकः कुरुसृञ्जयाश्च तद् द्वैरथं भीष्मधनञ्जयाभ्याम् ॥२९॥ [२६७५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
भीष्मार्जुनद्वैरथे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

सञ्जय उवाच— द्रौणिर्भूरिश्रवाः शल्यश्चित्रसेनश्च मारिष।
पुत्रः सांयमनेश्चैव सौभद्रं पर्यवारयन् ॥ १ ॥
संसक्तमतितेजोभिस्तमेकं ददृशुर्जनाः।
पञ्चभिर्मनुजव्याघ्रैर्गजैः सिंहशिशुं यथा ॥ २ ॥
नाऽभिलक्ष्यतया कश्चिन्न शौर्ये न पराक्रमे।

ओंकी सेनाके वीरोंको मार उनके रुधिर से नदी बहा कर शीघ्रता पूर्वक अभिमन्यु को अतिक्रमकर महारथ अर्जुनके समीप जाकर उनके ऊपर अपने बाणों-की वर्षा करने लगे। अनन्तर कठिन कर्म करनेवाले महात्मा अर्जुनने हंसते हुए अद्भुत रूपवाले गाण्डीव धनुषके महा घोर टङ्कारके सहित अपने बाणों-को चलाकर भीष्मके चलाये हुए महा अस्त्रोंका संहार किया और फिर उनके ऊपर उत्तम भल्ल बाणोंकी वर्षा करने लगे। तुम्हारी सेनाके सब लोगोंने अर्जुन-के महाअस्त्रोंको आकाशमें भीष्मके महा शस्त्रोंसे इस भान्तिसे कटते हुए देखा, कि जैसे सूर्य का उदय होनेसे अन्धकार का नाश होजाता है। कौरव, सञ्जय और दूसरे सब लोग पुरुषोंमें श्रेष्ठ भीष्म और अर्जुनका इसी प्रकारसे प्रबल शस्त्रों तथा भयंकर सिंहनादके सहित द्वैरथ युद्ध देखने लगे। (२५—२९)

भीष्मपर्वमें साठ अध्याय समाप्त। [२६७५]

भीष्मपर्वमें इकसठ अध्याय।

सञ्जय बोले; हे महाराज! अश्व-त्थामा, भूरिश्रवा, शल्य, चित्रसेन और सांयमनिके पुत्र अभिमन्युके सङ्ग युद्ध करने लगे॥ सब पुरुष उस एक तेजस्वी बालकको उन पांच पुरुषसिंहोंके बीच मानो पांच हाथियोंके संग एक सिंहपुत्रके

बभूव सदृशः कार्ष्णेनाऽस्त्रे नाऽपि च लाघवे ॥ ३ ॥
तथा तमात्मजं युद्धे विक्रमन्तमरिन्दमम् ।
दृष्ट्वा पार्थः सुसंयत्तं सिंहनादमथाऽनदत् ॥ ४ ॥
पीडयानं तु तत्सैन्यं पौत्रं तव विशाम्पते ।
दृष्ट्वा त्वदीया राजेन्द्र समन्तात्पर्यवारयन् ॥ ५ ॥
ध्वजिनीं धार्तराष्ट्राणां दीनशत्रुरदीनवत् ।
प्रत्युद्ययौ स सौभद्रस्तेजसा च बलेन च ॥ ६ ॥
तस्य लाघवमार्गस्थमादित्यसदृशप्रभम् ।
व्यदृश्यत महच्चाप समरे युध्यतः परैः ॥ ७ ॥
स द्रौणिमिषुणैकेन विध्वा शल्यं च पञ्चभिः ।
ध्वजं सांयमनेश्चैव सोऽष्टाभिश्चिच्छिदे ततः ॥ ८ ॥
रुक्मदण्डां महाशक्तिं प्रेषितां सौमदत्तिना ।
शितेनोरगसङ्काशां पत्रिणाऽपजहार ताम् ॥ ९ ॥
शल्यस्य च महावेगानस्यतः समरे शरान् ।
निवार्याऽर्जुनदायादो जघान चतुरो हयान् ॥ १० ॥

समान देखने लगे ॥ लक्ष्यवेध, वीरता, पराक्रम और अस्त्र चलानेकी फुर्ती आदि किसी युद्ध कर्ममें कोई अर्जुन-पुत्र अभिमन्युके समान न हुआ । १-३

अर्जुन शत्रुनाशन निजपुत्र अभिमन्यु को अत्यन्त पराक्रम प्रकाशित करते हुए देखकर सिंहनाद करने लगे ॥ हे राजेन्द्र ! तुम्हारी ओरके वीरोंने अभिमन्युको सेनाका नाश करता हुआ देखकर उसे चारों ओरसे घेर लिया ॥ जिसके शत्रु सदा दीनताको प्राप्त होते है वह अभिमन्यु निर्भय चित्तसे अपने तेज और बलको दिखाते हुए उन लोगोंसे युद्ध करने लगा । (४–६)

शत्रुओंके सङ्ग युद्ध करनेके समय हाथकी फुर्तीके कारण उसका धनुष सूर्यके समान प्रकाशित होने लगा ॥ उसने अश्वत्थामाको एक और शल्यको पांच बाणोंसे विद्ध करके सांयमनिके रथकी ध्वजा आठ बाणोंसे काटकर गिरा दी ॥ सोमदत्तके पुत्रने सुवर्ण दण्डसे युक्त सर्पके समान एक शक्ति चलाई, अभिमन्युने एक शाणित बाणसे उसे काटकर गिरा दिया ॥ शल्यने सैकडों महाघोर बाण अभिमन्युके ऊपर चलाये, अभिमन्युने अपने बाणोंसे शल्य के बाणोंको निवारण करके उसके चारों घोडोंको मार डाला ॥ भूरिश्रवा, शल्य,

भूरिश्रवाश्च शल्यश्च द्रौणिः सांयमनिः शलः ।
नाऽभ्यवर्तन्त संरब्धाः कार्ष्णेर्बाहुबलोद्यम् ॥ ११ ॥
ततस्त्रिगर्ता राजेन्द्र मद्राश्च सह केकयैः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रास्तव पुत्रेण चोदिताः ॥ १२ ॥
धनुर्वेदविदो मुख्या अजेयाः शत्रुभिर्युधि ।
सहपुत्रं जिघांसन्तं परिवव्रुः किरीटिनम् ॥ १३ ॥
तौ तु तत्र पितापुत्रौ परिक्षिप्तौ महारथौ ।
ददर्श राजन्पाञ्चाल्यः सेनापतिररिन्दम ॥ १४ ॥
स वारणरथौघानां सहस्रैर्बहुभिर्वृतः ।
वाजिभिः पत्तिभिश्चैव वृतः शतसहस्रशः ॥ १५ ॥
धनुर्विस्फार्य संक्रुद्धो नोदयित्वा च वाहिनीम् ।
ययौ तं मद्रकानीकं केकयांश्च परन्तप ॥ १६ ॥
तेन कीर्तिमता गुप्तमनीकं दृढधन्वना ।
संरब्धरथनागाश्वं योत्स्यमानमशोभत ॥ १७ ॥
सोऽर्जुनप्रमुखे यान्तं पाञ्चालकुलवर्धनः ।
त्रिभिः शारद्वतं बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत् ॥ १८ ॥

अश्वत्थामा, सायमनि-पुत्र और शल्य, ये सब लोग भयभीत होकर अभिमन्युके बाहुबलको सहने में असमर्थ हो गये ॥ (७—११)

हे राजेन्द्र ! तब धनुर्विद्याके जाननेवाले शत्रुओंसे युद्धमें अजेय सब अस्त्रोंके जाननेवाले त्रिगर्त, मद्र और केकयदेशीय पचीस हजार योद्धाओंने दुर्योधनकी आज्ञासे शत्रुओंको मारनेकी इच्छासे पुत्रके सहित अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया ॥ (१२—१३)

हे राजन् ! शत्रुनाशन पाण्डवोंके सेनापति धृष्टद्युम्नने महारथ अर्जुन और अभिमन्युको शत्रुसेनासे घिरे हुए देख कर कई हजार हाथी, रथोंके समूह, सौ सौ हजार पैदल वीर और घुडसवारोंकी सेना लेकर धनुष खींचते हुए उन मद्रदेशीय तथा केकय देशीय वीरोंसे युद्ध करनेके निमित्त यात्रा की। (१४—१६)

रथ, हाथी और घोडोंसे युक्त वह सेना कीर्त्तिमान दृढधनुषधारी धृष्टद्युम्नसे रक्षित और युद्धके निमित्त गमन करती हुई अत्यन्त शोभायमान होने लगी ॥ कृपाचार्यको अर्जुनके समीप गमन करता हुआ देख कर धृष्टद्युम्नने तीन बाण उनकी पसलीमें मारे ॥ तिसके

ततः स मद्रकान्हत्वा दशैव दशभिः शरैः ।
पृष्ठरक्षं जघानाऽऽशु भल्लेन कृतवर्मणः ॥ १९ ॥
दमनं चाऽपि दायादं पौरवस्य महात्मनः ।
जघान विमलाग्रेण नाराचेन परन्तपः ॥ २० ॥
ततः सांयमनेः पुत्रः पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम् ।
अविध्यत्त्रिंशता बाणैर्दशभिश्चाऽस्य सारथिम् ॥ २१ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्किणीपरिसंलिहन् ।
भल्लेन भृशतीक्ष्णेन निचकर्ताऽस्य कार्मुकम् ॥ २२ ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षिप्रमेव समार्पयत् ।
अश्वांश्चाऽस्याऽवधीद्राजन्नुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ॥२३॥
स हताऽश्वे रथे तिष्ठन्ददर्श भरतर्षभ ।
पुत्रः सांयमनेः पुत्रं पाञ्चाल्यस्य महात्मनः ॥ २४ ॥
स प्रगृह्य महाघोरं निस्त्रिंशवरमायसम् ।
पदातिस्तूर्णमानर्च्छेद्रथस्थं पुरुषर्षभः ॥ २५ ॥
तं महौघमिवायान्तं खात्पतन्तमिवोरगम् ।
भ्रान्तावरणनिस्त्रिंशं कालोत्सृष्टमिवान्तकम् ॥ २६ ॥
दीप्यमानमिवाऽऽदित्यं मत्तवारणविक्रमम् ।

अनन्तर धृष्टद्युम्नने दस मद्रक वीरोंको दश बाणोंसे विद्ध करके शीघ्रताके सहित कृतवर्माके पृष्ठरक्षकको एक भल्लसे मार डाला ॥ अनन्तर महात्मा पौरवोंके दायाद दमनको चोखे नाराच बाणोंसे मारा ॥ (१७-२०)

अनन्तर सांयमनि-पुत्रने युद्धदुर्मद धृष्टद्युम्नको तीस बाणोंसे विद्ध करके उनके सारथीको भी दश बाणोंसे विद्ध किया ॥ महाधनुषधारी धृष्टद्युम्न सांयमनि पुत्रके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर क्रोधसे युक्त हो एक तीक्ष्ण भल्लसे उनका धनुष काट डाला और शीघ्रताके सहित उनके ऊपर पचीस बाण चलाये; अनन्तर धृष्टद्युम्नने उसके घोडे, पृष्ठरक्षक और सारथीको मार डाला ॥ (२१-२३)

हे भारत ! सांयमनिपुत्र घोडोंसे रहित रथ पर ही स्थित होके यशस्वी द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्नकी ओर देखके शीघ्र ही महा भयानक लोहमयी तलवार ग्रहण करके पैदल ही उनकी ओर दौडे ॥ पाण्डवगण और धृष्टद्युम्न उनको मतवारे हाथीके समान पराक्रमशील, सूर्यकी भांति प्रकाशित, काल-प्रेरित यम-

अपश्यन्पाण्डवास्तत्र धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २७ ॥
तस्य पाञ्चालदायादः प्रतीपमभिधावतः।
शितनिस्त्रिंशहस्तस्य शरावरणधारिणः ॥ २८ ॥
बाणवेगमतीतस्य तथाऽभ्याशमुपेयुषः।
त्वरन्सेनापतिः क्रुद्धो बिभेद गदया शिरः ॥ २९ ॥
तस्य राजन्सनिस्त्रिंशं सुप्रभं च शरावरम्।
हतस्य पततो हस्ताद्वेगेन न्यपतद्भुवि ॥ ३० ॥
तं निहत्य गदाग्रेण स लेभे परमां मुदम्।
पुत्रः पाञ्चालराजस्य महात्मा भीमविक्रमः ॥ ३१ ॥
तस्मिन्हते महेष्वासे राजपुत्रे महारथे।
हाहाकारो महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ॥ ३२ ॥
ततः सांयमनिः क्रुद्धो दृष्ट्वा निहतमात्मजम्।
अभिदुद्राव वेगेन पाञ्चाल्यं युद्धदुर्मदम् ॥ ३३ ॥
तौ तत्र समरे शूरौ समेतौ युद्धदुर्मदौ।
ददृशुः सर्वराजानः कुरवः पाण्डवास्तथा ॥ ३४ ॥
ततः सांयमनिः क्रुद्धः पार्षतं परवीरहा।

राज और आकाशमें उडते हुए महासर्पके समान और खड्ग घुमाते तथा महावेग-के सहित आते हुए देखने लगे॥ (२४–२७)

उत्तम पानीमें बुझाई हुई शाणित तलवार और हाथमें ढाल लिये दौडते हुए शत्रुओंके बाणोंका वेग अतिक्रम करके रथके समीप पहुंचते ही सेनापति धृष्टद्युम्नने क्रुद्ध होकर गदासे उसके सिरको टुकडे टुकडे कर दिया। हे राजन्! उनके मरते ही वह प्रकाशित ढाल और तलवार उनके हाथसे छूट कर पृथ्वीमें गिरी और उनका शरीर भी पृथ्वी पर गिर पडा। महापराक्रमी पाञ्चालराज-पुत्र महात्मा धृष्टद्युम्नने गदासे उसका वध करके परम आनंद पाया॥ (२८–३१)

उस महाधनुर्द्धर महारथ राजपुत्रके मारे जाने पर तुम्हारी सेनामें महा हाहाकार शब्द हुआ॥ अनन्तर सांय मनि अपने पुत्रको मरा हुआ देखकर क्रोधपूर्वक युद्धदुर्मद धृष्टद्युम्नकी ओर वेगसे दौडे और कौरव तथा पाण्डवोंके सम्मुख ही वे दोनों वीर आपसमें युद्ध करने लगे॥ पहिले सांयमनिने क्रुद्ध होकर महागजराजको अंकुशसे पीडित

आजघान त्रिभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ ३५ ॥
तथैव पार्षतं शूरं शल्यः समितिशोभनः ।
आजघानोरसि क्रुद्धस्ततो युद्धमवर्तत ॥ ३६ ॥ [२७११]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थे युद्धदिवसे सायमनिपुत्रवधे एकषष्टितमोऽध्यायः ६१॥

धृतराष्ट्र उवाच— दैवमेव परं मन्ये पौरुषादपि सञ्जय ।
यत्सैन्यं मम पुत्रस्य पाण्डुसैन्येन बाध्यते ॥ १ ॥
नित्यं हि मामकांस्तात हतानेव हि शंससि ।
अव्यग्रांश्च प्रहृष्टांश्च नित्यं शंससि पाण्डवान् ॥ २ ॥
हीनान्पुरुषकारेण मामकानद्य सञ्जय ।
पातितान्पात्यमानांश्च हतानेव च शंससि ॥ ३ ॥
युध्यमानान्यथाशक्ति घटमानाञ्जयं प्रति ।
पाण्डवा हि जयन्त्येव जीयन्ते चैव मामकाः ॥ ४ ॥
सोऽहं तीव्राणि दुःखानि दुर्योधनकृतानि च ।
श्रोष्यामि सततं तात दुःसहानि बहूनि च ॥ ५ ॥
तमुपायं न पश्यामि जीयेरन्येन पाण्डवान् ।
मामका विजयं युद्धे प्राप्नुयुर्येन सञ्जय ॥ ६ ॥

करनेके समान धृष्टद्युम्नको तीन बाण मारे और महारथ शल्यने भी क्रुद्ध होकर वीर धृष्टद्युम्नकी छातीमें बाणोंका प्रहार किया; फिर उन लोगोंका महाघोर तुमुल युद्ध होने लगा ॥ (३२-३६)[२७११]

भीष्मपर्वमें इकसठ अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें बासठ अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! पुरुषार्थसे दैवहीको मैं श्रेष्ठ समझता हूं ; क्योंकि पाण्डवोंकी सेना ही मेरे पुत्रोंकी सेनाका वध कर रही है ॥ हे तात ! तुम नित्य ही मेरे पक्षका नाश और पाण्डवोंके पक्षको बहुत प्रबल तथा प्रसन्न वर्णन करते हो ॥ तुम इस समय मेरी ओरकी सेनाहीको पराक्रमसे रहित, गिरती, भागती और मरती हुई कहके वर्णन करते हो ॥ (१--३)

वह जयकी इच्छासे युद्ध करती है, तो भी पाण्डव लोग उसे पराजित ही करते हैं; और मेरी सेना पराक्रमहीन होती है ॥ हे सूत ! इससे दुर्योधनके कारण मुझे नित्यही न सहने योग्य अनेक प्रकारसे दुःखके विषय सुनने पडते हैं ॥ हे सञ्जय ! किस उपायसे पाण्डव लोग पराक्रमहीन और मेरे पक्षवाले वीर जययुक्त हो सकते हैं, सो मैं कुछ भी

सञ्जय उवाच- क्षयं मनुष्यदेहानां गजवाजिरथक्षयम् ।
शृणु राजन्स्थिरो भूत्वा तवैवाऽपनयो महान् ॥ ७ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु शल्येन पीडितो नवभिः शरैः ।
पीडयामास संक्रुद्धो मद्राधिपतिमायसैः ॥ ८ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम पार्षतस्य पराक्रमम् ।
न्यवारयत यस्तूर्णं शल्यं समितिशोभनम् ॥ ९ ॥
नाऽन्तरं दृश्यते तत्र तयोश्च रथिनोस्तदा ।
मुहूर्तमिव तद्युद्धं तयोः सममिवाऽभवत् ॥ १० ॥
ततः शल्यो महाराज धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन पीतेन निशितेन च ॥ ११ ॥
अथैनं शरवर्षेण च्छादयामास संयुगे ।
गिरिं जलागमे यद्वज्जलदा जलवृष्टिभिः ॥ १२ ॥
अभिमन्युस्ततः क्रुद्धो धृष्टद्युम्ने च पीडिते ।
अभिदुद्राव वेगेन मद्रराजरथं प्रति ॥ १३ ॥
ततो मद्राधिपरथं कार्ष्णिः प्राप्याऽतिकोपनः ।
आर्तायनिममेयात्मा विव्याध निशितैः शरैः॥ १४ ॥
ततस्तु तावका राजन्परीप्सन्तोऽऽर्जुनिं रणे ।

नहीं देखता हूं । (४-६)

सञ्जय बोले, हे राजन् ! बडी भारी आपदा तुम्हारी ओरसे ही उत्पन्न हो रही है । जो हो अब इस समय तुम हाथी, घोडे, रथ और मनुष्योंके नाशका वृत्तान्त सुनो ॥ धृष्टद्युम्नने मद्रराज शल्यके बाणोंसे पीडित होकर क्रोधपूर्वक नौ बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ उस समय धृष्टद्युम्नका अद्भुत पराक्रम दिखाई देने लगा, वह शीघ्रताके सहित शल्यको निवारण करने लगे ॥ (७-९)

वे दोनों इस भांतिसे युद्ध करने लगे, कि किसीने उन्हें क्षणभर युद्धमें ठहरते न देखा ॥ हे महाराज ! शल्यने उत्तम पानीमें बुझे हुए एक बाणसे धृष्टद्युम्नका धनुष काट दिया ॥ फिर वर्षाकालके मेघके समान अपने बाणोंकी वर्षा कर उन्हें छिपा दिया ॥ धृष्टद्युम्न शल्यके बाणोंसे पीडित हुए, तब पराक्रमी अभिमन्युने शल्यके रथके समीप शीघ्रतासे गमन किया ॥ (१०-१३)

अनन्तर अभिमन्युने शल्यके निकट जाकर तीक्ष्ण बाणोंसे उन्हें विद्ध किया॥ उसे देखकर तुम्हारी ओरके योद्धा लोग

मद्रराजरथं तूर्णं परिवार्याऽवतस्थिरे ॥ १५ ॥
दुर्योधनो विकर्णश्च दुःशासनविविंशती ।
दुर्मर्षणो दुःसहश्च चित्रसेनोऽथ दुर्मुखः ॥ १६ ॥
सत्यव्रतश्च भद्रं ते पुरुमित्रश्च भारत ।
एते मद्राधिपरथं पालयन्तः स्थिता रणे ॥ १७ ॥
तान्भीमसेनः संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
द्रौपदेयाभिमन्युश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १८ ॥
धार्तराष्ट्रान्दश रथान्दशैव प्रत्यवारयन् ।
नानारूपाणि शस्त्राणि विसृजन्तो विशाम्पते॥ १९ ॥
अभ्यवर्तन्त संहृष्टाः परस्परवधैषिणः ।
ते वै समेयुः संग्रामे राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥ २० ॥
तस्मिन्दशरथे क्रुद्धे वर्तमाने महाभये ।
तावकानां परेषां वा प्रेक्षका रथिनोऽभवन् ॥ २१ ॥
शस्त्राण्यनेकरूपाणि विसृजन्तो महारथाः ।
अन्योन्यमभिनर्दन्त, सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ॥ २२ ॥
ते तदा जातसंरम्भाः सर्वेऽन्योऽन्यं जिघांसवः ।
अन्योन्यमभिमर्दन्तः स्पर्धमानाः परस्परम् ॥ २३ ॥
अन्योन्यस्पर्धया राजन्ज्ञातयः सङ्गता मिथः ।

चारों ओरसे शल्यके रथको घेरकर अभिमन्युसे युद्ध करने लगे ॥ दुर्योधन, महारथ विकर्ण दुःशासन, विविंशति, दुर्मर्षण, दुःसह चित्रसेन, दुर्मुख सत्यव्रत और पुरुमित्र; ये दश पुरुष मद्रराज शल्यके रथकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए (१४–१७)

हे महाराज ! भीमसेन, धृष्टद्युम्न द्रौपदीके पाचों पुत्र अभिमन्यु, नकुल और सहदेव, ये दश पुरुष अनेक प्रकारके अस्त्रोंको चलाकर तुम्हारी ओरके उन दशों वीरोंको निवारण करने लगे ॥ हे राजन् ! तुम्हारी अनीतिसे ही ये सब वीर युद्धमें इकट्ठे होकर एक दूसरेके मारनेकी इच्छासे संग्राम करने लगे ॥ (१८–२०)

तुम्हारे और पाण्डवोंकी ओरके रथी लोग उन आपसमें एक दूसरेके वध करनेकी इच्छासे युद्ध करते हुए दश महारथियोंके युद्धको देखने लगे ॥ वह महारथ लोग अनेक प्रकारके शस्त्रोंको चलाते हुए आपसमें युद्ध करने लगे ॥ हे राजन् ! वे सब परस्पर स्पर्धासे मगन हुए ज्ञाति-

महास्त्राणि विसृजन्तः समापेतुरमर्षिणः ॥ २४ ॥
दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो धृष्टद्युम्नं महारणे ।
विव्याध निशितैर्बाणैश्चतुर्भिः समरे द्रुतम् ॥ २५ ॥
दुर्मर्षणश्च विंशत्या चित्रसेनश्च पञ्चभिः ।
दुर्मुखो नवभिर्बाणैर्दुःसहश्चाऽपि सप्तभिः ॥ २६ ॥
विविंशतिः पञ्चभिश्च त्रिभिर्दुःशासनस्तथा ।
तान्प्रत्यविध्यद्राजेन्द्र पार्षतः शत्रुतापनः ॥ २७ ॥
एकैकं पञ्चविंशत्या दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
सत्यव्रतं च समरे पुरुमित्रं च भारत ॥ २८ ॥
अभिमन्युरविध्यत्तु दशभिर्दशभिः शरैः ।
माद्रीपुत्रौ तु समरे मातुलं मातृनन्दनौ ॥ २९ ॥
अविध्येतां शरैस्तीक्ष्णैस्तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
ततः शल्यो महाराज स्वस्रीयौ रथिनां वरौ ॥ ३० ॥
शरैर्बहुभिरानर्छत्कृतप्रतिकृतैषिणौ ।
छाद्यमानौ ततस्तौ तु माद्रीपुत्रौ न चेलतुः ॥ ३१ ॥
अथ दुर्योधनं दृष्ट्वा भीमसेनो महाबलः ।
विधित्सुः कलहस्याऽन्तं गदां जग्राह पाण्डवः॥ ३२ ॥

लोग क्रोधित होकर ईर्षापूर्वक एक दूसरेका वध करनेकी इच्छासे महा अस्त्र चलाने लगे। (२१-२४)

दुर्योधनने क्रोधपूर्वक चार बाण, दुर्मर्षण बीस, चित्रसेन पांच, दुर्मुख नौ, दुःसह सात, विविंशति पांच और दुःशासनने तीन बाणोंसे धृष्टद्युम्नको प्रहार किया। हे राजेन्द्र! शत्रुनाशन द्रुपद-कुमार धृष्टद्युम्नने हाथकी फुर्तीके सहित उनमेंसे हर एक वीरको पचीस पचीस बाणोंसे प्रहार किया। अभिमन्युने सत्यव्रत और पुरुमित्रको दस दस बाणोंसे विद्ध किया। (२५-२९)

माताके आनन्दको बढानेवाले नकुल और सहदेवने अपने मामा शल्यको तीक्ष्ण बाणोंसे तोप दिया; वह संग्राम अद्भुतरूपका दीख पडा। अनन्तर रथियोंमें श्रेष्ठ शल्यने अपने दोनों भान्जोंके ऊपर बहुतसे बाण चलाये; वे दोनों शल्यके बाणोंसे पीडित होकर भी उनके अस्त्रोंके प्रतिकारकी इच्छासे युद्धमें विचलित नहीं हुए। (३०-३१)

महाराज! भीमसेनने दुर्योधनको देखकर शत्रुताका अन्त करनेके निमित्त

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
भीमसेनं महाबाहुं पुत्रास्ते प्राद्रवन्भयात् ॥ ३३ ॥
दुर्योधनस्तु संक्रुद्धो मागधं समचोदयत् ।
अनीकं दशसाहस्रं कुञ्जराणां तरस्विनाम् ॥ ३४ ॥
गजानीकेन सहितस्तेन राजा सुयोधनः ।
मागधं पुरतः कृत्वा भीमसेनं समभ्ययात् ॥ ३५ ॥
आपतन्तं च तं दृष्ट्वा गजानीकं वृकोदरः ।
गदापाणिरवारोहद्रथात्सिंह इवोन्नदन् ॥ ३६ ॥
अद्रिसारमयीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अभ्यधावद्गजानीकं व्यादितास्य इवाऽन्तकः ॥ ३७ ॥
स गजान्गदया निघ्नन्व्यचरत्समरे बली ।
भीमसेनो महाबाहुः सवज्र इव वासवः ॥ ३८ ॥
तस्य नादेन महता मनोहृदयकम्पिना ।
व्यत्यचेष्टन्त संहत्य गजा भीमस्य गर्जतः ॥ ३९ ॥
ततस्तु द्रौपदीपुत्राः सौभद्रश्च महारथः ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ४० ॥
पृष्ठं भीमस्य रक्षन्तः शरवर्षेण वारणान् ।

गदा ग्रहण की ॥ हाथमें गदा लिये हुए महाबाहु भीमको शिखरसे युक्त कैलास पर्वतके समान देखकर तुम्हारे दूसरे सब पुत्र वहांसे भाग गये ॥ परन्तु दुर्योधन क्रुद्ध होके मगधदेशीय दश हजार हाथियोंकी सेनासहित मगधराज को नियुक्त किया और उस को आगे करके भीमसेनके सम्मुख हुए ॥ (३२-३५)

हाथ में गदा लिये हुए भीमसेन हाथियोंकी सेना आती हुई देखकर सिंहनाद करते हुए रथसे उतरे ॥ वह मुंह पसरे कालके समान होकर अत्यन्त कठोर लोहमयी भारी गदा लेकर हाथियोंकी सेनापर दौडे ॥ जैसे वृत्रासुरके नाश करनेवाले इन्द्र दानवोंकी सेनामें भ्रमण करते है, वैसे ही महाबाहु भीमसेन गदासे हाथियोंको मारते हुए रणभूमिमें चारों ओर घूमने लगे ॥ चित्त तथा हृदयको कपानेवाले भीमसेनका तर्जन गर्जन सुनकर सब हाथी एक स्थानपर एकत्रित होकर अत्यन्त चेष्टा करने लगे । (३६-३९)

इसके अनन्तर द्रौपदीके पुत्र, महारथ अभिमन्यु, नकुल, सहदेव और

अभ्यवर्षन्त धावन्तो मेघा इव गिरीन्यथा ॥ ४१ ॥
क्षुरैः क्षुरप्रैर्भल्लैश्च पीतैश्चाऽञ्जलिकैः शितैः ।
व्यहरन्नुत्तमाङ्गानि पाण्डवा गजयोधिनाम् ॥ ४२ ॥
शिरोभिः प्रपतद्भिश्च बाहुभिश्च विभूषितैः ।
अश्मवृष्टिरिवाऽऽभाति पाणिभिश्च सहाङ्कुशैः ॥ ४३ ॥
हृतोत्तमाङ्गाः स्कन्धेषु गजानां गजयोधिनः ।
अदृश्यन्ताऽचलाग्रेषु द्रुमा भग्नशिखा इव ॥ ४४ ॥
धृष्टद्युम्नहतानन्यानपश्याम महागजान् ।
पततः पात्यमानांश्च पार्षतेन महात्मना ॥ ४५ ॥
मागधोऽथ महीपालो गजमैरावणोपमम् ।
प्रेषयामास समरे सौभद्रस्य रथं प्रति ॥ ४६ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य मागधस्य महागजम् ।
जघानैकेषुणा वीरः सौभद्रः परवीरहा ॥ ४७ ॥
तस्याऽऽवर्जितनागस्य कार्ष्णिः परपुरञ्जयः ।
राज्ञो रजतपुङ्खेन भल्लेनाऽपाहरच्छिरः ॥ ४८ ॥
विगाह्य तद्गजानीकं भीमसेनोऽपि पाण्डवः ।

धृष्टद्युम्न भीमसेनकी पृष्ठ रक्षामें प्रवृत्त होकर जैसे बादल पर्वतके ऊपर जल वर्षाता है, वैसे ही हाथियोंकी सेनाके ऊपर बाणोंको वर्षाने लगे। अनन्तर शिलापर घिसे हुए चोखे क्षुर, क्षुरप्र, भल्ल और अञ्जलिकाबाणसे हाथियोंपर चढे हुए योद्धाओंका सिर काटने लगे। गजपतियोंके सिर, भुजा और अंकुश सहित हाथ बाणोंसे कटकर ऐसे गिरने लगे, कि मानो पत्थरकी वर्षा हो रही है। (४०-४३)

बहुतसे योद्धाओंका सिर कटकर हाथियोंके ऊपर इस प्रकारसे दीखने लगा, जैसे पर्वतके ऊपर टूटे हुए वृक्षोंकी शाखा दीख पडती है॥ महात्मा धृष्टद्युम्नको भी बडे बडे हाथियोंका वध करते हुए मैंने देखा॥ मगध देशके राजाने ऐरावतके समान एक महागजराज अभिमन्युकी ओर चलाया॥ शत्रुनाशन वीर अभिमन्युने उस महागज गजको आता हुआ देखकर एक ही बाणसे उसका प्राण संहार किया॥ (४४-४७)

मगधराजके हाथीसे रहित होनेपर अभिमन्युने सुवर्ण पंखसे युक्त एक बाणसे उनका सिर काट डाला॥ इधर

व्यचरत्समरे मृद्नन्गजानिन्द्रो गिरीनिव ॥ ४९ ॥
एकप्रहारनिहता भीमसेनेन दन्तिनः ।
अपश्याम रणे तस्मिन्गिरीन्वज्रहतानिव ॥ ५० ॥
भग्नदन्तान्भग्नकटान्भग्नसक्थांश्च वारणान् ।
भग्नपृष्ठत्रिकानन्यान्निहतान्पर्वतोपमान् ॥ ५१ ॥
नदतः सीदतश्चाऽन्यान्विमुखान्समरे गतान् ।
विद्रुतान्भयसंविग्नांस्तथा विशकृतोऽपरान् ॥ ५२ ॥
भीमसेनस्य मार्गेषु पतितान्पर्वतोपमान् ।
अपश्यं निहतान्नागान्राजन्निष्ठीवतोऽपरान् ॥ ५३ ॥
वमन्तो रुधिरं चाऽन्ये भिन्नकुम्भा महागजाः।
विह्वलन्तो गता भूमिं शैला इव धरातले ॥ ५४ ॥
मेदोरुधिरदिग्धाङ्गो वसामज्जासमुक्षितः ।
व्यचरत्समरे भीमो दण्डपाणिरिवाऽन्तकः ॥ ५५ ॥
गजानां रुधिरक्लिन्नां गदां बिभ्रद्वृकोदरः ।
घोरः प्रतिभयश्चाऽऽसीत्पिनाकीव पिनाकधृक्॥ ५६ ॥
सम्मथ्यमानाः क्रुद्धेन भीमसेनेन दन्तिनः ।

भीमसेन हाथियोंकी सेनामें प्रवेश करके सब हाथियोंको मारते हुए ऐसे घूमने लगे, जैसे इन्द्रने पर्वतोंपर भ्रमण किया था ॥ वह एक ही प्रहारसे नाना भांति से हाथियोंको मारने लगे। रणभूमिमें सब मरे हुए हाथियोंको मैं वज्रकी चोटसे गिरे हुए पर्वतके समान देखने लगा ॥ (४८—५०)

किसी किसी हाथीका दांत, कितनों की कमर और कितने ही हाथियोंका पृष्ठभाग टूट गया। पर्वतके समान कितने ही हाथी भयसे विह्वल हो गये; कितने ही रणभूमिसे भागने लगे कोई कोई हाथी भयभीत होकर मलमूत्र त्यागने लगे, कितने हाथी भीमसेनके भ्रमण करनेके मार्गहीमें पिस कर मर गये और कितने ही आर्त्त होकर चिंघाड मारने लगे, कितने ही हाथी पेट फटने से रुधिर वमन करते हुए पर्वतकी भांति पृथ्वीमें गिर पडे। (५१-५४)

भीमसेन रुधिर, मांस और मज्जासे पूरित होकर दण्डधारी यमराजके समान रणभूमिमें चारों ओर भ्रमण करने लगे ॥ वह हाथियोंके रुधिरसे पूरित गदा ले कर पिनाकधारी रुद्रके समान भयङ्कर दिखाई देने लगे ॥ सब हाथी भीमसेन

सहसा प्राद्रवन्क्लिष्टा मृद्नन्तस्तव वाहिनीम् ॥ ५७ ॥
तं हि वीरं महेष्वासं सौभद्रप्रमुखा रथाः ।
पर्यरक्षन्त युध्यन्तं वज्रायुधमिवाऽमराः ॥ ५८ ॥
शोणिताक्तां गदां बिभ्रदुक्षितां गजशोणितैः ।
कृतान्त इव रौद्रात्मा भीमसेनो व्यदृश्यत ॥ ५९ ॥
व्यायच्छमानं गदया दिक्षु सर्वासु भारत ।
अपश्याम रणे भीमं नृत्यन्तमिव शङ्करम् ॥ ६० ॥
यमदण्डोपमां गुर्वीमिन्द्राशनिसमस्वनाम् ।
अपश्याम महाराज रौद्रां विशसनीं गदाम् ॥ ६१ ॥
विमिश्रां केशमज्जाभिः प्रदिग्धां रुधिरेण च ।
पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याऽभिघ्नतः पशून् ॥ ६२ ॥
यथा पशूनां सङ्घातं यष्ट्या पालः प्रकालयेत् ।
तथा भीमो गजानीकं गदया समकालयत् ॥ ६३ ॥
गदया वध्यमानास्ते मार्गणैश्च समन्ततः ।
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तः प्राद्रवन्कुञ्जरास्तव ॥ ६४ ॥
महावात इवाऽभ्राणि विधमित्वा सवारणान् ।

की गदासे विकल होकर तुम्हारी सेना-का मर्दन करते हुए भागने लगे ॥ जैसे देवता लोग वज्रधारी इन्द्रकी रक्षा करते हैं वैसेही अभिमन्यु आदि वीर लोग उस रणभूमिमें भीमसेनको सब भांतिसे रक्षा करने लगे ॥ (५५-५८)

महाबलवान् भीमसेन गदा धारण करके रणभूमिमें यमराजके समान घोर रूप दिखाई देने लगे ॥ सब ओर गदा ग्रहण करके युद्धमें वह ऐसे भ्रमण करते थे, जैसे शिव जी श्मशानमें नृत्य करते हैं ॥ वज्रके समान इस भारी गदाकी चोटका शब्द होता था और वह यम दण्डके समान दीख पडती थी। पशुओंके नाश करनेके समय जैसे क्रुद्ध हुए रुद्रदेवका पिनाक दीख पडता है, वैसे ही केश, मज्जा और रुधिरसे युक्त भीमसेनकी वह भयङ्कर गदा दिखाई देने लगी ॥ (५९-६२)

जैसे पशुपालक लोग लाठीसे पशुओंकी ताडना करते हैं, वैसे ही भीमसेन गदासे हाथियोंको मारने लगे ॥ तुम्हारी ओरके सब हाथी भीमसेनकी गदा तथा शत्रुओंके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर निज सेनाको मर्दन करते हुए वेगसे भागने लगे ॥ जैसे प्रबल वायु बादलोंको तितर बितर करके उडा

अतिष्ठत्तुमुले भीमः श्मशान इव शूलभृत् ॥ ६५॥ [२७७६]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थदिवसे भीमयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ।

सञ्जय उवाच— हते तस्मिन्गजानीके पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
भीमसेनं घ्नतेत्येवं सर्वसैन्यान्यचोदयत् ॥ १ ॥
ततः सर्वाण्यनीकानि तव पुत्रस्य शासनात् ।
अभ्यद्रवन्भीमसेनं नदन्तं भैरवान्रवान् ॥ २ ॥
त बलौघमपर्यन्तं देवैरपि सुदुःसहम् ।
आपतन्तं सुदुष्पारं समुद्रमिव पर्वणि ॥ ३ ॥
रथनागाश्वकलिल शङ्खदुन्दुभिनादितम् ।
अनन्तरथपादातं नरेन्द्रस्तिमितह्रदम् ॥ ४ ॥
तं भीमसेनः समरे महोदधिमिवाऽपरम् ।
सेनासागरमक्षोभ्यं वेलेव समवारयत् ॥ ५ ॥
तदाश्चर्यमपश्याम पाण्डवस्य महात्मनः ।
भीमसेनस्य समरे राजन्कर्मातिमानुषम् ॥ ६ ॥
उदीर्णान्पार्थिवान्सर्वान्साश्वान्सरथकुञ्जरान् ।
असम्भ्रमं भीमसेनो गदया समवारयत् ॥ ७ ॥

देता है, वैसे ही भीमसेन सब हाथियोंको भगा कर श्मशानवासी रुद्रकी भांति युद्ध-भूमिमें स्थित हुए ॥ (६३-६५)[२७७६]

भीष्मपर्वमें बासठ अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें तिरसठ अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे भारत ! उस सम्पूर्ण हाथियोंकी सेनाका वध होनेपर राजा दुर्योधनने भीमसेनका वध करनेके निमित्त सम्पूर्ण सेनाको आज्ञा दी ॥ रणभूमिमें महाघोर शब्द करनेवाली वह सम्पूर्ण सेना दुर्योधनकी आज्ञासे भीम-सेनकी ओर दौडी॥ भीमसेन देवताओंसे भी न जीतने योग्य, पर्वके दिवस महा भयङ्कर समुद्रकी तरङ्गके समान अनेक रथ, पैदल, हाथी, घोडोंके सहित शंख, ढोल और दुन्दुभीसे युक्त दूसरे समुद्रके समान, धूलिसे पूरित उस महासेनाको ऐसे निवारण करने लगे, जैसे समुद्रके वेगको तट रोकता है ॥ (१—५)

महाराज ! उस समयमें मैंने पाण्डुपुत्र महात्मा भीमसेनका अलौकिक पराक्रम देखा ॥ वह घोडे हाथीसे युक्त सम्पूर्ण राजाओंको गदासे निवारण करने लगे, बलवानोंमें श्रेष्ठ भीमसेन गदासे इस सम्पूर्ण सेनाको निवारण करके देख

स संवार्य बलौघांस्तान्गदया रथिनां वरः ।
अतिष्ठत्तुमुले भीमो गिरिर्मेरुरिवाऽचलः ॥ ८ ॥
तस्मिन्सुतुमुले घोरे काले परमदारुणे ।
भ्रातरश्चैव पुत्राश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ९ ॥
द्रौपदेयाऽभिमन्युश्च शिखण्डी चाऽपराजितः ।
न प्राजहन्भीमसेनं भये जाते महाबलम् ॥ १० ॥
ततः शैक्यायसीं गुर्वीं प्रगृह्य महतीं गदाम् ।
अधावत्तावकान्योधान्दण्डपाणिरिवाऽन्तकः ॥ ११ ॥
पोथयन्रथवृन्दानि वाजिवृन्दानि चाऽभिभूः ।
कर्षयन्रथवृन्दानि बाहुवेगेन पाण्डवः ॥ १२ ॥
विनिघ्नन्व्यचरत्संख्ये युगान्ते कालवद्विभुः ।
ऊरुवेगेन सङ्कर्षन्रथजालानि पाण्डवः ॥ १३ ॥
बलानि सम्ममर्दाशु नड्वलानीव कुञ्जरः ।
मृद्नन्रथेभ्यो रथिनो गजेभ्यो गजयोधिनः ॥ १४ ॥
सादिनश्चाऽश्वपृष्ठेभ्यो भूमौ चाऽपि पदातिनः ।
गदया व्यधमत्सर्वान्वातो वृक्षानिवौजसा ॥ १५ ॥
भीमसेनो महाबाहुस्तव पुत्रस्य वै बले ।

पर्वतकी भांति वहां पर स्थित रहे ॥ उस महा भयङ्कर तुमुल युद्धमें भाई, पुत्र, धृष्टद्युम्न, द्रौपदीके पुत्र लोग, अभिमन्यु और अपराजित शिखण्डी महाबलवान् भीमसेनको भयसे त्याग कर रणभूमिसे पृथक् नहीं हुए। (९-१०)

शत्रुनाशन भीमसेन उन सब वीरोंसे रक्षित होकर लोहे सनी अत्यन्त भारी गदा लेकर दण्डधारी यमराज के समान तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका वध करने लगे। रथ और घोड़ोंको हटाके फेंकते हुए बाहुवेगसे रथसमूहों को आकर्षण करते हुए प्रलयकालकी मृत्यु के समान युद्ध भूमि में घूमने लगे ॥ प्रलयकालकी मृत्युके समान होकर चलते समय जंघाओंसे रथोंके समूहोंको आकर्षण करते हुए सेवालके समान हाथी का तथा योद्धाओंका संहार करने लगे और तुम्हारी सेनाके बीच रथी, गज पति और घुड़सवार तथा पैदल और भीमकी गदासे इस प्रकार मरने लगे जैसे वायुके प्रबल वेगसे वृक्ष टूटके गिर पड़ते हैं ॥ (११-१६)

इनकी गदा उस समय रुधिर, मांस,

साऽपि मज्जावसामांसैः प्रदिग्धा रुधिरेण च ॥ १६ ॥
अदृश्यत महारौद्रा गदा नागाश्वपातनी ।
तत्र तत्र हतैश्चाऽपि मनुष्यगजवाजिभिः ॥ १७ ॥
रणाङ्गणं समभवन्मृत्योरावाससन्निभम् ।
पिनाकमिव रुद्रस्य क्रुद्धस्याऽभिघ्नतः पशून् ॥ १८ ॥
यमदण्डोपमामुग्रामिन्द्राशनिसमस्वनाम् ।
ददृशुर्भीमसेनस्य रौद्रीं विशसनीं गदाम् ॥ १९ ॥
आविद्धयतो गदां तस्य कौन्तेयस्य महात्मनः ।
बभौ रूपं महाघोरं कालस्येव युगक्षये ॥ २० ॥
तं तथा महतीं सेनां द्रावयन्तं पुनः पुनः ।
दृष्ट्वा मृत्युमिवाऽऽयान्तं सर्वे विमनसोऽभवन् ॥ २१ ॥
यतो यतः प्रेक्षते स्म गदामुद्यम्य पाण्डवः ।
तेन तेन स्म दीर्यन्ते सर्वसैन्यानि भारत ॥ २२ ॥
प्रदारयन्तं सैन्यानि बलेनाऽमितविक्रमम् ।
ग्रसमानमनीकानि व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ २३ ॥
तं तथा भीमकर्माणं प्रगृहीत महागदम् ।

मज्जामें युक्त होकर अत्यन्त भयानक रूपमें दिखाई देने लगी ! इधर उधर मरके पडे हुए मनुष्य,हाथी और घोडों-से रणभूमि यमराजके मृत्यु स्थानके समान होगई । भीमसेनकी गदा शत्रुओं का नाश करने वाली, यमदण्डके समान भयङ्कर और इन्द्रके वज्रके समान प्रकाश-मान हुई । उस गदाको सब लोग पशुओं का नाश करने वाले महादेव के पिनाक के समान देखने लगे। (१६—१९)

जिस प्रकार प्रलयकालके समय में यमराजका विकराल रूप हो जाता है, उस महात्मा कुन्तीनन्दन भीमकी भी गदा लेकर भ्रमण करने के समयमें वैसी ही मूर्ति दिखाई देने लगी ॥ उसको हाथमें गदा लिये हुए महा सेनाको छिन्नभिन्न करता हुआ देखकर सब कोई अत्यन्त ही भयसे व्याकुल होने लगे ॥ हे भारत ! उस समय में भीमसेन गदा लेकर सेना में जिस ओर देखते उधरही सब सेना तितर बितर होने लगती थी । (२०—२२)

महाराज! कौरवों के पितामह भीष्म ने भयङ्कर कर्म करनेवाले भीमसेनको सम्पूर्ण सेनाके समूहमें अपराजित और महा भयङ्कर गदा ग्रहण कर के सब

न तत्र कश्चिन्नविषण्ण आसीद्दते राजन्सोमदत्तस्य पुत्रात् ।
स वै समादाय धनुर्महात्मा भूरिश्रवा भारत सौमदत्तिः ॥ ३२ ॥
दृष्ट्वा रथान्स्वान्व्यपनीयमानान्प्रत्युद्ययौ सात्यकिं योद्धुमिच्छन् ३३[२८०९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
सात्यकिभूरिश्रवस्समागमे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

सञ्जय उवाच— ततो भूरिश्रवा राजन्सात्यकिं नवभिः शरैः ।
प्राविध्यदङ्कुशैः क्रुद्धस्तोत्रैरिव महाद्विपम् ॥ १ ॥
कौरवं सात्यकिश्चैव शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अवारयदमेयात्मा सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २ ॥
ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः ।
सौमदत्तिं रणे यत्तः समन्तात्पर्यवारयत् ॥ ३ ॥
तं चैव पाण्डवाः सर्वे सात्यकिं रभसं रणे ।
परिवार्य स्थिताः संख्ये समन्तात्सुमहौजसः ॥ ४ ॥
भीमसेनस्तु संक्रुद्धो गदामुद्यम्य भारत ।
दुर्योधनमुखान्सर्वान्पुत्रांस्ते पर्यवारयत् ॥ ५ ॥

तपते हुए सूर्यके समान तेजस्वी उस महारथ सात्यकिको निवारण करने में समर्थ न हुए। (२९—३१)

हे राजन् ! उस सब सेना के बीच सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवाके अतिरिक्त और कोई भी सात्यकि के सम्मुख न हो सका; वह अपनी ओरके रथियोंको सात्यकिके बाणोंसे तितर बितर होते देख कर प्रचण्ड धनुष धारण कर के सात्यकिसे युद्ध करने के निमित्त आकर खडे हुए। (३२—३३) [२८०९]

भीष्मपर्वमें तिरसठ अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें चौंसठ अध्याय ।

सञ्जय बोले हे राजन् ! अनन्तर भूरिश्रवाने अत्यन्त क्रुद्ध होकर महामत्त हाथी को अंकुशसे प्रहार करनेकी भांति सात्यकिको नौ बाणोंसे प्रहार किया॥ अत्यन्त पराक्रमी सात्यकि भी सब लोगोंके सम्मुख अपने अनेक चोखे बाणोंसे भूरिश्रवाको निवारण करने लगे॥ तिसके अनन्तर राजा दुर्योधन भाइयों के सहित भूरिश्रवाको चारों ओरसे घेर कर उसकी रक्षा करने में प्रवृत्त हुए और महाबलवान पाण्डवोंके पक्षके योद्धा लोग भी सात्यकिको चारों ओर से घेर कर उसकी रक्षानिमित्त खडे हुए॥ (१-४)

भीमसेनने क्रुद्ध हो गदाधारण करके तुम्हारे दुर्योधन आदि सब पुत्रोंको घेर

विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः शरैः कनकभूषणैः ।
नन्दकं च त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥ १५ ॥
तं तु दुर्योधनः षष्ट्या विद्ध्वा भीमं महाबलम् ।
त्रिभिरन्यैः सुनिशितैर्विशोकं प्रत्यविध्यत ॥ १६ ॥
भीमस्य च रणे राजन्धनुश्चिच्छेद भासुरम् ।
मुष्टिदेशे भृशं तीक्ष्णैस्त्रिभिर्भल्लैर्हसन्निव ॥ १७ ॥
समरे प्रेक्ष्य यन्तारं विशोकं तु वृकोदरः ।
पीडितं विशिखैस्तीक्ष्णैस्तव पुत्रेण धन्विना ॥ १८ ॥
असृष्यमाणः संरब्धो धनुर्दिव्यं परामृशत् ।
पुत्रस्य ते महाराज वधार्थं भरतर्षभ ॥ १९ ॥
समादधत्सुसंक्रुद्धः क्षुरप्रं लोमवाहिनम् ।
तेन चिच्छेद नृपतेर्भीमः कार्मुकमुत्तमम् ॥ २० ॥
सोऽपविद्ध्य धनुश्छिन्नं पुत्रस्ते क्रोधमूर्च्छितः ।
अन्यत्कार्मुकमादत्त सत्वरं वेगवत्तरम् ॥ २१ ॥
सन्दधे विशिखं घोरं कालमृत्युसमप्रभम् ।
तेनाऽजघान संक्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे ॥ २२ ॥
स गाढविद्धो व्यथितः स्यन्दनोपस्थ आविशत् ।

के सहित सावधान होके चलाओ (८-१४)

महाराज ! भीमने सारथीसे ऐसा कह कर सुवर्णभूषित अनेक तीक्ष्ण वाणोंसे दुर्योधनको विद्ध किया। इसके अनन्तर नन्दकके दोनों स्तनोंके बीचमें तीन वाणोंसे प्रहार किया। तब दुर्योधनने महाबलवान् भीमको साठ वाणोंसे विद्ध करके फिर चोखे तीन वाणोंसे उनके सारथी विशोकको विद्ध किया॥ और हंसते हंसते तीन भल्ल वाणोंसे भीमके धनुषकी मुष्टि काट डाली। (१४-१७)

तब भीम निज सारथी विशोकको धनुर्द्धारी दुर्योधनके चोखे वाणोंसे पीडित देखकर क्रुद्ध होके दुर्योधनके वध करने के निमित्त दिव्य धनुष और रोएं को खडे करनेवाले क्षुरप्र अस्त्र ग्रहण करके राजा दुर्योधन के धनुषकी मुष्टि काट डाली। (१८-२०)

दुर्योधनने क्रोधमें मूर्च्छित होकर कटा धनुष त्याग कर शीघ्रता पूर्वक एक वेगवान् धनुष ग्रहण करके यमदण्डके समान एक वाण धनुष पर चढा कर भीमसेनके दोनों स्तनोंका मध्यस्थल विद्ध किया॥ भीमसेन उस वाणसे अत्यन्त ही

स निषण्णो रथोपस्थे मूर्च्छामभिजगाम ह ॥ २३ ॥
तं दृष्ट्वा व्यथितं भीममभिमन्युपुरोगमाः ।
नाऽमृष्यन्त महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः॥ २४ ॥
ततस्तु तुमुलां वृष्टिं शस्त्राणां तिग्मतेजसाम् ।
पातयामासुरव्यग्राः पुत्रस्य तव मूर्धनि ॥ २५ ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां भीमसेनो महाबलः ।
दुर्योधनं त्रिभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः॥ २६ ॥
शल्यं च पञ्चविंशत्या शरैर्विव्याध पाण्डवः ।
रुक्मपुङ्खैर्महेष्वासः स विद्धो व्यपयाद्रणात् ॥ २७ ॥
प्रत्युद्ययुस्ततो भीमं तव पुत्राश्चतुर्दश ।
सेनापतिः सुषेणश्च जलसन्धः सुलोचनः ॥ २८ ॥
उग्रो भीमरथो भीमो वीरबाहुरलोलुपः ।
दुर्मुखो दुष्प्रधर्षश्च विवित्सुर्विकटः समः ॥ २९ ॥
विसृजन्तो बहून्बाणान्क्रोधसंरक्तलोचनाः ।
भीमसेनमभिद्रुत्य विव्यधुः सहिता भृशम् ॥ ३० ॥
पुत्रांस्तु तव सम्प्रेक्ष्य भीमसेनो महाबलः ।
सृक्किणी विलिहन्वीरः पशुमध्ये यथा वृकः ॥ ३१ ॥

[illegible] पीड़ित और मूर्छित होकर रथपर बैठ गये। (२१-२३)

भीमसेनको मूर्छित देख कर अभिमन्यु आदि पाण्डवोंके महावीर महारथ [illegible] सह न सके। फिर दुर्योधनके ऊपर अत्यन्त [illegible] बाणोंकी वर्षा करने लगे। महाबलवान् भीमसेन भी [illegible] सावधान हो गये, उन्होंने पहिले तीन बाणोंसे दुर्योधनको विद्ध करके फिर पांच बाणोंसे विद्ध किया। (२४-२६)

तब पाण्डुपुत्रने [illegible] [illegible] विद्ध किया। [illegible] बाणोंसे पीड़ित होके युद्धसे पृथक हुए। महाराज! इसके अनन्तर सेनापति, सुषेण, जलसन्ध, सुलोचन, उग्र, भीमरथ, भीम, वीरबाहु, अलोलुप, दुर्मुख, दुष्प्रधर्ष, विवित्सु, विकट और सम ये तुम्हारे चौदह पुत्र इकट्ठे होकर क्रोधसे लाल नेत्र कर भीमसेनके समीप जाकर उनके ऊपर अनेक बाणोंकी वर्षा करके उन्हें दृढ रूपसे विद्ध करने लगे। (२७-३०)

महाबाहु महावीर भीमसेन तुम्हारे पुत्रोंको इस प्रकारसे बाण चलाते देख कर उनकी ओर ऐसे दौड़े जैसे पशुओं

अभिपत्य महाबाहुर्गरुत्मानिव वेगितः ।
सेनापतेः क्षुरप्रेण शिरश्चिच्छेद पाण्डवः ॥ ३२ ॥
सम्प्रहस्य च हृष्टात्मा त्रिभिर्बाणैर्महाभुजः ।
जलसन्धं विनिर्भिद्य सोऽनयद्यमसादनम् ॥ ३३ ॥
सुषेणं च ततो हत्वा प्रेषयामास मृत्यवे ।
उग्रस्य स शिरस्त्राणं शिरश्चन्द्रोपमं भुवि ॥ ३४ ॥
पातयामास भल्लेन कुण्डलाभ्यां विभूषितम् ।
वीरबाहुं च सप्तत्या साश्वकेतुं ससारथिम् ॥ ३५ ॥
निनाय समरे वीरः परलोकाय पाण्डवः ।
भीमभीमरथौ चोभौ भीमसेनो हसन्निव ॥ ३६ ॥
पुत्रौ ते दुर्मदौ राजन्ननयद्यमसादनम् ।
ततः सुलोचनं भीमः क्षुरप्रेण महामृधे ॥ ३७ ॥
मिषतां सर्वसैन्यानामनयद्यमसादनम् ।
पुत्रास्तु तव तं दृष्ट्वा भीमसेनपराक्रमम् ॥ ३८ ॥
शेषा येऽन्ये भवंस्तत्र ते भीमस्य भयार्दिताः ।
विप्रद्रुता दिशो राजन्वध्यमाना महात्मना ॥ ३९ ॥
ततोऽब्रवीच्छान्तनवः सर्वानेव महारथान् ।

की ओर भेडिया दौडता है ॥ उनके सम्मुख पहुचके क्षुरप्र अस्त्रसे सेनापतिका सिर काट डाला ॥ फिर हंसके तीन बाणोंसे जलसन्धका संहार करके यमपुरी में भेज दिया ॥ और सुषेणका भी वध करके मृत्युके हवाले किया; उग्रका शिरस्त्राणके सहित दोनो कुण्डलोंसे शोभायमान चन्द्रमाके समान मस्तकको भल्लास्त्रसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया । (३०–३५)

वीरबाहुको घोडे, ध्वज और सारथी के सहित सत्तर बाणोंसे मार डाला, वेगशील भीमरथ और भीम दोनों भाइयोंको मानो हंसते हंसते मारकर यमपुरीमें भेज दिया । अनन्तर भीमसेनने तेरे पुत्र सुलोचनको उस महायुद्ध में सर्व सेनाके सम्मुख क्षुरप्रबाणसे यमपुरीमें भेज दिया ॥ इनसे भिन्न और जो सब तुम्हारे पुत्र वहांपर बाकी थे, वे सब उस समय भीमसेन का पराक्रम देख उसके बाणोंसे अत्यन्त ही विद्र होकर इधर उधर भाग गये ॥ (३५-३९)

अनन्तर शान्तनुनन्दन भीष्मने सब महारथियोंसे कहा हे महारथी लोगो !

एष भीमो रणे क्रुद्धो धार्तराष्ट्रान्महारथान् ॥ ४० ॥
यथाप्राग्र्यान्यथाज्येष्ठान्यथाशूरांश्च सङ्गतान् ।
निपातयत्युग्रधन्वा तं प्रगृह्णीत मा चिरम् ॥ ४१ ॥
एवमुक्तास्ततः सर्वे धार्तराष्ट्रस्य सैनिकाः ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धा भीमसेनं महाबलम् ॥ ४२ ॥
भगदत्तः प्रभिन्नेन कुञ्जरेण विशाम्पते ।
अभ्ययात्सहसा तत्र यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥ ४३ ॥
आपतन्नेव च रणे भीमसेनं शिलीमुखैः ।
अदृश्यं समरे चक्रे जीमूत इव भास्करम् ॥ ४४ ॥
अभिमन्युमुखास्तत्तु नाऽमृष्यन्त महारथाः ।
भीमस्याऽऽच्छादनं संख्ये स्वबाहुबलमाश्रिताः ॥४५॥
त एनं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयन् ।
गजं च शरवृष्ट्या तु बिभिदुस्ते समन्ततः ॥ ४६ ॥
स शस्त्रवृष्ट्याऽभिहतः समस्तैस्तैर्महारथैः ।
प्राग्ज्योतिषगजो राजन्नानालिङ्गैः सुतेजनैः ॥ ४७ ॥
सञ्जातरुधिरोत्पीडः प्रेक्षणीयोऽभवद्रणे ।
गभस्तिभिरिवाऽर्कस्य संस्यूतो जलदो महान् ॥ ४८ ॥

[illegible] भीमसेन [illegible] ([illegible])

[illegible]

बाणोंसे ऐसा छिपा दिया, जैसे मेघ सूर्यको छिपा देता है। (४२–४४)

अभिमन्यु आदि महारथ योद्धाओंने भीमको बाणोंसे छिपना न सहकर चारों ओरसे बाणोंकी वर्षा करके भगदत्त और उनके हाथीको अस्त्रोंसे छिपा दिया। उस प्राग्ज्योतिष गजराज [illegible] ([illegible])

सञ्चोदितो मदस्रावी भगदत्तेन वारणः ।
अभ्यधावत तान्सर्वान्कालोत्सृष्ट इवाऽन्तकः ॥ ४९ ॥
द्विगुणं जवमास्थाय कम्पयंश्चरणैर्महीम् ।
तस्य तत्सुमहद्रूपं दृष्ट्वा सर्वे महारथाः ॥ ५० ॥
असह्यं मन्यमानाश्च नाऽतिप्रमनसोऽभवन् ।
ततस्तु नृपतिः क्रुद्धो भीमसेनं स्तनान्तरे ॥ ५१ ॥
आजघान महाराज शरेणाऽऽनतपर्वणा ।
सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तेन राज्ञा महारथः ॥ ५२ ॥
मूर्च्छयाऽभिपरीतात्मा ध्वजयष्टिं समाश्रयत ।
तांस्तु भीतान्समालक्ष्य भीमसेनं च मूर्च्छितम् ॥ ५३ ॥
ननाद बलवन्नादं भगदत्तः प्रतापवान् ।
ततो घटोत्कचो राजन्प्रेक्ष्य भीमं तथा गतम् ॥ ५४ ॥
संक्रुद्धो राक्षसो घोरस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ।
स कृत्वा दारुणां मायां भीरूणां भयवर्धिनीम् ॥५५॥
अदृश्यत निमेषार्धाद्धोररूपं समास्थितः ।
ऐरावतं समारूढः स वै मायाकृतं स्वयम् ॥ ५६ ॥
तस्य चाऽन्येऽपि दिङ्नागा बभूवुरनुयायिनः ।

वह मदचूता हुआ मतवारा हाथी भगदत्तके चलानेपर द्विगुण वेगसे चलकर निज पांवसे पृथ्वीको कंपाता हुआ काल प्रेरित यमराजके समान उन सब योद्धा ओंकी ओर दौड़ा। सम्पूर्ण महारथ योद्धा उस महा गजराजका अत्यन्त भयानक रूप देखकर भयभीत हो गये॥ (४९-५१)

राजा भगदत्तने क्रुद्ध होकर नतपर्व बाणोंसे भीमसेनके दोनों स्तनोंके बीचमें प्रहार किया। महा धनुधारी महारथ भीमसेन राजा भगदत्तके बाणसे अत्यन्त विद्ध और मूर्च्छित होकर रथके ध्वजाके दण्डको पकडकर स्थित हुए। प्रतापी भगदत्तने उन सब महारथ योद्धाओंको भयभीत और भीमसेनको मूर्च्छित देख कर बलपूर्वक सिंहनाद किया। (५१-५४)

हे राजन्! इसके अनन्तर महा भयानक राक्षस घटोत्कच भीमसेनको मूर्च्छित देखकर क्रुद्ध होके उस ही स्थानपर अन्तर्हित हुआ और थोडे ही समयके अनन्तर कायरोंके भयको बढानेवाली माया उत्पन्न करके मायाके बने हुए ऐरावतके ऊपर चढके भयङ्कर मूर्त्ति धारण करके सबके सम्मुख ही प्रकट

अञ्जनो वामनश्चैव महापद्मश्च सुप्रभः ॥ ५७ ॥
त्रय एते महानागा राक्षसैः समधिष्ठिताः ।
महाकायास्त्रिधा राजन्प्रस्रवन्तो मदं बहु ॥ ५८ ॥
तेजोवीर्यबलोपेता महाबलपराक्रमाः ।
घटोत्कचस्तु स्वं नागं चोदयामास तं तदा ॥ ५९ ॥
सगजं भगदत्तं तु हन्तुकामः परन्तपः ।
ते चाऽन्ये चोदिता नागा राक्षसैस्तैर्महाबलैः ॥ ६० ॥
परिपेतुः सुसंरब्धाश्चतुर्दंष्ट्राश्चतुर्दिशम् ।
भगदत्तस्य तं नागं विषाणैरभ्यपीडयन् ॥ ६१ ॥
स पीड्यमानस्तैर्नागैर्वेदनार्तः शराहतः ।
अनदत्सुमहानादमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ ६२ ॥
तस्य तं नदतो नादं सुघोरं भीमनिःस्वनम् ।
श्रुत्वा भीष्मोऽब्रवीद्द्रोणं राजानं च सुयोधनम् ॥६३॥
एष युध्यति संग्रामे हैडिम्बेन दुरात्मना ।
भगदत्तो महेष्वासः कृच्छ्रे च परिवर्तते ॥ ६४ ॥
राक्षसश्च महाकायः स च राजाऽतिकोपनः ।
एतौ समेतौ समरे कालमृत्युसमावुभौ ॥ ६५ ॥

श्रूयते चैव हृष्टानां पाण्डवानां महास्वनः ।
हस्तिनश्चैव सुमहान्भीतस्य रुदितध्वनिः ॥ ६६ ॥
तत्र गच्छाम भद्रं वो राजानं परिरक्षितुम् ।
अरक्ष्यमाणः समरे क्षिप्रं प्राणान्विमोक्ष्यति ॥ ६७ ॥
ते त्वरध्वं महावीर्याः किं चिरेण प्रयामहे ।
महान्हि वर्तते रौद्रः संग्रामो लोमहर्षणः ॥ ६८ ॥
भक्तश्च कुलपुत्रश्च शूरश्च पृतनापतिः ।
युक्तं तस्य परित्राणं कर्तुमस्माभिरच्युत ॥ ६९ ॥
भीष्मस्य तद्वचः श्रुत्वा सर्व एव महारथाः ।
द्रोणभीष्मौ पुरस्कृत्य भगदत्तपरीप्सया ॥ ७० ॥
उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र सोऽभवत् ।
तान्प्रयातान्समालोक्य युधिष्ठिरपुरोगमाः ॥ ७१ ॥
पञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं पृष्ठतोऽनुययुः परान् ।
तान्यनीकान्यथालोक्य राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ ७२ ॥
ननाद सुमहानादं विस्फोटमशनेरिव ।
तस्य तं निनदं श्रुत्वा दृष्ट्वा नागांश्च युध्यतः ॥ ७३ ॥

एक दूसरेके मृत्यु स्वरूप है॥ (६३-६५)

यह देखो, पाण्डवोंकी हर्षसूचक महाध्वनि और भयसे विकल भगदत्तके हाथीका अत्यन्त ही आर्त्तनाद सुनाई दे रहा है॥ इससे तुम लोगोंका मङ्गल हो, चलो हम सब लोग भगदत्तकी रक्षा करें; इस समयमें रक्षा न करनेसे वह शीघ्र ही युद्धमें प्राण त्याग करेंगे॥ हे महाबली महारथगण! तुम लोग शीघ्र चलो, विलम्ब मत करो; उन दोनोंका अत्यन्त दारुण रोवों को खडा करनेवाला संग्राम हो रहा है॥ हे अक्षय पराक्रमी वीर लोग! राजा भगदत्त उत्तम कुलकी सन्तान, शूरवीर और सेनापति है; उनका परित्राण करना हम लोगोंका अत्यन्त ही कर्त्तव्य कार्य है॥ (६६-६९)

भीष्मका यह वचन सुनकर द्रोणाचार्य आदि सम्पूर्ण राजा लोग भगदत्त की रक्षाके निमित्त शीघ्रताके सहित उनकी ओर गमन करने लगे। युधिष्ठिर की ओरके पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा उन सब महारथियोंको घटोत्कचकी ओर जाता हुआ देखकर उनके पीछे दौडे। प्रतापी राक्षसेन्द्र घटोत्कचने उस सब सेनाको देखकर बडे जोरसे भयानक शब्द करके आकाशमण्डलको पूरित

भीष्मः शान्तनवो भूयो भारद्वाजमभाषत ।
न रोचते मे संग्रामो हैडिम्बेन दुरात्मना ॥ ७४ ॥
बलवीर्यसमाविष्टः ससहायश्च साम्प्रतम् ।
नैष शक्यो युधा जेतुमपि वज्रभृता स्वयम् ॥ ७५ ॥
लब्धलक्ष्यः प्रहारी च वयं च श्रान्तवाहनाः ।
पञ्चालैः पाण्डवेयैश्च दिवसं क्षतविक्षताः ॥ ७६ ॥
तन्न मे रोचते युद्धं पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
घुष्यतामवहारोऽद्य श्वो योत्स्यामः परैः सह ॥ ७७ ॥
पितामहवचः श्रुत्वा तथा चक्रुः स्म कौरवाः ।
उपायेनापयानं ते घटोत्कचभयार्दिताः ॥ ७८ ॥
कौरवेषु निवृत्तेषु पाण्डवा जितकाशिनः ।
सिंहनादमभृशं चक्रुः शङ्खान्दध्मुश्च भारत ॥ ७९ ॥
एवं तदभवद्युद्धं दिवसं भरतर्षभ ।
पाण्डवानां कुरूणां च पुरस्कृत्य घटोत्कचम् ॥ ८० ॥
कौरवास्तु ततो राजन्प्रययुः शिबिरं स्वकम् ।

व्रीडमाना निशाकाले पाण्डवेयैः पराजिताः ॥ ८१ ॥
शरविक्षतगात्रास्तु पाण्डुपुत्रा महारथाः ।
युद्धे सुमनसो भूत्वा जग्मुः स्वशिविरं प्रति ॥ ८२ ॥
पुरस्कृत्य महाराज भीमसेनघटोत्कचौ ।
पूजयन्तस्तदाऽन्योन्यं मुदा परमया युताः ॥ ८३ ॥
नदन्तो विविधान्नादांस्तूर्यस्वनविमिश्रितान् ।
सिंहनादांश्च कुर्वन्तो विमिश्रान्शङ्खनिःस्वनैः ॥ ८४ ॥
विनदन्तो महात्मानः कम्पयन्तश्च मेदिनीम् ।
घट्टयन्तश्च मर्माणि तव पुत्रस्य मारिष ॥ ८५ ॥
प्रयाताः शिबिरायैव निशाकाले परन्तप ।
दुर्योधनस्तु नृपतिर्दीनो भ्रातृवधेन च ॥ ८६ ॥
मुहूर्तं चिन्तयामास बाष्पशोकसमाकुलः ।
ततः कृत्वा विधिं सर्वं शिबिरस्य यथाविधि ॥
प्रदध्यौ शोकसंतप्तो भ्रातृव्यसनकार्शितः ॥ ८७ ॥ [२८९६]

इति श्रीमहाभारते० वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि चतुर्थदिवसावहारे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच– भयं मे सुमहज्जातं विस्मयश्चैव सञ्जय ।
श्रुत्वा पाण्डुकुमाराणां कर्म देवैः सुदुष्करम् ॥ १ ॥

इसी प्रकारसे युद्ध हुआ था॥ (७८-८०)

पाण्डव लोगोंसे पराजित और लज्जित होकर कौरव लोगोंने अपने शिविरोंमें प्रवेश किया ॥ अस्त्रोंसे क्षतविक्षत शरीर महारथ पाण्डव लोग भीमसेन और घटोत्कचकी प्रशंसा करते हुए उन्हें आगे करके प्रसन्नतापूर्वक अपने अपने शिविरोंमें जाने लगे ॥ (८१-८३)

उन लोगोंने अत्यन्त आनन्दित होकर दुर्योधन के मर्मभेदक शङ्ख, नफीरी आदि विविध बाजोंके सङ्ग सिंहनाद करके पृथ्वीको कंपाते हुए सन्ध्याके समय अपने शिविरोंमें प्रवेश किया । राजा दुर्योधनने भाइयोंके वधसे दीन चित्त से शोकित होकर मुहूर्त्त भर चिन्ता की; तिसके अनन्तर शिविरके सब कार्योंका यथाविधिसे विधान करके फिर भाइयों के शोकसे दुःखित होकर चिन्ता करने लगे ॥ (८४–८७) [२८९६]

भीष्मपर्वमें चौंसठ अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें पैंसठ अध्याय ।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! पाण्डु पुत्रोंको देवताओंसे भी दुस्साध्य कर्म करते हुए सुन कर, मुझे अत्यन्त ही

पुत्राणां च पराभावं श्रुत्वा सञ्जय सर्वशः ।
चिन्ता मे महती सूत भविष्यति कथं त्विति ॥ २ ॥
ध्रुवं विदुरवाक्यानि धक्ष्यन्ति हृदयं मम ।
यथा हि दृश्यते सर्वं दैवयोगेन सञ्जय ॥ ३ ॥
यत्र भीष्मप्रमुखान्सर्वान्शस्त्रज्ञान्योधसत्तमान् ।
पाण्डवानामनीकेषु योधयन्ति प्रहारिणः ॥ ४ ॥
केनावध्या महात्मानः पाण्डुपुत्रा महाबलाः ।
केन दत्तवरास्तात किं वा ज्ञानं विदन्ति ते ॥ ५ ॥
येन क्षयं न गच्छन्ति दिवि तारागणा इव ।
पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं सैन्यं तु पाण्डवैः ॥ ६ ॥
मय्येव दण्डः पतति दैवात्परमदारुणः ।
यथाऽवध्याः पाण्डुसुता यथा वध्याश्च मे सुताः ॥ ७ ॥
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व यथातत्त्वेन सञ्जय ।
न हि पारं प्रपश्यामि दुःखस्यास्य कथञ्चन ॥ ८ ॥
समुद्रस्येव महतो भुजाभ्यां प्रतरन्नरः ।

पुत्राणां व्यसनं मन्ये ध्रुवं प्राप्तं सुदारुणम् ॥ ९ ॥
घातयिष्यति मे सर्वान्पुत्रान्भीमो न संशयः ।
नहि पश्यामि तं वीरं यो मे रक्षेत्सुतान्रणे ॥ १० ॥
ध्रुवं विनाशः सम्प्राप्तः पुत्राणां मम सञ्जय ।
तस्मान्मे कारणं सूत शक्तिं चैव विशेषतः ॥ ११ ॥
पृच्छतो वै यथातत्त्वं सर्वमाख्यातुमर्हसि ।
दुर्योधनश्च यच्चक्रे दृष्ट्वा स्वान्विमुखान्रणे ॥ १२ ॥
भीष्मद्रोणौ कृपश्चैव सौबलश्च जयद्रथः ।
द्रौणिर्वाऽपि महेष्वासो विकर्णो वा महाबलः ॥ १३ ॥
निश्चयो वाऽपि कस्तेषां तदा ह्यासीन्महात्मनाम् ।
विमुखेषु महाप्राज्ञ मम पुत्रेषु सञ्जय ॥ १४ ॥
सञ्जय उवाच— शृणु राजन्नवहितः श्रुत्वा चैवाऽवधारय ।
नैव मन्त्रकृतं किञ्चिन्नैव मायां तथाविधाम् ॥ १५ ॥
न वै विभीषिकां काञ्चिद्राजन्कुर्वन्ति पाण्डवाः ।
युध्यन्ति ते यथान्यायं शक्तिमन्तश्च संयुगे ॥ १६ ॥

महा समुद्र पार होनेके समान किसी प्रकारसेभी इस दुःख सागरसे पार होनेका उपाय नहीं देखता हूं। मैं निश्चय ही अपने पुत्रोंमें महा दारुण व्यसनको उपस्थित हुआ समझता हूं ॥ भीम मेरे सब पुत्रोंका संहार करेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे सञ्जय ! मैं ऐसा वीर किसीको भी नहीं देखता हूं कि युद्धमें मेरे पुत्रोंकी रक्षा कर सके; इससे मेरे पुत्रोंका निस्सन्देह विनाश होगा। ८-११

हे सञ्जय ! मैं तुमसे यह पूछता हूं, कि पाण्डवोंके जय और मेरे पुत्रोंके पराजयके विषयमें युक्ति युक्त कारण क्या है ? वह तुम मेरे निकट यथार्थ-रूपसे वर्णन करो और दुर्योधन, भीष्म, शकुनि, जयद्रथ, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा विकर्ण आदि सब महा बलवान् वीर, महा धनुर्द्धर योद्धाओंने युद्धमें विमुख होकर क्या किया ? और मेरे पुत्रोंने युद्धमें पराजित होकर उस समयमें क्या निश्चय किया ? (११-१४)

सञ्जय बोले, हे राजन् ! चित्त लगा कर सुनिये और निश्चय कीजिये। पाण्डव लोगोंने न तो कुछ मन्त्र प्रयोग किया, न कुछ मायाका कार्य ही जानते हैं और न कुछ इन्द्रजाल वा बाजीगरी ही युद्धमें उत्पन्न करते हैं। वह लोग पराक्रमी हैं न्यायके अनुसार युद्ध यथा

तथा मया चाऽप्यसकृद्वार्यमाणो न बुध्यसे ॥ २५ ॥
वाक्यं हितं च पथ्यं च मर्त्याः पथ्यमिवौषधम् ।
पुत्राणां मतमाज्ञाय जितान्मन्यासि पाण्डवान् ॥ २६ ॥
शृणु भूयो यथातत्त्वं यन्मां त्वं परिपृच्छसि ।
कारणं भरतश्रेष्ठ पाण्डवानां जयं प्रति ॥ २७ ॥
तत्तेऽहं कथयिष्यामि यथाश्रुतमरिन्दम ।
दुर्योधनेन सम्पृष्ट एतमर्थं पितामहः ॥ २८ ॥
दृष्ट्वा भ्रातॄन्रणे सर्वान्निर्जितांस्तु महारथान् ।
शोकसम्मूढहृदयो निशाकाले स्म कौरवः ॥ २९ ॥
पितामहं महाप्राज्ञं विनयेनोपगम्य ह ।
यदब्रवीत्सुतस्तेऽसौ तन्मे शृणु जनेश्वर ॥ ३० ॥
दुर्योधन उवाच– द्रोणश्च त्वं च शल्यश्च कृपो द्रौणिस्तथैव च ।
कृतवर्मा च हार्दिक्यः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ ३१ ॥
भूरिश्रवा विकर्णश्च भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ॥ ३२ ॥

द्रोणाचार्यके निवारण करने पर भी जब तुमने युद्धका परिणाम नहीं समझा, मैंने भी तुम्हें यथार्थ हितके वचनोंसे निवारण किया, परन्तु जैसे रोगी पुरुष पथ्य और औषधि नहीं ग्रहण करता है, वैसे ही तुमने भी मेरे कहे हुए उन हितके वचनोंको नहीं ग्रहण किया ; पुत्रोंके मतमें सहमत होके ही पाण्डवोंको पराजित समझ लिया था। (२५–२६)

हे महाराज ! तुमने पाण्डवोंके जयके विषयमें मुख्य कारण जो मुझसे पूछा, उसे मैं फिर तुमसे कहता हूं ॥ तुम भली भांति श्रवण करो ! यही विषय दुर्योधनसे पितामह भीष्मसे पूछा था, उन्होंने दुर्योधनसे जो कुछ कहा, वह मैं तुम्हारे समीप वर्णन करता हूं। (२७-२८)

हे प्रजानाथ ! रात्रिके समय राजा दुर्योधन अत्यन्त पराक्रमी भाइयोंको युद्धमें पराजित देखकर शोकितचित्तसे महा बुद्धिमान पितामह भीष्मके समीप जाकर विनयपूर्वक यह वचन बोले। (२९–३०)

हे पितामह ! तुम, पराक्रमी द्रोणाचार्य, शल्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, हार्दिक्य, कृतवर्मा, काम्बोजराज, सुदक्षिण, भूरिश्रवा, भगदत्त और वि आदि आप सब लोग महारथ

नाऽस्ति लोकेषु तद्भूतं भविता नो भविष्यति ।
यो जयेत्पाण्डवान्सर्वान्पालिताञ्छार्ङ्गधन्वना ॥ ४० ॥
यत्तु मे कथितं तात मुनिभिर्भावितात्मभिः ।
पुराणगीतं धर्मज्ञ तच्छृणुष्व यथा तथम् ॥ ४१ ॥
पुरा किल सुराः सर्वे ऋषयश्च समागताः ।
पितामहमुपासेदुः पर्वते गन्धमादने ॥ ४२ ॥
तेषां मध्ये समासीनः प्रजापतिरपश्यत ।
विमानं प्रज्वलद्भासा स्थितं प्रवरमम्बरे ॥ ४३ ॥
ध्यानेनाऽऽवेद्य तद्ब्रह्मा कृत्वा च नियतोऽञ्जलिम् ।
नमश्चकार हृष्टात्मा पुरुषं परमेश्वरम् ॥ ४४ ॥
ऋषयस्त्वथ देवाश्च दृष्ट्वा ब्रह्माणमुत्थितम् ।
स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पश्यन्तो महदद्भुतम् ॥ ४५ ॥
यथावच्च तमभ्यर्च्य ब्रह्मा ब्रह्मविदां वरः ।
जगाद जगतः स्रष्टा परं परमधर्मवित् ॥ ४६ ॥
विश्वावसुर्विश्वमूर्तिर्विश्वेशो विष्वक्सेनो विश्वकर्मा वशी च ।
विश्वेश्वरो वासुदेवोऽसि तस्माद्योगात्मानं दैवतं त्वामुपैमि ॥४७॥

करता हूं उसे तुम सुनो॥ कृष्णसे रक्षित पाण्डवोंको कोई युद्धमें पराजित करे, ऐसा पुरुष इस लोकके बीचमें कोई भी नहीं है, पहिले न हुआ और न भविष्य हीमें होगा॥ हे पुत्र! धर्म जाननेवाले महात्मा मुनियोंने इस पुरानी कथाको जिस भांति मेरे समीप वर्णन किया था, उसे मैं ज्योंकी त्यों तुमसे कहता हूं॥ (३९-४१)

पहिले समयमें सब ऋषि और देवता लोग गन्धमादन पर्वतपर जाकर ब्रह्माके समीप विराजमान हुए॥ उन सबके बीचमें बैठे हुए प्रजापति ब्रह्माने आकाश में प्रकाशमान एक उत्तम विमान देखा॥ उन्होंने विचार करके उस विमान में विराजमान परमेश्वरको जानकर स्थिर हो दोनों हाथ जोडके नमस्कार किया। ऋषि और सब देवता लोग इस महा अद्भुत व्यापार और ब्रह्माको उठता हुआ देखकर हाथ जोडके खडे होगये॥ संसारके रचनेवाले परम धर्मके मर्मको जाननेवाले प्रजापति ब्रह्मा उन परम देव परमेश्वरकी पूजा करके उनकी स्तुति करने लगे॥ (४२-४६)

हे देवेश! तुम विश्वावसु, विश्वकी मूर्ति, जगत्के स्वामी, जगत्के पालन

गुह्यात्मन्सर्वयोगात्मन्स्फुटसम्भूत सम्भव ।
भूताद्य लोकतत्त्वेश जय भूतविभावन ॥ ५५ ॥
आत्मयोने महाभाग कल्पसङ्क्षेपतत्पर ।
उद्भावन मनोभाव जय ब्रह्म जयप्रिय ॥ ५६ ॥
निसर्गसर्गनिरत कामेश परमेश्वर ।
अमृतोद्भव सद्भाव मुक्तात्मन्विजयप्रद ॥ ५७ ॥
प्रजापतिपते देव पद्मनाभ महाबल ।
आत्मभूत महाभूत सत्वात्मन् जय सर्वदा ॥ ५८ ॥
पादौ तव धरा देवी दिशो बाहू दिवं शिरः ।
मूर्तिस्तेऽहं सुराः कायश्चन्द्रादित्यौ च चक्षुषी ॥ ५९ ॥
बलं तपश्च सत्यं च कर्मधर्मात्मकं तव ।
तेजोऽग्निः पवनः श्वास आपस्ते स्वेदसम्भवाः॥ ६० ॥
अश्विनौ श्रवणौ नित्यं देवी जिह्वा सरस्वती ।
वेदाः संस्कारनिष्ठा हि त्वयीदं जगदाश्रितम् ॥ ६१ ॥
न संख्यानं परीमाणं न तेजो न पराक्रमम् ।

अनन्त ! हे विदित ! हे ब्रह्मन् ! हे नित्य ! हे भूतभावन ! हे कृतकार्य ! हे धर्मज्ञ ! हे विजयावह ! ॥ हे गुह्यात्मन् ! हे सर्वयोगात्मन् ! हे स्फुट सम्भूत ! हे संभव ! हे भूताद्य ! हे लोकतत्त्वेश ! हे भूतविभावन ! तुम्हारी जय हो ॥ (५३-५५)

हे आत्मयोने ! हे महाभाग ! हे कल्प-संक्षेप तत्पर ! हे उद्भावन ! हे मनोभाव ! हे ब्रह्म ! हे प्रिय ! तुम्हारी जय हो ॥ हे नैसर्गिक-सृष्टि-निरत ! हे कामेश ! हे परमेश्वर ! हे अमृतोत्पादक ! हे सद्भाव ! हे मुक्तात्मन् ! हे विजय-प्रद ! हे प्रजापतिके स्वामी ! हे देव ! हे पद्मनाभ ! हे महाबल ! हे आत्मभूत ! हे महाभूत ! हे सत्त्वात्मन् ! तुम्हारी सर्वदा जय हो । (५६-५८)

पृथ्वी तुम्हारा चरण, सब दिशा तुम्हारी भुजा, अन्तरिक्ष तुम्हारा सिर, मैं तुम्हारी मूर्त्ति, सब देवता तुम्हारे शरीर, सूर्य चन्द्रमा तुम्हारे नेत्र, धर्म कर्मका मूल सत्य और तप तुम्हारा बल है; अग्नि तुम्हारा तेज, वायु तुम्हारा श्वास, जल तुम्हारे शरीरका पसीना, दोनों अश्विनीकुमार तुम्हारे दोनों कान हैं; सरस्वती देवी तुम्हारी जिह्वा, वेद तुम्हारी संस्कारनिष्ठा और यह सम्पूर्ण जगत् तुम्हारे ही आसरेमे विराजमान है । (५९-६१)

हे योगेश ! हम सब तुम्हारी संख्या

कृष्ण त्वमात्मनाऽस्राक्षीः प्रद्युम्नं चाऽऽत्मसम्भवम् ॥७० ॥
प्रद्युम्नादनिरुद्धं त्वं यं विदुर्विष्णुमव्ययम् ।
अनिरुद्धोऽसृजन्मां वै ब्रह्माणं लोकधारिणम् ॥ ७१ ॥
वासुदेवमयः सोऽहं त्वयैवाऽस्मि विनिर्मितः ।
विभज्य भागशोऽऽत्मानं व्रज मानुषतां विभो ॥ ७२ ॥
तत्राऽसुरवधं कृत्वा सर्वलोकसुखाय वै ।
धर्मं प्राप्य यशः प्राप्य योगं प्राप्स्यासि तत्त्वतः ॥ ७३ ॥
त्वां हि ब्रह्मर्षयो लोके देवाश्चाऽमितविक्रम ।
तैस्तैर्हि नामभिर्युक्ता गायन्ति परमात्मकम् ॥ ७४ ॥
स्थिताश्च सर्वे त्वयि भूतसङ्घाः कृत्वाऽऽश्रयं त्वां वरदं सुबाहो ।
अनादिमध्यान्तमपारयोगं लोकस्य सेतुं प्रवदन्ति विप्राः ॥७५॥ [२०७१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि विश्वोपाख्याने पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

भीष्म उवाच— ततः स भगवान्देवो लोकानामीश्वरेश्वरः ।
ब्रह्माणं प्रत्युवाचेदं स्निग्धगम्भीरया गिरा ॥ १ ॥

करके फिर आत्माको कृष्ण रूपसे उत्पन्न किया है; फिर आत्मासे प्रद्युम्नको प्रगट किया है जिसे सब अव्यय विष्णु जानते हैं, उस अनिरुद्धको तुमने प्रद्युम्नसे उत्पन्न किया है और अनिरुद्धने मुझे लोकधारी ब्रह्मा रूपसे उत्पन्न किया है; इससे हे वासुदेव ! तुमसे मैं उत्पन्न हुआ हूं, अब तुम अपनेको अनेक क्रमसे विभाग कर के मनुष्यत्वको प्राप्त होओ। (६९–७२)

तुम मर्त्य लोकमें सब लोगोंके सुखके निमित्त असुरोंका वध कर, धर्म स्थापित करते हुए यशयुक्त होकर तत्त्वके अनुसार योग लाभ करो ॥ हे अमित पराक्रमी ! सब लोगोंके बीच ब्रह्मर्षि और देवता लोग अपने अपने नामके अनुसार विभक्त होकर तुम्हें परमात्मा रूपसे गाया करते हैं ॥ हे सुबाहो ! ब्राह्मण लोग और सम्पूर्ण प्राणी तुममें ही स्थित होकर तुम्हारा ही आसरा करते हुए, तुम को वरप्रद, आदि मध्य और अन्त रहित, अपार-योगसे युक्त और अखिल जगतका कारण कहके तुम्हारा यश गान करते रहते हैं। (७३–७५) [२०७१]

भीष्मपर्वमें पैंसठ अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें छासठ अध्याय।

भीष्म बोले, हे पुत्र दुर्योधन ! इसके अनन्तर सब लोगोंके ईश्वर देवोंके देव भगवान गम्भीर स्वरसे ब्रह्मासे यह

त इमे नृषु सम्भूता घोररूपा महाबलाः ॥ ९ ॥
तेषां वधार्थं भगवान्नरेण सहितो वशी ।
मानुषीं योनिमास्थाय चरिष्यति महीतले ॥ १० ॥
नरनारायणौ यौ तौ पुराणावृषिसत्तमौ ।
सहितौ मानुषे लोके सम्भूतावमितद्युती ॥ ११ ॥
अजेयौ समरे यत्तौ सहितैरमरैरपि ।
मूढास्त्वेतौ न जानन्ति नरनारायणावृषी ॥ १२ ॥
तस्याऽहमग्रजः पुत्रः सर्वस्य जगतः प्रभुः ।
वासुदेवोऽर्चनीयो वः सर्वलोकमहेश्वरः ॥ १३ ॥
तथा मनुष्योऽयमिति कदाचित्सुरसत्तमाः ।
नाऽवज्ञेयो महावीर्यः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १४ ॥
एतत्परमकं गुह्यमेतत्परमकं पदम् ।
एतत्परमकं ब्रह्म एतत्परमकं यशः ॥ १५ ॥
एतदक्षरमव्यक्तमेतद्वै शाश्वतं महः ।
यत्तत्पुरुषसंज्ञं वै गीयते ज्ञायते न च ॥ १६ ॥
एतत्परमकं तेज एतत्परमकं सुखम् ।
एतत्परमकं सत्यं कीर्तितं विश्वकर्मणा ॥ १७ ॥

लोग युद्धमें मारे गये है; वह घोर रूपसे महाबलवान् योद्धा मर्त्य लोकमें उत्पन्न हुए है ॥ हे भगवन् ! उन सबका वध करनेके निमित्त तुम बलवान् नरऋषिके सहित मनुष्य जन्म ग्रहण करके पृथ्वीमें भ्रमण करो ॥ ऋषिसत्तम नर और नारायणको सम्पूर्ण देवता लोग यत्नवान् होकर भी युद्धमें नहीं जीत सकते ॥ उन महातेजस्वी नर और नारायणके पृथ्वीमें उत्पन्न होने पर मूढ लोग उन्हे न जान सकेंगे ॥ (९–१२)

मै जिसका आत्मज होकर सब जगत का प्रभु बना हूं; वह सब लोगोंके नाथ वासुदेव तुम सब लोगोंमे पूजित होनेके योग्य है। हे देवगण ! उस महा पराक्रमी शङ्ख, चक्र, गदाधारीकी कभी मनुष्य कहके अवज्ञा करनी उचित नहीं है ॥ वह परम गुह्य, परम पद, परब्रह्म, परम यश, अव्यक्त और शाश्वत है, उनको ही पुरुष कहके उनहीका मान करते है। तथापि उनको यथार्थ रूपसे कोई भी नहीं जान सकता ॥ (१३–१६)

विश्वकर्मा उनको ही परम तेज, परम सुख और परम सत्य कहके वर्णन

दुर्योधन उवाच— वासुदेवो महद्भूतं सर्वलोकेषु कथ्यते ।
तस्याऽऽगमं प्रतिष्ठां च ज्ञातुमिच्छे पितामह ॥ १ ॥

भीष्म उवाच— वासुदेवो महद्भूतं सर्वदैवतदैवतम् ।
न परं पुण्डरीकाक्षाद् दृश्यते भरतर्षभ ॥ २ ॥
मार्कण्डेयश्च गोविन्दे कथयत्यद्भुतं महत् ।
सर्वभूतानि भूतात्मा महात्मा पुरुषोत्तमः ॥ ३ ॥
आपो वायुश्च तेजश्च त्रयमेतदकल्पयत् ।
स सृष्ट्वा पृथिवीं देवीं सर्वलोकेश्वरः प्रभुः ॥ ४ ॥
अप्सु वै शयनं चक्रे महात्मा पुरुषोत्तमः ।
सर्वतेजोमयो देवो योगात्सुष्वापः तत्र ह ॥ ५ ॥
मुखतः सोऽग्निमसृजत्प्राणाद्वायुमथाऽपि च ।
सरस्वतीं च वेदांश्च मनसः ससृजेऽच्युतः ॥ ६ ॥
एष लोकान्ससर्जाऽऽदौ देवांश्च ऋषिभिः सह ।
निधनं चैव मृत्युं च प्रजानां प्रभवाप्ययौ ॥ ७ ॥
एष धर्मश्च धर्मज्ञो वरदः सर्वकामदः ।

बीचकी पृथ्वीको उत्पन्न करते हैं। ३९-४१

भीष्मपर्वमें छासठ अध्याय समाप्त। [२०१२]

भीष्मपर्वमें सरसठ अध्याय।

दुर्योधन बोले, हे पितामह! सब लोकोंके बीच जो श्रीकृष्ण महापुरुष कहके विख्यात हैं, उनकी उत्पत्ति और स्थिति जाननेकी मुझे अभिलाषा हुई है। (१)

भीष्म बोले हे भारत! कृष्ण महाभूत और सब देवताओंके भी देवता हैं। उन पुण्डरीकाक्षसे श्रेष्ठ और कोई भी नहीं है। महामुनि मार्कण्डेय उनकी अद्भुत महिमा वर्णन करते हैं। सम्पूर्ण भूतोंकी आत्मा वह महात्मा अव्यय पुरुषोत्तम जल, वायु, तेज और समस्त स्थावर जङ्गमको उत्पन्न करते हैं। सब लोकोंके प्रभु महात्मा पुरुषोत्तम देव जलपर शयन करके पृथ्वीको उत्पन्न करते हैं। वह सब तेजोंसे युक्त देवोंके स्वामी योगबलसे जलके ऊपर शयन करते रहते हैं। (२-५)

वह महात्मा अच्युत कृष्ण मुखसे अग्नि और प्राणसे वायु, मनसे वाणी और वेदोंको उत्पन्न करते हैं॥ इसी भांतिसे वह आरम्भमें देवता, ऋषि और प्रजाओंकी उत्पत्ति, मृत्यु, मृत्युके उपाय और मृत्युके प्रयोजक यमराजको उत्पन्न करते हैं॥ वही धर्म, धर्मात्मा, वर देने

मधुसूदनमित्याहुर्ऋषयश्च जनार्दनम् ॥ १६ ॥
वराहश्चैव सिंहश्च त्रिविक्रमगतिः प्रभुः ।
एष माता पिता चैव सर्वेषां प्राणिनां हरिः ॥ १७ ॥
परं हि पुण्डरीकाक्षान्न भूतं न भविष्यति ।
मुखतः सोऽसृजद्विप्रान्बाहुभ्यां क्षत्रियांस्तथा ॥ १८ ॥
वैश्यांश्चाप्यूरुतो राजन्शूद्रान्वै पादतस्तथा ।
तपसा नियतो देवो निधानं सर्वदेहिनाम् ॥ १९ ॥
ब्रह्मभूतममावास्यां पौर्णमास्यां तथैव च ।
योगभूतं परिचरन्केशवं महदाप्नुयात् ॥ २० ॥
केशवः परमं तेजः सर्वलोकपितामहः ।
एवमाहुर्हृषीकेशं मुनयो वै नराधिप ॥ २१ ॥
एवमेनं विजानीहि आचार्यं पितरं गुरुम् ।
कृष्णो यस्य प्रसीदेत लोकास्तेनाऽक्षया जिताः ॥२२॥
यश्चैवेन भयस्थाने केशवं शरणं व्रजेत् ।
सदा नरः पठश्चेदं स्वस्तिमान्स सुखी भवेत् ॥ २३ ॥
ये च कृष्णं प्रपद्यन्ते ते न मुह्यन्ति मानवाः ।
भये महति मग्नांश्च पाति नित्यं जनार्दनः ॥ २४ ॥

उनको मधुसूदन कहते है। (१२-१६)

वही वाराह, नृसिंह, त्रिविक्रम, गति और सबके प्रभु हैं; वही हरि सबके माता और पिता हे ॥ इस पुण्डरीकाक्ष से श्रेष्ठ न कोई हुआ और न भविष्यकाल में होगा । वह मुखसे ब्राह्मण, बाहुसे क्षत्रिय ऊरुसे वैश्य और अपने चरणोंसे शूद्रोंको उत्पन्न करते हे ॥ अमावास्या और पूर्णमासीके दिन तपस्यामें रत होकर परिचर्या करनेसे सबके उत्पन्न करनेवाले उस योगात्मा केशवको मनुष्य प्राप्त कर सकते है । (१७-२०)

वह कृष्ण परम तेजस्वी और स्थावर जङ्गमात्मक सबके प्रभु है ॥ मुनि लोग जिसे हृषीकेश कहते है; उसको ही आचार्य पिता और गुरु जानना चाहिये । वह कृष्ण जिस पर प्रसन्न होते है; उसे अक्षय लोक प्राप्त होता है ॥ जो मनुष्य भयसे विकल होके यह पढते हुए उनकी शरणमें जाते हैं उनको मोह नहीं प्राप्त होता, वह कल्याणको प्राप्त होता है और सुखी होता है, वही जनार्दन महा भयमें पडे हुए मनुष्योंको परित्राण करते है ॥ हे राजन् ! राजा युधिष्ठिर उस

अव्यक्तं ते शरीरोत्थं व्यक्तं ते मनसि स्थितम् ।
देवास्त्वत्सम्भवाश्चैव देवलस्त्वसितोऽब्रवीत् ॥ ७ ॥
शिरसा ते दिवं व्याप्तं बाहुभ्यां पृथिवी तथा ।
जठरं ते त्रयो लोकाः पुरुषोऽसि सनातनः ॥ ८ ॥
एवं त्वामभिजानन्ति तपसा भाविता नराः ।
आत्मदर्शनतृप्तानामृषीणां चाऽसि सत्तमः ॥ ९ ॥
राजर्षीणामुदाराणामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ।
सर्वधर्मप्रधानानां त्वं गतिर्मधुसूदन ॥ १० ॥
इति नित्यं योगविद्भिर्भगवान्पुरुषोत्तमः ।
सनत्कुमारप्रमुखैः स्तूयतेऽभ्यर्च्यते हरिः ॥ ११ ॥
एष ते विस्तरस्तात संक्षेपश्च प्रकीर्तितः ।
केशवस्य यथातत्त्वं सुप्रीतो भज केशवम् ॥ १२ ॥
सञ्जय उवाच— पुण्यं श्रुत्वैतदाख्यानं महाराज सुतस्तव ।
केशवं बहु मेने स पाण्डवांश्च महारथान् ॥ १३ ॥
तमब्रवीन्महाराज भीष्मः शान्तनवः पुनः ।
माहात्म्यं ते श्रुतं राजन्केशवस्य महात्मनः ॥ १४ ॥

कहा है, कि अव्यक्त तुम्हारे शरीर और व्यक्त तुम्हारे मनमें स्थित है, तुम देवोंकी उत्पत्तिके स्थान हो ॥ (५-७)

तपस्यामे जिन पुरुषोंकी आत्मा शुद्ध है, वही तुमको जानते है, कि तुम्हारा सिर अन्तरिक्ष, तुम्हारी दोनों भुजाओंमे पृथ्वी धारण की हुई है और तुम्हारा जठर तीनों लोक हुआ है, तुम सनातन पुरुष हो । सनत्कुमार आदि योगज्ञ ऋषि लोग उस पुरुषोत्तम भगवानकी सदा पूजा करते रहते है और इस भांतिसे उनकी स्तुति करते हैः—हे हे मधुसूदन ! आत्माके दर्शनसे तृप्त जो सब ऋषि है, और युद्धमे अपराजित जो सब उदार स्वभावके राजर्षि है, उन सब लोगों तथा सम्पूर्ण धर्मात्मा पुरुषोंकी तुम ही गति और तुम ही नित्य हो ॥ हे पुत्र ! तुमसे मैने कृष्णकी कथा संक्षेप रूप और विस्तारके क्रमसे कही; इससे तुम प्रसन्न होकर प्रीति पूर्वक कृष्णकी शरणमें जाओ ॥ (८-१२)

सञ्जय बोले, महाराज ! दुर्योधनने इस पुण्य उपाख्यानको सुनकर कृष्ण और महारथ पाण्डवोंको श्रेष्ठ समझा ॥ (१३)

हे राजन ! शान्तनुनन्दन भीष्म दुर्योधनसे फिर बोले, हे पुत्र ! तुमने

अभ्यधावन्त संक्रुद्धाः परस्परजिगीषवः ।
ते सर्वे सहिता युद्धे समालोक्य परस्परम् ॥ २ ॥
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च राजन्दुर्मन्त्रिते तव ।
व्यूहौ च व्यूह्य संरब्धाः सम्प्रहृष्टाः प्रहारिणः ॥ ३ ॥
अरक्षन्मकरव्यूहं भीष्मो राजन्समन्ततः ।
तथैव पाण्डवा राजन्नरक्षन्व्यूहमात्मनः ॥ ४ ॥
स निर्ययौ महाराज पिता देवव्रतस्तव ।
महता रथवंशेन संवृतो रथिनां वरः ॥ ५ ॥
इतरेतरमन्वीयुर्यथाभागमवस्थिताः ।
रथिनः पत्तयश्चैव दन्तिनः सादिनस्तथा ॥ ६ ॥
तान्दृष्ट्वाऽभ्युद्यतान्संख्ये पाण्डवा हि यशस्विनः ।
श्येनेन व्यूहराजेन तेनाऽजय्येन संयुगे ॥ ७ ॥
अशोभत मुखे तस्य भीमसेनो महाबलः ।
नेत्रे शिखण्डी दुर्धर्षो धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ८ ॥
शीर्षे तस्याऽभवद्वीरः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
विधुन्वन्गाण्डिवं पार्थो ग्रीवायामभवत्तदा ॥ ९ ॥

दोनों ओरकी सेनाओंने युद्धके निमित्त यात्रा की ॥ वह सब रण भूमिमें एकत्रित होकर एक दूसरेको अवलोकन कर क्रोधपूर्वक एक दूसरेकी ओर दौडे । तुम्हारी अनीतिसे ही कौरव और पाण्डव लोग व्यूह बांधकर प्रसन्नता पूर्वक युद्धमें प्रवृत हुए ॥ भीष्म मकरव्यूह बनाकर चारों ओरसे निज सेनाकी रक्षा करने लगे । पाण्डव लोग भी अपनी सेनाका व्यूह बनाकर उसकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ (१-४)

भीष्म पितामह रथियोंके समूहसे घिरकर अनेक रथ और सेनाके सहित युद्धके निमित्त आगे बढे । दूसरे सब रथी घुडसवार, गजपति और पैदल चलनेवाले योद्धा लोग उनके अनुगामी हुए ॥ यशस्वी पाण्डव लोग उनको देखके शत्रुओंसे अजेय अपनी सेनाका श्येनव्यूह बनाकर युद्धके निमित्त उद्यत हुए ॥ (५-७)

उस श्येन व्यूहके मुख स्थानमें महा बलवान भीमसेन, नेत्र स्थलमें महात्मा शिखण्डी और धृष्टद्युम्न और सिरके स्थानमें सत्य पराक्रमी सात्यकि हुए ॥ अर्जुन गाण्डीव धनुष ग्रहण करके उस व्यूहके गर्दन स्थान पर स्थित हुए ।

भ्रातॄणां च वधं युद्धे स्मरमाणो महारथः ।
आचार्य सततं हि त्वं हितकामो ममाऽनघ ॥ १८ ॥
वयं हि त्वां समाश्रित्य भीष्मं चैव पितामहम् ।
देवानपि रणे जेतुं प्रार्थयामो न संशयः ॥ १९ ॥
किमु पाण्डुसुतान्युद्धे हीनवीर्यपराक्रमान् ।
स तथा कुरु भद्रं ते यथा वध्यन्ति पाण्डवाः ॥ २० ॥
एवमुक्तस्ततो द्रोणस्तव पुत्रेण मारिष ।
अभिनत्पाण्डवानीकं प्रेक्षमाणस्य सात्यकेः ॥ २१ ॥
सात्यकिस्तु ततो द्रोणं वारयामास भारत ।
तयोः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ २२ ॥
शैनेयं तु रणे क्रुद्धो भारद्वाजः प्रतापवान् ।
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्जत्रुदेशे हसन्निव ॥ २३ ॥
भीमसेनस्ततः क्रुद्धो भारद्वाजमविध्यत ।
संरक्षन्सात्यकिं राजन्द्रोणाच्छस्त्रभृतां वरात् ॥ २४ ॥
ततो द्रोणश्च भीष्मश्च तथा शल्यश्च मारिष ।
भीमसेनं रणे क्रुद्धाश्छादयाञ्चक्रिरे शरैः ॥ २५ ॥

थे, उसही कारणसे वह शीघ्रतापूर्वक द्रोणाचार्यके निकट जाके बोले, हे धर्मात्मा आचार्य! तुम सदा हमारे हितकी अभिलाषा करते रहते हो, मैं तुम्हारे और पितामह भीष्मके आसरेसे देवताओंको भी युद्धमें जीतनेकी अभिलाषा कर सकता हूं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। तब जो वीर्य और पराक्रमसे हीन पाण्डवोंको युद्धमें पराजित करना उसकी बात ही क्या है? हमने तुम्हारे पक्षमें शुभ होवे जिस प्रकारसे पाण्डवोंका वध होवे तुम वही उपाय करो। (१७-२०)

द्रोणाचार्य रणभूमिमें दुर्योधनकी बात सुन कर सात्यकिके सम्मुखमें ही पाण्डवोंकी सेनापर शस्त्रप्रहार करने लगे॥ तब सात्यकि द्रोणाचार्यको निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए; उन दोनों पुरुषोंका महा घोर युद्ध आरम्भ हुआ। प्रतापी द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर हंसते हंसते सात्यकिके हृदयके नीचे कोखको अपने दश बाणोंसे विद्ध किया। (२१-२३)

अनन्तर भीमसेन क्रुद्ध होकर शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यसे सात्यकिकी रक्षा करनेके निमित्त उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे। इसके अनन्तर द्रोणाचार्य, भीष्म और शल्यने क्रुद्ध

तद्युद्धमभवद्घोरं देवानां दानवैरिव ।
जयमाकांक्षतां संख्ये यशश्च सुमहाद्भुतम् ॥ ३४ ॥ [३०९२]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसयुद्धारम्भे ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥

सञ्जय उवाच— अकरोत्तुमुलं युद्धं भीष्मः शान्तनवस्तदा ।
भीमसेनभयादिच्छन्पुत्रांस्तारयितुं तव ॥ १ ॥
पूर्वाह्णे तन्महारौद्रं राज्ञां युद्धमवर्तत ।
कुरूणां पाण्डवानां च मुख्यशूरविनाशनम् ॥ २ ॥
तस्मिन्नाकुलसंग्रामे वर्तमाने महाभये ।
अभवत्तुमुलः शब्दः संस्पृशन्गगनं महत् ॥ ३ ॥
नदद्भिश्च महानागैर्हेषमाणैश्च वाजिभिः ।
भेरीशङ्खनिनादैश्च तुमुलं समपद्यत ॥ ४ ॥
युयुत्सवस्ते विक्रान्ता विजयाय महाबलाः ।
अन्योन्यमभिगर्जन्तो गोष्ठेष्विव महर्षभाः ॥ ५ ॥
शिरसां पात्यमानानां समरे निशितैः शरैः ।
अश्मवृष्टिरिवाऽऽकाशे बभूव भरतर्षभ ॥ ६ ॥
कुण्डलोष्णीषधारीणि जातरूपोज्ज्वलानि च ।

यश और विजयकी इच्छा करनेवाले दोनों ओरकी सेनाके वीरोंका देवता और दानवोंके युद्धके समान महाघोर संग्राम आरम्भ हुआ। (३०—३४) [३०९२]

भीष्मपर्वमें उनत्तर अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें सत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज! शान्तनुनन्दन भीष्म तुम्हारे पुत्रोंका भीमसेनसे परित्राण करनेके निमित्त महाघोर युद्ध करने लगे ॥ दिनके पूर्वाह्न समयमें कौरव और पाण्डवोंकी सेनाका महादारुण युद्ध होने लगा, उसमें मुख्य मुख्य वीरोंका प्राण नाश हुआ ॥ उस अत्यन्त भयङ्कर युद्धमें वीरोंका घोर शब्द आकाश तक गूंजने लगा, बडे बडे हाथी चिङ्घाड मारने लगे, घोडोंके हिन हिनाने और शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग आदिके शब्दसे महाघोर शब्द उत्पन्न हुआ। (१—४)

युद्धके चाहनेवाले महाबली वीरलोग गोष्ठमें बडे बैलके समान आपसमें तर्जन गर्जन करने लगे। चोखे बाणोंसे वीरोंके सिर कटके इस भांति पृथ्वीमें गिरने लगे मानो आकाशसे शिलाकी वर्षा होने लगी ॥ हाथोंके लगनेसे मुकुट और कुण्डलोंसे युक्त सिर हाथके भूषण तथा

समरे पर्यधावन्त नृपारिपु वधोद्यताः ॥ १६ ॥
शरशक्तिगदाभिस्ते खङ्गैश्चाऽमिततेजसः ।
निजघ्नुः समरेऽन्योन्यं शूराः परिघबाहवः ॥ १७ ॥
बभ्रमुः कुञ्जराश्चाऽत्र शरैर्विद्धा निरंकुशाः ।
अश्वाश्च पर्यधावन्त हतारोहा दिशो दश ॥ १८ ॥
उत्पत्य निपतन्त्यन्ये शरघातप्रपीडिताः ।
तावकानां परेषां च योधा भरतसत्तम ॥ १९ ॥
बाहूनामुत्तमाङ्गानां कार्मुकाणां च भारत ।
गदानां परिघाणां च हस्तानां चोरुभिः सह ॥ २० ॥
पादानां भूषणानां च केयूराणां च सङ्घशः ।
राशयस्तत्र दृश्यन्ते भीष्मभीमसमागमे ॥ २१ ॥
अश्वानां कुञ्जराणां च रथानां चाऽनिवर्तिनाम् ।
सङ्घाताः स्म प्रदृश्यन्ते तत्र तत्र विशांपते ॥ २२ ॥
गदाभिरसिभिः प्रासैर्बाणैश्च नतपर्वभिः ।
जघ्नुः परस्परं तत्र क्षत्रियाः काल आगते ॥ २३ ॥
अपरे बाहुभिर्वीरा नियुद्धकुशला युधि ।
बहुधा समसज्जन्त आयसैः परिघैरिव ॥ २४ ॥
मुष्टिभिर्जानुभिश्चैव तलैश्चैव विशांपते ।

लगे ॥ इस प्रकारकी रणभूमिमें राजालोग शत्रुओंके वधके निमित्त चारों ओर घूमने लगे ॥ बडे बडे तेजस्वी शूरवीर बाण, शक्ति, गदा और तलवार ग्रहण करके युद्धमें एक दूसरेको मारने लगे ॥ सवारोंसे रहित हाथी घोडे बाणोंसे विद्ध होकर चारों ओर भागने लगे ॥ दोनों सेनाके योद्धाओंमेंसे बहुतेरे पुरुष शस्त्रोंकी चोटसे पीडित होकर पृथ्वीमें गिरने लगे । (१६-१९)

भीष्म और भीमसेनके युद्धमें भुजा, सिर, धनुष, गदा, परिघ, खड्ग, पाव और भूषणोंके ढेरके ढेर सब ओर रणभूमिमें दिखाई देने लगे ॥ जगह जगह दौडते हुए हाथी, घोडे और रथोंका आपसमें टक्कर होने लगा ॥ क्षत्रिय लोग कालके वशमें होकर गदा, प्रास, शक्ति, तलवार और चोख बाणोंसे एक दूसरेका वध करने लगे । (२०-२३)

दूसरे युद्धकुशल वीर लोग सब परिघके समान भुजाओंसे ठौर ठौर युद्ध करने लगे ! दोनों ओरके बहुतेरे वीर लात

असज्जमानं वृक्षेषु धूमकेतुमिवोत्थितम् ॥ ३ ॥
बहुवर्णं विचित्रं च दिव्यं वानरलक्षणम् ।
अपश्याम महाराज ध्वजं गाण्डीवधन्वनः ॥ ४ ॥
विद्युतं मेघमध्यस्थां भ्राजमानामिवाऽम्बरे ।
ददृशुर्गाण्डिवं योधा रुक्मपृष्ठं महामृधे ॥ ५ ॥
आशुश्रुम भृशं चाऽस्य शक्रस्येवाऽभिगर्जतः ।
सुघोरं तलयोः शब्दं निघ्नतस्तव वाहिनीम् ॥ ६ ॥
चण्डवातो यथा मेघः सविद्युत्स्तनयित्नुमान् ।
दिशः सम्प्लावयन्सर्वाः शरवर्षैः समन्ततः ॥ ७ ॥
समभ्यधावद्गाङ्गेयं भैरवास्त्रो धनञ्जयः ।
दिशं प्राचीं प्रतीचीं च न जानीमोऽस्त्रमोहिताः॥ ८ ॥
कान्दिग्भूताः श्रान्तपत्रा हताश्वा हतचेतसः ।
अन्योन्यमभिसंश्लिष्य योधास्ते भरतर्षभ ॥ ९ ॥
भीष्ममेवाऽभ्यलीयन्त सह सर्वैस्तवाऽऽत्मजैः ।
तेषामार्तायनमभूद्भीष्मः शान्तनवो रणे ॥ १० ॥

भांति अनेक रूपसे धुंएके समान वृक्ष आदिमे कहीं भी न रुकनेवाली धूमकेतुके समान स्थित, उस अलौकिक ध्वजाको मैने अवलोकन किया ॥ (१-४)

उस संग्राममे योद्धा लोग उनके सुवर्ण चर्चित गाण्डीव धनुषको आकाशमें बादलोंके बीच रहनेवाली बिजली की भांति देखने लगे ॥ तुम्हारी सेनाका वध करनेके समय वह बहुत ही गर्जने लगे और उनके दोनों पद त्राणका शब्द सुनाई देने लगा । जिस भांति प्रचण्ड वायुकी सहायतासे गर्जता हुआ बिजलीसे युक्त मेघ सब ओर पानीकी वर्षा करता है उसी भांतिसे वह बाणोंकी वर्षासे सब दिशाओंको पूरित करने लगे ॥ (५-७)

वह भयङ्कर अस्त्रोंको वर्षाते हुए भीष्मकी ओर दौडे, उनके चलाये हुए अस्त्रोंसे मोहित होकर हम लोगोंको पूरब, पश्चिम आदि दिशाओंका भी ज्ञान न रहा । हे भारत ! तुम्हारी सेनाके योद्धाओंमें कितनोंके वाहन थक गये और कितनोंके वाहन शस्त्रोंसे मरके पृथ्वीपर गिर गये, वह लोग भयभीत होके आपसमें एक दूसरेको मारते और मरते हुए दिशाके ज्ञानसे रहित होकर तुम्हारे सब पुत्रोंके सहित भीष्मके शरणागत हुए । उस युद्धमें भीष्म

घोरमासीद्धनं चक्रे महाभ्रसदृशं रजः ॥ १८ ॥
तोमरप्रासनाराचगजाश्वरथयोधिनाम् ।
बलेन महता भीष्मः समसज्जत्किरीटिना ॥ १९ ॥
आवन्त्यः काशिराजेन भीमसेनेन सैन्धवः ।
अजातशत्रुर्मद्राणामृषभेण यशस्विना ॥ २० ॥
सहपुत्रः सहामात्यः शल्येन समसज्जत ।
विकर्णः सहदेवेन चित्रसेनः शिखण्डिना ॥ २१ ॥
मत्स्या दुर्योधनं जग्मुः शकुनिं च विशाम्पते ।
द्रुपदश्चेकितानश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ २२ ॥
द्रोणेन समसज्जन्त सपुत्रेण महात्मना ।
कृपश्च कृतवर्मा च धृष्टद्युम्नमभिद्रुतौ ॥ २३ ॥
एवं प्रव्रजिताश्वानि भ्रान्तनागरथानि च ।
सैन्यानि समसज्जन्त प्रयुद्धानि समन्ततः ॥ २४ ॥
निरभ्रे विद्युतस्तीव्रा दिशश्च रजसाऽऽवृताः ।
प्रादुरासन्महोल्काश्च सनिर्घाता विशाम्पते ॥ २५ ॥
प्रादुर्भूतो महावातः पांसुवर्षं पपात च ।
नभस्यन्तर्दधे सूर्यः सैन्येन रजसाऽऽवृतः ॥ २६ ॥

धूलि उडी, कि मानो आकाशमें बादलोंका समूह दिखाई देरहा हो ॥ भीष्म तोमर, प्रास बाण, हाथी, घोडे और रथियोंकी सेना सङ्ग लेके अर्जुनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ (१७-१९)

अवन्तिराज काशिराजसे, सिन्धुराजसे भीमसेन, पुत्र और सेवकोंके सहित अजातशत्रु राजा युधिष्ठिरने मद्रराज शल्यसे, विकर्ण सहदेवसे, और चित्रसेन शिखण्डीसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ हे प्रजानाथ! मत्स्यदेशीय योद्धा दुर्योधन और शकुनिके सङ्ग युद्ध करने लगे। द्रुपद चेकितान और महारथ सात्यकि पुत्र सहित महात्मा द्रोणाचार्यसे युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए; कृपाचार्य और कृतवर्मा ये दोनों धृष्टकेतुसे युद्ध करनेके निमित्त आगे बढे ॥ (२०-२३)

इसी भांतिसे जगह जगह दलके दल रणभूमिमें भ्रमण करनेवाले, घोडे और रथियोंने आपसमें युद्ध करना आरम्भ किया ॥ हे राजन्! उस समय विना बादलके बिजली, और भयानक शब्दके सहित उल्कापात होने लगा ॥ वायु बडे वेगसे बहने लगा और धूली की वर्षा होने

अदृश्यन्त ससूताश्च साश्वाः सरथयोधिनः ।
एकेन बलिना राजन्वारणेन विमर्दिताः ॥ ३५ ॥
गन्धहस्तिमदस्रावमाघ्राय बहवो रणे ।
सन्निपाते बलौघानां वीतमाददिरे गजाः ॥ ३६ ॥
सतोमरैर्महामात्रैर्निपतद्भिर्गतासुभिः ।
बभूवाऽऽयोधनं छन्नं नाराचाभिहतैर्गजैः ॥ ३७ ॥
सन्निपाते बलौघानां प्रेषितैर्वरवारणैः ।
निपेतुर्युधि सम्भग्नाः सयोधाः सध्वजा गजाः ॥ ३८ ॥
नागराजोपमैर्हस्तैर्नागैराक्षिप्य संयुगे ।
व्यदृश्यन्त महाराज सम्भग्ना रथकूबराः ॥ ३९ ॥
विशीर्णरथसङ्घाश्च केशेष्वाक्षिप्य दन्तिभिः ।
द्रुमशाखा इवाऽऽविध्य निष्पिष्टा रथिनो रणे ॥ ४० ॥
रथेषु च रथान्युद्धे संसक्तान्वरवारणाः ।
विकर्षन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः सर्वशब्दगाः ॥ ४१ ॥
तेषां तथा कर्षतां तु गजानां रूपमाबभौ ।
सरःसु नलिनीजालं विषक्तमिव कर्षताम् ॥ ४२ ॥

लगे ॥ उस रणभूमिमें एक बलवान् हाथीसे मैंने सारथी, घोडे और रथके सहित बहुतसे रथियोंको मरतेहुए देखा ॥ युद्धके निमित्त तैयार हुई सेनाओंके बीचमें बहुतसे हाथी दूसरे मद चूते हुए हाथियोंके मदकी गंधको सूंघके भ्रमसे मद रहित हाथीके साथ ही युद्ध करने लगे ॥ (३५–३६)

ध्वजा तथा तोमरके सहित पीलवान और बाणोंकी चोटसे मरे हुए बहुतसे हाथियोंसे रणभूमिकी पृथ्वी भर गई ॥ बहुतसे बडे हाथियोंसे चलाये जाने पर बहुतेरे हाथी युद्धमें शस्त्रोंसे कट कर योद्धा और ध्वजाओंके सहित पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ हे राजन् ! अनेक हाथी नागराजके समान सूंडसे रथोंको फेंक कर पांवसे चूर्ण करके और केशोंमें पकडकर रथियोंको उठाकर दूर फेंकने लगे और वृक्षकी शाखाके समान तोड-कर चूर्ण करने लगे ॥ (३७-४०)

बडे बडे अनेक हाथी दूसरे रथोंको तोडने और नाना भांतिसे भयानक शब्द करते हुए सब दिशाओंमें गमन करने लगे ॥ उन सम्पूर्ण हाथियोंकी रथ आकर्षण करते हुए गमन करनेके समयमें ऐसी शोभा हुई, जैसे [illegible]

ततोऽपरेण भल्लेन पीतेन निशितेन च ।
कार्मुकं भीमसेनस्य द्विधा चिच्छेद भारत ॥ २५ ॥
सात्यकिस्तु ततस्तूर्णं भीष्ममासाद्य संयुगे ।
आकर्णप्रहितैस्तीक्ष्णैर्निशितैस्तिग्मतेजनैः ॥ २६ ॥
शरैर्बहुभिरानर्च्छत्पितरं ते जनेश्वर ।
ततः सन्धाय वै तीक्ष्णं शरं परमदारुणम् ॥ २७ ॥
वार्ष्णेयस्य रथाद्भीष्मः पातयामास सारथिम् ।
तस्याऽश्वाः प्रद्रुता राजन्निहते रथसारथौ ॥ २८ ॥
तेन तेनैव धावन्ति मनोमारुतरंहसः ।
ततः सर्वस्य सैन्यस्य निःस्वनस्तुमुलोऽभवत ॥ २९ ॥
हाहाकारश्च सञ्जज्ञे पाण्डवानां महात्मनाम् ।
अभ्यद्रवत गृह्णीत हयान्यच्छत धावत ॥ ३० ॥
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो युयुधानरथं प्रति ।
एतस्मिन्नेव काले तु भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ३१ ॥
न्यहनत्पाण्डवीं सेनामासुरीमिव वृत्रहा ।
ते वध्यमाना भीष्मेण पञ्चालाः सोमकैः सह ॥ ३२ ॥
स्थिरां युद्धे मतिं कृत्वा भीष्ममेवाऽभिदुद्रुवुः ।

हुई देखकर भीष्मने तीन शरोंसे उसे काट कर गिरा दिया ॥ और दूसरे एक बाणसे भीमसेनका धनुष दो टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (२१–२५)

इसके अनन्तर सात्यकिने भीष्मके समीप शीघ्रतासे जाके कान पर्यन्त धनुष खींचके तीक्ष्ण, चोखे और तेजस्वी बाणोंसे उनको विद्ध करना आरम्भ किया। अनन्तर भीष्मने महाकठोर एक बाण चलाके सात्यकिके सारथीको मारके पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ सारथीके मारे जाने पर मन और वायुके समान वेगसे चलानेवाले घोडे सात्यकिके रथको लेकर इधर उधर दौडने लगे। (२६–२९)

उसे देखकर पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनामें हाहाकार और तुमुल शब्द होने लगा; और "दौडो दौडो पकडो, घोडोंको रोको; जलदी दौडो" ऐसा ही शब्द होने लगा। इस ही अवसरमें शान्तनुनन्दन भीष्म पाण्डवोंकी सेनाका इस प्रकार वध करने लगे, जैसे इन्द्र असुरोंकी सेनाका नाश करते हैं। पाञ्चाल और सोमकवंशीय क्षत्रिय भीष्मके बाणोंसे पीडित होकर भी युद्धमें

अविध्यत्फाल्गुनं राजंस्त्वरया निशितैः शरैः ।
वासुदेवं च सप्तत्या विव्याध परमेषुभिः ॥ ६ ॥
ततः क्रोधाभिताम्राक्षः कृष्णेन सह फाल्गुनः ।
दीर्घमुष्णं च निःश्वस्य चिन्तयित्वा पुनः पुनः ॥ ७ ॥
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणाऽमित्रकर्शनः ।
गाण्डीवधन्वा संक्रुद्धः शितान्सन्नतपर्वणः ॥ ८ ॥
जीवितान्तकरान्घोरान्समादत्त शिलीमुखान् ।
तैस्तूर्णं समरेऽविध्यद् द्रौणिं बलवतां वरः ॥ ९ ॥
तस्य ते कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ।
न विव्यथे च निर्भिन्नो द्रौणिर्गाण्डीवधन्वना ॥ १० ॥
तथैव च शरान्द्रौणिः प्रविमुञ्चन्नविह्वलः ।
तस्थौ स समरे राजंस्त्रातुमिच्छन्महाव्रतम् ॥ ११ ॥
तस्य तत्सुमहत्कर्म शशंसुः कुरुसत्तमाः ।
यत्कृष्णाभ्यां समेताभ्यामभ्यापतत संयुगे ॥ १२ ॥
स हि नित्यमनीकेषु युध्यतेऽभयमास्थितः ।
अस्त्रग्रामं ससंहारं द्रोणात्प्राप्य सुदुर्लभम् ॥ १३ ॥

घुसे हुए तीखे बाणोंसे अर्जुनको विद्ध करके फिर सत्तर प्रबल बाणोंसे कृष्णको विद्ध किया ॥ (४—६)

इसके अनन्तर शत्रुओंको नाश करनेवाले अत्यन्त बलवान् गाण्डीवधारी अर्जुनने कृष्णके सहित क्रोधसे लाल नेत्र करके गर्म और लम्बी सांस लेते हुए बार बार चिन्ता कर बायें हाथसे धनुष खींच करके जीवनका नाश करनेवाले कालके समान [illegible] बाणोंको चलाकर अश्वत्थामाको शीघ्र ही विद्ध किया ॥ (८-९)

वे सब बाण अश्वत्थामाके कवचको काटकर रुधिर पीने लगे. परन्तु अश्वत्थामा अर्जुनके बाणोंसे इस प्रकारसे विद्ध होकर भी पीडित न हुए; वरन महाव्रत करने वाले भीष्मकी रक्षा करनेकी अभिलाषासे युद्धमें स्थित होके अर्जुनके ऊपर उसी भांतिसे बाणों को चलाने लगे. वह जो इस भांतिसे रणभूमि में कृष्णार्जुनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त थे, उस महा दारुण कर्मको देखकर सम्पूर्ण कौरव उनकी प्रशंसा करने लगे। (१०-१२)

उन्होंने पिता द्रोणाचार्यसे अत्यन्त दुर्लभ अस्त्रोंका चलाना तथा उपसंहार

ततः शरैर्महाराज रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ।
भीमं विव्याध संक्रुद्धस्त्रासयानो वरूथिनीम् ॥ २२ ॥
तौ युध्यमानौ समरे भृशमन्योन्यविक्षतौ ।
पुत्रौ ते देवसङ्काशौ व्यरोचेतां महाबलौ ॥ २३ ॥
चित्रसेनं नरव्याघ्रं सौभद्रः परवीरहा ।
अविध्यद्दशभिर्बाणैः पुरुमित्रं च सप्तभिः । ॥ २४ ॥
सत्यव्रतं च सप्तत्या विध्वा शक्रसमो युधि ।
नृत्यन्निव रणे वीर आर्तिं नः समजीजनत् ॥ २५ ॥
तं प्रत्यविध्यद्दशभिश्चित्रसेनः शिलीमुखैः ।
सत्यव्रतश्च नवभिः पुरुमित्रश्च सप्तभिः ॥ २६ ॥
स विद्धो विक्षरन्रक्तं शत्रुसंवारणं महत् ।
चिच्छेद चित्रसेनस्य चित्रं कार्मुकमार्जुनिः ॥ २७ ॥
भित्त्वा चाऽस्य तनुत्राणं शरेणोरस्यताडयत् ।
ततस्ते तावका वीरा राजपुत्रा महारथाः ॥ २८ ॥
समेत्य युधि संरब्धा विव्यधुर्निशितैः शरैः ।

होके सैनिक पुरुषोंको भयभीत करते हुए सुवर्णपुङ्खसे युक्त शिलापर घिसे हुए बाणोंसे भीमसेनको विद्ध किया ॥ महाबलवान् भीम और दुर्योधन युद्धमें एक दूसरेके अङ्गोंसे अत्यन्त ही क्षत-विक्षत शरीर होकर रणभूमिमें देवोंके समान शोभित हुए ॥ (२१-२३)

शत्रुनाशन महावीर अभिमन्युने पुरुषसिंह चित्रसेन और पुरुमित्रको सात बाणोंसे विद्ध करके सत्यव्रतके ऊपर सत्तर बाण चलाये, जिस प्रकार इन्द्र युद्धके समय दानवोंको पीडित करते हुए रणभूमिमें घूमते हैं, वैसे ही अभिमन्यु युद्धमें चारों ओर मानो नृत्य करता हुआ शत्रुओंको पीडित करने लगा ॥ फिर चित्रसेनने दश, पुरुमित्रने सात और सत्यव्रतने नौ बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध किया । (२४-२६)

अभिमन्युके शरीरसे रुधिर गिर रहा था, उसी अवस्थामें उसने चित्रसेनके बाण निवारण करके उनके विचित्र धनुष और कवचको अपने बाणोंसे काटकर फिर उनकी छातीमें बाण मारा ॥ अनन्तर तुम्हारी ओरके महारथ वीर राजपुत्र क्रुद्ध होके एकत्रित हुए और उत्तम पत्थरोंसे घिसाये हुए बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध करने लगे परम अस्त्रोंके जानने वाले अभिमन्यु उन सब [illegible] दोनों

अभिमन्युः शरैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद भुजगोपमाम् ॥ ३७ ॥
ततः स्वरथमारोप्य लक्ष्मणं गौतमस्तदा ।
अपोवाह रथेनाऽऽजौ सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३८ ॥
ततः समाकुले तस्मिन्वर्तमाने महाभये ।
अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तः परस्परवधैषिणः ॥ ३९ ॥
तावकाश्च महेष्वासाः पाण्डवाश्च महारथाः ।
जुह्वन्तः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् ॥ ४० ॥
मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः ।
बाहुभिः समयुध्यन्त सृञ्जयाः कुरुभिः सह ॥ ४१ ॥
ततो भीष्मो महाबाहुः पाण्डवानां महात्मनाम् ।
सेनां जघान संक्रुद्धो दिव्यैरस्त्रैर्महाबलः ॥ ४२ ॥
हतैरश्वैर्गजैस्तत्र नरैरश्वैश्च पातितैः ।
रथिभिः सादिभिश्चैव समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ४३ ॥ [३२४२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सकुलयुद्धे त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥

सञ्जय उवाच— अथ राजन्महाबाहुः सात्यकिर्युद्धदुर्मदः ।

घोररूपा महा शक्तिको सम्मुख आती हुई देखकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ (३५-३७)

अनन्तर कृपाचार्यने लक्ष्मणको अपने रथपर चढाके सम्पूर्ण सेनाके संमुखही मे उन्हें वहांसे दूसरी ओर करदिया। उस महा भयङ्कर युद्धमें वीर लोग एक दूसरेके वध करनेकी इच्छासे क्रुद्ध होकर इधर उधर दौडने लगे। प्राणकी आशा छोडकर भी तुम्हारे और पाण्डवोंकी ओरके सम्पूर्ण महारथ शूर वीर योद्धा आपसमें एक दूसरेका वध करने लगे । (३८-४०)

सृञ्जयगण खुले हुए शिर, कवच और रथसे रहित तथा धनुषके कट जाने पर भी कौरवोंकी सेनाके बीचमें बाहु युद्ध करने लगे। महा बलवान महाबाहु भीष्म क्रुद्ध होकर अपने दिव्य अस्त्रोंसे पाण्डवोंकी सेनाका नाश करने लगे ॥ तब पृथ्वी मरे हुए सवार, घोडे, रथ, हाथी और मनुष्योंके शरीरसे पूरित होगई । (४१-४३) [३०८०]

भीष्मपर्वमें तिहत्तर अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें चौहत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले हे राजन्! युद्धमें परा-क्रमी सात्यकि उस रणभूमिमें एक

विकृष्य चापं समरे भारसाहमनुत्तमम् ॥ १ ॥
प्रामुञ्चत्पुङ्खसंयुक्ताञ्शरानाशीविषोपमान् ।
प्रगाढं लघु चित्रं च दर्शयन्हस्तलाघवम् ॥ २ ॥
तस्य विक्षिपतश्चापं शरानन्यांश्च मुञ्चतः ।
आददानस्य भूयश्च सन्दधानस्य चाऽपरान् ॥ ३ ॥
क्षिपतश्च परांस्तस्य रणे शत्रून्विनिघ्नतः ।
ददृशे रूपमत्यर्थं मेघस्येव प्रवर्षतः ॥ ४ ॥
तमुदीर्यन्तमालोक्य राजा दुर्योधनस्ततः ।
रथानामयुतं तस्य प्रेषयामास भारत ॥ ५ ॥
तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
जघान परमेष्वासो दिव्येनाऽस्त्रेण वीर्यवान् ॥ ६ ॥
स कृत्वा दारुणं कर्म प्रगृहीतशरासनः ।
आससाद ततो वीरो भूरिश्रवसमाहवे ॥ ७ ॥
स हि सन्दृश्य सेनां ते युयुधानेन पातिताम् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धः कुरूणां कीर्तिवर्धनः ॥ ८ ॥
इन्द्रायुधसवर्णं तु विस्फार्य सुमहद्धनुः ।
सृष्टवान्वज्रसङ्काशाञ्शरानाशीविषोपमान् ॥ ९ ॥

उत्तम धनुष ग्रहण करके हस्तलाघव दिखाते हुए उत्तम पानीमें बुझाये विषधारी सर्पके समान बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ रणभूमिमें शत्रुओंका वध करनेके समय वह बहुत ही शीघ्रतासे अनेकानेक बाणोंको चलाकर शत्रुओंका नाश करने लगे; जब वह बाणोंको ग्रहण करते, चलाते और शत्रुओंके बाणोंको निवारण करते थे, उस समयमें उनकी मूर्ति अत्यन्त वर्षा करनेवाले बादलके समान दीख पडती थी । (१-४)

हे भारत! उस समय राजा दुर्योधनने सात्यकिको ऐसा कठिन कर्म करते देख कर दश हजार रथ उनके समीप भेज दिये ॥ महाधनुर्धारी सत्य पराक्रमी सात्यकिने अपने दिव्य अस्त्रोंसे उन सब शूरवीर रथियोंका वध किया । धनुषधारी महावीर सात्यकि ऐसा कठिन कर्म करके भूरिश्रवाके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ (५-७)

कौरवोंके कुलकी कीर्त्ति बढानेवाले दुर्योधन निज सेनाको युयुधानसे पीडित देखकर उनकी ओर बढे और इन्द्रधनुषके समान बडा धनुष चढा कर

ते हता न्यपतन्राजन्वज्रभग्ना इव द्रुमाः ।
तान्दृष्ट्वा निहतान्वीरो रणे पुत्रान्महाबलान् ॥ २६ ॥
वार्ष्णेयो विनदन्राजन्भूरिश्रवसमभ्ययात् ।
रथं रथेन समरे पीडयित्वा महाबलौ ॥ २७ ॥
तावन्योन्यं हि समरे निहत्य रथवाजिनः ।
विरथावभिवल्गन्तौ समेयातां महारथौ ॥ २८ ॥
प्रगृहीतमहाखड्गौ तौ चर्मवरधारिणौ ।
शुशुभाते नरव्याघ्रौ युद्धाय समवस्थितौ ॥ २९ ॥
ततः सात्यकिमभ्येत्य निस्त्रिंशवरधारिणम् ।
भीमसेनस्त्वरन्राजन्रथमारोपयत्तदा ॥ ३० ॥
तवाऽपि तनयो राजन्भूरिश्रवसमाहवे ।
आरोपयद्रथं तूर्णं पश्यतां सर्वधन्विनाम् ॥ ३१ ॥
तस्मिंस्तथा वर्तमाने रणे भीष्मं महारथम् ।
अयोधयन्त संरब्धाः पाण्डवा भरतर्षभ ॥ ३२ ॥
लोहितायति चाऽऽदित्ये त्वरमाणो धनञ्जयः ।
पञ्चविंशतिसाहस्रान्निजघान महारथान् ॥ ३३ ॥
ते हि दुर्योधनादिष्टास्तदा पार्थनिबर्हणे ।

गिरा दिया ॥ (२२-२५)

वह सब वज्रकी चोटसे टूटे हुए वृक्षके समान मरके पृथ्वीमें गिर पडे । वृष्णिवंशीय सात्यकि अपने महाबलवान्, पुत्रोंको मरते हुए देख कर गर्जते हुए भूरिश्रवाकी ओर दौडे । वह दोनों महारथ महाबलवान् आपसमें एक दूसरे को अपने बाणोंसे पीडित करते हुए रथके नष्ट होजानेपर बिना रथके ही तलवार और ढाल ग्रहण करके रथसे कूद, युद्धके निमित्त रणभूमिमें खडे होकर अत्यन्त ही शोभित हुए ॥ (२६-२९)

तब भीमसेनने तलवार ग्रहण किए हुए सात्यकिके समीपमें शीघ्रही आके उन्हें अपने रथ पर बैठाया और तुम्हारे पुत्रोंने भी सब धनुर्द्धारियोंके सम्मुखहीमें शीघ्र ही भूरिश्रवाको रथ पर उठाके बैठा लिया ॥ उस युद्धमें पाण्डव लोग क्रुद्ध होकर महा तेजस्वी भीष्मके सङ्ग युद्ध करने लगे । (३०-३२)

सूर्यके अस्त होने तक अर्जुनने पच्चीस हजार महारथियोंका वध किया, वह सब दुर्योधनकी आज्ञासे अर्जुनका नाश करनेके लिये उनकी ओर युद्ध करनेको

एवमुक्त्वा महेष्वासास्ते वीराः क्षिप्रकारिणः ।
महता शरवर्षेण अभ्यधावन्नरिन्दमम् ॥ १८ ॥
सोऽपराह्णे महाराज संग्रामस्तुमुलोऽभवत् ।
एकस्य च बहूनां च समेतानां रणाजिरे ॥ १९ ॥
तमेकं रथिनां श्रेष्ठं शरैस्ते समवाकिरन् ।
प्रावृषीव यथा मेरुं सिषिचुर्जलदा नृप ॥ २० ॥
तैस्तु मुक्ताञ्शरान्घोरान्यमदण्डाशनिप्रभान् ।
असम्प्राप्तानसम्भ्रान्तश्चिच्छेदाऽऽशु महारथः ॥ २१ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम सौमदत्तेः पराक्रमम् ।
यदेको बहुभिर्युद्धे समसज्जदभीतवत् ॥ २२ ॥
विसृज्य शरवृष्टिं तां दश राजन्महारथाः ।
परिवार्य महाबाहुं निहन्तुमुपचक्रमुः ॥ २३ ॥
सौमदत्तिस्ततः क्रुद्धस्तेषां चापानि भारत ।
चिच्छेद समरे राजन्युध्यमानो महारथैः ॥ २४ ॥
अथैषां छिन्नधनुषां शरैः सन्नतपर्वभिः ।
चिच्छेद समरे राजञ्शिरांसि भरतर्षभ ॥ २५ ॥

युद्धमें वध करूंगा॥ महावीर भूरिश्रवा-ने जब उन शत्रुनाशन वीरोंसे ऐसा वचन कहा, तब उन सबने अपने बाणोंको भूरिश्रवाके ऊपर बर्षाना आरम्भ किया। (१६–१८)

महाराज! सन्ध्याके समय भूरिश्रवाके सङ्ग उन दश वीरोंका महाघोर युद्ध होने लगा, उन लोगोंने रथियोंमें मुख्य भूरिश्रवाके ऊपर उस प्रकारसे बाणोंकी वर्षा की, जैसे वर्षा ऋतुमें बादल पर्वतके ऊपर पानीकी वर्षा करता है। महारथ भूरिश्रवाने उन लोगोंके चलाये हुए यमदण्डके समान बाणोंको समीप न आते ही मार्गहीमें काट कर गिरा दिया॥ (१९–२१)

मैंने उस समय भूरिश्रवाका यह अद्भुत पराक्रम देखा, कि वह अकेले ही कई महारथियोंके सङ्ग निर्भय चित्तसे युद्ध कर रहे थे॥ उन दश महारथियोंने मिल कर उस महाबाहु भूरिश्रवाको घेरकर उनके संहार करनेकी इच्छा की परन्तु सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवाने क्रुद्ध हो कर निमेष मरमें उन दशों महारथियोंका धनुष दश बाणोंसे काट कर गिरा दिया॥ उनके धनुषोंको काट कर फिर अपने तेज बाणोंसे उनका सिर काटके पृथ्वीमें

तत्र शब्दो महानासीत्तव तेषां च भारत ।
युज्यतां रथमुख्यानां कल्प्यतां चैव दन्तिनाम् ॥ २ ॥
सन्नह्यतां पदातीनां हयानां चैव भारत ।
शङ्खदुन्दुभिनादश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ॥ ३ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नमभाषत ।
व्यूहं व्यूह महाबाहो मकरं शत्रुनाशनम् ॥ ४ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन धृष्टद्युम्नो महारथः ।
व्यादिदेश महाराज रथिनो रथिनां वरः ॥ ५ ॥
शिरोऽभूद् द्रुपदस्तस्य पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
चक्षुषी सहदेवश्च नकुलश्च महारथः ॥ ६ ॥
तुण्डमासीन्महाराज भीमसेनो महाबलः ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ ७ ॥
सात्यकिर्धर्मराजश्च व्यूहग्रीवां समास्थिताः ।
पृष्ठमासीन्महाराज विराटो वाहिनीपतिः ॥ ८ ॥
धृष्टद्युम्नेन सहितो महत्या सेनया वृतः ।
केकया भ्रातरः पञ्च वामपार्श्वं समाश्रिताः ॥ ९ ॥
धृष्टकेतुर्नरव्याघ्रश्चेकितानश्च वीर्यवान् ।

युद्धके निमित्त शिविरोंसे निकलके तैयार हुए ॥ दोनों ओरके युद्धके निमित्त तैयार होते हुए रथ और हाथियोंका महाघोर शब्द होने लगा ॥ पैदल और सवारोंको युद्धके निमित्त तैयार होने पर उनके सिंहनाद और शङ्ख, नगाडे आदिके शब्दसे तुमुल शब्द होके सब दिशाओंमें व्याप्त होगया ॥ (१–३)

तब राजा युधिष्ठिर धृष्टद्युम्नसे बोले, हे महाबाहो ! शत्रुओंको नष्ट करनेवाले मकरव्यूहकी रचना करो ॥ रथियोंमें मुख्य धृष्टद्युम्नने राजा युधिष्ठिरकी ऐसी आज्ञा सुन सम्पूर्ण रथियोंको मकर-व्यूह बनानेके निमित्त आज्ञा दी ॥ (४–५)

अर्जुन और द्रुपद उसके मस्तक, नकुल, सहदेव उसके नेत्र, भीमसेन उसके तुण्ड; अभिमन्यु, द्रौपदीके पांचों पुत्र, राक्षस घटोत्कच, सात्यकि और राजा युधिष्ठिर उसकी गर्दन, सेनापति विराट बडी सेना लेकर धृष्टद्युम्नके सङ्ग मिलकर उसके पीठस्थान पर स्थित हुए केकय देशीय राजा पांचों भाई उसके बायें पक्ष और पुरुषसिंह धृष्टकेतु और

सम्प्राप्यैव गता नाशं शलभा इव पावकम् ॥ ३४ ॥
ततो मत्स्याः केकयाश्च धनुर्वेदविशारदाः ।
परिवव्रुस्तदा पार्थं सहपुत्रं महारथम् ॥ ३५ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु सूर्येऽस्तमुपगच्छति ।
सर्वेषां चैव सैन्यानां प्रमोहः समजायत ॥ ३६ ॥
अवहारं ततश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव ।
सन्ध्याकाले महाराज सैन्यानां श्रान्तवाहनः ॥ ३७ ॥
पाण्डवानां कुरूणां च परस्परसमागमे ।
ते सेने भृशसंविग्ने ययतुः स्वं निवेशनम् ॥ ३८ ॥
ततः स्वशिबिरं गत्वा न्यविशंस्तत्र भारत ।
पाण्डवाः सृञ्जयैः सार्धं कुरवश्च यथाविधि ॥ ३९ ॥[३२८१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि
भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसावहारे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

सञ्जय उवाच— ते विश्रम्य ततो राजन्सहिताः कुरुपाण्डवाः ।
व्यतीतायां तु शर्वर्यां पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥ १ ॥

बढे थे, परन्तु फतिङ्गे अग्निमें न पहुंच कर उनके समीप जाते ही नष्ट होजाते हैं, वैसे ही वह सब वीर अर्जुनको प्राप्त न होकर ही उनके निकट जाते ही नष्ट होगये ॥ (३३-३४)

तिसके अनन्तर धनुर्विद्याको जाननेवाले मत्स्य और केकय देशीय वीरोंने पुत्रके सहित महारथ अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया। उस समयमें सूर्य धूलिसे उत्पन्न हुए बादलमें छिप गये उससे सम्पूर्ण सेना मोहित होगई, उस समय तुम्हारे पिता देवव्रती भीष्मके घोडे भी थक गये थे और सन्ध्याका समय भी उपस्थित हुआ था, इसीसे उन्होंने सेनाको युद्धसे निवृत्त होनेके निमित्त आज्ञा दी ॥ (३५-३७)

पाण्डव और कौरवोंकी सेना इस युद्धमें ही अत्यन्त ही विकल थी; वह विश्राम करनेके निमित्त अपने अपने शिबिरोंमें गई। अनन्तर पाण्डव, सृञ्जय और कौरव लोग अपने शिबिरोंमें जाकर वहां पर यथाविधि विश्राम करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ (३८-३९) [३२८१]

भीष्मपर्वमें चौहत्तर अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें पचत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले, महाराज ! इसके अनन्तर कौरव और पाण्डवलोग रात्रिके समय विश्राम करके सबेरा होते ही फिर

सम्प्राप्यैव गता नाशं शलभा इव पावकम् ॥ ३४ ॥
ततो मत्स्याः केकयाश्च धनुर्वेदविशारदाः ।
परिवव्रुस्तदा पार्थं सहपुत्रं महारथम् ॥ ३५ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु सूर्येऽस्तमुपगच्छति ।
सर्वेषां चैव सैन्यानां प्रमोहः समजायत ॥ ३६ ॥
अवहारं ततश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव ।
सन्ध्याकाले महाराज सैन्यानां श्रान्तवाहनः ॥ ३७ ॥
पाण्डवानां कुरूणां च परस्परसमागमे ।
ते सेने भृशसंविग्ने ययतुः स्वं निवेशनम् ॥ ३८ ॥
ततः स्वशिबिरं गत्वा न्यविशंस्तत्र भारत ।
पाण्डवाः सृञ्जयैः सार्धं कुरवश्च यथाविधि ॥ ३९ ॥[३२८१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि
भीष्मवधपर्वणि पञ्चमदिवसावहारे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥

सञ्जय उवाच— ते विश्रम्य ततो राजन्सहिताः कुरुपाण्डवाः ।
व्यतीतायां तु शर्वर्यां पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥ १ ॥

बढे थे, परन्तु फतिङ्गे अग्निमें न पहुंच कर उनके समीप जाते ही नष्ट होजाते हैं, वैसे ही वह सब वीर अर्जुनको प्राप्त न होकर ही उनके निकट जाते ही नष्ट होगये ॥ (३३–३४)

तिसके अनन्तर धनुर्विद्याको जाननेवाले मत्स्य और केकय देशीय वीरोंने पुत्रके सहित महारथ अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया। उस समयमें सूर्य धूलिसे उत्पन्न हुए बादलमें छिप गये उससे सम्पूर्ण सेना मोहित होगई, उस समय तुम्हारे पिता देवव्रत भीष्मके घोडे भी थक गये थे और सन्ध्याका समय भी उपस्थित हुआ था इसीसे उन्होंने सेनाको युद्धसे निवृत्त होनेके निमित्त आज्ञा दी ॥ (३५–३७)

पाण्डव और कौरवोंकी सेना इस युद्धमे ही अत्यन्त ही विकल थी; वह विश्राम करनेके निमित्त अपने अपने शिबिरोंमें गई। अनन्तर पाण्डव, सृञ्जय और कौरव लोग अपने शिबिरोंमें जाकर वहां पर यथाविधि विश्राम करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ (३८-३९) [३२८१]

भीष्मपर्वमें चौहत्तर अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें पचहत्तर अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! इसके अनन्तर कौरव और पाण्डवलोग रात्रिके समय विश्राम करके सबेरा होते ही फिर

तत्र शब्दो महानासीत्तव तेषां च भारत ।
युज्यतां रथमुख्यानां कल्प्यतां चैव दन्तिनाम् ॥ २ ॥
सन्नह्यतां पदातीनां हयानां चैव भारत ।
शङ्खदुन्दुभिनादश्च तुमुलः सर्वतोऽभवत् ॥ ३ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा धृष्टद्युम्नमभाषत ।
व्यूहं व्यूह महाबाहो मकरं शत्रुनाशनम् ॥ ४ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन धृष्टद्युम्नो महारथः ।
व्यादिदेश महाराज रथिनो रथिनां वरः ॥ ५ ॥
शिरोऽभूद् द्रुपदस्तस्य पाण्डवश्च धनञ्जयः ।
चक्षुषी सहदेवश्च नकुलश्च महारथः ॥ ६ ॥
तुण्डमासीन्महाराज भीमसेनो महाबलः ।
सौभद्रो द्रौपदेयाश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ ७ ॥
सात्यकिर्धर्मराजश्च व्यूहग्रीवां समास्थिताः ।
पृष्ठमासीन्महाराज विराटो वाहिनीपतिः ॥ ८ ॥
धृष्टद्युम्नेन सहितो महत्या सेनया वृतः ।
केकया भ्रातरः पञ्च वामपार्श्वं समाश्रिताः ॥ ९ ॥
धृष्टकेतुर्नरव्याघ्रश्चेकितानश्च वीर्यवान् ।

युद्धके निमित्त शिविरोंसे निकलके तैयार हुए ॥ दोनों ओरके युद्धके निमित्त तैयार होते हुए रथ और हाथियोंका महाघोर शब्द होने लगा ॥ पैदल और सवारोंको युद्धके निमित्त तैयार होने पर उनके सिंहनाद और शङ्ख, नगाडे आदिके शब्दसे तुमुल शब्द होके सब दिशाओंमें व्याप्त होगया ॥ (१–३)

तब राजा युधिष्ठिर धृष्टद्युम्नसे बोले, हे महाबाहो ! शत्रुओंको नष्ट करनेवाले मकरव्यूहकी रचना करो ॥ रथियोंमें मुख्य धृष्टद्युम्नने राजा युधिष्ठिरकी ऐसी आज्ञा सुन सम्पूर्ण रथियोंको मकर-व्यूह बनानेके निमित्त आज्ञा दी ॥ (४–५)

अर्जुन और द्रुपद उसके मस्तक, नकुल, सहदेव उसके नेत्र, भीमसेन उसके तुण्ड; अभिमन्यु, द्रौपदीके पांचों पुत्र, राक्षस घटोत्कच, सात्यकि और राजा युधिष्ठिर उसकी गर्दन; सेनापति विराट बडी सेना लेकर धृष्टद्युम्नके सङ्ग मिलकर उसके पीठस्थान पर स्थित हुए केकय देशीय राजा पांचों भाई उसके बायें पक्ष और धृष्टकेतु [illegible] और

दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थितौ व्यूहस्य रक्षणे ॥ १० ॥
पादयोस्तु महाराज स्थितः श्रीमान्महारथः ।
कुन्तिभोजः शतानीको महत्या सेनया वृतः ॥ ११ ॥
शिखण्डी तु महेष्वासः सोमकैः संवृतो बली ।
इरावांश्च ततः पुच्छे मकरस्य व्यवस्थितौ ॥ १२ ॥
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
सूर्योदये महाराज पुनर्युद्धाय दंशिताः ॥ १३ ॥
कौरवानभ्ययुस्तूर्णं हस्त्यश्वरथपत्तिभिः ।
समुच्छ्रितैर्ध्वजैश्छत्रैः शस्त्रैश्च विमलैः शितैः ॥ १४ ॥
व्यूढं दृष्ट्वा तु तत्सैन्यं पिता देवव्रतस्तव ।
क्रौञ्चेन महता राजन्प्रत्यव्यूहत वाहिनीम् ॥ १५ ॥
तस्य तुण्डे महेष्वासो भारद्वाजो व्यरोचत ।
अश्वत्थामा कृपश्चैव चक्षुरासीन्नरेश्वर ॥ १६ ॥
कृतवर्मा तु सहितः काम्बोजवरबाह्लिकैः ।
शिरस्यासीन्नरश्रेष्ठः श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ १७ ॥
ग्रीवायां शूरसेनश्च तव पुत्रश्च मारिष ।
दुर्योधनो महाराज राजभिर्बहुभिर्वृतः ॥ १८ ॥

चेकितान उसके दहिने पक्ष पर स्थित हुए ॥ (९-१०)

महाराज कुन्तिभोज और शतानीक बडी सेनाके सहित उसके दोनों पांवोंके स्थानों पर और सोमकवंशीय क्षत्रियोंसे युक्त होकर महाबलवान् शिखण्डी और इरावान् उसके पूंछ पर स्थित हुए ॥ हे भारत ! पाण्डवलोग इसी प्रकारसे व्यूह बनाकर सूर्य उदय होनेके पहिले ही युद्धके निमित्त तैयार होकर ध्वजा, छत्र, उत्तम शानोंसे बढाये हुए बाण, हाथी घोडे रथ और पैदल सेनाके सहित कौरवोंकी ओर युद्ध करनेके निमित्त गमन करने लगे ॥ (११-१४)

तुम्हारे पिता देवव्रती भीष्मने पाण्डवोंका मकर व्यूह देखके अपनी सेनाके वीरोंको बडे क्रौञ्चव्यूह बनानेके निमित्त आज्ञा दी ॥ महाधनुर्धारी भरद्वाजपुत्र द्रोणाचार्य उसके तुण्ड, अश्वत्थामा और कृपाचार्य उसके नेत्र, सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंमें श्रेष्ठ पुरुषसिंह कृतवर्मा कम्बोज देशीय राजा और बाह्लिकके सहित उसके शिरस्थलपर स्थित हुए; अनेक राजाओंसे युक्त तुम्हारे पुत्र महाराज

प्राग्ज्योतिषस्तु सहितो मद्रसौवीरकेकयैः ।
उरस्यभून्नरश्रेष्ठ महत्या सेनया वृतः ॥ १९ ॥
स्वसेनया च सहितः सुशर्मा प्रस्थलाधिपः ।
वामपक्षं समाश्रित्य दंशितः समवस्थितः ॥ २० ॥
तुषारा यवनाश्चैव शकाश्च सह चूचुपैः ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य भारत ॥ २१ ॥
श्रुतायुश्च शतायुश्च सौमदत्तिश्च मारिष ।
व्यूहस्य जघने तस्थू रक्षमाणाः परस्परम् ॥ २२ ॥
ततो युद्धाय सञ्जग्मुः पाण्डवाः कौरवैः सह ।
सूर्योदये महाराज ततो युद्धमभून्महत् ॥ २३ ॥
प्रतीयू रथिनो नागा नागाश्च रथिनो ययुः ।
हयारोहान्रथारोहा रथिनश्चाऽपि सादिनः ॥ २४ ॥
सादिनश्च हयान्राजन्रथिनश्च महारणे ।
हस्त्यारोहान्हयारोहा रथिनः सादिनस्तथा ॥ २५ ॥
रथिनः पत्तिभिः सार्धं सादिनश्चाऽपि पत्तिभिः ।
अन्योन्यं समरे राजन्प्रत्यधावन्नमर्षिताः ॥ २६ ॥

दुर्योधन और शूरसेन उसकी गर्दन, मद्र, सौवीर और केकय देशीय वीर योद्धाओंके सहित राजा भगदत्त बडी सेनाको लेकर उसके वक्ष स्थान पर स्थित हुए ॥ (१५-१९)

सुशर्माने अपनी सेनाके सहित वर्म धारण करके उसका बांयां पक्ष ग्रहण किया ॥ तुषार, शक, यवन और चूलिक देशीय योद्धा लोग उसके दहिने पक्ष पर स्थित हुए ॥ श्रुतायु, शतायु, और सौमदत्ति, ये लोग आपसमें एक दूसरेसे रक्षित होकर उसके चरण स्थानपर स्थित हुए ॥ (२०--२२)

सूर्यके उदय होनेके समय दोनों सेनाके सब योद्धा लोग इसी भांतिसे व्यूहबद्ध होकर रणभूमिमें आये। इसके अनन्तर महाघोर युद्ध होने लगा ॥ रथी रथियोंसे; हाथीवाले हाथियोंसे, घुडसवार घुडसवारोंसे, बहुत स्थानमें रथी घुडसवारोंसे, घुडसवार भी हाथी और रथी लोग भी गजपति घुडसवार और रथियोंके सङ्ग युद्ध करने लगे; फिर रथी लोग पैदल चलनेवाले वीरोंसे और घुडसवार भी पदाति सेनाके सङ्ग क्रोधपूर्वक युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए । (२३-२६)

भीमसेनार्जुनयमैर्गुप्ता चाऽन्यैर्महारथैः ।
शुशुभे पाण्डवी सेना नक्षत्रैरिव शर्वरी ॥ २७ ॥
तथा भीष्मकृपद्रोणशल्यदुर्योधनादिभिः ।
तवाऽपि च बभौ सेना ग्रहैर्द्यौरिव संवृता ॥ २८ ॥
भीमसेनस्तु कौन्तेयो द्रोणं दृष्ट्वा पराक्रमी ।
अभ्ययाज्जवनैरश्वैर्भारद्वाजस्य वाहिनीम् ॥ २९ ॥
द्रोणस्तु समरे क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः ।
विव्याध समरश्लाघी मर्माण्युद्दिश्य वीर्यवान् ॥ ३० ॥
दृढाहतस्ततो भीमो भारद्वाजस्य संयुगे ।
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ॥ ३१ ॥
स सङ्गृह्य स्वयं वाहान्भारद्वाजः प्रतापवान् ।
व्यधमत्पाण्डवीं सेनां तूलराशिमिवाऽनलः ॥ ३२ ॥
ते वध्यमाना द्रोणेन भीष्मेण च नरोत्तमाः ।
सृञ्जयाः केकयैः सार्धं पलायनपराऽभवन् ॥ ३३ ॥
तथैव तावकं सैन्यं भीमार्जुनपरिक्षतम् ।
मुह्यते तत्र तत्रैव समदेव वराङ्गना ॥ ३४ ॥

जिस प्रकारसे तारोंके उदय होनेसे रात्रि शोभायमान लगती है, वैसे ही पाण्डवोंकी सेना भीमसेन, अर्जुन, नकुल और सहदेवसे रक्षित होकर शोभित होने लगी ॥ और कौरवी सेना भी तारोंसे युक्त आकाशकी भांति भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य और दुर्योधन आदि महारथियोंसे रक्षित होकर शोभायमान हुई। (२७-२८)

पराक्रमी भीमसेनने द्रोणाचार्यको देखकर वेगवान् घोडोंसे युक्त रथपर चढके उनके सम्मुख गमन किया। द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर भीमसेनके मर्मस्थानोंको भेद करनेकी इच्छासे नौ बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ भीमसेनने द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर उनके सारथीको अपने अस्त्रोंसे मारकर यमपुरीमें भेज दिया। २९-३१

जिस प्रकार अग्नि रूईको भस्म कर देती है, वैसे ही प्रतापी द्रोणाचार्य पाण्डवोंकी सेनाको जलाने लगे ॥ सृञ्जयगण केकय-देशीय योद्धाओंके सहित भीष्म और द्रोणाचार्यके बाणोंसे विकल होके रणभूमिसे भागने लगे ॥ तुम्हारी सेना भी भीमसेन और अर्जुनके अस्त्रोंसे क्षत विक्षत शरीर होकर

अभिद्येतां ततो व्यूहौ तस्मिन्वीरवरक्षये ।
आसीद्व्यतिकरो घोरस्तव तेषां च भारत ॥ ३५ ॥
तदद्भुतमपश्याम तावकानां परैः सह ।
एकायनगताः सर्वे यदयुध्यन्त भारत ॥ ३६ ॥
प्रतिसंवार्य चाऽस्त्राणि तेऽन्योन्यस्य विशाम्पते ।
युयुधुः पाण्डवाश्चैव कौरवाश्च महाबलाः ॥ ३७ ॥ [३३१८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि षष्ठदिवसयुद्धारम्भे पञ्चसप्ततितमोऽध्याय ॥ ७५ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—एवं बहुगुणं सैन्यमेवं बहुविधं पुरा ।
व्यूढमेवं यथाशास्त्रममोघं चैव सञ्जय ॥ १ ॥
हृष्टमस्माकमत्यन्तमभिकामं च नः सदा ।
प्रह्वमव्यसनोपेतं पुरस्ताद् दृष्टविक्रमम् ॥ २ ॥
नाऽतिवृद्धमबालं च न कृशं न च पीवरम् ।
लघुवृत्तायतप्रायं सारगात्रमनामयम् ॥ ३ ॥
आत्तसन्नाहशस्त्रं च बहुशस्त्रपरिग्रहम् ।

मतवारी वराङ्गनाके समान जहां की तहां ही मोहित होकर खडी रही। (३२-३४)

उस वीरोंका नाश करनेवाले भयङ्कर युद्धमें तुम्हारी और पाण्डवोंकी सेनाओंमें महा घोर कोलाहल होने लगा, दोनों सेनाओंके व्यूह टूटने लगे ॥ दोनों ओरके योद्धा एकत्रित होके विपक्ष सेनासे युद्ध करने लगे; उसे मैने अद्भुत रूपसे अवलोकन किया ॥ कौरव और पाण्डव पक्षीय वीर योद्धालोग आपसमें अस्त्रोंको चलाते हुए एक दूसरेका वध करने लगे ॥ (३५-३७) [३३१८]

भीष्मपर्वमें पचहत्तर अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें छिहत्तर अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! हमारे अनेक प्रकारके सेनाके सब पुरुष उत्तम हैं और सब गुणोंसे पूर्ण है; उन लोगोंका व्यूह भी शास्त्रकी रीतिसे अमोघ होता है ॥ वह सब हम लोगोंके ऊपर सन्तुष्ट, अत्यन्तही अनुरक्त, विनयसे युक्त और व्यसनसे रहित हैं; पहिले उन लोगोंके बल पराक्रमकी परीक्षा करके तब सेनामें नियुक्त किया है ॥ वे लोग न तो बहुत बूढे और न अत्यन्त बाल्य अवस्थाके हैं, न वे लोग कृश वा बहुत मोटे हैं, वे लोग शीघ्र गमन करनेवाले सुघड शरीर, मजबूत, रोगरहित, व्यूह

असियुद्धे नियुद्धे च गदायुद्धे च कोविदम् ॥ ४ ॥
प्रासर्ष्टितोमरेष्वाजौ परिघेष्वायसेषु च ।
भिन्दिपालेषु शक्तीषु मुसलेषु च सर्वशः ॥ ५ ॥
कम्पनेषु च चापेषु कणपेषु च सर्वशः ।
क्षेपणीयेषु चित्रेषु मुष्टियुद्धेषु च क्षमम् ॥ ६ ॥
अपरोक्षं च विद्यासु व्यायामे च कृतश्रमम् ।
शस्त्रग्रहणविद्यासु सर्वासु परिनिष्ठितम् ॥ ७ ॥
आरोहे पर्यवस्कन्दे सरणे सान्तरप्लुते ।
सम्यक्प्रहरणे याने व्यपयाने च कोविदम् ॥ ८ ॥
नागाश्वरथयानेषु बहुशः सुपरीक्षितम् ।
परीक्ष्य च यथान्यायं वेतनेनोपपादितम् ॥ ९ ॥
न गोष्ठ्या नोपकारेण न च बन्धुनिमित्ततः ।
न सौहृदबलैर्वापि नाऽकुलीनपरिग्रहैः ॥ १० ॥
समृद्धजनमार्यं च तुष्टसम्बन्धिबान्धवम् ।
कृतोपकारभूयिष्ठं यशस्वि च मनस्वि च ॥ ११ ॥
स्वजनैस्तु नरैर्मुख्यैर्बहुशो दृष्टकर्मभिः ।

रचना जाननेवाले और बहुतम शस्त्रोंके जाननेवाले शूरवीर योद्धा हैं। (१-४)

वह सब लोग तलवार युद्ध, बाहुयुद्ध और गदायुद्धके जाननेवाले और प्रास, ऋष्टि, तोमर, लोहमयी परिघ, भिन्दिपाल, शक्ति, मूसल, कम्पन, धनुष, कणप और ढेले आदिको जानने तथा विचित्र मुष्टि युद्ध करनेमें समर्थ हैं॥ धनुर्वेद जाननेवाले व्यायाम करनेमें निपुण सब शस्त्रोंके ग्रहण करनेकी विद्या जाननेवाले, हाथी आदि वाहनों पर चढने उतरने, [illegible] करने, तैरने [illegible], और गमन करने [illegible] शत्रुओंके ऊपर प्रहार करनेमें निपुण हैं॥ (४—८)

हाथी, घोड़े, रथोंकी भी उत्तम रीतिसे परीक्षा की गई है। सेनाके योद्धाओंकी भली भांतिसे परीक्षा करके उचित रीतिसे उन्हें वेतन दिया जाता है। उन लोगोंको किसी सामाजिक सम्बन्ध या मित्रताके कारण अथवा और कोई नाता तथा सम्बन्धसे सेनामें नहीं नियत किया गया है; वे सब लोग मानी, यशस्वी और श्रेष्ठ पुरुषोंके [illegible] हैं। हमारे पक्षमें उनके सब [illegible] सबसे युक्त हैं; उनके [illegible]

लोकपालोपमैस्तात पालितं लोकविश्रुतम् ॥ १२ ॥
बहुभिः क्षत्रियैर्गुप्तं पृथिव्यां लोकसम्मतैः ।
अस्मानभिगतैः कामात्सबलैः सपदानुगैः ॥ १३ ॥
महोदधिमिवाऽऽपूर्णमापगाभिः समन्ततः ।
अपक्षैः पक्षिसङ्काशै रथैर्नागैश्च संवृतम् ॥ १४ ॥
नानायोधजलं भीमं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ।
क्षेपण्यसिगदाशक्तिशरप्राससमाकुलम् ॥ १५ ॥
ध्वजभूषणसम्बाधं रत्नपट्टसुसञ्चितम् ।
परिधावद्भिरश्वैश्च वायुवेगविकम्पितम् ॥ १६ ॥
अपारमिव गर्जन्तं सागरप्रतिमं महत् ।
द्रोणभीष्माभिसंगुप्तं गुप्तं च कृतवर्मणा ॥ १७ ॥
कृपदुःशासनाभ्यां च जयद्रथमुखैस्तथा ।
भगदत्तविकर्णाभ्यां द्रौणिसौबलबाह्लिकैः ॥ १८ ॥
गुप्तं प्रवीरैर्लोकैश्च सारवद्भिर्महात्मभिः ।

सन्तुष्ट हैं, तथा सत्कार पाते हैं और उन सब लोगोंका बहुत प्रकारसे उपकार किया गया है ॥ (९–१२)

हे सूत ! लोकमें विख्यात लोकपालके समान कर्म करनेवाले बलवान् मुख्य पुरुष उन लोगोंका पालन करते रहते हैं ॥ जो सब क्षत्रिय बलवान और इच्छाके अनुसार हमारे अनुरक्त हैं और पृथ्वीके बीच सब लोग जिनका सम्मान किया करते हैं वे सब बहुतसे अनुयायियोंके सहित सब योद्धाओंकी रक्षा करते रहते हैं । पक्ष रहित तो भी पक्षियोंके समान शीघ्र चलनेवाले रथ, और हाथियोंसे युक्त तथा नाना प्रकारके योधारूपी जलसे युक्त अनेक तरङ्गरूपी वाहनोंसे भयानक, गदा, शक्ति, बाण और प्रास आदि अस्त्ररूपी पत्थरोंसे युक्त; ध्वजा, वस्त्र और भूषणरूपी बाधके सहित रत्नोंकी पताकाओंसे अत्यन्त शोभित वायुके वेगसे लहराती हुई, दौडनेवाले घोडोंसे पूर्ण; वह सब सेना सब वीर और वाहनोंसे युक्त होकर चारों ओरसे मिलनेवाली नदीयोंसे युक्त महासागरके समान हुई है ॥ (१२–१६)

अपार समुद्रके समान गर्जनेवाली वह महा सेना द्रोणाचार्य, भीष्म, कृतवर्मा, कृपाचार्य, दुःशासन, जयद्रथ, भगदत्त, विकर्ण, अश्वत्थामा, शकुनि और बाह्लिक आदि पराक्रमी लोगोंसे

यदहन्यत संग्रामे दैवमत्र पुरातनम् ॥ १९ ॥
नैतादृशं समुद्योगं दृष्टवन्तो हि मानुषाः ।
ऋषयो वा महाभागाः पुराणा भुवि सञ्जय ॥ २० ॥
ईदृशोऽपि बलौघस्तु संयुक्तः शस्त्रसम्पदा ।
वध्यते यत्र संग्रामे किमन्यद्भागधेयतः ॥ २१ ॥
विपरीतमिदं सर्वं प्रतिभाति हि सञ्जय ।
यत्रेदृशं बलं घोरं पाण्डवान्नाऽतरद्रणे ॥ २२ ॥
पाण्डवार्थाय नियतं देवास्तत्र समागताः ।
युध्यन्ते मामकं सैन्यं यथाऽवध्यत सञ्जय ॥ २३ ॥
उक्तो हि विदुरेणाऽहं हितं पथ्यं च नित्यशः ।
न च जग्राह तन्मन्दः पुत्रो दुर्योधनो मम ॥ २४ ॥
तस्य मन्ये मतिः पूर्वं सर्वज्ञस्य महात्मनः ।
आसीत्यथागतं तात येन दृष्टमिदं पुरा ॥ २५ ॥
अथवा भाव्यमेवं हि सञ्जयैतेन सर्वथा ।

विख्यात महात्मा वीरोंसे रक्षित होकर भी जब मारी जा रही है, तब उसका कारण केवल पूर्वजन्मके कर्म अर्थात भाग्य ही कहना पडता है ॥ (१७-१९)

हे सञ्जय ! महात्मा प्राचीन पुरुष तथा ऋषियोंने भी ऐसा उद्योग कभी नहीं देखा था। इस प्रकारसे बलवान, शास्त्रकी विधिको जाननेवाले अर्थ और सम्पत्तिसे युक्त होने पर भी जब युद्धमें मेरी सेनाके लोग वध हो रहे हैं तब इसका कारण भाग्यके अतिरिक्त और क्या कहा जा सकता है ? इस प्रकार मेरी महाघोर सेना भी जब पाण्डवरूपी समुद्रके पार नहीं जा सकती है, तब मैं निश्चय करता हूं, कि [illegible] प्रकाशित होरहे हैं ॥ (२०-२२)

हे सञ्जय ! मुझे बोध होता है, देवता लोग पाण्डवोंके हितसाधनके निमित्त रणभूमिमें आकर जिस प्रकारसे मेरी सेना नष्ट होवे, वैसा ही उत्पात करके युद्ध करते होंगे ॥ पहिले विदुरने हितकारी और जो सब पथ्य वचन मुझे कहे थे, मेरे बुद्धिहीन पुत्र दुर्योधनने उन बातोंको नहीं ग्रहण किया ॥ इस समयमें जो सब घटना उपस्थित हो रही है उसे मुझे निश्चय बोध होता है, कि महात्मा विशाल विदुरने इन सब घटनाओंको पहिले ही जान लिया था ॥ इसही कारणसे उनका ऐसा विचार हुआ था । हे सञ्जय ! यह होनहार व्यापार

पुरा धात्रा यथा सृष्टं तत्तथा नैतदन्यथा ॥ २६ ॥ [३३४४]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्या संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि धृतराष्ट्रचिन्तायां षट्सप्ततितमोऽध्याय ॥ ७६ ॥

सञ्जय उवाच— आत्मदोषात्त्वया राजन्प्राप्तं व्यसनमीदृशम् ।
नहि दुर्योधनस्तानि पश्यते भरतर्षभ ॥ १ ॥
यानि त्वं दृष्टवान्राजन्धर्मसङ्करकारिते ।
तव दोषात्पुरा वृत्तं द्यूतमेव विशाम्पते ॥ २ ॥
तव दोषेण युद्धं च प्रवृत्तं सह पाण्डवैः ।
त्वमेवाऽद्य फलं भुंक्ष्व कृत्वा किल्बिषमात्मना ॥ ३ ॥
आत्मनैव कृतं कर्म आत्मनैवोपभुज्यते ।
इह च प्रेत्य वा राजंस्त्वया प्राप्तं यथातथम् ॥ ४ ॥
तस्माद्राजन्स्थिरो भूत्वा प्राप्येदं व्यसनं महत् ।
शृणु युद्धं यथा वृत्तं शंसतो मे नराधिप ॥ ५ ॥
भीमसेनः सुनिशितैर्बाणैर्भित्वा महाचमूम् ।
आससाद ततो वीरः सर्वान्दुर्योधनानुजान् ॥ ६ ॥
दुःशासनं दुर्विषहं दुःसहं दुर्मदं जयम् ।

पहिले ही से ब्रह्माने उत्पन्न कर रक्खा है, वह अवश्य ही होवेगा, कोई इसे अन्यथा नहीं कर सकेगा ॥ (२३-२६)

भीष्मपर्वमें छिहत्तर अध्याय समाप्त । [३३४४]

भीष्मपर्वमें सतत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! तुम अपने ही दोषसे ऐसे व्यसनमें फंसे हुए हो। हे भारत ! धर्मके उलट पुलटसे जो दोष होता है, उसको दुर्योधन नहीं देख सकता; परन्तु तुम यह जानते थे। महाराज ! तुम्हारे ही दोषसे पहिले जुएका खेल हुआ और तुम्हारे ही दोषसे इस समय पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध हो-रहा है; इससे तुम ही इस समय अपने किये हुए कर्मोंके फलको भोग करो ॥ अपने किये हुए कर्मोंका फलभोग तुम ही को करना होगा इससे तुम इस लोक अथवा पर लोकमें निज कर्मोंके फलको भोग करोगे । (१-५)

जो हो, अब मैं यथावत युद्धका वृत्तान्त वर्णन करता हूं; तुम इस उपस्थित व्यसनके निमित्त शोकित होके भी चित्त देके युद्धका वृत्तान्त सुनो । बलवान् भीमसेनने अपने तेज बाणोंसे महासेना भेद करके दुर्योधनके सब भाइयों-पर आक्रमण किया । महा बलवान्

जयत्सेनं विकर्णं च चित्रसेनं सुदर्शनम् ॥ ७ ॥
चारुचित्रं सुवर्माणं दुष्कर्णं कर्णमेव च।
एतांश्चाऽन्यांश्च सुबहून्समीपस्थान्महारथान् ॥ ८ ॥
धार्तराष्ट्रान्सुसंक्रुद्धान्दृष्ट्वा भीमो महारथः।
भीष्मेण समरे गुप्तां प्रविवेश महाचमूम् ॥ ९ ॥
अथाऽऽलोक्य प्रविष्टं तमूचुस्ते सर्व एव तु।
जीवग्राहं निगृह्णीमो वयमेनं नराधिपाः ॥ १० ॥
स तैः परिवृतः पार्थो भ्रातृभिः कृतनिश्चयैः।
प्रजासंहरणे सूर्यः क्रूरैरिव महाग्रहैः ॥ ११ ॥
सम्प्राप्य मध्यं सैन्यस्य न भीः पाण्डवमाविशत्।
यथा देवासुरे युद्धे महेन्द्रं प्राप्य दानवान् ॥ १२ ॥
ततः शतसहस्राणि रथिनां सर्वशः प्रभो।
उद्यतानि शरैस्तीक्ष्णैस्तमेकं परिवव्रिरे ॥ १३ ॥
स तेषां प्रवरान्योधान्हस्त्यश्वरथसादिनः।
जघान समरे शूरो धार्तराष्ट्रानचिन्तयन् ॥ १४ ॥

तेषां व्यवसितं ज्ञात्वा भीमसेनो जिघृक्षताम् ।
समस्तानां वधे राजन्मतिं चक्रे महामनाः ॥ १५ ॥
ततो रथं समुत्सृज्य गदामादाय पाण्डवः ।
जघान धार्तराष्ट्राणां तं बलौघं महार्णवम् ॥ १६ ॥
भीमसेने प्रविष्टे तु धृष्टद्युम्नोऽपि पार्षतः ।
द्रोणमुत्सृज्य तरसा प्रययौ यत्र सौबलः ॥ १७ ॥
निवार्य महतीं सेनां तावकानां नरर्षभः ।
आससाद रथं शून्यं भीमसेनस्य संयुगे ॥ १८ ॥
दृष्ट्वा विशोकं समरे भीमसेनस्य सारथिम् ।
धृष्टद्युम्नो महाराज दुर्मना गतचेतनः ॥ १९ ॥
अपृच्छद्बाष्पसंरुद्धो निःश्वसन्वाचमीरयन् ।
मम प्राणैः प्रियतमः क्व भीम इति दुःखितः ॥ २० ॥
विशोकस्तमुवाचेदं धृष्टद्युम्नं कृताञ्जलिः ।
संस्थाप्य मामिह बली पाण्डवेयः पराक्रमी ॥ २१ ॥
प्रविष्टो धार्तराष्ट्राणामेतद्बलमहार्णवम् ।
मामुक्त्वा पुरुषव्याघ्रः प्रीतियुक्तमिदं वचः ॥ २२ ॥

घोड़े, रथ और धृतराष्ट्रपुत्रोंकी कुछ भी पर्वाह न करके उन सब शूरवीरोंका वध करने लगे ॥ उन रथियोंके अभिप्रायको जानकर महामना भीमसेनने उन सब लोगोंके वध करनेकी इच्छा की । (१४-१५)

अनन्तर गदा लेके रथसे उतरकर धृतराष्ट्र-पुत्रोंके सेना-सागरमें प्रवेश करके सब शूरवीरोंपर प्रहार करना आरम्भ किया ॥ जब भीमने शत्रुओंकी सेनामें प्रवेश किया, तब पृषतनन्दन धृष्टद्युम्न अकस्मात् द्रोणाचार्यको त्यागकर जहांपर रणभूमिमें सुबलपुत्र शकुनि थे, वहां जाने लगे ॥ वह तुम्हारी महा सेनाको निवारण करते हुए भीमसेनके छोड़े रथके समीप पहुंचे ॥ (१६-१८)

उन्होंने उस युद्धभूमिमें भीमसेनके सारथी विशोकको देखकर दुःखित, चेतरहित और मलिनचित्तसे शोकित होकर लम्बी सांस लेते हुए भीमके सारथीसे यह पूछा; हे विशोक ! मेरे प्राणके समान प्यारे भीमसेन कहां है ? (१९-२०)

विशोकने हाथ जोड़कर धृष्टद्युम्नसे कहा कि मेरा त्यागकर भीमसेनने मुझे यहीं ठहराकर स्वयं धृतराष्ट्र

प्रतिपालय मां सूत नियम्याऽश्वान्मुहूर्तकम् ।
यावदेतान्निहन्म्यद्य य इमे मद्वधोद्यताः ॥ २३ ॥
ततो दृष्ट्वा प्रधावन्तं गदाहस्तं महाबलम् ।
सर्वेषामेव सैन्यानां संहर्षः समजायत ॥ २४ ॥
तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयानके ।
भित्त्वा राजन्महाव्यूहं प्रविवेश वृकोदरः ॥ २५ ॥
विशोकस्य वचः श्रुत्वा धृष्टद्युम्नोऽथ पार्षतः ।
प्रत्युवाच ततः सूतं रणमध्ये महाबलः ॥ २६ ॥
न हि मे जीवितेनाऽपि विद्यतेऽद्य प्रयोजनम् ।
भीमसेनं रणे हित्वा स्नेहमुत्सृज्य पाण्डवैः ॥ २७ ॥
यदि यामि विना भीमं किं मां क्षत्रं वदिष्यति ।
एकायनगते भीमे मयि चाऽवस्थिते युधि ॥ २८ ॥
अस्वस्ति तस्य कुर्वन्ति देवाः शक्रपुरोगमाः ।
यः सहायान्परित्यज्य स्वस्तिमानाव्रजेद् गृहम् ॥ २९ ॥
मम भीमः सखा चैव सम्बन्धी च महाबलः ।

दुर्योधनकी सेनामें अकेले ही प्रवेश किया है, उन्होंने मुझे यह त्याग वचन कहा है, कि "हे सारथी ! जो लोग मेरा वध करनेके निमित्त उद्यत हुए हैं मैं जबतक उन सबका वध करके नहीं लौटूं, तबतक अर्थात् मुहूर्त भर तुम इस ही स्थानपर ठहरके मेरी बाट देखना" (२२–२३)

तदनन्तर उस महाबलवान् भीमसेनको हाथमें गदा लेकर शत्रुओंकी ओर दौडते देखके सब सेनाके बीच हर्षित हुए [illegible] और युद्धमें [illegible] भीमसेन शत्रु-ओंके [illegible] के बीच प्रवेश किया है। (२४–२६)

महा बलवान् धृष्टद्युम्न युद्धभूमिमें विशोककी यह बात सुनकर फिर उससे कहने लगे ॥ आज रणभूमिमें पाण्डवोंके स्नेहकी उपेक्षा करनेसे भीमसेनके बिना मेरे जीनेसे क्या प्रयोजन है?। रणभूमिमें मेरे स्थित रहनेहीमें भीमसेनने अकेले ही सेनाके बीचमें मार्ग बनाकर गमन किया है; इस समय यदि मैं उनको छोडकर यहांसे चला जाऊं, तो सब क्षत्रिय वीर योद्धा मुझे क्या कहेंगे? (२६–२८)

जो मनुष्य सहायता करनेवाले पुरुषोंको युद्धमें छोडके कुशलसे घर लौट जाता है, इन्द्र आदि देवता उसका

भक्तोऽस्मान्भक्तिमांश्चाऽहं तमप्यरिनिषूदनम् ॥ ३० ॥
सोऽहं तत्र गमिष्यामि यत्र यातो वृकोदरः ।
निघ्नन्तं मां रिपून्पश्य दानवानिव वासवम् ॥ ३१ ॥
एवमुक्त्वा ततो वीरो ययौ मध्येन भारत ।
भीमसेनस्य मार्गेषु गदाप्रमथितैर्गजैः ॥ ३२ ॥
स ददर्श तदा भीमं दहन्तं रिपुवाहिनीम् ।
वातो वृक्षानिव बलात्प्रभञ्जन्तं रणे रिपून् ॥ ३३ ॥
ते वध्यमानाः समरे रथिनः सादिनस्तथा ।
पादाता दन्तिनश्चैव चक्रुरार्तस्वरं महत् ॥ ३४ ॥
हाहाकारश्च सञ्जज्ञे तव सैन्यस्य मारिष ।
वध्यतो भीमसेनेन कृतिना चित्रयोधिना ॥ ३५ ॥
ततः कृतास्त्रास्ते सर्वे परिवार्य वृकोदरम् ।
अभीताः समवर्तन्त शस्त्रवृष्ट्या परन्तप ॥ ३६ ॥
अभिद्रुतं शस्त्रभृतां वरिष्ठं समन्ततः पाण्डवं लोकवीरः ।
सैन्येन घोरेण सुसंहितेन दृष्ट्वा बली पार्षतो भीमसेनम् ॥ ३७ ॥

कल्याण नहीं होने देते । भीमसेन मेरे सखा, सम्बन्धी और भक्त हैं, मेरी भी उस शत्रुनाशन भीमसेनमें भक्ति है, इससे जहां पर वह गये हैं, मैं भी उसी स्थानपर जाऊंगा, मेरे वहां जाने पर तुम हम लोगोंको इस भांतिसे शत्रुओं-का संहार करते हुए देखोगे जैसे इन्द्र दानवोंका नाश करते हैं । (३०-३१)

वीर धृष्टद्युम्न विशोकसे ऐसा कह कर भीमसेनकी गदासे मरे हुए हाथि-योंके चिन्ह देखते हुए, उस ही मार्गसे जाने लगे ॥ उन्होंने देखा कि भीमसेन शत्रुओंकी सेनाको अपनी गदासे वध कर रहे हैं, और बहुतसे राजाओंको इस भांतिसे मारके पृथ्वीमें गिराते हैं, जैसे प्रचण्ड वायु वृक्षको उखाडके गिरा देता है ॥ रथी, घुडसवार, हाथी और पैदल चलनेवाली सेना भीमसेनके प्रहारसे पीडित होकर आर्त्तनाद करने लगी ॥ जब आश्चर्यकारक युद्ध करनेवाले बृहत्‌ भीम योद्धओंको मारने लगे, तब तुम्हारी सेनामें अत्यन्त ही हाहाकार मच रहा था ॥ (३२-३५)

अनन्तर सब शस्त्रविद्याके जाननेवाले शूर वीर योद्धा भयको छोडकर चारों ओरसे भीमसेनको घेर कर उनके ऊपर अपने शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे ॥ पृषत-नन्दन बलवान् धृष्टद्युम्न शस्त्रधारियोंमें

समभ्युदीर्णांश्च तवाऽऽत्मजांस्तथा निशम्य वीरानभितः स्थितान्रणे ।
जिघांसुरुग्रं द्रुपदात्मजो युवा प्रमोहनास्त्रं युयुजे महारथः ॥ ४४ ॥
क्रुद्धो भृशं तव पुत्रेषु राजन्दैत्येषु यद्वत्समरे महेन्द्रः ।
ततो व्यमुह्यन्त रणे नृवीराः प्रमोहनास्त्राहतबुद्धिसत्वाः ॥ ४५ ॥
प्रदुद्रुवुः कुरवश्चैव सर्वे सवाजिनागाः सरथाः समन्तात् ।
परीतकालानिव नष्टसंज्ञान्मोहोपेतांस्तव पुत्रान्निशम्य ॥ ४६ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
द्रुपदं त्रिभिरासाद्य शरैर्विव्याध दारुणैः ॥ ४७ ॥
सोऽतिविद्धस्ततो राजन्रणे द्रोणेन पार्थिवः ।
अपायाद् द्रुपदो राजन्पूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ४८ ॥
जित्वा तु द्रुपदं द्रोणः शङ्खं दध्मौ प्रतापवान् ।
तस्य शङ्खस्वनं श्रुत्वा वित्रेसुः सर्वसोमकाः ॥ ४९ ॥
अथ शुश्राव तेजस्वी द्रोणः शस्त्रभृतां वरः ।
प्रमोहनास्त्रेण रणे मोहितानात्मजांस्तव ॥ ५० ॥
ततो द्रोणो महाराज त्वरितोऽभ्याययौ रणात् ।

को रणभूमिमें सन्मुख आया हुआ तथा युद्धके निमित्त उपस्थित देख और उनके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर दुःखित नहीं हुए। (४१—४४)

उन्होंने अत्यन्त ही क्रुद्ध होकर जैसे देवताओंके स्वामी इन्द्र दानवोंका नाश करते हैं वैसे ही तुम्हारे पुत्रोंके नाश करनेकी इच्छासे प्रमोहनास्त्रका प्रयोग किया। वे सब वीरपुरुष धृष्टद्युम्नके प्रमोहन अस्त्रसे मोहित होकर चेतरहित तथा शक्ति हीन होगये ॥ तब सम्पूर्ण सेना तुम्हारे पुत्रोंको मोहित अर्थात् चेतरहितके समान देखकर घोड़े हाथी और रथोंके सहित चारों ओर भागने लगी ॥ (४४-४६)

इसी समय शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्यने युद्धमें द्रुपदको महा कठोर तीन बाणोंसे विद्ध किया ॥ वह द्रोणाचार्यके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर पहिलेके वैरको स्मरण करते हुए रणभूमिसे भाग गये ॥ प्रतापी द्रोणाचार्यने द्रुपदको पराजित करके अपना शङ्ख बजाया. उस शङ्खके शब्दको सुनकर सब सोमक वंशीय क्षत्रिय भयभीत होगये॥ ४७-४९

अनन्तर राजहितैषी सब शस्त्रोंके जाननेवाले तेजस्वी महा धनुर्धारी प्रतापी द्रोणाचार्यने तुम्हारे पुत्रोंको प्रमोहन अस्त्रसे मोहित सुनकर शीघ्रताके सहित

तान्प्रयातान्महेष्वासानभिमन्युपुरोगमान् ।
भीमसेनभयाविष्टा धृष्टद्युम्नविमोहिता ॥ ६० ॥
न संवारयितुं शक्ता तव सेना जनाधिप ।
मदमूर्छान्वितात्मा वै प्रमदेवाऽध्वनि स्थिता ॥ ६१ ॥
तेऽभिजाता महेष्वासाः सुवर्णविकृतध्वजाः ।
परीप्सन्तोऽभ्यधावन्त धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ॥ ६२ ॥
तौ च दृष्ट्वा महेष्वासावभिमन्युपुरोगमान् ।
बभूवतुर्मुदा युक्तौ निघ्नन्तौ तव वाहिनीम् ॥ ६३ ॥
दृष्ट्वा तु सहसा यान्तं पाञ्चाल्यो गुरुमात्मनः ।
नाऽशंसत वधं वीरः पुत्राणां तव भारत ॥ ६४ ॥
ततो रथं समारोप्य कैकेयस्य वृकोदरम् ।
अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धो द्रोणमिष्वस्त्रपारगम् ॥ ६५ ॥
तस्याऽभिपततस्तूर्णं भारद्वाजः प्रतापवान् ।
क्रुद्धश्चिच्छेद बाणेन धनुः शत्रुनिबर्हणः ॥ ६६ ॥
अन्यांश्च शतशो बाणान्प्रेषयामास पार्षते ।
दुर्योधनहितार्थाय भर्तृपिण्डमनुस्मरन् ॥ ६७ ॥

कौरवोंकी रथसेनाको भेद करने लगे ॥ जैसे मदसे मूर्च्छित प्रमदा स्त्री अपनेको निवारण करनेमें समर्थ नहीं होती, वैसे ही भीमसेनके डरसे भयभीत और धृष्टद्युम्नके बाणोंसे मोहित हुई वह कौरवोंकी सेना पाण्डवोंकी ओरके अभिमन्यु आदि महा धनुर्धारियोंको नहीं निवारण कर सकी ॥ (५९—६१)

सुवर्ण ध्वजाओंसे युक्त पाण्डवोंकी सेनाके महाधनुर्धारी वीर लोग धृष्टद्युम्न और भीमसेनके समीप जानेकी इच्छासे शत्रुओंका वध करते हुए उनके आगे दौडे। धृष्टद्युम्न और भीमसेन शत्रु सेनाका नाश करते हुए अभिमन्यु आदि महाधनुर्धर वीरोंको आते हुए देखकर आनन्दित हुए ॥ (६२—६३)

धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्यको सम्मुख आते हुए देखकर फिर तुम्हारे पुत्रोंके वध करनेकी इच्छा नहीं की; और भीमसेनको केकयराजके रथपर चढाकर क्रुद्ध होकर धनुर्वेदके जाननेवाले द्रोणाचार्यकी ओर दौडे ॥ (६४—६५)

शत्रुओंके नाश करनेवाले प्रतापी द्रोणाचार्यने धृष्टद्युम्नको सम्मुख आते देखकर उनका धनुष एक ही बाणसे काट डाला। और दुर्योधनके हितके लिये

अथाऽन्यद्धनुरादाय पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणं विव्याध विंशत्या रुक्मपुङ्खैः शिलाशितैः ॥ ६८ ॥
तस्य द्रोणः पुनश्चापं चिच्छेदाऽमित्रकर्शनः ।
हयांश्च चतुरस्तूर्णं चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ६९ ॥
वैवस्वतक्षयं घोरं प्रेषयामास भारत ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ७० ॥
हताश्वात्स रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
आरुरोह महाबाहुरभिमन्योर्महारथम् ॥ ७१ ॥
ततः सरथनागाश्वा समकम्पत वाहिनी ।
पश्यतो भीमसेनस्य पार्षतस्य च पश्यतः ॥ ७२ ॥
तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा द्रोणेनाऽमिततेजसा ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं समस्तास्ते महारथाः ॥ ७३ ॥
वध्यमानं तु तत्सैन्यं द्रोणेन निशितैः शरैः ।
व्यभ्रमत्तत्र तत्रैव क्षोभ्यमाण इवाऽर्णवः ॥ ७४ ॥
तथा दृष्ट्वा च तत्सैन्यं जहृषे तावकं बलम् ।
दृष्ट्वाऽऽचार्यं सुसंक्रुद्धं पतन्तं रिपुवाहिनीम् ।

चुक्रुशुः सर्वतो योधाः साधु साध्विति भारत ॥७५॥ [३४१९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सकुलयुद्धे द्रोणपराक्रमे सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥

सञ्जय उवाच— ततो दुर्योधनो राजा मोहात्प्रत्यागतस्तदा ।
शरवर्षैः पुनर्भीमं प्रत्यवारयदच्युतम् ॥ १ ॥
एकीभूतास्ततश्चैव तव पुत्रा महारथाः ।
समेत्य समरे भीमं योधयामासुरुद्यताः ॥ २ ॥
भीमसेनोऽपि समरं सम्प्राप्य स्वरथं पुनः ।
समारुह्य महाबाहुर्ययौ येन तवाऽऽत्मजः ॥ ३ ॥
प्रगृह्य च महावेगं परासुकरणं दृढम् ।
सज्जं शरासनं सङ्ख्ये शरैर्विव्याध ते सुतम् ॥ ४ ॥
ततो दुर्योधनो राजा भीमसेनं महाबलम् ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन भृशं मर्मण्यताडयत् ॥ ५ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासस्तव पुत्रेण धन्विना ।
क्रोधसंरक्तनयनो वेगेनाऽऽक्षिप्य कार्मुकम् ॥ ६ ॥
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ।

शत्रुओंकी सेनाको नाश करते हुए देखकर आनन्दित हुए, और धन्य धन्य करके ऊंचे स्वरसे उनकी प्रशंसा करने लगे ॥ (७४-७५)[३४१९]

भीष्मपर्वमें सतत्तर अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें अठत्तर अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे भारत ! अनन्तर राजा दुर्योधन मोहसे छूटके महापराक्रमी भीमसेनको फिर अपने बाणोंकी वर्षासे निवारण करने लगे, और तुम्हारे सब पुत्र भी फिर मिलकर इकट्ठे होके भीमसेनके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ (१-२)

भीमसेन भी युद्धमें फिर अपने रथपर चढके तुम्हारे पुत्रोंके समीप उपस्थित हुए; और शत्रुओंके प्राणका नाश करने वाला एक बडा वेगवान् धनुष ग्रहण करके तुम्हारे पुत्रोंको बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ (३-४)

अनन्तर राजा दुर्योधनने भी भीमसेनको मर्म स्थानमें तीक्ष्ण नाराच बाणोंसे प्रहार किया। महा बलवान् भीमसेन उससे अत्यन्त विद्ध होके क्रोधसे लाल नेत्र करके, शीघ्रतासे धनुष खींचके तीन बाणोंसे दुर्योधनकी दोनों भुजा और छातीमें प्रहार किया।

महाहवे दीप्यमानान्सुवर्णमुकुटोज्ज्वलान् ।
तत्यजुः समरे भीमं तव पुत्रा महाबलाः ॥ १६ ॥
तान्नाऽमृष्यत कौन्तेयो जीवमाना गता इति ।
अन्वीय च पुनः सर्वास्तव पुत्रानपीडयत् ॥ १७ ॥
अथाऽभिमन्युं समरे भीमसेनेन सङ्गतम् ।
पार्षतेन च सम्प्रेक्ष्य तव सैन्ये महारथाः ॥ १८ ॥
दुर्योधनप्रभृतयः प्रगृहीतशरासनाः ।
भृशमश्वैः प्रजवितैः प्रययुर्यत्र ते रथाः ॥ १९ ॥
अपराह्णे महाराज प्रावर्तत महारणः ।
तावकानां च बलिनां परेषां चैव भारत ॥ २० ॥
अभिमन्युर्विकर्णस्य हयान्हत्वा महाहवे ।
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत ॥ २१ ॥
हताश्वं रथमुत्सृज्य विकर्णस्तु महारथः ।
आरुरोह रथं राजंश्चित्रसेनस्य भारत ॥ २२ ॥
स्थितावेकरथे तौ तु भ्रातरौ कुलवर्धनौ ।

स्थित सूर्य और अग्निके समान तेजस्वी, महाधनुर्धारी, प्रकाशमान श्रीसे युक्त, महा युद्धमें प्रकाशमान सुवर्ण मुकुटसे शोभित अभिमन्यु आदि शूर वीरोंको आते हुए देखकर भीमसेनको छोडकर वहांसे जाने लगे ॥ (१३-१६)

तुम्हारे पुत्र लोग जो जीते ही वहांसे जाने लगे वह कुन्तीपुत्र भीमसेनसे नहीं सहा गया वह फिर उन लोगोंको पीछा करते हुए उन्हें पीडित करने लगे ॥ तब धनुषधारी दुर्योधन आदि तुम्हारे सब पुत्र अपनी सेनाके बीच भीमसेन और धृष्टद्युम्नके सहित इकट्ठे हुए अभिमन्युको देखकर शीघ्र गमन करनेवाले घोडोंसे युक्त रथपर चढके जहां अभिमन्यु आदि महारथी थे, वहांपर गमन किया ॥ तिसके अनन्तर अपराह्ण समयमें तुम्हारी ओरके वीरों और शत्रुओंसे महाघोर युद्ध होने लगा ॥ (१७--२०)

हे भारत ! अभिमन्युने उस युद्धमें विकर्णके सब घोडोंको मारकर उनके ऊपर पचीस क्षुद्रक अस्त्र चलाये ॥ महारथ विकर्ण घोडोंसे रहित रथको त्यागकर चित्रसेनके प्रकाशमान रथपर जा चढे ॥ विकर्ण और चित्रसेन दोनों कुल वर्धन भाइयोंके एक ही रथपर चढनेके अनन्तर अभिमन्युने अपने

कुरूणां चैव सैन्येषु पाण्डवानां च भारत ॥ ३१ ॥
शोणितोदं शरावर्तं गजद्वीपं हयोर्मिणम् ।
रथनौभिर्नरव्याघ्राः प्रतेरुः सैन्यसागरम् ॥ ३२ ॥
छिन्नहस्ता विकवचा विदेहाश्च नरोत्तमाः ।
दृश्यन्ते पतितास्तत्र शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३३ ॥
निहतैर्मत्तमातङ्गैः शोणितौघपरिप्लुतैः ।
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ पर्वतैराचिता यथा ॥ ३४ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम तव तेषां च भारत ।
न तत्राऽऽसीत्पुमान्कश्चिद्यो युद्धं नाऽभिकांक्षति ॥३५॥
एवं युयुधिरे वीराः प्रार्थयाना महद्यशः ।
तावकाः पाण्डवैः सार्धमाकांक्षन्तो जयं युधि ॥३६॥ [३४५५]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि
भीष्मवधपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥

सञ्जय उवाच– ततो दुर्योधनो राजा लोहितायति भास्करे ।
संग्रामरभसो भीमं हन्तुकामोऽभ्यधावत ॥ १ ॥
तमायान्तमभिप्रेक्ष्य नृवीरं दृढवैरिणम् ।

पड़ने लगा ॥ युद्ध भूमिमें कौरव और पाण्डवोंकी सेनामें सब ओर कबंध उठने लगे ॥ तथा रुधिरका समुद्र दिखाई देने लगा। उसमें बाण भंवर, सब मरे हाथी टापू और घोडे तरङ्ग रूपी दीख पड़ने लगे। पुरुषसिंह रथरूपी नौकासे उससे पार होते हुए दिखाई देने लगे ॥ (२९–३२)

सहस्रों श्रेष्ठ पुरुषोंको हस्त रहित, कवचहीन और शरीरसे विकल हुए पृथ्वी पर पडे हुए मैंने अवलोकन किया। रुधिरसे युक्त मरे हुए मतवारे हाथी पहाडके समान दीखपडते थे ॥

वहांपर मैंने यह आश्चर्य देखा, कि तुम्हारी सेना तथा पाण्डवोंकी सेनामें ऐसा कोई भी पुरुष न था, जो युद्धकी अभिलाषा न करता हो ॥ इसी प्रकारसे तुम्हारी सेनाके वीर लोग जयकी अभिलाषा करते हुए पाण्डवोंकी सेनासे युद्ध करने लगे ॥ (३३–३६, [३४५५]

भीष्मपर्वमें अठत्तर अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें उनासी अध्याय।

सञ्जय बोले, हे महाराज! इसके अनन्तर सूर्यके अस्त होनेके समयमें उत्साही राजा दुर्योधन भीमसेनके वध करनेकी इच्छासे उनकी ओर दौडे ॥

समाधत्त शरान्घोरान्महाशनिसमप्रभान् ॥ ९ ॥
षड्विंशतिमसंक्रुद्धो मुमोचाऽऽशु सुयोधने ।
ज्वलिताग्निशिखाकारान्वज्रकल्पानजिह्मगान् ॥ १० ॥
ततोऽस्य कार्मुकं द्वाभ्यां सूतं द्वाभ्यां च विव्यधे ।
चतुर्भिरश्वाञ्जवनाननयद्यमसादनम् ॥ ११ ॥
द्वाभ्यां च सुविकृष्टाभ्यां शराभ्यामरिमर्दन ।
छत्रं चिच्छेद समरे राज्ञस्तस्य नरोत्तम ॥ १२ ॥
षड्भिश्च तस्य चिच्छेद ज्वलन्तं ध्वजमुत्तमम् ।
छित्त्वा तं च ननादोच्चैस्तव पुत्रस्य पश्यतः ॥ १३ ॥
रथाच्च स ध्वजः श्रीमान्नानारत्नविभूषितात् ।
पपात सहसा भूमौ विद्युज्जलधरादिव ॥ १४ ॥
ज्वलन्तं सूर्यसङ्काशं नागं मणिमयं शुभम् ।
ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ॥ १५ ॥
अथैनं दशभिर्बाणैस्तोत्त्रैरिव महाद्विपम् ।
आजघान रणे वीरं स्मयन्निव महारथः ॥ १६ ॥
ततः स राजा सिन्धूनां रथश्रेष्ठो महारथः ।

हुए वज्रके समान भयानक अग्निकी शिखाके समान जलते हुए सरल गमन करनेवाले छब्बीस चोखे बाणोंको दुर्योधनके ऊपर शीघ्र चलाया। फिर दो बाणोंसे उनके धनुष और दो बाणोंसे सारथीको विद्ध करके फिर चार बाणोंसे उनके वेगवान् घोड़ोंको मारके गिरा दिया ॥ (९-१२)

फिर अपने बाणोंको चलाकर दुर्योधनके रथसे उनके उत्तम छत्रको काटके गिराया और तीन बाणोंसे उनकी उत्तम ध्वजाको रथपरसे काटके उनके सम्मुख ही में ऊंचे स्वरसे सिंहनाद करने लगे. जैसे बादलसे निकल कर बिजली गिरती है वैसे ही दुर्योधनके रथसे नाना रत्नोंसे भूषित सुवर्ण युक्त उत्तम ध्वजा कटके गिर पड़ी। सम्पूर्ण राजा कुरुराज लोग दुर्योधनकी सूर्यके समान प्रकाशमान मणियोंसे युक्त शोभायमान हाथीके चिन्हसे युक्त उस उज्ज्वल ध्वजा को कटी हुई देखने लगे। (१३-१५)

अनन्तर महारथ भीमसेन हंसते हंसते अंकुशसे गजराजको पीड़ित करनेके समान दस बाणोंसे कुरुराज दुर्योधनके ऊपर प्रहार किया। अनन्तर नदियोंके प्रधान सिन्धुराज जयद्रथ महा

ववृषुर्मार्गणैस्तीक्ष्णैर्गिरिं मेरुमिवाऽम्बुदाः ।
स पीड्यमानः समरे कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ॥ २६ ॥
अभिमन्युर्महाराज तावकान्समकम्पयत् ।
यथा देवासुरे युद्धे वज्रपाणिर्महासुरान् ॥ २७ ॥
विकर्णस्य ततो भल्लान्प्रेषयामास भारत ।
चतुर्दश रथश्रेष्ठो घोरानाशीविषोपमान् ॥ २८ ॥
स तैर्विकर्णस्य रथात्पातयामास वीर्यवान् ।
ध्वजं सूतं हयांश्चैव नृत्यमान इवाऽऽहवे ॥ २९ ॥
पुनश्चाऽन्याञ्शरान्पीतानकुण्ठाग्राञ्शिलाशितान् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो विकर्णाय महाबलः ॥ ३० ॥
ते विकर्णं समासाद्य कङ्कबर्हिणवाससः ।
भित्त्वा देहं गता भूमिं ज्वलन्त इव पन्नगाः ॥ ३१ ॥
ते शरा हेमपुङ्खाग्रा व्यदृश्यन्त महीतले ।
विकर्णरुधिराक्लिन्ना वमन्त इव शोणितम् ॥ ३२ ॥
विकर्णं वीक्ष्य निर्भिन्नं तस्यैवाऽन्ये सहोदराः ।
अभ्यद्रवन्त समरे सौभद्रप्रमुखान्रथान् ॥ ३३ ॥

वे सब लोग क्रुद्ध होकर अभिमन्यु के ऊपर इस प्रकारसे बाणोंको वर्षाने लगे जैसे बादल मेरु पर्वत पर पानी वर्षाते है। सब अस्त्रोंको जाननेवाला अभिमन्यु उन सब वीरोंके बाणोंसे पीडित होकर जैसे देव असुरोंके युद्धमें देवताओंके स्वामी इन्द्रने महा घोर असुरोंको कम्पित किया था, वैसे ही उन सबको अपने बाणोंसे कपाने लगा ॥ (२५–२७)

रथियोंमें मुख्य अभिमन्यु मानो नृत्य करता हुआ विकर्णकी ओर विषधारी सर्पके समान भयङ्कर चौदह बाण चलाकर उनके रथकी ध्वजा काट दी. सारथी और घोडोंको भी मारकर पृथ्वी में गिरा दिया। फिर दूसरी बार निर्भय होकर उनसे पानीसे बुझाये हुए बाणों से विकर्णके ऊपर प्रहार किया ॥ वे सब कङ्क और मोरपङ्खसे युक्त बाण विकर्णके शरीरको भेदकर प्रकाशमान सर्पके समान पृथ्वीमें प्रवेश कर गये। २८-३१

उस समय सुवर्णभूषित वे सब बाण विकर्णके रुधिरसे युक्त होकर पृथ्वीमें रुधिर गिराने लगे। विकर्णके दूसरे भाई उन्हें बाणोंसे भिन्न देखकर अभिमन्यु आदि वीरोंकी ओर वेगसे दौडे। वे लोग [illegible] सहित इनके

क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन प्रहसन्निव भारत ।
तं दृष्ट्वा छिन्नधन्वानं शतानीकः सहोदरम् ॥ ४२ ॥
अभ्यपद्यत तेजस्वी सिंहवन्निनदन्मुहुः ।
शतानीकस्तु समरे दृढं विस्फार्य कार्मुकम् ॥ ४३ ॥
विव्याध दशभिस्तूर्णं जयत्सेनं शिलीमुखैः ।
ननाद सुमहानादं प्रभिन्न इव वारणः ॥ ४४ ॥
अथाऽन्येन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना ।
शतानीको जयत्सेनं विव्याध हृदये भृशम् ॥ ४५ ॥
तथा तस्मिन्वर्तमाने दुष्कर्णो भ्रातुरन्तिके ।
चिच्छेद समरे चापं नाकुलेः क्रोधमूर्च्छितः ॥ ४६ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय भारसाहमनुत्तमम् ।
समादत्त शरान्घोराञ्शतानीको महाबलः ॥ ४७ ॥
तिष्ठ तिष्ठेति चाऽऽमन्त्र्य दुष्कर्णं भ्रातुरग्रतः ।
मुमोचाऽस्मै शितान्बाणाञ्ज्वलितान्पन्नगानिव ॥ ४८ ॥
ततोऽस्य धनुरेकेन द्वाभ्यां सूतं च मारिष ।
चिच्छेद समरे तूर्णं तं च विव्याध सप्तभिः ॥ ४९ ॥
अश्वान्मनोजवांस्तस्य कर्बुरान्वातरंहसः ।
जघान निशितैस्तूर्णं सर्वान्द्वादशभिः शरैः ॥ ५० ॥

शतानीक अपने भाईका धनुष कटा हुआ देखकर सिंहके समान गर्जता हुआ जयत्सेनके समीप आया और अत्यन्त शीघ्रतासे धनुष खींचकर दश बाणोंसे उन्हें विद्ध किया। फिर सब आवरणोंको भेदनेवाले एक तीक्ष्ण बाणसे उनके हृदयमें प्रहार किया ॥ (४१-४५)

उस युद्धमें दुष्कर्ण क्रोधसे मूर्छित होके अपने भाई जयत्सेनके समीप ही स्थित होके नकुल पुत्र शतानीकके धनुषको बाण समेत काट डाला। महाबली शतानीक और एक दूसरा बडा दृढ धनुष ग्रहण किया और दुष्कर्णको उनके भाईके सम्मुख ही "खडा रह, खडा रह !" कहके सर्पके समान तीक्ष्ण बाण उनके ऊपर चलाने लगे ॥ (४६-४८)

अनन्तर एक बाणसे उनके धनुष और दो बाणोंसे सारथीको काट कर उनको सात बाणोंसे विद्ध किया, फिर उनके वायुके समान शीघ्र गमन करने वाले चित्रित घोडोंको उत्तम पानीमें डूबे हुए बारह बाणोंसे मारके पृथ्वीमें

तेषां सुतुमुलं युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
अवर्तत महारौद्रं निघ्नतामितरेतरम् ॥ ५९ ॥
अन्योन्यागस्कृतां राजन्यमराष्ट्रविवर्धनम् ।
मुहूर्तास्तमिते सूर्ये चक्रुर्युद्धं सुदारुणम् ॥ ६० ॥
रथिनः सादिनश्चाऽथ व्यकीर्यन्त सहस्रशः ।
ततः शान्तनवः क्रुद्धः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ६१ ॥
नाशयामास सेनां तां भीष्मस्तेषां महात्मनाम् ।
पञ्चालानां च सैन्यानि शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥ ६२ ॥
एवं भित्त्वा महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनी ।
कृत्वाऽवहारं सैन्यानां ययौ स्वशिबिरं नृप ॥ ६३ ॥
धर्मराजोऽपि तत्प्रेक्ष्य धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
मूर्ध्नि चैनावुपाघ्राय प्रहृष्टः शिबिरं ययौ ॥ ६४ ॥ [३५१९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
षष्ठदिवसावहारे ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥

सञ्जय उवाच— अथ शूरा महाराज परस्परकृतागसः ।
जग्मुः स्वशिबिराण्येव रुधिरेण समुक्षिताः ॥ १ ॥

महाभयङ्कर तुमुल युद्ध आरम्भ हुआ। रथी और गजपतियोंने क्रुद्ध होकर एक दूसरेके ऊपर शस्त्रोंका प्रहार करना आरम्भ किया॥ (५७—५९)

सूर्यके अस्त होते समय मुहूर्त भरके बीचमें सहस्रों रथी और घुडसवार लोग भयंकर युद्ध करके रणभूमिमें एक दूसरेके हाथोंसे मर कर पृथ्वीमें गिर पडे। इसके अनन्तर शान्तनुनन्दन भीष्म अपने तीक्ष्ण बाणोंको चला कर पाञ्चाल वीरोंकी सेनाका नाश करने लगे॥ (६०-६२)

महाधनुर्धारी भीष्म इसी प्रकारसे पाण्डवोंकी सेनाको तितर बितर करके सन्ध्याके समय अपनी सेनाको निवृत्त होनेकी आज्ञा देकर निज शिविरमें गये। धर्मराज युधिष्ठिरने भी धृष्टद्युम्न और भीमसेनको देख कर उनका मस्तक सूंघ हर्ष पूर्वक अपने शिविरको जानेके निमित्त प्रस्थान किया। (६३-६४) [३५१९]

भीष्मपर्वमें उनासीवाँ अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें अस्सीवाँ अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन्! इस प्रकार शूरोंने आपसमें एक दूसरेको अपराधित करके तथा एक दूसरेको मार कर दोनों सेनाके शूरवीर अपने अपने शिविरोंमें

एते तु रौद्रा बहवो महारथा यशस्विनः शूरतमाः कृतास्त्राः ।
ये पाण्डवानां समरे सहाया जितक्लमा रोषविषं वमन्ति ॥ ९ ॥
ते नैव शक्याः सहसा विजेतुं वीर्योद्धताः कृतवैरास्त्वया च ।
अहं सेनां प्रतियोत्स्यामि राजन्सर्वात्मना जीवितं त्यज्य वीर ॥१० ॥
रणे तवाऽर्थाय महानुभाव न जीवितं रक्ष्यतमं ममाऽद्य ।
सर्वास्तवाऽर्थाय सदेव दैत्यान्घोरान्दहेयं किमु शत्रुसेनाम् ॥ ११ ॥
तान्पाण्डवान्योधयिष्यामि राजन्प्रियं च ते सर्वमहं करिष्ये ।
श्रुत्वैव चैतद्वचनं तदानीं दुर्योधनः प्रीतमना बभूव ॥ १२ ॥
सर्वाणि सैन्यानि ततः प्रहृष्टो निर्गच्छतेत्याह नृपांश्च सर्वान् ।
तदाज्ञया तानि विनिर्ययुर्द्रुतं गजाश्वपादातरथायुतानि ॥ १३ ॥
प्रहर्षयुक्तानि तु तानि राजन्महान्ति नानाविधशस्त्रवन्ति ।
स्थितानि नागाश्वपदातिमन्ति विरेजुराजौ तव राजन्बलानि ॥ १४ ॥
शस्त्रास्त्रविद्भिर्नरवीरयोधैरधिष्ठिताः सैन्यगणास्त्वदीयाः ।

पराक्रमको छिपा नहीं रखता ॥ परन्तु जो लोग पाण्डवोंके सहाय हुए है, वे सब भी बहुतसे महारथी और भयानक वीर योद्धा है। वे सब यशस्वी, शस्त्रोंको जाननेवाले और शूरवीर है। वे सब मानो युद्धमें क्रोध रूपी विष उगलते है, और संग्राममें शान्त नही होते। (८-९)

विशेष करके वे लोग बल और पराक्रममें बहुत बढे हुए है, और तुमने उन लोगोंके संग शत्रुता की है; इससे वे सब लोग सहसा पराजित होनेके योग्य नही है। जो हो मै अपने प्राणकी आशाको छोडकर सब प्रकारसे उन लोगोंके संग युद्ध करूंगा ॥ हे महानुभाव! आज मै तुम्हारे निमित्त युद्ध करके अपने प्राणके त्यागनेका भी इच्छा करता हूं, मै तुम्हारे निमित्त तुम्हारे शत्रुओंकी तो क्या बात है, देवता और दानवोंके सहित सम्पूर्ण लोकोंको भस्म कर सकता हू ॥आज मै पाण्डवोंके संग युद्ध करके तुम्हारा प्रियकार्य करूंगा॥ १०-१३

दुर्योधन पितामह भीष्मकी यह बात सुनकर शान्तचित्तसे बहुतही प्रसन्न हुए। तब हर्षित होकर सब राजाओं और सेनाके वीरोंसे बोले, कि तुम लोग युद्धके निमित्त गमन करो। सेनाके सब पुरुष उनकी आज्ञा सुनते ही युद्ध करनेके निमित्त शीघ्र ही तयार होकर शिबिरसे निकले। रथ हाथी, घोडे और पैदल वीरोंसे युक्त नाना भांतिके शस्त्रोंके सहित वह महा सेनाका दल हर्षपूर्वक युद्धभूमि में आकर विराजमान हुआ। (१३-१४)

*

अश्वत्थामा विकर्णश्च भगदत्तोऽथ सौबलः ॥ २ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ बाह्लीकः सह बाह्लिकैः।
त्रिगर्तराजो बलवान्मागधश्च सुदुर्जयः ॥ ३ ॥
बृहद्बलश्च कौसल्यश्चित्रसेनो विविंशतिः।
रथाश्च बहुसाहस्राः शोभनाश्च महाध्वजाः ॥ ४ ॥
देशजाश्च हया राजन्स्वारूढा हयसादिभिः।
गजेन्द्राश्च मदोद्धूताः प्रभिन्नकरटामुखाः ॥ ५ ॥
पादाताश्च तथा शूरा नानाप्रहरणध्वजाः।
नानादेशसमुत्पन्नास्त्वदर्थे योद्धुमुद्यताः ॥ ६ ॥
एते चाऽन्ये च बहवस्त्वदर्थे त्यक्तजीविताः।
देवानपि रणे जेतुं समर्था इति मे मतिः ॥ ७ ॥
अवश्यं हि मया राजंस्तव वाच्यं हितं सदा।
अशक्याः पाण्डवा जेतुं देवैरपि सवासवैः ॥ ८ ॥
वासुदेवसहायाश्च महेन्द्रसमविक्रमाः।
सर्वथाऽहं तु राजेन्द्र करिष्ये वचनं तव ॥ ९ ॥
पाण्डवांश्च रणे जेष्ये मां वा जेष्यन्ति पाण्डवाः।

सात्वत कृतवर्मा, अश्वत्थामा, विकर्ण, भगदत्त, शकुनि, अवन्तिदेशीय राजा विन्द और अनुविन्द सम्पूर्ण वाह्लिक वीरोंके सहित वाह्लिकराज, बलवान त्रिगर्त्तराज, पराक्रमी मगधराज, बृहद्बल, कोशलाधिपति, चित्रसेन, विविंशति, सब शोभाओंसे युक्त ध्वज और कई हजार रथ तथा महा बलवान अश्वोंपर चढनेवाले सब योद्धा मतवारे मदसे चूते हुए बडे बडे अनेक हाथी तथा नाना देशीय अनेक शस्त्रोंके जाननेवाले स्व-वीर पैदल चलनेवाले सब योद्धा लोग और इस सब लोग तुम्हारे निमित्त युद्ध करनेको उद्यत है। (१—६)

और दूसरे बहुतसे योद्धा लोग भी तुम्हारे वास्ते प्राणकी आशा छोडके युद्धके निमित्त खडे हैं; मेरे मतमें ये सब युद्धमें देवताओंको भी जीतनेमें समर्थ हैं परन्तु तुमसे अत्यन्त हितकारी मैं यह वचन कहता हूं, कि इन्द्रके समान पराक्रमी कृष्णकी सहायतासे युक्त पा-ण्डवोंको सब देवताओंके सहित इन्द्र भी युद्धमें नहीं जीत सकते, तो भी मैं सब प्रकारसे तुम्हारे वचनको पालन करूंगा (७-९)

या तो हम लोग पाण्डवोंको पराजित

रक्ष्यमाणः स तैः शूरैर्गोप्यमानाश्च तेन ते ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त राजानश्च महाबलाः ॥ १८ ॥
दुर्योधनस्तु समरे दंशितो रथमास्थितः ।
व्यराजत श्रिया जुष्टो यथा शक्रस्त्रिविष्टपे ॥ १९ ॥
ततः शब्दो महानासीत्पुत्राणां तव भारत ।
रथघोषश्च विपुलो वादित्राणां च निःस्वनः ॥ २० ॥
भीष्मेण धार्तराष्ट्राणां व्यूढः प्रत्यङ्मुखो युधि ।
मण्डलः स महाव्यूहो दुर्भेद्योऽमित्रघातनः ॥ २१ ॥
सर्वतः शुशुभे राजन्रणेऽरीणां दुरासदः ।
मण्डलं तु समालोक्य व्यूहं परमदुर्जयम् ॥ २२ ॥
स्वयं युधिष्ठिरो राजा वज्रं व्यूहमथाऽकरोत् ।
तथा व्यूढेष्वनीकेषु यथास्थानमवस्थिताः ॥ २३ ॥
रथिनः सादिनः सर्वे सिंहनादमथाऽनदन् ।
बिभित्सवस्ततो व्यूहं निर्ययुर्युद्धकांक्षिणः ॥ २४ ॥
इतरेतरतः शूराः ससैन्याः प्रहारिणः ।

आदि शूर वीर पुत्र कवच धारण करके पितामह भीष्मकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए। (१४-१७)

वे सब शूरवीर भीष्मकी रक्षा करने लगे, और वे सब महाबली योद्धा लोग व्यूहबद्ध होकर भीष्मसे रक्षित दिखाई देने लगे॥ तेजस्वी राजा दुर्योधन वर्म धारण करके देवताओंके बीच इन्द्रके समान शोभित होने लगे। तिसके अनन्तर रथोंके चलनेका शब्द, जुझाऊ बाजे और तुम्हारे पुत्रोंका सिंहनाद सुनाई देने लगा। शत्रुओंसे न भेदने योग्य भीष्मका बनाया हुआ बहुत ही बडा वह [illegible] मण्डल व्यूह पश्चिम ओर रणभूमिमें गमन करने लगा। हे राजन्! शत्रुओंसे अभेद्य वह मण्डल व्यूह गमन कालके समय अत्यन्त ही शोभित होने लगा। (१८—२२)

राजा युधिष्ठिरने शत्रुओंके महादारुण तथा अभेद्य मण्डल व्यूहको देखकर वज्र-व्यूहकी रचना की, उसमें रथी, घुडसवार और सेनाके सब शूर वीर योद्धा यथारीति स्थानों पर स्थित होके सिंहनाद करने लगे। सेनाके रणभूमिमें उपस्थित होने पर दोनों ओरके शस्त्रधारी योद्धा आपसमें युद्धकी अभिलाषा करते हुए एक दूसरेके व्यूहको भेद करनेकी इच्छासे आगे बढने लगे॥ (२३—२५)

अर्जुनोऽथ भृशं क्रुद्धो वार्ष्णेयमिदमब्रवीत् ॥ ३४ ॥
पश्य माधव सैन्यानि धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ।
व्यूढानि व्यूहविदुषा गाङ्गेयेन महात्मना ॥ ३५ ॥
युद्धाभिकामाञ्शूरांश्च पश्य माधव दंशितान् ।
त्रिगर्त्तराजं सहितं भ्रातृभिः पश्य केशव ॥ ३६ ॥
अद्यैतान्नाशयिष्यामि पश्यतस्ते जनार्दन ।
य इमे मां यदुश्रेष्ठ योद्धुकामा रणाजिरे ॥ ३७ ॥
एतदुक्त्वा तु कौन्तेयो धनुर्ज्यामवमृज्य च ।
ववर्ष शरवर्षाणि नराधिपगणान्प्रति ॥ ३८ ॥
तेऽपि तं परमेष्वासाः शरवर्षैरपूरयन् ।
तडागं वारिधाराभिर्यथा प्रावृषि तोयदाः ॥ ३९ ॥
हाहाकारो महानासीत्तव सैन्ये विशाम्पते ।
छाद्यमानौ रणे कृष्णौ शरैर्दृष्ट्वा महारणे ॥ ४० ॥
देवा देवर्षयश्चैव गन्धर्वाश्च सहोरगैः ।
विस्मयं परमं जग्मुर्दृष्ट्वा कृष्णौ तथा गतौ ॥ ४१ ॥

सहस्र राजाओंने शक्ति, त्रिशूल, तोमर बाण, धनुष और गदा धारण करके अर्जुनको चारों ओरसे घेर लिया; तब अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध होके कृष्णसे बोले, हे कृष्ण ! यह देखो व्यूहरचना जानने वाले गङ्गापुत्र भीष्मने धृतराष्ट्रसेनाके इस दृढ व्यूहको रचा है ॥ पराक्रमसे युक्त राजा लोग कवच धारण करके मेरे सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त उपस्थित हुए हैं । हे केशव ! भाइयोंके सहित आये हुए त्रिगर्त राजको देखो । हे जनार्दन ! इस रणभूमिमें मेरे सङ्ग युद्ध की अभिलाषा करके जो लोग यहां पर आये हैं आज तुम्हारे देखते ही देखते मैं उन सबका संहार करूंगा । (३३-३७)

कुन्तीपुत्र अर्जुनने कृष्णसे ऐसा वचन कहकर धनुषपर रोदा चढाया; और उन सब राजाओंके ऊपर अपने बाणोंको वर्षाने लगे ॥ जैसे वर्षाके समयमें बादल तालाबोंको जलसे पूर्ण कर देता है, वैसे ही उन सब राजाओंने भी अपने बाणोंकी वर्षासे अर्जुनको पूरित कर दिया ॥ हे महाराज ! कृष्ण और अर्जुनको बाणोंसे छिपे हुए देखकर तुम्हारी सेनाके बीच अत्यन्त ही हाहाकार शब्द होने लगा । (३८-४०)

देवता, देव ऋषि, गन्धर्व और नाग आदि कृष्ण और अर्जुनको इस प्रकार देखके

प्रत्युद्याते च गाङ्गेये त्वरितं विजयं प्रति ॥ २ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा रणे पार्थस्य विक्रमम् ।
त्वरमाणः समभ्येत्य सर्वास्तानब्रवीन्नृपान् ॥ ३ ॥
तेषां तु प्रमुखे शूरं सुशर्माणं महाबलम् ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य भृशं संहर्षयन्निव ॥ ४ ॥
एष भीष्मः शान्तनवो योद्धुकामो धनञ्जयम् ।
सर्वात्मना कुरुश्रेष्ठस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ ५ ॥
तं प्रयान्तं रणे वीरं सर्वसैन्येन भारतम् ।
संयत्ताः समरे सर्वे पालयध्वं पितामहम् ॥ ६ ॥
बाढमित्येवमुक्त्वा तु तान्यनीकानि सर्वशः ।
नरेन्द्राणां महाराज समाजग्मुः पितामहम् ॥ ७ ॥
ततः प्रयातः सहसा भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम् ।
रणे भारतमायान्तमाससाद महाबलः ॥ ८ ॥
महाश्वेताश्वयुक्तेन भीमवानरकेतुना ।
महता मेघनादेन रथेनाऽतिविराजता ॥ ९ ॥
समरे सर्वसैन्यानामुपयान्तं धनञ्जयम् ।

इस प्रकारसे व्याकुल देखकर, अर्जुनके सम्मुख युद्धके निमित्त उपस्थित हुए ॥ (१–२)

तब राजा दुर्योधन अर्जुनका पराक्रम देखकर शीघ्रताके सहित सब राजाओंके समीप जाकर उन सब वीरोंके सम्मुख सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंको हर्षित करते हुए महाबलवान् सुशर्मासे बोले, यह वीरोंमें श्रेष्ठ शान्तनुपुत्र भीष्म अपने प्राणकी आशा छोड़ कर सब प्रयत्नके सहित अर्जुनके संग युद्ध करनेके अभिलाषी हुए हैं ॥ तुम सब लोग सम्पूर्ण सेनाके सहित शत्रुओंसे युद्ध करनेवाले पितामह भीष्मकी सब प्रकारसे यत्न पूर्वक रक्षा करो ॥ (३–६)

सब राजाओंकी सेना दुर्योधनकी आज्ञाको सुनते ही भीष्मकी रक्षा करनेमें तत्पर हुई ॥ युद्धके निमित्त गमन करते हुए शान्तनुपुत्र भीष्म सहसा अर्जुनको अत्यन्त सफेद घोडोंसे युक्त भयानक रथकी ध्वजासे शोभित, महाघोर बादलके समान गम्भीर गर्जनसे युक्त रथ और शङ्खके शब्दसे पूर्ण अत्यन्त प्रकाशमान रथ पर आते हुए देखकर उनके निकट गये ॥ किरीटधारी अर्जुनको इस प्रकारसे आता हुआ देख,

प्रत्युद्याते च गाङ्गेये त्वरितं विजयं प्रति ॥ २ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा रणे पार्थस्य विक्रमम् ।
त्वरमाणः समभ्येत्य सर्वास्तानब्रवीन्नृपान् ॥ ३ ॥
तेषां तु प्रमुखे शूरं सुशर्माणं महाबलम् ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य भृशं संहर्षयन्निव ॥ ४ ॥
एष भीष्मः शान्तनवो योद्धुकामो धनञ्जयम् ।
सर्वात्मना कुरुश्रेष्ठस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ ५ ॥
तं प्रयान्तं रणे वीरं सर्वसैन्येन भारतम् ।
संयत्ताः समरे सर्वे पालयध्वं पितामहम् ॥ ६ ॥
बाढमित्येवमुक्त्वा तु तान्यनीकानि सर्वशः ।
नरेन्द्राणां महाराज समाजग्मुः पितामहम् ॥ ७ ॥
ततः प्रयातः सहसा भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम् ।
रणे भारतमायान्तमाससाद महाबलः ॥ ८ ॥
महाश्वेताश्वयुक्तेन भीमवानरकेतुना ।
महता मेघनादेन रथेनाऽतिविराजता ॥ ९ ॥
समरे सर्वसैन्यानामुपयान्तं धनञ्जयम ।

इस प्रकारसे व्याकुल देखकर, अर्जुनके संमुख युद्धके निमित्त उपस्थित हुए ॥ (१–२)

तब राजा दुर्योधन अर्जुनका पराक्रम देखकर शीघ्रताके सहित सब राजाओंके समीप जाकर उन सब वीरोंके संमुख सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंको हर्षित करते हुए महाबलवान सुशर्मासे बोले यह कौरवोंमें श्रेष्ठ शान्तनुपुत्र भीष्म अपने प्राणकी आशा छोड कर सब प्रयत्नके सहित अर्जुनके संग युद्ध करनेके अभिलाषी हुए हैं ॥ तुम सब लोग सम्पूर्ण सेनाके सहित शत्रुओंसे युद्ध करनेवाले पितामह भीष्मकी सब प्रकारसे यत्न पूर्वक रक्षा करो ॥ (३–६)

सब राजाओंकी सेना दुर्योधनकी आज्ञाको सुनते ही भीष्मकी रक्षा करने में तत्पर हुई ॥ युद्धके निमित्त गमन करते हुए शान्तनुपुत्र भीष्म सहसा अर्जुनको अत्यन्त सफेद घोडोंसे युक्त भयानक रथकी ध्वजासे शोभित, महाघोर बादलके समान गम्भीर गर्जनसे युक्त रथ और शब्दके शब्दसे पूर्ण अत्यन्त प्रकाशमान रथ पर आते हुए देखकर उनके निकट गये ॥ किरीटधारी अर्जुनको इस प्रकारसे आता हुआ देख,

प्रत्युद्याते च गाङ्गेये त्वरितं विजयं प्रति ॥ २ ॥
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा रणे पार्थस्य विक्रमम् ।
त्वरमाणः समभ्येत्य सर्वास्तानब्रवीन्नृपान् ॥ ३ ॥
तेषां तु प्रमुखे शूरं सुशर्माणं महाबलम् ।
मध्ये सर्वस्य सैन्यस्य भृशं संहर्षयन्निव ॥ ४ ॥
एष भीष्मः शान्तनवो योद्धुकामो धनञ्जयम् ।
सर्वात्मना कुरुश्रेष्ठस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ ५
तं प्रयान्तं रणे वीरं सर्वसैन्येन भारतम् ।
संयत्ताः समरे सर्वे पालयध्वं पितामहम् । ६ ।
बाढमित्येवमुक्त्वा तु तान्यनीकानि सर्वशः ।
नरेन्द्राणां महाराज समाजग्मुः पितामहम्
ततः प्रयातः सहसा भीष्मः शान्तनवोऽर्जुनम्
रणे भारतमायान्तमाससाद महाबलः
महाश्वेताश्वयुक्तेन भीमवानरकेतुना ।
महता मेघनादेन रथेनातिविराजता
समरे सर्वसैन्यानामुपयान्तं धनञ्जयम्

अष्टाभिर्भरतश्रेष्ठ सूतमेकेन पत्रिणा ॥ १८ ॥
स हताश्वादवप्लुत्य स्यन्दनाद्धतसारथिः ।
आरुरोह रथं तूर्णं पुत्रस्य रथिनां वरः ॥ १९ ॥
ततस्तु तौ पितापुत्रौ भारद्वाजं रथे स्थितौ ।
महता शरवर्षेण वारयामासतुर्बलात् ॥ २० ॥
भारद्वाजस्ततः क्रुद्धः शरमाशीविषोपमम् ।
चिक्षेप समरे तूर्णं शङ्खं प्रति जनेश्वरः ॥ २१ ॥
स तस्य हृदयं भित्वा पीत्वा शोणितमाहवे ।
जगाम धरणीं बाणो लोहितार्द्रवरच्छदः ॥ २२ ॥
स पपात रणे तूर्णं भारद्वाजशराहतः ।
धनुस्त्यक्त्वा शरांश्चैव पितुरेव समीपतः ॥ २३ ॥
हतं तमात्मजं दृष्ट्वा विराटः प्राद्रवद्भयात् ।
उत्सृज्य समरे द्रोणं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥ २४ ॥
भारद्वाजस्ततस्तूर्णं पाण्डवानां महाचमूम् ।
दारयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २५ ॥
शिखण्डी तु महाराज द्रौणिमासाद्य संयुगे ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचैस्त्रिभिराशुगैः ॥ २६ ॥

रथके घोडोंका और एक बाणसे उनके सारथीका वध किया ॥ (१४-१८)

रथियोंमें मुख्य विराट घोडे और सारथीके मारे जानेपर निज रथसे कूदके अपने पुत्रके रथपर जा चढे ॥ तिसके अनन्तर वे पितापुत्र एक ही रथपर स्थित होके बहुतसे बाणों को वर्षाकर द्रोणाचार्यका निवारण करने लगे ॥ तब द्रोणाचार्यने क्रुद्ध होकर विषधर सर्पके समान एक बाण विराट-पुत्र शङ्ख के ऊपर शीघ्र ही चलाया। वह बाण शङ्खके हृदयको भेद करके रुधिर पीता हुआ रक्तसे भीगके पृथ्वीमें गिरा ॥ शंख धनुष्य और बाणोंको त्यागकर पिताके निकटहीमें गिर पडे। १९-२३

राजा विराट अपने पुत्र शङ्खको मारा हुआ देखकर भयभीत होके मुख पसारे कालके समान द्रोणाचार्यके संमुख रणभूमिसे भाग गये ॥ तिसके अनन्तर द्रोणाचार्य शीघ्रताके सहित पाण्डवोंके सैकडों तथा सहस्रों वीरोंको युद्धमें निवारण करने लगे ॥ महाराज ! शिखण्डीने युद्धमें अश्वत्थामाके निकट जाकर [illegible] के सहित तीन बाणोंसे

शिखण्डी तु ततः खड्गं खण्डितं तेन सायकैः॥ ३५ ॥
आविध्य व्यसृजत्तूर्णं ज्वलन्तमिव पन्नगम् ।
तमापतन्तं सहसा कालानलसमप्रभम्　　॥ ३६ ॥
चिच्छेद समरे द्रौणिर्दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
शिखण्डिनं च विव्याध शरैर्बहुभिरायसैः　　॥ ३७ ॥
शिखण्डी तु भृशं राजंस्ताड्यमानः शितैः शरैः ।
आरुरोह रथं तूर्णं माधवस्य महात्मनः　　॥ ३८ ॥
सात्यकिश्चाऽपि संक्रुद्धो राक्षसं क्रूरमाहवे ।
अलम्बुषं शरैस्तीक्ष्णैर्विव्याध बलिनां वरः　　॥ ३९ ॥
राक्षसेन्द्रस्ततस्तस्य धनुश्चिच्छेद भारत ।
अर्धचन्द्रेण समरे तं च विव्याध सायकैः　　॥ ४० ॥
मायां च राक्षसीं कृत्वा शरवर्षैरवाकिरत् ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम शैनेयस्य पराक्रमम्　　॥ ४१ ॥
असम्भ्रमस्तु समरे वध्यमानः शितैः शरैः ।
ऐन्द्रमस्त्रं च वार्ष्णेयो योजयामास भारत　　॥ ४२ ॥

अपने बाणोंसे विद्ध किया। शिखण्डीने अश्वत्थामाके बाणोंसे खण्डित उस आधे तलवारके टुकडेको जो उसके हाथमें था, घुमाकर अश्वत्थामाके ऊपर जलते हुए सर्पके समान चलाया। (३२-३६)

अश्वत्थामाने वज्रके समान प्रकाशमान खण्डित तलवारको सहसा संमुख आते हुए देखकर अपने हाथोंकी शीघ्रतासे बाण चलाकर उसे भी काटके गिरा दिया। और शिखण्डीको भी लोहमय अनेक बाणोंसे विद्ध किया। तब शिखण्डी अश्वत्थामाके बाणोंसे व्यथित होकर शीघ्रताके सहित वृष्णिवंशीय सात्यकिके रथपर जा चढे। (३६-३८)

हे भारत! पराक्रमी सात्यकिने क्रुद्ध होकर अत्यन्त क्रूर राक्षस अलम्बुषको अपने बाणोंसे विद्ध किया। राक्षसेन्द्र अलम्बुषने अर्धचन्द्र बाणसे सात्यकिके धनुषको काटकर अपने बाणोंसे उन्हें विद्ध किया; फिर राक्षसी माया उत्पन्न करके बाणोंकी वर्षासे सात्यकिको छिपा दिया। उस युद्धमें मैंने सात्यकिका यह अद्भुत पराक्रम देखा॥ कि वह अनेक तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध होकर भी युद्धमें विचलित नहीं हुए, वरन अर्जुनके निकटसे जो उन्होंने ऐन्द्र अस्त्र प्राप्त किया था, उसे चलाया॥ (३९-४२)

तस्य सेनापतिः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष ॥ ५१ ॥
हयांश्च चतुरः शीघ्रं निजघान महाबलः ।
शरैश्चैनं सुनिशितैः क्षिप्रं विव्याध सप्तभिः ॥ ५२ ॥
स हताश्वान्महाबाहुरवप्लुत्य रथाद्बली ।
पदातिरासितुधस्य प्राद्रवत्पार्षतं प्रति ॥ ५३ ॥
शकुनिस्तं समभ्येत्य राजगृद्धी महाबलः ।
राजानं सर्वलोकस्य रथमारोपयत्स्वकम् ॥ ५४ ॥
ततो नृपं पराजित्य पार्षतः परवीरहा ।
न्यहनत्तावकं सैन्यं वज्रपाणिरिवाऽसुरान् ॥ ५५ ॥
कृतवर्मा रणे भीमं शरैराच्छन्महारथः ।
प्रच्छादयामास च तं महामेघो रविं यथा ॥ ५६ ॥
ततः प्रहस्य समरे भीमसेनः परन्तपः ।
प्रेषयामास संक्रुद्धः सायकान्कृतवर्मणे ॥ ५७ ॥
तैरर्द्यमानोऽतिरथः सात्वतः सत्यकोविदः ।
नाऽकम्पत महाराज भीमं चाऽऽर्छच्छितैः शरैः ॥ ५८ ॥
तस्याऽश्वांश्चतुरो हत्वा भीमसेनो महारथः ।
सारथिं पातयामास ध्वजं सुपरिष्कृतम् ॥ ५९ ॥

गङ्गायाः सुरनद्या वै स्वादु भूत्वा यथोदकम् ।
महोदधेर्गुणाभ्यासाल्लवणत्वं निगच्छति ॥ ५ ॥
तथा तत्पौरुषं राजंस्तावकानां परन्तप ।
प्राप्य पाण्डुसुतान्वीरान्व्यर्थं भवति संयुगे ॥ ६ ॥
घटमानान्यथाशक्ति कुर्वाणान्कर्म दुष्करम् ।
न दोषेण कुरुश्रेष्ठ कौरवान्गन्तुमर्हसि ॥ ७ ॥
तवाऽपराधात्सुमहान्सपुत्रस्य विशाम्पते ।
पृथिव्याः प्रक्षयो घोरो यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ ८ ॥
आत्मदोषात्समुत्पन्नं शोचितुं नाऽर्हसे नृप ।
नहि रक्षन्ति राजानः सर्वथाऽत्राऽपि जीवितम् ॥ ९ ॥
युद्धे सुकृतिनां लोकानिच्छन्तो वसुधाधिपाः ।
चमूं विगाह्य युद्ध्यन्ते नित्यं स्वर्गपरायणाः ॥ १० ॥
पूर्वाह्णे तु महाराज प्रावर्तत जनक्षयः ।
तं त्वमेकमना भूत्वा शृणु देवासुरोपमम् ॥ ११ ॥
आवन्त्यौ तु महेष्वासौ महासेनौ महाबलौ ।
इरावन्तमभिप्रेक्ष्य समेयातां रणोत्कटौ ॥ १२ ॥

परन्तु जिस प्रकारसे गङ्गाका मीठा जल समुद्रमें जाकर खारा हो जाता है, वैसे ही तुम्हारे सब महात्मा वीरोंका पराक्रम पाण्डवोंके समीपमें निष्फल होजाता है ॥ (४-६)

तुम्हारी ओरके सब योद्धा अत्यन्त चेष्टा करके शक्तिके अनुसार कठिन कर्मोंका अनुष्ठान करते रहते हैं; इससे तुम उन लोगोंके ऊपर दोषारोपण मत करो ॥ हे राजन्! तुम्हारे तथा दुर्योधन आदिके दोषहीसे यमराजके राज्यको बढानेवाला सब लोगोंके अत्यन्त ही नाशका समय उपस्थित हुआ है। अब तुम्हारे किये हुए दोषोंसे जो फल प्राप्त हुए हैं; उनके निमित्त शोक करना तुमको उचित नहीं है ॥ क्षत्रिय योद्धा लोग सम्पूर्ण अर्थ और जीवन रक्षाकी आशा छोड कर स्वर्गप्राप्तिके निमित्त युद्धमें मरकर पुण्य लोकमें जानेकी अभिलाषा करके नित्य सेनाको मथ करके युद्ध करते हैं । (७—१०)

हे महाराज! उस दिन पूर्वाह्न समयमें देवता और असुरोंके समान जो वीरोंका युद्ध होने लगा, वह तुम एकाग्र चित्त होके मुझसे सुनो ॥ युद्धमें भयानक कर्म करनेवाले महारथी, तेजस्वी अवन्ति-

ववर्ष शरवर्षेण सारथिं चाप्यपातयत् ॥ २१ ॥
तस्मिंस्तु पतिते भूमौ गतसत्वे तु सारथौ ।
रथः प्रदुद्राव दिशः समुद्भ्रान्तहयस्ततः ॥ २२ ॥
तौ स जित्वा महाराज नागराजसुतासुतः ।
पौरुषं ख्यापयंस्तूर्णं न्यधमत्तव वाहिनीम् ॥ २३ ॥
सा वध्यमाना समरे धार्तराष्ट्री महाचमूः ।
वेगान्बहुविधांश्चक्रे विषं पीत्वेव मानवः ॥ २४ ॥
हैडिम्बो राक्षसेन्द्रस्तु भगदत्तं समाद्रवत ।
रथेनाऽऽदित्यवर्णेन सध्वजेन महाबलः ॥ २५ ॥
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा नागराजं समास्थितः ।
यथा वज्रधरः पूर्वं संग्रामे तारकामये ॥ २६ ॥
तत्र देवाः सगन्धर्वा ऋषयश्च समागताः ।
विशेषं न स्म विविदुर्हैडिम्बभगदत्तयोः ॥ २७ ॥
यथा सुरपतिः शक्रस्त्रासयामास दानवान् ।
तथैव समरे राजा द्रावयामास पाण्डवान् ॥ २८ ॥

के ऊपर बाणवर्षा करके उनके सारथी को मारके गिरा दिया। सारथीके मरनेपर घोडे रथ लेकर इधर उधर घूमने लगे। सर्पोंके राजा ऐरावत नाग के दौहित्र राजा इरावान् अवन्ति राज दोनों भाइयोंको इस प्रकारसे पराजित कर के पराक्रमको प्रकाशित करते हुए शीघ्रता के सहित तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे॥ (२०-२३)

तुम्हारी सेनाके योद्धा इरावानके बाणोंसे पीडित होकर जैसे मनुष्य विष पान कर के मूर्छित हो जाते हैं, वैसे ही चारों ओर वेगपूर्वक घूमने लगे। उधर महाबलवान पराक्रमी राक्षसेन्द्र घटोत्कच सूर्यके समान प्रकाशित और ध्वजासे शोभित रथपर चढके भगदत्त की ओर दौडा। जैसे पहिले समय में वज्रधारी इन्द्र तारकामयके युद्ध में ऐरावतपर चढके शोभित हुए थे, वैसे ही प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त अपने हस्तिराजपर चढके घटोत्कचके सङ्ग युद्ध करने लगे। (२४-२६)

देखनेके लिये देवता, गन्धर्व और ऋषियोंने घटोत्कच और भगदत्त के युद्धमें किसीको एक दूसरेसे अधिक पराक्रम करते नहीं देखा। जैसे देवताओंके राजा इन्द्र दानवोंकी सेनाओंका मर्दन करते हैं, वैसे ही राजा भगदत्त

भगदत्तं च विव्याध सप्तत्या कङ्कपत्रिभि ॥ ३६ ॥
ततः प्राग्ज्योतिषो राजा प्रहसन्निव भारत ।
तस्याऽश्वांश्चतुरः संख्ये पातयामास सायकैः ॥ ३७ ॥
स हताश्वे रथे तिष्ठन्राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
शक्तिं चिक्षेप वेगेन प्राग्ज्योतिषगजं प्रति ॥ ३८ ॥
तामापतन्तीं सहसा हेमदण्डां सुवेगिनीम् ।
त्रिधा चिच्छेद नृपतिः सा व्यकीर्यत मेदिनीम् ॥ ३९ ॥
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा हैडिम्बः प्राद्रवद्भयात् ।
यथेन्द्रस्य रणात्पूर्वं नमुचिर्दैत्यसत्तमः ॥ ४० ॥
तं विजित्य रणे शूरं विक्रान्तं ख्यातपौरुषम् ।
अजेयं समरे वीरं यमेन वरुणेन च ॥ ४१ ॥
पाण्डवीं समरे सेनां सम्ममर्द स कुञ्जरः ।
यथा वनगजो राजन्मृद्नंश्चरति पद्मिनीम् ॥ ४२ ॥
मद्रेश्वरस्तु समरे यमाभ्यां समसज्जत ।
स्वस्रीयौ छादयाञ्चक्रे शरौघैः पाण्डुनन्दनौ ॥ ४३ ॥
सहदेवस्तु समरे मातुलं दृश्य स्यन्दनम् ।

तब तोमरोंको काटकर कङ्कपत्रसे युक्त सात बाणोंसे भगदत्तको विद्ध किया । तब भगदत्तने हंसते हुए बाणोंसे घटोत्कचके चारों घोड़ोंको मार डाला ॥ घटोत्कचने घोड़ोंसे रहित रथपरसे ही एक शक्ति भगदत्तके ऊपर चलाई, भगदत्तने उस वेगवान् सुवर्णदण्डसे युक्त शक्तिको आते हुई देखकर अपने बाणोंसे तीन खण्ड करके पृथ्वीमें गिरा दिया । (३६-३९)

हिडिम्बापुत्र घटोत्कच अपनी चलाई हुई शक्तिको निष्फल होती देखकर भयभीत होके राजा भगदत्तके संमुखसे इस भांति भाग गया, जैसे इन्द्रके युद्धमें दैत्योंमें श्रेष्ठ नमुचि भाग गया था ॥ भगदत्तका गजराज यम और वरुणसे भी अजेय महापराक्रमी विख्यात शत्रु घटोत्कचको पराजित करके जैसे वनका हाथी कमलके वनको तोड़ता हुआ घूमता है, वैसे ही पाण्डवोंकी सेनाको मर्दन करता हुआ चारों ओर रणभूमिमें भ्रमण करने लगा । (४०-४३)

मद्रराज शल्यने अपने दोनों भानजों नकुल और सहदेवके सङ्ग युद्धमें प्रवृत्त होकर उन्हें अपने बाणोंसे छिपा

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थे महारथः।
निषसाद महाराज कश्मलं च जगाम ह ॥ ५३ ॥
तं विसंज्ञं निपतितं सूतः सम्प्रेक्ष्य संयुगे।
अपोवाह रथेनाऽऽजौ यमाभ्यामभिपीडितम् ॥ ५४ ॥
दृष्ट्वा मद्रेश्वररथं धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखम्।
सर्वे विमनसो भूत्वा नेदमस्तीत्यचिन्तयन् ॥ ५५ ॥
निर्जित्य मातुलं संख्ये माद्रीपुत्रौ महारथौ।
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ सिंहनादं च नेदतुः ॥ ५६ ॥
अभिदुद्रुवतुर्हृष्टौ तव सैन्यं विशाम्पते।
यथा दैत्यचमूं राजन्निन्द्रोपेन्द्राविवाऽमरौ ॥ ५७ ॥ [३७०३]

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

सञ्जय उवाच — ततो युधिष्ठिरो राजा मध्यं प्राप्ते दिवाकरे।
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास वाजिनः ॥ १ ॥
अभ्यधावत्ततो राजा श्रुतायुषमरिन्दमम्।
विनिघ्नन्सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥ २ ॥

वायु और गरुडके समान वेगवान होकर मद्रराजके शरीरको भेद करके पृथ्वीमें गिरा। (४९-५२)

महारथ शल्य उससे अत्यन्त विद्ध और पीडित होके रथ पर मूर्च्छित होगये॥ तब उनका सारथी उन्हें माद्रीनन्दनोंके बाणोंसे पीडित और मूर्च्छित देखकर उनको लेके रणभूमिसे पृथक् हुआ॥ तब धृतराष्ट्रकी सेनाके सब योद्धा शल्यके रथको पराङ्मुख जान कर दुःखित हुए॥ (५३-५५)

महारथ माद्रीनन्दन नकुल और सहदेव मामाको युद्धमें पराजित करके रथोंमें उपस्थित होकर शङ्खनाद और सिंह-नाद करने लगे॥ हे राजन्! जिस प्रकार इन्द्र और उपेन्द्र दोनों देवता दैत्योंको तितर बितर कर देते हैं वैसे ही नकुल-सहदेव दोनों भाई हर्षित होकर तुम्हारी सेनाको तितर बितर करने लगे। (५६-५७) [३७०३]

भीष्मपर्वमें तिरासीवाँ अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें चौरासीवाँ अध्याय।

सञ्जय बोले, इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर मध्याह्न समयमें श्रुतायुको देखकर उसकी ओर अपने घोड़ोंको चलाया। अनन्तर उन्होंने [illegible]

अवारयच्छरौघेण मेघो यद्वद्दिवाकरम् ॥ ४४ ॥
छाद्यमानः शरौघेण हृष्टरूपतरोऽभवत् ।
तयोश्चाऽप्यभवत्प्रीतिरतुला मातृकारणात् ॥ ४५ ॥
ततः प्रहस्य समरे नकुलस्य महारथः ।
अश्वांश्च चतुरो राजंश्चतुर्भिः सायकोत्तमैः ॥ ४६ ॥
प्रेषयामास समरे यमस्य सदनं प्रति ।
हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ॥ ४७ ॥
आरुरोह ततो यानं भ्रातुरेव यशस्विनः ।
एकस्थौ तु रणे शूरौ दृढे विक्षिप्य कार्मुके ॥ ४८ ॥
मद्रराजरथं तूर्णं छादयामासतुः क्षणात् ।
स च्छाद्यमानो बहुभिः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४९ ॥
स्वस्रीयाभ्यां नरव्याघ्रो नाऽकम्पत यथाऽचलः ।
प्रहसन्निव तां चाऽपि शस्त्रवृष्टिं जघान ह ॥ ५० ॥
सहदेवस्ततः क्रुद्धः शरमुद्यम्य वीर्यवान् ।
मद्रराजमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास भारत ॥ ५१ ॥
स शरः प्रेषितस्तेन गरुडानिलवेगवान् ।
मद्रराजं विनिर्भिद्य निपपात महीतले ॥ ५२ ॥

दिया ॥ सहदेवने अपने मामा मद्रराजको युद्धमें उपस्थित देख उनको अपने बाणों से इस भांति छिपा दिया जैसे बादल सूर्यको छिपा देता है ॥ मद्रराज शल्य भानजोंके बाणोंसे छिप कर बहुत ही आनन्दित हुए और नकुल सहदेव भी मामाके बाणोंसे छिप कर माता के सम्बन्धके कारण उनके ऊपर प्रसन्न हुए ॥ (४३–४५)

तब राजा शल्यने चार बाणोंसे नकुलके चारो घोडोंको मार डाला ॥ महारथ नकुल घोडोंके रहित रथसे कूद कर यशस्वी भाई सहदेवके रथ पर जाचढे ॥ दोनों भाई एकही रथ पर चढके अपने धनुषको चढा कर बाणोंकी वर्षासे क्षण भरमें मद्रराज शल्यके रथको छिपा दिया । (४६–४९)

पुरुषसिंह शल्यने दोनों भानजोंके तीक्ष्ण बाणोंसे छिप कर भी पर्वतके समान कम्पित न हुए और हंसते हुए उनके बाणोंकी वर्षाको निवारण किया॥ तब सहदेवने क्रुद्ध होकर एक महाभयङ्कर बाण ग्रहण करके शल्यके ऊपर चलाया॥ वह सहदेवके धनुषसे छूटा हुआ बाण

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थे महारथः ।
निषसाद महाराज कश्मलं च जगाम ह ॥ ५३ ॥
तं विसंज्ञं निपतितं सूतः सम्प्रेक्ष्य संयुगे ।
अपोवाह रथेनाऽऽजौ यमाभ्यामभिपीडितम् ॥ ५४ ॥
दृष्ट्वा मद्रेश्वररथं धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखम् ।
सर्वे विमनसो भूत्वा नेदमस्तीत्यचिन्तयन् ॥ ५५ ॥
निर्जित्य मातुलं संख्ये माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
दध्मतुर्मुदितौ शङ्खौ सिंहनादं च नेदतुः ॥ ५६ ॥
अभिदुद्रुवतुर्हृष्टौ तव सैन्यं विशाम्पते ।
यथा दैत्यचमूं राजन्निन्द्रोपेन्द्राविवाऽमरौ ॥ ५७ ॥ [३७०३]

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

सञ्जय उवाच — ततो युधिष्ठिरो राजा मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ।
श्रुतायुषमभिप्रेक्ष्य प्रेषयामास वाजिनः ॥ १ ॥
अभ्यधावत्ततो राजा श्रुतायुषमरिन्दमम् ।
विनिघ्नन्सायकैस्तीक्ष्णैर्नवभिर्नतपर्वभिः ॥ २ ॥

वायु और गरुडके समान वेगवान होकर मद्रराजके शरीरको भेद करके पृथ्वीमें गिरा। (४९-५२)

महारथ शल्य उससे अत्यन्त विद्ध और पीडित होके रथ पर मूर्च्छित होगये॥ तब उनका सारथी उन्हें मानुजोंके बाणोंसे पीडित और मूर्च्छित देखकर उनको लेके रणभूमिसे पृथक् हुआ॥ तब धृतराष्ट्रकी सेनाके सब लोग शल्यके रथको पराङ्मुख जान कर दुःखित हुए॥ (५३-५५)

महारथ माद्रीनन्दन नकुल और सहदेव मामाको युद्धमें पराजित करके हर्षसे प्रफुल्लित होकर शङ्ख बजाके सिंह-नाद करने लगे॥ हे राजन्! जिस प्रकार इन्द्र और उपेन्द्र दोनों देवता दैत्योंको तितर बितर कर देते हैं, वैसे ही नकुल-सहदेव दोनों भाई हर्षित होकर तुम्हारी सेनाको तितर बितर करने लगे। (५६-५७) [३७०३]

भीष्मपर्वमें तिरासी अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें चौरासी अध्याय।

सञ्जय बोले, इसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर मध्याह्न समयमें श्रुतायुको देखकर उनकी ओर अपने घोडे चलाया। अनन्तर [illegible]
[illegible]
[illegible]

स संवार्य रणे राजा प्रेषितान्धर्मसूनुना।
शरान्सप्त महेष्वासः कौन्तेयाय समार्पयत् ॥ ३ ॥
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे।
असूनिव विचिन्वन्तो देहे तस्य महात्मनः ॥ ४ ॥
पाण्डवस्तु भृशं क्रुद्धो विद्धस्तेन महात्मना।
रणे वराहकर्णेन राजानं हृद्यविध्यत ॥ ५ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन केतुं तस्य महात्मनः।
रथश्रेष्ठो रथात्तूर्णं भूमौ पार्थो न्यपातयत् ॥ ६ ॥
केतुं निपतितं दृष्ट्वा श्रुतायुः स तु पार्थिवः।
पाण्डवं विशिखैस्तीक्ष्णै राजन्विव्याध सप्तभिः॥ ७ ॥
ततः क्रोधात्प्रजज्वाल धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।
यथा युगान्ते भूतानि दिधक्षुरिव पावकः ॥ ८ ॥
क्रुद्धं तु पाण्डवं दृष्ट्वा देवगन्धर्वराक्षसाः।
प्रविव्यथुर्महाराज व्याकुलं चाऽप्यभूज्जगत् ॥ ९ ॥
सर्वेषां चैव भूतानामिदमासीन्मनोगतम्।
त्रींल्लोकानद्य संक्रुद्धो नृपोऽयं धक्ष्यतीति वै ॥ १० ॥

ओर दौडे। महारथ श्रुतायुने कुन्तीपुत्र धर्मराजके चलाये हुए बाणोंको निवारण करके उनके ऊपर सात बाणोंको चलाया। वह सब बाण महात्मा युधिष्ठिरके कवच को भेदके मानों प्राण निकालते हुए रुधिर पान करने लगे। (१–४)

रथियोंमें श्रेष्ठ महात्मा राजा युधिष्ठिर श्रुतायुके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर वराहकर्णनाम एक बाणसे राजा श्रुतायुका हृदयस्थान विद्ध किया और एक भल्ल बाणसे उनके रथकी ध्वजा काटके पृथ्वीमें गिरा दी। श्रुतायुने अपनी ध्वजा कटती हुई देखके सात बाणोंसे फिर राजा युधिष्ठिरको विद्ध किया। (५–७)

तिसके अनन्तर राजा युधिष्ठिर जैसे प्रलय कालमें अग्नि प्रज्वलित होकर सम्पूर्ण जीव जन्तुओंको भस्म कर देती है; वैसे ही क्रोधसे प्रज्वलित होगये॥ हे महाराज! देवता, गन्धर्व और राक्षस आदि धर्मराज युधिष्ठिरको इस भांतिसे क्रुद्ध हुए देख कर व्यथित हुए और सम्पूर्ण जगत भी व्यथित हुआ॥ धर्मराज युधिष्ठिरने क्रोधित होकर ओठों को काटते हुए प्रलय कालके सूर्यके समान मूर्त्ति धारण की; तब सम्पूर्ण

ऋषयश्चैव देवाश्च चक्रुः स्वस्त्ययनं महत्।
लोकानां नृप शान्त्यर्थं क्रोधिते पाण्डवे तदा ॥ ११ ॥
स च क्रोधसमाविष्टः सृक्किणी परिसंलिहन्।
दधाराऽऽत्मवपुर्घोरं युगान्तादित्यसन्निभम् ॥ १२ ॥
ततः सैन्यानि सर्वाणि तावकानि विशाम्पते।
निराशान्यभवंस्तत्र जीवितं प्रति भारत ॥ १३ ॥
स तु धैर्येण तं कोपं सन्निवार्य महायशाः।
श्रुतायुषः प्रचिच्छेद मुष्टिदेशे महाधनुः ॥ १४ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचेन स्तनान्तरे।
निर्बिभेद रणे राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ १५ ॥
सत्वरं च रणे राजंस्तस्य वाहान्महात्मनः।
निजघान शरैः क्षिप्रं सूतं च सुमहाबलः ॥ १६ ॥
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा दृष्ट्वा राज्ञोऽस्य पौरुषम्।
विप्रदुद्राव वेगेन श्रुतायुः समरे तदा ॥ १७ ॥
तस्मिञ्जिते महेष्वासे धर्मपुत्रेण संयुगे।
दुर्योधनबलं राजन्सर्वमासीत्पराङ्मुखम् ॥ १८ ॥
एतत्कृत्वा महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः।

प्राणियोंने समझा, कि आज धर्मराज युधिष्ठिर तीनों लोकोंको भस्म कर देंगे ॥ हे महाराज! तब देव और ऋषि लोग धर्मराज युधिष्ठिर को क्रोधित देखकर सब लोगोंमें शान्ति स्थापन करनेके लिये स्वस्तिवाचन करने लगे॥ (८-११)

हे महाराज! तब तुम्हारी सेनाके सब लोग अपने जीवनकी आशासे निराश होगये॥ परन्तु धर्मराज युधिष्ठिरने धीरज धरके अपने क्रोधको शान्त किया। तब राजा युधिष्ठिरने श्रुतायुके धनुषकी मुष्टि काट कर उनको धनुष रहित करके सब सेनाके सम्मुखहीमें उनके दोनों स्तनोंके बीचका स्थान अपने बाणोंसे विद्ध किया; और शीघ्रताके सहित उनके चारों घोडे और सारथीको मार डाला। (१२-१६)

तब श्रुतायु राजा युधिष्ठिरके पराक्रमको देखकर घोडोंसे रहित हो, रथ छोडकर वेग पूर्वक रणभूमिसे भाग गये॥ उस महा धनुर्द्धारी श्रुतायुके भागजाने पर दुर्योधनकी सब सेना युद्धसे भागने लगी॥ महाराज! राजा युधिष्ठिर इस प्रकारसे कठिन कर्म करके

व्यात्ताननो यथा कालस्तव सैन्यं जघान ह ॥ १९ ॥
चेकितानस्तु वार्ष्णेयो गौतमं रथिनां वरम् ।
प्रेक्षतां सर्वसैन्यानां छादयामास सायकैः ॥ २० ॥
सन्निवार्य शरांस्तांस्तु कृपः शारद्वतो युधि ।
चेकितानं रणे यत्तं राजन्विव्याध पत्रिभिः ॥ २१ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष ।
सारथिं चाऽस्य समरे क्षिप्रहस्तो न्यपातयत् ॥ २२ ॥
अश्वांश्चाऽस्याऽवधीद्राजन्नुभौ तौ पार्ष्णिसारथी ।
सोऽवप्लुत्य रथात्तूर्णं गदां जग्राह सात्वतः ॥ २३ ॥
स तया वीरघातिन्या गदया गदिनां वरः ।
गौतमस्य हयान्हत्वा सारथिं च न्यपातयत् ॥ २४ ॥
भूमिष्ठो गौतमस्तस्य शरांश्चिक्षेप षोडश ।
शरास्ते सात्वतं भित्वा प्राविशन्धरणीतलम् ॥ २५ ॥
चेकितानस्ततः क्रुद्धः पुनश्चिक्षेप तां गदाम् ।
गौतमस्य वधाकांक्षी वृत्रस्येव पुरन्दरः ॥ २६ ॥
तामापतन्तीं विमलामश्मगर्भां महागदाम् ।

मुह पसारे हुए यमराजके समान तुम्हारी सेनाका नाश करने लगे ॥ (१७-१९)

वृष्णिवंशीय चेकितानने रथियोंमें मुख्य कृपाचार्यको सब सेनाके सम्मुखहीमें अपने बाणोंसे छिपा दिया॥ कृपाचार्यने शीघ्रताके सहित उन सब बाणोंको निवारण करके फिर अपने बाणोंसे चेकितान को विद्ध किया॥ फिर एक बाणसे उनके धनुषको काट दिया और एक बाणसे उनके सारथीको मार डाला उसके अनन्तर उनके घोडोंको अपने अस्त्रोंसे मार कर कृपाचार्यने दो [illegible]ोंका संहार किया। तब चेकितानने शीघ्र ही रथसे कूद कर गदा ग्रहण की फिर उस वीरोंके नाश करनेवाली गदासे अश्वत्थामाके चारों घोडोंको मार कर उनके सारथी को भी मारके गिरा दिया। (२०-२४)

अश्वत्थामाने पृथ्वीमें खडे होकर चेकितानके ऊपर सोलह बाण चलाये। वह सब बाण चेकितानको भेद करके पृथ्वीमें प्रवेश कर गये॥ जैसे इन्द्रने वृत्रासुरके ऊपर वज्र चलाया था, तैसे ही चेकितानने अश्वत्थामाके वधकी इच्छा करके उस भयङ्कर गदाको उनके ऊपर चलाया॥ गौतमनन्दन कृपाचार्य

शरैरनेकसाहस्रैर्वारयामास गौतमः ॥ २७ ॥
चेकितानस्ततः खड्गं क्रोधादुद्धृत्य भारत ।
लाघवं परमास्थाय गौतमं समुपाद्रवत् ॥ २८ ॥
गौतमोऽपि धनुस्त्यक्त्वा प्रगृह्यासिं सुसंयतः ।
वेगेन महता राजंश्चेकितानमुपाद्रवत् ॥ २९ ॥
तावुभौ बलसम्पन्नौ निस्त्रिंशवरधारिणौ ।
निस्त्रिंशाभ्यां सुतीक्ष्णाभ्यामन्योन्यं सन्ततक्षतुः ॥ ३० ॥
निस्त्रिंशवेगाभिहतौ ततस्तौ पुरुषर्षभौ ।
धरणीं समनुप्राप्तौ सर्वभूतनिषेविताम् ॥ ३१ ॥
मूर्छयाऽभिपरीताङ्गौ व्यायामेन तु मोहितौ ।
ततोऽभ्यधावद्वेगेन करकर्षः सुहृत्तया ॥ ३२ ॥
चेकितानं तथा भूतं दृष्ट्वा समरदुर्मदः ।
रथमारोपयच्चैनं सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३३ ॥
तथैव शकुनिः शूरः स्यालस्तव विशाम्पते ।
आरोपयद्रथं तूर्णं गौतमं रथिनां वरम् ॥ ३४ ॥
सौमदत्तिं तथा क्रुद्धो धृष्टकेतुर्महाबलः ।

ने उस महाकठोर प्रचण्ड लोहेकी गदाको कई हजार बाणोंसे निवारण किया ॥ (२५-२७)

हे भारत ! तब चेकितान मियानसे तलवार खींच कर कृपाचार्यकी ओर वेगसे दौडे ॥ कृपाचार्य भी धनुष त्याग कर तलवार ग्रहण करके चेकितानकी ओर वेगसे दौडे वे दोनों पराक्रमी महारथ योद्धा तीक्ष्ण धारवाले तलवारोंसे एक दूसरेके ऊपर प्रहार करने लगे। (२८-३०)

तब लोगोंके देखते हुए [illegible] वे दोनों [illegible] प्रहार करते, तथा पैतरा बदलते हुए एक दूसरेके प्रहारसे पीडित होकर मूर्छित होगये ! तब करकर्ष नामक एक पुरुष जो युद्ध दुर्मद चेकितानका मित्र था, उसको उस अवस्थामें देख कर मित्रताके कारण [illegible] दौडा और वहां पर पहुंच कर सब सेनाके सामने ही उन्हें अपने रथपर चढा लिया ॥ वैसे ही तुम्हारे साले पराक्रमी शकुनि भी रथियोंमें श्रेष्ठ कृपाचार्यको शीघ्र ही अपने रथ पर चढा लिया (३१-३४)

हे राजन् ! [illegible]

नवत्या सायकैः क्षिप्रं राजन्विव्याध वक्षसि ॥ ३५ ॥
सौमदत्तिरुरःस्थैस्तैर्भृशं बाणैरशोभत।
मध्यन्दिने महाराज रश्मिभिस्तपनो यथा ॥ ३६ ॥
भूरिश्रवास्तु समरे धृष्टकेतुं महारथम्।
हतसूतहयं चक्रे विरथं सायकोत्तमैः ॥ ३७ ॥
विरथं तं समालोक्य हताश्वं हतसारथिम्।
महता शरवर्षेण च्छादयामास संयुगे ॥ ३८ ॥
स तु तं रथमुत्सृज्य धृष्टकेतुर्महामनाः।
आरुरोह ततो यानं शतानीकस्य मारिष ॥ ३९ ॥
चित्रसेनो विकर्णश्च राजन्दुर्मर्षणस्तथा।
रथिनो हेमसन्नाहाः सौभद्रमभिदुद्रुवुः ॥ ४० ॥
अभिमन्योस्ततस्तैस्तु घोरं युद्धमवर्तत।
शरीरस्य यथा राजन्वातपित्तकफैस्त्रिभिः ॥ ४१ ॥
विरथांस्तव पुत्रांस्तु कृत्वा राजन्महाहवे।
न जघान नरव्याघ्रः स्मरन्भीमवचस्तदा ॥ ४२ ॥
ततो राज्ञां बहुशतैर्गजाश्वरथयायिभिः।

छातीमें नौ बाण शीघ्र मारे। जैसे सूर्य मध्यान्ह कालमें अपनी प्रकाशमान किरणोंसे शोभित होते हैं; वैसे ही वे सब बाण तेजस्वी भूरिश्रवाकी छातीमें लग कर शोभायमान हुए॥ सोमदत्त पुत्र भूरिश्रवाने भी अपने तीक्ष्ण बाणोंको चला कर धृष्टकेतुके घोडों और उनके सारथीको वध करके उन्हें रथहीन कर दिया। तब उनको रथ और सारथीसे रहित देख कर अनेक बाणोंकी वर्षासे छिपा दिया॥ (३५–३८)

तदनन्तर धृष्टकेतु उस रथको त्याग कर शतानीकके रथ पर जा चढे। हे राजन्! चित्रसेन, विकर्ण और दुर्मर्षण तुम्हारे ये तीनों पुत्र वर्म धारण कर सुभद्रा पुत्र अभिमन्युके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए॥ जैसे वात, कफ और पित्त इन तीनोंके सङ्ग शरीरका युद्ध होता है, वैसे ही अभिमन्युके सङ्ग उन तीनों वीरोंका महाघोर युद्ध होने लगा॥ उस महाघोर युद्धमें तुम्हारे तीनों पुत्रोंको रथहीन करनेके अनन्तर अभिमन्युको भीमसेनकी प्रतिज्ञाकी सुध हुई, इसहीसे इन्होंने तुम्हारे तीनों पुत्रोंका वध नहीं किया (३९–४२)

तिसके अनन्तर श्वेतवाहन अर्जुन

संवृतं समरे भीष्मं देवैरपि दुरासदम् ॥ ४३ ॥
प्रयान्तं शीघ्रमुद्वीक्ष्य परित्रातुं सुतांस्तव ।
अभिमन्युं समुद्दिश्य बालमेकं महारथम् ॥ ४४ ॥
वासुदेवमुवाचेदं कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
चोदयाऽश्वान्हृषीकेश यत्रैते बहुला रथाः ॥ ४५ ॥
एते हि बहवः शूराः कृतास्त्रा युद्धदुर्मदाः ।
यथा हन्युर्न नः सेनां तथा माधव चोदय ॥ ४६ ॥
एवमुक्तः स वार्ष्णेयः कौन्तेयेनाऽमितौजसा ।
रथं श्वेतहयैर्युक्तं प्रेषयामास संयुगे ॥ ४७ ॥
निष्टानको महानासीत्तव सैन्यस्य मारिष ।
यदर्जुनो रणे क्रुद्धः संयातस्तावकान्प्रति ॥ ४८ ॥
समासाद्य तु कौन्तेयो राज्ञस्तान्भीष्मरक्षिणः ।
सुशर्माणमथो राजन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥
जानामि त्वां युधां श्रेष्ठमत्यन्तं पूर्ववैरिणम् ।
अनयस्याऽद्य सम्प्राप्तं फलं पश्य सुदारुणम् ॥ ५० ॥
अद्य ते दर्शयिष्यामि पूर्वप्रेतान्पितामहान् ।

गजपति घुड़सवार और रथी आदि वीरोंसे युक्त राजाओंसे घिरे हुए देवताओंसे भी अजेय भीष्मको एकमात्र बालक अभिमन्युके साथमें तुम्हारे पुत्रोंकी रक्षा करनेके निमित्त शीघ्र जाते हुए देखकर कृष्णसे बोले, हे हृषीकेश! जहां पर ये बहुतसे रथी दीख पड़ते हैं, तुम उसी स्थानमें मेरे रथको ले चलो। हे मा

अत्यन्त पराक्रमी अर्जुनने जब कृष्णसे इस प्रकार कहा, तब उन्होंने उन सफेद घोड़ोंसे युक्त रथको उसी ओर चलाया॥ अर्जुन जो क्रुद्ध होकर तुम्हारी सेनाकी ओर गमन करने लगे, उससे तुम्हारी सेनामें महा कोलाहल होने लगा। ४५-४८

कुन्तीनन्दन अर्जुनने भीष्मकी रक्षा करनेवाले उन सब राजाओंके निकट

एवं सञ्जल्पतस्तस्य बीभत्सोः शत्रुघातिनः ॥ ५१ ॥
श्रुत्वाऽपि परुषं वाक्यं सुशर्मा रथयूथपः।
न चैनमब्रवीत्किञ्चिच्छुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥ ५२ ॥
अभिगम्याऽर्जुनं वीरं राजभिर्बहुभिर्वृतः।
पुरस्तात्पृष्ठतश्चैव पार्श्वतश्चैव सर्वतः ॥ ५३ ॥
परिवार्याऽर्जुनं संख्ये तव पुत्रैर्महारथः।
शरैः सञ्छादयामास मेघैरिव दिवाकरम् ॥ ५४ ॥
ततः प्रवृत्तः सुमहान्संग्रामः शोणितोदकः।
तावकानां च समरे पाण्डवानां च भारत ॥ ५५ ॥ [३७०८]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि ससप्तमयुद्धदिवसे सुशर्मार्जुनसमागमे चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥

सञ्जय उवाच— स ताड्यमानस्तु शरैर्धनञ्जयः पदाहतो नाग इव श्वसन्बली।
बाणेन बाणेन महारथानां चिच्छेद चापानि रणे प्रसह्य ॥ १ ॥
सञ्छिद्य चापानि च तानि राज्ञां तेषां रणे वीर्यवतां क्षणेन।
विव्याध बाणैर्युगपन्महात्मा निःशेषतां तेष्वथ मन्यमानः ॥ २ ॥
निपेतुराजौ रुधिरप्रदिग्धास्ते ताडिताः शक्रसुतेन राजन्।

तुमको तुम्हारे मरे हुए पिताके समीप भेज दूंगा। (४९—५१)

रथियोंमें श्रेष्ठ सुशर्माने शत्रुनाशन अर्जुनकी कठोर बातोंको सुन भला बुरा कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उन्होंने तुम्हारे पुत्रों और बहुतसे राजाओंके सहित अर्जुनके समीप गमन किया और बादल जैसे सूर्यको छिपा देते हैं, वैसे ही उन्होंने आगे पीछे तथा सब ओरसे बाणोंकी वर्षा करके अर्जुनको छिपा दिया। अनन्तर दोनों पक्षवालोंसे महा घोर रुधिर रूपी जलवाला भयङ्कर युद्ध आरम्भ हुआ। (५२—५५) [३७०८]

भीष्मपर्वमें चौरासी अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें पचासी अध्याय।

सञ्जय बोले, हे राजन्! जब सब राजाओंने अपने बाणोंसे बलवान् अर्जुनको पीडित किया, तब उन्होंने पैरसे पोंछ दबनेसे सर्पके समान लम्बी सांस लेते हुए एक एक बाणसे उन सब महारथियोंके धनुषको काट दिया॥ क्षण भरमें उन सब राजाओंके धनुषको काट कर उनके नाश करनेकी इच्छासे एक सङ्ग ही सबको बाणोंसे विद्ध किया॥ अर्जुनने जब उन महारथियोंके ऊपर इस भांतिसे बाणोंका प्रहार किया, तब किसी किसीका शरीर अत्यन्त रुधिरसे पूरित और कितनोंका

विभिन्नगात्राः पतितोत्तमाङ्गा गतासवश्छिन्नतनुत्रकायाः ॥ ३ ॥
महीं गताः पार्थबलाभिभूता विचित्ररूपा युगपद्विनेशुः ।
दृष्ट्वा हतांस्तान्युधि राजपुत्रांस्त्रिगर्तराजः प्रययौ रथेन ॥ ४ ॥
तेषां रथानामथ पृष्ठगोपा द्वात्रिंशदन्येऽभ्यपतन्त पार्थम् ।
तथैव ते तं परिवार्य पार्थं विकृष्य चापानि महारवाणि ॥ ५ ॥
अवीवृषन्बाणमहौघवृष्ट्या यथा गिरिं तोयधरा जलौघैः ।
संपीड्यमानस्तु शरौघवृष्ट्या धनञ्जयस्तान्युधि जातरोषः ॥ ६ ॥
षष्ट्या शरैः संयति तैलधौतैर्जघान तानप्यथ पृष्ठगोपान् ।
रथांश्च तांस्तानवजित्य संख्ये धनञ्जयः प्रीतमना यशस्वी ॥ ७ ॥
अथाऽत्वरद्भीष्मवधाय जिष्णुर्बलानि राजन्समरे निहत्य ।
त्रिगर्तराजो निहतान्समीक्ष्य महारथांस्तानथ बन्धुवर्गान् ॥ ८ ॥
रणे पुरस्कृत्य नराधिपांस्ताञ्जगाम पार्थं त्वरितो वधाय ।
अभिद्रुतं चाऽस्त्रभृतां वरिष्ठं धनञ्जयं वीक्ष्य शिखण्डिमुख्याः ॥ ९ ॥
अभ्युद्ययुस्ते शितशस्त्रहस्ता रिरक्षिषन्तो रथमर्जुनस्य ।

शरीर कवच रहित होगया। किसीका शिर कट गया और कोई अर्जुनके बाणोंसे मर कर विचित्र रूपसे नष्ट होगये। व सब एक ही समयमें कालके कराल ग्रासमें जा पड़े। (३-४)

वीरोंको शिला पर घिसे और तेलसे साफ किये हुए साठ बाणोंसे मार डाला। फिर उन साठ रथियोंको पराजित करके प्रसन्न चित्तसे राजाओंकी सेनाका नाश करते हुए भीष्मके वधके निमित्त शीघ्र

पार्थोऽपि तानापततः समीक्ष्य त्रिगर्तराजा सहितान्नृवीरान् ॥१०॥
विध्वंसयित्वा समरे धनुष्मान्गाण्डीवमुक्तैर्निशितैः पृषत्कैः।
भीष्मं यियासुर्युधि सन्ददर्श दुर्योधनं सैन्धवादींश्च राज्ञः॥ ११॥
संवारयिष्णूनभिवारयित्वा मुहूर्तमायोध्य बलेन वीरः।
उत्सृज्य राजानमनन्तवीर्यो जयद्रथादींश्च नृपान्महौजाः॥ १२॥
ययौ ततो भीमबलो मनस्वी गाङ्गेयमाजौ शरचापपाणिः।
युधिष्ठिरश्च प्रबलो महात्मा समाययौ त्वरितो जातकोपः॥ १३॥
मद्राधिपं समभित्यज्य संख्ये स्वभागमाप्तं तमनन्तकीर्तिः।
सार्धं समाद्रीसुतभीमसेनैर्भीष्मं ययौ शान्तनवं रणाय ॥ १४॥
तैः सम्प्रयुक्तः स महारथाग्र्यैर्गङ्गासुतः समरे चित्रयोधी।
न विव्यथे शान्तनवो महात्मा समागतैः पाण्डुसुतैः समस्तैः॥१५॥
अथैत्य राजा युधि सत्यसन्धो जयद्रथोऽत्युग्रबलो मनस्वी।
चिच्छेद चापानि महारथानां प्रसह्य तेषां धनुषा वरेण ॥ १६॥
युधिष्ठिरं भीमसेनं यमौ च पार्थं कृष्णं युधि सञ्जातकोपः।

उपस्थित हुए। भीष्मके समीप जानेकी इच्छा करनेवाले महाधनुर्धारी अत्यन्त पराक्रमी अर्जुन त्रिगर्तराजके सहित उन वीरोंको फिर संमुख आते हुए देख, गांडीव धनुषसे छूटे हुए अपने बाणोंसे उन सबको तितर बितर कर वेगसे गमन करने लगे। फिर राजा दुर्योधन और सिन्धुराज जयद्रथको सम्मुख आया हुआ देख, उनके सङ्ग भी मुहूर्त भर युद्ध किया फिर उन्हें त्याग कर महाबली महात्मा अर्जुन धनुष बाण हाथमें ग्रहण करके भीष्मकी ओर जाने लगे। (१०-१३)

अनन्तर कीर्तिमान् सत्यबलसे युक्त महात्मा राजा युधिष्ठिर क्रुद्ध होके शीघ्रता पूर्वक युद्धमें अपना भाग मद्रराज शल्यको त्यागकर वीर भीमसेन नकुल और सहदेवके सहित शान्तनुपुत्र भीष्मके निकट युद्ध करनेके निमित्त जाने लगे॥ महाबलवान गङ्गापुत्र भीष्म आये हुए सम्पूर्ण महारथियोंमें अग्रगण्य सब पाण्डुपुत्रोंसे आक्रान्त होकर भी विचलित न हुए। (१३-१५)

महापराक्रमी राजा जयद्रथ ने प्रचण्ड धनुष ग्रहण करके उन महारथियोंके समीप जाकर सहसा उन सब लोगोंका धनुष काट दिया॥ महात्मा दुर्योधन क्रोधरूपी विषसे पूर्ण होकर युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, श्रीकृष्ण, नकुल और सहदेवको अग्नि समान

दुर्योधनः क्रोधविषो महात्मा जघान बाणैरनलप्रकाशैः ॥ १७ ॥
कृपेण शल्येन शलेन चैव तथा विभो चित्रसेनेन चाऽऽजौ ।
विद्धाः शरैस्तेऽतिविवृद्धकोपैर्देवा यथा दैत्यगणैः समेतैः ॥ १८ ॥
छिन्नायुधं शान्तनवेन राजा शिखण्डिनं प्रेक्ष्य च जातकोपः ।
अजातशत्रुः समरे महात्मा शिखण्डिनं क्रुद्ध उवाच वाक्यम् ॥१९॥
उक्त्वा तथा त्वं पितुरग्रतो मामहं हनिष्यामि महाव्रतं तम् ।
भीष्मं शरौघैर्विमलार्कवर्णैः सत्यं वदामीति कृता प्रतिज्ञा ॥ २० ॥
त्वया च नैतां सफलां करोषि देवव्रतं यन्न निहंसि युद्धे ।
मिथ्याप्रतिज्ञो भव माऽत्र वीर रक्षस्व धर्मं स्वकुलं यशश्च ॥ २१ ॥
प्रेक्षस्व भीष्मं युधि भीमवेगं सर्वांस्तपन्तं मम सैन्यसङ्घान् ।
शरौघजालैरतितिग्मवेगैः काल यथा कालकृतं क्षणेन ॥ २२ ॥
निकृत्तचापः समरेऽनपेक्षः पराजितः शान्तनवेन चाऽऽजौ ।
विहाय बन्धूनथ सोदरांश्च क यास्यसे नाऽनुरूपं तवेदम् ॥ २३ ॥
दृष्ट्वा हि भीष्मं तमनन्तवीर्यं भग्नं च सैन्यं द्रवमाणमेवम् ।

बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ हे राजन्! जैसे दैत्योंने मिल कर देवताओंको अपने अस्त्रोंसे विद्ध किया था वैसे ही कृपाचार्य, शल्य, शल और चित्रसेन अत्यन्त क्रुद्ध होकर पाण्डवोंको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे। (१६–१८)

इस समय उनको बिना युद्धमें मारे तुम्हारी वह प्रतिज्ञा सफल नहीं होती है, इससे जिसमें तुम्हारी प्रतिज्ञा झूठी न होजावे, तुम वैसा ही कार्य करो, अपनी प्रतिज्ञा पूरी करके धर्म, यश और कुलकी रक्षा करो ॥ (१९—२१)

ततः समुत्सृज्य धनुः सबाणं युधिष्ठिरं वीक्ष्य भयाभिभूतम् ॥ ३१ ॥
गदां प्रगृह्याऽभिपपात संख्ये जयद्रथं भीमसेनः पदातिः ।
तमापतन्तं सहसा जवेन जयद्रथः सगदं भीमसेनम् ॥ ३२ ॥
विव्याध घोरैर्यमदण्डकल्पैः शितैः शरैः पञ्चशतैः समन्तात् ।
अचिन्तयित्वा स शरांस्तरस्वी वृकोदरः क्रोधपरीतचेताः ॥ ३३ ॥
जघान वाहान्समरे समन्तात्पारावतान्सिन्धुराजस्य संख्ये ।
ततोऽभिवीक्ष्याऽप्रतिमप्रभावस्तवाऽऽत्मजस्त्वरमाणो रथेन ॥ ३४ ॥
अभ्याययौ भीमसेनं निहन्तुं समुद्यतास्त्रो सुरराजकल्पः ।
भीमोऽप्यथैनं सहसा विनद्य प्रत्युद्ययौ गदया तर्जयानः ॥ ३५ ॥
समुद्यतां तां यमदण्डकल्पां दृष्ट्वा गदां ते कुरवः समन्तात् ।
विहाय सर्वे तव पुत्रमुग्रं पातं गदायाः परिहर्तुकामाः ॥ ३६ ॥
अपक्रान्तास्तुमुले सम्प्रमर्दे सुदारुणे भारत मोहनीये ।
अमूढचेतास्त्वथ चित्रसेनो महागदामापतन्तीं निरीक्ष्य ॥ ३७ ॥
रथं समुत्सृज्य पदातिराजौ प्रगृह्य खड्गं विपुलं च चर्म ।

भीष्म राजा युधिष्ठिर के अत्यन्त विचित्र रथ, ध्वजा और धनुषको बाणों से काट कर सिंहनाद करने लगे । तब युधिष्ठिरको धनुष और बाणोंको त्यागकर भयभीत हुए देखकर भीमसेन गदा ग्रहण करके जयद्रथकी ओर पैदल ही दौड़े ॥ सिन्धुराज जयद्रथने गदा लिये हुए भीमसेनको दण्डधारी यमराज के समान अत्यन्त वेगसे सम्मुख आता हुआ देखकर उनको चारों ओरसे यमदण्ड के टाला । (३०–३४)

तब अत्यन्त तेजस्वी इन्द्रके समान तुम्हारे पुत्र चित्रसेन भीमको देखकर अस्त्र ग्रहण कर उनके वध करनेके निमित्त शीघ्रताके सहित रथ पर चढ़के भीमसेनके सम्मुख उपस्थित हुए । भीमसेनने गर्जते हुए चित्रसेन के समीप जाकर उनके ऊपर गदा चलाई । उस मनुष्योंको नष्ट करनेवाली महाघोर गदाके [illegible]

अवप्लुतः सिंह इवाऽचलाग्राज्जगामाऽन्यं भूमिप भूमिदेशम् ॥ ३८ ॥
गदाऽपि सा प्राप्य रथं सुचित्रं साश्वं ससूतं विनिहत्य संख्ये ।
जगाम भूमिं ज्वलिता महोल्का भ्रष्टाऽम्बराद्गामिव सम्पतन्ती ॥ ३९ ॥
आश्चर्यभूतं सुमहत्त्वदीया दृष्ट्वैव तद्भारत सम्प्रहृष्टाः ।
सर्वे विनेदुः सहिताः समन्तात्पुपूजिरे तव पुत्रस्य शौर्यम् ॥४०॥ [३७९८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमयुद्धदिवसे पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥

सञ्जय उवाच— विरथं तं समासाद्य चित्रसेनं यशस्विनम् ।
रथमारोपयामास विकर्णस्तनयस्तव ॥ १ ॥
तस्मिंस्तथा वर्तमाने तुमुले संकुले भृशम् ।
भीष्मः शान्तनवस्तूर्णं युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥ २ ॥
ततः सरथनागाश्वाः समकम्पन्त सृञ्जयाः ।
मृत्योरास्यमनुप्राप्तं मेनिरे च युधिष्ठिरम् ॥ ३ ॥
युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो यमाभ्यां सहितः प्रभुः ।
महेष्वासं नरव्याघ्रं भीष्मं शान्तनवं ययौ ॥ ४ ॥
ततः शरसहस्राणि प्रमुञ्चन्पाण्डवो युधि ।

रहता है, वैसे ही रथसे कूद कर [illegible] [illegible] लगे। (३५-३८)

उधर वह भीमकी चलाई हुई गदा चित्रसेनके घोड़े और सारथीके सहित उसके रथको नष्ट करती हुई आकाशसे गिरी हुई महाउल्काकी भांति पृथ्वीमें गिरी। तुम्हारी सेनाके वे वीर और शत्रुओंके सब वीर मिलकर उस अद्भुत कर्मको देखकर सिंहनाद करके तुम्हारे पुत्र चित्रसेनकी प्रशंसा करने लगे। (३९-४०)

[illegible]

[illegible]

[illegible] पराक्रमी चित्रसेनको रथरहित देखकर उन्हें अपने रथपर चढा लिया॥ इस प्रकारके महाघोर तुमुल युद्धके समय में शान्तनुपुत्र भीष्म शीघ्रताके सहित राजा युधिष्ठिरकी ओर चले॥ तब रथी, गजपति और घुडसवारोंके सहित सब सृञ्जयोंकी सेना कांपने लगी, सबने समझा कि युधिष्ठिर यमराजके हाथमें पडे। (१-३)

परन्तु [illegible] युधिष्ठिरने भी [illegible]

भीष्मं सञ्छादयामास यथा मेघो दिवाकरम् ॥ ५ ॥
तेन सम्यक्प्रणीतानि शरजालानि मारिष ।
प्रतिजग्राह गाङ्गेयः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६ ॥
तथैव शरजालानि भीष्मेणाऽस्तानि मारिष ।
आकाशे समदृश्यन्त खगमानां व्रजा इव ॥ ७ ॥
निमेषार्धेन कौन्तेयं भीष्मः शान्तनवो युधि ।
अदृश्यं समरे चक्रे शरजालेन भागशः ॥ ८ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा कौरव्यस्य महात्मनः ।
नाराचं प्रेषयामास क्रुद्ध आशीविषोपमम् ॥ ९ ॥
असम्प्राप्तं ततस्तं तु क्षुरप्रेण महारथः ।
चिच्छेद समरे राजन्भीष्मस्तस्य धनुश्च्युतम् ॥ १० ॥
तं तु छित्त्वा रणे भीष्मो नाराचं कालसम्मितम् ।
निजघ्ने कौरवेन्द्रस्य हयान्काञ्चनभूषणान् ॥ ११ ॥
हताश्वं तु रथं त्यक्त्वा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
आरुरोह रथं तूर्णं नकुलस्य महात्मनः ॥ १२ ॥
यमावपि हि संक्रुद्धः समासाद्य रणे तदा ।
शरैः सञ्छादयामास भीष्मः परपुरञ्जयः ॥ १३ ॥

युधिष्ठिरने भीष्मको अपने बाणोंकी वर्षासे छिपा दिया। गङ्गापुत्र भीष्म युधिष्ठिरके सौ सौ सहस्र सहस्र बाणोंको सैकड़ों तथा सहस्रों बाणोंसे काट काट गिराने लगे। वे सब बाणोंके समूह आकाशमें शलभ समूहकी भांति दिखाई देने लगे॥ (४—७)

चलाया। हे महाराज! महारथ भीष्मने युधिष्ठिरके धनुषसे छूटे हुए उस बाणको समीप न आने ही मार्गही में क्षुरप्रबाणसे काटके गिरा दिया॥ ८-१०

फिर सुवर्ण भूषित उनके रथके सब घोडोंको मार डाला। राजा युधिष्ठिर उसी समय घोडोंसे रहित रथको त्याग

तौ तु दृष्ट्वा महाराज भीष्मबाणप्रपीडितौ ।
जगाम परमां चिन्तां भीष्मस्य वधकांक्षया ॥ १४ ॥
ततो युधिष्ठिरो वश्यान्राज्ञस्तान्समचोदयत् ।
भीष्मं शान्तनवं सर्वे निहतेति सुहृद्गणान् ॥ १५ ॥
ततस्ते पार्थिवाः सर्वे श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ।
महता रथवंशेन परिवव्रुः पितामहम् ॥ १६ ॥
स समन्तात्परिवृतः पिता देवव्रतस्तव ।
चिक्रीड धनुषा राजन्पातयानो महारथान् ॥ १७ ॥
तं चरन्तं रणे पार्था ददृशुः कौरवं युधि ।
मृगमध्य प्रविश्येव यथा सिंहशिशुं वने ॥ १८ ॥
तर्जयानं रणे वीरांस्त्रासयानं च सायकैः ।
दृष्ट्वा त्रेसुर्महाराज सिंहं मृगगणा इव ॥ १९ ॥
रणे भारतसिंहस्य ददृशुः क्षत्रिया गतिम् ।
अग्नेर्वायुसहायस्य यथा कक्षं दिधक्षतः ॥ २० ॥
शिरांसि रथिनां भीष्म पातयामास संयुगे ।

महाराज ! राजा युधिष्ठिर नकुल और सहदेवको भीष्मके बाणोंसे पीडित देखकर भीष्मके वध करनेके निमित्त चिन्ता करने लगे, फिर अनुयायी राजाओं और सुहृद लोगोंसे बोले, "तुम लोग युद्धमें भीष्मका वध करो।" (१४-१५)

तब उन सब वीरोंने राजा युधिष्ठिर का वह वचन सुनकर बहुतसे रथियों के सहित भीष्मको चारों ओरसे घेर लिया। तुम्हारे पिता देवव्रती भीष्म चारों ओर से रथियों के समूह में घिरकर मानो क्रीडा करते हुए महारथियों का वध करने लगे ॥ (१६-१७)

पाण्डव लोग महारनके बीच हरिणोंके झुण्डमें सिंहके समान भीष्मको रणभूमिमें भ्रमण करते हुए देखने लगे। महाराज ! क्षत्रिय लोग उनको तर्जन गर्जन करते तथा बाणोंसे सब शूरवीर योद्धाओंको भयभीत करते हुए देख कर इस प्रकारसे डर गये, जैसे सिंहको देखकर मृगोंका झुण्ड भयसे विकल होजाता है और वायुकी सहायतासे तृणको दग्ध करनेवाले अग्निके समान उस पुरुषसिंहके तेज और पराक्रमको देखने लगे ॥ (१८—२०)

जैसे निपुण पुरुष तालके वृक्षसे पके हुए फलोंको गिराता है, वैसे ही पराक्रमी बलवान भीष्म रथियोंके शिरको

तालेभ्यः परिपक्वानि फलानि कुशलो नरः ॥ २१ ॥
पतद्भिश्च महाराज शिरोभिर्धरणीतले ।
बभूव तुमुलः शब्दः पततामश्मनामिव ॥ २२ ॥
तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने भयानके ।
सर्वेषामेव सैन्यानामासीद्व्यतिकरो महान् ॥ २३ ॥
भिन्नेषु तेषु व्यूहेषु क्षत्रिया इतरेतरम् ।
एकमेकं समाहूय युद्धायैवाऽवतस्थिरे ॥ २४ ॥
शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् ।
अभिदुद्राव वेगेन तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ २५ ॥
अनादृत्य ततो भीष्मस्तं शिखण्डिनमाहवे ।
प्रययौ सृञ्जयान्क्रुद्धः स्त्रीत्वं चिन्त्य शिखण्डिनः ॥ २६ ॥
सृञ्जयास्तु ततो दृष्ट्वा हृष्टा भीष्मं महारणे ।
सिंहनादांश्च विविधांश्चक्रुः शङ्खविमिश्रितान् ॥ २७ ॥
ततः प्रववृते युद्धं व्यतिषक्तरथद्विपम् ।
पश्चिमां दिशमास्थाय स्थिते सवितरि प्रभो ॥ २८ ॥
धृष्टद्युम्नोऽथ पाञ्चाल्यः सात्यकिश्च महारथः ।
पीडयन्तौ भृशं सैन्यं शक्तितोमरवृष्टिभिः ॥ २९ ॥

काट काटके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ वह सब कटे हुए सिर पत्थरके टुकडोंके समान घोर शब्द करते हुए पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ उस महा भयङ्कर तुमुल संग्राममें सेनाके बीच महा कोलाहल होने लगा, व्यूह छिन्न भिन्न होगया क्षत्रिय योद्धा आपसमें एक दूसरेको आ-ह्वान करके युद्ध करने लगे ॥ (२१-२४)

ऊपर शस्त्र नहीं चलाया ॥ और क्रुद्ध होकर सृञ्जयोंकी ओर गमन किया ॥ सृञ्जय योद्धा लोग महारथ भीष्मको देखकर शङ्ख बजा कर प्रसन्न चित्तसे सिंहनाद करने लगे ॥ उस समय सूर्य पश्चिम दिशाको गमन कर रहे थे उस ही अवसरमें रथों और हाथियोंके सङ्ग युद्ध आरम्भ हुआ ॥ (२५-२८)

शस्त्रैश्च बहुभी राजन्नघ्नतुस्तावकान्रणे ।
ते हन्यमानाः समरे तावका भरतर्षभ ॥ ३० ॥
आर्या युद्धे मतिं कृत्वा न त्यजन्ति स्म संयुगम् ।
यथोत्साहं तु समरे निजघ्नुस्तावका रणे ॥ ३१ ॥
तत्राऽऽक्रन्दो महानासीत्तावकानां महात्मनाम् ।
वध्यतां समरे राजन्पार्षतेन महात्मना ॥ ३२ ॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तावकानां महारथौ ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पार्षतं प्रत्युपस्थितौ ॥ ३३ ॥
तौ तस्य तुरगान्हत्वा त्वरमाणौ महारथौ ।
छादयामासतुरुभौ शरवर्षेण पार्षतम् ॥ ३४ ॥
अवप्लुत्याऽथ पाञ्चाल्यो रथात्तूर्णं महाबलः ।
आरुरोह रथं तूर्णं सात्यकेस्तु महात्मनः ॥ ३५ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा महत्या सेनया वृतः ।
आवन्त्यौ समरे क्रुद्धावभ्ययात्स परन्तपौ ॥ ३६ ॥
तथैव तव पुत्रोऽपि सर्वोद्योगेन मारिष ।
विन्दानुविन्दौ समरे परिवार्याऽवतस्थिवान् ॥ ३७ ॥
अर्जुनश्चापि संक्रुद्धः क्षत्रियान्क्षत्रियर्षभः ।

श्रेष्ठ! तुम्हारी ओरके महारथ योद्धा सात्यकि और धृष्टद्युम्न के बाणोंसे पीडित होकर भी युद्धसे न हटे; वरन उत्साहित होकर युद्ध करने लगे। तुम्हारी महा बलवान सेनाभी धृष्टद्युम्नके बाणोंसे पीडित होकर आर्त्तनाद करने लगी। (२९-३२)

उस घोर आर्त्तनादको सुनके तुम्हारी ओरके राजाओंके बीचमें अवन्ति नगरके राजा विन्द और अनुविन्द दोनों भाइयोंने धृष्टद्युम्नके निकट उपस्थित होकर शीघ्रताके साथ उनके रथके घोडोंको मारकर फिर अपने बाणोंकी वर्षासे उनको छिपा दिया॥ महाबली धृष्टद्युम्न घोडोंसे रहित रथसे कूदकर महात्मा सात्यकिके रथपर शीघ्रही चढ गये। (३३-३५)

तब राजा युधिष्ठिर बडी सेनाके सहित क्रुद्ध होकर शत्रुनाशन अवन्तिराज विन्द और अनुविन्दकी ओर वेगसे चले॥ तुम्हारे पुत्र भी सब अस्त्रशस्त्र ग्रहण करके विन्द और अनुविन्दकी रक्षा करने लगे॥ अर्जुन क्रुद्ध होकर इस प्रकारसे क्षत्रियोंके सङ्ग युद्ध करने

अयोधयत संग्रामे वज्रपाणिरिवाऽसुरान् ॥ ३८ ॥
द्रोणस्तु समरे क्रुद्धः पुत्रस्य प्रियकृत्तव ।
व्यधमत्सर्वपाञ्चालांस्तूलराशिमिवाऽनलः ॥ ३९ ॥
दुर्योधनपुरोगास्तु पुत्रास्तव विशाम्पते ।
परिवार्य रणे भीष्मं युयुधुः पाण्डवैः सह ॥ ४० ॥
ततो दुर्योधनो राजा लोहितायति भास्करे ।
अब्रवीत्तावकान्सर्वास्त्वरध्वमिति भारत ॥ ४१ ॥
युध्यतां तु तथा तेषां कुर्वतां कर्म दुष्करम् ।
अस्तं गिरिमथाऽऽरूढे अप्रकाशति भास्करे ॥ ४२ ॥
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितौघतरङ्गिणी ।
गोमायुगणसङ्कीर्णा क्षणेन क्षणदामुखे ॥ ४३ ॥
शिवाभिरशिवाभिश्च रुवद्भिर्भैरवं रवम् ।
घोरमायोधनं जज्ञे भूतसङ्घैः समाकुलम् ॥ ४४ ॥
राक्षसाश्च पिशाचाश्च तथाऽन्ये पिशिताशिनः ।
समन्ततो व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ४५ ॥
अर्जुनोऽथ सुशर्मादीन्राज्ञस्तान्सपदानुगान् ।
विजित्य पृतनामध्ये ययौ स्वशिबिरं प्रति ॥ ४६ ॥

लगे, जैसे इन्द्रने असुरोंके साथ संग्राम किया था ॥ (३६-३८)

तुम्हारे पुत्रोंके हितैषी द्रोणाचार्य क्रुद्ध होकर जैसे अग्नि रूईको भस्म करता है, वैसेही सम्पूर्ण पाण्डवोंकी सेना भस्म करने लगे ॥ हे राजन् ! दुर्योधनके सहित तुम्हारे सब पुत्र लोग भीष्मको चारों ओरसे घेरकर पाण्डवोंके सह युद्ध कर- वह सम्पूर्ण राजा और वीर योद्धा लोग महा कठिन कर्म करने लगे ॥ क्षण भरमें वीरोंके रुधिरसे तरङ्गयुक्त और गिद्ध तथा सियारोंसे पूर्ण महा घोर नदी उत्पन्न हुई ॥ चारों ओर सियार महा भयङ्कर शब्द करने लगे । सैकडों तथा सहस्रों राक्षस और पिशाच तथा मांसभक्षी इत्यादि जन्तु उसके चारों ओर

युधिष्ठिरोऽपि कौरव्यो भ्रातृभ्यां सहितस्तथा ।
ययौ स्वशिबिरं राजा निशायां सेनया वृतः ॥ ४७ ॥
भीमसेनोऽपि राजेन्द्र दुर्योधनमुखान्रथान् ।
अवजित्य ततः संख्ये ययौ स्वशिबिरं प्रति ॥ ४८ ॥
दुर्योधनोऽपि नृपतिः परिवार्य महारणे ।
भीष्मं शान्तनवं तूर्णं प्रयातः शिबिरं प्रति ॥ ४९ ॥
द्रोणो द्रौणिः कृपः शल्यः कृतवर्मा च सात्वतः ।
परिवार्य चमूं सर्वां प्रययुः शिबिरं प्रति ॥ ५० ॥
तथैव सात्यकी राजन्धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
परिवार्य रणे योधान्ययतुः शिबिरं प्रति ॥ ५१ ॥
एवमेते महाराज तावकाः पाण्डवैः सह ।
पर्यवर्तन्त सहिता निशाकाले परन्तप ॥ ५२ ॥
ततः स्वशिबिरं गत्वा पाण्डवाः कुरवस्तथा ।
न्यवसन्त महाराज पूजयन्तः परस्परम् ॥ ५३ ॥
रक्षां कृत्वा ततः शूरा न्यस्य गुल्मान्यथाविधि ।
अपनीय च शल्यानि स्नात्वा च विविधैर्जलैः ॥ ५४ ॥

शिबिरमें जानेके वास्ते प्रस्थान किया ॥ कुरुकुलभूषण युधिष्ठिर सन्ध्याके समय अपने दोनों भाइयों नकुल सहदेवके सहित अपने शिबिरमें गये ॥ भीमसेनने दुर्योधन आदि रथियोंको युद्धमें पराजित करके शिबिरमें जानेके निमित्त प्रस्थान किया ॥ (४६–४८)

राजा दुर्योधन, शान्तनव भीष्मको घेर कर शीघ्र रणभूमिसे अपने शिबिरमें गये ॥ द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, शल्य और सात्वत कृतवर्मा,—ये सब लोग अपनी अपनी सेनाके सहित अपने शिबिरोंमें गये ॥ सात्यकि और धृष्टद्युम्न सेनाके योद्धाओंसे युक्त होकर अपने शिबिरोंमें गये ॥ (४९–५१)

महाराज ! इसी प्रकारसे तुम्हारे और पाण्डवोंके सब योद्धा रात्रीके समय युद्धसे निवृत्त होकर रणभूमिसे लौटकर अपने शिबिरोंमें आये ॥ फिर पाण्डव और तुम्हारी ओरके सब योद्धा लोग अपने शिबिरों पर आकर एक दूसरेका यथा योग्य सत्कार और पूजा कर अपनी अपनी सेनाके पुरुषोंका दर्शन करके आत्मरक्षा के लिये चौकीदार स्थान स्थानपर रख कर शरीरोंसे शल्य निकाल कर विविध भांतिके जलमें स्नान किया। (५२–५४)

कृतस्वस्त्ययनाः सर्वे संस्तूयन्तश्च वन्दिभिः ।
गीतवादित्रशब्देन व्यक्रीडन्त यशस्विनः ॥ ५५ ॥
मुहूर्तादिव तत्सर्वमभवत्स्वर्गसन्निभम् ।
नहि युद्धकथां काञ्चित्तत्राऽकुर्वन्महारथाः ॥ ५६ ॥
ते प्रसुप्ते बले तत्र परिश्रान्तजने नृप ।
हस्त्यश्वबहुले रात्रौ प्रेक्षणीये बभूवतुः ॥ ५७ ॥ [३८७७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सप्तमदिवसयुद्धावहारे षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥

सञ्जय उवाच— परिणाम्य निशां तां तु सुखं प्राप्ता जनेश्वराः ।
कुरवः पाण्डवाश्चैव पुनर्युद्धाय निर्ययुः ॥ १ ॥
ततः शब्दो महानासीत्सैन्ययोरुभयोर्नृप ।
निर्गच्छमानयोः संख्ये सागरप्रतिमो महान् ॥ २ ॥
ततो दुर्योधनो राजा चित्रसेनो विविंशतिः ।
भीष्मश्च रथिनां श्रेष्ठो भारद्वाजश्च वै नृप ॥ ३ ॥
एकीभूताः सुसंयत्ताः कौरवाणां महाचमूम् ।
व्यूहाय विदधू राजन्पाण्डवान्प्रति दंशिताः ॥ ४ ॥

उन सब यशस्वी महारथ योद्धाओंने ब्राह्मणोंके स्वस्त्ययन और वन्दियोंकी स्तुति सुनते हुए गीत और बाजोंके शब्दसे मुहूर्त भर क्रीड़ा की ॥ वह मुहूर्त भरका समय उन सब पुरुषोंको स्वर्ग सुखके समान बोध हुआ। तब फिर उन लोगोंमें युद्ध सम्बन्धीय कुछ बातचीत नहीं हुई ॥ हे राजन्! दोनों ओरके बहुतसे घोड़े हाथी और मनुष्योंसे युक्त सम्पूर्ण सेना थक गई थी, वह निद्रित होकर अत्यन्त मनोहर दिखाई देने लगी। (५५-५७) [३८७७]

भीष्मपर्वमें छियासी अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें सतासी अध्याय।

सञ्जय बोले, हे कुरुराज! कौरव और पाण्डवोंकी ओरके सब वीरोंने सुखसे सोकर उस रात्रिको व्यतीत किया। सबेरेके समय फिर युद्धके निमित्त शिविरोंसे बाहर निकले। दोनों सेनाके शिविरोंसे निकलनेके समय समुद्रके समान अत्यन्त भयङ्कर शब्द होने लगा। (१-२)

तिसके अनन्तर राजा दुर्योधन, चित्रसेन, विविंशति, रथियोंमें श्रेष्ठ भीष्म और ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, इन सब महारथ योद्धाओंने एक होकर तथा

भीष्मः कृत्वा महाव्यूहं पिता तव विशाम्पते।
सागरप्रतिमं घोरं वाहनोर्मितरङ्गिणम् ॥ ५ ॥
अग्रतः सर्वसैन्यानां भीष्मः शान्तनवो ययौ।
मालवैर्दाक्षिणात्यैश्च आवन्त्यैश्च समन्वितः ॥ ६ ॥
ततोऽनन्तरमेवाऽऽसीद्भारद्वाजः प्रतापवान्।
कुलिन्दैः पारदैश्चैव तथा क्षुद्रकमालवैः ॥ ७ ॥
द्रोणादनन्तरं यत्तो भगदत्तः प्रतापवान्।
मगधैश्च कलिङ्गैश्च पिशाचैश्च विशाम्पते ॥ ८ ॥
प्राग्ज्योतिषादनु नृपः कौसल्योऽथ बृहद्बलः।
मेकलैः कुरुविन्दैश्च त्रैपुरैश्च समन्वितः ॥ ९ ॥
बृहद्बलात्ततः शूरस्त्रिगर्तः प्रस्थलाधिपः।
काम्बोजैर्बहुभिः सार्धं यवनैश्च सहस्रशः ॥ १० ॥
द्रौणिस्तु रभसः शूरस्त्रैगर्तादनु भारत।
प्रययौ सिंहनादेन नादयानो धरातलम् ॥ ११ ॥
तथा सर्वेण सैन्येन राजा दुर्योधनस्तदा।
द्रौणेरनन्तरं प्रायात्सोदर्यैः परिवारितः ॥ १२ ॥

यत्नवान् होकर और वर्म धारण करके पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करने के निमित्त व्यूह रचना की ॥ (३-४)

हे राजन् ! तुम्हारे पिता शान्तनुपुत्र भीष्मने बाणरूपी तरङ्गसे युक्त समुद्रके समान निज सेनाका महाघोर व्यूह बनाकर सेनाके आगे मालव, दाक्षिणात्य और अवन्ति देशीय योद्धाओंसे युक्त होकर युद्धके निमित्त प्रस्थान किया ॥ उनके पश्चात् प्रतापी द्रोणाचार्यने क्षुद्रक, पुलिन्द, पारद और मालव देशीय योद्धाओंके सहित यात्रा की ॥ (५-७)

उनके पीछे प्रबल प्रतापी भगदत्तने मगध, कलिङ्ग और पिशाच वीरोंसे युक्त होकर युद्धके निमित्त गमन किया॥ उनके पीछे कोसलराज बृहद्बल मेकल, त्रिपुर और चिलुक योद्धाओंके सहित युद्धके वास्ते प्रस्थान करने लगे ॥ बृहद्बलके पीछे प्रस्थलराज त्रिगर्त, काम्बोज और सहस्रों यवन वीर योद्धाओंसे युक्त होकर चले ॥ (८-१०)

उनके पीछे अत्यन्त पराक्रमी अश्वत्थामा सिंहनादसे पृथ्वीको पूर्ण करते हुए युद्धके निमित्त चले,॥ उनके पीछे राजा दुर्योधनने सहोदर भाइयोंसे युक्त

दुर्योधनादनु ततः कृपः शारद्वतो ययौ ।
एवमेष महाव्यूहः प्रययौ सागरोपमः ॥ १३ ॥
रेजुस्तत्र पताकाश्च श्वेतच्छत्राणि वा विभो ।
अङ्गदान्यत्र चित्राणि महार्हाणि धनूंषि च ॥ १४ ॥
तं तु दृष्ट्वा महाव्यूहं तावकानां महारथः ।
युधिष्ठिरोऽब्रवीत्तूर्णं पार्षतं पृतनापतिम् ॥ १५ ॥
पश्य व्यूहं महेष्वास निर्मितं सागरोपमम् ।
प्रतिव्यूहं त्वमपि हि कुरु पार्षत सत्वरम् ॥ १६ ॥
ततः स पार्षतः शूरो व्यूहं चक्रे सुदारुणम् ।
शृङ्गाटकं महाराज परव्यूहविनाशनम् ॥ १७ ॥
शृङ्गाभ्यां भीमसेनश्च सात्यकिश्च महारथः ।
रथैरनेकसाहस्रैस्तथा हयपदातिभिः ॥ १८ ॥
नाभ्यां बभौ नरश्रेष्ठः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
मध्ये युधिष्ठिरो राजा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ १९ ॥
अथेतरे महेष्वासाः सहसैन्या नराधिपाः ।
व्यूहं तं पूरयामासुर्व्यूहशास्त्रविशारदाः ॥ २० ॥

होकर सम्पूर्ण सेनाके सहित युद्धके निमित्त यात्रा की और उनके पीछे शारद्वतपुत्र कृपाचार्यने युद्धके निमित्त प्रस्थान किया । हे भारत ! समुद्रके समान उस महाव्यूहके गमन करनेके समय श्वेतछत्र, पताका, चित्र विचित्र अंगद, कवच और धनुष आदि अस्त्र शस्त्र प्रकाशित होने लगे ॥ (१३–१४)

ही व्यूह तैयार करो । महाराज! तिसके अनन्तर पराक्रमी धृष्टद्युम्नने शत्रुव्यूहके नाश करनेवाले महादारुण शृङ्गाटक व्यूह बनाया ॥ (१५–१७)

महारथ भीमसेन और सात्यकि कई हजार रथी, घुडसवार और पैदल योद्धाओंके सहित उसके दोनों शृङ्गस्थानो पर स्थित हुए । पुरुषोंमें श्रेष्ठ श्वेतवाहन

अभिमन्युस्ततः पश्चाद्विराटश्च महारथः ।
द्रौपदेयाश्च संहृष्टा राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ २१ ॥
एवमेतं महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः ।
अतिष्ठन्समरे शूरा योद्धुकामा जयैषिणः ॥ २२ ॥
भेरीशब्दैश्च विमलैर्विमिश्रैः शङ्खनिःस्वनैः ।
क्ष्वेडितास्फोटितोत्क्रुष्टैर्नादिताः सर्वतो दिशः ॥ २३ ॥
ततः शूराः समासाद्य समरे ते परस्परम् ।
नेत्रैरनिमिषै राजन्नवैक्षन्त परस्परम् ॥ २४ ॥
नामभिस्ते मनुष्येन्द्र पूर्वं योधाः परस्परम् ।
युद्धाय समवर्तन्त समाहूयेतरेतरम् ॥ २५ ॥
ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं भयावहम् ।
तावकानां परेषां च निघ्नतामितरेतरम् ॥ २६ ॥
नाराचा निशिताः संख्ये सम्पतन्ति स्म भारत ।
व्यात्ताननाः भयकरा उरगा इव सङ्घशः ॥ २७ ॥
निष्पेतुर्विमलाः शक्त्यस्तैलधौताः सुतेजनाः ।
अम्बुदेभ्यो यथा राजन्भ्राजमानाः शतह्रदाः ॥ २८ ॥

ने उस शृङ्गाटक व्यूहके यथायोग्य स्थानों पर स्थित होके उसे पूर्ण किया ॥ १८-२०

तिसके पीछे महारथ अभिमन्यु, विराट, द्रौपदीके पुत्र और राक्षस घटोत्कच स्थित हुए ॥ हे भारत! पराक्रमसे युक्त पाण्डव लोग इसी प्रकारसे व्यूह बनाकर जयकी अभिलाषा करते हुए युद्धके निमित्त रणभूमिमें गये ॥ शङ्खके सङ्ग मिलकर भेरी, मृदङ्ग, बांसुरी और नरसिंहोंके सिंहनादसे महा घोर शब्द होकर सब दिशा पूर्ण हुई ॥ (२१-२३)

शूरवीर योद्धा लोग आपसमें शत्रुओंके समीप जा कर पलक रहित नेत्रोंसे एक दूसरेको देखने लगे॥ हे प्रजानाथ! उन शूरवीरोंने पहिले आपसमें एक दूसरेका नाम लेकर आवाहन किया और फिर युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ तब उन वीरोंका महा भयानक युद्ध होने लगा। दोनों सेनाके योद्धा लोग एक दूसरेके अस्त्रोंसे पीडित होने लगे। उत्तम पानीसे बुझे हुए नाराच बाण सर्पके समान रणभूमिमें चारों ओर गिरने लगे ॥ (२४-२७)

तेजसे चमकदार की हुई निर्मल प्रकाशमान शक्ति मानो बिजलीके समान बादलोंसे निकलकर रणभूमिमें चारों

गदाश्च विमलैः पट्टैः पिनद्धाः स्वर्णभूषितैः ।
पतन्त्यस्तत्र दृश्यन्ते गिरिशृङ्गोपमाः शुभाः ॥ २९ ॥
निस्त्रिंशाश्च व्यदृश्यन्त विमलाम्बरसन्निभाः ।
आर्षभाणि विचित्राणि शतचन्द्राणि भारत ॥ ३० ॥
अशोभन्त रणे राजन्पात्यमानानि सर्वशः ।
तेऽन्योन्यं समरे सेने युद्ध्यमाने नराधिप ॥ ३१ ॥
अशोभेतां यथा देवदैत्यसेने समुद्यते ।
अभ्यद्रवन्त समरे तेऽन्योन्यं वै समन्ततः ॥ ३२ ॥
रथास्तु रथिभिस्तूर्णं प्रेषिताः परमाहवे ।
युगैर्युगानि संश्लिष्य युयुधुः पार्थिवर्षभाः ॥ ३३ ॥
दन्तिनां युध्यमानानां सङ्घर्षात्पावकोऽभवत् ।
दन्तेषु भरतश्रेष्ठ सधूमः सर्वतोदिशम् ॥ ३४ ॥
प्रासैरभिहताः केचिद्गजयोधाः समन्ततः ।
पतमानाः स्म दृश्यन्ते गिरिशृङ्गाच्च्युता इव ॥ ३५ ॥
पादाताश्चाप्यदृश्यन्त निघ्नन्तोऽथ परस्परम् ।
चित्ररूपधराः शूरा नखरप्रासयोधिनः ॥ ३६ ॥

ओर गिरने लगी ॥ सुवर्णयुक्त दण्डसे भूषित पर्वतके शृङ्गके समान गदा और दूसरे अस्त्र रणभूमिमें चलते हुए दिखाई देने लगे ॥ और सैकडों तारे और चन्द्रमाके रूपसे भूषित उत्तम ढाल युद्धक्षेत्रमें सब ओर शोभित होने तथा शरीरसे कटकर पृथ्वीमें गिरने लगी ॥ (२८–३०)

हे राजन् ! दोनों ओरकी सेना युद्धमें उत्साही होकर देवता और दैत्योंकी सेनाके समान शोभित होने लगी। [illegible] और रणभूमिमें [illegible] एक दूसरेकी ओर वेगसे दौडने लगे। उस तुमुल युद्धमें भरतश्रेष्ठ रथियोंने शत्रुओंके रथसे अपना रथ भिडाकर युद्ध करना आरम्भ किया ॥ (३१–३३)

सब ओर युद्ध करते हुए मतवारे हाथियोंके दांतोंकी रगडसे सब दिशाओंमें धुएंसे युक्त अग्नि उत्पन्न होने लगी। कितने ही गजपति योद्धा प्रास आदि अस्त्रोंकी चोटसे मरकर इस भांति पृथ्वीपर गिरने लगे, जैसे पर्वतपरसे बडे बडे पत्थरके टुकडे गिरते हैं ॥ सब ओर पैदल योद्धा [illegible] [illegible] आदि [illegible] युद्ध करके एक दूसरेको मारते हुए विचित्र [illegible]

अन्योन्यं ते समासाद्य कुरुपाण्डवसैनिकाः ।
अस्त्रैर्नानाविधैर्घोरै रणे निन्युर्यमक्षयम् ॥ ३७ ॥
ततः शान्तनवो भीष्मो रथघोषेण नादयन् ।
अभ्यागमद्रणे पार्थान्धनुःशब्देन मोहयन् ॥ ३८ ॥
पाण्डवानां रथाश्चापि नदन्तो भैरवं स्वनम् ।
अभ्यद्रवन्त संयत्ता धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ ३९ ॥
ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
नराश्वरथनागानां व्यतिषक्तं परस्परम् ॥ ४० ॥ [३८९७]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
अष्टमदिवसयुद्धारम्भे सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥

सञ्जय उवाच— भीष्मं तु समरे क्रुद्धं प्रतपन्तं समन्ततः ।
न शेकुः पाण्डवा द्रष्टुं तपन्तमिव भास्करम् ॥ १ ॥
ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात् ।
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं मर्दयन्तं शितैः शरैः ॥ २ ॥
स तु भीष्मो रणश्लाघी सोमकान्सह सृञ्जयान् ।

दौड़ पड़ते थे ॥ कौरव और पाण्डवोंकी सेनाके वीर शत्रुओंके समीप जाकर अपने नाना प्रकारके शस्त्रोंसे एक दूसरे का वध करके उन्हें यमपुरीमें भेजने लगे ॥ (३४–३७)

तिसके अनन्तर शान्तनुपुत्र भीष्म रथके शब्दसे पृथ्वीको अनुनादित और अपने धनुषके टङ्कार शब्दसे सबको मोहित करते हुए पाण्डवोंकी ओर गमन किया; धृष्टद्युम्न आदि पाण्डवोंके महारथ योद्धा सन्नद्ध होकर अपने रथके घोर शब्दके सहित भीष्मकी ओर दौड़े ॥ तिसके अनन्तर तुम्हारी और उन लोगोंकी [illegible] मनुष्य, घोड़े, रथ और हाथिओंका आपसमें महा भयङ्कर युद्ध होने लगा ॥ (३८–४०) [३८९७]

भीष्मपर्वमें सतासी अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें अठासी अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे महाराज ! जब भीष्म युद्धमें क्रुद्ध होकर शत्रुसेनाको भस्म करने लगे, उस समय पाण्डव लोग सूर्यके समान तेजस्वी भीष्मको आँख देखनेको भी समर्थ नहीं हुए । अनन्तर पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेना धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञाके अनुसार उत्तम [illegible] शस्त्रोंको ग्रहण करके सेनाका नाश करते हुए भीष्मकी ओर दौड़ी ॥ युद्धमें प्रशंसित भीष्म महारथी सोमक-

पञ्चालांश्च महेष्वासान्पातयामास सायकैः ॥ ३ ॥
ते वध्यमाना भीष्मेण पञ्चालाः सोमकैः सह ।
भीष्ममेवाऽभ्ययुस्तूर्णं त्यक्त्वा मृत्युकृतं भयम् ॥ ४ ॥
स तेषां रथिनां वीरो भीष्मः शान्तनवो युधि ।
चिच्छेद सहसा राजन्बाहूनथ शिरांसि च ॥ ५ ॥
विरथान्रथिनश्चक्रे पिता देवव्रतस्तव ।
पतितान्युत्तमाङ्गानि हयेभ्यो हयसादिनाम् ॥ ६ ॥
निर्मनुष्यांश्च मातङ्गाञ्शयानान्पर्वतोपमान् ।
अपश्याम महाराज भीष्मास्त्रेण प्रमोहितान् ॥ ७ ॥
न तत्राऽऽसीत्पुमान्कश्चित्पाण्डवानां विशाम्पते ।
अन्यत्र रथिनां श्रेष्ठाद्भीमसेनान्महाबलात् ॥ ८ ॥
स हि भीष्मं समासाद्य ताडयामास संयुगे ।
ततो निष्टानको घोरो भीष्मभीमसमागमे ॥ ९ ॥
बभूव सर्वसैन्यानां घोररूपो भयानकः ।
तथैव पाण्डवा हृष्टाः सिंहनादमथाऽनदन् ॥ १० ॥
ततो दुर्योधनो राजा सोदर्यैः परिवारितः ।

भीष्मं जुगोप समरे वर्तमाने जनक्षये ॥ ११ ॥
भीमस्तु सारथिं हत्वा भीष्मस्य रथिनां वरः।
प्रद्रुताश्वे रथे तस्मिन्द्रवमाणे समन्ततः ॥ १२ ॥
सुनाभस्य शरेणाऽऽशु शिरश्चिच्छेद भारत।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद्भुवि ॥ १३ ॥
हते तस्मिन्महाराज तव पुत्रे महारथे।
नाऽमृष्यन्त रणे शूराः सोदराः सप्त संयुगे ॥ १४ ॥
आदित्यकेतुर्बह्वाशी कुण्डधारो महोदरः।
अपराजितः पण्डितको विशालाक्षः सुदुर्जयः॥ १५ ॥
पाण्डवं चित्रसन्नाहा विचित्रकवचध्वजाः।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे योद्धुकामारिमर्दनाः ॥ १६ ॥
महोदरस्तु समरे भीमं विव्याध पत्रिभिः।
नवभिर्वज्रसङ्काशैर्नमुचिं वृत्रहा यथा ॥ १७ ॥
आदित्यकेतुः सप्तत्या बह्वाशी चाऽपि पञ्चभिः।
नवत्या कुण्डधारश्च विशालाक्षश्च पञ्चभिः ॥ १८ ॥
अपराजितो महाराज पराजिष्णुर्महारथम्।

उस मनुष्योंका नाश करने वाले महा घोर युद्ध में राजा दुर्योधन सहोदर भाइयोंसे युक्त होकर भीष्म की रक्षा करते थे, रथियों में मुख्य भीमसेनने भीष्मके सारथी को मार डाला; उससे भीष्मके घोड़े भागे और कूदते हुए इधर उधर दौड़ने लगे। तब भीमसेनने क्षुरप्र उसको धनुषपर चढ़ाकर उससे सुनाभका सिर काट डाला; तब वह हत होकर भूमिपर गिरपड़ा। (११-१३)

तुम्हारे पुत्र महारथ सुनाभके मारे पर आदित्यकेतु बह्वाशी, कुण्डधार महोदर, अपराजित पण्डितक दुर्जय और विशालाक्ष विचित्र कवच तथा शस्त्रोंको धारण करनेवाले शत्रुमर्दन ये सातों भाई क्रुद्ध होकर युद्धकी अभिलाषसे भीमसेन के सम्मुख गये। (१४-१६)

हे राजन्! जैसे इन्द्रने नमुचि नाम दैत्यके ऊपर प्रहार किया था, वैसे ही महोदरने वज्रके समान नौ बाणोंसे भीमसेनको विद्ध किया॥ और आदित्यकेतुने सत्तर, बह्वाशीने पांच, कुण्डधारने नब्बे, विशालाक्षने पांच और शत्रुओंको जीतने वाले महारथ अपराजितने भीमसेनको पराजित करने की इच्छासे अनेक बाणोंसे उन को विद्ध

शरैर्बहुभिरानर्च्छद्भीमसेनं महाबलम् ॥ १९ ॥
रणे पण्डितकश्चैनं त्रिभिर्बाणैः समार्पयत् ।
स तन्न ममृषे भीमः शत्रुभिर्वधमाहवे ॥ २० ॥
धनुः प्रपीड्य वामेन करेणाऽमित्रकर्शनः ।
शिरश्चिच्छेद समरे शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥ २१ ॥
अपराजितस्य सुनसं तव पुत्रस्य संयुगे ।
पराजितस्य भीमेन निपपात शिरो महीम् ॥ २२ ॥
अथाऽपरेण भल्लेन कुण्डधारं महारथम् ।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २३ ॥
ततः पुनरमेयात्मा प्रसन्धाय शिलीमुखम् ।
प्रेषयामास समरे पण्डितं प्रति भारत ॥ २४ ॥
स शरः पण्डितं हत्वा विवेश धरणीतलम् ।
यथा नरं निहत्याऽऽशु भुजगः कालचोदितः ॥ २५ ॥
विशालाक्षशिरश्छित्त्वा पातयामास भूतले ।
त्रिभिः शरैरदीनात्मा स्मरन्क्लेशं पुरातनम् ॥ २६ ॥
महोदरं महेष्वासं नाराचेन स्तनान्तरे ।
विव्याध समरे राजन्स हतो न्यपतद्भुवि ॥ २७ ॥

किया ॥ (१७-१९)

अनन्तर पण्डितकने भी तीन बाणोंसे भीमसेनपर प्रहार किया ॥ शत्रुनाशन भीमसेनने युद्धभूमि में प्रहारको अधिक न सह के बायें हाथसे धनुष लेकर नतपर्व बाणसे अपराजितके सुन्दर नासिकासे शोभित सिरको काट दिया ॥ अपराजित भीमसेनके बाणसे मारे गये और उनका सिर कटकर पृथ्वीमें गिरा ॥ जिसके अनन्तर भीमसेनने एक बाणसे सब सेनाके सन्मुख ही महारथ कुण्डधारको भी यमपुरीमें भेज दिया ॥ (२०-२३)

फिर महाबलवान् भीमसेनने एक बाण साधके पण्डितकके ऊपर चलाया, जैसे काल प्रेरित सर्प मनुष्यों का नाश करके पृथ्वी में प्रवेश करता है, वैसे ही भीमसेन के उस बाणने पण्डितकका संहार करके पृथ्वी में प्रवेश किया ॥ फिर एक क्षणमें भीमने पहिले क्लेश को स्मरण करते हुए तीन बाणोंसे विशालाक्षका सिर काटके पृथ्वी में गिरा दिया ॥ अनन्तर उन्होंने महाधनुर्धारी महोदरके दोनों स्तन के बीचमें एक एक बाणसे विद्ध किया ॥ उसम ही

आदित्यकेतोः केतुं च छित्वा बाणेन संयुगे।
भल्लेन भृशतीक्ष्णेन शिरश्चिच्छेद भारत ॥ २८ ॥
बह्वाशिनं ततो भीमः शरेणाऽऽनतपर्वणा।
प्रेषयामास संक्रुद्धो यमस्य सदनं प्रति ॥ २९ ॥
प्रदुद्रुवुस्ततस्तेऽन्ये पुत्रास्तव विशाम्पते।
मन्यमाना हि तत्सत्यं सभायां तस्य भाषितम् ॥३०॥
ततो दुर्योधनो राजा भ्रातृव्यसनकर्शितः।
अब्रवीत्तावकान्योधान्भीमोऽयं युधि वध्यताम् ॥३१॥
एवमेते महेष्वासाः पुत्रास्तव विशाम्पते।
भ्रातॄन्संदृश्य निहतान्प्रास्मरंस्ते हि तद्वचः ॥ ३२ ॥
यदुक्तवान्महाप्राज्ञः क्षत्ता हितमनामयम्।
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दिव्यदर्शिनः ॥ ३३ ॥
लोभमोहसमाविष्टः पुत्रप्रीत्या जनाधिप।
न बुध्यसे पुरा यत्तत्तथ्यमुक्तं वचो महत् ॥ ३४ ॥
तथैव च वधार्थाय पुत्राणां पाण्डवो बली।
नूनं जातो महाबाहुर्यथा हन्ति स्म कौरवान् ॥ ३५ ॥

महोदर मर कर पृथ्वी में गिर पडे ॥ (२५—२७)

फिर भीमसेनने एक बाणसे आदित्यकेतुका केतु काटकर अत्यन्त तीक्ष्ण बाणसे उनका सिर काट डाला ॥ तब क्रुद्ध होकर एक उत्तम बाणसे बह्वाशी को भी यमपुरी में पहुंचा दिया। हे राजन् ! तब तुम्हारे दूसरे सब पुत्र भीमसेनकी सभा में की हुई प्रतिज्ञा सत्य जान कर उनके सम्मुखसे भाग गये। तिसके अनन्तर राजा दुर्योधनने भाइयोंके वधसे क्रुद्ध होकर सब योद्धाओंसे कहा, कि "तुम लोग इस भीमसेनको युद्धमें वध करो"। (२८-३१)

महाराज ! तुम्हारे महाधनुर्धर पुत्रों ने इस भांति भाइयोंको मरते देख कर उस समय में सत्यवादी बुद्धिमान विदुर जो सब वचन पहिले कहे थे, उनको स्मरण किया ॥ हे प्रजानाथ ! पहिले विदुरके उन हितकर और यथार्थ वचनोंको तुम पुत्रोंके स्नेह और लोभ, मोहके वशमें होकर नहीं समझ सके थे, उस समय का सत्य [illegible]

ततो दुर्योधनो राजा भीष्ममासाद्य संयुगे ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो विललाप सुदुःखितः ॥ ३६ ॥
निहता भ्रातरः शूरा भीमसेनेन मे युधि ।
यतमानास्तथाऽन्येऽपि हन्यन्ते सर्वसैनिकाः ॥ ३७ ॥
भवांश्च मध्यस्थतया नित्यमस्मानुपेक्षते ।
सोऽहं कापथमारूढः पश्य दैवमिदं मम ॥ ३८ ॥
एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं पिता देवव्रतस्तव ।
दुर्योधनमिदं वाक्यमब्रवीत्साश्रुलोचनः ॥ ३९ ॥
उक्तमेतन्मया पूर्वं द्रोणेन विदुरेण च ।
गान्धार्या च यशस्विन्या तत्त्वं तात न बुद्धवान् ॥४०॥
समयश्च मया पूर्वं कृतो वै शत्रुकर्शन ।
नाहं युधि निवार्यो वै नाऽप्याचार्यः कथञ्चन ॥४१॥
यं यं हि धार्तराष्ट्राणां भीमो द्रक्ष्यति संयुगे ।
हनिष्यति रणे नित्यं सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ४२ ॥

स त्वं राजन्स्थिरो भूत्वा रणे कृत्वा दृढां मतिम् ।
योधयस्व रणे पार्थान्स्वर्गं कृत्वा परायणम् ॥ ४३ ॥
न शक्याः पाण्डवा जेतुं सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
तस्माद्युद्धे स्थिरां कृत्वा मतिं युद्ध्यस्व भारत ॥ ४४ ॥ [३०३०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि सुनाभादिधृतराष्ट्रपुत्रवधे अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—दृष्ट्वा मे निहतान्पुत्रान्बहूनेकेन सञ्जय ।
भीष्मो द्रोणः कृपश्चैव किमकुर्वत संयुगे ॥ १ ॥
अहन्यहनि मे पुत्राः क्षयं गच्छन्ति सञ्जय ।
मन्येऽहं सर्वथा सूत दैवेनोपहता भृशम् ॥ २ ॥
यत्र मे तनयाः सर्वे जीयन्ते न जयन्त्युत ।
यत्र भीष्मस्य द्रोणस्य कृपस्य च महात्मनः ॥ ३ ॥
सौमदत्तेश्च वीरस्य भगदत्तस्य चोभयोः ।
अश्वत्थाम्नस्तथा तात शूराणामनिवर्तिनाम् ॥ ४ ॥
अन्येषां चैव शूराणां मध्यगास्तनया मम ।
यदहन्यन्त संग्रामे किमन्यद्भागधेयतः ॥ ५ ॥

इससे तुम स्वर्ग लोक पानेकी अभिलाष करके दृढ होकर धीरज धारण कर पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध करो ॥ देवता लोग इन्द्रके सङ्ग मिलकर भी पाण्डवोंको युद्धमें पराजित करनेमें समर्थ नहीं हैं; इससे तुम रणभूमिमें स्थिर बुद्धि होकर युद्ध करो। (४३—४४)[३०३०]

भीष्मवधमें अठासी अध्याय समाप्त।

भीष्मवधमें नवासी अध्याय।

धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य आदिने अकेले अकेलेसे मेरे कई पुत्रोंको मारा हुआ देखकर क्या किया? हे सूत! जब मेरे पुत्र प्रतिदिन ही युद्धमें मारे जा रहे हैं, तब मैं सब भांतिसे यही विचार करता हूं, कि वे सब निश्चय ही दैवकी इच्छासे मर रहे हैं। (१–२)

जब मेरे सब पुत्र पराजित हो रहे हैं, किसी प्रकारसे भी युद्धमें जयी नहीं होते हैं; विशेष करके महात्मा भीष्म, द्रोणाचार्य, महात्मा कृपाचार्य, सोमदत्तपुत्र भूरिश्रवा, वीरोंमें श्रेष्ठ भगदत्त और अश्वत्थामा आदि महात्मा शूरवीर योद्धा तथा दूसरे बहुतसे बलवान योद्धाओंके बीचमें रहकर भी जब मारे जाते हैं, तब अभाग्यके अतिरिक्त और क्या

न हि दुर्योधनो मन्दः पुरा प्रोक्तमबुध्यत ।
वार्यमाणो मया तात भीष्मेण विदुरेण च ॥ ६ ॥
गान्धार्या चैव दुर्मेधाः सततं हितकाम्यया ।
नाऽबुध्यत पुरा मोहात्तस्य प्राप्तमिदं फलम् ॥ ७ ॥
यद्भीमसेनः समरे पुत्रान्मम विचेतसः ।
अहन्यहनि संक्रुद्धो नयते यमसादनम ॥ ८ ॥

सञ्जय उवाच— इदं तत्समनुप्राप्तं क्षत्तुर्वचनमुत्तमम् ।
न बुद्धवानसि विभो प्रोच्यमानं हितं तदा ॥ ९ ॥
निवारय सुतान्द्यूतात्पाण्डवान्मा द्रुहेति च ।
सुहृदां हितकामानां ब्रुवतां तत्तदेव च ॥ १० ॥
न शुश्रूषसि यद्वाक्यं मर्त्यः पथ्यमिवौषधम् ।
तदेव त्वामनुप्राप्तं वचनं साधुभाषितम ॥ ११ ॥
विदुरद्रोणभीष्माणां तथाऽन्येषां हितैषिणाम ।
अकृत्वा वचनं पथ्यं क्षयं गच्छन्ति कौरवाः ॥ १२ ॥
तदेतत्समनुप्राप्तं पूर्वमेव विशाम्पते ।

तस्मात्त्वं श्रृणु तत्त्वेन यथा युद्धमवर्तत ॥ १३ ॥
मध्याह्ने सुमहारौद्रः संग्रामः समपद्यत ।
लोकक्षयकरो राजंस्तन्मे निगदतः श्रृणु ॥ १४ ॥
ततः सर्वाणि सैन्यानि धर्मपुत्रस्य शासनात् ।
संरब्धान्यभ्यवर्तन्त भीष्ममेव जिघांसया ॥ १५ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च सात्यकिश्च महारथः ।
युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः ॥ १६ ॥
विराटो द्रुपदश्चैव सहिताः सर्वसोमकैः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे भीष्ममेव महारथम् ॥ १७ ॥
केकया धृष्टकेतुश्च कुन्तिभोजश्च दंशितः ।
युक्तानीका महाराज भीष्ममेव समभ्ययुः ॥ १८ ॥
अर्जुनो द्रौपदेयाश्च चेकितानश्च वीर्यवान् ।
दुर्योधनसमादिष्टान्राज्ञः सर्वान्समभ्ययुः ॥ १९ ॥
अभिमन्युस्तथा शूरो हैडिम्बश्च महारथः ।
भीमसेनश्च संक्रुद्धास्तेऽभ्यधावन्त कौरवान् ॥ २० ॥

कौरवोंका नाश हो रहा है ॥ महाराज! पहिले जब तुमने सुहृद्लोगोंकी बातोंको नहीं श्रवण किया, तबहीसे ये सब व्यसन उपस्थित हुआ है ॥ जो हो उस समय जिस प्रकारसे युद्ध हुआ, इस वृत्तान्तको मेरे मुखसे विस्तार पूर्वक सुनो ॥ मध्याह्न समयमें जिस प्रकार महाभयङ्कर वीर पुरुषोंका नाश करने वाला युद्ध आरम्भ हुआ, उसे मैं वर्णन करता हूं तुम चित्त एकाग्र करके सुनो। (८—१४)

उसके अनन्तर पाण्डवोंकी सेना धर्मराज युधिष्ठिरकी आज्ञानुसार क्रुद्ध होकर भीष्मकी ओर उनके वध करनेकी इच्छासे दौडी ॥ महारथ धृष्टद्युम्न, शिखण्डी और सात्यकि सेनाके सहित भीष्मकी ओर वेगसे दौडे ॥ विराट और द्रुपद भी सब सेनाके सहित भीष्मकी ओर युद्ध करनेके निमित्त बढे ॥ केकयराज, धृष्टकेतु और कुन्तिभोज सेनाके सहित कवच धारण करके भीष्मके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त शीघ्रतासे चले। (१५-१८)

अर्जुन, द्रौपदीके पुत्र और चेकितानने युधिष्ठिरकी आज्ञासे दुर्योधनकी सेनाके सब राजाओंकी ओर गमन किया ॥ पराक्रमी अभिमन्यु, राक्षस घटोत्कच और भीमसेन कौरवोंके सङ्ग युद्धके निमित्त रणभूमिमें उपस्थित हुए।

त्रिधाभूतैरवध्यन्त पाण्डवैः कौरवा युधि ।
तथैव कौरवै राजन्नवध्यन्त परे रणे ॥ २१ ॥
द्रोणस्तु रथिनः श्रेष्ठान्सोमकान्सृञ्जयैः सह ।
अभ्यधावत संक्रुद्धः प्रेषयिष्यन्यमक्षयम् ॥ २२ ॥
तत्राऽऽक्रन्दो महानासीत्सृञ्जयानां महात्मनाम् ।
वध्यतां समरे राजन्भारद्वाजेन धन्विना ॥ २३ ॥
द्रोणेन निहतास्तत्र क्षत्रिया बहवो रणे ।
विचेष्टन्तो ह्यदृश्यन्त व्याधिक्लिष्टा नरा इव ॥ २४ ॥
कूजतां क्रन्दतां चैव स्तनतां चैव भारत ।
अनिशं शुश्रुवे शब्दः क्षुत्क्लिष्टानां नृणामिव ॥ २५ ॥
तथैव कौरवेयाणां भीमसेनो महाबलः ।
चकार कदनं घोरं क्रुद्धः काल इवाऽपरः ॥ २६ ॥
वध्यतां तत्र सैन्यानामन्योन्येन महारणे ।
प्रावर्त्तत नदी घोरा रुधिरौघप्रवाहिनी ॥ २७ ॥
स संग्रामो महाराज घोररूपोऽभवन्महान् ।
कुरूणां पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥ २८ ॥

पाण्डवोंके सब योद्धा तीन हिस्सोंमें बंट कर कौरवोंकी सेनाका वध करने लगे; और कौरवोंकी सेनाके वीर भी तीन हिस्सोंमें बंट कर पाण्डवोंकी सेनाका नाश करने लगे। (१९-२१)

रथियोंमें श्रेष्ठ द्रोणाचार्य क्रुद्ध हो कर सोमक क्षत्रियों और सृञ्जयोंको यमपुरीमें भेजनेकी इच्छासे उनकी ओर दौडे। महात्मा सृञ्जयगण धनुर्धारी द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर महा घोर आर्त्तनाद करने लगे। द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित हुए अनेक [illegible] रोगी पुरुषोंकी भांति [illegible] हुए मैंने निरीक्षण किया। (२२-२४)

भूखसे व्याकुल हुए पुरुषोंके समान कितने ही पुरुषोंकी रणभूमिमें चिल्लाहट, कितनोंका रोना और कितनोंहीका सिंह-नाद सुन पडने लगा। महाबल भीमसेन क्रुद्ध होके मानो दूसरे यमराजके समान रूप धारण करके कौरवोंकी सेनाका नाश करने लगे। सम्पूर्ण सेनाके वीरोंके आपसमें लडकर मरनेपर उन लोगोंके रुधिरसे रणभूमिमें महाघोर रुधिरकी नदी उत्पन्न हुई। (२५-२७)

हे राजन! [illegible]

ततो भीमो रणे क्रुद्धो रभसश्च विशेषतः।
गजानीकं समासाद्य प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २९ ॥
तत्र भारत भीमेन नाराचाभिहता गजाः।
पेतुर्नेदुश्च सेदुश्च दिशश्च परिबभ्रमुः ॥ ३० ॥
छिन्नहस्ता महानागाश्छिन्नगात्राश्च मारिष।
क्रौञ्चवद्व्यनदन्भीताः पृथिवीमधिशेरते ॥ ३१ ॥
नकुलः सहदेवश्च हयानीकमभिद्रुतौ।
ते हयाः काञ्चनापीडा रुक्मभाण्डपरिच्छदाः ॥ ३२ ॥
वध्यमाना व्यदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः।
पतद्भिस्तुरगै राजन्समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ३३ ॥
निर्जिह्वैश्च श्वसद्भिश्च कूजद्भिश्च गतासुभिः।
हयैर्बभौ नरश्रेष्ठ नानारूपधरैर्धरा ॥ ३४ ॥
अर्जुनेन हतैः संख्ये तथा भारत राजभिः।
प्रबभौ वसुधा घोरा तत्र तत्र विशाम्पते ॥ ३५ ॥
रथैर्भग्नैर्ध्वजैश्छिन्नैर्निकृत्तैश्च महायुधैः।

सोऽभिगम्य महाबाहुः पितरं सत्यविक्रमम् ।
अभ्यवादयदव्यग्रो विनयेन कृताञ्जलिः ॥ १२ ॥
न्यवेदयत चाऽऽत्मानमर्जुनस्य महात्मनः ।
इरावानस्मि भद्रं ते पुत्रश्चाऽहं तव प्रभो ॥ १३ ॥
मातुः समागमो यश्च तत्सर्वं प्रत्यवेदयत् ।
तच्च सर्वं यथावृत्तमनुसस्मार पाण्डवः ॥ १४ ॥
परिष्वज्य सुतं चाऽपि आत्मनः सदृशं गुणैः ।
प्रीतिमानभवत्पार्थो देवराजनिवेशने ॥ १५ ॥
सोऽर्जुनेन समाज्ञप्तो देवलोके तदा नृप ।
प्रीतिपूर्वं महाबाहुः स्वकार्यं प्रति भारत ॥ १६ ॥
युद्धकाले त्वयाऽस्माकं साह्यं देयमिति प्रभो ।
बाढमित्येवमुक्त्वा तु युद्धकाल इहाऽऽगतः ॥ १७ ॥
कामवर्णजवैरश्वैर्बहुभिः संवृतो नृप ।
ते हयाः काञ्चनापीडा नानावर्णा मनोजवाः ॥ १८ ॥
उत्पेतुः सहसा राजन्हंसा इव महोदधौ ।
ते त्वदीयान्समासाद्य हयसङ्घान्मनोजवान् ॥ १९ ॥

वार्यमाणाः शकुनिना तैश्च योधैर्महाबलैः ।
सन्नद्धाः युद्धकुशला रौद्ररूपा महाबलाः ॥ २८ ॥
तदनीकं महाबाहो भित्वा परमदुर्जयम् ।
बलेन महता युक्ताः स्वर्गाय विजयैषिणः ॥ २९ ॥
विविशुस्ते तदा हृष्टा गान्धारा युद्धदुर्मदाः ।
तान्प्रविष्टांस्तदा दृष्ट्वा इरावानपि वीर्यवान् ॥ ३० ॥
अब्रवीत्समरे योधान्विचित्रान्दारुणायुधान् ।
यथैते धार्तराष्ट्रस्य योधाः सानुगवाहनाः ॥ ३१ ॥
हन्यन्ते समरे सर्वे तथा नीतिर्विधीयताम् ।
बाढमित्येव मुक्त्वा ते सर्वे योधा इरावतः ॥ ३२ ॥
जघ्नुस्तेषां बलानीकं दुर्जयं समरे परैः ।
तदनीकमनीकेन समरे वीक्ष्य पातितम् । ॥ ३३ ॥
अमृष्यमाणास्ते सर्वे सुबलस्याऽऽत्मजा रणे ।
इरावन्तमभिद्रुत्य सर्वतः पर्यवारयन् ॥ ३४ ॥
ताडयन्तः शितैः प्रासैश्चोदयन्तः परस्परम् ।
ते शराः पर्यधावन्त कुर्वन्तो महदाकुलम् ॥ ३५ ॥
इरावानथ निर्भिन्नः प्रासैस्तीक्ष्णैर्महात्मभिः ।

स्रवता रुधिरेणाऽक्तस्तोत्रैर्विद्ध इव द्विपः ॥ ३६ ॥
पुरतोऽपि च पृष्ठे च पार्श्वयोश्च भृशाहतः ।
एको बहुभिरत्यर्थं धैर्याद्राजन्न विव्यथे ॥ ३७ ॥
इरावानपि संक्रुद्धः सर्वांस्तान्निशितैः शरैः ।
मोहयामास समरे विध्वा परपुरञ्जयः ॥ ३८ ॥
प्रासानुत्कृष्य तरसा स्वशरीरादरिन्दमः ।
तैरेव ताडयामास सुबलस्याऽऽत्मजान्रणे ॥ ३९ ॥
निकृष्य च शितं खड्गं गृहीत्वा च शरावरम् ।
पदातिर्हन्तुमागच्छज्जिघांसुः सौबलान्युधि ॥ ४० ॥
ततः प्रत्यागतप्राणाः सर्वे ते सुबलात्मजाः ।
भूयः क्रोधसमाविष्टा इरावन्तमभिद्रुताः ॥ ४१ ॥
इरावानपि खड्गेन दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
अभ्यवर्तत तान्सर्वान्सौबलान्बलदर्पितः ॥ ४२ ॥
लाघवेनाथ चरतः सर्वे ते सुबलात्मजाः ।
अन्तरं नाभ्यगच्छन्त चरन्तः शीघ्रगामिनः ॥ ४३ ॥
भूमिष्ठमथ तं संख्ये सम्प्रदृश्य ततः पुनः ।

परिवार्य भृशं सर्वे ग्रहीतुमुपचक्रमुः ॥ ४४ ॥
अथाऽभ्याशगतानां स खड्गेनाऽमित्रकर्शनः ।
असिहस्तापहस्ताभ्यां तेषां गात्राण्यकृन्तत ॥ ४५ ॥
आयुधानि च सर्वेषां बाहूनपि विभूषितान् ।
अपतन्त निकृत्ताङ्गा मृता भूमौ गतासवः ॥ ४६ ॥
वृषभस्तु महाराज बहुधा विपरिक्षतः ।
अमुच्यत महारौद्रात्तस्माद्वीरावकर्तनात् ॥ ४७ ॥
तान्सर्वान्पतितान्दृष्ट्वा भीतो दुर्योधनस्ततः ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो राक्षसं घोरदर्शनम् ॥ ४८ ॥
आर्ष्यशृङ्गिं महेष्वासं मायाविनमरिन्दमम् ।
वैरिणं भीमसेनस्य पूर्वं बकवधेन वै ॥ ४९ ॥
पश्य वीर यथा ह्येष फाल्गुनस्य सुतो बली ।
मायावी विप्रियं कर्तुमकार्षीन्मे बलक्षयम् ॥ ५० ॥
त्वं च कामगमस्तात मायास्त्रे च विशारदः ।
कृतवैरश्च पार्थेन तस्मादेनं रणे जहि ॥ ५१ ॥

को पृथ्वीपर गमन करते देखकर उन्हें घेर कर जीते ही ग्रहण करनेका विचार किया। जब वे लोग उनके समीप पहुंचे, तब शत्रुनाशन इरावान् दोनों हाथमें तलवार पकडके उनके शरीर तथा शस्त्र और भूषणोंके सहित भुजाओंको काटने लगे। उन लोगोंके बीच वृषभके अतिरिक्त और सब इरावान्के तलवारसे कट कर प्राण त्याग के यम लोकको सिधारे। वृषभ क्षत विक्षत शरीर होकर भी उस [illegible] इरावान्के [illegible] [illegible] भांति जीवित [illegible] बचा। (४०-४७)

महाराज! [illegible]

अलम्बुष महाधनुर्द्धर और मायावी था; भीमसेनने उससे बकासुरका संहार किया था, तबसे वह उनसे शत्रुता रखता था। राजा दुर्योधन सबलपुत्रों को इरावानके हाथसे मरते देखकर क्रुद्ध होकर महाघोर शत्रुनाशन राक्षस [illegible] बोले, हे वीर! देखो, अर्जुनका पुत्र मायावी इरावान् हमारी सेनाका नाश करके [illegible] कर्म किया है। हे तात! तुम इच्छानुसार गमन करनेवाले [illegible] [illegible] (४८—५१)

बाढमित्येवमुक्त्वा तु राक्षसो घोरदर्शनः ।
प्रययौ सिंहनादेन यत्राऽर्जुनसुतो युवा ॥ ५२ ॥
आरूढैर्युद्धकुशलैर्विमलप्रासयोधिभिः ।
वीरैः प्रहारिभिर्युक्तः स्वैरनीकैः समावृतः ॥ ५३ ॥
हतशेषैर्महाराज द्विसाहस्रैर्हयोत्तमैः ।
निहन्तुकामः समरे इरावन्तं महाबलम् ॥ ५४ ॥
इरावानपि संक्रुद्धस्त्वरमाणः पराक्रमी ।
हन्तुकाममभित्रघ्नो राक्षसं प्रत्यवारयत् ॥ ५५ ॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य राक्षसः सुमहाबलः ।
त्वरमाणस्ततो मायां प्रयोक्तुमुपचक्रमे ॥ ५६ ॥
तेन मायामयाः क्लृप्ता हयास्तावन्त एव हि ।
स्वारूढा राक्षसैर्घोरैः शूलपट्टिशधारिभिः ॥ ५७ ॥
ते संरब्धाः समागम्य द्विसाहस्राः प्रहारिणः ।
अचिराद्गमयामासुः प्रेतलोकं परस्परम् ॥ ५८ ॥
तस्मिंस्तु निहते सैन्ये तावुभौ युद्धदुर्मदौ ।
संग्रामे समतिष्ठेतां यथा वै वृत्रवासवौ ॥ ५९ ॥
आद्रवन्तमभिप्रेक्ष्य राक्षसं युद्धदुर्मदम् ।

इरावानथ संरब्धः प्रत्यधावन्महाबलः ॥ ६० ॥
समभ्याजगतस्याऽऽजौ तस्य खड्गेन दुर्मतेः ।
चिच्छेद कार्मुकं दीप्तं शरावापं च सत्वरम् ॥ ६१ ॥
स निकृत्तं धनुर्दृष्ट्वा खं जवेन समाविशत ।
इरावन्तमभिक्रुद्धं मोहयन्निव मायया ॥ ६२ ॥
ततोऽन्तरिक्षमुत्पत्य इरावानपि राक्षसम् ।
विमोहयित्वा मायाभिस्तस्य गात्राणि सायकैः ॥ ६३ ॥
चिच्छेद सर्वमर्मज्ञः कामरूपो दुरासदः ।
तथा स राक्षसश्रेष्ठः शरैः कृत्तः पुनः पुनः ॥ ६४ ॥
संबभूव महाराज समवाप च यौवनम् ।
माया हि सहजा तेषां वयो रूपं च कामजम् ॥ ६५ ॥
एवं तद्राक्षसस्याऽङ्गं छिन्नं छिन्नं बभूव ह ।
इरावानपि संक्रुद्धो राक्षसं तं महाबलम् ॥ ६६ ॥
परश्वधेन तीक्ष्णेन चिच्छेद च पुनः पुनः ।
स तेन बलिना वीरश्छिद्यमान इरावता ॥ ६७ ॥

लगे ॥ पराक्रमी इरावान् बलवान राक्षस अलम्बुषको संमुख आते देखकर शीघ्रताके सहित उनकी ओर दौडे ॥ अनन्तर राक्षस अलम्बुषके समीप आनेपर इरावान्ने तलवारसे उसके प्रकाशमान धनुष बाणों को पांच खण्ड कर डाला ॥ (५९—६१)

राक्षस अलम्बुष धनुषको कटता हुआ देखकर वेगपूर्वक आकाशमें गया, और अत्यन्त क्रुद्ध होके इरावान्को मायासे मोहित कर दिया। सब कर्मों के जाननेवाले पराक्रमी इरावान् भी माया विद्या जानते थे, और वह भी इच्छाके अनुसार रूप धारण कर सकते थे। जब राक्षस अलम्बुष आकाशमें गया, तब वह भी आकाश में जाके मायासे उसे मोहित करके उसके शरीरको अपने बाणोंसे काटने लगे। अलम्बुष बार बार कटकर भी फिर ज्योंका त्यों होने लगा। हे राजन्! राक्षसोंकी माया सब अनेक प्रकार सहज और युवावस्था तथा सब प्रकारका रूप धारण करने भी उन ही इच्छा के अनुसार हो सकता है। इसी कारण से उसका शरीर [illegible] कटके भी फिर [illegible] लगा। (६२—६६)

[illegible]

राक्षसोऽप्यनदद्घोरं स शब्दस्तुमुलोऽभवत्।
परश्वधक्षतं रक्षः सुस्राव बहुशोणितम् ॥ ६८ ॥
ततश्चुक्रोध बलवांश्चक्रे वेगं च संयुगे।
आर्ष्यशृङ्गिस्तथा दृष्ट्वा समरे शत्रुमूर्जितम् ॥ ६९ ॥
कृत्वा घोरं महद्रूपं ग्रहीतुमुपचक्रमे।
अर्जुनस्य सुतं वीरमिरावन्तं यशस्विनम् ॥ ७० ॥
संग्रामशिरसो मध्ये सर्वेषां तत्र पश्यताम्।
तां दृष्ट्वा तादृशीं मायां राक्षसस्य दुरात्मनः ॥ ७१ ॥
इरावानपि संक्रुद्धो मायां स्रष्टुं प्रचक्रमे।
तस्य क्रोधाभिभूतस्य संयुगेष्वनिवर्तिनः ॥ ७२ ॥
योऽन्वयो मातृकस्तस्य स एनमभिपेदिवान्।
स नागैर्बहुशो राजन्सर्वतः संवृतो रणे ॥ ७३ ॥
दधार सुमहद्रूपमनन्त इव भोगवान्।
ततो बहुविधैर्नागैश्छादयामास राक्षसम् ॥ ७४ ॥
छाद्यमानस्तु नागैः स ध्यात्वा राक्षसपुङ्गवः।
सौपर्णं रूपमास्थाय भक्षयामास पन्नगान् ॥ ७५ ॥
मायया भक्षिते तस्मिन्नन्वये तस्य मातृके।

विमोहितमिरावन्तं न्यहनद्राक्षसोऽसिना ॥ ७६ ॥
सकुण्डलं समुकुटं पद्मेन्दुसदृशप्रभम् ।
इरावतः शिरो रक्षः पातयामास भूतले ॥ ७७ ॥
तस्मिंस्तु निहते वीरे राक्षसेनार्जुनात्मजे ।
विशोकाः समपद्यन्त धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥ ७८ ॥
तस्मिन्महति संग्रामे तादृशे भैरवे पुनः ।
महान्व्यतिकरो घोरः सेनयोः समपद्यत ॥ ७९ ॥
गजा हयाः पदाताश्च विमिश्रा दन्तिभिर्हताः ।
रथाश्वा दन्तिनश्चैव पत्तिभिस्तत्र सूदिताः ॥ ८० ॥
तथा पत्तिरथौघाश्च हयाश्च बहवो रणे ।
रथिभिर्निहता राजंस्तव तेषां च सङ्कुले ॥ ८१ ॥
अजानन्नर्जुनश्चापि निहतं पुत्रमौरसम् ।
जघान समरे शूरान्राज्ञस्तान्भीष्मरक्षिणः ॥ ८२ ॥
तथैव तावका राजन्सृञ्जयाश्च सहस्रशः ।
जुह्वतः समरे प्राणान्निजघ्नुरितरेतरम् ॥ ८३ ॥
मुक्तकेशा विकवचा विरथाश्छिन्नकार्मुकाः ।
बाहुभिः समयुध्यन्त समवेताः परस्परम् ॥ ८४ ॥

भक्षण कर डाला, तब वह अत्यन्त ही मोहित देखकर उसी समय तलवारसे उनके कुण्डल और मुकुट भूषित चन्द्रमाके समान प्रकाशवान शिरको काटकर पृथ्वीमें गिरा दिया ॥ ७५-७७

हे प्रजानाथ! अर्जुन पुत्र वीर इरावान को राक्षस अलम्बुषके हाथसे मरते हुए देखकर तुम्हारी सब सेनाके योद्धा राजाओंके सहित शोकसे रहित हुए। उस महाभयङ्कर संग्राममें दोनों सेनाके बीच महा घोर युद्ध होने लगा। उस घोर युद्धमें [illegible] घोड़े और पैदल सेनाके सब योद्धा एकत्रित होकर हाथियोंसे घोड़े हाथी पैदलोंसे और पत्ति, घोड़े तथा रथोंका समूह हाथियोंसे विनष्ट होने लगा। (७८—८१)

अर्जुनने अपने पुत्र इरावानके वधका सम्वाद नहीं सुना था, वह भीष्मसे रक्षित क्षत्रियोंका नाश कर रहे थे ॥ हे राजन्! तुम्हारे, सृञ्जय और तुम्हारी ओरके योद्धा प्राणोंकी आशा छोड़कर एक दूसरेका वध करने लगे। अनेक योद्धा खुले केश कवच [illegible] और [illegible] करते [illegible]

संग्रामे दैत्यसङ्काशे तस्मिन्वीरवरक्षये ॥ ९३ ॥ [४०७२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि इरावद्वधे नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥

धृतराष्ट्र उवाच– इरावन्तं तु निहतं दृष्ट्वा पार्था महारथाः ।
संग्रामे किमकुर्वन्त तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच— इरावन्तं तु निहतं संग्रामे वीक्ष्य राक्षसः ।
व्यनदत्सुमहानादं भैमसेनिर्घटोत्कचः ॥ २ ॥
नदतस्तस्य शब्देन पृथिवी सागराम्बरा ।
सपर्वतवना राजंश्चचाल सुभृशं तदा ॥ ३ ॥
अन्तरिक्षं दिशश्चैव सर्वाश्च प्रदिशस्तथा ।
तं श्रुत्वा सुमहानादं तव सैन्यस्य भारत ॥ ४
ऊरुस्तम्भः समभवद्वेपथुः स्वेद एव च ।
सर्व एव महाराज तावका दीनचेतसः
सर्वतः समचेष्टन्त सिंहभीता गजा इव ।
नर्दितं सुमहानादं निर्घातमिव राक्षसः
ज्वलितं शूलमुद्यम्य रूपं कृत्वा विभीषणम्
नानारूपप्रहरणैर्वृतो राक्षसपुङ्गवैः

भिन्नकुम्भान्विरुधिरान्भिन्नगात्रांश्च वारणान् ॥ १६ ॥
अपश्याम महाराज वध्यमानान्निशाचरैः ।
तेषु प्रक्षीयमाणेषु भग्नेषु गजयोधिषु ॥ १७ ॥
दुर्योधनो महाराज राक्षसान्समुपाद्रवत् ।
अमर्षवशमापन्नस्त्यक्त्वा जीवितमात्मनः ॥ १८ ॥
मुमोच निशितान्बाणान्राक्षसेषु परन्तप ।
जघान च महेष्वासः प्रधानांस्तत्र राक्षसान् ॥ १९ ॥
संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
वेगवन्तं महारौद्रं विद्युज्जिह्वं प्रमाथिनम् ॥ २० ॥
शरैश्चतुर्भिश्चतुरो निजघान महाबलः ।
ततः पुनरमेयात्मा शरवर्षं दुरासदम् ॥ २१ ॥
मुमोच भरतश्रेष्ठो निशाचरबलं प्रति ।
तत्तु दृष्ट्वा महत्कर्म पुत्रस्य तव मारिष ॥ २२ ॥
क्रोधेनाऽभिप्रजज्वाल भैमसेनिर्महाबलः ।
स विस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमप्रभम् ॥ २३ ॥
अभिदुद्राव वेगेन दुर्योधनमरिन्दमम् ।

लगे ॥ हे भारत ! जब वे सब राक्षस हाथियोंका वध करने लगे, तब उन हाथियोंमें कितनोंके शरीर दो खंडोंमें कट गये, कितनोंका पेट फट गया, कितने रुधिर

महाधनुर्द्धर तुम्हारे पुत्र दुर्योधनने उनमेंसे मुख्य मुख्य राक्षसोंका वध किया ॥ (१७-१९)

सञ्जय उवाच— ततस्तद्बाणवर्षं तु दुःसहं दानवैरपि ।
दधार युधि राजेन्द्रो यथा वर्षं महाद्विपः ॥ १ ॥
ततः क्रोधसमाविष्टो निःश्वसन्निव पन्नगः ।
संशयं परमं प्राप्तः पुत्रस्ते भरतर्षभ ॥ २ ॥
मुमोच निशितांस्तीक्ष्णान्नाराचान्पञ्चविंशतिम् ।
तेऽपतन्सहसा राजंस्तस्मिन्राक्षसपुङ्गवे ॥ ३ ॥
आशीविषा इव क्रुद्धाः पर्वते गन्धमादने ।
स तैर्विद्धः स्रवन्रक्तं प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥ ४ ॥
दध्रे मतिं विनाशाय राज्ञः स पिशिताशनः ।
जग्राह च महाशक्तिं गिरीणामपि दारिणीम् ॥ ५ ॥
सम्प्रदीप्तां महोल्काभामशनिं ज्वलितामिव ।
समुद्यच्छन्महाबाहुर्जिघांसुस्तनयं तव ॥ ६ ॥
तामुद्यतामभिप्रेक्ष्य वङ्गानामधिपस्त्वरन् ।
कुञ्जरं गिरिसङ्काशं राक्षसं प्रत्यचोदयत् ॥ ७ ॥
स नागप्रवरेणाऽऽजौ बलिना शीघ्रगामिना ।

लाघवान्मोचयामास महात्मा वै घटोत्कचः ॥ १६ ॥
भूयश्च विननादोग्रं क्रोधसंरक्तलोचनः ।
त्रासयामास सैन्यानि युगान्ते जलदो यथा ॥ १७ ॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तस्य भीमस्य रक्षसः ।
आचार्यमुपसङ्गम्य भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ १८ ॥
यथैष निनदो घोरः श्रूयते राक्षसेरितः ।
हैडिम्बो युध्यते नूनं राज्ञा दुर्योधनेन ह ॥ १९ ॥
नैष शक्यो हि संग्रामे जेतुं भूतेन केनचित् ।
तत्र गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत ॥ २० ॥
अभिद्रुतो महाभागो राक्षसेन महात्मना ।
एतद्धि वः परं कृत्यं सर्वेषां नः परन्तपाः ॥ २१ ॥
पितामहवचः श्रुत्वा त्वरमाणा महारथाः ।
उत्तमं जवमास्थाय प्रययुर्यत्र कौरवः ॥ २२ ॥
द्रोणश्च सोमदत्तश्च बाह्लीकोऽथ जयद्रथः ।
कृपो भूरिश्रवाः शल्य आवन्त्यः सबृहद्बलः ॥ २३ ॥
अश्वत्थामा विकर्णश्च चित्रसेनो विविंशतिः ।

राक्षसेन्द्रो महाबाहुर्विनदन्भैरवं रवम् ॥ ३२ ॥
आचार्यस्याऽर्धचन्द्रेण क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम् ।
सोमदत्तस्य भल्लेन ध्वजं चोन्मथ्य चाऽनदत् ॥ ३३ ॥
बाह्लीकं च त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
कृपमेकेन विव्याध चित्रसेनं त्रिभिः शरैः ॥ ३४ ॥
पूर्णायतविसृष्टेन सम्यक्प्रणिहितेन च ।
जत्रुदेशे समासाद्य विकर्णं समताडयत् ॥ ३५ ॥
न्यषीदत्स रथोपस्थे शोणितेन परिप्लुतः ।
ततः पुनरमेयात्मा नाराचान्दश पञ्च च ॥ ३६ ॥
भूरिश्रवसि संक्रुद्धः प्राहिणोद्भरतर्षभ ।
ते वर्म भित्त्वा तस्याऽऽशु विविशुर्धरणीतलम् ॥ ३७ ॥
विविंशतेश्च द्रौणेश्च यन्तारौ समताडयत् ।
तौ पेततू रथोपस्थे रश्मीनुत्सृज्य वाजिनाम् ॥ ३८ ॥
सिन्धुराज्ञोऽर्धचन्द्रेण वाराहं स्वर्णभूषितम् ।
उन्ममाथ महाराज द्वितीयेनाऽच्छिनद्धनुः ॥ ३९ ॥
चतुर्भिरथ नाराचैरवन्त्यस्य महात्मनः ।
जघान चतुरो वाहान्क्रोधसंरक्तलोचनः ॥ ४० ॥

उत्पपात तदाऽऽकाशं समन्ताद्विनतेयवत् ॥ ५ ॥
व्यनदत्सुमहानादं जीमूत इव शारदः ।
दिशः खं विदिशश्चैव नादयन्भैरवस्वनः ॥ ६ ॥
राक्षसस्य तु तं शब्दं श्रुत्वा राजा युधिष्ठिरः ।
उवाच भरतश्रेष्ठ भीमसेनमरिन्दमम् ॥ ७ ॥
युध्यते राक्षसो नूनं धार्तराष्ट्रैर्महारथैः ।
यथाऽस्य श्रूयते शब्दो नदतो भैरवस्वनम् ॥ ८ ॥
अतिभारं च पश्यामि तस्मिन्राक्षसपुङ्गवे ।
पितामहश्च संक्रुद्धः पञ्चालान्हन्तुमुद्यतः ॥ ९ ॥
तेषां च रक्षणार्थाय युध्यते फाल्गुनः परैः ।
एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कार्यद्वयमुपस्थितम् ॥ १० ॥
गच्छ रक्षस्व हैडिम्बं संशयं परमं गतम् ।
भ्रातुर्वचनमाज्ञाय त्वरमाणो वृकोदरः ॥ ११ ॥
प्रययौ सिंहनादेन त्रासयन्सर्वपार्थिवान् ।
वेगेन महता राजन्पर्वकाले यथोदधिः ॥ १२ ॥
तमन्वयात्सत्यधृतिः सौचित्तिर्युद्धदुर्मदः ।

हया गजैः समाजग्मुः पादाता रथिभिः सह ।
अन्योन्यं समरे राजन्प्रार्थयानाः समभ्ययुः ॥ २२ ॥
सहसा चाऽभवत्तीव्रं सन्निपातान्महद्रजः ।
गजाश्वरथपत्तीनां पदनेमिसमुद्धतम् ॥ २३ ॥
धूम्रारुणं रजस्तीव्रं रणभूमिं समावृणोत् ।
नैव स्वे न परं राजन्समजानन्परस्परम् ॥ २४ ॥
पिता पुत्रं न जानीते पुत्रो वा पितरं तथा ।
निर्मर्यादे तथा भूते वैशसे लोमहर्षणे ॥ २५ ॥
शस्त्राणां भरतश्रेष्ठ मनुष्याणां च गर्जताम् ।
सुमहानभवच्छब्दः प्रेतानामिव भारत ॥ २६ ॥
गजवाजिमनुष्याणां शोणितान्त्रतरङ्गिणी ।
प्रावर्तत नदी तत्र केशशैवलशाद्वला ॥ २७ ॥
नराणां चैव कायेभ्यः शिरसां पततां रणे ।
शुश्रुवे सुमहाञ्छब्दः पततामश्मनामिव ॥ २८ ॥
विशिरस्कैर्मनुष्यैश्च छिन्नगात्रैश्च वारणैः ।
अश्वैः सादिसहस्रैश्च संकीर्णाभूद्वसुन्धरा ॥ २९ ॥
नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो महारथाः ।

नाराचनिहतास्त्वन्ये तथा विद्धाश्च तोमरैः ।
विनदन्तोऽभ्यधावन्त विशृङ्गा इव पर्वताः ॥ ३८ ॥
केचित्क्रोधसमाविष्टा मदान्धा निरवग्रहाः ।
रथान्हयान्पदातींश्च ममृदुः शतशो रणे ॥ ३९ ॥
तथा हया हयारोहैस्ताडिताः प्रासतोमरैः ।
तेन तेनाभ्यवर्तन्त कुर्वन्तो व्याकुला दिशः ॥ ४० ॥
रथिनो रथिभिः सार्धं कुलपुत्रास्तनुत्यजः ।
परां शक्तिं समास्थाय चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥ ४१ ॥
स्वयंवर इवाऽऽमर्दे प्रजह्रुरितरेतरम् ।
प्रार्थयाना यशो राजन्स्वर्गं वा युद्धशालिनः ॥ ४२ ॥
तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे ।
धार्तराष्ट्रं महत्सैन्यं प्रायशो विमुखीकृतम् ॥ ४३ ॥ [४१८९]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
संकुलयुद्धे चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥

सञ्जय उवाच —स्वसैन्यं निहतं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
अभ्यधावत संक्रुद्धो भीमसेनमरिन्दमम् ॥ १ ॥

नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो जये धृताः ॥ ११ ॥
नदन्तो भैरवान्नादांस्त्रासयन्तश्च भूमिपान् ।
तदाचार्यवचः श्रुत्वा सोमदत्तिपुरोगमाः ॥ १२ ॥
तावकाः समवर्तन्त पाण्डवानामनीकिनीम् ।
कृपो भूरिश्रवाः शल्यो द्रोणपुत्रो विविंशतिः ॥ १३ ॥
चित्रसेनो विकर्णश्च सैन्धवोऽथ बृहद्बलः ।
आवन्त्यौ च महेष्वासौ कौरवं पर्यवारयन् ॥ १४ ॥
ते विंशतिपदं गत्वा सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च परस्परजिघांसवः ॥ १५ ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्महद्विस्फार्य कार्मुकम् ।
भारद्वाजस्ततो भीमं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ १६ ॥
भूयश्चैनं महाबाहुः शरैः शीघ्रमवाकिरत् ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥ १७ ॥
तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीमसेनः शिलीमुखैः ।

प्रगृह्य सुमहच्चापमिन्द्राशनिसमस्वनम् ।
महता शरवर्षेण पाण्डवं समवाकिरत् ॥ २ ॥
अर्धचन्द्रं च सन्धाय सुतीक्ष्णं लोमवाहिनम् ।
भीमसेनस्य चिच्छेद चापं क्रोधसमन्वितः ॥ ३ ॥
तदन्तरं च सम्प्रेक्ष्य त्वरमाणो महारथः ।
सन्दधे शितं बाणं गिरीणामपि दारणम् ॥ ४ ॥
तेनोरसि महाराज भीमसेनमताडयत् ।
स गाढविद्धो व्यथितः सृक्किणीपरिसंलिहन् ॥ ५ ॥
समालम्बे तेजस्वी ध्वजं हेमपरिष्कृतम् ।
तथा विमनसं दृष्ट्वा भीमसेनं घटोत्कचः ॥ ६ ॥
क्रोधेनाऽभिप्रजज्वाल दिधक्षन्निव पावकः ।
अभिमन्युमुखाश्चाऽपि पाण्डवानां महारथाः ॥ ७ ॥
समभ्यधावन्क्रोशन्तो राजानं जातसम्भ्रमाः ।
सम्प्रेक्ष्यैतानापततः संक्रुद्धाञ्जातसम्भ्रमान् ॥ ८ ॥
भारद्वाजोऽब्रवीद्वाक्यं तावकानां महारथान् ।
क्षिप्रं गच्छत भद्रं वो राजानं परिरक्षत ॥ ९ ॥
संशयं परमं प्राप्तं मज्जन्तं व्यसनार्णवे ।
एते क्रुद्धा महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥ १० ॥
भीमसेनं पुरस्कृत्य दुर्योधनमुपाद्रवन् ।

नानाविधानि शस्त्राणि विसृजन्तो जये धृताः ॥ ११ ॥
नदन्तो भैरवान्नादांस्त्रासयन्तश्च भूमिपान् ।
तदाचार्यवचः श्रुत्वा सोमदत्तिपुरोगमाः ॥ १२ ॥
तावकाः समवर्तन्त पाण्डवानामनीकिनीम् ।
कृपो भूरिश्रवाः शल्यो द्रोणपुत्रो विविंशतिः ॥ १३ ॥
चित्रसेनो विकर्णश्च सैन्धवोऽथ बृहद्बलः ।
आवन्त्यौ च महेष्वासौ कौरवं पर्यवारयन् ॥ १४ ॥
ते विंशतिपदं गत्वा सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च परस्परजिघांसवः ॥ १५ ॥
एवमुक्त्वा महाबाहुर्महद्विस्फार्य कार्मुकम् ।
भारद्वाजस्ततो भीमं षड्विंशत्या समार्पयत् ॥ १६ ॥
भूयश्चैव महाबाहुः शरैः शीघ्रमवाकिरत् ।
पर्वतं वारिधाराभिः प्रावृषीव बलाहकः ॥ १७ ॥
तं प्रत्यविध्यद्दशभिर्भीमसेनः शिलीमुखैः ।

क्रुद्ध होकर जयकी अभिलाषासे भीम-सेनके अगाडी होके अपने सिंहनादसे क्षत्रिय वीरोंको भयभीत करते और अनेक प्रकारके अस्त्रशस्त्रोंको चलाते हुए राजा दुर्योधनकी ओर दौडे चले आते हैं ॥ राजा दुर्योधन भी इस समय [illegible] गजके ऊपर शोभित हुए

विविंशति चित्रसेन, विकर्ण, जयद्रथ, बृहद्बल और महाधनुर्धर अवन्तिराज शीघ्रतासे गमन करके चारों ओरसे दुर्योधनको घेरकर खडे हुए। वे सब महारथ बीस पग आगे बढके पाण्डवोंकी सेनापर प्रहार करने लगे। अनन्तर दोनों सेनाओंमें घोर युद्ध होने

त्वरमाणो महेष्वासः सव्ये पार्श्वे महाबलः ॥ १८ ॥
स गाढविद्धो व्यथितो वयोवृद्धश्च भारत ।
प्रनष्टसंज्ञः सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥ १९ ॥
गुरुं प्रव्यथितं दृष्ट्वा राजा दुर्योधनः स्वयम् ।
द्रौणायनिश्च संक्रुद्धौ भीमसेनमभिद्रुतौ ॥ २० ॥
तावापतन्तौ सम्प्रेक्ष्य कालान्तकयमोपमौ ।
भीमसेनो महाबाहुर्गदामादाय सत्वरम् ॥ २१ ॥
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं तस्थौ गिरिरिवाऽचलः ।
समुद्यम्य गदां गुर्वीं यमदण्डोपमां रणे ॥ २२ ॥
तमुद्यतगदं दृष्ट्वा कैलासमिव शृङ्गिणम् ।
कौरवो द्रोणपुत्रश्च सहितावभ्यधावताम् ॥ २३ ॥
तावापतन्तौ सहितौ त्वरितौ बलिनां वरौ ।
अभ्यधावत वेगेन त्वरमाणो वृकोदरः ॥ २४ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य संक्रुद्धं भीमदर्शनम् ।
समभ्यधावंस्त्वरिताः कौरवाणां महारथाः ॥ २५ ॥
भारद्वाजमुखाः सर्वे भीमसेनजिघांसया ।

जलकी धारा वर्षाता है ॥ महाबलवान् धनुर्धारी भीमसेनने दश बाणोंसे द्रोणाचार्यको बामभागमें विद्ध किया ॥ अवस्थामें बूढे द्रोणाचार्य उन बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और पीडित तथा नष्टज्ञान होकर रथपर बैठ गये । (१८–१९)

तब राजा दुर्योधन और अश्वत्थामा द्रोणाचार्यको पीडित देखकर क्रुद्ध होके भीमसेनकी ओर दौडे । महाबाहु भीमसेन उन दोनों महारथ वीरोंको प्रलयकालके यमराजके समान आते देखकर गदाको लेकर अचल पर्वतके समान पृथ्वीपर स्थित हुए । (२० – २२)

कुरुराज दुर्योधन और अश्वत्थामाने शृङ्गयुक्त कैलास पर्वतके समान भीमसेनको गदाधारी देखकर शीघ्रता के सहित उनके समीप गमन किया ॥ भीमसेन भी उन दोनों पराक्रमी महारथियोंको आते देख उनकी ओर वेग से दौडे । द्रोणाचार्य आदि सम्पूर्ण कौरव महारथ भीमसेनको इस प्रकार दौडते देख शीघ्रताके सहित उनके रथ

नानाविधानि शस्त्राणि भीमस्योरस्यपातयन् ॥ २६ ॥
सहिताः पाण्डवं सर्वे पीडयन्तः समन्ततः ।
तं दृष्ट्वा संशयं प्राप्तं पीड्यमानं महारथम् ॥ २७ ॥
अभिमन्युप्रभृतयः पाण्डवानां महारथाः ।
अभ्यधावन्परीप्सन्तः प्राणांस्त्यक्त्वा सुदुस्त्यजान् २८
अनूपाधिपतिः शूरो भीमस्य दयितः सखा ।
नीलो नीलाम्बुदप्रख्यः संक्रुद्धो द्रौणिमभ्ययात् ॥२९॥
स्पर्धते हि महेष्वासो नित्यं द्रोणसुतेन सः ।
स विस्फार्य महच्चापं द्रौणिं विव्याध पत्रिणा ॥ ३० ॥
यथा शक्रो महाराज पुरा विव्याध दानवम् ।
विप्रचित्तिं दुराधर्षं देवतानां भयङ्करम् ॥ ३१ ॥
येन लोकत्रयं क्रोधात्त्रासितं स्वेन तेजसा ।
तथा नीलेन निर्भिन्नः सुपुङ्खेन पत्रिणा ॥ ३२ ॥
सञ्जातरुधिरोत्पीडो द्रौणिः क्रोधसमन्वितः ।
स विस्फार्य धनुश्चित्रमिन्द्राशनिसमस्वनम् ॥ ३३ ॥
दध्रे नीलविनाशाय मतिं मतिमतां वरः ।

तत: सन्धाय विमलान्भल्लान्कर्मारमार्जितान् ॥ ३४ ॥
जघान चतुरो वाहान्पातयामास च ध्वजम् ।
सप्तमेन च भल्लेन नीलं विव्याध वक्षसि ॥ ३५ ॥
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
मोहितं वीक्ष्य राजानं नीलमभ्रचयोपमम् ॥ ३६ ॥
घटोत्कचोऽभिसंक्रुद्धो ज्ञातिभिः परिवारितः ।
अभिदुद्राव वेगेन द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ ३७ ॥
तथेतरे चाऽभ्यधावन्राक्षसा युद्धदुर्मदाः ।
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य राक्षसं घोरदर्शनम् ॥ ३८ ॥
अभ्यधावत तेजस्वी भारद्वाजात्मजस्त्वरन् ।
निजघान च संक्रुद्धो राक्षसान्भीमदर्शनान् ॥ ३९ ॥
येऽभवन्नग्रतः क्रुद्धा राक्षसस्य पुरःसराः ।
विमुखांश्चैव तान्दृष्ट्वा द्रौणिचापच्युतैः शरैः ॥ ४० ॥
अक्रुध्यत महाकायो भैमसेनिर्घटोत्कचः ।
प्रादुश्चक्रे ततो मायां घोररूपां सुदारुणाम् ॥ ४१ ॥
मोहयन्समरे द्रौणिं मायावी राक्षसाधिपः ।
ततस्ते तावकाः सर्वे मायया विमुखीकृताः ॥ ४२ ॥

पर विषेले हुए चार तीक्ष्ण बाणोंसे नील राजाके चारों घोडे, एकसे उनके सारथी, एक बाणसे रथकी ध्वजा काटके फिर नील राजाके ऊपर एक बाणसे प्रहार करके उनका वक्षस्थल विद्ध किया ॥ (३४—३५)

भयङ्कर राक्षस घटोत्कचको सम्मुख आते देख शीघ्रताके सहित उसकी ओर चले। जो सब राक्षस क्रुद्ध होकर घटोत्कचके अनुगामी हुए थे; अश्वत्थामाने उन सब राक्षसोंका संहार किया ॥ विकराल शरीरवाला राक्षस घटोत्कच उन राक्षसों

अन्योन्यं समपश्यन्त निकृत्ता मेदिनीतले ।
विचेष्टमानाः कृपणाः शोणितेन परिप्लुताः ॥ ४३ ॥
द्रोणं दुर्योधनं शल्यमश्वत्थामानमेव च ।
प्रायशश्च महेष्वासा ये प्रधानाः स्म कौरवाः ॥ ४४ ॥
विध्वस्ता रथिनः सर्वे राजानश्च निपातिताः ।
हयाश्चैव हयारोहाः सन्निकृत्ताः सहस्रशः ॥ ४५ ॥
तद् दृष्ट्वा तावकं सैन्यं विद्रुतं शिबिरं प्रति
मम प्राक्रोशतो राजंस्तथा देवव्रतस्य च ॥ ४६ ॥
युध्यध्वं मा पलायध्वं मायैषा राक्षसी रणे ।
घटोत्कचप्रयुक्तेति नातिष्ठन्त विमोहिताः ॥ ४७ ॥
नैव ते श्रद्दधुर्भीता वदतोरावयोर्वचः ।
तांश्च प्रद्रवतो दृष्ट्वा जयं प्राप्ताश्च पाण्डवाः ॥ ४८ ॥
घटोत्कचेन सहिताः सिंहनादान् प्रचक्रिरे ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषैः समन्तान्नेदिरे भृशम् ॥ ४९ ॥
एवं तव बलं सर्वं हैडिम्बेन दुरात्मना ।
सूर्यास्तमनवेलायां प्रभग्नं विद्रुतं दिशः ॥ ५० ॥ [४०३९]

इति श्रीमहाभारते भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि [illegible] ध्यायः ॥९४॥

सञ्जय उवाच— तस्मिन्महति संक्रन्दे राजा दुर्योधनस्तदा ।
गाङ्गेयमुपसङ्गम्य विनयेनाऽभिवाद्य च ॥ १ ॥
तस्य सर्वं यथावृत्तमाख्यातुमुपचक्रमे ।
घटोत्कचस्य विजयमात्मनश्च पराजयम् ॥ २ ॥
कथयामास दुर्धर्षो विनिःश्वस्य पुनः पुनः ।
अब्रवीच्च तदा राजन्भीष्मं कुरुपितामहम् ॥ ३ ॥
भवन्तं समुपाश्रित्य वासुदेवं यथा परैः ।
पाण्डवैर्विग्रहो घोरः समारब्धो मया प्रभो ॥ ४ ॥
एकादश समाख्याता अक्षौहिण्यश्च या मम ।
निदेशे तव तिष्ठन्ति मया सार्धं परन्तप ॥ ५ ॥
सोऽहं भरतशार्दूल भीमसेनपुरोगमैः ।
घटोत्कचं समाश्रित्य पाण्डवैर्युधि निर्जितः ॥ ६ ॥
तन्मे दहति गात्राणि शुष्कवृक्षमिवाऽनलः ।
तदिच्छामि महाभाग त्वत्प्रसादात्परन्तप ॥ ७ ॥
राक्षसापसदं हन्तुं स्वयमेव पितामह ।
त्वां समाश्रित्य दुर्धर्ष तन्मे कर्तुं त्वमर्हसि ॥ ८ ॥

राज ! तुम्हारी सब सेना दुरात्मा घटोत्कचकी मायासे सूर्य अस्त होनेके समय इधर उधर भाग गई ॥ ४६-५० [८२३९]

श्रीमहाभारत भीष्मपर्वमें चौरानवे अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें पचानवे अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे महाराज ! उस महाघोर भयङ्कर संग्राममें राजा दुर्योधनने पितामह भीष्मके समीप जाकर प्रणाम करके विनय पूर्वक अपने पराजय और घटोत्कचके विजयका वृत्तान्त विस्तार पूर्वक वर्णन किया । (१-३)

सुनाकर फिर बोले ॥ हे पितामह ! जैसे पाण्डवोंने कृष्णका आसरा करके विग्रह आरम्भ किया है, वैसे ही मैंने भी तुम्हारे आसरेसे युद्ध आरम्भ किया है॥ हे परन्तप ! मैं इस ग्यारह अक्षौहिणी सेनाके सहित तुम्हारी आज्ञा पालनमें तत्पर हूं ।(३-५)

तो भी भीमसेन आदि पाण्डवोंने जो घटोत्कचके आसरे मुझे पराजित किया, ॥ उससे जैसे अग्नि सूखे वृक्षको भस्म कर देती है, वैसे ही शोकसे मेरे

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राज्ञो भरतसत्तम ।
दुर्योधनमिदं वाक्यं भीष्मः शान्तनवोऽब्रवीत् ॥ ९ ॥
शृणु राजन्मम वचो यत्त्वां वक्ष्यामि कौरव ।
यथा त्वया महाराज वर्तितव्यं परन्तप ॥ १० ॥
आत्मा रक्ष्यो रणे तात सर्वावस्थास्वरिन्दम ।
धर्मराजेन संग्रामस्त्वया कार्यः सदाऽनघ ॥ ११ ॥
अर्जुनेन यमाभ्यां वा भीमसेनेन वा पुनः ।
राजधर्मं पुरस्कृत्य राजा राजानमार्छति ॥ १२ ॥
अहं द्रोणः कृपो द्रौणिः कृतवर्मा च सात्वतः ।
शल्यश्च सौमदत्तिश्च विकर्णश्च महारथाः ॥ १३ ॥
तव च भ्रातरः श्रेष्ठा दुःशासनपुरोगमाः ।
त्वदर्थं प्रतियोत्स्यामो राक्षसं तं महाबलम् ॥ १४ ॥
रौद्रे तस्मिन्राक्षसेन्द्रे यदि तेऽनुशयो महान् ।
अयं वा गच्छतु रणे तस्य युद्धाय दुर्मतेः ॥ १५ ॥
भगदत्तो महीपालः पुरन्दरसमो युधि ।
एतावदुक्त्वा राजानं भगदत्तमथाऽब्रवीत् ॥ १६ ॥

समक्षं पार्थिवेन्द्रस्य वाक्यं वाक्यविशारदः ।
गच्छ शीघ्रं महाराज हैडिम्बं युद्धदुर्मदम् ॥ १७ ॥
वारयस्व रणे यत्तो मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
राक्षसं क्रूरकर्माणं यथेन्द्रस्तारकं पुरा ॥ १८ ॥
तव दिव्यानि चाऽस्त्राणि विक्रमश्च परन्तप ।
समागमश्च बहुभिः पुराऽभूदमरैः सह ॥ १९ ॥
त्वं तस्य नृपशार्दूल प्रतियोद्धा महाहवे ।
स्वबलेनाभिवृतो राजञ्जहि राक्षसपुङ्गवम् ॥ २० ॥
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं भीष्मस्य पृतनापतेः ।
प्रययौ सिंहनादेन परानभिमुखो द्रुतम् ॥ २१ ॥
तमापतन्तं संप्रेक्ष्य गर्जन्तमिव तोयदम् ।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पाण्डवानां महारथाः ॥ २२ ॥
भीमसेनोऽभिमन्युश्च राक्षसश्च घटोत्कचः ।
द्रौपदेयाः सत्यधृतिः क्षत्रदेवश्च भारत ॥ २३ ॥
चेदिपो वसुदानश्च दशार्णाधिपतिस्तथा ।
सुप्रतीकेन तांश्चापि भगदत्तोऽप्युपाद्रवत् ॥ २४ ॥

ततः समभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
पाण्डूनां भगदत्तेन यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ २५ ॥
प्रयुक्ता रथिभिर्बाणा भीमवेगाः सुतेजनाः ।
ते निपेतुर्महाराज नागेषु च रथेषु च ॥ २६ ॥
प्रभिन्नाश्च महानागा विनीता हस्तिसादिभिः ।
परस्परं समासाद्य सन्निपेतुरभीतवत् ॥ २७ ॥
मदान्धा रोषसंरब्धा विषाणाग्रैर्महाहवे ।
विभिदुर्दन्तमुसलैः समासाद्य परस्परम् ॥ २८ ॥
हयाश्च चामरापीडाः प्रासपाणिभिरास्थिताः ।
चोदिताः सादिभिः क्षिप्रं निपेतुरितरेतरम् ॥ २९ ॥
पादाताश्च पदात्योघैस्ताडिताः शक्तितोमरैः ।
न्यपतन्त तदा भूमौ शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३० ॥
रथिनश्च रथै राजन्कर्णिनालीकसायकैः ।
निहत्य समरे वीरान्सिंहनादान्विनेदिरे ॥ ३१ ॥
तस्मिंस्तथा वर्तमाने संग्रामे लोमहर्षणे ।
भगदत्तो महेष्वासो भीमसेनमथाद्रवत् ॥ ३२ ॥

कुञ्जरेण प्रभिन्नेन सप्तधा स्रवता मदम् ।
पर्वतेन यथा तोयं स्रवमाणेन सर्वशः ॥ ३३ ॥
किरञ्छरसहस्राणि सुप्रतीकशिरोगतः ।
ऐरावतस्थो मघवान्वारिधारा इवाऽनघ ॥ ३४ ॥
स भीमं शरधाराभिस्ताडयामास पार्थिवः ।
पर्वतं वारिधाराभिस्तपान्ते जलदो यथा ॥ ३५ ॥
भीमसेनस्तु संक्रुद्धः पादरक्षान्परःशतान् ।
निजघान महेष्वासः संरब्धः शरवृष्टिभिः ॥ ३६ ॥
तान्दृष्ट्वा निहतान्क्रुद्धो भगदत्तः प्रतापवान् ।
चोदयामास नागेन्द्रं भीमसेनरथं प्रति ॥ ३७ ॥
स नागः प्रेषितस्तेन बाणो ज्याचोदितो यथा ।
अभ्यधावत वेगेन भीमसेनमरिन्दमम् ॥ ३८ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पाण्डवानां महारथाः ।
अभ्यवर्तन्त वेगेन भीमसेनपुरोगमाः ॥ ३९ ॥
केकयाश्चाऽभिमन्युश्च द्रौपदेयाश्च सर्वशः ।
दशार्णाधिपतिः शूरः क्षत्रदेवश्च मारिष ॥ ४० ॥
चेदिपश्चित्रकेतुश्च संरब्धाः सर्व एव ते ।

उत्तमास्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महाबलाः ॥ ४१ ॥
तमेकं कुञ्जरं क्रुद्धाः समन्तात्पर्यवारयन् ।
स विद्धो बहुभिर्बाणैर्व्यरोचत महाद्विपः ॥ ४२ ॥
सञ्जातरुधिरोत्पीडो धातुचित्र इवाऽद्रिराट् ।
दशार्णाधिपतिश्चाऽपि गजं भूमिधरोपमम् ॥ ४३ ॥
समास्थितोऽभिदुद्राव भगदत्तस्य वारणम् ।
तमापतन्तं समरे गजं गजपतिः स च ॥ ४४ ॥
दधार सुप्रतीकोऽपि वेलेव मकरालयम् ।
वारितं प्रेक्ष्य नागेन्द्रं दशार्णस्य महात्मनः ॥ ४५ ॥
साधु साध्विति सैन्यानि पाण्डवेयान्यपूजयन् ।
ततः प्राग्ज्योतिषः क्रुद्धस्तोमरान्वै चतुर्दश ॥ ४६ ॥
प्राहिणोत्तस्य नागस्य प्रमुखे नृपसत्तम ।
वर्ममुख्यं तनुत्राणं शातकुम्भपरिष्कृतम् ॥ ४७ ॥
विदार्य प्राविशन्क्षिप्रं वल्मीकमिव पन्नगाः ।
स गाढविद्धो व्यथितो नागो भरतसत्तम ॥ ४८ ॥
उपावृत्तमदः क्षिप्रमभ्यवर्तत वेगितः ।

और चित्रकेतु पाण्डवोंके, इन सब महा बलवान् महारथियोंने उस गजराजको आते देखके, भीमसेनको आगे करके, क्रुद्ध हो दिव्य अस्त्रोंको प्रकाशित करते हुए उस एक हाथीको चारों ओरसे घेर लिया। (३८-४१)

समुद्रको वेला जैसे निवारण करती है, वैसे ही भगदत्तके सुप्रतीकने दशार्णराजके हाथीको वेगसे आगे बढके उसे निवारण किया। उसे देख पाण्डवोंकी सेनाके सब वीर धन्य धन्य कहके प्रशंसा करने

स प्रदुद्राव वेगेन प्रणदन्भैरवं रवम् ॥ ४९ ॥
सम्मर्दयानः स्वबलं वायुर्वृक्षानिवौजसा ।
तस्मिन्पराजिते नागे पाण्डवानां महारथाः ॥ ५० ॥
सिंहनादं विनद्योच्चैर्युद्धायैवाऽवतस्थिरे ।
ततो भीमं पुरस्कृत्य भगदत्तमुपाद्रवन् ॥ ५१ ॥
किरन्तो विविधान्बाणाञ्शस्त्राणि विविधानि च ।
तेषामापततां राजन्संक्रुद्धानाममर्षिणाम् ॥ ५२ ॥
श्रुत्वा स निनदं घोरममर्षाद्गतसाध्वसः ।
भगदत्तो महेष्वासः स्वनागं प्रत्यचोदयत् ॥ ५३ ॥
अङ्कुशाङ्गुष्ठनुदितः स गजप्रवरो युधि ।
तस्मिन्क्षणे समभवत्सांवर्तक इवाऽनलः ॥ ५४ ॥
रथसङ्घांस्तथा नागान्हयांश्च हयसादिभिः ।
पादातांश्च सुसंक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ५५ ॥
अमृद्नात्समरे नागः सम्प्रधावंस्ततस्ततः ।
तेन संलोड्यमानं तु पाण्डवानां बलं महत् ॥ ५६ ॥
सञ्चुकोच महाराज चर्मेवाऽग्नौ समाहितम् ।
भग्नं तु स्वबलं दृष्ट्वा भगदत्तेन धीमता ॥ ५७ ॥

घटोत्कचोऽथ संक्रुद्धो भगदत्तमुपाद्रवत् ।
विकटः परुषो राजन्दीप्तास्यो दीप्तलोचनः ॥ ५८ ॥
रूपं विभीषणं कृत्वा रोषेण प्रज्वलन्निव ।
जग्राह विमलं शूलं गिरीणामपि दारणम् ॥ ५९ ॥
नागं जिघांसुः सहसा चिक्षेप च महाबलः ।
स विस्फुलिङ्गमालाभिः समन्तात्परिवेष्टितः ॥ ६० ॥
तमापतन्तं सहसा दृष्ट्वा प्राग्ज्योतिषो नृपः ।
चिक्षेप रुचिरं तीक्ष्णमर्धचन्द्रं सुदारुणम् ॥ ६१ ॥
चिच्छेद तन्महच्छूलं तेन बाणेन वेगवान् ।
उत्पपात द्विधा छिन्नं शूलं हेमपरिष्कृतम् ॥ ६२ ॥
महाशनिर्यथा भ्रष्टा शक्रमुक्ता नभोगता ।
शूलं निपतितं दृष्ट्वा द्विधा कृत्तं च पार्थिवः ॥ ६३ ॥
रुक्मदण्डां महाशक्तिं जग्राहाग्निशिखोपमाम् ।
चिक्षेप तां राक्षसस्य तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ६४ ॥
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य वियत्स्थामशनीमिव ।
उत्पत्य राक्षसस्तूर्णं जग्राह च ननाद च ॥ ६५ ॥

बभञ्ज चैनां त्वरितो जानुन्यारोप्य भारत ।
पश्यतः पार्थिवेन्द्रस्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ६६ ॥
तदवेक्ष्य कृतं कर्म राक्षसेन बलीयसा ।
दिवि देवाः सगन्धर्वा मुनयश्चाऽपि विस्मिताः ॥ ६७ ॥
पाण्डवाश्च महाराज भीमसेनपुरोगमाः ।
साधु साध्विति नादेन पृथिवीमन्वनादयन् ॥ ६८ ॥
तं तु श्रुत्वा महानादं प्रहृष्टानां महात्मनाम् ।
नाऽमृष्यत महेष्वासो भगदत्तः प्रतापवान् ॥ ६९ ॥
स निस्फार्य महच्चापमिन्द्राशनिसमप्रभम् ।
तर्जयामास वेगेन पाण्डवानां महारथान् ॥ ७० ॥
विसृजन्निर्मलांस्तीक्ष्णान्नाराचाञ्ज्वलनप्रभान् ।
भीममेकेन विव्याथ राक्षसं नवभिः शरैः ॥ ७१ ॥
अभिमन्युं त्रिभिश्चैव केकयान्पञ्चभिस्तथा ।
पूर्णायतविसृष्टेन शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥ ७२ ॥
बिभेद दक्षिणं बाहुं क्षत्रदेवस्य चाऽऽहवे ।

पपात सहसा तस्य सशरं धनुरुत्तमम् ॥ ७३ ॥
द्रौपदेयास्ततः पञ्च पञ्चभिः समताडयत् ।
भीमसेनस्य च क्रोधान्निजघान तुरङ्गमान् ॥ ७४ ॥
ध्वजं केसरिणं चाऽस्य चिच्छेद विशिखैस्त्रिभिः ।
निर्बिभेद त्रिभिश्चाऽन्यैः सारथिं चाऽस्य पत्रिभिः॥७५॥
स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ।
विशोको भारतश्रेष्ठ भगदत्तेन संयुगे ॥ ७६ ॥
ततो भीमो महाबाहुर्विरथो रथिनां वरः ।
गदां प्रगृह्य वेगेन प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥ ७७ ॥
तमुद्यतगदं दृष्ट्वा सशृङ्गमिव पर्वतम् ।
तावकानां भयं घोरं समपद्यत भारत ॥ ७८ ॥
एतस्मिन्नेव काले तु पाण्डवः कृष्णसारथिः ।
आजगाम महाराज निघ्नञ्छत्रून्समन्ततः ॥ ७९ ॥
यत्र तौ पुरुषव्याघ्रौ पितापुत्रौ महारथौ ।
प्राग्ज्योतिषेण संयुक्तौ भीमसेनघटोत्कचौ ॥ ८० ॥
दृष्ट्वा च पाण्डवो भ्रातॄन्युध्यमानान्महारथान् ।
त्वरितो भारतश्रेष्ठ तत्राऽयुध्यत्किरञ्छरान् ॥ ८१ ॥

युद्धं तु मे न रुचितं ज्ञातिभिर्मधुसूदन ।
सञ्चोदय हयाञ्शीघ्रं धार्तराष्ट्रचमूं प्रति ॥ ११ ॥
प्रतरिष्ये महापारं भुजाभ्यां समरोदधिम् ।
नाद्य यापयितुं कालो विद्यते माधव क्वचित् ॥ १२ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन केशवः परवीरहा ।
चोदयामास तानश्वान्पाण्डुरान्वातरंहसः ॥ १३ ॥
अथ शब्दो महानासीत्तव सैन्यस्य भारत ।
साम्भोल्कनवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ १४ ॥
अपराह्णे महाराज संग्रामः समपद्यत ।
पर्जन्यसमनिर्घोषो भीष्मस्य सह पाण्डवैः ॥ १५ ॥
ततो राजंस्तव सुता भीमसेनमुपाद्रवन् ।
परिवार्य रणे द्रोणं वसवो वासवं यथा ॥ १६ ॥
ततः शान्तनवो भीष्मः कृपश्च रथिनां वरः ।
भगदत्तः सुशर्मा च धनञ्जयमुपाद्रवन् ॥ १७ ॥
हार्दिक्यो बाह्लिकश्चैव सात्यकिं समभिद्रुतौ ।
अम्बष्ठकस्तु नृपतिरभिमन्युमवाक्षिपत् ॥ १८ ॥

शेषास्त्वन्ये महाराज शेषानेव महारथान् ।
ततः प्रवृत्तं युद्धं घोररूपं भयावहम् ॥ १९ ॥
भीमसेनस्तु संप्रेक्ष्य पुत्रांस्तव जनेश्वर ।
प्रजज्वाल रणे क्रुद्धो हविषा हव्यवाडिव ॥ २० ॥
पुत्रास्तु तव कौन्तेयं छादयाञ्चक्रिरे शरैः ।
प्रावृषीव महाराज जलदा इव पर्वतम् ॥ २१ ॥
स च्छाद्यमानो बहुधा पुत्रैस्तव विशाम्पते ।
सृक्किणी संलिहन्वीरः शार्दूल इव दर्पितः ॥ २२ ॥
व्यूढोरस्कं ततो भीमः पातयामास भारत ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन सोऽभवद्गतजीवितः ॥ २३ ॥
अपरेण तु भल्लेन पीतेन निशितेन तु ।
अपातयत्कुण्डलिनं सिंहः क्षुद्रमृगं यथा ॥ २४ ॥
ततः सुनिशितान्पीतान्समादत्त शिलीमुखान् ।
ससर्ज त्वरया युक्तः पुत्रांस्ते प्राप्य मारिष ॥ २५ ॥
प्रेषिता भीमसेनेन शरास्ते दृढधन्वना ।
अपातयन्त पुत्रांस्ते रथेभ्यः सुमहारथान् ॥ २६ ॥

अनाधृष्टिं कुण्डभेदिं वैराटं दीर्घलोचनम् ।
दीर्घबाहुं सुबाहुं च तथैव कनकध्वजम् ॥ २७ ॥
प्रपतन्त स्म वीरास्ते विरेजुर्भरतर्षभ ।
वसन्ते पुष्पशबलाश्च्युताः प्रपतिता इव ॥ २८ ॥
ततः प्रदुद्रुवुः शेषास्तव पुत्रा महाहवे ।
तं कालमिव मन्यन्तो भीमसेनं महाबलम् ॥ २९ ॥
द्रोणस्तु समरे वीरं निर्दहन्तं सुतांस्तव ।
यथाऽद्रिं वारिधाराभिः समन्ताद्व्यकिरच्छरैः ॥ ३० ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम कुन्तीपुत्रस्य पौरुषम् ।
द्रोणेन वार्यमाणोऽपि निजघ्ने यत्सुतांस्तव ॥ ३१ ॥
यथा गोवृषभो वर्षं सन्धारयति खात्पतत् ।
भीमस्तथा द्रोणमुक्तं शरवर्षमदीधरत् ॥ ३२ ॥
अद्भुतं च महाराज तत्र चक्रे वृकोदरः ।
यत्पुत्रांस्तेऽवधीत्संख्ये द्रोणं चैव न्यवारयत् ॥ ३३ ॥
पुत्रेषु तव वीरेषु चिक्रीडार्जुनपूर्वजः ।
मृगेष्विव महाराज चरन्व्याघ्रो महाबलः ॥ ३४ ॥

यथा हि पशुमध्यस्थो द्रावयेत पशून्वृकः ।
वृकोदरस्तव सुतांस्तथा व्यद्रावयद्रणे ॥ ३५ ॥
गाङ्गेयो भगदत्तश्च गौतमश्च महारथाः ।
पाण्डवं रभसं युद्धे वारयामासुरर्जुनम् ॥ ३६ ॥
अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य तेषां सोऽतिरथो रणे ।
प्रवीरांस्तव सैन्येषु प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ३७ ॥
अभिमन्युस्तु राजानमम्बष्ठं लोकविश्रुतम् ।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं वारयामास सायकैः ॥ ३८ ॥
विरथो वध्यमानस्तु सौभद्रेण यशस्विना ।
अवप्लुत्य रथात्तूर्णमम्बष्ठो वसुधाधिपः ॥ ३९ ॥
असिं चिक्षेप समरे सौभद्राय महात्मनः ।
आरुरोह रथं चैव हार्दिक्यस्य महाबलः ॥ ४० ॥
आपतन्तं तु निस्त्रिंशं युद्धमार्गविशारदः ।
लाघवाद्व्यंसयामास सौभद्रः परवीरहा ॥ ४१ ॥
व्यंसितं वीक्ष्य निस्त्रिंशं सौभद्रेण रणे तदा ।
साधु साध्विति सैन्यानां प्रणादोऽभूद्विशाम्पते ॥४२॥

धृष्टद्युम्नमुखास्त्वन्ये तव सैन्यमयोधयन्।
तथैव तावकाः सर्वे पाण्डुसैन्यमयोधयन् ॥ ४३ ॥
तत्राऽऽक्रन्दो महानासीत्तव तेषां च भारत।
निघ्नतां दृढमन्योन्यं कुर्वतां कर्म दुष्करम् ॥ ४४ ॥
अन्योन्यं हि रणे शूराः केशेष्वाक्षिप्य मानिनः।
नखदन्तैरयुध्यन्त मुष्टिभिर्जानुभिस्तथा ॥ ४५ ॥
तलैश्चैवाऽथ निस्त्रिंशैर्बाहुभिश्च सुसंस्थितैः।
विवरं प्राप्य चाऽन्योन्यमनयन्यमसादनम् ॥ ४६ ॥
न्यहनच्च पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा।
व्याकुलीकृतसर्वाङ्गा युयुधुस्तत्र मानवाः ॥ ४७ ॥
रणे चारूणि चापानि हेमपृष्ठानि मारिष।
हतानामपविद्धानि कलापाश्च महाधनाः ॥ ४८ ॥
जातरूपमयैः पुङ्खै राजतैर्निशिताः शराः।
तैलधौता व्यराजन्त निर्मुक्तभुजगोपमाः ॥ ४९ ॥
हस्तिदन्तत्सरून्खड्गाञ्जातरूपपरिष्कृतान्।
चर्माणि चाऽपविद्धानि रुक्मचित्राणि धन्विनाम्॥५०॥
सुवर्णविकृतप्रासान्पट्टिशान्हेमभूषितान्।
जातरूपमयाश्चर्ष्टीः शक्तीश्च कनकोज्ज्वलाः ॥ ५१ ॥
सुसन्नाहाश्च पतिता मुसलानि गुरूणि च।

हे राजन्! उधर पाण्डवोंकी सेनाके सहित धृष्टद्युम्न आदि योद्धा और तुम्हारी सेनाके वीरोंका घोर युद्ध होने लगा॥ दोनों सेनाके शूरवीर योद्धा एक दूसरे के केशोंको आकर्षण करते नख, दांत मुक्के, तमाचे, बाहु और घूटनोंसे युद्ध करने लगे॥ और विवर पानेसे शत्रुओंको वध करके यमपुरीमें भेजने लगे। ४३-४६

पिता पुत्रके उपर और पुत्र पिताके उपर प्रहार करने लगा सेनाके योद्धा रण भूमिमें वीर पुरुषोंको सब भांतिसे व्याकुल करके युद्धके कार्यको पूर्ण करने लगे॥ मरे हुए पुरुषोंके सुवर्ण भूषित मनोहर धनुष और उत्तम भूषण रणभूमिमें गिरकर शोभने लगे॥ और सोने चांदीके दण्ड युक्त बाण सर्पकी भांति रणभूमिमें गिर कर प्रकाशित होने लगे॥ (४७-४९.)

हाथी दांतसे बनी हुई तलवारोंकी मूठ, सुवर्ण भूषित तलवार, ढाल, प्रास, पट्टिश ऋष्टि, शक्ति, उत्तम कवच, बड़े

परिघान्पट्टिशांश्चैव भिन्दिपालांश्च मारिष ॥ ५२ ॥
पतितान्विविधांश्चापांश्चित्रान्हेमपरिष्कृतान् ।
कुथा बहुविधाकाराश्चामरा व्यजनानि च ॥ ५३ ॥
नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य पतिता नराः ।
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्त्वा महारथाः ॥ ५४ ॥
गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकाः ।
गजवाजिरथक्षुण्णाः शेरते स्म नराः क्षितौ ॥ ५५ ॥
तथैवाऽश्वनृनागानां शरीरैर्विबभौ तदा ।
संछन्ना वसुधा राजन्पर्वतैरिव सर्वशः ॥ ५६ ॥
समरे पतितैश्चैव शक्त्यृष्टिशरतोमरैः ।
निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासैरयस्कुन्तैः परश्वधैः ॥ ५७ ॥
परिघैर्भिन्दिपालैश्च शतघ्नीभिश्च मारिष ।
शरीरैः शस्त्रनिर्भिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ॥ ५८ ॥
विशब्दैरल्पशब्दैश्च शोणितौघपरिप्लुतैः ।
गतासुभिरमित्रघ्न विबभौ निचिता मही ॥ ५९ ॥
सतलत्रैः सकेयूरैर्बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ।

हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ॥ ६० ॥
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
पातितैर्वृषभाक्षाणां बभौ भारत मेदिनी ॥ ६१ ॥
कवचैः शोणितादिग्धैर्विप्रकीर्णैश्च काञ्चनैः ।
रराज सुभृशं भूमिः शान्तार्चिभिरिवाऽनलैः ॥ ६२ ॥
विप्रविद्धैः कलापैश्च पतितैश्च शरासनैः ।
विप्रकीर्णैः शरैश्चैव रुक्मपुङ्खैः समन्ततः ॥ ६३ ॥
रथैश्च सर्वतोभग्नैः किङ्किणीजालभूषितैः ।
वाजिभिश्च हतैर्बाणैः स्रस्तजिह्वैः सशोणितैः ॥ ६४ ॥
अनुकर्षैः पताकाभिरुपासङ्गैर्ध्वजैरपि ।
प्रवीराणां महाशङ्खैर्विप्रकीर्णैश्च पाण्डुरैः ॥ ६५ ॥
स्रस्तहस्तैश्च मातङ्गैः शयानैर्विबभौ मही ।
नानारूपैरलङ्कारैः प्रमदेवाऽभ्यलंकृता ॥ ६६ ॥
दन्तिभिश्चाऽपरैस्तत्र सप्रासैर्गाढवेदनैः ।
करैः शब्दं विमुञ्चद्भिः शीकरं च मुहुर्मुहुः ॥ ६७ ॥
विबभौ तद्रणस्थानं स्यन्दमानैरिवाऽचलैः ।
नानारागैः कम्बलैश्च परिस्तोमैश्च दन्तिनाम् ॥ ६८ ॥

गई ॥ हे भारत ! बलवान् वीरोंके गिरे हुए तलत्राण और चन्दन चर्चित भुजा, हाथियोंके सूण्डके समान जङ्घा, कुण्डल मुकुट शोभित सिरोंसे पृथ्वी पूर्ण होगई ॥ पृथ्वी पर शिखारहित अग्नि जिस प्रकारसे शोभा होती है, सुवर्ण मय कवच रुधिरसे युक्त होकर पृथ्वी पर वैसे ही शोभित होने लगे । (५९-६२)

इधर उधर गिरे हुए भूषण, सुवर्ण दण्डयुक्त बाण, सब प्रकारसे किङ्किणि-युक्त टूटे निकले हुए रथ, बाणोंसे मरे हुए, जीभ निकाले रुधिरसे युक्त शरीर वाले घोडे, रथके नीचेका काठ, पताका, तूणीर ध्वजा, वीरों के श्वेत वर्ण बडे बडे शंख और कटे हुए सूण्डसे युक्त मरे हुए पर्वतके समान हाथियोंसे युक्त युद्धकी पृथ्वी नाना भांतिके भूषणोंसे युक्त प्रमदा स्त्रीकी भांति शोभित हुई । प्रासोंसे युद्ध अत्यन्त पीडित सूण्डसे बार बार शब्द करते हुए और कितने ही चेष्टारहित हाथियोंसे पृथ्वी छिप गई । तब वह रणभूमि झरनोंसे युक्त पर्वतोंसे युक्त होनेके समान दीखने लगी । (६३-६८)

वैदूर्यमणिदण्डैश्च पतितैरङ्कुशैः शुभैः ।
घण्टाभिश्च गजेन्द्राणां पतिताभिः समन्ततः ॥ ६९ ॥
विपाटितविचित्राभिः कुथाभिरङ्कुशैस्तथा ।
ग्रैवेयैश्चित्ररूपैश्च रुक्मकक्ष्याभिरेव च ॥ ७० ॥
यन्त्रैश्च बहुधा छिन्नैस्तोमरैश्चापि काञ्चनैः ।
अश्वानां रेणुकपिलै रुक्मच्छन्नैरुरश्छदैः ॥ ७१ ॥
सादिनां भुजगैश्छिन्नैः पतितैः साङ्गदैस्तथा ।
प्रासैश्च विमलैस्तीक्ष्णैर्विमलाभिस्तथर्ष्टिभिः ॥ ७२ ॥
उष्णीषैश्च तथा चित्रैर्विप्रविद्धैस्ततस्ततः ।
विचित्रैर्बाणवर्षैश्च जातरूपपरिष्कृतैः ॥ ७३ ॥
अश्वास्तरपरिस्तोमै राङ्कवैर्मृदितैस्तथा ।
नरेन्द्रचूडामणिभिर्विचित्रैश्च महाधनैः ॥ ७४ ॥
छत्रैस्तथाऽपविद्धैश्च चामरव्यजनैरपि ।
पद्मेन्दुद्युतिभिश्चैव वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥ ७५ ॥
कॢप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलङ्कृतैः ।
अपविद्धैर्महाराज सुवर्णोज्ज्वलकुण्डलैः ॥ ७६ ॥
ग्रहनक्षत्रशबला द्यौरिवासीद्वसुन्धरा ।
एवमेते महासेने मृदिते तत्र भारत ॥ ७७ ॥

तेषु श्रान्तेषु भग्नेषु मृदितेषु च भारत ॥ ७८ ॥
रात्रिः समभवत्तत्र नाऽपश्याम ततोऽनुगान् ।
ततोऽवहारं सैन्यानां प्रचक्रुः कुरुपाण्डवाः ॥ ७९ ॥
रजनीमुखे सुरौद्रे तु वर्तमाने महाभये ।
अवहारं ततः कृत्वा सहिताः कुरुपाण्डवाः ।
न्यविशन्त यथाकालं गत्वा स्वशिबिरं तदा ॥ ८० ॥ [४४०५]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अष्टमदिवसयुद्धावहारे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

सञ्जय उवाच— ततो दुर्योधनो राजा शकुनिश्चाऽपि सौबलः ।
दुःशासनश्च पुत्रस्ते सूतपुत्रश्च दुर्जयः ॥ १ ॥
समागम्य महाराज मन्त्रं चक्रुर्विवक्षितम् ।
कथं पाण्डुसुताः संख्ये जेतव्याः सगणा इति ॥ २ ॥
ततो दुर्योधनो राजा सर्वांस्तानाह मन्त्रिणः ।
सूतपुत्रं समाभाष्य सौबलं च महाबलम् ॥ ३ ॥
द्रोणो भीष्मः कृपः शल्यः सौमदत्तिश्च संयुगे ।
न पार्थान्प्रतिबाधन्ते न जाने तच्च कारणम् ॥ ४ ॥
अवध्यमानास्ते चाऽपि क्षपयन्ति बलं मम ।

दिखाई देने लगी। हे भारत! योद्धाओंके थकने और मरके पृथ्वीमें गिरनेके अनन्तर जब रात्रि उपस्थित हुई, तब फिर कुछ भी नहीं बोध होता था, महा भयङ्कर घोर रात्रि होते देख, कौरव और पाण्डवोंने अपनी अपनी सेनाको युद्धसे निवृत्त किया। सेनाके निवृत्त होने पर सब योद्धा अपने अपने शिविरोंमें आकर स्थित हुए। (७९—८०) [४४०५]

भीष्मपर्वमें छानवे अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें सत्तानवे अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! तिसके अनन्तर राजा दुर्योधन, सुबलपुत्र शकुनि तुम्हारा पुत्र दुःशासन, और दुर्जय, सूतपुत्र कर्ण, ये सब एकत्र होकर सपरिवार पाण्डवों को किस प्रकारसे पराजित किया जायगा, इसका विचार करने लगे। (१–२)

फिर राजा दुर्योधन महा बलवान कर्ण और शकुनिको सम्बोधन करके उन सब मन्त्रियोंसे बोले। द्रोणाचार्य, भीष्म, शल्य, कृपाचार्य और भूरिश्रवा, ये सब न जाने किस कारणसे पाण्डवों को युद्धमें निवारित नहीं करते उसे मैं समझ नहीं सकता हूं। ये सब लोग इस सब पाण्डवोंको [illegible]

न्यस्तशस्त्रे ततो भीष्मे निहतान्पश्य पाण्डवान् ।
मयैकेन रणे राजन्ससुहृद्गणबान्धवान् ॥ १३ ॥
एवमुक्तस्तु कर्णेन पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
अब्रवीद्भ्रातरं तत्र दुःशासनमिदं वचः ॥ १४ ॥
अनुयात्रं यथा सर्वं सज्जीभवति सर्वशः ।
दुःशासन तथा क्षिप्रं सर्वमेवोपपादय ॥ १५ ॥
एवमुक्त्वा ततो राजन्कर्णमाह जनेश्वरः ।
अनुमान्य रणे भीष्ममेषोऽहं द्विपदां वरम् ॥ १६ ॥
आगमिष्ये ततः क्षिप्रं त्वत्सकाशमरिन्दम ।
अपक्रान्ते ततो भीष्मे प्रहरिष्यसि संयुगे ॥ १७ ॥
निष्पपात ततस्तूर्णं पुत्रस्तव विशाम्पते ।
सहितो भ्रातृभिस्तैस्तु देवैरिव शतक्रतुः ॥ १८ ॥
ततस्तं नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् ।
आरोहयद्धयं तूर्णं भ्राता दुःशासनस्तदा ॥ १९ ॥
अङ्गदी बद्धमुकुटो हस्ताभरणवान्नृप ।
धार्तराष्ट्रो महाराज विबभौ स पथि व्रजन् ॥ २० ॥
भाण्डीपुष्पनिकाशेन तपनीयनिभेन च ।

देखोगे, कि मैने अकेले ही पाण्डव लोगोंको उनके सुहृद बन्धुबान्धवोंके सहित पराजित किया है ॥ (१०–१३)

महाराज! जब कर्णने तुम्हारे पुत्र दुर्योधनसे ऐसा वचन कहा, तब वह उनसे भाई दुःशासनसे बोले, हे दु-शासन! जिससे ये अनुयायी वीर योद्धा सब प्रकारसे सज्जित होवें, तुम उसका ही विधान करो ॥ (१४—१५)

राजा दुर्योधन दुःशासनसे ऐसा कह कर फिर कर्णसे बोले, हे अरिन्दम! [illegible]

शीघ्र ही तुम्हारे निकट आता हूं। भीष्म के युद्धसे पृथक् होनेहीसे तुम युद्ध करोगे। हे राजन्! तिसके अनन्तर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन सब भाइयोंसे युक्त हो देवताओंके बीच इन्द्रके समान शोभित होकर गमन करने लगे ॥ (१६–१८)

तब भाई दुःशासनने शार्दूलके समान पराक्रमशील राजशार्दूल दुर्योधनको शीघ्रताके सहित घोड़े पर चढ़ाया ॥ राजा दुर्योधन [illegible]

प्रगृह्णन्नञ्जलीनृणामुद्यतान्सर्वतोदिशः।
शुश्राव मधुरा वाचो नानादेशनिवासिनाम् ॥ २९ ॥
संस्तूयमानः सूतैश्च मागधैश्च महायशाः।
पूजयानश्च तान्सर्वान्सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥ ३० ॥
प्रदीपैः काञ्चनैस्तत्र गन्धतैलावसेचितैः।
परिवव्रुर्महाराजं प्रज्वलद्भिः समन्ततः ॥ ३१ ॥
स तैः परिवृतो राजा प्रदीपैः काञ्चनैर्ज्वलन्।
शुशुभे चन्द्रमा युक्तो दीप्तैरिव महाग्रहैः ॥ ३२ ॥
काञ्चनोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः।
प्रोत्सारयन्तः शनकैस्तं जनं सर्वतोदिशम् ॥ ३३ ॥
सम्प्राप्य तु ततो राजा भीष्मस्य सदनं शुभम्।
अवतीर्य हयाच्चापि भीष्मं प्राप्य जनेश्वरः ॥ ३४ ॥
अभिवाद्य ततो भीष्मं निषण्णः परमासने।
काञ्चने सर्वतोभद्रे स्पर्ध्यास्तरणसंवृते ॥ ३५ ॥
उवाच प्राञ्जलिर्भीष्मं बाष्पकण्ठोऽश्रुलोचनः।
त्वां वयं हि समाश्रित्य संयुगे शत्रुसूदन ॥ ३६ ॥

करते थे; वह यथायोग्य अन्न शिक्षायुक्त अनुकूल रूपसे हाथीके सुण्डके समान अपना दाहिना हाथ उठाते, उन लोगोंकी विनययुक्त अञ्जली ग्रहण करते और मधुर वचनोंको सुनते हुए गमन करने लगे। सूत, मागध आदि पुरुष महायशस्वी राजा दुर्योधनकी स्तुति करने लगे। (२९-३०)

महाराज! [illegible] सुगन्धित तेलसे युक्त सुवर्णमय दीपक [illegible] चारों ओरसे उन्हें घेर कर गमन करने लगे। राजा दुर्योधन उन सब [illegible] [illegible] [illegible] चन्द्रमाके समान शोभित होने लगे॥ सुवर्णभूषित वस्त्रोंको धारण करनेवाले योद्धा लोग हाथमें अस्त्र ग्रहण करके सब ओर मार्गमें मनुष्योंको धीरे धीरे हटाने लगे॥ (३१-३३)

इसी प्रकारसे गमन करते हुए राजा दुर्योधनने भीष्मके शिबिरके समीप पहुंचके [illegible] उतर कर उन्हें प्रणाम किया। अनन्तर उत्तम [illegible] युक्त सर्वतोभद्र सुन्दर आसनपर बैठ हाथ जोड़ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

उत्सहेम रणे जेतु सेन्द्रानपि सुरासुरान् ।
किमु पाण्डुसुतान्वीरान्ससुहृद्गणबान्धवान् ॥ ३७ ॥
तस्मादर्हसि गाङ्गेय कृपां कर्तु मयि प्रभो ।
जहि पाण्डुसुतान्वीरान्महेन्द्र इव दानवान् ॥ ३८ ॥
अहं सर्वान्महाराज निहनिष्यामि सोमकान् ।
पञ्चालान्केकयैः सार्धं करूषांश्चेति भारत ॥ ३९ ॥
त्वद्वचः सत्यमेवास्तु जहि पार्थान्समागतान् ।
सोमकांश्च महेष्वासान्सत्यवाग्भव भारत ॥ ४० ॥
दयया यदि वा राजन्द्वेष्यभावान्मम प्रभो ।
मन्दभाग्यतया वापि मम रक्षसि पाण्डवान् ॥ ४१ ॥
अनुजानीहि समरे कर्णमाहवशोभिनम् ।
स जेष्यति रणे पार्थान्ससुहृद्गणबान्धवान् ॥ ४२ ॥
स एवमुक्त्वा नृपतिः पुत्रो दुर्योधनस्तव ।
नोवाच वचनं किञ्चिद्भीष्मं भीमपराक्रमम् ॥ ४३ ॥ [४४४८]

सञ्जय उवाच —वाक्शल्यैस्तव पुत्रेण सोऽतिविद्धो महामनाः ।
दुःखेन महताऽऽविष्टो नोवाचाऽप्रियमण्वपि ॥ १ ॥
स ध्यात्वा सुचिरं कालं दुःखरोषसमन्वितः ।
श्वसमानो यथा नागः प्रणुन्नो वाक्शलाकया ॥ २ ॥
उद्वृत्य चक्षुषी कोपान्निर्दहन्निव भारत ।
सदेवासुरगन्धर्वं लोकं लोकविदां वरः ॥ ३ ॥
अब्रवीत्तव पुत्रं स सामपूर्वमिदं वचः ।
किं त्वं दुर्योधनैवं मां वाक्शल्यैरपकृन्तसि ॥ ४ ॥
घटमानं यथाशक्ति कुर्वाणं च तव प्रियम् ।
जुह्वानं समरे प्राणांस्तवैव प्रियकाम्यया ॥ ५ ॥
यदा तु पाण्डवः शूरः खाण्डवेऽग्निमतर्पयत ।
पराजित्य रणे शक्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ६ ॥
यदा च त्वां महाबाहो गन्धर्वैर्हृतमोजसा ।
अमोचयत्पाण्डुसुतः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ७ ॥

[illegible]

संजय बोले, हे भारत ! लोकोंके व्यवहार जाननेवालोंमें अग्रणी महात्मा भीष्म तुम्हारे पुत्रके वचनरूपी शलाकासे अत्यन्त बिद्ध और महादुःखित होकर भी अप्रिय वचन न बोले ॥ वह दुर्योधनके वचनरूपी शलाकासे पीड़ित, दुःखित और क्रोधसे युक्त होकर सर्पकी भाँति लम्बी सांस छोड़ते हुए बहुत देर तक चिन्ता करते रहे; फिर क्रोधसे [illegible] दोनों नेत्र लाल करके [illegible] देखकर [illegible] (१-४)

[illegible]

तुमार तुम्हारे प्रियकार्यकी चेष्टा करता हूं और अनुष्ठान भी करता हूं, तुम्हारे प्रियकामनाके निमित्त इस महायुद्धरूपी अग्निमें अपने प्राणकी आहुति देनेके कामसे भी उद्यत हुआ हूं; तब तुम क्यों मुझको वचनरूपी शलाकाओंसे बिद्ध कर रहे हो ? अर्जुन आदि पाण्डुपुत्र जो युद्धमें अजेय हैं, उस विषयमें अधिक क्या कहूंगा ! पराक्रमी अर्जुनने जो खाण्डववनमें इन्द्रको पराजित करके अग्निको तृप्त किया था, वही उसके निमित्त पूरा प्रमाण है । (४-६)

हे राजन् ! जब गन्धर्वोंने तुमको हरण किया था, तब उस समय अर्जुनने अपने पराक्रमसे तुम्हें [illegible]

द्रवमाणेषु शूरेषु सोदरेषु तव प्रभो ।
सूतपुत्रे च राधेये पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ८ ॥
यच्च नः सहितान्सर्वान्विराटनगरे तदा ।
एक एव समुद्यातः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ९ ॥
द्रोणं च युधि संरब्धं मां च निर्जित्य संयुगे ।
वासांसि स समादत्त पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १० ॥
तथा द्रौणिं महेष्वासं शारद्वतमथाऽपि च ।
गोग्रहे जितवान्पूर्वं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ ११ ॥
विजित्य च यदा कर्णं सदा पुरुषमानिनम् ।
उत्तरायै ददौ वस्त्रं पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १२ ॥
निवातकवचान्युद्धे वासवेनाऽपि दुर्जयान् ।
जितवान्समरे पार्थः पर्याप्तं तन्निदर्शनम् ॥ १३ ॥
को हि शक्तो रणे जेतुं पाण्डवं रभसं तदा ।
यस्य गोप्ता जगद्गोप्ता शङ्खचक्रगदाधरः ॥ १४ ॥
वासुदेवोऽनन्तशक्तिः सृष्टिसंहारकारकः ।

सर्वेश्वरो देवदेवः परमात्मा सनातनः ॥ १५ ॥
उक्तोऽसि बहुशो राजन्नारदाद्यैर्महर्षिभिः ।
त्वं तु मोहान्न जानीषे वाच्यावाच्यं सुयोधन ॥ १६ ॥
मुमूर्षुर्हि नरः सर्वान्वृक्षान्पश्यति काञ्चनान् ।
तथा त्वमपि गान्धारे विपरीतानि पश्यसि ॥ १७ ॥
स्वयं वैरं महत्कृत्वा पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ।
युद्ध्यस्व तानद्य रणे पश्यामः पुरुषो भव ॥ १८ ॥
अहं तु सोमकान्सर्वान्पाञ्चालांश्च समागतान् ।
निहनिष्ये नरव्याघ्र वर्जयित्वा शिखण्डिनम् ॥ १९ ॥
तैर्वाऽहं निहतः संख्ये गमिष्ये यमसादनम् ।
तान्वा निहत्य समरे प्रीतिं दास्याम्यहं तव ॥ २० ॥
पूर्वं हि स्त्री समुत्पन्ना शिखण्डी राजवेश्मनि ।
वरदानात्पुमाञ्जातः सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी ॥ २१ ॥
तमहं न हनिष्यामि प्राणत्यागेऽपि भारत ।
याऽसौ प्राङ्निर्मिता धात्रा सैषा वै स्त्री शिखण्डिनी २२

और सनातन वासुदेव श्री कृष्ण जिस अर्जुनकी रक्षा कर रहे हैं; उस महा पराक्रमी कृष्णसे रक्षित अर्जुनको कौन युद्धमें पराजित कर सकता है? हे दुर्योधन! तुमको नारदादि महर्षियोंने नाना प्रकारसे कहा परंतु तुम मोहसे यह क्या वाच्यावाच्यको नहीं समझ सकते हो। (१५—१६)

जैसे मरता पुरुष सब वृक्षोंको सुवर्णमय देखता है, तुम भी उसी प्रकारसे विपरीत दर्शन कर रहे हो। तुमने ही पहिले पाण्डव और सृञ्जयोंके संग [illegible] [illegible] पराक्रम प्रकाशित करो; हमलोग तुम्हारे पराक्रमको देखें॥ मैं शिखण्डीके अतिरिक्त युद्धके निमित्त एकत्रित हुए सम्पूर्ण सोमकवंशीय और पाञ्चाल योद्धाओंका नाश करूंगा। या तो मैं उन लोगोंके हाथसे मरके यमराजके स्थान पर गमन करूंगा; अथवा उनको मार कर तुम्हारी प्रीतिके कार्यको पूर्ण करूंगा। (१७-२०)

पहिले शिखण्डी राजा द्रुपदके घरमें स्त्री होकर जन्मी थी, फिर वरके प्रभावसे पुरुष हुई है; इसलिये वह शिखण्डी स्त्री है। हे भारत! प्राण त्यागना होवे तब भी मैं उससे युद्ध नहीं करूंगा, क्योंकि विधाताने उस पहिले स्त्रीरूप

सुखं स्वपिहि गान्धारे श्वोऽस्मि कर्ता महारणम् ।
यं जनाः कथयिष्यन्ति यावत्स्थास्यति मेदिनी ॥ २३ ॥
एवमुक्तस्तव सुतो निर्जगाम जनेश्वर ।
अभिवाद्य गुरुं मूर्ध्ना प्रययौ स्वं निवेशनम् ॥ २४ ॥
आगम्य तु ततो राजा विसृज्य च महाजनम् ।
प्रविवेश ततस्तूर्णं क्षयं शत्रुक्षयङ्करः ॥ २५ ॥
प्रविष्टः स निशां तां च गमयामास पार्थिव ।
प्रभातायां च शर्वर्यां प्रातरुत्थाय तान्नृपः ॥ २६ ॥
राज्ञः समाज्ञापयत सेनां योजयतेति ह ।
अद्य भीष्मो रणे क्रुद्धो निहनिष्यति सोमकान ॥ २७ ॥
दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा रात्रौ विलपितं बहु ।
मन्यमानः स तं राजन्प्रत्यादेशमिवाऽऽत्मनः ॥ २८ ॥
निर्वेदं परमं गत्वा विनिन्द्य परवश्यताम् ।
दीर्घं दध्यौ शान्तनवो योद्धुकामोऽर्जुनं रणे ॥ २९ ॥
इङ्गितेन तु तज्ज्ञात्वा गाङ्गेयेन विचिन्तितम् ।
दुर्योधनो महाराज दुःशासनमचोदयत् ॥ ३० ॥

दुःशासन रथास्तूर्णं युज्यन्तां भीष्मरक्षिणः ।
द्वाविंशतिमनीकानि सर्वाण्येवाऽभिचोदय ॥ ३१ ॥
इदं हि समनुप्राप्तं वर्षपूगाभिचिन्तितम् ।
पाण्डवानां ससैन्यानां वधो राज्यस्य चाऽऽगमः ॥ ३२ ॥
तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाऽभिरक्षणम् ।
स नो गुप्तः सहायः स्याद्धन्यात्पार्थांश्च संयुगे ॥ ३३ ॥
अब्रवीद्धि विशुद्धात्मा नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
स्त्रीपूर्वको ह्यसौ राजंस्तस्माद्वर्ज्यो मया रणे ॥ ३४ ॥
लोकस्तद्वेद यदहं पितुः प्रियचिकीर्षया ।
राज्यं स्फीतं महाबाहो स्त्रियश्च त्यक्तवान्पुरा ॥ ३५ ॥
नैव चाऽहं स्त्रियं जातु न स्त्रीपूर्वं कथञ्चन ।
हन्यां युधि नरश्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ३६ ॥
अयं स्त्रीपूर्वको राजञ्छिखण्डी यदि ते श्रुतः ।
उद्योगे कथितं यत्तत्तथा जाता शिखण्डिनी ॥ ३७ ॥

निकटवर्ती व्यक्तियोंसे जानके दुःशासनसे कहा, हे दुःशासन ! तुम भीष्मकी रक्षाके निमित्त सब रथियों और सम्पूर्ण सेनाको बाईस श्रेणियोंमें विभाग करो। (२८-३१)

[illegible] सहित पाण्डवोंका वध करके [illegible] पूर्वका निष्कण्टक राज्य [illegible] करनेकी चिन्ता करते हुए चला [illegible] उसका समय उपस्थित हुआ है [illegible]

के ऊपर शस्त्र प्रहार नहीं करूंगा, वह पहिले स्त्री होकर जन्मा था, इस ही कारणसे युद्धमें मैं उसका वध न करूंगा॥ (३३-३४)

हे महाबाहो ! मैंने पिताके प्रिय कार्य करनेकी इच्छासे सम्पूर्ण राज्य और स्त्रीका त्याग किया है॥ यह किसीसे अविदित नहीं है॥ मैं तुम्हारे समीप यह सत्य वचन कहता हूं, कि स्त्री जाति अथवा जो पहिले स्त्रीरूपसे जन्म लेकर पीछे किसी कारणसे पुरुष हुआ है, उसका मैं कभी युद्धमें वध नहीं करूंगा। [illegible]

कन्या भूत्वा पुमाञ्जातः स च मां योधयिष्यति ।
तस्मादहं प्रमुखे बाणान्न मुञ्चेयं कथञ्चन ॥ ३८ ॥
युद्धे हि क्षत्रियांस्तात पाण्डवानां जयैषिणः ।
सर्वानन्यान्हनिष्यामि सम्प्राप्तान्रणमूर्धनि ॥ ३९ ॥
एवं मां भरतश्रेष्ठ गाङ्गेयः प्राह शास्त्रवित् ।
तत्र सर्वात्मना मन्ये गाङ्गेयस्यैव पालनम् ॥ ४० ॥
अरक्ष्यमाणं हि वृको हन्यात्सिंहमिहाहवे ।
मा वृकेणेव गाङ्गेयं घातयेम शिखण्डिना ॥ ४१ ॥
मातुलः शकुनिः शल्यः कृपो द्रोणो विविंशतिः ।
यत्ता रक्षन्तु गाङ्गेयं तस्मिन्युद्धे ध्रुवो जयः ॥ ४२ ॥
एतच्छ्रुत्वा तु ते सर्वे दुर्योधनवचस्तदा ।
सर्वतो रथवंशेन गाङ्गेयं पर्यवारयन् ॥ ४३ ॥
पुत्राश्च तव गाङ्गेयं परिवार्य ययुर्मुदा ।
कम्पयन्तो भुवं द्यां च क्षोभयन्तश्च पाण्डवान् ॥४४॥
ते रथैः सुप्रयुक्तैर्दन्तिभिश्च महारथाः ।

परिवार्य रणे भीष्मं दंशिताः समवस्थिताः ॥ ४५ ॥
यथा देवासुरे युद्धे त्रिदशा वज्रधारिणम् ।
सर्वे ते स्म व्यतिष्ठन्त रक्षन्तस्तं महारथम् ॥ ४६ ॥
ततो दुर्योधनो राजा पुनर्भ्रातरमब्रवीत् ।
सव्यं चक्रं युधामन्युरुत्तमौजाश्च दक्षिणम् ॥ ४७ ॥
गोप्तारावर्जुनस्यैतावर्जुनोऽपि शिखण्डिनः ।
रक्ष्यमाणः स पार्थेन तथाऽस्माभिर्विवर्जितः ॥ ४८ ॥
यथा भीष्मं न नो हन्याद्दुःशासन तथा कुरु ।
भ्रातुस्तद्वचनं श्रुत्वा पुत्रो दुःशासनस्तव ॥ ४९ ॥
भीष्मं प्रमुखतः कृत्वा प्रययौ सह सेनया ।
भीष्मं तु रथवंशेन दृष्ट्वा समभिसंवृतम् ॥ ५० ॥
अर्जुनो रथिनां श्रेष्ठो धृष्टद्युम्नमुवाच ह ।
शिखण्डिनं नरव्याघ्रं भीष्मस्य प्रमुखे नृप ॥
स्थापयस्वाऽद्य पाञ्चाल्य तस्य गोप्ताऽहमित्युत ॥ ५१ ॥ [४४९१]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि [illegible] नाम ॥ ५१ ॥

तुम्हारे योद्धा रथी, गजपति, घुडसवा-रोंके सहित भीष्मको घेरकर उनकी रक्षा करनेके निमित्त रणभूमिमें स्थित हुए। जैसे देवता और असुरोंके युद्धमें देवता लोग इन्द्रकी रक्षा करते हैं, वैसेही वह सब तुम्हारे योद्धा भीष्मकी रक्षा करने लगे। (४५-४६)

करेंगे, जो शिखण्डी अर्जुनसे रक्षित होकर पितामह भीष्मका वध करेगा। इससे जिस प्रकार वह भीष्मका वध न कर सके, तुम उसीका विधान करो। तुम्हारे पुत्र दुःशासनने दुर्योधनका वचन सुन सेनाके सहित भीष्मको आगे करके रणभूमिमें गमन किया। रथियोंमें श्रेष्ठ

सञ्जय उवाच- ततः शान्तनवो भीष्मो निर्ययौ सह सेनया ।
व्यूहं चाऽव्यूहत महत्सर्वतोभद्रमात्मनः ॥ १ ॥
कृपश्च कृतवर्मा च शैब्यश्चैव महारथः ।
शकुनिः सैन्धवश्चैव काम्बोजश्च सुदक्षिणः ॥ २ ॥
भीष्मेण सहिताः सर्वे पुत्रैश्च तव भारत ।
अग्रतः सर्वसैन्यानां व्यूहस्य प्रमुखे स्थिताः ॥ ३ ॥
द्रोणो भूरिश्रवाः शल्यो भगदत्तश्च मारिष ।
दक्षिणं पक्षमाश्रित्य स्थिता व्यूहस्य दंशिताः ॥ ४ ॥
अश्वत्थामा सोमदत्तश्चाऽऽवन्त्यौ च महारथौ ।
महत्या सेनया युक्ता वामं पक्षमपालयन् ॥ ५ ॥
दुर्योधनो महाराज त्रिगर्तैः सर्वतो वृतः ।
व्यूहमध्ये स्थितो राजन्पाण्डवान्प्रति भारत ॥ ६ ॥
अलम्बुषो रथश्रेष्ठः श्रुतायुश्च महारथः ।
पृष्ठतः सर्वसैन्यानां स्थितौ व्यूहस्य दंशितौ ॥ ७ ॥
एवमेते तदा व्यूहं कृत्वा भारत तावकाः ।
सन्नद्धाः समदृश्यन्त प्रतपन्त इवाग्नयः ॥ ८ ॥

ततो युधिष्ठिरो राजा भीमसेनश्च पाण्डवः।
नकुलः सहदेवश्च माद्रीपुत्रावुभावपि ॥ ९ ॥
अग्रतः सर्वसैन्यानां स्थिता व्यूहस्य दंशिताः।
धृष्टद्युम्नो विराटश्च सात्यकिश्च महारथः ॥ १० ॥
स्थिताः सैन्येन महता परानीकविनाशनाः।
शिखण्डी विजयश्चैव राक्षसश्च घटोत्कचः ॥ ११ ॥
चेकितानो महाबाहुः कुन्तिभोजश्च वीर्यवान्।
स्थिता रणे महाराज महत्या सेनया वृताः ॥ १२ ॥
अभिमन्युर्महेष्वासो द्रुपदश्च महाबलः।
युयुधानो महेष्वासो युधामन्युश्च वीर्यवान् ॥ १३ ॥
केकया भ्रातरश्चैव स्थिता युद्धाय दंशिताः।
एवं तेऽपि महाव्यूहं प्रतिव्यूह्य सुदुर्जयम् ॥ १४ ॥
पाण्डवाः समरे शूराः स्थिता युद्धाय दंशिताः।
तावकास्तु रणे यत्ताः सहसेना नराधिपाः ॥ १५ ॥
अभ्युद्यता रणे पार्थान्भीष्मं कृत्वाऽग्रतो नृप।
तथैव पाण्डवा राजन्भीमसेनपुरोगमाः ॥ १६ ॥
भीष्मं योद्धुमभीप्सन्तः संग्रामे विजयैषिणः।

क्ष्वेडाः किलकिलाः शङ्खाः क्रकचा गोविषाणिकाः ॥ १७ ॥
भेरीमृदङ्गपणवान्नादयन्तश्च पुष्करान् ।
पाण्डवा अभ्यवर्तन्त नदन्तो भैरवान्रवान् ॥ १८ ॥
भेरीमृदङ्गशङ्खानां दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ।
उत्कृष्टसिंहनादैश्च वल्गितैश्च पृथग्विधैः ॥ १९ ॥
वयं प्रतिनदन्तस्तानगच्छाम त्वरान्विताः ।
सहसैवाऽभिसंक्रुद्धास्तदाऽऽसीत्तुमुलं महत् ॥ २० ॥
ततोऽन्योन्यं प्रधावन्तः सम्प्रहारं प्रचक्रिरे ।
ततः शब्देन महता प्रचकम्पे वसुन्धरा ॥ २१ ॥
पक्षिणश्च महाघोरं व्याहरन्तो विबभ्रमुः ।
सप्रभश्चोदितः सूर्यो निष्प्रभः समपद्यत ॥ २२ ॥
ववुश्च वातास्तुमुलाः शंसन्तः सुमहद्भयम् ।
घोराश्च घोरनिर्ह्रादाः शिवास्तत्र ववाशिरे ॥ २३ ॥
वेदयन्त्यो महाराज महद्वैशसमागतम् ।
दिशः प्रज्वलिता राजन्पांसुवर्षं पपात च ॥ २४ ॥
रुधिरेण समुन्मिश्रमस्थिवर्षं तथैव च ।
रुदतां वाहनानां च नेत्रेभ्यः प्रापतज्जलम् ॥ २५ ॥
सुस्रुवुश्च शकृन्मूत्रं प्रध्यायन्तो विशाम्पते ।

गम्भीरघोषं गाहमानं सेनासागरमक्षयम् ।
निवारयितुमभ्याजौ त्वदीयाः कुरुनन्दन ॥ ३ ॥
तेन मुक्ता रणे राजञ्शराः शत्रुनिबर्हणाः ।
क्षत्रियाननयञ्शूरान्प्रेतराजनिवेशनम् ॥ ४ ॥
यमदण्डोपमान्घोराञ्ज्वलिताशीविषोपमान् ।
सौभद्रः समरे क्रुद्धः प्रेषयामास सायकान् ॥ ५ ॥
स रथान्रथिनस्तूर्णं हयांश्चैव ससादिनः ।
गजारोहांश्च सगजान्दारयामास फाल्गुनिः ॥ ६ ॥
तस्य तत्कुर्वतः कर्म महत्संख्ये महीभृतः ।
पूजयाञ्चक्रिरे हृष्टाः प्रशशंसुश्च फाल्गुनिम् ॥ ७ ॥
तान्यनीकानि सौभद्रो द्रावयामास भारत ।
तूलराशिमिवाधूय मारुतः सर्वतोदिशम् ॥ ८ ॥
तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि भारत ।
त्रातारं नाध्यगच्छन्त पङ्के मग्ना इव द्विपाः ॥ ९ ॥
विद्राव्य सर्वसैन्यानि तावकानि नरोत्तम ।
अभिमन्युः स्थितो राजन्विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥ १० ॥
न चैनं तावकाः राजन्विषेहुररिघातिनम् ।
प्रदीप्तं पावकं यद्वत्पतङ्गाः कालचोदिताः ॥ ११ ॥

द्रावयित्वा महासैन्यं कम्पयित्वा महारथान् ।
नन्दयामास सुहृदो मयं जित्वेव वासवः ॥ २० ॥
तेन विद्राव्यमाणानि तव सैन्यानि संयुगे ।
चक्रुरार्तस्वरं घोरं पर्जन्यनिनदोपमम् ॥ २१ ॥
तं श्रुत्वा निनदं घोरं तव सैन्यस्य भारत ।
मारुतोद्धूतवेगस्य सागरस्येव पर्वणि ॥ २२ ॥
दुर्योधनस्तदा राजन्नार्ष्यशृङ्गिमभाषत ।
एष कार्ष्णिर्महाबाहो द्वितीय इव फाल्गुनः ॥ २३ ॥
चमूं द्रावयते क्रोधाद्वृत्रो देवचमूमिव ।
तस्य चान्यन्न पश्यामि संयुगे भेषजं महत् ॥ २४ ॥
ऋते त्वां राक्षसश्रेष्ठ सर्वविद्यासु पारगम् ।
स गत्वा त्वरितं वीर जहि सौभद्रमाहवे ॥ २५ ॥
वयं पार्थं हनिष्यामो भीष्मद्रोणपुरोगमाः ।
स एवमुक्तो बलवान्राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥ २६ ॥
प्रययौ समरे तूर्णं तव पुत्रस्य शासनात् ।

सा वध्यमाना च तथा पाण्डवानामनीकिनी ।
रक्षसा घोररूपेण प्रदुद्राव रणे भयात् ॥ ३५ ॥
प्रमृद्य च रणे सेनां पद्मिनीं वारणो यथा ।
ततोऽभिदुद्राव रणे द्रौपदेयान्महाबलान् ॥ ३६ ॥
ते तु क्रुद्धा महेष्वासा द्रौपदेयाः प्रहारिणः ।
राक्षसं दुद्रुवुः संख्ये ग्रहाः पञ्च रविं यथा ॥ ३७ ॥
वीर्यवद्भिस्ततस्तैस्तु पीडितो राक्षसोत्तमः ।
यथा युगक्षये घोरे चन्द्रमाः पञ्चभिर्ग्रहैः ॥ ३८ ॥
प्रतिविन्ध्यस्ततो रक्षो बिभेद निशितैः शरैः ।
सर्वपारशवैस्तूर्णमकुण्ठाग्रैर्महाबलः ॥ ३९ ॥
स तैर्भिन्नतनुत्राणः शुशुभे राक्षसोत्तमः ।
मरीचिभिरिवाऽर्कस्य संस्यूतो जलदो महान ॥ ४० ॥
विषक्तैः स शरैश्चापि तपनीयपरिच्छदैः ।
आर्श्यशृङ्गिर्बभौ राजन्दीप्तशृङ्ग इवाचलः ॥ ४१ ॥
ततस्ते भ्रातरः पञ्च राक्षसेन्द्रं महाहवे ।
विव्यधुर्निशितैर्बाणैस्तपनीयविभूषितैः ॥ ४२ ॥

ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन्नन्तरिक्षे विरेजिरे।
हंसा इव महाराज शरत्काले नभस्तले ॥ ११ ॥
ते शराः प्राप्य कौन्तेयं समन्ताद्विविशुः प्रभो।
फलभारनतं यद्वत्स्वादुवृक्षं विहङ्गमाः ॥ १२ ॥
अर्जुनस्तु रणे नादं विनद्य रथिनां वरः।
त्रिगर्तराजं समरे सपुत्रं विव्यधे शरैः ॥ १३ ॥
ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये।
पार्थमेवाऽभ्यवर्तन्त मरणे कृतनिश्चयाः ॥ १४ ॥
मुमुचुः शरवृष्टिं च पाण्डवस्य रथं प्रति।
शरवृष्टिं ततस्तां तु शरवर्षैः समन्ततः ॥ १५ ॥
प्रतिजग्राह राजेन्द्र तोयवृष्टिमिवाऽचलः।
तत्राऽद्भुतमपश्याम बीभत्सोर्हस्तलाघवम् ॥ १६ ॥
विमुक्तां बहुभिर्योधैः शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम्।
यदेको वारयामास मारुतोऽभ्रगणानिव ॥ १७ ॥
कर्मणा तेन पार्थस्य तुतुषुर्देवदानवाः।
अथ क्रुद्धो रणे पार्थस्त्रिगर्तान्प्रति भारत ॥ १८ ॥

छूटे हुए बाण आकाशमें इस प्रकारसे शोभित होने लगे, जैसे शरद् ऋतुमें हंसोंके समूह आकाशमें गमन करते हुए शोभायमान लगते हैं; और जैसे पक्षी चारों ओरसे आकर सुस्वादु फलोंसे युक्त वृक्षके ऊपर वेगसे गिरते हैं, वैसे ही सब बाण चारों ओरसे अर्जुनके ऊपर गिरने लगे॥ (९–१२)

परन्तु रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने सिंहनाद करके पुत्रके सहित त्रिगर्त्तराज सुशर्माको अपने बाणोंसे विद्ध किया॥ वह भी प्रलय कालके यमराज के समान अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर भी प्राणत्याग करनेका निश्चय कर सम्मुखहीमें खडे हो उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ जैसे पर्वत जलकी वर्षाको ग्रहण करता है; वैसे ही अर्जुनने अपने बाणोंसे उनके सब बाणोंको निवारण किया, उनके इस आश्चर्यरूपी हस्त लघुता को उस समय मैंने देखा, कि उन्होंने अकेले ही अनेक योद्धाओं की कठिन बाणवृष्टिको इस भांति निवारण किया, जैसे वायु अपने प्रबल वेगसे बादलोंका निवारण कर देता है। ऐसा कठिन कार्य देखके देवता और दानव प्रसन्न हुए। (१३–१८)

ताभ्यां मुक्ताः शरा राजन्नन्तरिक्षे विरेजिरे।
हंसा इव महाराज शरत्काले नभस्तले ॥ ११ ॥
ते शराः प्राप्य कौन्तेयं समन्ताद्विविशुः प्रभो।
फलभारनतं यद्वत्स्वादुवृक्षं विहङ्गमाः ॥ १२ ॥
अर्जुनस्तु रणे नादं विनद्य रथिनां वरः।
त्रिगर्तराजं समरे सपुत्रं विव्यधे शरैः ॥ १३ ॥
ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये।
पार्थमेवाऽभ्यवर्तन्त मरणे कृतनिश्चयाः ॥ १४ ॥
मुमुचुः शरवृष्टिं च पाण्डवस्य रथं प्रति।
शरवृष्टिं ततस्तां तु शरवर्षैः समन्ततः ॥ १५ ॥
प्रतिजग्राह राजेन्द्र तोयवृष्टिमिवाऽचलः।
तत्राऽद्भुतमपश्याम बीभत्सोर्हस्तलाघवम् ॥ १६ ॥
विमुक्तां बहुभिर्योधैः शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम्।
यदेको वारयामास मारुतोऽभ्रगणानिव ॥ १७ ॥
कर्मणा तेन पार्थस्य तुतुषुर्देवदानवाः।
अथ क्रुद्धो रणे पार्थस्त्रिगर्तान्प्रति भारत ॥ १८ ॥

छूटे हुए बाण आकाशमें इस प्रकारसे शोभित होने लगे, जैसे शरद् ऋतुमें हंसोंके समूह आकाशमें गमन करते हुए शोभायमान लगते है; और जैसे पक्षी चारों ओरसे आकर सुस्वादु फलोंसे युक्त वृक्षके ऊपर वेगसे गिरते है, वैसे ही सब बाण चारों ओरसे अर्जुनके ऊपर गिरने लगे॥ (९–१२)

परन्तु रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने सिंहनाद करके पुत्रके सहित त्रिगर्तराज सुशर्माको अपने बाणोंसे विद्ध किया। वह भी प्रलय कालके यमराज के समान अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर भी प्राणत्याग करनेका निश्चय कर सम्मुखहीमें खडे हो उनके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगे॥ जैसे पर्वत जलकी वर्षाको ग्रहण करता है; वैसे ही अर्जुनने अपने बाणोंसे उनके सब बाणोंका निवारण किया, उनके इस आश्चर्यरूपी हस्त लघुता को उस समय मैंने देखा, कि उन्होंने अकेले ही अनेक योद्धाओं की कठिन बाणवृष्टिका इस भांति निवारण किया, जैसे वायु अपने प्रबल वेगसे बादलोंका निवारण कर देता है। ऐसा कठिन कार्य देखके देवता और दानव प्रसन्न हुए। (१३–१८)

मुमोचास्त्रं महाराज वायव्यं पृतनामुखे ।
प्रादुरासीत्ततो वायुः क्षोभयाणो नभस्तलम् ॥ १९ ॥
पातयन्वै तरुगणान्विनिघ्नंश्चैव सैनिकान् ।
ततो द्रोणोऽभिवीक्ष्यैव वायव्यास्त्रं सुदारुणम् ॥ २० ॥
शैलमन्यन्महाराज घोरमस्त्रं मुमोच ह ।
द्रोणेन युधि निर्मुक्ते तस्मिन्नस्त्रे नराधिप ॥ २१ ॥
प्रशशाम ततो वायुः प्रसन्नाश्च दिशो दश ।
ततः पाण्डुसुतो वीरस्त्रिगर्तस्य रथव्रजान् ॥ २२ ॥
निरुत्साहान्रणे चक्रे विमुखान्विपराक्रमान ।
ततो दुर्योधनश्चैव कृपश्च रथिनां वरः ॥ २३ ॥
अश्वत्थामा तथा शल्यः काम्बोजश्च सुदक्षिणः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ बाह्लिक सह बाह्लिकैः ॥ २४ ॥
महता रथवंशेन पार्थस्याऽवारयन्दिशः ।
तथैव भगदत्तश्च श्रुतायुश्च महाबलः ॥ २५ ॥
गजानीकेन भीमस्य ताववारयतां दिशः ।
भूरिश्रवाः शलश्चैव सौबलश्च विशाम्पते ॥ २६ ॥
शरौघैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्माद्रीपुत्राववारयन् ।
भीष्मस्तु सहितः संख्ये धार्तराष्ट्रैः ससैनिकैः ॥ २७ ॥

हे महाराज ! तिसके अनन्तर अर्जुनने त्रिगर्त सेना पर क्रुद्ध होकर वायव्यास्त्र चलाया । उससे वायु प्रबल वेगसे चलकर वृक्षोंको तोडता और सेनाके पुरुषोंको मोहित करता हुआ प्रगट हुआ । हे राजन् ! द्रोणाचार्यने उस प्रचण्ड वायव्य अस्त्रको देखकर महाभयङ्कर शैलास्त्र चलाया, शैलास्त्रके चलानेसे वायु शान्त और सब दिशाएं निर्मल होगईं । फिर अर्जुनने अपने अस्त्रोंसे त्रिगर्तराजके सब रथियोंको उत्साह-रहित, पराक्रम-हीन और युद्धमें विमुख कर दिया । (१८-२३)

अनन्तर राजा दुर्योधनने अश्वत्थामा, शल्य, काम्बोजराज सुदक्षिण, कृपाचार्य, विन्द अनुविन्द और महाराज बाह्लिकके सहित बडी सेनासे युक्त होकर पार्थकी दिशाओंको व्याप्त किया ॥ भगदत्त और श्रुतायुने गजसेनासे भीमसेनको घेर लिया । भूरिश्रवा, शल और शकुनिने माद्रीपुत्र नकुल और सहदेवपर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे आक्रमण

युधिष्ठिरं समासाद्य सर्वतः पर्यवारयत् ।
आपतन्तं गजानीकं दृष्ट्वा पार्थो वृकोदरः ॥ २८ ॥
लेलिहन्सृक्किणी वीरो मृगराडिव कानने ।
भीमस्तु रथिनां श्रेष्ठो गदां गृह्य महाहवे ॥ २९ ॥
अवप्लुत्य रथात्तूर्णं तव सैन्यान्यभीषयत् ।
तमुद्वीक्ष्य गदाहस्तं ततस्ते गजसादिनः ॥ ३० ॥
परिवव्रू रणे यत्ता भीमसेनं समन्ततः ।
गजमध्यमनुप्राप्तः पाण्डवः स व्यराजत ॥ ३१ ॥
मेघजालस्य महतो यथा मध्यगतो रविः ।
व्यधमत्स गजानीकं गदया पाण्डवर्षभः ॥ ३२ ॥
महाभ्रजालमतुलं मातरिश्वेव सन्ततम् ।
ते वध्यमाना बलिना भीमसेनेन दन्तिनः ॥ ३३ ॥
आर्तनादं रणे चक्रुर्गर्जन्तो जलदा इव ।
बहुधा दारितश्चैव विषाणैस्तत्र दन्तिभिः ॥ ३४ ॥
फुल्लाशोकनिभः पार्थः शुशुभे रणमूर्धनि ।
विषाणे दन्तिनं गृह्य निर्विषाणमथाऽकरोत् ॥ ३५ ॥

किया। (२३-२७)

भीष्मने सेनाके सहित धृतराष्ट्र पुत्रोंसे युक्त होकर राजा युधिष्ठिरके निकट जाके उन्हें चारों ओरसे घेर लिया। महाराज! अत्यन्त पराक्रमी भीमसेन हाथियोंकी सेनाको आती देखकर रथसे कूदके गदा ग्रहण करके उसकी ओर इस प्रकारसे दौडे, जैसे वनमें हाथियोंके झुण्ड पर सिंह वेगसे दौडता है। हाथियों पर चढनेवाले वीर योद्धाओंने हाथमें भीमसेनको गदा लिये हुए देखकर शीघ्रताके सहित उन्हें चारों ओरसे घेर लिया॥ (२७-३१)

जैसे बादलोंमें सूर्य विराजमान होता है, वैसे ही पाण्डुपुत्र भीमसेन हाथियोंकी सेनाके बीच शोभित हुए; वह पवनके समान होकर उस हाथियोंकी सेनारूपी मेघमण्डलको तितर बितर करने लगे। हाथियोंकी सेना बलवान भीमसेनकी गदाके प्रहारसे पीडित होकर बादलके समान गर्जती हुई आर्तनाद करने लगी। भीमसेन भी हाथियोंकी सेनासे [illegible] [illegible] शरीरमें उनके दांतोंसे घायल होकर फूले हुए पलाश वृक्षके समान शोभित हुए। उस समय भीमसेनने किसी

विषाणेन च तेनैव कुम्भेऽभ्याहत्य दन्तिनम् ।
पातयामास समरे दण्डहस्त इवाऽन्तकः ॥ ३६ ॥
शोणिताक्तां गदां बिभ्रन्मेदोमज्जाकृतच्छविः ।
कृताभ्यङ्गः शोणितेन रुद्रवत्प्रत्यदृश्यत ॥ ३७ ॥
एवं ते वध्यमानाश्च हतशेषा महागजाः ।
प्राद्रवन्त दिशो राजन्विमृद्नन्तः स्वकं बलम् ॥ ३८ ॥
द्रवद्भिस्तैर्महानागैः समन्ताद्भरतर्षभ ।
दुर्योधनबलं सर्वं पुनरासीत्पराङ्मुखम् ॥ ३९ ॥ [४६८१]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीमपराक्रमे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

सञ्जय उवाच— मध्यन्दिने महाराज संग्रामः समपद्यत ।
लोकक्षयकरो रौद्रो भीष्मस्य सह सोमकैः ॥ १ ॥
गाङ्गेयो रथिनां श्रेष्ठः पाण्डवानामनीकिनीम् ।
व्यधमन्निशितैर्बाणैः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २ ॥
सममर्द च तत्सैन्यं पिता देवव्रतस्तव ।

ही हाथियोंका दांत उखाडके उन्हें दन्तहीन कर दिया। (३२-३५)

उन हाथियोंके दांतोंसे ही उनके गंडस्थलमें प्रहार करके अनेक हाथियोंको पृथ्वीमें गिरा दिया॥ अनन्तर वह हाथियोंके मांस, मज्जा (चर्बी) और रुधिरसे पूरित होकर गदा ग्रहण किये साक्षात् रुद्रकी भांति दिखाई देने लगे। हे राजन् ! हाथियोंकी सेना इसी प्रकारसे भागी जाने लगी और मरनेसे बचे हुए बडे हाथी भीमकी गदासे पीडित तथा घायल होके अपनी सेनाके वीरोंका ही नाश करते हुए इधर उधर दौडने लगे। दुर्योधनकी सब सेना इन बडे बडे हाथियोंको दौडते तथा चारों ओर भागते और अपनी सेनाके वीरोंको मर्दन करते देख कर रणभूमिसे फिर विमुख हुई॥ (३६-३९) [४६८१]

भीष्मपर्वमें एकसौ तीन अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें एकसौ तीन अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज ! इस दिन मध्याह्न के समय सोमकसंगियोंके सङ्ग महात्मा भीष्मका महाभयङ्कर मनुष्योंका क्षय करनेवाला घोर संग्राम हुआ॥ रथियों में श्रेष्ठ गङ्गानन्दन भीष्म पाण्डवों की सेनाके सौ सौ तथा सहस्र सहस्र वीरोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे छलाने लगे॥ जैसे बैल कटे हुए अन्नको खलिहानमें मर्दन करते हैं, वैसे ही पितामह भीष्म पाण्डवोंकी सेनाको मर्दने

धान्यानामिव लूनानां प्रकरं गोगणा इव ॥ ३ ॥
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च विराटो द्रुपदस्तथा।
भीष्ममासाद्य समरे शरैर्जघ्नुर्महारथम् ॥ ४ ॥
धृष्टद्युम्नं ततो विध्वा विराटं च शरैस्त्रिभिः।
द्रुपदस्य च नाराचं प्रेषयामास भारत ॥ ५ ॥
तेन विद्धा महेष्वासा भीष्मेणाऽमित्रकर्षिणा।
चुक्रुधुः समरे राजन्पदस्पृष्टा इवोरगाः ॥ ६ ॥
शिखण्डी तं च विव्याध भरतानां पितामहम्।
स्त्रीमयं मनसा ध्यात्वा नाऽस्मै प्राहरदच्युतः ॥ ७ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु समरे क्रोधेनाऽग्निरिव ज्वलन्।
पितामहं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽऽर्पयत् ॥ ८ ॥
द्रुपदः पञ्चविंशत्या विराटो दशभिः शरैः।
शिखण्डी पञ्चविंशत्या भीष्मं विव्याध सायकैः ॥ ९ ॥
सोऽतिविद्धो महाराज शोणितौघपरिप्लुतः।
वसन्ते पुष्पशबलो रक्ताशोक इवाऽऽबभौ ॥ १० ॥
तान्प्रत्यविध्यद्गाङ्गेयस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः।

शस्त्रोंसे मर्दन करने लगे। (१—३)

धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, विराट और राजा द्रुपद भीष्मके निकट जाकर उनको अपने बाणोंसे पीडित करने लगे। शत्रु नाशन भीष्म भी तीन तीन बाणोंसे धृष्टद्युम्न और विराटको विद्ध करके राजा द्रुपदके ऊपर एक बाण चलाया॥ हे प्रजानाथ! धृष्टद्युम्न आदि वे सब महाधनुर्धारी योद्धा भीष्मके अस्त्रोंसे विद्ध होकर पांवसे छूए दबे हुए सर्पके समान क्रुद्ध होगये॥ (४—६)

शिखण्डी पितामह भीष्मको अपने बाणोंसे विद्ध करने लगे, परन्तु निर्दय वीर भीष्मने उसे स्त्री जानके उसके ऊपर शस्त्र नहीं चलाया। धृष्टद्युम्नने क्रोधसे अग्निके समान जलके तीन बाणोंसे भीष्मकी दोनों भुजा और उनकी छातीमें प्रहार किया॥ तब द्रुपदने पच्चीस, विराटने दस और शिखण्डीने पच्चीस बाणोंसे भीष्मको विद्ध किया॥ (७-९)

महाराज! उन बाणोंसे भीष्म अत्यन्त विद्ध होकर फूले हुए वसन्त ऋतुके लाल अशोक वृक्षके समान शोभायमान हुए और शिखण्डीको छोड़के उन सब महारथियोंको तीन तीन बाणोंसे विद्ध

द्रुपदस्य च भल्लेन धनुश्चिच्छेद मारिष ॥ ११ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय भीष्मं विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैः सुशितै रणमूर्धनि ॥ १२ ॥
तथा भीमो महाराज द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ।
केकया भ्रातरः पञ्च सात्यकिश्चैव सात्वतः ॥ १३ ॥
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं युधिष्ठिरपुरोगमाः ।
रिरक्षिषन्तः पाञ्चाल्यं धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥ १४ ॥
तथैव तावकाः सर्वे भीष्मरक्षार्थमुद्यताः ।
प्रत्युद्ययुः पाण्डुसेनां सहसैन्या नराधिप ॥ १५ ॥
तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं तव तेषां च संकुलम् ।
नराश्वरथनागानां यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ १६ ॥
रथी रथिनमासाद्य प्राहिणोद्यमसादनम् ।
तथेतरान्समासाद्य नरनागाश्वसादिनः ॥ १७ ॥
अनयन्परलोकाय शरैः संनतपर्वभिः ।
शरैश्च विविधैर्घोरैस्तत्र तत्र विशांपते ॥ १८ ॥
रथास्तु रथिभिर्हीना हतसारथयस्तथा ।
विप्रद्रुताश्च समरे दिशो जग्मुः समन्ततः ॥ १९ ॥

करके एक बाणसे राजा द्रुपदका धनुष काट दिया। राजा द्रुपदने दूसरा धनुष लेकर पांच बाणोंसे भीष्मको विद्ध करके तीन बाणोंसे उनके सारथीको विद्ध किया ॥ (१०–१२)

युधिष्ठिरके हितैषी भीमसेन, द्रौपदीके पांचो पुत्र, केकयराज पांचो भाई और पराक्रमी सात्यकि धृष्टद्युम्नको आगे करके पाञ्चालराज द्रुपदकी रक्षा करनेकी अभिलाष करके भीष्मकी ओर दौडे । हे राजन् ! तुम्हारी ओरके सब योद्धा सेनाके सहित भीष्मकी रक्षा करते हुए पाण्डवोंकी सेनाकी ओर दौडे। १३ १५

तब दोनों सेनाओंके मनुष्य घोडे, हाथी और रथियोंका यमराष्ट्रको बढाने-वाला महाभयङ्कर दारुण संग्राम होने लगा; रथी योद्धा रथियोंपर आक्रमण करके यमपुरीमें भेजने लगे। मनुष्य, हाथी, घुडसवार एक दूसरेके सम्मुख होकर अपने तीक्ष्ण अस्त्रोंसे एक दूसरेको मारके पृथ्वीमें गिराने लगे ॥ १६ १८

हे राजन् ! जगह जगह अनेक रथ सारथी और रथियोंके मारे जाने पर रणभूमिमें चारों ओर इधर उधर दौडने

मृद्नन्तस्ते नरान्राजन्हयांश्च सुबहून्रणे।
वातायमाना दृश्यन्ते गन्धर्वनगरोपमाः ॥ २० ॥
रथिनश्च रथैर्हीना वर्मिणस्तेजसा युताः।
कुण्डलोष्णीषिणः सर्वे निष्काङ्गदविभूषणाः ॥ २१ ॥
देवपुत्रसमाः सर्वे शौर्ये शक्रसमा युधि।
ऋद्ध्या वैश्रवणं चाऽति नयेन च बृहस्पतिम् ॥ २२ ॥
सर्वलोकेश्वराः शूरास्तत्र तत्र विशाम्पते।
विप्रद्रुता व्यदृश्यन्त प्राकृता इव मानवाः ॥ २३ ॥
दन्तिनश्च नरश्रेष्ठ हीनाः परमसादिभिः।
मृद्नन्तः स्वान्यनीकानि निपेतुः सर्वशब्दगाः ॥ २४ ॥
चर्मभिश्चामरैश्चित्रैः पताकाभिश्च मारिष।
छत्रैः सितैर्हेमदण्डैश्चामरैश्च समन्ततः ॥ २५ ॥
विशीर्णैर्विप्रधावन्तो दृश्यन्ते स्म दिशो दश।
नवमेघप्रतीकाशा जलदोपमनिःस्वनाः ॥ २६ ॥
तथैव दन्तिभिर्हीना गजारोहा विशाम्पते।
प्रधावन्तोऽन्वदृश्यन्त तव तेषां च संकुले ॥ २७ ॥

लगे ॥ मैंने देखा, कि वे सब रथ वायुके समान वेगवान् होकर अनेक मनुष्य और घोडोंको मर्दन करते हुए रणभूमिमें चारों ओर गन्धर्व नगरके समान शोभायमान होने लगे ॥ हे राजन् ! जिन्होंने नीतिमें बृहस्पति और धनमें कुबेर और वीरतामें इन्द्रकी उपमाको धारण किया था, ऐसे ऐसे कवच, कुण्डल, वर्म और सुवर्ण-भूषित वस्त्र, तथा सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रोंसे युक्त देवपुत्रोंके समान शूरवीर और पराक्रमी रथी राजा लोग, रथसे रहित होकर साधारण मनुष्योंके समान इधर उधर दौडने लगे। (१९–२३)

सम्पूर्ण हाथी सवारोंसे हीन होकर चिग्घाड मारते, दौडते और अपनी सेनाके वीरोंको ही मर्दन करते हुए शूरवीरोंके अस्त्र शस्त्रोंसे मरकर पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ कितने ही हाथी वर्षा कालके बादलके समान शब्द करते हुए दौडे, उनके विचित्र वर्म, चंवर, पताका, सुवर्ण-दण्ड भूषित छत्र और तीक्ष्ण धारवाले तोमर आदि अस्त्र रणभूमिमें इधर उधर गिर पडे; उन हाथियोंके सवार भी अनेक स्थलोंमें हाथियोंसे रहित होकर युद्धभूमिमें चारों ओर

नानादेशसमुत्थांश्च तुरगान्हेमभूषितान् ।
वातायमानानद्राक्षं शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २८ ॥
अश्वारोहान्हतैरश्वैर्गृहीतासीन्समन्ततः ।
द्रवमाणानपश्याम द्राव्यमाणांश्च संयुगे ॥ २९ ॥
गजो गजं समासाद्य द्रवमाणं महाहवे ।
ययौ प्रमृद्य तरसा पादातान्वाजिनस्तथा ॥ ३० ॥
तथैव च रथान्राजन्प्रममर्द रणे गजः ।
रथाश्चैव समासाद्य पतितांस्तुरगान्भुवि ॥ ३१ ॥
व्यमृद्नन्समरे राजंस्तुरगांश्च नरान्रणे ।
एवं ते बहुधा राजन्प्रत्यमृद्नन्परस्परम् ॥ ३२ ॥
तस्मिन्रौद्रे तथा युद्धे वर्तमाने महाभये ।
प्रावर्तत नदी घोरा शोणितान्त्रतरङ्गिणी ॥ ३३ ॥
अस्थिसङ्घातसम्बाधा केशशैवलशाद्वला ।
रथह्रदा शरावर्ता हयमीना दुरासदा ॥ ३४ ॥
शीर्षोपलसमाकीर्णा हस्तिग्राहसमाकुला ।

दौड़ने लगे। (२४–२७)

नानादेशीय सैकड़ों तथा सहस्रों घोड़े सुवर्ण भूषित वर्मसे युक्त होकर वायुके समान युद्धक्षेत्रमें दौड़ते हुए दीख पड़े॥ घोड़ोंके मरनेपर उनके सवार भी तलवार ग्रहण करके शत्रुओं-की ओर दौड़े, और कितने ही दूसरेसे पीड़ित होकर इधर उधर दौड़ने लगे॥ कोई कोई हाथी दौड़ते हुए मनुष्य, और घोड़ोंको अपने पांवसे मर्दन करते हुए दूसरे हाथियोंके सङ्ग मिलकर गमन करने लगे, कितने ही हाथी बहुतसे रथोंको मर्दन करने लगे। रथोंका समूह भी पृथ्वीमें पड़े हुए घोड़े तथा पैदल करते हुए अनेक मनुष्योंको अपनी गतिसे पीसने लगे। इसी भांति अनेक प्रकारसे हाथी और रथोंसे मनुष्योंका नाश होने लगा। (२८–३२)

इस प्रकारसे महाभयङ्कर दारुण युद्धमें रुधिर और अस्त्रोंकी तरङ्गसे युक्त अत्यन्त भयङ्करी नदी उत्पन्न हुई। हड्डियोंका समूह उसमें किनारेकी बालू, (योद्धा और वाहनोंके) केश उस नदीके सेवार, टूटे हुए रथ उसमें नावरूप बहे जाते थे; बाण आदि अस्त्र भंवरसे दीख पड़ते थे, मरे हुए घोड़े उसमें मछली, वीरोंके सिर पत्थरोंके टुकड़े और मरे हुए हाथी उसमें मगर ग्राह-

कवचोष्णीषफेनौघा धनुर्वेगासिकच्छपा ॥ ३५ ॥
पताकाध्वजवृक्षाढ्या मर्त्यकूलापहारिणी ।
क्रव्यादहंससङ्कीर्णा यमराष्ट्रविवर्धनी ॥ ३६ ॥
तां नदीं क्षत्रियाः शूरा रथनागहयप्लवैः ।
प्रतेरुर्बहवो राजन्भयं त्यक्त्वा महारथाः ॥ ३७ ॥
अपोवाह रणे भीरून्कश्मलेनाभिसंवृतान् ।
यथा वैतरणी प्रेतान्प्रेतराजपुरं प्रति ॥ ३८ ॥
प्राक्रोशन्क्षत्रियास्तत्र दृष्ट्वा तद्वैशसं महत् ।
दुर्योधनापराधेन गच्छन्ति क्षत्रियाः क्षयम् ॥ ३९ ॥
गुणवत्सु कथं द्वेषं धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
कृतवान्पाण्डुपुत्रेषु पापात्मा लोभमोहितः ॥ ४० ॥
एवं बहुविधा वाचः श्रूयन्ते स्म परस्परम् ।
पाण्डव-स्तव-संयुक्ताः पुत्राणां ते सुदारुणाः॥ ४१ ॥
ता निशम्य ततो वाचः सर्वयोधैरुदाहृताः ।
आगस्कृत्सर्वलोकस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ४२ ॥

बालूके समान देख पड़ते थे; कवच और वस्त्र आदि उस नदीमें बहते हुए फेनके समान बोध होते थे; धनुष उसके किनारेकी भूमि, तलवार ढाल उस नदीके किनारे रहनेवाले वृक्षके समान दिखाई देने लगे। यह नदी मनुष्य-रूपी तटका नाश करने लगी; युद्ध करते हुए वीरोंका समूह इस नदीकी हंसश्रेणी हुई। जलकी नदियां समुद्रको बढाती हैं; परन्तु यह नदी यमराजके राज्यको बढाने वाली उत्पन्न हुई। (३३-३६)

इसमें कुछ अनेक शूरवीर क्षत्रिय योद्धा भय त्यागके रथ, हाथी और घोड़े रूपी नावसे इस नदीके पार जाने लगे॥ जैसे वैतरणी नदी मरे हुए मनुष्यको यमपुरीमें लेजाती है, वैसे ही यह रुधिरकी नदी भी मूर्च्छित, और डरपोक मनुष्योंको बहा कर लेजाने लगी॥ क्षत्रिय योद्धा इस प्रकारसे वीरोंका नाश होता हुआ देखकर जोरसे चिल्लाकर कहने लगे, कि दुर्योधनके दोषहीसे सब वीरोंका नाश होरहा है॥ राजा धृतराष्ट्रहीने न जाने किस कारणसे लोभ मोहमें फस कर गुणवान पाण्डुपुत्रोंसे विरोध किया? (३७-४०)

इस सब वीरोंके मुखसे इसी भांति अनेक प्रकारसे पाण्डवोंकी प्रशंसा और तुम्हारे पुत्रोंकी निन्दाके सुनकर नाना

भीष्मं द्रोणं कृपं चैव शल्यं चोवाच भारत ।
युध्यध्वमनहङ्काराः किं चिरं कुरुथेति च ॥ ४३ ॥
ततः प्रववृते युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह ।
अक्षद्यूतकृतं राजन्सुघोरं वैशसं तदा ॥ ४४ ॥
यत्पुरा न निगृह्णासि वार्यमाणो महात्मभिः ।
वैचित्रवीर्य तस्येदं फलं पश्य सुदारुणम् ॥ ४५ ॥
न हि पाण्डुसुता राजन्ससैन्याः सपदानुगाः ।
रक्षन्ति समरे प्राणान्कौरवा वापि संयुगे ॥ ४६ ॥
एतस्मात्कारणाद्घोरो वर्तते स्वजनक्षयः ।
दैवाद्वा पुरुषव्याघ्र तव चापनयान्नृप ॥ ४७ ॥ [४७२८]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
सकुलयुद्धे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥

सञ्जय उवाच— अर्जुनस्तान्नरव्याघ्रः सुशर्मानुचरान्नृपान् ।
अनयत्प्रेतराजस्य सदनं सायकैः शितैः ॥ १ ॥

प्रकारके वचन सुनाई देने लगे ॥ सब लोकोंमें अपराधी तुम्हारे पुत्र दुर्योधन उन सब योद्धाओंके ऐसे वचन सुनकर भी महा पराक्रमी भीष्म, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य और शल्यसे बोले, कि तुम सब लोग अहङ्कारसे रहित होकर युद्ध करो, क्यों विलम्ब करते हो? (४१-४३)

हे राजन्! अनन्तर फिर कुरु पाण्डवोंका महाघोर भयङ्कर संग्राम होने लगा। हे विचित्रवीर्यके पुत्र! अनेक महात्माओंने पहिले तुम्हें निवारण किया था तौभी तुमने उस समयमें उन लो-गोंकी बात नहीं ग्रहण की; उस ही का यह महादारुण फल इस समय उपस्थित हुआ है। तुम्हें पाण्डव, कौरव तथा उन दोनोंकी सेना और उनके अनुयायी पुरुष आदि कोई भी अपनी प्राणरक्षाकी चेष्टा नहीं करते हैं॥ तुमने जो पहिले किसीके युद्धसे निवारण करनेवाले वचनों को नहीं सुना था, उस ही कारणसे होवे चाहे तुम्हारी अनीतिके दोषसे ही होवे, - यह महाभयङ्कर जातिके लोगों तथा अपने इष्ट मित्र आदि सब पुरुषोंके नाशका समय उपस्थित हुआ है ॥ (४४-४७) [४५२८]

भीष्मपर्वमें एकसौ तीन अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें एकसौ चार अध्याय।

सञ्जय बोले, हे राजन्! पुरुषसिंह अर्जुन सुशर्माके अनुयायी क्षत्रियोंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे यम राजके घरकी

सुशर्माऽपि ततो बाणैः पार्थं विव्याध संयुगे।
वासुदेवं च सप्तत्या पार्थं च नवभिः पुनः ॥ २ ॥
तं निवार्य शरौघेण शक्रसूनुर्महारथः।
सुशर्मणो रणे योधान्प्राहिणोद्यमसादनम् ॥ ३ ॥
ते वध्यमानाः पार्थेन कालेनेव युगक्षये।
व्यद्रवन्त रणे राजन्भये जाते महारथाः ॥ ४ ॥
उत्सृज्य तुरगान्केचिद्रथान्केचिच्च मारिष।
गजानन्ये समुत्सृज्य प्राद्रवन्त दिशो दश ॥ ५ ॥
अपरे तु तदाऽऽदाय वाजिनागरथान्रणे।
त्वरया परया युक्ताः प्राद्रवन्त विशाम्पते ॥ ६ ॥
पादाताश्चाऽपि शस्त्राणि समुत्सृज्य महारणे।
निरपेक्षा व्यधावन्त तेन तेन स्म भारत ॥ ७ ॥
वार्यमाणाः सुबहुशस्त्रैगर्तेन सुशर्मणा।
तथाऽन्यैः पार्थिवश्रेष्ठैर्न व्यतिष्ठन्त संयुगे ॥ ८ ॥
तद्बलं प्रद्रुतं दृष्ट्वा पुत्रो दुर्योधनस्तव।
पुरस्कृत्य रणे भीष्मं सर्वसैन्यपुरस्कृतः ॥ ९ ॥

में भेजने लगे॥ सुशर्मा भी अपने बाणोंसे अर्जुनको विद्ध करने लगे। सुशर्माने सत्तर बाणोंसे कृष्णको विद्ध करके नौ बाणोंसे अर्जुनको विद्ध किया॥ महारथ इन्द्रपुत्र अर्जुन सुशर्माको अपने बाणोंसे निवारित करके उसकी सेनाके योद्धाओंका नाश करने लगे। (१-३)

सुशर्माके अनुयायी मरनेसे बचे हुए योद्धा प्रलयकालके यमराजके समान अर्जुनके अस्त्रोंसे पीडित हो डरकर अर्जुनके सम्मुखसे भाग गये। कोई कोई घोडोंको त्याग कर भागे और कुछ रथोंको छोडकर भागने लगे, कितने ही सवारगण घोडे, हाथी और रथोंके सहित शीघ्रतासे वेग पूर्वक भागने लगे। कितने ही पैदल योद्धा उस महासंग्राममें शस्त्रोंको त्याग किसीकी ओर न देख इधर उधर भाग गये। उन लोगोंको त्रिगर्तराज सुशर्मा तथा दूसरे बहुतसे मुख्य राजाओंने बार बार निवारण किया; तो भी वे सब योद्धा भागनेसे निवृत्त नहीं हुए। (४-८)

हे महाराज! तुम्हारे पुत्र दुर्योधन उस सम्पूर्ण सेनाको भागती हुई देखकर उन सब सेनाके आगे होकर पितामह भीष्मको आगे कर त्रिगर्तराज सुशर्माकी

सर्वोद्योगेन महता धनञ्जयमुपाद्रवत्।
त्रिगर्ताधिपतेरर्थे जीवितस्य विशाम्पते ॥ १० ॥
स एकः समरे तस्थौ किरन्बहुविधाञ्शरान्।
भ्रातृभिः सहितः सर्वैः शेषा हि प्रद्रुता नराः ॥ ११ ॥
तथैव पाण्डवा राजन्सर्वोद्योगेन दंशिताः।
प्रययुः फाल्गुनार्थाय यत्र भीष्मो व्यतिष्ठत ॥ १२ ॥
ज्ञायमाना रणे वीर्यं घोरं गाण्डीवधन्वनः।
हाहाकारकृतोत्साहा भीष्मं जग्मुः समन्ततः ॥ १३ ॥
ततस्तालध्वजः शूरः पाण्डवानां वरूथिनीम्।
छादयामास समरे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ १४ ॥
एकीभूतास्ततः सर्वे कुरवः सह पाण्डवैः।
अयुध्यन्त महाराज मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ १५ ॥
सात्यकिः कृतवर्माणं विद्ध्वा पञ्चभिराशुगैः।
अतिष्ठदाहवे शूरः किरन्बाणान्सहस्रशः ॥ १६ ॥
तथैव द्रुपदो राजा द्रोणं विद्ध्वा शितैः शरैः।
पुनर्विव्याध सप्तत्या सारथिं चाऽस्य पञ्चभिः ॥ १७ ॥

रक्षा करनेके वास्ते सब प्रकारके प्रयत्नके सहित अर्जुनकी ओर दौडे॥ अकेले राजा दुर्योधन सब भाइयोंके सहित नाना प्रकारके बाणोंको चलाते हुए अर्जुनके सम्मुख स्थित हुए, और सेनाके सब पुरुष भाग गये॥ पाण्डवोंने भी सब प्रयत्नसे युक्त होकर अर्जुनकी रक्षा करनेके निमित्त भीष्मके समीप गमन किया॥ (९-१२)

इन सब पुरुषों ने गाण्डीवधनुष धारण करनेवाले अर्जुनका भयानक बल और पराक्रम जानके भी उत्साहपूर्वक हाहाकार शब्द करते हुए अर्जुनको चारों ओरसे घेर कर भीष्मके निकट गमन किया॥ तब तालध्वजवाले भीष्मने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पाण्डवोंकी सेना-को छिपा दिया। महाराज! तिसके अनन्तर जब सूर्य आकाशके बीचों बीच हुए, उस समय सब कौरव एकत्रित होकर पाण्डवोंसे युद्ध करने लगे॥ (१३-१५)

सात्यकि पांच बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध करके सहस्र सहस्र बाणोंको चलाते हुए रणभूमिमें स्थित हुए। राजा द्रुपद ने द्रोणाचार्यको उत्तम बाणोंसे बेधते हुए सत्तर बाणोंसे विद्ध किया; तिसके अनन्तर उनके सारथीको भी पांच

भीमसेनस्तु राजानं बाह्लीक प्रपितामहम् ।
विध्वा नदन्महानादं शार्दूल इव कानने ॥ १८ ॥
आर्जुनिश्चित्रसेनेन विद्धो बहुभिराशुगैः ।
अतिष्ठदाहवे शूरः किरन्बाणान्सहस्रशः ॥ १९ ॥
चित्रसेनं त्रिभिर्बाणैर्विव्याध समरे भृशम् ।
समागतौ तौ तु रणे महामात्रौ व्यरोचताम् ॥ २० ॥
यथा दिवि महाघोरौ राजन्बुधशनैश्चरौ ।
तस्याऽश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं च नवभिः शरैः ॥ २१ ॥
ननाद बलवान्नादं सौभद्रः परवीरहा ।
हताश्वात्तु रथात्तूर्णं सोऽवप्लुत्य महारथः ॥ २२ ॥
आरुरोह रथं तूर्णं दुर्मुखस्य विशाम्पते ।
द्रोणश्च द्रुपदं भित्त्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २३ ॥
सारथिं चाऽस्य विव्याध त्वरमाणः पराक्रमी ।
पीड्यमानस्ततो राजा द्रुपदो वाहिनीमुखे ॥ २४ ॥
अपायाज्जवनैरश्वैः पूर्ववैरमनुस्मरन् ।
भीमसेनस्तु राजानं मुहूर्तादिव बाह्लिकम् ॥ २५ ॥

बाणोंसे विद्ध किया ॥ भीमसेन प्रपितामह महाराज बाह्लिकको बाणोंसे विद्ध करके सिंहके समान महानाद करने लगे ॥ (१६-१८)

अर्जुनपुत्र अभिमन्युने चित्रसेनके अनेक बाणोंसे विद्ध होकर भी सहस्रों बाण छोडते हुए रणभूमिमें स्थिर हुए, और तीन बाणोंसे उनके हृदयमें प्रहार करके चित्रसेनको अत्यन्त ही विद्ध किया, जैसे आकाशमें बुध और शनैश्चर ग्रह प्रकाशित होते हैं, वैसे ही वे दोनों पराक्रमी महामात्र रणमें प्रकाशित होने लगे। [illegible] शत्रुनाशन वीर अभिमन्युने नौ बाणोंसे चित्रसेनके चारों घोडे और उनके सारथीका वध करके सिंहनाद किया। हे राजन्! चित्रसेन घोडे और सारथीसे रहित रथपरसे कूदके दुर्मुखके रथपर चढ गये ॥ (१९-२३)

पराक्रमी द्रोणाचार्यने तीक्ष्ण बाणोंसे राजा द्रुपदको विद्ध करके शीघ्रताके सहित उनके सारथीको भी विद्ध किया; राजा द्रुपद सम्पूर्ण सेनाके सम्मुख ही द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होके, पहिलेकी शत्रुताको स्मरण करके शीघ्र घोडोंके सहित रथपर चढे हुए रणभूमिसे भाग गये। भीमसेनने एक मुहूर्त

व्यश्वसूतरथं चक्रे सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
ससम्भ्रमो महाराज संशयं परमं गतः ॥ २६ ॥
अवप्लुत्य ततो वाहाद्वाह्लीकः पुरुषोत्तमः ।
आरुरोह रथं तूर्णं लक्ष्मणस्य महारणे ॥ २७ ॥
सात्यकिः कृतवर्माणं वारयित्वा महारणे ।
शरैर्बहुविधै राजन्नाससाद पितामहम् ॥ २८ ॥
स विद्ध्वा भारतं षष्ट्या निशितैर्लोमवाहिभिः ।
नृत्यन्निव रथोपस्थे विधुन्वानो महद्धनुः ॥ २९ ॥
तस्यायसीं महाशक्तिं चिक्षेपाऽथ पितामहः ।
हेमचित्रां महावेगां नागकन्योपमां शुभाम् ॥ ३० ॥
तामापतन्तीं सहसा मृत्युकल्पां सुदुर्जयाम् ।
व्यंसयामास वार्ष्णेयो लाघवेन महायशाः ॥ ३१ ॥
अनासाद्य तु वार्ष्णेयं शक्तिः परमदारुणा ।
न्यपतद्धरणीपृष्ठे महोल्केव महाप्रभा ॥ ३२ ॥
वार्ष्णेयस्तु ततो राजन्स्वां शक्तिं कनकप्रभाम् ।
वेगवद्गृह्य चिक्षेप पितामहरथं प्रति ॥ ३३ ॥

सम्मुख ही मुहूर्त भरमें महाराज वाह्लिक को घोड़े, सारथी और रथसे रहित कर दिया। हे महाराज! पुरुषश्रेष्ठ वाह्लिक अत्यन्त सन्देह और भयसे युक्त होकर शीघ्रताके सहित अपने रथसे कूदके लक्ष्मणके रथ पर चढ़ गये ॥ २३-२७

सात्यकिने अनेक बाणोंसे कृतवर्माको निवारण करके भीष्मके निकट गमन किया। और उत्तम पानी चढ़े हुए रोएदार पूंछ करनेवाले साठ बाणोंसे महाबलवान् पितामह भीष्मको विद्ध करके धनुष घुमाते हुए मानो रथके ऊपर नृत्य करने लगे। २८-२९

तिसके अनन्तर पितामह भीष्मने सुवर्णचित्रित महावेगशील साँपिनके समान भयङ्करी लोहमयी एक उत्तम शक्ति सात्यकिकी ओर चलाई। वृष्णि-वंशीय यशस्वी सात्यकिने मृत्युके समान अत्यन्त प्रचण्ड शक्तिको सम्मुख आती देखके शीघ्रतासे रथपर भ्रमण करके उसे विफल किया; वह प्रकाशमान भयानक शक्ति सात्यकिको न पाकर बड़े लूकके समान पृथ्वीपर गिरी ॥ (३०-३२)

तब सात्यकिने सुवर्णभूषित प्रकाश-मान अपनी शक्ति ग्रहण करके पितामह भीष्मकी ओर चलाई। इस महायुद्धमें

छादितः पाण्डवैः शूरैः समन्ताद्भरतर्षभ ।
तस्य कार्यं त्वया वीर रक्षणं सुमहात्मनः ॥ ३ ॥
रक्ष्यमाणो हि समरे भीष्मोऽस्माकं पितामहः ।
निहन्यात्समरे यत्तान्पञ्चालान्पाण्डवैः सह ॥ ४ ॥
तत्र कार्यतमं मन्ये भीष्मस्यैवाऽभिरक्षणम् ।
गोप्ता ह्येष महेष्वासो भीष्मोऽस्माकं महाव्रतः ॥ ५ ॥
स भवान्सर्वसैन्येन परिवार्य पितामहम् ।
समरे कर्म कुर्वाणं दुष्करं परिरक्षतु ॥ ६ ॥
स एवमुक्तः समरे पुत्रो दुःशासनस्तव ।
परिवार्य स्थितो भीष्मं सैन्येन महता वृतः ॥ ७ ॥
ततः शतसहस्राणां हयानां सुबलात्मजः ।
विमलप्रासहस्तानामृष्टितोमरधारिणाम् ॥ ८ ॥
दर्पितानां सुवेशानां बलस्थानां पताकिनाम् ।
शिक्षितैर्युद्धकुशलैरुपेतानां नरोत्तमैः ॥ ९ ॥
नकुलं सहदेवं च धर्मराज च पाण्डवम् ।
न्यवारयन्नरश्रेष्ठान्परिवार्य समन्ततः ॥ १० ॥

सब पाण्डवोंकी सेनामें घिर गये हैं। हे वीर! इस समय तुमको महात्मा भीष्मकी रक्षा करनी उचित है ॥ (१-३)

जब हम लोग पितामह भीष्मकी रक्षा करेंगे, तब वह यत्नपूर्वक पाण्डवोंके सहित पाञ्चाल योद्धाओंका वध कर सकेंगे; इससे उनकी रक्षा करनी ही मैं सबसे बडा कार्य समझता हूं। यह महाव्रत करनेवाले महाधनुर्धारी भीष्म युद्धमें सदा कठिन कर्मोंको करते रहते हैं, और वह हम लोगोंके रक्षक हैं, इससे तुम सब सेनासे युक्त होकर उनकी रक्षा करो ॥ (४-६)

तुम्हारे पुत्र दुःशासन रणभूमिमें दुर्योधनकी आज्ञा सुनकर बहुत बडी सेनाके सहित भीष्मको घेरकर खडे हुए ॥

तिसके अनन्तर रथियोंमें मुख्य सुबलपुत्र शकुनि उत्तम शिक्षा और युद्धके कार्योंमें निपुण मुख्य वीर पुरुषोंके सहित सेनामें स्थित होकर अत्यन्त वेगवान, अभिमानी, ध्वजा पताकाओंसे शोभित उत्तम प्रास, ऋष्टि और तोमर धारण करनेवाले कई सौ हजार घुडसवारोंके सहित एकत्रित होकर पाण्डुपुत्र धर्मराज, नकुल और सहदेवको चारों ओरसे घेरकर उन्हें निवारण करने लगे (८-१०)

न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि शरेण हयसादिनाम् ।
ते निपेतुर्महाराज निहता दृढधन्विभिः ॥ १९ ॥
नागैरिव महानागा यथावद्गिरिगह्वरे ।
तेऽपि प्रासैः सुनिशितैः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ २० ॥
न्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि विचरन्तो दिशो दश ।
अभ्याहता हयारोहा ऋष्टिभिर्भरतर्षभ ॥ २१ ॥
अत्यजन्नुत्तमाङ्गानि फलानीव महाद्रुमाः ।
ससादिनो हया राजंस्तत्र तत्र निषूदिताः ॥ २२ ॥
पतिताः पात्यमानाश्च प्रत्यदृश्यन्त सर्वशः ।
वध्यमाना हयाश्चैव प्राद्रवन्त भयार्दिताः ॥ २३ ॥
यथा सिंहं समासाद्य मृगाः प्राणपरायणाः ।
पाण्डवाश्च महाराज जित्वा शत्रून्महामृधे ॥ २४ ॥
दध्मुः शङ्खांश्च भेरीश्च ताडयामासुराहवे ।
ततो दुर्योधनो दीनो दृष्ट्वा सैन्यं पराजितम् ॥ २५ ॥
अब्रवीद्भरतश्रेष्ठ मद्रराजमिदं वचः ।
एष पाण्डुसुतो ज्येष्ठो यमाभ्यां सहितो रणे ॥ २६ ॥

घुड़सवारोंके सिरको अपने चोखे बाणोंसे काटने लगे । हे राजन् ! जैसे बड़ा सर्प सब सांपोंके द्वारा पर्वतकी कन्दरामें गिरता है, वैसे ही वे सब योद्धा लोग, युधिष्ठिर, नकुल और सहदेवके बाणोंसे रणभूमिमें यथा उचित मरकर गिरने लगे; युधिष्ठिर आदि सब और भ्रमण करके शिलापर घिसे हुए बाणों और प्रास आदि अस्त्रोंसे उन सब घुड़सवारोंके सिरोंको काटने लगे, वे सब घुड़सवारोंके सिर पाण्डवोंके शस्त्रोंसे इस भांति कटके गिरने लगे, जैसे वृक्षसे पके हुए फल गिरते हैं, सब और घोड़ोंके सहित सवार मरके पृथ्वीमें गिरने लगे । १८ २३

अन्तमें बचे हुए सब घुड़सवार अपने प्राणकी रक्षाके निमित्त भयभीत होकर इस प्रकार रणभूमिमें भागे, जैसे वनमें हरिणोंका झुण्ड सिंहको देखकर भाग जाता है । तब पाण्डव लोग उस समय शत्रुओंको जीत कर शंख भेरी आदि बाजोंको बजाने लगे । (२३—२५)

तदनन्तर राजा दुर्योधन घुड़सवारोंकी सेनाको भागती हुई देख कर दुःखित हो मद्रराज शल्यसे बोले, हे राजन् ! यह देखो राजा युधिष्ठिर अपने नकुल सहदेव दोनों भाइयोंके सहित हमलोगोंके

पश्यतां वो महाबाहो सेनां द्रावयति प्रभो ।
तं वारय महाबाहो वेलेव मकरालयम् ॥ २७ ॥
त्वं हि संश्रूयसेऽत्यर्थमसह्यबलविक्रमः ।
पुत्रस्य तव तद्वाक्यं श्रुत्वा शल्यः प्रतापवान् ॥ २८ ॥
स ययौ रथवंशेन यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
तदाऽऽपतद्वै सहसा शल्यस्य सुमहद्बलम् ॥ २९ ॥
महौघवेगं समरे वारयामास पाण्डवः ।
मद्रराजं च समरे धर्मराजो महारथः ॥ ३० ॥
दशभिः सायकैस्तूर्णमाजघान स्तनान्तरे ।
नकुलः सहदेवश्च तं सप्तभिरजिह्मगैः ॥ ३१ ॥
मद्रराजोऽपि तान्सर्वानाजघान त्रिभिस्त्रिभिः ।
युधिष्ठिरं पुनः षष्ट्या विव्याध निशितैः शरैः ॥ ३२ ॥
माद्रीपुत्रौ च सम्भ्रान्तौ द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् ।
ततो भीमो महाबाहुर्दृष्ट्वा राजानमाहवे ॥ ३३ ॥
मद्रराजरथं प्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ।
अभ्यपद्यत संग्रामे युधिष्ठिरममित्रजित् ॥ ३४ ॥
ततो युद्धं महाघोरं प्रावर्तत सुदारुणम् ।

अपरां दिशमास्थाय पतमाने दिवाकरे ॥ ३५ ॥ [४८०१]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

सञ्जय उवाच —ततः पिता तव क्रुद्धो निशितैः सायकोत्तमैः ।
आजघान रणे पार्थान्सहसेनान्समन्ततः ॥ १ ॥
भीमं द्वादशभिर्विध्वा सात्यकिं नवभिः शरैः ।
नकुलं च त्रिभिर्विध्वा सहदेवं च सप्तभिः ॥ २ ॥
युधिष्ठिरं द्वादशभिर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
धृष्टद्युम्नं ततो विध्वा ननाद सुमहाबलः ॥ ३ ॥
तं द्वादशाग्र्यैर्नकुलो माधवश्च त्रिभिः शरैः ।
धृष्टद्युम्नश्च सप्तत्या भीमसेनश्च सप्तभिः ॥ ४ ॥
युधिष्ठिरो द्वादशभिः प्रत्यविध्यत्पितामहम् ।
द्रोणस्तु सात्यकिं विध्वा भीमसेनमविध्यत ॥ ५ ॥
एकैकं पञ्चभिर्बाणैर्यमदण्डोपमैः शितैः ।
तौ च तं प्रत्यविध्येतां त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥ ६ ॥
तोत्रैरिव महानागं द्रोणं ब्राह्मणपुङ्गवम् ।
सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥७॥

समयमें महाघोर दारुण संग्राम होने लगा। (३२—३५) [४८०१]

भीष्मपर्वमें एकसौ पांच अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें एकसौ छः अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! तिसके अनन्तर पराक्रमी भीष्म पितामहने क्रुद्ध होकर चारों ओरसे तीक्ष्ण बाणोंकी वर्षा करके सेनाके सहित पाण्डवोंको पीडित करना आरम्भ किया॥ भीमको बारह, सात्यकिको नौ, नकुलको तीन और सहदेवको सात बाणोंसे विद्ध करके फिर बारह बाणोंसे राजा युधिष्ठिरकी दोनों भुजा और छातीमें प्रहार किया। फिर धृष्टद्युम्नको तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करके सिंहनाद करने लगे॥ (१-३)

तब नकुलने बारह, सात्यकिने तीन, धृष्टद्युम्नने सत्तर, भीमसेनने सात और युधिष्ठिरने बारह बाणोंसे पितामह भीष्मको विद्ध किया। द्रोणाचार्यने यमदण्डके समान पांच बाणोंसे सात्यकिको विद्ध करके भीमसेनको भी इसी भांति पांच बाणोंसे विद्ध किया॥ (४-६)

जैसे हाथीको अंकुशसे पीडित करते हैं वैसे ही, भीमसेन और सात्यकिने ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यको तीन तीन बाणोंसे विद्ध किया॥ सौवीर, कितव,

अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।
संग्रामे नाऽजहुर्भीष्मं वध्यमानाः शितैः शरैः ॥ ८ ॥
तथैवाऽन्ये महीपाला नानादेशसमागताः ।
पाण्डवानभ्यवर्तन्त विविधायुधपाणयः ॥ ९ ॥
तथैव पाण्डवा राजन्परिवव्रुः पितामहम् ।
स समन्तात्परिवृतो रथौघैरपराजितः ॥ १० ॥
गहनेऽग्निरिवोत्सृष्टः प्रजज्वाल दहन्परान् ।
रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसिशक्तिगदेन्धनः ॥ ११ ॥
शरस्फुलिङ्गो भीष्माग्निर्ददाह क्षत्रियर्षभान् ।
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिर्गार्ध्रपक्षैः सुतेजनैः ॥ १२ ॥
कर्णिनालीकनाराचैश्छादयामास तद्बलम् ।
अपातयद्ध्वजांश्चैव रथिनश्च शितैः शरैः ॥ १३ ॥
मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजान् ।
निर्मनुष्यान्रथान्राजन्गजानश्वांश्च संयुगे ॥ १४ ॥
अकरोत्स महाबाहुः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ॥ १५ ॥

निशम्य सर्वभूतानि समकम्पन्त भारत ।
अमोघा ह्यपतन्बाणाः पितुस्ते भरतर्षभ ॥ १६ ॥
नाऽसज्जन्त तनुत्रेषु भीष्मचापच्युताः शराः ।
हतवीरान्रथान्राजन्संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ॥ १७ ॥
अपश्याम महाराज ह्रियमाणान्रणाजिरे ।
चेदिकाशिकरूपाणां सहस्राणि चतुर्दश ॥ १८ ॥
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ।
अपरावर्तिनः सर्वे सुवर्णविकृतध्वजाः ॥ १९ ॥
संग्रामे भीष्ममासाद्य व्यादितास्यमिवाऽन्तकम् ।
निमग्नाः परलोकाय सवाजिरथकुञ्जराः ॥ २० ॥
भग्नाक्षोपस्करान्कांश्चिद्भग्नचक्रांश्च भारत ।
अपश्याम महाराज शतशोऽथ सहस्रशः ॥ २१ ॥
सवरूथै रथैर्भग्नै रथिभिश्च निपातितैः ।
शरैः सुकवचैश्छिन्नैः पट्टिशैश्च विशाम्पते ॥ २२ ॥
गदाभिर्भिन्दिपालैश्च निशितैश्च शिलीमुखैः ।
अनुकर्षैरुपासङ्गैश्चक्रैर्भग्नैश्च मारिष ॥ २३ ॥
बाहुभिः कार्मुकैः खड्गैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।

हे भारत! वज्रके समान भीष्मके धनुषकी टङ्कार और तलत्राणके शब्दको सुनकर सम्पूर्ण मनुष्य कांपने लगे। हे राजन्! भीष्म पितामहके बाण अमोघ होकर चारों ओर गिरते हुए दिखाई देने लगे। भीष्मके बाण केवल शत्रुओंके शरीरमें लगके नहीं रह गये, किन्तु मैंने देखा, कि भीष्मके धनुषसे छूटे हुए बाणोंने वेगवान् घोड़ोंके सहित रथोंको रथियोंसे रहित कर दिया, वीरोंसे हीन रथ रणभूमिमें चारों ओर घूमने लगे। (१५-१८)

चेदि, काशि और करूष-देशीय उत्तम वंशमें उत्पन्न हुए चौदह हजार शूरवीर रणमें पीछे न हटनेवाले योद्धा-लोग रथ, हाथी और घोड़ोंके सहित महात्मा भीष्मके बाणोंसे मरकर परलोक सिधारे। महाराज! उस समय मैंने देखा कि सैकड़ों तथा सहस्रों रथोंके चक्र तथा उसके हिस्से टूट टूट पृथ्वीमें गिरने लगे। (१८-२१)

टूटे रथ, मरे हुए हाथी, घोड़े, बाण, छिन्न कवच, पट्टिश, गदा, भिन्दिपाल छिन्न भिन्न हुए चोखे बाण रथके

तलत्रैरंगुलित्रैश्च ध्वजैश्च विनिपातितैः ॥ २४ ॥
चापैश्च बहुधा छिन्नैः समास्तीर्यत मेदिनी।
हतारोहा गजा राजन्हयाश्च हयसादिनः ॥ २५ ॥
न्यपतन्त गतप्राणाः शतशोऽथ सहस्रशः।
यतमानाश्च ते वीरा द्रवमाणान्महारथान् ॥ २६ ॥
नाऽशक्नुवन्वारयितुं भीष्मबाणप्रपीडितान्।
महेन्द्रसमवीर्येण वध्यमाना महाचमूः ॥ २७ ॥
अभज्यत महाराज न च द्वौ सह धावतः।
आविद्धनरनागाश्वं पतितध्वजकूबरम् ॥ २८ ॥
अनीकं पाण्डुपुत्राणां हाहाभूतमचेतनम्।
जघानात्र पिता पुत्रं पुत्रश्च पितरं तथा ॥ २९ ॥
प्रियं सखायं चाऽऽक्रन्दे सखा दैवबलात्कृतः।
विमुच्य कवचानन्ये पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ॥ ३० ॥
प्रकीर्य केशान्धावन्तः प्रत्यदृश्यन्त सर्वशः।

तद्गोकुलमिवोद्भ्रान्तमुद्भ्रान्तरथकूबरम् ॥ ३१ ॥
ददृशे पाण्डुपुत्रस्य सैन्यमार्तस्वरं तदा ।
प्रभज्यमानं सैन्यं तु दृष्ट्वा यादवनन्दनः ॥ ३२ ॥
उवाच पार्थं बीभत्सुं निगृह्य रथमुत्तमम् ।
अयं स कालः सम्प्राप्तः पार्थ यः कांक्षितस्तव ॥ ३३ ॥
प्रहरास्मिन्नरव्याघ्र न चेन्मोहाद्विमुह्यसे ।
यत्पुरा कथितं वीर राज्ञां तेषां समागमे ॥ ३४ ॥
विराटनगरे तात सञ्जयस्य समीपतः ।
भीष्मद्रोणमुखान्सर्वान्धार्तराष्ट्रस्य सैनिकान् ॥ ३५ ॥
सानुबन्धान्हनिष्यामि ये मां योत्स्यन्ति सङ्गरे ।
इति तत्कुरु कौन्तेय सत्यं वाक्यमरिन्दम ॥ ३६ ॥
क्षत्रधर्ममनुस्मृत्य युध्यस्व विगतज्वरः ।
इत्युक्तो वासुदेवेन तिर्यग्दृष्टिरधोमुखः ॥ ३७ ॥
अकाम इव बीभत्सुरिदं वचनमब्रवीत् ।
अवध्यानां वधं कृत्वा राज्यं वा नरकोत्तरम् ॥ ३८ ॥

लगे। जब उस समय भीष्मका रथ चारों ओर रणभूमिमें घूमने लगा, तब वह सब योद्धा मानो सिंहको देखकर गौओं की भांति इधर उधर घूमते और भागते हुए आर्त्तनाद करने लगे। (२८–३२)

महाराज! यदुकुलभूषण कृष्ण पाण्डवोंकी सेनाको भागती हुई देख रथको खड़ा करके अर्जुनसे बोले, हे पुरुषसिंह अर्जुन! तुमने पहिले जो अभिलाष की थी, उसका समय अब उपस्थित हुआ है, इसी समय भीष्मका वध करो, नहीं तो पीछे तुमको मोह प्राप्त होगा। हे वीर! विराट नगरमें जब हस्तिनापुरसे सञ्जय तुम्हारे समीप आये थे, तब तुमने राजाओंके इकट्ठे होनेके समय उनमें यह कहा था, कि "दुर्योधनके भीष्म, द्रोणाचार्य आदि सेनाके पुरुष तथा दूसरे जो मनुष्य उसके निमित्त मेरे सङ्ग युद्ध करेंगे, सब पुरुषोंको मैं अनुयायियोंके सहित युद्धमें मारूंगा।" हे शत्रुनाशन कुन्तीपुत्र अर्जुन! तुम क्षत्रिय धर्मको स्मरण करके सब शोक और चिन्ताओंको त्याग कर अब अपने वचनको सत्य करो। (३३–३७)

अर्जुन कृष्णकी बात सुन कर सिर नीचे करके तिरछी दृष्टिसे मानो इच्छा रहित होकर यह वचन बोले, "अवध्य पुरुषोंको मारकर नरकके देनेवाले

दुःखानि वनवासे वा किं नु मे सुकृतं भवेत् ।
चोदयाऽश्वान्यतो भीष्मः करिष्ये वचनं तव ॥ ३९ ॥
पातयिष्यामि दुर्धर्षं भीष्मं कुरुपितामहम् ।
स चाऽश्वान्रजतप्रख्यांश्चोदयामास माधवः ॥ ४० ॥
यतो भीष्मस्ततो राजन्दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिमानिव ।
ततस्तत्पुनरावृत्तं युधिष्ठिरबलं महत् ॥ ४१ ॥
दृष्ट्वा पार्थं महाबाहुं भीष्मायोद्यतमाहवे ।
ततो भीष्मः कुरुश्रेष्ठः सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥ ४२ ॥
धनञ्जयरथं शीघ्रं शरवर्षैरवाकिरत् ।
क्षणेन स रथस्तस्य सहयः सहसारथिः ॥ ४३ ॥
शरवर्षेण महता न प्राज्ञायत भारत ।
वासुदेवस्त्वसम्भ्रान्तो धैर्यमास्थाय सत्वरः ॥ ४४ ॥
चोदयामास तानश्वान्विनुन्नान्भीष्मसायकैः ।
ततः पार्थो धनुर्गृह्य दिव्यं जलदनिःस्वनम् ॥ ४५ ॥
पातयामास भीष्मस्य धनुश्छित्त्वा शितैः शरैः ।

स च्छिन्नधन्वा कौरव्यः पुनरन्यन्महद्धनुः ॥ ४६ ॥
निमेषान्तरमात्रेण सज्यं चक्रे पिता तव ।
चकर्ष च ततो दोर्भ्यां धनुर्जलदनिःस्वनम् ॥ ४७ ॥
अथाऽस्य तदपि क्रुद्धश्चिच्छेद धनुरर्जुनः ।
तस्य तत्पूजयामास लाघवं शान्तनोः सुतः ॥ ४८ ॥
गाङ्गेयस्त्वब्रवीत्पार्थं धन्विश्रेष्ठमरिन्दम ।
साधु साधु महाबाहो साधु कुन्तीसुतेति च ॥ ४९ ॥
समाभाष्यैवमपरं प्रगृह्य रुचिरं धनुः ।
मुमोच समरे भीष्मः शरान्पार्थरथं प्रति ॥ ५० ॥
अदर्शयद्वासुदेवो हययाने परं बलम् ।
मोघान्कुर्वञ्शरांस्तस्य मण्डलानि निदर्शयन् ॥ ५१ ॥
शुशुभाते नरव्याघ्रौ तौ भीष्मशरविक्षतौ ।
गोवृषाविव संरब्धौ विषाणोल्लिखिताङ्कितौ ॥ ५२ ॥
वासुदेवस्तु सम्प्रेक्ष्य पार्थस्य मृदुयुद्धताम् ।
भीष्मं च शरवर्षाणि सृजन्तमनिशं युधि ॥ ५३ ॥
प्रतपन्तमिवाऽऽदित्यं मध्यमासाद्य सेनयोः ।
वरान्वरान्विनिघ्नन्तं पाण्डुपुत्रस्य सैनिकान् ॥ ५४ ॥

काटते ही पितामह भीष्म बादलके समान शब्द करनेवाले एक दूसरे धनुष पर रोदा चढा कर दोनों हाथोंसे फेरते हुए बाणोंको चलाने लगे, परन्तु अर्जुनने क्रुद्ध होकर उसे भी काट डाला। अर्जुनके ऐसे कर्मको देखकर भीष्म पितामह ने "धन्य धन्य" कहके अर्जुनके हस्तलाघवकी प्रशंसा की। (४५-४९)

अर्जुनकी प्रशंसा कर फिर एक मनोहर धनुष ग्रहण करके उनके रथ पर [illegible] बाणोंकी [illegible] करने लगे [illegible] [illegible]

चलाये हुए उन सब बाणोंको निष्फल करके अर्जुनके घोडोंका परम पराक्रम दिखाया। फिर कृष्ण और अर्जुन दोनों ही भीष्मके बाणोंसे क्षत विक्षत शरीर होकर परस्पर सींगोंसे चिन्हित क्रुद्ध हुए बैलोंके समान प्रकाशित हुए। (५०-५२)

हे राजन्! अर्जुन मृदु युद्ध करते थे और भीष्म सदा अपने बाणोंकी वर्षा करते थे। भीष्म दोनों सेनाके बीच तपते हुए सूर्यके समान प्रकाशित होकर पाण्डवोंकी सेनाके मुख्य मुख्य योद्धा-ओंको वध कर रहे थे [illegible]

युगान्तमिव कुर्वाणं भीष्मं यौधिष्ठिरे बले।
नामृष्यत महाबाहुर्माधवः परवीरहा ॥ ५५ ॥
उत्सृज्य रजतप्रख्यान्हयान्पार्थस्य मारिष।
वासुदेवस्ततो योगी प्रचस्कन्द महारथात् ॥ ५६ ॥
अभिदुद्राव भीष्मं स भुजप्रहरणो बली।
प्रतोदपाणिस्तेजस्वी सिंहवद्विनदन्मुहुः ॥ ५७ ॥
दारयन्निव पद्भ्यां स जगतीं जगदीश्वरः।
क्रोधताम्रेक्षणः कृष्णो जिघांसुरमितद्युतिः ॥ ५८ ॥
ग्रसन्निव च चेतांसि तावकानां महाहवे।
दृष्ट्वा माधवमाक्रन्दे भीष्मायोद्यन्तमन्तिके ॥ ५९ ॥
हतो भीष्मो हतो भीष्म इति तत्र वचो महत्।
अश्रूयत महाराज वासुदेवभयात्तदा ॥ ६० ॥
पीतकौशेयसंवीतो मणिश्यामो जनार्दनः।
शुशुभे विद्रवन्भीष्मं विद्युन्माली यथाम्बुदः ॥ ६१ ॥
स सिंह इव मातङ्गं यूथर्षभ इवर्षभम्।

अभिदुद्राव वेगेन विनदन्याद्वर्षभः ॥ ६२ ॥
तमापतन्तं सम्प्रेक्ष्य पुण्डरीकाक्षमाहवे ।
असम्भ्रमं रणे भीष्मो विचकर्ष महद्धनुः ॥ ६३ ॥
उवाच चैव गोविन्दमसम्भ्रान्तेन चेतसा ।
एह्येहि पुण्डरीकाक्ष देवदेव नमोऽस्तु ते ॥ ६४ ॥
मामद्य सात्वतश्रेष्ठ पातयस्व महाहवे ।
त्वया हि देव संग्रामे हतस्याऽपि ममाऽनघ ॥ ६५ ॥
श्रेय एव परं कृष्ण लोके भवति सर्वतः ।
सम्भावितोऽस्मि गोविन्द त्रैलोक्येनाऽद्य संयुगे ॥ ६६ ॥
प्रहरस्व यथेष्टं वै दासोऽस्मि तव चाऽनघ ।
अन्वगेव ततः पार्थः समभिद्रुत्य केशवम् ॥ ६७ ॥
निजग्राह महाबाहुर्बाहुभ्यां परिगृह्य वै ।
निगृह्यमाणः पार्थेन कृष्णो राजीवलोचनः ॥ ६८ ॥
जगामैवैनमादाय वेगेन पुरुषोत्तमः ।
पार्थस्तु विष्टभ्य बलाच्चरणौ परवीरहा ॥ ६९ ॥
निजग्राह हृषीकेशं कथञ्चिद्दशमे पदे ।
तत एवमुवाचाऽऽर्तः क्रोधपर्याकुलेक्षणम् ॥ ७० ॥

और वेगसे दौडे ॥ (५०–६२)

शान्तनुपुत्र भीष्मने कृष्णको क्रुद्ध चित्तसे अपनी ओर आते हुए देखकर अपने बडे धनुषको फेरते हुए निर्भय चित्त होकर कृष्णसे कहा ॥ हे पुण्डरीकाक्ष ! आओ, हे देवोंके देव ! तुमको मेरा नमस्कार है ॥ हे पुरुषोत्तम ! इस महायुद्धमें तुम मेरा वध करो । हे परमात्मन् ! हे कृष्ण ! हे गोविन्द ! यदि तुम मुझे युद्धमें मारोगे, तो लोकके बीचमें मेरा मङ्गल होगा। मैं आज तीनों लोकमें सम्मानित होऊंगा। हे पापरहित ! मैं तुम्हारा दास हूं इच्छाके अनुसार मेरे ऊपर प्रहार करो। (६३–६७)

तिसके अनन्तर महाबाहु अर्जुनने भी यत्नाके सहित कृष्णके पीछे दौडके अपनी दोनों भुजाओंसे उन्हें ग्रहण किया। कमलनयन पुरुषोत्तम कृष्ण अर्जुनसे ग्रहण किये जाने पर भी अर्जुनको सङ्ग लिये हुए ही वेग पूर्वक गमन करने लगे, परन्तु नौ पग गमन करनेके अनन्तर दसवें [illegible] शत्रुनाशन वीर अर्जुनने बल पूर्वक उनके दोनों पैरोंको पकडके किसी प्रकारसे रोक लिया। (६८–७०)

यथा कुरूणां सैन्यानि बभञ्जुर्युधि पाण्डवाः ॥ ७८ ॥
तथा पाण्डवसैन्यानि बभञ्ज युधि ते पिता ।
हतविद्रुतसैन्यास्तु निरुत्साहा विचेतसः ॥ ७९ ॥
निरीक्षितुं न शेकुस्ते भीष्ममप्रतिमं रणे ।
मध्यङ्गतमिवाऽऽदित्यं प्रतपन्तं स्वतेजसा ॥ ८० ॥
ते वध्यमाना भीष्मेण शतशोऽथ सहस्रशः ।
कुर्वाणं समरे कर्माण्यतिमानुषविक्रमम् ॥ ८१ ॥
वीक्षाञ्चक्रुर्महाराज पाण्डवा भयपीडिताः ।
तथा पाण्डवसैन्यानि द्राव्यमाणानि भारत ॥ ८२ ॥
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त गावः पङ्कगता इव ।
पिपीलिका इव क्षुण्णा दुर्बला बलिना रणे ॥ ८३ ॥
महारथं भारतदुष्प्रधर्षं शरौघिणं प्रतपन्तं नरेन्द्रान् ।
भीष्मं न शेकुः प्रतिवीक्षितुं ते शरार्चिषं सूर्यमिवाऽऽतपन्तम् ॥८४॥
विमृद्नतस्तस्य तु पाण्डुसेनामस्तं जगामाऽथ सहस्ररश्मिः ।

करता है, वैसे ही भीष्म पितामह अपने तीक्ष्ण बाणोंसे योद्धाओंके प्राण हरण करने लगे (७४-७८)

पाण्डव लोग जिस भांतिसे कुरुसेनाको तितर बितर करते थे, भीष्म पितामह भी उस ही भांतिसे पाण्डवोंकी सेनाको रणभूमिमें भगाने लगे। पाण्डवोंकी सेना भीष्मके बाणोंसे विकल और पीडित होकर इस प्रकारसे उत्साहरहित होके युद्धभूमिमें भागी, कि अत्यन्त पराक्रमी भीष्म पितामहकी ओर पीठ फिर कर देखनेमें भी समर्थ न हुई। (७८-८१)

भीष्मके बाणोंसे हाथी तथा मनुष्य पीडित और आर्त होकर सब शरीर उनको दोपहरके सूर्यके समान तेजसे जलते हुए देखने लगे। हे भारत! पाण्डवोंकी सम्पूर्ण सेनाके वीरोंने भीष्मके बाणोंसे तितर बितर होकर कीचडमें पडे हुए गौओंके समूहकी भांति किसीको भी अपनी रक्षा करनेवाला न देखा। (८०-८३)

शस्त्रोंसे युक्त अत्यन्त प्रचण्ड महारथ भीष्मरूपी अग्नि बाणरूपी शिखाके सहित सूर्यके समान प्रज्वलित होकर राजाओंको भस्म करने लगा; कोई उनकी ओर देखनेमें भी समर्थ नहीं हुआ। इसी प्रकारसे जब वह पाण्डवोंकी सेनाका नाश कर रहे थे, तब सहस्र किरणवाले भगवान सूर्य अस्त होने

ततो बलानां श्रमकर्शितानां मनोऽवहारं प्रति सम्बभूव ॥८५॥ [४८८६]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि नवमदिवसयुद्धसमाप्तौ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

सञ्जय उवाच— युध्यतामेव तेषां तु भास्करेऽस्तमुपागते।
सन्ध्या समभवद्घोरा नापश्याम ततो रणम् ॥ १ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा सन्ध्यां सन्दृश्य भारत।
वध्यमानं च भीष्मेण त्यक्तास्त्रं भयविह्वलम् ॥ २ ॥
स्वसैन्यं च परावृत्तं पलायनपरायणम्।
भीष्मं च युधि संरब्धं पीडयन्तं महारथम् ॥ ३ ॥
सोमकांश्च जितान्दृष्ट्वा निरुत्साहान्महारथान्।
चिन्तयित्वा ततो राजा अवहारमरोचयत् ॥ ४ ॥
ततोऽवहारं सैन्यानां चक्रे राजा युधिष्ठिरः।
तथैव तव सैन्यानामवहारो ह्यभूत्तदा ॥ ५ ॥
ततोऽवहारं सैन्यानां कृत्वा तत्र महारथाः।
न्यविशन्त कुरुश्रेष्ठ संग्रामे क्षतविक्षताः ॥ ६ ॥
भीष्मस्य समरे कर्म चिन्तयानास्तु पाण्डवाः।

लगे; अनन्तर संग्राममें थके हुए सेनाके पुरुषोंका चित्त युद्धसे निवृत्त होनेके निमित्त व्याकुल होने लगा॥ (८४-८५)

भीष्मपर्वमें एकसौ छः अध्याय समाप्त। [४८८६]

भीष्मपर्वमें एकसौ सात अध्याय।

सञ्जय बोले, हे भारत! अनन्तर युद्ध करते करते सूर्यके अस्त होनेपर महा घोर सन्ध्याका समय उपस्थित हुआ; तब उस समय युद्धमें कुछ भी नहीं सूझ पड़ता था। राजा युधिष्ठिरने सन्ध्याके समय अपनी सेनाको भीष्म पितामहके बाणोंसे पीडित, भयसे विह्वल और युद्धसे निवृत्त होकर सेनाको पलायनपरायण और त्यागकर भागी हुई देख तथा संग्राममें भीष्मको क्रुद्ध होकर पीडित करते और सोमकवंशीय योद्धाओंको पराजित तथा उत्साहरहित देखकर, अत्यन्त ही चिन्ता करके अपनी सेनाको युद्धसे निवृत्त होनेके निमित्त आज्ञा दी॥ (१-४)

राजा युधिष्ठिरने जब युद्धसे अपनी सेनाको निवृत्त किया, तब तुम्हारी सेना भी संग्रामसे निवृत्त हुई। हे भारत! महारथ योद्धाओंने क्षतविक्षत शरीरसे युक्त सम्पूर्ण सेनाको युद्धसे निवृत्त करके अपने शिविरमें प्रवेश किया। पाण्डव लोग युद्धमें भीष्मके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर उनके युद्धके कार्योंकी चिन्ता करने लगे, उस समयमें यद्

नाऽलभन्त तदा शान्तिं भीष्मबाणप्रपीडिताः ॥ ७ ॥
भीष्मोऽपि समरे जित्वा पाण्डवान्सहसृञ्जयान् ।
पूज्यमानस्तव सुतैर्वन्द्यमानश्च भारत ॥ ८ ॥
न्यविशत्कुरुभिः सार्धं हृष्टरूपैः समन्ततः ।
ततो रात्रिः समभवत्सर्वभूतप्रमोहिनी ॥ ९ ॥
तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे पाण्डवा वृष्णिभिः सह ।
सृञ्जयाश्च दुराधर्षा मन्त्राय समुपाविशन् ॥ १० ॥
आत्मनिःश्रेयसं सर्वे प्राप्तकालं महाबलाः
मन्त्रयामासुरव्यग्रा मन्त्रनिश्चयकोविदाः ॥ ११ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा मन्त्रयित्वा चिरं नृप ।
वासुदेवं समुद्वीक्ष्य वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १२ ॥
कृष्ण पश्य महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
गजं नलवनानीव विमृद्नन्तं बलं मम ॥ १३ ॥
न चैवैनं महात्मानमुत्सहामो निरीक्षितुम् ।
लेलिह्यमानं सैन्येषु प्रवृद्धमिव पावकम् ॥ १४ ॥
यथा घोरो महानागस्तक्षको वै विषोल्बणः ।

लोग शान्ति लाभ न कर सके ॥ (५-७)

हे भारत ! भीष्म पितामहने भी सृञ्जयोंके सहित पाण्डवोंको पराजित करके तुम्हारे पुत्रोंसे वन्दित और पूजित होकर चारों ओरसे प्रसन्नचित्त और हर्षयुक्त कुरुसेनाके सहित शिबिरमें प्रवेश किया। तिसके अनन्तर सब प्राणियोंको मोहित करनेवाली रात्रि उपस्थित हुई ॥ उस महा घोर रात्रिके समय बुद्धिमान पाण्डव लोग सृञ्जयों और वृष्णिवंशियोंके सहित विचार करनेको तत्पर हुए। (८—१०)

मन्त्रकार्यको जाननेवाले वह सब महाबलवान पुरुष एकाग्रचित्त होकर समयके अनुसार अपने कल्याणके निमित्त विचार करने लगे ॥ अनन्तर राजा युधिष्ठिर बहुत देरतक विचार करके कृष्णकी ओर देखकर यह वचन बोले, हे कृष्ण! तुमने देखा, अत्यन्त पराक्रमी भीष्म मेरी सेनाको इस प्रकारसे नाश करते हैं, जैसे हाथी कमलके वनको नाश कर देता है ॥ उन महा तेजस्वी महात्मा भीष्म पितामहको और हमलोग देखनेमें भी समर्थ नहीं हो सकते ॥ (११-१४)

रणभूमिमें प्रतापवान भीष्म पिता मह तीक्ष्ण शस्त्रोंको धारण करके महा

ततो बलानां श्रमकर्शितानां मनोऽवहारं प्रति सम्बभूव ॥८५॥ [४८८६]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि नवमदिवसयुद्धसमाप्तौ षडधिकशततमोऽध्यायः ॥१०६॥

सञ्जय उवाच— युध्यतामेव तेषां तु भास्करेऽस्तमुपागते ।
सन्ध्या समभवद्घोरा नाऽपश्याम ततो रणम् ॥ १ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा सन्ध्यां सन्दृश्य भारत ।
वध्यमानं च भीष्मेण त्यक्तास्त्रं भयविह्वलम् ॥ २ ॥
स्वसैन्यं च परावृत्तं पलायनपरायणम् ।
भीष्मं च युधि संरब्धं पीडयन्तं महारथम् ॥ ३ ॥
सोमकांश्च जितान्दृष्ट्वा निरुत्साहान्महारथान् ।
चिन्तयित्वा ततो राजा अवहारमरोचयत् ॥ ४ ॥
ततोऽवहारं सैन्यानां चक्रे राजा युधिष्ठिरः ।
तथैव तव सैन्यानामवहारो ह्यभूत्तदा ॥ ५ ॥
ततोऽवहारं सैन्यानां कृत्वा तत्र महारथाः ।
न्यविशन्त कुरुश्रेष्ठ संग्रामे क्षतविक्षताः ॥ ६ ॥
भीष्मस्य समरे कर्म चिन्तयानास्तु पाण्डवाः ।

लगे; अनन्तर संग्राममें थके हुए सेनाके पुरुषोंका चित्त युद्धसे निवृत्त होनेके निमित्त व्याकुल होने लगा॥ (८४-८५)

[भीष्मवधपर्वमें [illegible] अध्याय समाप्त। [illegible]८६]

भीष्मवधपर्वमें [illegible] अध्याय

सञ्जय बोले, हे भारत! अनन्तर युद्ध करते करते सूर्यके अस्त होनेपर महा घोर सन्ध्याका समय उपस्थित हुआ; तब उस समय युद्धभूमि कुछ भी नहीं [illegible] था। राजा युधिष्ठिरने सन्ध्याके समय अपनी सेनाको भीष्म पितामहके बाणोंसे [illegible] विह्वल और युद्धसे [illegible] होकर [illegible] और [illegible] भीष्मको क्रुद्ध होकर पीडित करते और सोमकवंशीय योद्धाओंको पराजित तथा उत्साहरहित देखकर, अत्यन्त ही चिन्ता करके अपनी सेनाको युद्धसे निवृत्त होनेके निमित्त आज्ञा दी ॥ (१-४)

राजा युधिष्ठिरने जब युद्धसे अपनी सेनाको निवृत्त किया, तब तुम्हारी सेना भी संग्रामसे निवृत्त हुई। हे भारत! महारथ योद्धाओंने क्षतविक्षत शरीरसे युक्त सम्पूर्ण सेनाको युद्धसे निवृत्त करके अपने शिविरोंमें प्रवेश किया। पाण्डव लोग युद्धमें भीष्मके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर उनके युद्धके कार्योंकी चिन्ता करने लगे, उस समय [illegible]

नाऽलभन्त तदा शान्तिं भीष्मबाणप्रपीडिताः ॥७॥
भीष्मोऽपि समरे जित्वा पाण्डवान्सहसृञ्जयान् ।
पूज्यमानस्तव सुतैर्वन्द्यमानश्च भारत ॥ ८ ॥
न्यविशत्कुरुभिः सार्धं हृष्टरूपैः समन्ततः ।
ततो रात्रिः समभवत्सर्वभूतप्रमोहिनी ॥ ९ ॥
तस्मिन्रात्रिमुखे घोरे पाण्डवा वृष्णिभिः सह ।
सृञ्जयाश्च दुराधर्षा मन्त्राय समुपाविशन् ॥ १० ॥
आत्मनिःश्रेयसं सर्वे प्राप्तकालं महाबलाः
मन्त्रयामासुरव्यग्रा मन्त्रनिश्चयकोविदाः ॥ ११ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा मन्त्रयित्वा चिरं नृप ।
वासुदेवं समुद्वीक्ष्य वचनं चेदमाददे ॥ १२ ॥
कृष्ण पश्य महात्मानं भीष्मं भीमपराक्रमम् ।
गजं नलवनानीव विमृद्नन्तं बलं मम ॥ १३ ॥
न चैवैनं महात्मानमुत्सहामो निरीक्षितुम् ।
लेलिह्यमानं सैन्येषु प्रवृद्धमिव पावकम् ॥ १४ ॥
यथा घोरो महानागस्तक्षको वै विषोल्बणः ।

लोग शान्ति लाभ न कर सके ॥ (५-७)

हे भारत ! भीष्म पितामहने भी सृञ्जयोंके सहित पाण्डवोंको पराजित करके तुम्हारे पुत्रोंसे वन्दित और पूजित होकर चारों ओरसे प्रसन्नचित्त और हर्षयुक्त कुरुसेनाके सहित शिविरमें प्रवेश किया। तिसके अनन्तर सब प्राणियोंको मोहित करनेवाली रात्रि उपस्थित हुई ॥ उस महा घोर रात्रिके समय द्युतिमान पाण्डव लोग सृञ्जयों और वृष्णिवंशियोंके सहित विचार करनेके वास्ते तत्पर हुए। (८—१०)

मन्त्रणाको जाननेवाले सब महाबलवान पुरुष एकाग्रचित्त होकर समयके अनुसार अपने कल्याणके निमित्त विचार करने लगे ॥ अनन्तर राजा युधिष्ठिर बहुत देरतक विचार करके कृष्णकी ओर देखकर यह वचन बोले, हे कृष्ण! तुमने देखा, अत्यन्त पराक्रमी भीष्म मेरी सेनाका इस प्रकारसे नाश करते हैं, जैसे हाथी नरसलके वनका नाश कर देता है ॥ उस महा तेजस्वी महात्मा भीष्म पितामहको और हमलोग देखनेमें भी समर्थ नहीं हो सकते। (११-१४)

रणभूमिमें प्रतापवान भीष्म पितामह तीक्ष्ण बाणोंको धारण करके सदा

तथा भीष्मो रणे क्रुद्धस्तीक्ष्णशस्त्रः प्रतापवान्॥ १५॥
गृहीतचापः समरे प्रमुञ्चन्निशिताञ्छरान्।
शक्यो जेतुं यमः क्रुद्धो वज्रपाणिश्च देवराट्॥ १६॥
वरुणः पाशभृच्चाऽपि सगदो वा धनेश्वरः।
न तु भीष्मः सुसंक्रुद्धः शक्यो जेतुं महाहवे॥ १७॥
सोऽहमेवं गते कृष्ण निमग्नः शोकसागरे।
आत्मनो बुद्धिदौर्बल्याद्भीष्ममासाद्य संयुगे॥ १८॥
वनं यास्यामि दुर्धर्ष श्रेयो वै तत्र मे गतम्।
न युद्धं रोचते कृष्ण हन्ति भीष्मो हि नः सदा॥१९॥
यथा प्रज्वलितं वह्निं पतङ्गः समभिद्रवन्।
एकतो मृत्युमभ्येति तथाऽहं भीष्ममीयिवान्॥ २०॥
क्षयं नीतोऽस्मि वार्ष्णेय राज्यहेतोः पराक्रमी।
भ्रातरश्चैव मे शूराः सायकैर्भृशपीडिताः॥ २१॥
मत्कृते भ्रातृसौहार्दाद्राज्यभ्रष्टा वनङ्गताः।
परिक्लिष्टा तथा कृष्णा मत्कृते मधुसूदन॥ २२॥

विषधर तक्षक सर्पके समान क्रुद्ध होकर धनुष ग्रहण किये हुए अपने तीक्ष्ण बाणोंको मेरी सेनापर बर्षाते रहते हैं। क्रुद्ध हुए दण्डधारी यमराज, हाथमें वज्र लिये हुए इन्द्र, पाशको ग्रहण करनेवाले वरुण और गदाधारी कुबेरको भी युद्धमें जय किया जा सकता है, परन्तु इस महा युद्धमें क्रुद्ध भीष्मको पराजित नहीं किया जा सकता। (१५-१७)

हे कृष्ण! इससे मैं अपनी बुद्धिकी निर्बलताके कारण युद्धमें भीष्मके निमित्त शोकरूपी समुद्रमें डूब रहा हूं; भीष्म सदा ही, हम लोगोंको पीडित करते हुए हमारी सेनाका नाश करते हैं, अब मेरी युद्ध करनेके निमित्त इच्छा नहीं होती है, इससे अब मैं वनको जाऊंगा, वन वास करना ही मेरे निमित्त कल्याणकारी है॥ जैसे पतङ्ग जलती हुई अग्निमें प्रवेश करके केवल अपने शरीरहीका नाश कर देता है, तैसे ही मैंने भी भीष्म पितामहको युद्धमें पाया है॥ (१८-२०)

हे यदुकुल भूषण! मैं राज्य प्राप्तिके निमित्त पराक्रमके कार्यमें प्रवृत्त होकर अपना नाश कर रहा हूं, मेरे शूरवीर बलवान भ्राता भीष्मके बाणोंसे अत्यन्त ही पीडित हो रहे हैं; वे सब भ्रातृस्नेहके वशमें होकर मेरेही निमित्त राज्यसे भ्रष्ट होकर वनवासी हुए थे। हे मधु

जीवितं बहु मन्येऽहं जीवितं ह्यद्य दुर्लभम् ।
जीवितस्याऽद्य शेषेण चरिष्ये धर्ममुत्तमम् ॥ २३ ॥
यदि तेऽहमनुग्राह्यो भ्रातृभिः सह केशव ।
स्वधर्मस्याऽविरोधेन हितं व्याहर केशव ॥ २४ ॥
एवं श्रुत्वा वचस्तस्य कारुण्याद्बहुविस्तरम् ।
प्रत्युवाच ततः कृष्णः सान्त्वयानो युधिष्ठिरम् ॥ २५ ॥
धर्मपुत्र विषादं त्वं मा कृथाः सत्यसङ्गर ।
यस्य ते भ्रातरः शूरा दुर्जयाः शत्रुसूदनाः ॥ २६ ॥
अर्जुनो भीमसेनश्च वाय्वग्निसमतेजसौ ।
माद्रीपुत्रौ च विक्रान्तौ त्रिदशानामिवेश्वरौ ॥ २७ ॥
मां वा नियुङ्क्ष्व सौहार्दाद्योत्स्ये भीष्मेण पाण्डव ।
त्वत्प्रयुक्तो महाराज किं न कुर्यां महाहवे ॥ २८ ॥
हनिष्यामि रणे भीष्ममाहूय पुरुषर्षभम् ।
पश्यतां धार्तराष्ट्राणां यदि नेच्छति फाल्गुनः ॥ २९ ॥
यदि भीष्मे हते वीरे जयं पश्यसि पाण्डव ।

सूदन ! द्रौपदी मेरे ही कारण इतना क्लेश पा रही है ॥ इससे जीवनको श्रेष्ठ और दुर्लभ समझता हूं, अब इस बाकी जीवनकी अवस्थामें कल्याणके वास्ते धर्माचरण करूंगा ॥ हे माधव ! यदि मैं और मेरे भाई तुम्हारे अनुग्रहके पात्र होवें, तो तुम जिससे हम लोगोंके धर्म में विरोध न होवे, ऐसा हित कर्म वर्णन करो, मैं उसका ही अनुष्ठान करूंगा ॥ (२१-२४)

श्रीकृष्णने इसी प्रकार राजा युधिष्ठिरके बहुतसे वचनोंको विस्तारपूर्वक सुनके करुणायुक्त वचनोंसे उन्हें धीरज देकर यह वचन कहा ॥ हे सत्य प्रतिज्ञ धर्मपुत्र युधिष्ठिर ! तुम कुछ भी शोक मत करो. तुम्हारे सब भाई पराक्रमसे युक्त, शत्रुओंका नाश करने वाले और युद्धमें दुर्जय हैं ॥ अर्जुन और भीमसेन वायु और अग्निके समान तेजस्वी हैं । माद्रीपुत्र नकुल सहदेव ऐसे पराक्रमी हैं, कि वे लोग प्राय देवताओंके ऊपरभी प्रभुता कर सकते हैं ॥ (२५-२७)

हे पाण्डुनन्दन ! मेरे संग जो तुम्हारा सम्बन्ध वा सुहृदता है, उसहीके निमित्त तुम मुझे नियुक्त करो, तो मैं स्वयं भीष्मके सहित युद्ध करूंगा । महाराज ! यदि तुम मुझको नियुक्त करोगे तो तुम्हारे निमित्त मैं क्या नहीं कर सकता?

हन्ताऽस्म्येकरथेनाऽद्य कुरुवृद्धं पितामहम्   ॥ ३० ॥
पश्य मे विक्रमं राजन्महेन्द्रस्येव संयुगे ।
विमुञ्चन्तं महास्त्राणि पातयिष्यामि तं रथात्॥ ३१ ॥
यः शत्रुः पाण्डुपुत्राणां मच्छत्रुः स न संशयः ।
मदर्था भवदीया ये ये मदीयास्तवैव ते   ॥ ३२ ॥
तव भ्राता मम सखा सम्बन्धी शिष्य एव च ।
मांसान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थे महीपते ॥ ३३ ॥
एष चापि नरव्याघ्रो मत्कृते जीवितं त्यजेत् ।
एष नः समयस्तात तारयेम परस्परम्   ॥ ३४ ॥
स मां नियुंक्ष्व राजेन्द्र यथा योद्धा भवाम्यहम् ।
प्रतिज्ञातमुपप्लव्ये यत्तत्पार्थेन पूर्वतः   ॥ ३५ ॥
घातयिष्यामि गाङ्गेयमिति लोकस्य सन्निधौ ।
परिरक्ष्यमिदं तावद्वचः पार्थस्य धीमतः   ॥ ३६ ॥
अनुज्ञातं तु पार्थेन मया कार्यं न संशयः ।
अथवा फाल्गुनस्यैष भारः परिमितो रणे   ॥ ३७ ॥

यदि अर्जुन भीष्मके वध करनेकी इच्छा न करेंगे, तो मैं कुरुराजकी सब सेनाके सामने ही पुरुषोंमें श्रेष्ठ भीष्मको युद्धमें आवाहन करके अपने अस्त्रोंके तेजसे रथसे पृथ्वीपर गिरा दूंगा।(२८-३१)

जो पुरुष पाण्डवोंका शत्रु है वह मेरा भी शत्रु है; जो मेरा शत्रु है, वह तुम्हारा भी वैरी है। हे राजन्! तुम्हारे भाई अर्जुनके संग मेरा सम्बन्ध है; विशेष करके वह मेरे सखा और शिष्य हैं, मैं अर्जुनके निमित्त अपने शरीरसे मांस भी काटके दे सकता हूं। पुरुषसिंह अर्जुन भी मेरे निमित्त प्राण त्याग कर सकते हैं। हम दोनोंकी यह प्रतिज्ञा है, कि हम दोनों आपसमें एक दूसरेको परित्राण करेंगे॥ (३२-३४)

हे राजन्! इससे जिस प्रकारसे मैं युद्ध कर सकूंगा, तुम उस ही उपायसे मुझे युद्धमें नियुक्त करो। परन्तु विराट नगरमें सब राजाओंके बीच अर्जुनने यह प्रतिज्ञा की थी, कि "मैं भीष्मका वध करूंगा।" बुद्धिमान अर्जुन उस वचनकी रक्षा करनेके निमित्त यदि मुझसे अनुरोध करेंगे, तो मैं अवश्य ही उसका पालन करूंगा, इसमें कुछ सन्देह नहीं है। अथवा अर्जुन ही युद्धमें शत्रुनाशन भीष्मका वध करेंगे, उनके लिये यह भार कुछ कठिन नहीं है; वे वि

स हनिष्यति संग्रामे भीष्मं परपुरञ्जयम् ।
अशक्यमपि कुर्याद्धि रणे पार्थः समुद्यतः ॥ ३८ ॥
त्रिदशान्वा समुद्युक्तान्सहितान्दैत्यदानवैः ।
निहन्यादर्जुनः संख्ये किमु भीष्मं नराधिप ॥ ३९ ॥
विपरीतो महावीर्यो गतसत्त्वोऽल्पजीवनः ।
भीष्मः शान्तनवो नूनं कर्तव्यं नाऽवबुध्यते ॥ ४० ॥

युधिष्ठिर उवाच—एवमेतन्महाबाहो यथा वदसि माधव ।
सर्वे ह्येतेन पर्याप्तास्तव वेगविधारणे ॥ ४१ ॥
नियतं समवाप्स्यामि सर्वमेतद्यथेप्सितम् ।
यस्य मे पुरुषव्याघ्र भवान्पक्षे व्यवस्थितः ॥ ४२ ॥
सेन्द्रानपि रणे देवाञ्जयेयं जयतां वर ।
त्वया नाथेन गोविन्द किमु भीष्मं महारथम् ॥ ४३ ॥
न तु त्वामनृतं कर्तुमुत्सहे स्वात्मगौरवात् ।
अयुध्यमानः साहाय्यं यथोक्तं कुरु माधव ॥ ४४ ॥

वह युद्धके निमित्त तयार होने पर दूसरे पुरुषोंसे न होने योग्य कर्मको भी कर सकते है ॥ (३५--३८)

अर्जुन युद्धमें दैत्य दानवोंके सहित सम्पूर्ण देवताओंको भी नष्ट कर सकते है, तब जो भीष्मको युद्धमे वध करेंगे उसकी बात ही कौनसी है ? महा बल-वान् भीष्म जो तुम्हारा अनिष्ट करनेमें प्रवृत्त होरहे है, इससे उलटी बुद्धिसे युक्त, पराक्रम हीन और अल्पबुद्धि होगये है इस ही निमित्त वह कर्तव्य कर्मको नहीं समझ सकते है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। (३९–४०)

राजा युधिष्ठिर बोले, हे महाबाहो ! हे माधव ! तुम जो कुछ वचन कहते हो, वह सब ठीक है। तुम पुरुषसिंह हो, जब तुम ही मेरी ओर हो, तब अभिलाषाके अनुसार सम्पूर्ण विषय ही मुझे सदा प्राप्त होवेंगे। हे विजयदाता गोविन्द ! जब मैंने तुमको अपना सहाय पाया है, तब इन्द्रके सहित सब देवताओंको भी जीत सकता हूं; तिस पर महारथ भीष्म तो तुच्छ ही है ? परन्तु हे कृष्ण ! तुमने कहा था, कि 'मैं युद्ध नहीं करूंगा' इससे अब मैं तुमको निज स्वार्थके निमित्त युद्धमें नियुक्त करके मिथ्यावादी करने वाले नहीं बनाना चाहता हूं, इससे तुम युद्ध न करके केवल सलाहसे मेरी सहायता करो। (४१-४४)

समयस्तु कृतः कश्चिन्मम भीष्मेण संयुगे।
मन्त्रयिष्ये तवाऽर्थाय न तु योत्स्ये कथञ्चन ॥ ४५ ॥
दुर्योधनार्थे योत्स्यामि सत्यमेतदिति प्रभो।
स हि राज्यस्य मे दाता मन्त्रस्यैव च माधव ॥ ४६ ॥
तस्माद्देवव्रतं भूयो वधोपायार्थमात्मनः।
भवता सहिताः सर्वे प्रयाम मधुसूदन ॥ ४७ ॥
तद्वयं सहिता गत्वा भीष्ममाशु नरोत्तमम्।
न चिरात्सर्वे वार्ष्णेय मन्त्रं पृच्छाम कौरवम् ॥ ४८ ॥
स वक्ष्यति हितं वाक्यं सत्यमस्माञ्जनार्दन।
यथा च वक्ष्यते कृष्ण तथा कर्ताऽस्मि संयुगे ॥ ४९ ॥
स नो जयस्य दाता स्यान्मन्त्रस्य च दृढव्रतः।
बालाः पित्रा विहीनाश्च तेन संवर्धिता वयम् ॥ ५० ॥
तं चेत्पितामहं वृद्धं हन्तुमिच्छामि माधव।
पितुः पितरमिष्टं च धिगस्तु क्षत्रजीविकाम् ॥ ५१ ॥

सञ्जय उवाच— ततोऽब्रवीन्महाराज वार्ष्णेयः कुरुनन्दनम्।

भीष्मने मेरे निकट युद्ध विषयक कार्यको एक प्रकारसे अङ्गीकार किया है, कि तुम्हारे हितके निमित्त मैं तुम्हें उत्तम मन्त्रणा प्रदान करूंगा; परन्तु तुम्हारी ओरसे किसी प्रकारसे भी युद्ध न करूंगा, यह तुम मेरे वचनको सत्य जानो। हे मधुसूदन! भीष्मके वधका उपाय पूछनेके वास्ते चलो हम सब लोग फिर उनके समीप गमन करें। हे सर्वज्ञ स्वामी वृष्णिनन्दन कृष्ण! चलो हम सब के हैं [illegible] कुरुश्रेष्ठ भीष्म पितामहके निकट चलकर उनसे विजयके निमित्त [illegible] को [illegible] निश्चय [illegible] मुझसे जैसा कहेंगे, मैं वैसा ही उपाय करूंगा। (४५-४९)

हे कृष्ण! जब हम लोग बालक अवस्थामें पितृहीन हुए थे, तब उन्होंने ही हमको लालन पालन करके बड़ा किया था। वह देवव्रती पितामह अवश्य ही उत्तम युक्ति देकर हम लोगोंके विजयके निमित्त उपाय बतावेंगे, हा! पिताके भी पिता बलवान् और प्यारे पितामहको भी मैं वध करनेकी इच्छा करता हूं, इस क्षत्रियोंकी जीविकाको धिक्कार है। (५०-५१)

सञ्जय बोले, महाराज! अनन्तर वृष्णिनन्दन कृष्ण कुरुनन्दन युधिष्ठिर

रोचते मे महाप्राज्ञ राजेन्द्र तव भाषितम् ॥ ५२ ॥
देवव्रतः कृती भीष्मः प्रेक्षितेनाऽपि निर्दहेत् ।
गम्यतां स वधोपायं प्रष्टुं सागरगासुतः ॥ ५३ ॥
वक्तुमर्हति सत्यं स त्वया पृष्टो विशेषतः ।
ते वयं तत्र गच्छामः प्रष्टुं कुरुपितामहम् ॥ ५४ ॥
गत्वा शान्तनवं वृद्धं मन्त्रं पृच्छाम भारत ।
स नो दास्यति मन्त्रं यं तेन योत्स्यामहे परान् ॥ ५५ ॥
एवमामन्त्र्य ते वीराः पाण्डवाः पाण्डुपूर्वजम् ।
जग्मुस्ते सहिताः सर्वे वासुदेवश्च वीर्यवान् ॥ ५६ ॥
विमुक्तशस्त्रकवचा भीष्मस्य सदनं प्रति ।
प्रविश्य च तदा भीष्मं शिरोभिः प्रणिपेदिरे ॥ ५७ ॥
पूजयन्तो महाराज पाण्डवा भरतर्षभम् ।
प्रणम्य शिरसा चैनं भीष्मं शरणमभ्ययुः ॥ ५८ ॥
तानुवाच महाबाहुर्भीष्मः कुरुपितामहः ।
स्वागतं तव वार्ष्णेय स्वागतं ते धनञ्जय ॥ ५९ ॥

बोले, हे महाबुद्धिमान् राजा युधिष्ठिर ! तुमने जो वचन कहा, उसमें मेरी भी सम्मति है । गङ्गानन्दन पराक्रमी और देवव्रती भीष्म शत्रुओंको युद्धमें नेत्रसे देखकर ही भस्म कर सकते हैं इससे उनके वधका उपाय पूछनेके वास्ते तुम उनके समीप गमन करो । जब तुम उनसे पूछोगे, तो वह यथार्थ ही उत्तर देंगे, इससे चलो हम लोग उनसे ही परामर्श करनेके निमित्त उनके निकट गमन करें. हम सब भी उन शान्तनु-नन्दन वृद्ध भीष्म के निकट चलकर उनसे परामर्श करेंगे वहां पर उन्होंने जो हम लोगोंको जिस प्रकारसे परामर्श देंगे. उसहीके अनुसार हमलोग शत्रुओं से युद्ध करेंगे । (५२–५५)

हे राजन ! बलवान पाण्डव और पराक्रमी कृष्णने ऐसा ही विचार करके शस्त्र और कवचको उतारके सबने मिलके भीष्मके शिविरमें जानेके निमित्त प्रस्थान किया । वहां पहुंचके शिविरमें प्रवेश कर सिर झुका कर भीष्म पितामहको प्रणाम किया । हे महाराज ! पाण्डवलोग कुरुश्रेष्ठ पितामह भीष्मको सिर झुका कर प्रणाम करके उनकी यथा उचित रीतिसे पूजा करते हुए उनके शरणागत हुए । ५६–५८ ।

महाबाहु भीष्म पितामह उन सबका

स्वागतं धर्मपुत्राय भीमाय यमयोस्तथा ।
किं वा कार्यं करोम्यद्य युष्माकं प्रीतिवर्धनम् ॥ ६० ॥
सर्वात्मनाऽपि कर्तास्मि यदपि स्यात्सुदुष्करम् ।
तथा ब्रुवाणं गाङ्गेयं प्रीतियुक्त पुनः पुनः ॥ ६१ ॥
उवाच राजा दीनात्मा प्रीतियुक्तमिदं वचः ।
कथं जयेम सर्वज्ञ कथं राज्यं लभेमहि ॥ ६२ ॥
प्रजानां संशयो न स्यात्कथं तन्मे वद प्रभो ।
भवान्हि नो वधोपायं ब्रवीतु स्वयमात्मनः ॥ ६३ ॥
भवन्तं समरे वीर विषहेम कथं वयम् ।
न हि ते सूक्ष्ममप्यस्ति रन्ध्रं कुरुपितामह ॥ ६४ ॥
मण्डलेनैव धनुषा दृश्यसे संयुगे सदा ।
आददानं सन्दधानं विकर्षन्तं धनुर्न च ॥ ६५ ॥
पश्यामस्त्वां महाबाहो रथे सूर्यमिवाऽपरम् ।
रथाश्वनरनागानां हन्तारं परवीरहन् ॥ ६६ ॥
कोऽवर्वांस्समरे जेतुं त्वां पुमान्भरतर्षभ ।
वर्षता शरवर्षाणि संयुगे वैशसं कृतम् ॥ ६७ ॥

क्षयं नीता हि पृतना संयुगे महती मम।
यथा युधि जयेम त्वां यथा राज्यं भृशं मम ॥ ६८ ॥
मम सैन्यस्य च क्षेमं तन्मे ब्रूहि पितामह।
ततोऽब्रवीच्छान्तनवः पाण्डवान्पाण्डुपूर्वजः ॥ ६९ ॥
न कथञ्चन कौन्तेय मयि जीवति संयुगे।
जयो भवति सर्वज्ञ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ७० ॥
निर्जिते मयि युद्धेन रणे जेष्यथ पाण्डवाः।
क्षिप्रं मयि प्रहरध्वं यदीच्छथ रणे जयम् ॥ ७१ ॥
अनुजानामि वः पार्थाः प्रहरध्वं यथासुखम्।
एवं हि सुकृतं मन्ये भवतां विदितो ह्यहम् ॥ ७२ ॥
हते मयि हतं सर्वं तस्मादेवं विधीयताम्।
युधिष्ठिर उवाच—ब्रूहि तस्मादुपायं नो यथा युद्धे जयेमहि ॥ ७३ ॥

हे भरतर्षभ! हे शत्रुओंके नाश करनेवाले, तुम जब रथी, गजपति और घुड़सवारोंका वध करते रहते हो, उस समयमें कौन पुरुष तुम्हें जीतनेका उत्साह कर सकता है? हे पितामह! तुमने युद्धमें अपने बाणोंकी वर्षा करके अनेक पुरुषोंकी हत्या की है, हमारी महासेनाका तुमने बहुत ही क्षय किया है। जो हो, इस समय किस प्रकारसे हमलोग युद्धमें तुम्हें पराजित कर सकेंगे, जिस भांतिसे मुझे राज्य मिले और जैसे मेरी सेनाके पुरुषोंका कल्याण होवे; वही उपाय तुम मेरे निकट वर्णन करो॥ (६५-६९)

हे राजन्! युधिष्ठिरकी बात सुनकर शान्तनुनन्दन भीष्म उनसे बोले, हे धर्मके जाननेवाले कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर! युद्धमें जब तक मैं जीवित हूं तब तक तु-म्हारे विजयकी संभावना नहीं है; तुमसे मैंने यह सत्य वचन कहा है। मेरे पराजित होने पर तुमलोग युद्धमें विजयी हो सकोगे। इससे यदि तुम लोग युद्धमें अपने विजयकी इच्छा करते हो, तो शीघ्र मेरे ऊपर शस्त्रोंका प्रहार करके मेरा वध करो॥ मैं तुम लोगोंको आज्ञा देता हूं, कि तुम सब कोई इच्छाके अनुसार मेरे ऊपर शस्त्रोंका प्रहार करो। मैं जो इस प्रकारसे तुम लोगोंसे विदित हुआ हूं; इसे मैं अपना सुकृत तथा पुण्य समझता हूं। मेरे मारे जानेहीसे सम्पूर्ण कुरुसेना तथा कौरवोंका वध होगा; इससे मैंने जो कुछ वचन कहा, तुम लोग वैसा ही उपाय करो॥ (६९-७३)

राजा युधिष्ठिर बोले युद्धमें जब दण्डधारी यमराजके समान क्रोध युक्त

भवन्तं समरे क्रुद्धं दण्डहस्तमिवाऽन्तकम् ।
शक्यो वज्रधरो जेतुं वरुणोऽथ यमस्तथा ॥ ७४ ॥
न भवान्समरे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
भीष्म उवाच —सत्यमेतन्महाबाहो यथा वदसि पाण्डव ॥ ७५ ॥
नाऽहं जेतुं रणे शक्यः सेन्द्रैरपि सुरासुरैः ।
आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः ॥ ७६ ॥
ततो मां न्यस्तशस्त्रं तु एते हन्युर्महारथाः ।
निक्षिप्तशस्त्रे पतिते विमुक्तकवचध्वजे ॥ ७७ ॥
द्रवमाणे च भीते च तवाऽस्मीति च वादिनि ।
स्त्रियां स्त्रीनामधेये च विकले चैकपुत्रिणि ॥ ७८ ॥
अप्रशस्ते नरे चैव न युद्धं रोचते मम ।
इमं मे शृणु राजेन्द्र सङ्कल्पं पूर्वचिन्तितम् ॥ ७९ ॥
अमङ्गल्यध्वजं दृष्ट्वा न युध्येयं कदाचन ।
य एष द्रौपदो राजंस्तव सैन्ये महारथः ॥ ८० ॥
शिखण्डी समरामर्षी शूरश्च समितिंजयः ।

यथाऽभवच्च स्त्री पूर्वं पश्चात्पुंस्त्वं समागतः ॥ ८१ ॥
जानन्ति च भवन्तोऽपि सर्वमेतद्यथातथम् ।
अर्जुनः समरे शूरः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ ८२ ॥
मामेव विशिखैस्तीक्ष्णैरभिद्रवतु दंशितः ।
अमङ्गल्यध्वजे तस्मिन्स्त्रीपूर्वे च विशेषतः ॥ ८३ ॥
न प्रहर्तुमभीप्सामि गृहीतेषुः कथञ्चन ।
तदन्तरं समासाद्य पाण्डवो मां धनञ्जयः ॥ ८४ ॥
शरैर्घातयतु क्षिप्रं समन्ताद्भरतर्षभ ।
न तं पश्यामि लोकेषु मां हन्याद्यः समुद्यतम् ॥ ८५ ॥
ऋते कृष्णान्महाभागात्पाण्डवाद्वा धनञ्जयात् ।
एष तस्मात्पुरोधाय कञ्चिदन्यं ममाऽग्रतः ॥ ८६ ॥
आत्तशस्त्रो रणे यत्तो गृहीतवरकार्मुकः ।
मां पातयतु बीभत्सुरेवं तव जयो ध्रुवम् ॥ ८७ ॥
एतत्कुरुष्व कौन्तेय यथोक्तं मम सुव्रत ।
संग्रामे धार्तराष्ट्रांश्च हन्याः सर्वान्समागतान ॥ ८८ ॥

शिखण्डी जो तुम्हारी सेनामें स्थित है; वह पहिले कन्या होकर जन्मा, पीछे पुरुष होगया है, इस वृत्तान्तको तुम भी विस्तारपूर्वक जानते हो। (७९-८२)

अर्जुन कवच धारण कर उसी शिखण्डीको आगे खडा करके अपने तीक्ष्ण बाणोंसे मेरा वध करेंगे। उस शिखण्डीके रथकी ध्वजा अमाङ्गलिक है, विशेष करके वह कन्या होके उत्पन्न हुआ था, इससे मैं शस्त्रधारी होकर किसी प्रकारसे भी उसके ऊपर प्रहार करनेकी अभिलाष नहीं करता हूं। हे भरतर्षभ! पाण्डुपुत्र अर्जुन उस शिखण्डीके पीछे खडे होकर चारों ओरसे शीघ्रताके सहित अपने बाणोंसे मेरे ऊपर प्रहार करेंगे। युद्धभूमिमें खडे होने पर कृष्ण और अर्जुनके अतिरिक्त ऐसा कोई भी पुरुष इस पृथ्वीपर नहीं दीख पडता, जो युद्धमें मेरा वध कर सके! (८३-८६)

इससे वह अर्जुन अपने सब अस्त्रोंके सहित गाण्डीव धनुषको ग्रहण करके राजा द्रुपदके पुत्र शिखण्डीको मेरे सम्मुख खडा करके शीघ्रताके सहित मेरा वध करें, ऐसा होनेहीसे निश्चय तुम्हारा विजय होगा। हे कुन्तीपुत्र युधिष्ठिर! मैंने जैसा कहा है, तुम उसीके अनुसार सब कर्म करना ऐसा करनेहीसे तुम सब उपस्थित धार्तराष्ट्रोंको युद्ध-

सञ्जय उवाच— ते तु ज्ञात्वा ततः पार्था जग्मुः स्वशिबिरं प्रति।
अभिवाद्य महात्मानं भीष्मं कुरुपितामहम् ॥ ८९ ॥
तथोक्तवति गाङ्गेये परलोकाय दीक्षिते।
अर्जुनो दुःखसन्तप्तः सव्रीडमिदमब्रवीत् ॥ ९० ॥
गुरुणा कुरुवृद्धेन कृतप्रज्ञेन धीमता।
पितामहेन संग्रामे कथं योद्धाऽस्मि माधव ॥ ९१ ॥
क्रीडता हि मया बाल्ये वासुदेव महामनाः।
पांसुरूषितगात्रेण महात्मा परुषीकृतः ॥ ९२ ॥
यस्याऽहमधिरुह्याऽङ्कं बालः किल गदाग्रज।
तातेत्यवोचं पितरं पितुः पाण्डोर्महात्मनः ॥ ९३ ॥
नाऽहं तातस्तव पितुस्तातोऽस्मि तव भारत।
इति मामब्रवीद्बाल्ये यः स वध्यः कथं मया ॥ ९४ ॥
कामं वध्यतु सैन्यं मे नाऽहं योत्स्ये महात्मना।
जयो वाऽस्तु वधो वा मे कथं वा कृष्ण मन्यसे ॥९५॥

(कथमस्मद्विधःकृष्ण जानन्धर्मं सनातनम् ।
न्यस्तशस्त्रे च वृद्धे च प्रहरेद्धि पितामहे ॥)

वासुदेव उवाच– प्रतिज्ञाय वधं जिष्णो पुरा भीष्मस्य संयुगे ।
क्षत्रधर्मे स्थितः पार्थ कथं नैनं हनिष्यसि ॥ ९६ ॥
पातयैनं रथात्पार्थ क्षत्रियं युद्धदुर्मदम् ।
नाऽहत्वा युधि गाङ्गेयं विजयस्ते भविष्यति ॥ ९७ ॥
दृष्टमेतत्पुरा देवैर्गमिष्यति यमक्षयम् ।
यद् दृष्टं हि पुरा पार्थ तत्तथा न तदन्यथा ॥ ९८ ॥
न हि भीष्मं दुराधर्षं व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ।
त्वदन्यः शक्नुयाद्योद्धुमपि वज्रधरः स्वयम् ॥ ९९ ॥
जहि भीष्मं स्थिरो भूत्वा शृणु चेदं वचो मम ।
यथोवाच पुरा शक्रं महाबुद्धिर्बृहस्पतिः ॥ १०० ॥
ज्यायांसमपि चेद्वृद्धं गुणैरपि समन्वितम् ।
आततायिनमायान्तं हन्याद्घातकमात्मनः ॥ १०१ ॥

(हे कृष्ण! हमारे सरिखा सनातन धर्मको जाननेवाला ही शस्त्रको न चलाने वाले, वृद्ध पितामहके उपर कैसे प्रहार करेगा?)

श्रीकृष्णचन्द्र बोले, हे अर्जुन! तुमने क्षत्रिय धर्मको अवलम्बन करके पहिले यह प्रतिज्ञा की थी, कि मै भीष्मको युद्धमें मारूंगा, इस समय उनको बिना मारे तुम कैसे शान्त रह सकते हो?॥ हे अर्जुन! तुम युद्धदुर्मद गाङ्गेय भीष्मको शीघ्र ही रथसे पृथ्वी पर गिरा दो। भीष्मको बिना मारे युद्धमें तुम्हारी जीत न हो सकेगी। भीष्मकी मृत्यु इसी प्रकारसे होगी, इसका निश्चय देवताओंने पहिलेहीसे कर रक्खा है पहिले समयके जो निश्चय हो चुका है, अवश्य ही सब कार्य उसी रीतिसे होगा, उसमें कुछ भी अन्यथा नहीं हो सकता॥ (९६-९८)

युद्धमें मुंह पसारे हुए यमराजके समान अत्यन्त पराक्रमी भीष्मको मारनेमें तुम्हारे अतिरिक्त और कोई भी समर्थ न होगा. स्वयं वज्रधारी इन्द्र भी इस महा बलवान् भीष्मको युद्धमें नहीं जीत सकेंगे। तुम भीष्मका वध करो इसमें कुछ भी अपने मनमें दुविधा मत उत्पन्न करो। इस विषयमें महाबुद्धिमान् बृहस्पतिने पहिले समयमें जो इन्द्रसे कहा था, वह वचन तुम मुझसे सुनो। अनेक उत्तम गुणोंसे भूषित श्रेष्ठ तथा वृद्ध पुरुष भी यदि आततायी

शाश्वतोऽयं स्थितो धर्मः क्षत्रियाणां धनञ्जय ।
योद्धव्यं रक्षितव्यं च यष्टव्यं चाऽनसूयुभिः ॥ १०२ ॥

अर्जुन उवाच— शिखण्डी निधनं कृष्ण भीष्मस्य भविता ध्रुवम् ।
दृष्ट्वैव हि सदा भीष्मः पाञ्चाल्यं विनिवर्तते ॥ १०३ ॥
ते वयं प्रमुखे तस्य पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
गाङ्गेयं पातयिष्याम उपायेनेति मे मतिः ॥ १०४ ॥
अहमन्यान्महेष्वासान्वारयिष्यामि सायकैः ।
शिखण्ड्यपि युधां श्रेष्ठं भीष्ममेवाऽभियोधयेत् ॥ १०५ ॥
श्रुतं हि कुरुमुख्यस्य नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।
कन्याऽप्येषा पुरा भूत्वा पुरुषः समपद्यत ॥ १०६ ॥
इत्येवं निश्चयं कृत्वा पाण्डवाः सहमाधवाः ।
अनुमान्य महात्मानं प्रययुर्हृष्टमानसाः ॥
शयनानि यथास्वानि भेजिरे पुरुषर्षभाः ॥ १०७ ॥ [४००३]

धृतराष्ट्र उवाच– कथं शिखण्डी गाङ्गेयमभ्यवर्तत संयुगे।
पाण्डवांश्च कथं भीष्मस्तन्ममाऽऽचक्ष्व सञ्जय ॥ १ ॥

सञ्जय उवाच— ततस्ते पाण्डवाः सर्वे सूर्यस्योदयनं प्रति।
ताड्यमानासु भेरीषु मृदङ्गेष्वानकेषु च ॥ २ ॥
ध्मायत्सु दधिवर्णेषु जलजेषु समन्ततः।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य निर्याताः पाण्डवा युधि ॥ ३ ॥
कृत्वा व्यूहं महाराज सर्वशत्रुनिबर्हणम्।
शिखण्डी सर्वसैन्यानामग्र आसीद्विशाम्पते ॥ ४ ॥
चक्ररक्षौ ततस्तस्य भीमसेनधनञ्जयौ।
पृष्ठतो द्रौपदेयाश्च सौभद्रश्चैव वीर्यवान् ॥ ५ ॥
सात्यकिश्चेकितानश्च तेषां गोप्ता महारथः।
धृष्टद्युम्नस्ततः पश्चात्पञ्चालैरभिरक्षितः ॥ ६ ॥
ततो युधिष्ठिरो राजा यमाभ्यां सहितः प्रभुः।
प्रययौ सिंहनादेन नादयन्भरतर्षभ ॥ ७ ॥
विराटस्तु ततः पश्चात्स्वेन सैन्येन संवृतः।
द्रुपदश्च महाबाहो ततः पश्चादुपाद्रवत् ॥ ८ ॥

भीष्मपर्वमें एकसौ आठ अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! युद्धमें शिखण्डी किस प्रकारसे भीष्मके संमुख हुए और महात्मा भीष्म भी किस भांतिसे पाण्डवोंके सम्मुख होकर युद्धमें प्रवृत्त हुए वह सब वृत्तान्त तुम मेरे समीप वर्णन करो। (१)

सञ्जय बोले, महाराज! तिसके अनन्तर पाण्डवोंने शङ्ख, भेरी, मृदङ्ग, ढोल और नगाडोंको बजाके सर्वशत्रु-निबर्हण नामका व्यूह बनाकर शिखण्डी-को आगे करके युद्धके निमित्त यात्रा की। हे राजन्! शिखण्डी उन सब सेनामें सजे हुए व्यूहके आगे हुए॥ भीमसेन और अर्जुन शिखण्डीके चक्र-रक्षक हुए; द्रौपदीके सब पुत्र और पराक्रमी अभिमन्यु उसके पृष्ठरक्षक नियत हुए। महारथ सात्यकि और चेकितान उन सबके रक्षक बनाये गये। पाञ्चाल योद्धाओंसे रक्षित होकर धृष्टद्यु-म्न उन सबके पीछे स्थित हुए। (२-६)

हे भारत! तिसके पीछे सम्पूर्ण सेनाके स्वामी राजा युधिष्ठिर सिंहनाद करते हुए नकुल सहदेवके सहित गमन करने लगे; उनके पीछे राजा विराट अपनी सेनाके सहित युद्धके निमित्त चलने लगे, तथा

ततः प्रववृते युद्धं तव तेषां च भारत ।
अन्योन्यं निघ्नतां राजन्यमराष्ट्रविवर्धनम् ॥ १७ ॥
अर्जुनप्रमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
भीष्मं युद्धेऽभ्यवर्तन्त किरन्तो विविधाञ्शरान् ॥१८॥
तत्र भारत भीमेन ताडितास्तावकाः शरैः ।
रुधिरौघपरिक्लिन्नाः परलोकं ययुस्तदा ॥ १९ ॥
नकुलः सहदेवश्च सात्यकिश्च महारथः ।
तव सैन्यं समासाद्य पीडयामासुरोजसा ॥ २० ॥
ते वध्यमानाः समरे तावका भरतर्षभ ।
नाऽशक्नुवन्वारयितुं पाण्डवानां महद्बलम् ॥ २१ ॥
ततस्तु तावकं सैन्यं वध्यमानं समन्ततः ।
सुखसम्प्राप्तं दश दिशः काल्यमानं महारथैः ॥ २२ ॥
त्रातारं नाऽध्यगच्छन्त तावका भरतर्षभ ।
वध्यमानाः शितैर्बाणैः पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥२३ ॥
धृतराष्ट्र उवाच—पीड्यमानं बलं दृष्ट्वा पार्थैर्भीष्मः पराक्रमी ।

एक नया व्यूह बनाया करते थे ॥ हे भारत ! अनन्तर दोनों ओरके योद्धाओंमें युद्ध आरंभ हुआ। दोनों ओरके योद्धालोग आपसमें एक दूसरेका वध करके यमपुरीकी वृद्धि करने लगे। अर्जुन आदि पाण्डव लोग शिखण्डीको आगे करके तीक्ष्ण बाणोंको चलाते हुए भीष्मके सम्मुख हुए। (१६-१८)

भीमसेनने जब तुम्हारी सेनाको बाणोंसे पीडित करना आरंभ किया, तब वे सब योद्धा लोग रुधिरसे पूरित होकर परलोकमें गमन करने लगे। नकुल, सहदेव और महारथ सात्यकि तुम्हारी सेनाके समीप [illegible] पीडित करने लगे ॥ तुम्हारी सेनाके सब योद्धा पाण्डवोंकी ओरके शूरवीर योद्धाओंके अस्त्रोंसे विकल होकर उनकी महासेनाको निवारण करनेमें समर्थ नहीं हुए ॥ वे सब महारथ वीरोंके अस्त्रोंसे चारों ओरसे पीडित होकर इधर उधर भागने लगे ॥ तुम्हारी सेनाके सब योद्धाओंने पाण्डवों और सृञ्जयोंके तीक्ष्ण बाणोंसे अत्यन्त विद्ध और पीडित होकर किसीको भी रक्षा करनेवाला नहीं पाया। (१९-२३)

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! पराक्रमी भीष्मने मेरी सेनाको पाण्डवोंके अस्त्रोंसे पीडित देखकर जो कुछ कर्म

रथिनोऽपानयद्राजन्रथेभ्यः पुरुषर्षभ ॥ ३२ ॥
सादिनश्चाऽश्वपृष्ठेभ्यः पादातांश्च समागतान्।
गजारोहान्गजेभ्यश्च परेषां जयकारिणः ॥ ३३ ॥
तमेकं समरे भीष्मं त्वरमाणं महारथम्।
पाण्डवाः समवर्तन्त वज्रहस्तमिवाऽसुराः ॥ ३४ ॥
शक्राशनिसमस्पर्शान्विमुञ्चन्निशिताञ्छरान् ॥ ३५ ॥
दिक्ष्वदृश्यत सर्वासु घोरं सन्धारयन्वपुः।
मण्डलीभूतमेवाऽस्य नित्यं धनुरदृश्यत ॥ ३६ ॥
संग्रामे युद्ध्यमानस्य शक्रचापोपमं महत्।
तद् दृष्ट्वा समरे कर्म पुत्रास्तव विशाम्पते ॥ ३७ ॥
विस्मयं परमं गत्वा पितामहमपूजयन्।
पार्था विमनसो भूत्वा प्रैक्षन्त पितरं तव ॥ ३८ ॥
युद्ध्यमानं रणे शूरं विप्रचित्तिमिवाऽमराः।
न चैनं वारयामासुर्व्यात्ताननमिवाऽन्तकम् ॥ ३९ ॥
दशमेऽहनि सम्प्राप्ते रथानीकं शिखण्डिनः।

करनेवाले पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीरोंमेंसे रथियोंको रथ परसे, हाथीसवारोंको हाथी परसे और घुडसवारोंको घोडोंकी पीठसे अपने अस्त्रोंके प्रभावसे मारके पृथ्वी पर गिरा दिया, पैदल सेनाको भी अपने बाणोंसे बिद्ध कर पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ (२९—३३)

जिस प्रकारसे असुर लोग वज्रधारी इन्द्रके सम्मुख हुए थे, उसी प्रकारसे पाण्डव लोग [illegible] सहित महारथ भीष्मके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ उस समय घोर मूर्ति धारण किये हुए इन्द्रके समान [illegible] करके [illegible] हुए [illegible] दिशाओंमें [illegible] हुए दीख पडे। युद्धके समय इन्द्रधनुषके समान महात्मा भीष्मका धनुष सदा ही मण्डलाकार दीख पडता था ॥ (३४—३७)

हे राजन्! तुम्हारे पुत्रलोग युद्धमें उनके ऐसे पराक्रम तथा कठिन कर्मको देखकर विस्मित हुए और उनकी अत्यन्त ही प्रशंसा करने लगे। जैसे देवताओंने विप्रचित्ति असुर को रणभूमि में अवलोकन किया था वैसे ही पाण्डव लोग [illegible] हुए महापराक्रमी युद्ध कार्यके [illegible] भीष्म पितामहको देखने [illegible] उनको मुख पसारे हुए कालके समान [illegible] देखकर कोई भी उनके निकट न जा सका। और

अदहन्निशितैर्बाणैः कृष्णवर्त्मेव काननम् ॥ ४० ॥
तं शिखण्डी त्रिभिर्बाणैरभ्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
आशीविषमिव क्रुद्धं कालसृष्टमिवाऽन्तकम् ॥ ४१ ॥
स तेनाऽतिभृशं विद्धः प्रेक्ष्य भीष्मः शिखण्डिनम् ।
अनिच्छन्निव संक्रुद्धः प्रहसन्निदमब्रवीत् ॥ ४२ ॥
काममभ्यस वा मा वा न त्वां योत्स्ये कथञ्चन ।
यैव हि त्वं कृता धात्रा सैव त्वं हि शिखण्डिनी॥ ४३ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शिखण्डी क्रोधमूर्छितः ।
उवाचैनं तथा भीष्मं सृक्किणी परिसंलिहन् ॥ ४४ ॥
जानामि त्वां महाबाहो क्षत्रियाणां क्षयङ्करम् ।
मया श्रुतं च ते युद्धं जामदग्न्येन वै सह ॥ ४५ ॥
दिव्यश्च ते प्रभावोऽयं मया च बहुशः श्रुतः ।
जानन्नपि प्रभावं ते योत्स्येऽद्याऽहं त्वया सह ॥ ४६ ॥
पाण्डवानां प्रियं कुर्वन्नात्मनश्च नरोत्तम ।

प्रचण्ड अग्नि जङ्गलोंको भस्म कर देती है, वैसे ही भीष्म पितामह दशवें दिन अपने तीक्ष्ण तथा चोखे बाणोंसे शिखण्डीकी सेनाको जलाने लगे ॥ (३७-४०)

तब शिखण्डीने क्रोधी सर्प तथा काल प्रेरित यमराजके समान महाबली भीष्मके दोनों स्तनोंके बीचमें तीन बाणोंसे प्रहार किया। भीष्म शिखण्डीके उन बाणोंसे विद्ध और क्रुद्ध होकर हंसके अपना अभिप्राय प्रकाशित करते हुए शिखण्डीसे बोले, तुम इच्छाके अनुसार अपने बाणोंको मेरे ऊपर चलाओ चाहे न चलाओ; परन्तु मैं किसी प्रकारसे भी तुम्हारे सङ्ग युद्ध न करूंगा, क्योंकि विधाताने जो तुमको पहिले स्त्रीरूपसे उत्पन्न किया था, तुम वही शिखण्डिनी हो ॥ (४१—४३)

शिखण्डी उस समय भीष्मकी यह बात सुनकर क्रोधसे मूर्च्छित होकर होठोंको चबाते हुए उनसे यह वचन बोले ॥ हे महाबाहो ! तुम जो क्षत्रियोंका नाश करनेवाले हो, यह मैं जानता हूं, परशुरामजीके सङ्गमें तुम्हारा जो संग्राम हुआ था, वह भी मैंने सुना है॥ और तुम्हारे अलौकिक प्रभाव और कीर्तिकोभी मैंने बहुत प्रकारसे सुना है; तुम्हारे ऐसे प्रभाव और पराक्रमको जानकर भी आज मैं तुम्हारे सङ्गमें युद्ध करूंगा ॥ (४४–४६)

हे पुरुषश्रेष्ठ ! मैं तुम्हारे सर्मापमें

अद्य त्वां योधयिष्यामि रणे पुरुषसत्तम ॥ ४७ ॥
ध्रुवं च त्वां हनिष्यामि शपे सत्येन तेऽग्रतः ।
एतच्छ्रुत्वा च मद्वाक्यं यत्कृत्यं तत्समाचर ॥ ४८ ॥
काममभ्यस्य वा मा वा न मे जीवन्प्रमोक्ष्यसे ।
सुदृष्टः क्रियतां भीष्म लोकोऽयं समितिञ्जयः ॥ ४९ ॥
सञ्जय उवाच— एवमुक्त्वा ततो भीष्मं पञ्चभिर्नतपर्वभिः ।
अविध्यत रणे भीष्मं प्रणुन्नं वाक्यसायकैः ॥ ५० ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सव्यसाची महारथः ।
कालोऽयमिति सञ्चिन्त्य शिखण्डिनमचोदयत् ॥ ५१ ॥
अहं त्वामनुयास्यामि परान्विद्रावयञ्शरैः ।
अभिद्रव सुसंरब्धो भीष्मं भीमपराक्रम ॥ ५२ ॥
न हि ते संयुगे पीडां शक्तः कर्तुं महाबलः ।
तस्मादद्य महाबाहो यत्नाद्भीष्ममभिद्रव ॥ ५३ ॥
अहत्वा समरे भीष्मं यदि यास्यसि मारिष ।
अवहार्योऽस्य लोकस्य भविष्यसि मया सह ॥ ५४ ॥

सत्य प्रतिज्ञा करता हूं, कि मैं अपने और पाण्डवोंके प्रिय कार्य करनेके निमित्त आज तुमसे युद्ध करके निश्चयही तुम्हारा वध करूंगा; मेरे इस वचनको सुनकर तुम पराक्रमके अनुसार कार्य करो॥ हे युद्ध जीतने वाले भीष्म! तुम इच्छा पूर्वक मेरे ऊपर बाण चलाओ चाहे न चलाओ परन्तु मेरे [illegible] से आज जीवित न बच सकोगे। इस से अब तुम इस लोकको अच्छी भांतिसे देख लो क्योंकि फिर न देखने पाओगे (४७—४९)

सञ्जय बोले हे राजन्! शिखण्डीने [illegible] इसी प्रकारसे वचनरूपी बाणोंसे विद्ध करके स्वर्ण दण्डयुक्त पांच बाणोंसे उन्हें विद्ध किया॥ महारथ अर्जुनने शिखण्डीकी बातको सुनकर समझा कि "यही भीष्मके वधका समय है" ऐसा जानकर शिखण्डीसे बोले हे महाबाहो! मैं शत्रुओंकी सब सेनाको तितर बितर करता हुआ तुम्हारा अनुगामी रहूंगा, तुम सावधान होकर महापराक्रमी भीष्मका [illegible] करो; महाबल भीष्म [illegible] तुमको [illegible] न कर सकेंगे इस से [illegible] भी तुम भीष्मको [illegible] (५०—५३)

यदि आज तुम भीष्मको बिना वध [illegible]

नाऽवहास्या यथा वीर भवेम परमाहवे ।
तथा कुरु रणे यत्नं साधयस्व पितामहम् ॥ ५५ ॥
अहं ते रक्षणं युद्धे करिष्यामि महाबल ।
वारयन्रथिनः सर्वान्साधयस्व पितामहम् ॥ ५६ ॥
द्रोणं च द्रोणपुत्रं च कृपं चाऽथ सुयोधनम् ।
चित्रसेनं विकर्णं च सैन्धवं च जयद्रथम् ॥ ५७ ॥
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम् ।
भगदत्तं तथा शूरं मागधं च महाबलम् ॥ ५८ ॥
सौमदत्तिं तथा शूरमार्ष्यशृङ्गिं च राक्षसम् ।
त्रिगर्तराजं च रणे सह सर्वैर्महारथैः ॥ ५९ ॥
अहमावारयिष्यामि वेलेव मकरालयम् ।
कुरूंश्च सहितान्सर्वान्युध्यमानान्महाबलान् ।
निवारयिष्यामि रणे साधयस्व पितामहम् ॥ ६० ॥ [५०५३]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मशिखण्डिसमागमे अष्टाधिकशततमोऽध्याय ॥१०८॥

धृतराष्ट्र उवाच- कथं शिखण्डी गाङ्गेयमभ्यधावत्पितामहम् ।

लोग तुम्हारी और मेरी हंसी करेंगे ॥ हे वीर ! जिससे हम दोनोंकी सब लोगों के बीच हंसी न होवे, तुम वैसा ही यत्न करो: — भीष्म पितामहका शीघ्र ही इस रणभूमिमें वध करके उनको रथसे पृथ्वीपर गिरा दो ॥ हे महाबलवान् शिखण्डी ! मै इस युद्ध में सम्पूर्ण रथियोंको निवारण करके तुम्हारी रक्षा करूंगा; तुम भीष्मका वध करने के निमित्त यत्न करो ॥ (५४–५६)

द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, दुर्योधन, चित्रसेन, विकर्ण, सिन्धुराज जयद्रथ, अवन्तिनगरीके राजा विन्द और अनुविन्द, काम्बोजराज सुदक्षिण, पराक्रमसे युक्त राजा भगदत्त, महाबली पराक्रमी मगधराज, सोमदत्तका पुत्र भूरिश्रवा, अलम्बुष राक्षस और शूरवीर महा रथियोंको मै इस प्रकारसे निवारण करूंगा, जैसे समुद्रके वेगको तट रोकता है; इसके अतिरिक्त महा बलवान् युद्ध करने वाले सम्पूर्ण कौरवोंका भी एक ही समय में निवारण करूंगा; इससे तुम शीघ्र ही भीष्म पितामह का वध करो ॥ (५७–६०) [५०५३]

भीष्मपर्वमें एकसौ आठ अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें एकसौ नौ अध्याय ।

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय ! पाञ्चालराजके पुत्र शिखण्डीने युद्धमें क्रुद्ध

पाञ्चाल्यः समरे क्रुद्धो धर्मात्मानं यतव्रतम् ॥ १ ॥
केऽरक्षन्पाण्डवानीके शिखण्डिनमुदायुधाः ।
त्वरमाणास्त्वराकाले जिगीषन्तो महारथाः ॥ २ ॥
कथं शान्तनवो भीष्मः स तस्मिन्दशमेऽहनि ।
अयुध्यत महावीर्यः पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥ ३ ॥
न मृष्यामि रणे भीष्मं प्रत्युद्यातं शिखण्डिना ।
कच्चिन्न रथभङ्गोऽस्य धनुर्वाऽशीर्यताऽस्यतः ॥ ४ ॥
सञ्जय उवाच— नाऽशीर्यत धनुश्चाऽस्य रथभङ्गो न चाऽप्यभूत् ।
युध्यमानस्य संग्रामे भीष्मस्य भरतर्षभ ॥ ५ ॥
निघ्नतः समरे शत्रूञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ।
अनेकशतसाहस्रास्तावकानां महारथाः ॥ ६ ॥
तथा दन्तिगणा राजन्हयाश्चैव सुसज्जिताः ।
अभ्यवर्तन्त युद्धाय पुरस्कृत्य पितामहम् ॥ ७ ॥
यथाप्रतिज्ञं कौरव्य स चाऽपि समितिंजयः ।
पार्थानामकरोद्भीष्मः सततं समितिक्षयम् ॥ ८ ॥

होकर ब्रह्मचर्य व्रत करनेवाले, धर्मात्मा गङ्गानन्दन भीष्म पर किस प्रकारसे आक्रमण किया था? पाण्डवोंकी ओरके कौन कौनसे योद्धालोग शीघ्रताके सहित क्रुद्ध होकर शस्त्रधारी शिखण्डीकी रक्षा करनेमें प्रवृत्त हुए थे? महाबलवान् शान्तनुपुत्र भीष्मने उस दसवें अथवा उनका धनुष तो नहीं कट गया था? (१-४)

सञ्जय बोले, हे भारत! युद्ध करते हुए भीष्मका न रथ ही टूटा और धनुष ही कटा था, वह अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शत्रुओंका नाश कर रहे थे, तुम्हारी ओरके कई सौ और कई हजार

युध्यमानं महेष्वासं विनिघ्नन्तं पराञ्शरैः।
पञ्चालाः पाण्डवैः सार्धं सर्वे ते नाऽभ्यवारयन्॥ ९॥
दशमेऽहनि सम्प्राप्ते ततस्तां रिपुवाहिनीम्।
कीर्यमाणां शितैर्बाणैः शतशोऽथ सहस्रशः॥ १०॥
नहि भीष्मं महेष्वासं पाण्डवाः पाण्डुपूर्वज।
अशक्नुवन्रणे जेतुं पाशहस्तमिवाऽन्तकम्॥ ११॥
अथोपायान्महाराज सव्यसाची धनञ्जयः।
त्रासयन्रथिनः सर्वान्बीभत्सुरपराजितः॥ १२॥
सिंहवद्विनदन्नुच्चैर्धनुर्ज्यां विक्षिपन्मुहुः।
शरौघान्विसृजन्पार्थो व्यचरत्कालवद्रणे॥ १३॥
तस्य शब्देन वित्रस्तास्तावका भरतर्षभ।
सिंहस्येव मृगा राजन्व्यद्रवन्त महाभयात्॥ १४॥
जयन्तं पाण्डवं दृष्ट्वा त्वत्सैन्यं चाऽभिपीडितम्।
दुर्योधनस्ततो भीष्ममब्रवीद्भृशपीडितः॥ १५॥
एष पाण्डुसुतस्तात श्वेताश्वः कृष्णसारथिः।

दसवें दिन युद्धभूमिमें जब शत्रु सेनाका अपने शस्त्रोंसे नाश कर रहे थे, उस समय पाण्डव और पाञ्चाल योद्धा लोग उनका पराक्रम देखकर उन्हें निवारण करनेको समर्थ नहीं हुए॥ पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीर योद्धा सैकडो तथा सहस्रों वाणोंको चला कर भी महापराक्रमी भीष्मका युद्धमें निवारण नहीं कर सके; क्यों कि दण्डधारी यमराजके समान सेनापति भीष्मको रणभूमिमें पराजित करनेको उनका सामर्थ्य न हुआ। ८-११

महाराज! तिसके अनन्तर सव्यसाची अर्जुनने सम्पूर्ण रथियोंको भयभीत करके भीष्मके समीपमें गमन किया; वह बलपूर्वक सिंहनाद और बार बार धनुष टङ्कार करके अपने तीक्ष्ण बाणोंको चलाते हुए रणभूमि में कालके समान घूमने लगे॥ हे भारत! अर्जुनके सिंहनाद और गाण्डीव धनुषके शब्दको सुनकर तुम्हारी सम्पूर्ण सेना भय भीत होकर इस भांति भागने लगी, जैसे सिंहका शब्द सुन कर हरिणों का समूह शीघ्रतासे भाग जाता है॥ (१२-१४)

राजा दुर्योधन अर्जुनको युद्धमें जययुक्त और अपनी सेनाको अत्यन्त पीडित और भागती हुई देखकर दुःखित हो के भीष्म पितामह से बोले, हे पितामह! यह देखो, कृष्ण सारथीके

दहते मामकान्सर्वान्कृष्णवर्त्मेव काननम् ॥ १६ ॥
पश्य सैन्यानि गाङ्गेय द्रवमाणानि सर्वशः।
पाण्डवेन युधां श्रेष्ठ काल्यमानानि संयुगे ॥ १७ ॥
यथा पशुगणान्पालः सङ्कालयति कानने।
तथेदं मामकं सैन्यं काल्यते शत्रुतापन ॥ १८ ॥
धनञ्जयशरैर्भग्नं द्रवमाणं ततस्ततः।
भीमोऽप्येवं दुराधर्षो विद्रावयति मे बलम् ॥ १९ ॥
सात्यकिश्चेकितानश्च माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ।
अभिमन्युः सुविक्रान्तो वाहिनीं द्रवते मम ॥ २० ॥
धृष्टद्युम्नस्तथा शूरो राक्षसश्च घटोत्कचः
व्यद्रावयेतां सहसा सैन्यं मम महारणे ॥ २१ ॥
वध्यमानस्य सैन्यस्य सर्वैरेतैर्महारथैः।
नाऽन्यां गतिं प्रपश्यामि स्थाने युद्धे च भारत ॥ २२ ॥
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र देवतुल्यपराक्रम।

सहित श्वेतवाहन अर्जुन मेरी सेनाका इस प्रकारसे नाश कर रहा है; जैसे अग्नि वनको भस्म कर देती है, देखिये मेरी सम्पूर्ण सेना युद्धमें अर्जुनके बाणोंसे पीडित होके चारों ओर भाग रही है ॥ (१५—१७)

हे शत्रुनाशन! जैसे गोपाल वनमें गौओंको मार पीटके अपने वशमें कर लेता है, वैसे ही अर्जुन भी मेरी सेनाको अपने शर समूहोंसे पीडित करके युद्धभूमिमें भगा रहा है। मेरी सेना जगह जगह अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर इधर उधर भाग रही है और दुर्धर्ष भीमसेन भी इस मेरी सेनाको छिन्न भिन्न कर रहा है। इनके अतिरिक्त सात्यकि, चेकितान, नकुल, सहदेव और पराक्रमी अभिमन्यु आदि रथी योद्धा भी हमारी सेनाको छिन्न-भिन्न कर रहे हैं॥ शूरता और वीरतासे युक्त धृष्टद्युम्न और राक्षस घटोत्कच भी शीघ्रताके सहित मेरी सेनाको रणभूमिमें भगा रहे हैं॥ (१८—२१)

हे भारत! तुम देवताओंके समान पराक्रमी हो, तुम्हारे अतिरिक्त इन सब महारथियोंसे पीडित हुई मेरी सेनाकी रक्षा और इन सबके सङ्ग युद्ध करनेका उपाय मैं दूसरा कुछ भी नहीं देख सकता हूं। [illegible]

पर्याप्तस्तु भवाञ्शीघ्रं पीडितानां गतिर्भव ॥ २३ ॥
सञ्जय उवाच— एवमुक्तो महाराज पिता देवव्रतस्तव ।
चिन्तयित्वा मुहूर्तं तु कृत्वा निश्चयमात्मनः ॥ २४ ॥
तव सन्धारयन्पुत्रमब्रवीच्छान्तनोः सुतः ।
दुर्योधन विजानीहि स्थिरो भूत्वा विशाम्पते ॥ २५ ॥
पूर्वकालं तव मया प्रतिज्ञातं महाबल ।
हत्वा दशसहस्राणि क्षत्रियाणां महात्मनाम् ॥ २६ ॥
संग्रामाद्व्यपयातव्यमेतत्कर्म ममाऽऽह्निकम् ।
इति तत्कृतवांश्चाऽहं यथोक्तं भरतर्षभ ॥ २७ ॥
अद्य चाऽपि महत्कर्म प्रकरिष्ये महाबल ।
अहं वाऽद्य हतः शेष्ये हनिष्ये वाऽद्य पाण्डवान् ॥२८॥
अद्य ते पुरुषव्याघ्र प्रतिमोक्ष्ये ऋणं तव ।
भर्तृपिण्डकृतं राजन्निहतः पृतनामुखे ॥ २९ ॥
इत्युक्त्वा भरतश्रेष्ठ क्षत्रियान्प्रवपञ्छरैः ।
आससाद दुराधर्षः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥ ३० ॥
अनीकमध्ये तिष्ठन्तं गाङ्गेयं भरतर्षभ ।
आशीविषमिव क्रुद्धं पाण्डवाः प्रत्यवारयन् ॥ ३१ ॥

बाणोंसे नाश होनेसे बचाओ ॥ २२-२३

सञ्जय बोले, हे महाराज ! शान्तनु पुत्र भीष्म दुर्योधनका यह वचन सुनकर क्षणभर सोच विचार अपना कर्त्तव्य-कर्म निश्चय करके दुर्योधनको धीरज देते हुए यह वचन बोले, — हे प्रजानाथ महा बलवान् राजा दुर्योधन ! मैंने तुम्हारे समीप पहिले यह प्रतिज्ञा की थी, कि संग्राममें दश हजार योद्धाओं को मारकर तब युद्धसे निवृत्त होऊंगा; जो कुछ मैंने प्रतिज्ञा की थी उसे पूर्ण भी किया है; परन्तु आज भी संग्राममें बडा कर्म करूंगा। तो आज मैं पाण्डवोंको मारूंगा, अथवा उन लोगोंके अस्त्रोंसे मरकर रणभूमिमें शयन करूंगा। आज मैं तुम्हारे संमुख ही स्वामीके दिये हुए अन्न आदि ऋणोंसे मुक्त होऊंगा ॥ (२४-२९)

महा पराक्रमी दुःखसे जीते जाने योग्य महात्मा भीष्मने ऐसा कहकर क्षत्रियोंके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करते हुए पाण्डवोंकी सेनापर आक्रमण किया। हे भारत ! पाण्डव लोग रणभूमि में स्थित क्रोधी सर्पके समान महा-

दशमेऽहनि भीष्मस्तु दर्शयञ्शक्तिमात्मनः ।
राजञ्शतसहस्राणि सोऽवधीत्कुरुनन्दन ॥ ३२ ॥
पञ्चालानां च ये श्रेष्ठा राजपुत्रा महारथाः ।
तेषामादत्त तेजांसि जलं सूर्य इवांऽशुभिः ॥ ३३ ॥
हत्वा दशसहस्राणि कुञ्जराणां तरस्विनाम् ।
सारोहाणां महाराज हयानां चाऽयुतं तथा ॥ ३४ ॥
पूर्णे शतसहस्रे द्वे पादातानां नरोत्तमः ।
प्रजज्वाल रणे भीष्मो विधूम इव पावकः ॥ ३५ ॥
न चैनं पाण्डवेयानां केचिच्छेकुर्निरीक्षितुम् ।
उत्तरं मार्गमास्थाय तपन्तमिव भास्करम् ॥ ३६ ॥
ते पाण्डवेयाः संरब्धा महेष्वासेन पीडिताः ।
वधायाऽभ्यद्रवन्भीष्मं सृञ्जयाश्च महारथाः ॥ ३७ ॥
संयुध्यमानो बहुभिर्भीष्मः शान्तनवस्तथा ।
अवकीर्णो महामेरुः शैलो मेघैरिवाऽऽवृतः ॥ ३८ ॥
पुत्रास्तु तव गाङ्गेयं समन्तात्पर्यवारयन् ।

नन्दन भीष्मको युद्धसे निवारण करने लगे ॥ हे राजन् ! भीष्मने अपने शक्ति के अनुसार दशवें दिन सौ हजार योद्धाओंका वध किया ॥ जैसे सूर्य अपने किरणोंसे जल आकर्षण करता है, वैसे ही महात्मा भीष्मनेभी पाञ्चाल देशीय योद्धाओंके तेजका आकर्षण कर लिया ॥ (३२—३३)

न था, जो उत्तरायणकालके तपते हुए सूर्यके समान महात्मा भीष्मकी ओर देख सकता ॥ (३४–३६)

अनन्तर पाण्डव और सृञ्जय प्रभृति महारथी योद्धा भीष्मके बाणोंसे पीडित होकर उनके वधके निमित्त शीघ्रतासे आगे बढे ॥ युद्ध करते हुए शान्तनु-पुत्र भीष्म उस समयमें बहुतसे योद्धा-

महत्या सेनया सार्द्धं ततो युद्धमवर्तत ॥ ३९ ॥ [५०९२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मदुर्योधनसंवादे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥

सञ्जय उवाच— अर्जुनस्तु रणे राजन्दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ।
शिखण्डिनमथोवाच समभ्येहि पितामहम् ॥ १ ॥
न चापि भीस्त्वया कार्या भीष्मादद्य कथञ्चन ।
अहमेनं शरैस्तीक्ष्णैः पातयिष्ये रथोत्तमात् ॥ २ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥ ३ ॥
धृष्टद्युम्नस्तथा राजन्सौभद्रश्च महारथः ।
हृष्टावाद्रवतां भीष्मं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ॥ ४ ॥
विराटद्रुपदौ वृद्धौ कुन्तिभोजश्च दंशितः ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं पुत्रस्य तव पश्यतः ॥ ५ ॥
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजश्च वीर्यवान् ।
तथेतराणि सैन्यानि सर्वाण्येव विशाम्पते ॥ ६ ॥
समाद्रवन्त गाङ्गेयं श्रुत्वा पार्थस्य भाषितम् ।
प्रत्युद्ययुस्तावकाश्च समेतांस्तान्महारथान् ॥ ७ ॥

निमित्त वहांपर उपस्थित हुए। तब बडा युद्ध होने लगा ॥ (३७-३९) [५००२]

भीष्मपर्वमें एकसौ नौ अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें एकसौ दस अध्याय।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! अर्जुनने युद्धमें भीष्मका पराक्रम देखकर शिखण्डीसे कहा; तुम भीष्म पितामहके सङ्ग युद्ध करनेमें तत्पर हो जाओ; आज तुम किसी प्रकारसे भी उनका कुछ भय मत करो। मैं अपने तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध करके उनको उत्तम रथसे पृथ्वीपर गिरा दूंगा ॥ (१—२)

हे भारत ! जब अर्जुनने शिखण्डीसे ऐसा कहा, तब शिखण्डीने उनका वचन सुनकर भीष्मके निकट गमन किया ॥ अर्जुनके वचनको सुनकर धृष्टद्युम्न और सुभद्रानन्दन अभिमन्यु हर्षपूर्वक पितामह भीष्मकी ओर दौडे ॥ बूढे राजा विराट, द्रुपद और कुन्तिभोज भी अस्त्र शस्त्रोंको धारण करके तेरे पुत्रके देखते ही भीष्मकी ओर दौडे ॥ नकुल, सहदेव और धर्मराज युधिष्ठिर तथा सम्पूर्ण सेना के वीरोंने भीष्मपर आक्रमण किया ॥ (३-७)

यथाशक्ति यथोत्साहं तन्मे निगदतः शृणु ।
चित्रसेनो महाराज चेकितानं समभ्ययात् ॥ ८ ॥
भीष्मप्रेप्सुं रणे यान्तं वृषं व्याघ्रशिशुर्यथा ।
धृष्टद्युम्नं महाराज भीष्मान्तिकमुपागतम् ॥ ९ ॥
त्वरमाणं रणे यत्तं कृतवर्मा न्यवारयत् ।
भीमसेनं सुसंक्रुद्धं गाङ्गेयस्य वधैषिणम् ॥ १० ॥
त्वरमाणो महाराज सौमदत्तिर्न्यवारयत् ।
तथैव नकुलं शूरं किरन्तं सायकान्बहून् ॥ ११ ॥
विकर्णो वारयामास इच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ।
सहदेवं तथा राजन्यान्तं भीष्मरथं प्रति ॥ १२ ॥
वारयामास संक्रुद्धः कृपः शारद्वतो युधि ।
राक्षसं क्रूरकर्माणं भैमसेनिं महाबलम् ॥ १३ ॥
भीष्मस्य निधनं प्रेप्सुं दुर्मुखोऽभ्यद्रवद्बली ।
सात्यकिं समरे यान्तं तव पुत्रो न्यवारयत् ॥ १४ ॥
अभिमन्युं महाराज यान्तं भीष्मरथं प्रति ।
सुदक्षिणो महाराज काम्बोजः प्रत्यवारयत् ॥ १५ ॥

तुम्हारी सेनाके जिन जिन योद्धाओं ने इन उपस्थित महारथियोंका सामना किया, वह सब वृत्तान्त मैं विस्तारपूर्वक तुम्हारे निकट वर्णन करता हूं, तुम सुनो। महाराज! जैसे व्याघ्र वृषपर आक्रमण करता है, वैसे ही भीष्मके समीपमें चित्रसेनने सम्पूर्ण चेकितान की सेनापर आक्रमण किया, कृतवर्मा भीष्मके समीप आये हुए धृष्टद्युम्नको शीघ्रताके सहित यत्नपूर्वक निवारण करने में प्रवृत्त हुए [illegible] भीष्म का वध करनेके लिये उनके समीप आये हुए भीमसेनको युद्धमें निवारण करने लगे। विकर्ण भीष्मकी रक्षा के निमित्त रणमें बाणोंको चलाकर नकुल को युद्धमें हटाने लगे। (८-१२)

कृपाचार्य क्रुद्ध होकर भीष्मके रथके समीप में पहुंचे हुए सहदेवको निवारण करने लगे। बलवान् दुर्मुख भीष्म के वधकी इच्छा करनेवाले [illegible] भीमसेनके [illegible] घटोत्कचको और [illegible] दुर्योधन सात्यकिको निवारण करने लगे [illegible] [illegible] करने लगे। (१३—१५)

विराटद्रुपदौ वृद्धौ समेतावरिमर्दनौ ।
अश्वत्थामा ततः क्रुद्धो वारयामास भारत ॥ १६ ॥
तथा पाण्डुसुतं ज्येष्ठं भीष्मस्य वधकांक्षिणं ।
भारद्वाजो रणे यत्तो धर्मपुत्रमवारयत् ॥ १७ ॥
अर्जुनं रभसं युद्धे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
भीष्मप्रेप्सुं महाराज भासयन्तं दिशो दश ॥ १८ ॥
दुःशासनो महेष्वासो वारयामास संयुगे ।
अन्ये च तावका योधाः पाण्डवानां महारथान्॥१९ ॥
भीष्मस्याऽभिमुखान्यातान्वारयामासुराहवे ।
धृष्टद्युम्नस्तु सैन्यानि प्राक्रोशंस्तु पुनः पुनः ॥ २० ॥
अभ्यद्रवत संरब्धो भीष्ममेकं महारथः ।
एषोऽर्जुनो रणे भीष्मं प्रयाति कुरुनन्दनः ॥ २१ ॥
अभ्यद्रवत मा भैष्ट भीष्मो हि प्राप्स्यते न वः ।
अर्जुनं समरे योद्धुं नोत्सहेतापि वासवः ॥ २२ ॥
किमु भीष्मो रणे वीरा गतसत्त्वोऽल्पजीवितः ।

अश्वत्थामा क्रुद्ध होकर बूढे राजा विराट और द्रुपदको युद्धसे निवारण करने लगे॥ द्रोणाचार्य यत्नपूर्वक भीष्म के वधकी इच्छा करनेवाले धर्मपुत्र युधिष्ठिरको युद्धसे निवारण करने में प्रवृत्त हुए ॥ अर्जुन शिखण्डीको आगे करके अपने बाणोंसे सब ओर तुम्हारी सेनाके योद्धाओंको भस्म करते हुए जब भीष्मके संमुख उपस्थित हुए, तब महा धनुर्द्धारी दुःशासन सावधान होकर उनको निवारण करने में प्रवृत्त हुए। तुम्हारी सेनाके और दूसरे सब शूरवीर योद्धा भीष्मके सम्मुख आये हुए पाण्डवों की सेनाके दूसरे सब महारथी योद्धाओं को निवारण करने लगे। (१९-२०)

धृष्टद्युम्न क्रुद्ध होकर अपनी सेनाके सहित केवल भीष्महीकी ओर बढे और जोरसे पुकारकर बार बार सब शूरवीरों से यह कहने लगे, कि कुरुनन्दन अर्जुन भीष्मके संमुख युद्ध करनेके निमित्त गमन कर रहे हैं, अब तुम लोग कुछ भी भय मत करो, शीघ्रता के सहित भीष्मकी ओर दौडो; अब भीष्म तुम लोगोंपर आक्रमण नहीं कर सकेंगे। संग्रामभूमि में इन्द्र भी अर्जुन के सङ्ग युद्ध करने का उत्साह नहीं कर सकते, तब बलहीन और थोडे पराक्रमवाले भीष्म उनका क्या करेंगे? (२०-२३)

इति सेनापतेः श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ॥ २३ ॥
अभ्यद्रवन्त संहृष्टा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ।
आगच्छमानान्समरे वार्योघान्प्रलयानिव ॥ २४ ॥
अवारयन्त संहृष्टास्तावकाः पुरुषर्षभाः ।
दुःशासनो महाराज भयं त्यक्त्वा महारथः ॥ २५ ॥
भीष्मस्य जीविताकांक्षी धनञ्जयमुपाद्रवत् ।
तथैव पाण्डवाः शूरा गाङ्गेयस्य रथं प्रति ॥ २६ ॥
अभ्यद्रवन्त संग्रामे तव पुत्रान्महारथाः ।
तत्राऽद्भुतमपश्याम चित्ररूपं विशाम्पते ॥ २७ ॥
दुःशासनरथं प्राप्य यत्पार्थो नाऽत्यवर्तत ।
यथा वारयते वेला क्षुब्धतोयं महार्णवम् ॥ २८ ॥
तथैव पाण्डवं क्रुद्धं तव पुत्रो न्यवारयत् ।
उभौ तौ रथिनां श्रेष्ठावुभौ भारत दुर्जयौ ॥ २९ ॥
उभौ चन्द्रार्कसदृशौ कान्त्या दीप्त्या च भारत ।
तथा तौ जातसंरम्भावन्योन्यवधकांक्षिणौ ॥ ३० ॥
समीयतुर्महासंख्ये मयशक्रौ यथा पुरा ।
दुःशासनो महाराज पाण्डवं विशिखैस्त्रिभिः ॥ ३१ ॥

पाण्डवोंकी सेनाके महारथी योद्धा लोग सेनापति धृष्टद्युम्नकी बात सुनकर हर्ष-पूर्वक भीष्मके रथकी ओर दौड़े तुम्हारी ओरके महाबलवान् योद्धा लोग प्रलय-कालके जलौघके समान तेजस्वी उन महारथियोंको आते हुए देखके हर्षित होकर उनको निवारण करने में प्रवृत्त हुए। महारथ दुःशासन भीष्मके जीवनकी अभिलाषा करके भय छोड़के अर्जुनकी ओर दौड़े। वैसेही पाण्डवोंने भीष्मके रथके समीपमें तुम्हारे पुत्रोंका सामना किया। (२३—२६)

हे राजन् ! इस स्थानपर मैंने एक अद्भुत कर्म यह देखा, कि अर्जुन दुःशासन के रथके समीपमें पहुंचकर फिर वहांसे आगे न बढ़ सके जिस प्रकारसे तट समुद्रके वेगको रोकता है वैसे ही दुःशासनने अर्जुनका निवारण किया। वे दोनों ही रथियोंमें श्रेष्ठ दोनों ही दुर्जय और दोनों ही तेजस्वी चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रकाशित हुए। और वे क्रोध भरे हुए एक दूसरेके वधकी इच्छा से इस प्रकार युद्ध करने लगे। जैसे पहिले समय में मयासुर और इन्द्रका

वासुदेवं च विंशत्या नाडयामास संयुगे।
ततोऽर्जुनो जातमन्युर्वार्ष्णेयं वीक्ष्य पीडितम् ॥ ३२ ॥
दुःशासनं शतेनाऽऽजौ नाराचानां समार्पयत्।
ते तस्य कवचं भित्वा पपुः शोणितमाहवे ॥ ३३ ॥
दुःशासनस्त्रिभिः क्रुद्धः पार्थं विव्याध पत्रिभिः।
ललाटे भरतश्रेष्ठ शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ३४ ॥
ललाटस्थैस्तु तैर्बाणैः शुशुभे पाण्डवो रणे।
यथा मेरुर्महाराज शृङ्गैरत्यर्थमुच्छ्रितैः ॥ ३५ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासः पुत्रेण तव धन्विना।
व्यराजत रणे पार्थः किंशुकः पुष्पवानिव ॥ ३६ ॥
दुःशासनं ततः क्रुद्धः पीडयामास पाण्डवः।
पर्वणीव सुसंक्रुद्धो राहुः पूर्णं निशाकरम् ॥ ३७ ॥
पीड्यमानो बलवता पुत्रस्तव विशाम्पते।
विव्याध समरे पार्थं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥ ३८ ॥
तस्य पार्थो धनुश्छित्वा रथं चाऽस्य त्रिभिः शरैः।
आजघान ततः पश्चात्पुत्रं ते निशितैः शरैः ॥ ३९ ॥

युद्ध हुआ था। (२७–३१)

महाराज ! दुःशासनने अर्जुनपर तीन बाण और कृष्णके ऊपर बीस बाणोंसे प्रहार किया। तिसके अनन्तर अर्जुनने कृष्णको पीडित देखकर सौ बाणोंसे दुःशासनको विद्ध किया; वे सब बाण दुःशासनके कवचको भेद कर उनके रुधिरको पीने लगे॥ तब दुःशासनने क्रुद्ध होकर पांच बाणोंसे अर्जुनका ललाट विद्ध किया॥ (३२–३४)

महाराज ! जैसे सुमेरु पर्वत बहुत ऊंचे शृङ्गसे शोभित होता है, वैसे ही अर्जुन भी माथेमें विद्ध हुए उन बाणों-से संग्राम भूमि में शोभायमान हुए॥ महाधनुर्द्धारी अर्जुन दुःशासन के बा-णोंसे अत्यन्त विद्ध होकर फूले हुए पलाश वृक्षके समान रणभूमि में दिखाई देने लगे॥ अनन्तर जैसे पूर्णमासीके दिन राहु अत्यन्त क्रुद्ध होकर चन्द्रमा-को पीडित करता है, वैसे ही अर्जुन क्रुद्ध होकर दुःशासनको पीडित करने लगे॥ (३५– ३७)

हे प्रजानाथ ! दुःशासनने अर्जुनके बाणोंसे पीडित होकर शिलापर घिसे हुए कङ्क पत्र शोभित बाणोंसे अर्जुन को फिर विद्ध किया॥ तब अर्जुनने

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय भीष्मस्य प्रमुखे स्थितः ।
अर्जुनं पञ्चविंशत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ४० ॥
तस्य क्रुद्धो महाराज पाण्डवः शत्रुतापनः ।
अप्रैषीद्विशिखान्घोरान्यमदण्डोपमान्बहून् ॥ ४१ ॥
अप्राप्तानेव तान्बाणांश्चिच्छेद तनयस्तव ।
यतमानस्य पार्थस्य तदद्भुतमिवाऽभवत् ॥ ४२ ॥
पार्थं च निशितैर्बाणैरविध्यत्तनयस्तव ।
ततः क्रुद्धो रणे पार्थः शरान्सन्धाय कार्मुके ॥ ४३ ॥
प्रेषयामास समरे स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।
न्यमज्जंस्ते महाराज तस्य काये महात्मनः ॥ ४४ ॥
यथा हंसा महाराज तडागं प्राप्य भारत ।
पीडितश्चैव पुत्रस्ते पाण्डवेन महात्मना ॥ ४५ ॥
हित्वा पार्थं रणे तूर्णं भीष्मस्य रथमाव्रजत् ।
अगाधे मज्जतस्तस्य द्वीपो भीष्मोऽभवत्तदा ॥ ४६ ॥
प्रतिलभ्य ततः संज्ञां पुत्रस्तव विशाम्पते ।

तीन बाणोंसे दुःशासनका धनुष और रथ काट कर उनको अनेक बाणोंसे विद्ध किया ॥ फिर दुःशासनने दूसरा धनुष ग्रहण करके भीष्मके सम्मुख स्थित हुए अर्जुनकी दोनों भुजा और वक्षस्थल में पचीस बाणोंसे प्रहार किया ॥ ३८-४०

तिसके अनन्तर अर्जुनने अत्यन्त क्रुद्ध होकर धनुषपर उत्तम शिलासे घिसे हुए चोखे सुवर्ण युक्त अनेक बाणोंको चढा कर दुःशासनकी ओर चलाया। ४१-४४

हे राजन्! जैसे हंसोंका समूह तालाब को पाकर उसमें उतरता है, वैसे ही

अवारयत्ततः शूरो भूय एव पराक्रमी ॥ ४७ ॥
शरैः सुनिशितैः पार्थं यथा वृत्रं पुरन्दरः ।
निर्बिभेद महाकायो विव्यथे नैव चाऽर्जुनः ॥ ४८ ॥ [५१४०]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि अर्जुनदुःशासनसमागमे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

सञ्जय उवाच--- सात्यकिं दंशितं युद्धे भीष्मायाऽभ्युद्यतं रणे ।
आर्ष्यशृङ्गिर्महेष्वासो वारयामास संयुगे ॥ १ ॥
माधवस्तु सुसंक्रुद्धो राक्षसं नवभिः शरैः ।
आजघान रणे राजन्प्रहसन्निव भारत ॥ २ ॥
तथैव राक्षसो राजन्माधवं नवभिः शरैः ।
अर्दयामास राजेन्द्र संक्रुद्धः शिनिपुङ्गवम् ॥ ३ ॥
शैनेयः शरसङ्घं तु प्रेषयामास संयुगे ।
राक्षसाय सुसंक्रुद्धो माधवः परवीरहा ॥ ४ ॥
ततो रक्षो महाबाहुं सात्यकिं सत्यविक्रमम् ।
विव्याध विशिखैस्तीक्ष्णैः सिंहनादं ननाद च ॥ ५ ॥
माधवस्तु भृशं विद्धो राक्षसेन रणे तदा ।
वार्यमाणश्च तेजस्वी जहास च ननाद च ॥ ६ ॥
भगदत्तस्ततः क्रुद्धो माधवं निशितैः शरैः ।

अर्जुनको निवारण करने लगे। जैसे इन्द्रने वृत्रासुरको निवारण किया था, वैसे ही भारी शरीर वाला तुम्हारा पुत्र दुःशासन उत्तम शिला पर घिसे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे अर्जुनको विद्ध करने लगा, परन्तु उससे अर्जुन पीडित नहीं हुए ॥ (४४-४८) [५१४०]

भीष्मपर्वमें एकसौ दस अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें एकसौ ग्यारह अध्याय ।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! महाधनुर्द्धारी ऋष्यशृङ्ग पुत्र राक्षस अलम्बुष भीष्मकी रक्षाके निमित्त उनके सम्मुख उपस्थित होकर बलवान् सात्यकिको युद्धसे निवारण करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥ यदुकुलनन्दन सात्यकिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हसते हंसते नौ बाणोंसे राक्षस अलम्बुषको पीडित किया ॥ उसी प्रकारसे राक्षसेन्द्र अलम्बुषने भी नौ बाणोंसे शिनिपौत्र सात्यकिके ऊपर प्रहार किया ॥ (१-३)

तब पराक्रमी सात्यकिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर अलम्बुषके ऊपर अपने बाणों को चलाना आरम्भ किया ॥ जिसके अनन्तर अलम्बुषने सत्य पराक्रमी महाबाहु सात्यकिको तीक्ष्ण बाणोंसे विद्ध

ताडयामास समरे तोत्त्रैरिव महागजम् ॥ ७ ॥
विहाय राक्षसं युद्धे शैनेयो रथिनां वरः ।
प्राग्ज्योतिषाय चिक्षेप शरान्सन्नतपर्वणः ॥ ८ ॥
तस्य प्राग्ज्योतिषो राजा माधवस्य महद्धनुः ।
चिच्छेद शतधारेण भल्लेन कृतहस्तवत् ॥ ९ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय वेगवत्परवीरहा ।
भगदत्तं रणे क्रुद्धं विव्याध निशितैः शरैः ॥ १० ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासः सृक्विणी परिसंलिहन् ।
शक्तिं कनकवैदूर्यभूषितामायसीं दृढाम् ॥ ११ ॥
यमदण्डोपमां घोरां चिक्षेप परमाहवे ।
तामापतन्तीं सहसा तस्य बाहुबलेरिताम् ॥ १२ ॥
सात्यकिः समरे राजन्द्विधा चिच्छेद सायकैः ।
ततः पपात सहसा महोल्केव हतप्रभा ॥ १३ ॥
शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते ।

करके सिंहनाद किया ॥ तेजस्वी सात्यकि उस समय अलम्बुष राक्षसके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर धीरज अवलम्बन करके सिंहनाद करने लगे ॥ जिसके अनन्तर जैसे बड़े हाथीको अंकुशसे पीड़ित करते हैं, उसी भांतिसे भगदत्त ने क्रुद्ध होकर शिलापर घिसे हुए तीक्ष्ण बाणोंसे सात्यकिके ऊपर प्रहार किया ॥ (४-७)

दूसरा वेगवान् धनुष ग्रहण करके तीक्ष्ण-बाणोंसे राजा भगदत्तको विद्ध किया ॥ (८-१०)

महाधनुर्धारी सात्यकि के बाणों से अत्यन्त विद्ध होकर होठोंको चाटते हुए सुवर्णभूषित लोहमयी यमदण्डके समान महा भयङ्कर एक दृढ शक्ति सात्यकिकी ओर चलाई। सात्यकिने भगदत्तके हाथसे छूटी हुई उस शक्तिको शीघ्रताके सहित

महता रथवंशेन वारयामास माधवम् ॥ १४ ॥
तथा परिवृतं दृष्ट्वा वार्ष्णेयानां महारथम् ।
दुर्योधनो भृशं क्रुद्धो भ्रातॄन्सर्वानुवाच ह ॥ १५ ॥
तथा कुरुत कौरव्या यथा वः सात्यको युधि ।
न जीवन्प्रतिनिर्याति महतोऽस्माद्रथव्रजात् ॥ १६ ॥
तस्मिन्हते हतं मन्ये पाण्डवानां महद्बलम् ।
तथेति च वचस्तस्य परिगृह्य महारथाः ॥ १७ ॥
शैनेयं योधयामासुर्भीष्मायाऽभ्युद्यतं रणे ।
काम्बोजराजो बलवान्वारयामास संयुगे ॥ १८ ॥
आर्जुनिं नृपतिर्विध्वा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
पुनरेव चतुःषष्ट्या राजन्विव्याध तं नृप ॥ १९ ॥
सुदक्षिणस्तु समरे पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं चाऽस्य नवभिरिच्छन्भीष्मस्य जीवितम् २०॥
तद्युद्धमासीत्सुमहत्तयोस्तत्र समागमे ।
यदाऽभ्यधावद्गाङ्गेयं शिखण्डी शत्रुकर्शनः ॥ २१ ॥

बडी भारी रथसेनाको सङ्ग लेकर सात्यकिको चारों ओरसे घेर लिया। वृष्णिवंशियोंके महारथ सात्यकिको रथियोंकी सेनासे घिरा हुआ देखकर राजा दुर्योधन अपने सब भाइयोंसे हर्ष-पूर्वक यह वचन बोले; हे कुरुनन्दन वीर पुरुषो! जिससे तुमलोगोंके निकट से सात्यकि इस रथ-सेनामेंसे जीतेजी न निकल सके, तुम लोग वैसा ही उपाय करो; मेरे विचारसे सात्यकिके मारे जाने पर पाण्डवोंकी महासेनाका नाश होगा ॥ (१४-१७)

तुम्हारे सब पुत्र दुर्योधनकी आज्ञाको मान कर भीष्मके समीप ही सात्यकिके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए। हे राजन्! पराक्रमी काम्बोजराज अभिमन्युको भीष्मकी ओर आते देखके उनको युद्धमे निवारण करने लगे। काम्बोजराज सुदक्षिणने भीष्मकी रक्षाकी अभिलाषा करके कोई एक तीक्ष्ण बाणोंसे अभिमन्युको विद्ध करके फिर चौंसठ बाणोंसे उन्हें विद्ध किया॥ और फिर पांच बाणोंसे उनको पुनर्वार विद्ध करके नौ बाणोंसे उनके सारथीको विद्ध किया॥ (१७-२०)

उन दोनोंके समागममें वहां पर महाघोर संग्राम हुआ; क्योंकि शत्रु नाशन शिखण्डी भीष्मकी ओर बढे थे।

विराटद्रुपदौ वृद्धौ वारयन्तौ महाचमूम् ।
भीष्मं च युधि संरब्धावाद्रवन्तौ महारथौ ॥ २२ ॥
अश्वत्थामा रणे क्रुद्धः समियाद्रथसत्तमः ।
ततः प्रववृते युद्धं तयोस्तस्य च भारत ॥ २३ ॥
विराटो दशभिर्भल्लैराजघान परन्तप ।
यतमानं महेष्वासं द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥ २४ ॥
द्रुपदश्च त्रिभिर्बाणैर्विव्याध निशितैस्तदा ।
गुरुपुत्रं समासाद्य प्रहरन्तौ महाबलौ ॥ २५ ॥
अश्वत्थामा ततस्तौ तु विव्याध बहुभिः शरैः ।
विराटद्रुपदौ वीरौ भीष्मं प्रति समुद्यतौ ॥ २६ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम वृद्धयोश्चरितं महत् ।
यद् द्रौणिसायकान्घोरान्प्रत्यवारयतां युधि ॥ २७ ॥
सहदेवं तथा यान्तं कृपः शारद्वतोऽभ्ययात् ।
यथा नागो वने नागं मत्तो मत्तमुपाद्रवत् ॥ २८ ॥
कृपश्च समरे शूरो माद्रीपुत्रं महारथम् ।
आजघान शरैस्तूर्णं सप्तत्या रुक्मभूषणैः ॥ २९ ॥

वृद्ध राजा विराट और द्रुपदने बड़ी सेनाको निवारण करके भीष्मपर आक्रमण किया ॥ रथियोंमें श्रेष्ठ अश्वत्थामा क्रुद्ध होकर विराट और द्रुपदकी ओर वेगसे दौड़े, फिर उन दोनों महारथियोंके सङ्ग अश्वत्थामाका संग्राम होने लगा। (२१-२३)

उसके बाणोंको बचाने लगे। अश्वत्थामाने भी भीष्मके समीप उपस्थित हुए द्रुपद और विराटको अनेक बाणोंसे विद्ध किया, उन दोनों बूढ़े राजाओंका उस समय मैंने यह अद्भुत पराक्रम देखा, कि वे दोनों अश्वत्थामाके धनुषसे छूटे हुए बाणोंका निवारण करने लगे। (२४-२७

तस्य माद्रीसुतश्चापं द्विधा चिच्छेद सायकैः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं विव्याध नवभिः शरैः ॥ ३० ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय समरे भारसाधनम् ।
माद्रीपुत्रं सुसंहृष्टो दशभिर्निशितैः शरैः ॥ ३१ ॥
आजघानोरसि क्रुद्ध इच्छन्भीष्मस्य जीवितम् ।
तथैव पाण्डवो राजञ्छारद्वतममर्षणम् ॥ ३२ ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो भीष्मस्य वधकांक्षया ।
तयोर्युद्धं समभवद्घोररूपं भयावहम् ॥ ३३ ॥
नकुलं तु रणे क्रुद्धो विकर्णः शत्रुतापनः ।
विव्याध सायकैः षष्ट्या रक्षन्भीष्मं महाबलम् ॥३४॥
नकुलोऽपि भृशं विद्धस्तव पुत्रेण धीमता ।
विकर्णं सप्तसप्तत्या निर्बिभेद शिलीमुखैः ॥ ३५ ॥
तत्र तौ नरशार्दूलौ भीष्महेतोः परन्तपौ ।
अन्योन्यं जघ्नतुर्वीरौ गोष्ठे गोवृषभाविव ॥ ३६ ॥
घटोत्कचं रणे यान्तं निघ्नन्तं तव वाहिनीम् ।
दुर्मुखः समरे प्रायाद्भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ ३७ ॥

सहदेवको सत्तर सुवर्ण भूषित बाणोंसे विद्ध किया ॥ सहदेवने अपने बाणोंको चला कर कृपाचार्यके धनुषको काट कर दो खण्ड कर दिया; कृपाचार्यका जब धनुष कट गया, तब सहदेवने नौ बाणोंसे उन्हें विद्ध किया ॥ २८-३०

अनन्तर कृपाचार्यने दूसरा धनुष लेकर भीष्मकी प्राणरक्षाकी अभिलाषा करके माद्रीपुत्र सहदेवकी छातीमें दश बाणोंसे प्रहार किया; पाण्डुपुत्र सहदेवने भी भीष्मके वधकी इच्छा करके कृपाचार्यकी छातीमें अपने तीक्ष्ण बाणोंसे प्रहार किया; उन दोनों महाबली पुरुष सिंहोंका अत्यन्त ही भयङ्कर महा घोर संग्राम होने लगा। (३१-३३)

भीष्मकी रक्षा करनेवाले महा बलवान् शत्रुनाशन विकर्णने रणभूमिमें क्रुद्ध होकर साठ बाणोंसे नकुलको विद्ध किया ॥ नकुलने भी तुम्हारे पुत्र विकर्णके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर सतत्तर बाणोंसे उन्हें विद्ध किया। शत्रुनाशन ये दोनों वीर भीष्मके निमित्त गौ और वृषभके समान होकर एक दूसरेके ऊपर अपने बाणोंको चलाने लगे। ३४-३६

पराक्रमी दुर्मुखने राक्षस घटोत्कचको सेनाका नाश करते हुए भीष्मकी ओर

हैडिम्बस्तु रणे राजन्दुर्मुखं शत्रुतापनम्।
आजघानोरसि क्रुद्धः शरेणाऽऽनतपर्वणा ॥ ३८ ॥
भीमसेनसुतं चापि दुर्मुखः सुमुखैः शरैः।
षष्ट्या वीरो नदन्हृष्टो विव्याध रणमूर्धनि ॥ ३९ ॥
धृष्टद्युम्नं तथा यान्तं भीष्मस्य वधकांक्षिणम्।
हार्दिक्यो वारयामास रथश्रेष्ठं महारथः ॥ ४० ॥
हार्दिक्यः पार्षतं चापि विध्वा पञ्चभिरायसैः।
पुनः पञ्चाशता तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ ४१ ॥
आजघान महाबाहुः पार्षतं तं महारथम्।
तं चैव पार्षतो राजन्हार्दिक्यं नवभिः शरैः ॥ ४२ ॥
विव्याध निशितैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः।
तयोः समभवद्युद्धं भीष्महेतोर्महाहवे ॥ ४३ ॥
अन्योन्यातिशयं युक्तं यथा वृत्रमहेन्द्रयोः।
भीमसेनं तथा यान्तं भीष्मं प्रति महारथम् ॥ ४४ ॥
भूरिश्रवाऽभ्ययात्तूर्णं तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत्।
सौमदत्तिरथो भीममाजघान स्तनान्तरे ॥ ४५ ॥

घट आते देखकर उसकी ओर अपने रथको चलाया। हिडिम्बापुत्र घटोत्कचने अपने तीक्ष्ण बाणोंसे दुर्मुखकी छातीमें प्रहार किया। शत्रुनाशन दुर्मुखने सिंह-नाद करके हर्षके सहित साठ चोखे बाणोंसे भीमसेनके पुत्र घटोत्कचको विद्ध किया॥ (३७–३९)

महारथ कृतवर्मा धृष्टद्युम्नको वधकी इच्छासे भीष्मकी ओर आते देखकर उनको निवारण करने लगे। धृष्टद्युम्नने लोहमय पांच बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध करके फिर "ठहरा रह! ठहरा रह!" कहके पचास बाणोंसे पुनः विद्ध किया। महारथ कृतवर्मा भी धृष्टद्युम्नको अपने बाणोंसे पीड़ित करने लगे। अनन्तर धृष्टद्युम्नने कङ्कपत्र युक्त भली भांति शिलापर घिसे हुए चोखे नौ बाणोंसे कृतवर्माको विद्ध किया॥ (४०–४३)

जैसे वृत्रासुरके सङ्ग इन्द्रका युद्ध हुआ था, वैसे ही भीष्मके निमित्त उन दोनोंमें घोर संग्राम होने लगा। सोमदत्तके पुत्र भूरिश्रवाने भीष्मके सम्मुख जाते हुए भीमसेनसे "ठहरा रह! ठहरा रह!" कहके आक्रमण किया। अनन्तर सौमदत्तिने [illegible] बाणोंसे भीमसेनकी छातीके बीचमें प्रहार किया।

नाराचेन सुतीक्ष्णेन रुक्मपुङ्खेन संयुगे ।
उरःस्थेन बभौ तेन भीमसेनः प्रतापवान् ॥ ४६ ॥
स्कन्दशक्त्या यथा क्रौञ्चः पुरा नृपतिसत्तम ।
तौ शरान्सूर्यसङ्काशान्कर्मारपरिमार्जितान् ॥ ४७ ॥
अन्योन्यस्य रणे क्रुद्धौ चिक्षिपाते नरर्षभौ ।
भीमो भीष्मवधाकांक्षी सौमदत्तिं महारथम् ॥ ४८ ॥
तथा भीष्मजये गृध्नुः सौमदत्तिस्तु पाण्डवम् ।
कृतप्रतिकृते यत्तौ योधयामासतू रणे ॥ ४९ ॥
युधिष्ठिरं तु कौन्तेयं महत्या सेनया वृतम् ।
भीष्माभिमुखमायान्तं भारद्वाजो न्यवारयत ॥ ५० ॥
द्रोणस्य रथनिर्घोषं पर्जन्यनिनदोपमम् ।
श्रुत्वा प्रभद्रका राजन्समकम्पन्त मारिष ॥ ५१ ॥
सा सेना महती राजन्पाण्डुपुत्रस्य संयुगे ।
द्रोणेन वारिता यत्ता न चचाल पदात्पदम् ॥ ५२ ॥
चेकितानं रणे यत्तं भीष्मं प्रति जनेश्वर ।
चित्रसेनस्तव सुतः क्रुद्धरूपमवारयत् ॥ ५३ ॥

हे राजन् ! पहिले समय क्रौञ्च नामका असुर जिस भांतिसे स्वामिकार्त्तिककी शक्तिसे विद्ध होकर शोभित हुआ था, प्रतापवान् भीमसेनकी छातीमें भी वह सब बाण उसी भांतिसे शोभित होने लगे। (४३-४७)

वे दोनों क्रुद्ध होकर शिलापर घिसे हुए सूर्य और चन्द्रमाके समान बाणोंको एक दूसरेकी ओर बार बार चलाने लगे। भीष्मका वध करनेकी इच्छासे भीम भूरिश्रवाके ऊपर और भूरिश्रवा भीष्मकी रक्षाके निमित्त भीमसेनके ऊपर अपने बाणोंको चलाते हुए अपने पराक्रमको प्रकाशित करने लगे। (४७—४९)

हे कुरुराज ! युधिष्ठिर बडी सेनाके सहित भीष्मकी ओर आते थे; परन्तु द्रोणाचार्य उन्हें मार्गहीमें निवारण करने लगे। प्रभद्रक सेनाके वीर योद्धा लोग द्रोणाचार्यके बादलके समान गर्जते हुए रथके शब्दको सुनकर कांपनेलगे॥ पाण्डुपुत्र युधिष्ठिरकी वह महा सेना द्रोणाचार्यके बाणोंसे पीडित होकर अनेक यत्न करके एक चरण मात्र भी आगे न बढ सकी। (५०-५२)

हे राजन्! तुम्हारे पुत्र चित्रसेन चेकितान को क्रुद्ध होकर भीष्मकी ओर आते

भीष्महेतोः पराक्रान्तश्चित्रसेनः पराक्रमी ।
चेकितानं परं शक्त्या योधयामास भारत ॥ ५४ ॥
तथैव चेकितानोऽपि चित्रसेनमवारयत् ।
तद्युद्धमासीत्सुमहत्तयोस्तत्र समागमे ॥ ५५ ॥
अर्जुनो वार्यमाणस्तु बहुशस्तत्र भारत ।
विमुखीकृत्य पुत्रं ते सेनां तव ममर्द ह ॥ ५६ ॥
दुःशासनोऽपि परया शक्त्या पार्थमवारयत् ।
कथं भीष्मं न नो हन्यादिति निश्चित्य भारत ॥ ५७ ॥
सा वध्यमाना समरे पुत्रस्य तव वाहिनी ।
लोड्यते रथिभिः श्रेष्ठैस्तत्र तत्रैव भारत ॥ ५८ ॥ [५१९८]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्वन्द्वयुद्धे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

सञ्जय उवाच— अथ वीरो महेष्वासो मत्तवारणविक्रमः ।
समादाय महच्चापं मत्तवारणवारणम् ॥ १ ॥
विधुन्वानो नरश्रेष्ठो द्रावयाणो वरूथिनीम् ।
पृतनां पाण्डवेयानां गाहमानो महाबलः ॥ २ ॥

देखकर उनका निवारण करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ पराक्रमी चित्रसेन भीष्मकी रक्षाके वास्ते चेकितानके सङ्ग अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करने लगे ॥ चेकितान भी चित्रसेनको बलपूर्वक निवारण करने लगे। उस रणभूमिमें उन दोनोंका महाभयङ्कर सङ्ग्राम होने लगा ॥ (५४–५५)

वध न करसके" अपनी परम शक्तिके अनुसार उन्हें निवारण करने लगे ॥ हे राजन्! पाण्डवोंके मुख्य मुख्य रथीलोग तुम्हारी सेनाके योद्धाओंका वध करते हुए उस महासेनाके वीरोंको तितर बितर करने लगे। (५६–५८) [५१९८]

भीष्मपर्वमें एकसौ ग्यारह अध्याय समाप्त ।

निमित्तानि निमित्तज्ञः सर्वतो वीक्ष्य वीर्यवान्।
प्रतपन्तमनीकानि द्रोणः पुत्रमभाषत ॥ ३ ॥
अयं हि दिवसस्तात यत्र पार्थो महाबलः।
जिघांसुः समरे भीष्मं परं यत्नं करिष्यति ॥ ४ ॥
उत्पतन्ति हि मे बाणा धनुः प्रस्फुरतीव च।
योगमस्त्राणि गच्छन्ति क्रूरे मे वर्तते मतिः ॥ ५ ॥
दिक्ष्वशान्तानि घोराणि व्याहरन्ति मृगद्विजाः।
नीचैर्गृध्रा निलीयन्ते भारतानां चमूं प्रति ॥ ६ ॥
नष्टप्रभ इवाऽऽदित्यः सर्वतो लोहिता दिशः।
रसते व्यथते भूमिः कम्पतीव च सर्वशः ॥ ७ ॥
कङ्कगृध्रा बलाकाश्च व्याहरन्ति मुहुर्मुहुः।
शिवाश्चैवाऽशिवा घोरा वेदयन्त्यो महद्भयम् ॥ ८ ॥
पपात महती चोल्का मध्येनाऽऽदित्यमण्डलात्।
सकबन्धश्च परिघो भानुमावृत्य तिष्ठति ॥ ९ ॥
परिवेषस्तथा घोरश्चन्द्रभास्करयोरभूत्।

थे और उनके पुत्र अश्वत्थामाभी पाण्डवोंकी सेनाको अपने बाणोंसे जला रहे थे। (१—२)

उन्होंने उस समय सब ओर बुरे लक्षणोंको देखकर अपने पुत्र अश्वत्थामासे कहा, हे पुत्र! महा बलवान् अर्जुन जिस दिन भीष्मके वधके निमित्त परम यत्न करेंगे, आज वही दिन उपस्थित हुआ है क्योंकि मेरे बाण अपने आप ही तूणीरसे निकलकर गिर रहे हैं; धनुष कांप रहा है; सब अस्त्र चलनेकी इच्छा करते हैं; मेरा चित्त भी क्रूर कर्म करनेमें प्रवृत्त होरहा है। (३—५)

पशु और सब पक्षी चारों ओर भयङ्कर शब्द कर रहे हैं। गिद्ध कुरुसेनाकी ओर आकाशसे पृथ्वीपर उतर रहे हैं; सूर्य मानो प्रकाश रहित होगया है, दिशा सब लालवर्ण दीख पडती हैं; पृथ्वी मानो सब प्रकारसे घोर शब्दसे पीडित होकर कांप रही है॥ कंक, गिद्ध और बगुले बार बार भयङ्कर शब्द कर रहे हैं; चारों ओर सियार महा घोर शब्द करके अमङ्गल-सूचक वाणी बोलकर महा भय उत्पन्न कर रहे हैं। (५—८)

सूर्यमण्डलकी ओरसे बडे बडे उल्का गिर रहे हैं; कबन्धके सहित परिघ सूर्यको घेर रहा है; चन्द्रमा और सूर्यका मण्डल परिवेषसे भयङ्कर होकर [illegible]

वेदयानो भयं घोरं राज्ञां देहावकर्तनम् ॥ १० ॥
देवतायतनस्थाश्च कौरवेन्द्रस्य देवताः ।
कम्पन्ते च हसन्ते च नृत्यन्ति च रुदन्ति च ॥ ११ ॥
अपसव्यं ग्रहाश्चक्रुरलक्ष्माणं दिवाकरम् ।
अवाक्शिराश्च भगवानुपातिष्ठत चन्द्रमाः ॥ १२ ॥
वपूंषि च नरेन्द्राणां विगताभानि लक्षये ।
धार्तराष्ट्रस्य सैन्येषु न च भ्राजन्ति दंशिताः ॥ १३ ॥
सेनयोरुभयोश्चापि समन्ताच्छ्रूयते महान् ।
पाञ्चजन्यस्य निर्घोषो गाण्डीवस्य च निःस्वनः ॥ १४ ॥
ध्रुवमास्थाय बीभत्सुरुत्तमास्त्राणि संयुगे ।
अपास्याऽन्यान्रणे योधानभ्येष्यति पितामहम् ॥ १५ ॥
हृष्यन्ति रोमकूपाणि सीदतीव च मे मनः ।
चिन्तयित्वा महाबाहो भीष्मार्जुनसमागमम् ॥ १६ ॥
तं चेह निकृतिप्रज्ञं पाञ्चाल्यं पापचेतनम् ।
पुरस्कृत्य रणे पार्थो भीष्मस्याऽऽयोधनं गतः ॥ १७ ॥
अब्रवीच्च पुरा भीष्मो नाऽहं हन्यां शिखण्डिनम् ।

नाशके निमित्त महा भय दिखा रहा है ॥ कौरवोंमें श्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्रके देवालयके सब देवता कांपते, नाचते और रोदन करते हुए दिखाई देते हैं ॥ ग्रह सब बुरे लक्षणको दिखाते हुए सूर्यको दाहिनी और करके गमन कर रहे हैं, भगवान् चन्द्रमा अपने दोनों शृङ्गोंको नीचे करके उदय हो रहे हैं ॥ (८-१२)

शब्द सुनाई देता है ॥ इससे अर्जुन रणभूमि में उत्तम अस्त्रोंके आगेसे दूसरे सब योद्धाओंको त्यागकर निश्चय ही भीष्म पितामह पर आक्रमण करेगा ॥ (१३-१५)

हे पुत्र! भीमसेन और अर्जुनके समागमको विचार कर मेरा मन व्याकुल होरहा है और मेरे शरीरके रोम खड़े

स्त्री ह्येषा विहिता धात्रा दैवाच्च स पुनः पुमान् ॥१८॥
अमङ्गल्यध्वजश्चैव याज्ञसेनिर्महाबलः ।
न चाऽमङ्गलिके तस्मिन्प्रहरेदापगासुतः ॥ १९ ॥
एतद्विचिन्तयानस्य प्रज्ञा सीदति मे भृशम् ।
अभ्युद्यतो रणे पार्थः कुरुवृद्धमुपाद्रवत् ॥ २० ॥
युधिष्ठिरस्य च क्रोधो भीष्मश्चाऽर्जुनसङ्गतः ।
मम चाऽस्त्रसमारम्भः प्रजानामशिवं ध्रुवम् ॥ २१ ॥
मनस्वी बलवाञ्शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः ।
दूरपाती दृढेषुश्च निमित्तज्ञश्च पाण्डवः ॥ २२ ॥
अजेयः समरे चाऽपि देवैरपि सवासवैः ।
बलवान्बुद्धिमांश्चैव जितक्लेशो युधां वरः ॥ २३ ॥
विजयी च रणे नित्यं भैरवास्त्रश्च पाण्डवः ।
तस्य मार्गं परिहरन्द्रुतं गच्छ यतव्रत ॥ २४ ॥
पश्याऽस्यैतन्महाघोरे संयुगे वैशसं महत् ।
हेमचित्राणि शूराणां महान्ति च शुभानि च ॥ २५ ॥

कि विधाताने उसे पहिले स्त्रीरूपसे उत्पन्न किया था, वह दैवी घटनासे पुरुष होगया है; और महा बलवान याज्ञसेनि शिखण्डीकी ध्वजा भी अमाङ्गलिक है इसी कारणसे गङ्गापुत्र भीष्म शिखण्डीके ऊपर अपने अस्त्रोंको नहीं चलावेंगे । (१८-१९)

अर्जुन जो रणभूमिमें उपस्थित होकर कुरु वृद्ध भीष्मकी ओर वेगपूर्वक दौड रहा है, उससे मेरी बुद्धि कर्तव्य शून्य हो जाती है । युधिष्ठिरका क्रोध भीष्मके साथ अर्जुनका समागम, और मेरे अस्त्रोंका आरम्भ चलाना यह सब निश्चय ही प्रजाके अमङ्गलका कारण है ॥ पाण्डुनन्दन अर्जुन मनस्वी, बलवान, शूरवीर, अस्त्रोंके चलानेमें निपुण, अत्यन्त पराक्रमी, दूरतक अस्त्रोंको चलानेवाला, उत्तम और दृढ बाणोंको धारण करनेवाला, सब शकुन और लक्षणोंको जाननेवाला, युद्धमें इन्द्र आदि देवताओंसे भी न जीते जाने योग्य, बलवान, बुद्धिमान, जितेन्द्रिय, योद्धाओंमें श्रेष्ठ, सदा युद्धका जीतनेवाला और भयङ्कर अस्त्रोंको धारण करता है तुम उसके मार्गको रोकनेके लिये शीघ्रता सहित भीष्मके समीप गमन करो ॥ (२०-२४)

हे पुत्र ! आज तुम रणभूमिमें [illegible] मरनेवाले शूरवीरोंकी [illegible] होगी हुई

कवचान्यवदीर्यन्ते शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छिद्यन्ते च ध्वजाग्राणि तोमराश्च धनूंषि च ॥ २६ ॥
प्रासाश्च विमलास्तीक्ष्णाः शक्त्यश्च कनकोज्ज्वलाः ।
वैजयन्त्यश्च नागानां संक्रुद्धेन किरीटिना ॥ २७ ॥
नाऽयं संरक्षितुं कालः प्राणान्पुत्रोपजीविभिः ।
याहि स्वर्गं पुरस्कृत्य यशसे विजयाय च ॥ २८ ॥
रथनागहयावर्तां महाघोरां सुदुर्गमाम् ।
रथेन संग्रामनदीं तरत्येष कपिध्वजः ॥ २९ ॥
ब्रह्मण्यता दमो दानं तपश्च चरितं महत् ।
इहैव दृश्यते पार्थे भ्राता यस्य धनञ्जयः ॥ ३० ॥
भीमसेनश्च बलवान्माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो यस्य नाथो व्यवस्थितः ॥ ३१ ॥
तस्यैष मन्युप्रभवो धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।
तपोदग्धशरीरस्य कोपो दहति भारतीम् ॥ ३२ ॥
एष संदृश्यते पार्थो वासुदेवव्यपाश्रयः ।
दारयन्सर्वसैन्यानि धार्तराष्ट्राणि सर्वशः ॥ ३३ ॥

स्त्री ह्येषा विहिता धात्रा दैवाच्च स पुनः पुमान् ॥१८॥
अमङ्गल्यध्वजश्चैव याज्ञसेनिर्महाबलः ।
न चाऽमङ्गलिके तस्मिन्प्रहरेदापगासुतः ॥ १९ ॥
एतद्विचिन्तयानस्य प्रज्ञा सीदति मे भृशम् ।
अभ्युद्यतो रणे पार्थः कुरुवृद्धमुपाद्रवत् ॥ २० ॥
युधिष्ठिरस्य च क्रोधो भीष्मश्चाऽर्जुनसङ्गतः ।
मम चाऽस्त्रसमारम्भः प्रजानामशिवं ध्रुवम् ॥ २१ ॥
मनस्वी बलवाञ्शूरः कृतास्त्रो लघुविक्रमः ।
दूरपाती दृढेषुश्च निमित्तज्ञश्च पाण्डवः ॥ २२ ॥
अजेयः समरे चाऽपि देवैरपि सवासवैः ।
बलवान्बुद्धिमांश्चैव जितक्लेशो युधां वरः ॥ २३ ॥
विजयी च रणे नित्यं भैरवास्त्रश्च पाण्डवः ।
तस्य मार्गं परिहरन्द्रुतं गच्छ यतव्रत ॥ २४ ॥
पश्याऽद्यैतन्महाघोरे संयुगे वैशसं महत् ।
हेमचित्राणि शूराणां महान्ति च शुभानि च ॥ २५ ॥

कि विधाताने उसे पहिले स्त्रीरूपसे उत्पन्न किया था, वह दैवी घटनासे पुरुष होगया है; और महा बलवान याज्ञसेनि शिखण्डीकी ध्वजा भी अमाङ्गलिक है, इसी कारणसे गङ्गापुत्र भीष्म शिखण्डीके ऊपर अपने अस्त्रोंको नहीं चलावेंगे। (१८-१९)

अर्जुन जो रणभूमिमें उपस्थित होकर कुरु वृद्ध भीष्मकी ओर वेगपूर्वक दौड़ रहा है, इससे मेरी बुद्धि कर्तव्य शून्य हो जाती है। युधिष्ठिरका क्रोध भीष्मके साथ अर्जुनका समागम, और मेरे अस्त्रोंका चलाना यह सब निश्चय ही प्रजाके अमङ्गलका कारण है। पाण्डुनन्दन अर्जुन मनस्वी, बलवान्, शूरवीर, अस्त्रोंके चलानेमें निपुण, अत्यन्त पराक्रमी, दूरतक शस्त्रोंको चलानेवाला, उत्तम और दृढ बाणोंको धारण करनेवाला, सब शकुन और लक्षणोंको जाननेवाला, युद्धमें इन्द्र आदि देवताओंसे भी न जीते जाने योग्य, बलवान, बुद्धिमान, जितेन्द्रिय, योद्धाओंमें श्रेष्ठ, सदा युद्धको जीतनेवाला और सब भयङ्कर अस्त्रोंको धारण करता है, तुम उसके मार्गको छोड़नेके लिये शीघ्रता सहित भीष्मके समीप गमन करो। (२०-२४)

हे पुत्र! आज तुम रणभूमिमें महा भयानक शूरोंका क्षय होता हुआ

कवचान्यवदीर्यन्ते शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छिद्यन्ते च ध्वजाग्राणि तोमराश्च धनूंषि च ॥ २६ ॥
प्रासाश्च विमलास्तीक्ष्णाः शक्तयश्च कनकोज्ज्वलाः ।
वैजयन्त्यश्च नागानां संक्रुद्धेन किरीटिना ॥ २७ ॥
नाऽयं संरक्षितुं कालः प्राणान्पुत्रोपजीविभिः ।
याहि स्वर्गं पुरस्कृत्य यशसे विजयाय च ॥ २८ ॥
रथनागहयावर्तां महाघोरां सुदुर्गमाम् ।
रथेन संग्राममहीं तरत्येष कपिध्वजः ॥ २९ ॥
ब्रह्मण्यता दमो दानं तपश्च चरितं महत् ।
इहैव दृश्यते पार्थे भ्राता यस्य धनञ्जयः ॥ ३० ॥
भीमसेनश्च बलवान्माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।
वासुदेवश्च वार्ष्णेयो यस्य नाथो व्यवस्थितः ॥ ३१ ॥
तवैष मन्युप्रभवो धार्तराष्ट्रस्य दुर्मतेः ।
तपोदग्धशरीरस्य कोपो हन्ति भारतीम् ॥ ३२ ॥
एष संदृश्यते पार्थो वासुदेवव्यपाश्रयः ।
दारयन्सर्वसैन्यानि धार्तराष्ट्राणि सर्वशः ॥ ३३ ॥

देखोगे। अर्जुन क्रुद्ध होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे शरीरोंके सुवर्णभूषित उत्तम कवचोंको काटेगा और ध्वजा, तोमर, धनुष, प्रास, सुवर्ण भूषित तीक्ष्ण शक्ति और हाथियोंके ऊपरकी पताकाओंको अपने शरोंके बलसे काटकर गिरा देगा। (२५-२७)

भयङ्करी महासंग्राम नदीको रथरूपी नावसे तरकर उसके पार जाता है॥ जिस युधिष्ठिरमें ब्रह्मनिष्ठा, दम, दान, तपस्या और उत्तम चरित्र विद्यमान है, जिसके सखा और भ्राता अर्जुन, भीमसेन, नकुल और सहदेव हैं जिसके रक्षक [illegible] श्रीकृष्ण हैं, और

एतदालोक्यते सैन्यं क्षोभ्यमाणं किरीटिना ।
महोर्मिनद्धं सुमहत्तिमिनेव महाजलम् ॥ ३४ ॥
हाहाकिलकिलाशब्दाः श्रूयन्ते च चमूमुखे ।
याहि पाञ्चालदायादमहं यास्ये युधिष्ठिरम् ॥ ३५ ॥
दुर्गमं ह्यन्तरं राज्ञो व्यूहस्याऽमिततेजसः ।
समुद्रकुक्षिप्रतिमं सर्वतोऽतिरथैः स्थितैः ॥ ३६ ॥
सात्यकिश्चाऽभिमन्युश्च धृष्टद्युम्नवृकोदरौ ।
पर्यरक्षन्त राजानं यमौ च मनुजेश्वरम् ॥ ३७ ॥
उपेन्द्रसदृशः श्यामो महाशाल इवोद्गतः ।
एष गच्छत्यनीकाग्रे द्वितीय इव फाल्गुनः ॥ ३८ ॥
उत्तमास्त्राणि चाऽऽधत्स्व गृहीत्वा च महद्धनुः ।
पार्षतं याहि राजानं युध्यस्व च वृकोदरम् ॥ ३९ ॥
को हि नेच्छेत्प्रियं पुत्रं जीवन्तं शाश्वतीः समाः ।
क्षत्रधर्मं तु सम्प्रेक्ष्य ततस्त्वां नियुनज्म्यहम् ॥ ४० ॥
एष चापि रणे भीष्मो दहते वै महाचमूम् ।

चित्त कर रहा है ॥ जैसे तिमिंगिल मत्स्य महासागरकी तरङ्गको उठा कर दूर फेंकता है, वैसे ही अर्जुन सम्पूर्ण कौरवी सेनाको युद्धमें विमुख कर रहा है ॥ वह सुनो! सेनाके बीच हाहाकार शब्द मच रहा है, इससे हे पुत्र! तुम शिखण्डीके समीप गमन करो मैं युधिष्ठिरके सम्मुख युद्ध करनेके निमित्त जाता हूं ॥ (३३–३५)

अत्यन्त तेजस्वी राजा युधिष्ठिरके समुद्रके समान व्यूहके बीच गमन करना बहुत ही कठिन कार्य है; क्योंकि वह सब ओरसे रथिन तथा अतिरथ योद्धाओंसे युक्त है ॥ सात्यकि, अभिमन्यु, धृष्टद्युम्न, भीमसेन, नकुल और सहदेव राजा युधिष्ठिरकी रक्षा करते हैं ॥ इन्द्रके समान श्यामवर्ण और बड़े शालवृक्षके समान ऊंचा यह अभिमन्यु दूसरे अर्जुनके समान सेनाके आगे गमन कर रहा है ॥ इससे तुम दूसरे बड़े धनुष और उत्तम उत्तम अस्त्र शस्त्रोंको ग्रहण करके शिखण्डीके समीपमें जाओ, भीमसेनके सङ्ग युद्ध करो ॥ (३६–३९)

कौन पुरुष अपने प्यारे पुत्रके अनेक वर्ष तक जीते रहनेकी इच्छा नहीं करता, पर केवल [illegible] है। परन्तु मैं क्षत्रिय धर्मको देखते हुए ही तुमको इस युद्धमें नियुक्त करता हूं ॥ हे पुत्र!

युद्धेषु सहजस्तात यमस्य वरुणस्य च ॥ ४१ ॥ [५२३९]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि द्रोणाश्वत्थामसंवादे द्वादशाधिकशततमोऽध्याय ॥११२॥

सञ्जय उवाच— भगदत्तः कृपः शल्यः कृतवर्मा तथैव च ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ सैन्धवश्च जयद्रथः ॥ १ ॥
चित्रसेनो विकर्णश्च तथा दुर्मर्षणादयः ।
दशैते तावका योधा भीमसेनमयोधयन् ॥ २ ॥
महत्या सेनया युक्ता नानादेशसमुत्थया ।
भीष्मस्य समरे राजन्प्रार्थयाना महद्यशः ॥ ३ ॥
शल्यस्तु नवभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयत् ।
कृतवर्मा त्रिभिर्बाणैः कृपश्च नवभिः शरैः ॥ ४ ॥
चित्रसेनो विकर्णश्च भगदत्तश्च मारिष ।
दशभिर्दशभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयन् ॥ ५ ॥
सैन्धवश्च त्रिभिर्बाणैर्भीमसेनमताडयत् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥ ६ ॥
दुर्मर्षणस्तु विंशत्या पाण्डवं निशितैः शरैः ।
स तान्सर्वान्महाराज राजमानान्पृथक् पृथक् ॥ ७ ॥

यह भीष्म भी देखो यमराज और वरुण के समान अपने पराक्रमको प्रकाशित करके पाण्डवोंकी महासेनाको अपने शरों से जला रहे हैं ॥ (४०—४१) [५२३९]

भीष्मपर्वमें एकसौ बारह अध्याय समाप्त।

भीष्मके समीपमें भीमसेनसे युद्ध करने लगे ॥ (१—३)

शल्यने नौ, कृतवर्माने तीन और कृपाचार्यने नौ बाणोंसे भीमसेनके ऊपर प्रहार किया। चित्रसेन, विकर्ण और

प्रवीरान्सर्वलोकस्य धार्तराष्ट्रान्महारथान्।
जघान समरे वीरः पाण्डवः परवीरहा ॥ ८ ॥
सप्तभिः शल्यमाविध्यत्कृतवर्माणमष्टभिः।
कृपस्य सशरं चापं मध्ये चिच्छेद भारत ॥ ९ ॥
अथैनं छिन्नधन्वानं पुनर्विव्याध सप्तभिः।
विन्दानुविन्दौ च तथा त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥१०॥
दुर्मर्षणं च विंशत्या चित्रसेनं च पञ्चभिः।
विकर्णं दशभिर्बाणैः पञ्चभिश्च जयद्रथम् ॥ ११ ॥
विद्ध्वा भीमो नदन्हृष्टः सैन्धवं च पुनस्त्रिभिः।
अथाऽन्यद्धनुरादाय गौतमो रथिनां वरः ॥ १२ ॥
भीमं विव्याध संरब्धो दशभिर्निशितैः शरैः।
स विद्धो दशभिर्बाणैस्तोत्रैरिव महाद्विपः ॥ १३ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान्।
गौतमं ताडयामास शरैर्बहुभिराहवे ॥ १४ ॥
सैन्धवस्य तथाऽश्वांश्च सारथिं च त्रिभिः शरैः।
प्राहिणोन्मृत्युलोकाय कालान्तकसमद्युतिः ॥ १५ ॥

हताश्वात्तु रथात्तूर्णमवप्लुत्य महारथः ।
शरांश्चिक्षेप निशितान्भीमसेनस्य संयुगे ॥ १६ ॥
तस्य भीमो धनुर्मध्ये द्वाभ्यां चिच्छेद मारिष ।
भल्लाभ्यां भरतश्रेष्ठ सैन्धवस्य महात्मनः ॥ १७ ॥
स च्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ।
चित्रसेनरथं राजन्नारुरोह त्वरान्वितः ॥ १८ ॥
अत्यद्भुतं रणे कर्म कृतवांस्तत्र पाण्डवः ।
महारथाञ्छरैर्विद्ध्वा वारयित्वा च मारिष ॥ १९ ॥
विरथं सैन्धवं चक्रे सर्वलोकस्य पश्यतः ।
तदा न ममृषे शल्यो भीमसेनस्य विक्रमम् ॥ २० ॥
स सन्धाय शरांस्तीक्ष्णान्कर्मारपरिमार्जितान् ।
भीमं विद्ध्वाथ समरे तिष्ठ तिष्ठेति चाऽब्रवीत् ॥ २१ ॥
कृपश्च कृतवर्मा च भगदत्तश्च वीर्यवान् ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ चित्रसेनश्च संयुगे ॥ २२ ॥
दुर्मर्षणो विकर्णश्च सिन्धुराजश्च वीर्यवान् ।
भीमं ते विव्यधुस्तूर्णं शल्यहेतोररिन्दमाः ॥ २३ ॥
स च तान्प्रतिविव्याध पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ।

घोडोंसे सहित रथपरसे शीघ्र ही कूदे और भीमसेनके ऊपर अनेक तीक्ष्ण बाण चलाये परन्तु हे भरत श्रेष्ठ! भीमसेन ने दो भल्ल बाणोंसे महात्मा जयद्रथ का धनुष काट डाला ॥ तब जयद्रथ धनुषके कटने, घोडे और सारथीके मरनेपर शीघ्रताके सहित चित्रसेनके रथपर चढ गये ॥ हे राजन्! पाण्डुनन्दन भीमसेन रणभूमिमें उन सब महारथियोंको अपने बाणोंसे विद्ध करके अत्यन्त ही अद्भुत कर्म करते हुए ॥ १६-१९ ॥

[illegible]

जयद्रथको रथ रहित देखकर भीमसेनके पराक्रमको सहन नहीं किया ॥ उन्होंने "खडा रह!" कहके उत्तम पानी चढे हुए तीक्ष्ण बाणोंको धनुषपर चढा-कर भीमसेनकी ओर चलाया । कृपा-चार्य, कृतवर्मा, पराक्रमी भगदत्त, अवन्तिराज विन्द और अनुविन्द चित्रसेन, विकर्ण दुर्मर्षण और पराक्रमी जयद्रथ इत्यादि महारथी शल्यके निमित्त भीमसेनको अनेक बाणोंसे विद्ध करने लगे ॥ २०-२३ ॥

[illegible]

शल्यं विव्याध सप्तत्या पुनश्च दशभिः शरैः ॥ २४ ॥
तं शल्यो नवभिर्भित्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं चाऽस्य भल्लेन गाढं विव्याध मर्माणि ॥ २५ ॥
विशोकं प्रेक्ष्य निर्भिन्नं भीमसेनः प्रतापवान् ।
मद्रराजं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ २६ ॥
तथेतरान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ।
ताडयामास समरे सिंहवद्विननाद च ॥ २७ ॥
ते हि यत्ता महेष्वासाः पाण्डवं युद्धकोविदम् ।
त्रिभिस्त्रिभिरकुण्ठाग्रैर्भृशं मर्मस्वताडयन् ॥ २८ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासो भीमसेनो न विव्यथे ।
पर्वतो वारिधाराभिर्वर्षमाणैरिवाऽम्बुदैः ॥ २९ ॥
स तु क्रोधसमाविष्टः पाण्डवानां महारथः ।
मद्रेश्वरं त्रिभिर्बाणैर्भृशं विद्ध्वा महायशाः ॥ ३० ॥
कृपं च नवभिर्बाणैर्भृशं विद्ध्वा समन्ततः ।
प्राग्ज्योतिषं शतशश्चो राजन्विव्याध सायकैः ॥ ३१ ॥

तनस्तु सशरं चापं सात्वतस्य महात्मनः ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन चिच्छेद कृतहस्तवत् ॥ ३२ ॥
तथाऽन्यद्धनुरादाय कृतवर्मा वृकोदरम् ।
आजघान भ्रुवोर्मध्ये नाराचेन परन्तपः ॥ ३३ ॥
भीमस्तु समरे विध्वा शल्यं नवभिरायसैः ।
भगदत्तं त्रिभिश्चैव कृतवर्माणमष्टभिः ॥ ३४ ॥
द्वाभ्यां द्वाभ्यां तु विव्याध गौतमप्रभृतीन्रथान् ।
तेऽपि तं समरे राजन्विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥ ३५ ॥
स तथा पीड्यमानोऽपि सर्वशस्त्रैर्महारथैः ।
मत्वा तृणेन तांस्तुल्यान्विचचार गतव्यथः ॥ ३६ ॥
ते चापि रथिनां श्रेष्ठा भीमाय निशिताञ्शरान् ।
प्रेषयामासुरव्यग्राः शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ३७ ॥
तस्य शक्तिं महावेगां भगदत्तो महारथः ।
चिक्षेप समरे वीरः स्वर्णदण्डां महामते ॥ ३८ ॥
तोमरं सैन्धवो राजा पट्टिशं च महाभुजः ।
शतघ्नीं च कृपो राजञ्शरं शल्यश्च संयुगे ॥ ३९ ॥

अनन्तर अपने हाथोंकी शीघ्रतासे बाण चलाकर कृतवर्मा के धनुष को बाणके सहित काट दिया ॥ (३०-३२)

भीमसेन उस समय उन सम्पूर्ण महारथियोंके बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर भी कुछ चिन्ता न करके उन सब-

अथेनरे महेष्वासाः पञ्च पञ्च शिलीमुखान् ।
भीमसेनं समुद्दिश्य प्रेषयामासुरोजसा ॥ ४० ॥
तोमरं च द्विधा चक्रे क्षुरप्रेणाऽनिलात्मजः ।
पट्टिशं च त्रिभिर्बाणैश्चिच्छेद तिलकाण्डवत् ॥ ४१ ॥
स बिभेद शतघ्नीं च नवभिः कङ्कपत्रिभिः ।
मद्रराजप्रयुक्तं च शरं छित्वा महारथः ॥ ४२ ॥
शक्तिं चिच्छेद सहसा भगदत्तेरितां रणे ।
तथेनगाञ्शरान्घोराञ्शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४३ ॥
भीमसेनो रणश्लाघी त्रिधैकैकं समाच्छिनत् ।
तांश्च सर्वान्महेष्वासांस्त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥ ४४ ॥
ततो धनञ्जयस्तत्र वर्त्तमाने महारणे ।
आजगाम रथेनाऽऽजौ भीमं दृष्ट्वा महारथम् ॥ ४५ ॥
निघ्नन्तं समरे शत्रून्योधयानं च सायकैः ।
तौ तु तत्र महात्मानौ समेतौ वीक्ष्य पाण्डवौ ॥ ४६ ॥
न शशंसुर्जयं तत्र तावकाः पुरुषर्षभाः ।
अथार्जुनो रणे भीमं योधयन्तं महारथान् ॥ ४७ ॥

प्राग्ज्योतिषं च समरे सैन्धवं च जयद्रथम् ॥ २ ॥
चित्रसेनं विकर्णं च कृतवर्माणमेव च ।
दुर्मर्षणं च राजेन्द्र ह्यावन्त्यौ च महारथौ ॥ ३ ॥
एकैकं त्रिभिरानर्च्छत्कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
शरैरतिरथो युद्धे पीडयन्वाहिनीं तव ॥ ४ ॥
जयद्रथो रणे पार्थं विध्वा भारत सायकैः ।
भीमं विव्याध तरसा चित्रसेनरथे स्थितः ॥ ५ ॥
शल्यश्च समरे जिष्णुं कृपश्च रथिनां वरः ।
विव्यधाते महाराज बहुधा मर्मभेदिभिः ॥ ६ ॥
चित्रसेनादयश्चैव पुत्रास्तव विशाम्पते ।
पञ्चभिः पञ्चभिस्तूर्णं संयुगे निशितैः शरैः ॥ ७ ॥
आजघ्नुरर्जुनं संख्ये भीमसेनं च मारिष ।
तौ तत्र रथिनां श्रेष्ठौ कौन्तेयौ भरतर्षभौ ॥ ८ ॥
अपीडयेतां समरे त्रिगर्तानां महद्बलम् ।
सुशर्मापि रणे पार्थं शरैर्नवभिराशुगैः ॥ ९ ॥
ननाद बलवन्नादं त्रासयानो महद्बलम् ।
अन्ये च रथिनः शूरा भीमसेनधनञ्जयौ ॥ १० ॥

विसृजद्भिर्निशितैर्बाणैः रुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः ।
तेषां च रथिनां मध्ये कौन्तेयौ भरतर्षभौ ॥ ११ ॥
क्रीडमानौ रथोदारौ चित्ररूपौ व्यदृश्यताम् ।
आमिषेप्सू गवां मध्ये सिंहाविव मदोत्कटौ ॥ १२ ॥
छित्त्वा धनूंषि शूराणां शरांश्च बहुधा रणे ।
पातयामासतुर्वीरौ शिरांसि शतशो नृणाम् ॥ १३ ॥
रथाश्च बहवो भग्ना हयाश्च शतशो हताः ।
गजाश्च सगजारोहाः पेतुरुर्व्यां महाहवे ॥ १४ ॥
रथिनः सादिनश्चापि तत्र तत्र निषूदिताः ।
दृश्यन्ते बहवो राजन्वेपमानाः समन्ततः ॥ १५ ॥
हतैर्गजपदात्योघैर्वाजिभिश्च निषूदितैः ।
रथैश्च बहुधा भग्नैः समास्तीर्यत मेदिनी ॥ १६ ॥
छत्रैश्च बहुधा छिन्नैर्ध्वजैश्च विनिपातितैः ।
अङ्कुशैरपविद्धैश्च परिस्तोमैश्च भारत ॥ १७ ॥
केयूरैरङ्गदैर्हारै राङ्कवैर्मृदितैस्तथा ।
उष्णीषैश्चर्ष्टिभिश्चैव चामरव्यजनैरपि ॥ १८ ॥
तत्र तत्रापविद्धैश्च बाहुभिश्चन्दनोक्षितैः ।

वह उदार स्वभाववाले भीम और अर्जुन दोनों ही मानो गौओंके समूहमें मांसकी अभिलाष करनेवाले पराक्रमशील दो सिंहोंकी भांति सम्पूर्ण रथियोंके बीच क्रीडा करते हुए विचित्र दिखाई देने लगे ॥ (८-१२)

पडे। चारों ओर कितने ही रथी और घुडसवार शस्त्रोंसे पीडित होके पृथ्वी पर गिरते और कोई कम्पयुक्त दिखाई देते थे। (१३-१५)

ऊरुभिश्च नरेन्द्राणां समास्तीर्यत मेदिनी ॥ १९ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम रणे पार्थस्य विक्रमम् ।
शरैः संवार्य तान्वीरान्यज्जघान महाबलः ॥ २० ॥
पुत्रस्तु तव तं दृष्ट्वा भीमार्जुनपराक्रमम् ।
गाङ्गेयस्य रथाभ्याशमुपजग्मे महाबलः ॥ २१ ॥
कृपश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
विन्दानुविन्दावावन्त्यौ नाऽजहुः संयुगं तदा ॥ २२ ॥
ततो भीमो महेष्वासः फाल्गुनश्च महारथः ।
कौरवाणां चमूं घोरां भृशं दुद्रुवतू रणे ॥ २३ ॥
ततः कलिङ्गराजानामयुतान्यर्बुदानि च ।
धनञ्जयरथे तूर्णं पातयन्ति स्म भूमिपाः ॥ २४ ॥
ततस्तान्शरजालेन संनिवार्य महारथान् ।
पार्थः समन्तात्समरे प्रेषयामास मृत्यवे ॥ २५ ॥
ताडयन् समरे जिष्णुं कौलिङ्गश्च महारथः ।
आजघानोरसि क्रुद्धो भल्लैः सन्नतपर्वभिः ॥ २६ ॥
तस्य पार्थो धनुश्छित्त्वा हस्तावापं च पञ्चभिः ।

अथैनं सायकैस्तीक्ष्णैर्भृशं विव्याध मर्मणि ॥ २७ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय समरे भारसाधनम् ।
मद्रेश्वरो रणे जिष्णुं ताडयामास रोषितः ॥ २८ ॥
त्रिभिः शरैर्महाराज वासुदेवं च पञ्चभिः ।
भीमसेनं च नवभिर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत ॥ २९ ॥
ततो द्रोणो महाराज मागधश्च महारथः ।
दुर्योधनसमादिष्टौ तं देशमुपजग्मतुः ॥ ३० ॥
यत्र पार्थो महाराज भीमसेनश्च पाण्डवः ।
कौरव्यस्य महासेनां जघ्नतुः सुमहारथौ ॥ ३१ ॥
जयत्सेनस्तु समरे भीमं भीमायुधं युधि ।
विव्याध निशितैर्बाणैरष्टभिर्भरतर्षभ ॥ ३२ ॥
तं भीमो दशभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत ॥ ३३ ॥
उद्भ्रान्तैस्तुरगैः सोऽथ द्रवमाणैः समन्ततः ।
मागधोऽपहृतो राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥
द्रोणश्च विवरं दृष्ट्वा भीमसेनं शिलीमुखैः ।

उनके मर्मस्थानोंको अत्यन्त ही विद्ध किया ॥ पराक्रमी शल्यने एक दूसरा दृढ धनुष ग्रहण करके तीन बाणोंसे अर्जुनके ऊपर प्रहार करके फिर पांच बाणोंसे कृष्णको विद्ध किया, अनन्तर नौ बाणोंसे भीमसेनकी दोनों भुजा और वक्षस्थल विद्ध किया। २८—२९

हे राजन् ! अनन्तर महारथ मगधराज और द्रोणाचार्य दुर्योधनकी आज्ञासे जिस स्थानपर दोनों महारथी भीमसेन और अर्जुन कौरवोंकी सेनाका नाश कर रहे थे, उसी स्थानपर उपस्थित हुए । [illegible] ! जयत्सेनने [illegible] प्रचण्ड शस्त्रोंको धारण करनेवाले भीमसेनको उत्तम पानी चढे हुए आठ बाणोंसे विद्ध किया ॥ भीमसेनने उनको दस बाणोंसे विद्ध करके फिर पांच बाणोंसे विद्ध किया, अनन्तर एक तीक्ष्ण बाणसे उनके सारथीको मार कर पृथ्वी पर गिरा दिया । तब मगधराज जयत्सेनके रथके घोडे भ्रमित होकर चारों ओर दौडने लगे उससे वह सम्पूर्ण सेनाके सामने ही युद्धसे पृथक् हुए । ३०—३४

द्रोणाचार्यने छिद्र देखकर भीमसेनको [illegible] बाणोंसे विद्ध किया, [illegible]

अथैनं सायकैस्तीक्ष्णैर्भृशं विव्याध मर्मणि ॥ २७ ॥
अथाऽन्यद्धनुरादाय समरे भारसाधनम् ।
मद्रेश्वरो रणे जिष्णुं ताडयामास रोषितः ॥ २८ ॥
त्रिभिः शरैर्महाराज वासुदेवं च पञ्चभिः ।
भीमसेनं च नवभिर्बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ २९ ॥
ततो द्रोणो महाराज मागधश्च महारथः ।
दुर्योधनसमादिष्टौ तं देशमुपजग्मतुः ॥ ३० ॥
यत्र पार्थो महाराज भीमसेनश्च पाण्डवः ।
कौरव्यस्य महासेनां जघ्नतुः सुमहारथौ ॥ ३१ ॥
जयत्सेनस्तु समरे भीमं भीमायुधं युधि ।
विव्याध निशितैर्बाणैरष्टभिर्भरतर्षभ ॥ ३२ ॥
तं भीमो दशभिर्विद्ध्वा पुनर्विव्याध पञ्चभिः ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥ ३३ ॥
उद्भ्रान्तैस्तुरगैः सोऽथ द्रवमाणैः समन्ततः ।
मागधोऽपहृतो राजा सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥ ३४ ॥
द्रोणश्च विवरं दृष्ट्वा भीमसेनं शिलीमुखैः ।

उनके मर्मस्थानोंको अत्यन्त ही विद्ध किया ॥ पराक्रमी शल्यने एक दूसरा दृढ धनुष ग्रहण करके तीन बाणोंसे अर्जुनके ऊपर प्रहार करके फिर पांच बाणोंसे कृष्णको विद्ध किया। अनन्तर नौ बाणोंसे भीमसेनकी दोनों भुजा और वक्षस्थल विद्ध किया ॥ २६-२९ ॥

हे राजन् ! अनन्तर महारथ मगध-राज और द्रोणाचार्य दुर्योधनकी आज्ञासे जिस स्थानपर दोनों महारथी भीमसेन और अर्जुन कौरवोंकी महासेनाका नाश कर रहे थे, उसी स्थानपर उपस्थित हुए। हे भारत ! जयत्सेनने प्रचण्ड अस्त्रोंको धारण करने वाले भीमसेनको उत्तम पैने चोखे आठ बाणोंसे विद्ध किया ॥ भीमसेनने उनको दश बाणोंसे विद्ध करके फिर पांच बाणोंसे विद्ध किया, अनन्तर एक भल्ल बाणसे उनके सारथीको मारकर रथसे गिरा दिया। तब मगधराज जयत्सेनके रथके घोडे भ्रमित होकर चारों ओर दौडने लगे, उससे वह सम्पूर्ण सेनाके सम्मुख ही छूटके दूर हुए ॥ ३०-३४ ॥

द्रोणाचार्यने छिद्र देखकर भीमसेनको [illegible] बाणोंसे विद्ध किया, उनके

विव्याध बाणैर्निशितैः पञ्चषष्टिभिराशुगैः ॥ ३५ ॥
तं भीमः समरश्लाघी गुरुं पितृसमं रणे ।
विव्याध पञ्चभिर्भल्लैस्तथा षष्ट्या च भारत ॥ ३६ ॥
अर्जुनस्तु सुशर्माणं विद्ध्वा बहुभिराशुगैः ।
व्यधमत्तस्य तत्सैन्यं महाभ्राणि यथाऽनिलः ॥ ३७ ॥
ततो भीष्मश्च राजा च कौसल्यश्च बृहद्बलः ।
समवर्तन्त संक्रुद्धा भीमसेनधनञ्जयौ ॥ ३८ ॥
तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
अभ्यद्रवन्रणे भीष्मं व्यादितास्यमिवान्तकम् ॥ ३९ ॥
शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् ।
अभ्यद्रवत संहृष्टो भयं त्यक्त्वा महारथात् ॥ ४० ॥
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
अयोधयन्रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयैः ॥ ४१ ॥
तथैव तावकाः सर्वे पुरस्कृत्य यतव्रतम् ।
शिखण्डिप्रमुखान्पार्थान्योधयन्ति स्म संयुगे ॥ ४२ ॥
ततः प्रववृते युद्धं कौरवाणां भयानकम् ।
तत्र पाण्डुसुतैः सार्धं भीष्मस्य विजयं प्रति ॥ ४३ ॥

तावकानां जये भीष्मो ग्लह आसीद्विशां पते ।
तत्र हि द्यूतमासक्तं विजयायेतराय वा ॥ ४४ ॥
धृष्टद्युम्नस्तु राजेन्द्र सर्वसैन्यान्यचोदयत् ।
अभ्यद्रवत गाङ्गेयं मा भैष्ट रथसत्तमाः ॥ ४५ ॥
सेनापतिवचः श्रुत्वा पाण्डवानां वरूथिनी ।
भीष्मं समभ्ययात्तूर्णं प्राणांस्त्यक्त्वा महाहवे ॥ ४६ ॥
भीष्मोऽपि रथिनां श्रेष्ठः प्रतिजग्राह तां चमूम् ।
आपतन्तीं महाराज वेलामिव महोदधिः ॥ ४७ ॥ [५३३०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीमार्जुनपराक्रमे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

धृतराष्ट्र उवाच—कथं शान्तनवो भीष्मो दशमेऽहनि सञ्जय ।
अयुध्यत महावीर्यः पाण्डवैः सह सृञ्जयैः ॥ १ ॥
कुरवश्च कथं युद्धे पाण्डवान्प्रत्यवारयन् ।
आचक्ष्व मे महायुद्धं भीष्मस्याऽऽहवशोभिनः ॥ २ ॥
सञ्जय उवाच— कुरवः पाण्डवैः सार्धं यदयुध्यन्त भारत ।

तुम्हारी ओरके योद्धाओंके सङ्ग आपसमें एक दूसरेको जीतनेकी अभिलाषासे पाण्डवोंका संग्रामरूपी जुआ खेल आरम्भ हुआ। ॥ हे राजन्! इसमें आप लोगोंके जयके विषयमें भीष्म ही पण (बाजी) स्वरूप हुए। (४३-४४)

हे भारत! धृष्टद्युम्न सम्पूर्ण सेनाके पुरुषोंसे बोले, "हे रथिसत्तम क्षत्रिय पुरुषो! तुमलोग भय त्यागके भीष्मकी ओर चलो।" पाण्डवी सेना सेनापति धृष्टद्युम्नका वचन सुन प्राणकी [illegible] छोडके भीष्मकी ओर दौडी। [illegible] सम्पूर्ण सेनाको अपने अस्त्रोंके बलसे रोक दिया ॥ (४५-४७) [५३३०]

भीष्मपर्वमें [illegible] अध्याय समाप्त।

[illegible]

राजा धृतराष्ट्र बोले, हे सञ्जय! शान्तनुनन्दन महा बलवान् भीष्मने दशवें दिन पाण्डव और सृञ्जयोंके सहित किस प्रकारसे युद्ध किया था? और [illegible] उस दशवें दिन [illegible] किया था [illegible] (१-२)

सञ्जय बोले, हे भारत! [illegible] जिस प्रकारसे युद्ध किया था,

न हन्यां मानवश्रेष्ठान्संग्रामे सुबहूनिति ॥ ११ ॥
चिन्तयित्वा महाबाहुः पिता देवव्रतस्तव ।
अभ्याशस्थं महाराज पाण्डवं वाक्यमब्रवीत् ॥ १२ ॥
युधिष्ठिर महाप्राज्ञ सर्वशास्त्रविशारद ।
शृणुष्व वचनं तात धर्म्यं स्वर्ग्यं च जल्पतः ॥ १३ ॥
निर्विण्णोऽस्मि भृशं तात देहेनाऽनेन भारत ।
घ्नतश्च मे गतः कालः सुबहून्प्राणिनो रणे ॥ १४ ॥
तस्मात्पार्थं पुरोधाय पञ्चालान्सृञ्जयांस्तथा ।
मद्वधे क्रियतां यत्नो मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ १५ ॥
तस्य तन्मतमाज्ञाय पाण्डवः सत्यदर्शनः ।
भीष्मं प्रति ययौ राजा संग्रामे सह सृञ्जयैः ॥ १६ ॥
धृष्टद्युम्नस्ततो राजन्पाण्डवश्च युधिष्ठिरः ।
श्रुत्वा भीष्मस्य तां वाचं चोदयामासतुर्बलम् ॥ १७ ॥
अभिद्रवत युध्यध्वं भीष्मं जयत संयुगे ।
रक्षिताः सत्यसन्धेन जिष्णुना रिपुजिष्णुना ॥ १८ ॥
अयं चापि महेष्वासः पार्षतो वाहिनीपतिः ।

भीमसेनश्च समरे पालयिष्यति वो ध्रुवम् ॥ १९ ॥
मा वो भीष्माद्भयं किञ्चिदस्त्वद्य युधि सृञ्जयाः ।
ध्रुवं भीष्मं विजेष्यामः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥२०॥
ते तथा समयं कृत्वा दशमेऽहनि पाण्डवाः ।
ब्रह्मलोकपरा भूत्वा सञ्जग्मुः क्रोधमूर्छिताः ॥ २१ ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
भीष्मस्य पातने यत्नं परमं ते समाश्रिताः ॥ २२ ॥
ततस्तव सुतादिष्टा नानाजनपदेश्वराः ।
द्रोणेन सह पुत्रेण सहसेना महाबलाः ॥ २३ ॥
दुःशासनश्च बलवान्सह सर्वैः सहोदरैः ।
भीष्मं समरमध्यस्थं पालयाञ्चक्रिरे तदा ॥ २४ ॥
ततस्तु तावकाः शूराः पुरस्कृत्य महाव्रतम् ।
शिखण्डिप्रमुखान्पार्थान्योधयन्ति स्म संयुगे ॥ २५ ॥
चेदिभिस्तु सपाञ्चालैः सहितो वानरध्वजः ।
ययौ शान्तनवं भीष्मं पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥ २६ ॥
द्रोणपुत्रं शिनेर्नप्ता धृष्टकेतुस्तु पौरवम् ।

अभिमन्युः सहामात्यं दुर्योधनमयोधयत् ॥ २७ ॥
विराटस्तु सहानीकः सहसेनं जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रस्य दायादमाससाद परन्तप ॥ २८ ॥
मद्रराजं महेष्वासं सहसैन्यं युधिष्ठिरः ।
भीमसेनोऽभिगुप्तस्तु नागानीकमुपाद्रवत् ॥ २९ ॥
अप्रधृष्यमनावार्यं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
द्रौणिं प्रतिययौ यत्तः पाञ्चाल्यः सह सोदरैः ॥ ३० ॥
कर्णिकारध्वजं चैव सिंहकेतुररिन्दमः ।
प्रत्युज्जगाम सौभद्रं राजपुत्रो बृहद्बलः ॥ ३१ ॥
शिखण्डिनं च पुत्रास्ते पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
राजभिः समरे पार्थमभिपेतुर्जिघांसवः ॥ ३२ ॥
तस्मिन्नतिमहाभीमे सेनयोर्वै पराक्रमे ।
सम्प्रधावत्स्वनीकेषु मेदिनी समकम्पत ॥ ३३ ॥
तान्यनीकान्यनीकेषु समसज्जन्त भारत ।
तावकानां परेषां च दृष्ट्वा शान्तनवं रणे ॥ ३४ ॥

और अभिमन्यु अनुयायी और सेवकोंके सहित दुर्योधनके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ राजा विराट अपनी सेनाको लेकर सैन्य-युक्त जयद्रथसे और वार्धक्षत्रिके जामाताने विचित्र बाण और धनुष धारण करनेवाले तुम्हारे पुत्र चित्रसेनके सङ्ग युद्ध करना आरम्भ किया ॥ युधिष्ठिर अपनी सेनाके सहित मद्रराज शल्यसे और भीमसेन अपनी प्रजासे रक्षित हाथियोंकी सेनाके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ (२८—२९)

महा पराक्रमी द्रोणाचार्यके पुत्रके सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ शत्रुनाशन सिंहध्वजवाले पुत्र राजपुत्र बृहद्बल सुभद्रानन्दनकी ओर दौड़े ॥ तुम्हारे सब पुत्र बहुतसे राजाओंके सहित एकत्र होकर शिखण्डी और अर्जुनके वधकी इच्छा करके उन दोनों वीरोंके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ (३०—३२)

हे भारत ! उन दोनों ओरकी महा सेना अत्यन्त भयानक रूपसे पराक्रम को प्रकट करने लगी रणभूमिमें एक

भीमसेनश्च समरे पालयिष्यति वो ध्रुवम् ॥ १९ ॥
मा वो भीष्माद्भयं किञ्चिदस्त्वद्य युधि सृञ्जयाः ।
ध्रुवं भीष्मं विजेष्यामः पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥२०॥
ते तथा समयं कृत्वा दशमेऽहनि पाण्डवाः ।
ब्रह्मलोकपरा भूत्वा सञ्जग्मुः क्रोधमूर्छिताः ॥ २१ ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
भीष्मस्य पातने यत्नं परमं ते समास्थिताः ॥ २२ ॥
ततस्तव सुतादिष्टा नानाजनपदेश्वराः ।
द्रोणेन सह पुत्रेण सहसेना महाबलाः ॥ २३ ॥
दुःशासनश्च बलवान्सह सर्वैः सहोदरैः ।
भीष्मं समरमध्यस्थं पालयाञ्चक्रिरे तदा ॥ २४ ॥
ततस्तु तावकाः शूराः पुरस्कृत्य महाव्रतम् ।
शिखण्डिप्रमुखान्पार्थान्योधयन्ति स्म संयुगे ॥ २५ ॥
चेदिभिस्तु सपञ्चालैः सहितो वानरध्वजः ।
ययौ शान्तनवं भीष्मं पुरस्कृत्य महाव्रतम् ॥ २६ ॥
द्रोणपुत्रं शिनेर्नप्ता धृष्टकेतुस्तु पौरवम् ।

धृष्टद्युम्न और भीमसेन भी तुम सबकी रक्षा करेंगें ॥ (१६-१९)

हे सृञ्जय पुरुषो ! तुम लोग भीष्मसे तनिक भी मत डरो, हमलोग शिखण्डी-को आगे करके भीष्मको जीतेंगे, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ दशवें दिन पाण्डव लोग इसी प्रकारसे प्रतिज्ञा करके ब्रह्मलोकमें गमन करनेका निश्चय करके क्रुद्धचित्तसे शिखण्डी और अर्जुनको आगे करके भीष्मके वधके निमित्त यत्न पूर्वक उनकी ओर बढने लगे ॥ २०-२२

तिसके अनन्तर महाबली पराक्रमी नाना देशोंके राजा और अश्वत्थामाके सहित द्रोणाचार्य अपनी सेनाके सहित और बलवान् दुःशासन अपने सब भाईयोंको सङ्ग लेकर युद्धभूमिमें स्थित भीष्म पितामहकी रक्षा करने लगे ॥ तिसके अनन्तर तुम्हारी सेनाके योद्धा लोग भीष्मको आगे करके शिखण्डी आदि पञ्चाल देशीय वीरो और पाण्डवों के सङ्ग युद्ध करने लगे ॥ (२३-२५)

कपिध्वजावाले अर्जुनने शिखण्डी-को अपने आगे करके चेदि और पाञ्चालदेशीय योद्धाओंके सहित भीष्मके संमुख गमन किया ॥ शिनिपौत्र सात्यकि अश्वत्थामासे ; धृष्टकेतु पौरवके सङ्ग

अभिमन्युः सहामात्यं दुर्योधनमयोधयत् ॥ २७ ॥
विराटस्तु सहानीकः सहसैन्यं जयद्रथम् ।
वृद्धक्षत्रस्य दायादमाससाद परन्तप ॥ २८ ॥
मद्रराज महेष्वासं सहसैन्यं युधिष्ठिरः ।
भीमसेनोऽभिगुप्तस्तु नागानीकमुपाद्रवत् ॥ २९ ॥
अप्रधृष्यमनावार्यं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ।
द्रौणिं प्रतिययौ यत्तः पाञ्चाल्यः सह सोदरैः ॥ ३० ॥
कर्णिकारध्वजं चैव सिंहकेतुररिन्दमः ।
प्रत्युज्जगाम सौभद्रं राजपुत्रो बृहद्बलः ॥ ३१ ॥
शिखण्डिनं च पुत्रास्ते पाण्डवं च धनञ्जयम् ।
राजभिः समरे पार्थमभिपेतुर्जिघांसवः ॥ ३२ ॥
तस्मिन्नतिमहाभीमे सेनयोर्वै पराक्रमे ।
सम्प्रधावत्स्वनीकेषु मेदिनी समकम्पत ॥ ३३ ॥
तान्यनीकान्यनीकेषु समसज्जन्त भारत ।
तावकानां परेषां च दृष्ट्वा शान्तनवं रणे ॥ ३४ ॥

और अभिमन्यु अनुयायी और सेवकोंके सहित दुर्योधनके सङ्ग युद्ध करने लगे॥ राजा विराट अपनी सेनाको लेकर सैन्ययुक्त जयद्रथसे और वार्धक्षेमिके [illegible] नाना विचित्र बाण और धनुष धारण करनेवाले तुम्हारे पुत्र चित्रसेनके सङ्ग युद्ध करना आरम्भ किया॥ युधिष्ठिर अपनी सेनाके सहित मद्रराज शल्यसे और भीमसेन अपनी प्रजाके सहित हाथियोंकी सेनाके सङ्ग युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुए॥ (२६—२९)

महा पराक्रमी द्रोणाचार्यके पुत्रके सङ्ग युद्ध करने लगे॥ शत्रुनाशन सिंहध्वजावाले युक्त राजपुत्र बृहद्बल सुभद्रानन्दनकी ओर दौड़े॥ तुम्हारे सब पुत्र बहुतसे राजाओंके सहित एकत्र होकर शिखण्डी और अर्जुनके वधकी इच्छा करके उन दोनों वीरोंके सम्मुख उपस्थित हुए॥ (३०—३२)

हे भारत ! उस दोनों ओरकी महा सेना अत्यन्त भयानक रूपसे पराक्रम [illegible] हुई पृथ्वीको एक

ततस्तेषां प्रतप्तानामन्योन्यमभिधावताम् ।
प्रादुरासीन्महाशब्दो दिक्षु सर्वासु भारत ॥ ३५ ॥
शङ्खदुन्दुभिघोषश्च वारणानां च बृंहितैः ।
सिंहनादश्च सैन्यानां दारुणः समपद्यत ॥ ३६ ॥
सा च सर्वनरेन्द्राणां चन्द्रार्कसदृशी प्रभा ।
वीराङ्गदकिरीटेषु निष्प्रभा समपद्यत ॥ ३७ ॥
रजोमेघास्तु सञ्जज्ञुः शस्त्रविद्युद्भिरावृताः ।
धनुषां चापि निर्घोषो दारुणः समपद्यत ॥ ३८ ॥
बाणशङ्खप्रणादाश्च भेरीणां च महास्वनाः ।
रथघोषश्च सञ्जज्ञे सेनयोरुभयोरपि ॥ ३९ ॥
प्राशशक्त्यृष्टिसङ्घैश्च बाणौघैश्च समाकुलम् ।
निष्प्रकाशमिवाऽऽकाशं सेनयोः समपद्यत ॥ ४० ॥
अन्योन्यं रथिनः पेतुर्वाजिनश्च महाहवे ।
कुञ्जरान्कुञ्जरा जघ्नुः पादातांश्च पदातयः ॥ ४१ ॥
तत्राऽऽसीत्सुमहद्युद्धं कुरूणां पाण्डवैः सह ।
भीष्महेतोर्नरव्याघ्र श्येनयोरामिषे यथा ॥ ४२ ॥

एक दूसरेकी ओर यत्नपूर्वक दौडने लगे॥ उस समय सम्पूर्ण सेनाके बीच महाघोर शब्द सब दिशाओंमें उत्पन्न होने लगा। शङ्ख, नगाडे और ढोल आदि जुझाऊ बाजोंका शब्द और हाथियोंके चिङ्घाड-का शब्द तथा वीरोंका सिंहनाद सुनाई देने लगा। (३३–३६)

सम्पूर्ण राजाओंके उत्तम कवच और किरीट चन्द्रमा और सूर्यके समान प्रका-शित होने लगे, दोनों सेनाके दौडने पर जो धूलि उडी, वह बादलके समान दिखाई देने लगी उसमें वीरोंके शस्त्र बिजलीके समान दीख पडते थे। दोनों सेनाके धनुष, बाण शङ्ख भेरी और रथोंके चलनेका शब्द और वीर पुरुषों-के तर्जन गर्जनके शब्द चारों ओरसे सुन पडते थे। (३७–३९)

आकाश मण्डल दोनों सेनाके प्रास, शक्ति, ऋष्टि और बाणोंके समूहसे पूरित होकर दिखाई नहीं देता था; रथी रथियोंको और घुडसवार घुडसवारोंको मारकर पृथ्वीमें गिराने लगे; पैदल चलनेवाले योद्धा पदातिसेनाके वीरोंका वध करने लगे और हाथीवाले शूरवीर योद्धा गजसेनाके योद्धाओंको मारकर पृथ्वीमें गिराने लगे॥ हे राजन्! जैसे

तेषां समागमो घोरो बभूव युधि सङ्गतः ।
अन्योन्यस्य वधार्थाय जिगीषूणां महाहवे ॥४३॥ [५३८२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
भीष्मोपदेशे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

सञ्जय उवाच— अभिमन्युर्महाराज तव पुत्रमयोधयत् ।
महत्या सेनया युक्तो भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ १ ॥
दुर्योधनो रणे कार्ष्णिं नवभिर्नतपर्वभिः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः ॥ २ ॥
तस्य शक्तिं रणे कार्ष्णिर्मृत्योर्घोरां स्वसामिव ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो दुर्योधनरथं प्रति ॥ ३ ॥
तामापतन्तीं सहसा घोररूपां विशाम्पते ।
द्विधा चिच्छेद ते पुत्रः क्षुरप्रेण महारथः ॥ ४ ॥
तां शक्तिं पतितां दृष्ट्वा कार्ष्णिः परमकोपनः ।
दुर्योधनं त्रिभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥ ५ ॥
पुनश्चैनं शरैर्घोरैराजघान स्तनान्तरे ।

दशभिर्भरतश्रेष्ठ भरतानां महारथः ॥ ६ ॥
तद्युद्धमभवद्घोरं चित्ररूपं च भारत।
इन्द्रियप्रीतिजननं सर्वपार्थिवपूजितम् ॥ ७ ॥
भीष्मस्य निधनार्थाय पार्थस्य विजयाय च।
युयुधाते रणे वीरौ सौभद्रकुरुपुङ्गवौ ॥ ८ ॥
सात्यकिं रभसं युद्धे द्रौणिर्ब्राह्मणपुङ्गवः।
आजघानोरसि क्रुद्धो नाराचेन परन्तपः ॥ ९ ॥
शैनेयोऽपि गुरोः पुत्रं सर्वमर्मसु भारत।
अताडयदमेयात्मा नवभिः कङ्कवाजितैः ॥ १० ॥
अश्वत्थामा तु समरे सात्यकिं नवभिः शरैः।
त्रिंशता च पुनस्तूर्णं बाह्वोरुरसि चाऽर्पयत् ॥ ११ ॥
सोऽतिविद्धो महेष्वासो द्रोणपुत्रेण सात्वतः।
द्रोणपुत्रं त्रिभिर्बाणैराजघान महायशाः ॥ १२ ॥
पौरवो धृष्टकेतुं च शरैराच्छाद्य संयुगे।
बहुधा दारयाञ्चक्रे महेष्वासं महारथः ॥ १३ ॥
तथैव पौरवं युद्धे धृष्टकेतुर्महारथः।

दश बाण मारे, हे राजन्! सुभद्रापुत्र अभिमन्यु और कुरुराज दुर्योधन, इन दोनों वीरोंका जो भीष्मके वध तथा अर्जुनकी पराजयके निमित्त महा घोर युद्ध होने लगा, वह अत्यन्त ही विचित्र और सब लोगोंमें प्रशंसाके योग्य था, सम्पूर्ण राजा उन दोनों पुरुषसिंहोंकी प्रशंसा करने लगे॥ (५-८)

शत्रु नाशन ब्राह्मणश्रेष्ठ द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाने क्रुद्ध होकर सात्यकि-की छातीमें एक नाराच बाणसे प्रहार किया॥ हे भारत! सात्यकिने अश्वत्थामाके सम्पूर्ण मर्मस्थानों मे कङ्कपत्रोंसे युक्त नौ बाणोंसे प्रहार किया॥ अश्वत्थामाने भी सात्यकिके ऊपर नौ बाणोंको चला कर फिर शीघ्रताके सहित सात्यकिकी दोनों भुजा और छातीमें तीस बाणोंसे प्रहार किया॥ महायशस्वी महाधनुर्द्धारी सात्यकिने अश्वत्थामाके बाणोंसे अत्यन्त विद्ध होकर द्रोणाचार्यके पुत्र अश्वत्थामाके ऊपर फिर तीन बाणोंसे प्रहार किया॥ (९-१२)

महारथ पौरवने बडे धनुर्धारी धृष्टकेतुको अपने बाणोंसे अनेक स्थानमें विद्ध किया॥ तब महाभुज महारथ धृष्टकेतुने भी शीघ्रतासे तीस बाणोंसे पौरवको

त्रिंशता निशितैर्बाणैर्विव्याधाऽऽशु महाभुजः ॥ १४ ॥
पौरवस्तु धनुश्छित्त्वा धृष्टकेतोर्महारथः ।
ननाद बलवन्नादं विव्याध च शितैः शरैः ॥ १५ ॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय पौरवं निशितैः शरैः ।
आजघान महाराज त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥ १६ ॥
तौ तु तत्र महेष्वासौ महामात्रौ महारथौ ।
महता शरवर्षेण परस्परमविध्यताम् ॥ १७ ॥
अन्योन्यस्य धनुश्छित्त्वा हयान्हत्वा च भारत ।
विरथावसियुद्धाय समीयतुरमर्षणौ ॥ १८ ॥
आर्षभे चर्मणी चित्रे शतचन्द्रपुरस्कृते ।
तारकाशतचित्रे च निस्त्रिंशौ सुमहाप्रभौ ॥ १९ ॥
प्रगृह्य विमलौ राजंस्तावन्योन्यमभिद्रुतौ ।
वासितासङ्गमे यत्तौ सिंहाविव महावने ॥ २० ॥
मण्डलानि विचित्राणि गतप्रत्यागतानि च ।
चेरतुर्दर्शयन्तौ च प्रार्थयन्तौ परस्परम् ॥ २१ ॥
पौरवो धृष्टकेतुं तु शङ्खदेशे महासिना ।
ताडयामास सङ्क्रुद्धस्तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥ २२ ॥

चेदिराजोऽपि समरे पौरवं पुरुषर्षभम्।
आजघान शिताग्रेण जत्रुदेशे महासिना ॥ २३ ॥
तावन्योन्यं महाराज समासाद्य महाहवे।
अन्योन्यवेगाभिहतौ निपेततुररिन्दमौ ॥ २४ ॥
ततः स्वरथमारोप्य पौरवं तनयस्तव।
जयत्सेनो रथेनाऽऽजावपोवाह रणाजिरात् ॥ २५ ॥
धृष्टकेतुं तु समरे माद्रीपुत्रः प्रतापवान्।
अपोवाह रणे क्रुद्धः सहदेवः पराक्रमी ॥ २६ ॥
चित्रसेनः सुशर्माणं विध्वा बहुभिरायसैः।
पुनर्विव्याध तं षष्ट्या पुनश्च नवभिः शरैः ॥ २७ ॥
सुशर्मा तु रणे क्रुद्धस्तव पुत्रं विशाम्पते।
दशभिर्दशभिश्चैव विव्याध निशितैः शरैः ॥ २८ ॥
चित्रसेनश्च तं राजंस्त्रिशता नतपर्वभिः।
आजघान रणे क्रुद्धः स च तं प्रत्यविध्यत ॥ २९ ॥
भीष्मस्य समरे राजन्यशो मानं च वर्धयन्।
सौभद्रो राजपुत्रं तु बृहद्बलमयोधयत् ॥ ३० ॥

कहके धृष्टकेतुके ललाटमें अपनी बडी तलवारसे प्रहार किया; चेदिराज धृष्टकेतुने भी पुरुषोंमें मुख्य पौरवके ऊपर अपनी तलवार चलाई; हे राजन्! शत्रु नाशन दोनों शूरवीर इसी प्रकारसे आपसमें एक दूसरेके ऊपर खड्गका प्रहार करके अन्तमें दोनों अत्यन्त पीडित हो पृथ्वीमें गिरे ॥ तब तुम्हारे पुत्र जयत्सेनने पौरवको अपने रथ पर उठाके उन्हें रणभूमिमें पृथक् किया ॥ पराक्रमी प्रतापवान् माद्री पुत्र सहदेवने धृष्टकेतुको युद्ध भूमिमें पृथक् किया ॥ (२२—२६)

चित्रसेनने अनेक बाणोंसे सुशर्माको विद्ध करके फिर उन्हें साठ बाणोंसे विद्ध किया; उसके अनन्तर फिर दूसरी बार नौ बाणोंसे विद्ध किया। सुशर्माने भी क्रुद्ध होकर चित्रसेनको दश बाणोंसे विद्ध किया ॥ फिर भी चित्रसेन ने क्रुद्ध होकर तीस बाणोंसे सुशर्माके ऊपर प्रहार किया। इसी प्रकारसे भीष्मके निमित्त ये दोनों पुरुषसिंह यश और कीर्तिकी अभिलाष करके युद्ध करने लगे। (२७-३०)

हे राजन्! पराक्रमी अभिमन्यु भीष्मके निकट अर्जुनकी सहायताके

पार्थहेतोः पराक्रान्तो भीष्मस्याऽऽयोधनं प्रति ।
आर्जुनिं कोसलेन्द्रस्तु विध्वा पञ्चभिरायसैः ॥ ३१ ॥
पुनर्विव्याध विंशत्या शरैः सन्नतपर्वभिः ।
सौभद्रः कोसलेन्द्रं तु विव्याधाऽष्टभिरायसैः ॥ ३२ ॥
नाऽकम्पयत संग्रामे विव्याध च पुनः शरैः ।
कौसल्यस्य धनुश्चापि पुनश्चिच्छेद फाल्गुनिः ॥ ३३ ॥
आजघान शरैश्चापि त्रिंशता कङ्कपत्रिभिः ।
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय राजपुत्रो बृहद्बलः ॥ ३४ ॥
फाल्गुनिं समरे क्रुद्धो विव्याध बहुभिः शरैः ।
तयोर्युद्धं समभवद्भीष्महेतोः परन्तप ॥ ३५ ॥
संरब्धयोर्महाराज समरे चित्रयोधिनोः ।
यथा देवासुरे युद्धे बलिवासवयोरभूत ॥ ३६ ॥
भीमसेनो गजानीकं योधयन्बह्वशोभत ।
यथा शक्रो वज्रपाणिर्दारयन्पर्वतोत्तमान ॥ ३७ ॥
ते वध्यमाना भीमेन मातङ्गा गिरिसन्निभाः ।
निपेतुरुर्व्यां सहिता नादयन्तो वसुन्धराम् ॥ ३८ ॥

गिरिमात्रा हि ते नागा भिन्नाञ्जनचयोपमाः ।
विरेजुर्वसुधां प्राप्ता विकीर्णा इव पर्वताः ॥ ३९ ॥
युधिष्ठिरो महेष्वासो मद्रराजानमाहवे ।
महत्या सेनया गुप्तं पीडयामास सङ्गतम् ॥ ४० ॥
मद्रेश्वरश्च समरे धर्मपुत्रं महारथम् ।
पीडयामास संरब्धो भीष्महेतोः पराक्रमी ॥ ४१ ॥
विराटं सैन्धवो राजा विध्वा सन्नतपर्वभिः ।
नवभिः सायकैस्तीक्ष्णैस्त्रिंशता पुनरार्पयत् ॥ ४२ ॥
विराटश्च महाराज सैन्धवं वाहिनीपतिः ।
त्रिंशद्भिर्निशितैर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥ ४३ ॥
चित्रकार्मुकनिस्त्रिंशौ चित्रवर्मायुधध्वजौ ।
रेजतुश्चित्ररूपौ तौ संग्रामे मत्स्यसैन्धवौ ॥ ४४ ॥
द्रोणः पाञ्चालपुत्रेण समागम्य महारणे ।
महासमुदयं चक्रे शरैः सन्नतपर्वभिः ॥ ४५ ॥
ततो द्रोणो महाराज पार्षतस्य महद्धनुः ।
छित्वा पञ्चाशतेषूणां पार्षतं समविध्यत ॥ ४६ ॥

कर चिह्वाड मारते हुए पृथ्वीपर गिरने लगे ॥ श्यामवर्णके वे सब हाथी मरके पृथ्वीमें गिरनेपर कज्जल गिरिके समान प्रकाशित होने लगे ॥ ३७-३९

महा धनुर्धारी राजा युधिष्ठिर बड़ी भारी सेनासे रक्षित मद्रराज शल्यको पीडित करने लगे ॥ पराक्रमी शल्य भीष्म की रक्षाके निमित्त क्रुद्ध होकर धर्म पुत्र युधिष्ठिरको अपने बाणोंसे पीडित करने लगे ॥ राजा जयद्रथने विराटको सुवर्णदण्डयुक्त नौ बाणोंसे विद्ध किया। और फिर तीक्ष्ण तीस बाणोंसे विद्ध किया ॥ राजा विराटने सेनापति जयद्रथ की छातीमें शिलापर घिसेहुए तीस चोखे बाणोंसे प्रहार किया ॥ राजा विराट और सिन्धुराज जयद्रथ इन दोनों महारथोंके विचित्र धनुष, उत्तम तलवार, विचित्र कवच, विचित्र ध्वजा और अस्त्र शस्त्र भी विचित्र ही थे; इससे दोनों ही विचित्र रूपसे युद्ध करते हुए रणभूमिमें विराजमान हुए। (४०-४४)

हे राजन् ! द्रोणाचार्य सेनापति धृष्टद्युम्नके सम्मुख होकर अपने तीक्ष्ण बाणोंसे महा घोर संग्राम करने लगे ॥ द्रोणाचार्यने बाणोंसे धृष्टद्युम्नका धनुष काट दिया, फिर पचास बाण चलाकर

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणस्य मिषतो युद्धे प्रेषयामास सायकान् ॥ ४७ ॥
तान्शरान्शरघातेन चिच्छेद स महारथः ।
द्रोणो द्रुपदपुत्राय प्राहिणोत्पञ्च सायकान् ॥ ४८ ॥
ततः क्रुद्धो महाराज पार्षतः परवीरहा ।
द्रोणाय चिक्षेप गदां यमदण्डोपमां रणे ॥ ४९ ॥
तामापतन्तीं सहसा हेमपट्टविभूषिताम् ।
शरैः पञ्चाशता द्रोणो वारयामास संयुगे ॥ ५० ॥
सा छिन्ना बहुधा राजन्द्रोणचापच्युतैः शरैः ।
चूर्णीकृता विशीर्यन्ती पपात वसुधातले ॥ ५१ ॥
गदां विनिहतां दृष्ट्वा पार्षतः शत्रुतापनः ।
द्रोणाय शक्तिं चिक्षेप सर्वपारसवीं शुभाम् ॥ ५२ ॥
तां द्रोणो नवभिर्बाणैश्चिच्छेद युधि भारत ।
पार्षतं च महेष्वासं पीडयामास संयुगे ॥ ५३ ॥
एवमेतन्महायुद्धं द्रोणपार्षतयोरभूत् ।
भीष्मं प्रति महाराज घोररूपं भयानकम् ॥ ५४ ॥
अर्जुनः प्राप्य गाङ्गेयं पीडयन्निशितैः शरैः ।

अभ्यद्रवत संयत्तो वने सत्तमिव द्विपम् ॥ ५५ ॥
प्रत्युद्ययौ च तं राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
त्रिधा भिन्नेन नागेन मदान्धेन महाबलः ॥ ५६ ॥
तमापतन्तं सहसा महेन्द्रगजसन्निभम् ।
परं यत्नं समास्थाय बीभत्सुः प्रत्यपद्यत ॥ ५७ ॥
ततो गजगतो राजा भगदत्तः प्रतापवान् ।
अर्जुनं शरवर्षेण वारयामास संयुगे ॥ ५८ ॥
अर्जुनस्तु ततो नागमायान्तं रजतोपमैः ।
विमलैरायसैस्तीक्ष्णैरविध्यत महारणे ॥ ५९ ॥
शिखण्डिनं च कौन्तेयो याहि याहीत्यचोदयत ।
भीष्मं प्रति महाराज जह्येनमिति चाऽब्रवीत् ॥ ६० ॥
प्राग्ज्योतिषस्ततो हित्वा पाण्डवं पाण्डुपूर्वज ।
प्रययौ त्वरितो राजन्द्रुपदस्य रथं प्रति ॥ ६१ ॥
ततोऽर्जुनो महाराज भीष्ममभ्यद्रवद् द्रुतम् ।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य ततो युद्धमवर्तत ॥ ६२ ॥

संग्राम होने लगा ॥ (५२–५४)

अर्जुन गङ्गानन्दन भीष्मको देखके अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित करते हुए जैसे वनमें एक मतवारा हाथी, दूसरे मतवारे हाथीकी ओर जाता है, वैसेही उनकी ओर दौडे ॥ प्रतापवान् महा बलवान् राजा भगदत्त अपने महा मदान्ध हाथीपर चढके अर्जुनकी ओर वेगसे चले; उस हाथीके शरीरसे मद झरता था ॥ अर्जुन इन्द्रके ऐरावत हाथीके समान उस गज-राजको सम्मुख आते देखके अत्यन्त यत्नके सहित उसके सम्मुख उपस्थित हुए ॥ (५५-५७)

अनन्तर प्रतापी महाबलवान राजा भगदत्त अपने बाणोंकी वर्षासे अर्जुनको निवारण करने लगे ॥ राजा भगदत्तका हाथी जिस समय वेगपूर्वक अर्जुनकी ओर जारहा था, उस समय उन्होंने सुवर्णदण्डयुक्त लोहमय तीक्ष्ण बाणोंसे उसे विद्ध किया ॥ महाराज ! अर्जुन शिखण्डीको "जाओ, जाओ, भीष्मके निकट जाओ; उनका वध करो", ऐसा ही वचन कहने लगे ॥ (५८–६०)

राजा भगदत्त अर्जुनको त्याग कर शीघ्रताके सहित राजा द्रुपदके समीप उपस्थित हुए ॥ तब अर्जुन शिखण्डीको आगे करके शीघ्रताके सहित भीष्मके सम्मुख स्थित हुए ॥ उसके अनन्तर

ततस्ते तावकाः शूराः पाण्डवं रभसं युधि ।
समभ्ययावन्क्रोशन्तस्तदद्भुतमिवाभवत् ॥ ६३ ॥
नानाविधान्यनीकानि पुत्राणां ते जनाधिप ।
अर्जुनो व्यधमत्काले दिवीवाभ्राणि मारुतः ॥ ६४ ॥
शिखण्डी तु समासाद्य भरतानां पितामहम् ।
इषुभिस्तूर्णमव्यग्रो बहुभिः स समाचिनोत् ॥ ६५ ॥
रथाग्न्यगारश्चापार्चिरसिशक्तिगदेन्धनः ।
शरसङ्घमहाज्वालः क्षत्रियान्समरेऽदहत् ॥ ६६ ॥
यथाऽग्निः सुमहानिद्धः कक्षे चरति सानिलः ।
तथा जज्वाल भीष्मोऽपि दिव्यान्यस्त्राण्युदीरयन् ६७
सोमकांश्च रणे भीष्मो जघ्ने पार्थपदानुगान् ।
न्यवारयत तत्सैन्यं पाण्डवस्य महारथः ॥ ६८ ॥
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिः शितैः संनतपर्वभिः ।
नादयन्स दिशो भीष्मः प्रदिशश्च महाहवे ॥ ६९ ॥
पातयन्रथिनो राजन्हयांश्च सह सादिभिः ।

युद्ध होने लगा; तब तुम्हारी सेनाके शूरवीर रणभूमिमें अर्जुनकी ओर सिंह-नाद करते हुए दौड़े; उन सब वीरोंका दौड़ना अद्भुतरूपसे दिखाई देने लगा। (६१—६३)

और गदा उसके ईन्धन, और बाणरूपी महाज्वालाओंसे युक्त होकर क्षत्रिय योद्धाओंको भस्म करते थे॥ (६४—६६)

जैसे अग्नि वायुके संयोगसे कक्षको भस्म करता हुआ चारों ओर प्रकाशित

मुण्डतालवनानीव चकार स रथव्रजान् ॥ ७० ॥
निर्मनुष्यान्रथान्राजन्गजानश्वांश्च संयुगे।
चकार समरे भीष्मः सर्वशस्त्रभृतां वरः ॥ ७१ ॥
तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः।
निशम्य सर्वतो राजन्समकम्पन्त सैनिकाः ॥ ७२ ॥
अमोघा न्यपतन्बाणाः पितुस्ते मनुजेश्वर।
नाऽसज्जन्त शरीरेषु भीष्मचापच्युताः शराः॥ ७३ ॥
निर्मनुष्यान्रथान्राजन्सुयुक्ताञ्जवनैर्हयैः।
वातायमानानद्राक्षं ह्रियमाणान्विशाम्पते ॥ ७४ ॥
चेदिकाशिकरूषाणां सहस्राणि चतुर्दश।
महारथाः समाख्याताः कुलपुत्रास्तनुत्यजः ॥ ७५ ॥
अपरावर्तिनः शूराः सुवर्णविकृतध्वजाः।
संग्रामे भीष्ममासाद्य सवाजिरथकुञ्जराः ॥ ७६ ॥
जग्मुस्ते परलोकाय व्यादितास्यमिवाऽन्तकम्।
न तत्राऽऽसीद्रणे राजन्सोमकानां महारथः ॥ ७७ ॥

को मुण्डीत तालवनके समान कर रहे थे (६७-७०)

सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ भीष्म उस रण भूमिमें रथ हाथी और घोडेको मनुष्य रहित कर रहे थे॥ सम्पूर्ण सेनाके योद्धा उनके बिजलीके शब्दके समान धनुष टङ्कार शब्दको सुनकर भयसे कांप रहे थे ॥ हे प्रजानाथ ! तुम्हारे पिता भीष्म के बाण चारों ओर अमोघरूप से भ्रमण करते हुए दिखाई देते थे;वे सब बाण योद्धाओंके केवल शरीर मात्रमें लगके नहीं गिरे किन्तु शरीरके आवरण भेद कर निकलने लगे ॥ (७३-७४)

हे राजन् ! उस समय मैंने देखा,कि वेगवान् घोडोंके सहित भीष्मके बाणोंसे बहुतेरे मनुष्य मर कर पृथ्वीमें गिर पडे; कितने पुरुषोंके मरने पर उनके रथ के घोडे वायु वेगके समान रथको खींचते हुए इधर उधर दौडने लगे ॥ चेदि, काशि और करूष देशीय चौदह हजार उत्तम वंशमें उत्पन्न हुए शूरवीर महारथ योद्धा, जिनके रथ पर सुवर्णभूषित ध्वजा शोभित थी, और जो संग्राममें कभी पीछे नहीं हटते थे, वे सब अपने प्राणकी आशाको छोड कर यमराजके समान भीष्मके संमुख पहुंच कर रथ, हाथी और घोडोंके सहित परलोक सिधारे ॥ (७५-७७)

यः सम्प्राप्य रणे भीष्मं जीविते स मनो दधे ।
तांश्च सर्वान्रणे योधान्प्रेतराजपुरं प्रति ॥ ७८ ॥
नीतानमन्यन्त जना दृष्ट्वा भीष्मस्य विक्रमम् ।
न कश्चिदेनं समरे प्रत्युद्याति महारथः ॥ ७९ ॥
ऋते पाण्डुसुतं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
शिखण्डिनं च समरे पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥८०॥ [५४६२]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
सङ्कुलयुद्धे षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥

सञ्जय उवाच--- शिखण्डी तु रणे भीष्ममासाद्य पुरुषर्षभम् ।
दशभिर्निशितैर्भल्लैराजघान स्तनान्तरे ॥ १ ॥
शिखण्डिनं तु गाङ्गेयः क्रोधदीप्तेन चक्षुषा ।
सम्प्रैक्षत कटाक्षेण निर्दहन्निव भारत ॥ २ ॥
स्त्रीत्वं तस्य स्मरन्राजन्सर्वलोकस्य पश्यतः ।
नाऽऽजघान रणे भीष्मः स च तन्नावबुद्धवान् ॥ ३ ॥
अर्जुनस्तु महाराज शिखण्डिनमभाषत ।
अभिद्रवस्व त्वरितं जहि चैनं पितामहम् ॥ ४ ॥

किं ते विवक्षया वीर जहि भीष्मं महारथम् ।
न ह्यन्यमनुपश्यामि कश्चिद्यौधिष्ठिरे बले ॥ ५ ॥
यः शक्तः समरे भीष्मं प्रतियोद्धुमिहाऽऽहवे ।
ऋते त्वां पुरुषव्याघ्र सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥ ६ ॥
एवमुक्तस्तु पार्थेन शिखण्डी भरतर्षभ ।
शरैर्नानाविधैस्तूर्णं पितामहमवाकिरत् ॥ ७ ॥
अचिन्तयित्वा तान्बाणान्पिता देवव्रतस्तव ।
अर्जुनं समरे क्रुद्धं वारयामास सायकैः ॥ ८ ॥
तथैव च चमूं सर्वां पाण्डवानां महारथः ।
अप्रैषीत्स शरैस्तीक्ष्णैः परलोकाय मारिष ॥ ९ ॥
तथैव पाण्डवा राजन्सैन्येन महता वृताः ।
भीष्मं सञ्छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥ १० ॥
स समन्तात्परिवृतो भारतो भरतर्षभ ।
निर्ददाह रणे शूरान्वने वह्निरिव ज्वलन् ॥ ११ ॥
तत्राऽद्भुतमपश्याम तव पुत्रस्य पौरुषम् ।

पितामहका वध करो ॥ हे वीर ! तुम्हारी क्या बात है ! तुम भीष्म पितामहको मारके रथसे गिरा दो । हे पुरुषसिंह ! मै तुम्हारे समीपमें सत्य वचन करता हूं, कि राजा युधिष्ठिरकी सेनाके बीच तुम्हारे अतिरिक्त और ऐसा कोई भी शूरवीर योद्धा नहीं है, जो संग्राममें भीष्मके विरुद्ध उनके संमुख उपस्थित होके युद्ध कर सके ॥ " (४-६)

शिखण्डीने अर्जुनके मुंहसे इस प्रकार अपनी बडाई सुनके नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंको चलाके भीष्म पितामहको छिपा दिया ॥ तुम्हारे पिता देवव्रती भीष्मने शिखण्डीके चलाए हुए बाणों- की कुछ भी पर्वाह न करके क्रुद्ध होकर अर्जुनहीको युद्धमे निवारण करने लगे, और पाण्डवोंकी सेनाके दूसरे अनेक योद्धाओंको अपने बाणोंसे मारकर यमलोकमे भेजने लगे ॥ (७-९)

पाण्डवोंने भी महासेनाको लेकर जैसे बादलोंका समूह सूर्यको छिपा देता है वैसे ही भीष्म पितामहको चारों ओरसे घेरलिया ॥ महापराक्रमी भीष्म पाण्डवों की सेनामे चारों ओरसे घिरकर उन सब शूरवीरोंको इस प्रकार अपने अस्त्रोंसे जलाने लगे, जैसे अग्नि वनमें प्रकट होके संपूर्ण वनके वृक्षोंको जला देती है । उस रणभूमिमें मैने तुम्हारे पुत्र दुःशासन

अयोधयच्च यत्पार्थं जुगोप च पितामहम् ॥ १२ ॥
कर्मणा तेन समरे तव पुत्रस्य धन्विनः ।
दुःशासनस्य तुतुषुः सर्वे लोका महात्मनः ॥ १३ ॥
यदेकः समरे पार्थान्सार्जुनान्समयोधयत् ।
न चैनं पाण्डवा युद्धे वारयामासुरुल्बणम् ॥ १४ ॥
दुःशासनेन समरे रथिनो विरथीकृताः ।
सादिनश्च महेष्वासा हस्तिनश्च महाबलाः ॥ १५ ॥
विनिर्भिन्नाः शरैस्तीक्ष्णैर्निपेतुर्वसुधातले ।
शरातुरास्तथैवान्ये दन्तिनो विद्रुता दिशः ॥ १६ ॥
यथाऽग्निरिन्धनं प्राप्य ज्वलेद्दीप्तार्चिरुल्बणम् ।
तथा जज्वाल पुत्रस्ते पाण्डुसेनां विनिर्दहन् ॥ १७ ॥
तं भारतमहामात्रं पाण्डवानां महारथः ।
जेतुं नोत्सहते कश्चिन्नाऽभ्युद्यातुं कथंचन ॥ १८ ॥
ऋते महेन्द्रतनयाच्छ्वेताश्वात्कृष्णसारथेः ।
स हि तं समरे राजन्विजित्य विजयोऽर्जुनः ॥ १९ ॥

का यह आश्चर्यमय पराक्रम देखा, कि वह भीष्म पितामहकी रक्षा करने लगे और अर्जुनके सङ्ग युद्ध भी करते थे ॥ (१०-१२)

सवार योद्धा और उनके वाहन [illegible] बाणोंसे पीडित होके तथा [illegible] पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ कितने ही [illegible] बाणोंसे पीडित होके रणभूमिमें

भीष्ममेवाऽभिदुद्राव सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
विजितस्तव पुत्रोऽपि भीष्मबाह्वव्यपाश्रयः ॥ २० ॥
पुनः पुनः समाश्वस्य प्रायुध्यत मदोत्कटः ।
अर्जुनस्तु रणे राजन्योधयन्स्तवराजन ॥ २१ ॥
शिखण्डी तु रणे राजन्विव्याधैव पितामहम् ।
शरैरशनिसंस्पर्शैस्तथा सर्पविषोपमैः ॥ २२ ॥
न च स्म ते रुजं चक्रुः पितुस्तव जनेश्वर ।
स्मयमानस्तु गाङ्गेयस्तान्बाणाञ्जगृहे तदा ॥ २३ ॥
उष्णार्तो हि नरो यद्वज्जलधाराः प्रतीच्छति ।
तथा जग्राह गाङ्गेयः शरधाराः शिखण्डिनः ॥ २४ ॥
तं क्षत्रिया महाराज ददृशुर्घोरमाहवे ।
भीष्मं दहन्तं सैन्यानि पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २५ ॥
ततोऽब्रवीत्तव सुतः सर्वसैन्यानि मारिष ।
अभिद्रवत संग्रामे फाल्गुनं सर्वतो रणे ॥ २६ ॥
भीष्मो वः समरे सर्वान्पालयिष्यति धर्मवित् ।

हे राजन् ! विजय नाम युद्धमें प्रसिद्ध अर्जुन सब पुरुषोंके सामने ही दुःशासनको पराजित करके वेगपूर्वक भीष्मकी ओर बढे । तुम्हारे पुत्र दुःशासन पराजित होकर भी महा बलवान् भीष्मके बाहुबलका आसरा करके अपनी सेनाके पुरुषोंको धीरज देते हुए फिर अर्जुनके सङ्ग क्रुद्ध होकर युद्ध करनेलगे। २०-२१

शिखण्डी विषधर सर्प और वज्रके समान स्पर्श करनेवाले बाणोंसे भीष्म पितामहको विद्ध करने लगे; परन्तु शिखण्डीके धनुषसे छूटे हुए उन सम्पूर्ण बाणोंसे भीष्म पितामहको तनिक भी पीडा न हुई; वह हंसते हंसते शिखण्डीके बाणोंको ग्रहण करने लगे ॥ जैसे गर्मीसे दुःखित मनुष्य जलधाराको ग्रहण करने की इच्छा करता है, उसी प्रकारसे गङ्गानन्दन भीष्म शिखण्डीके बाणोंको ग्रहण करने लगे ॥ (२२-२४)

महाराज ! उस समय सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धा महात्मा भीष्मको अग्निके समान प्रचण्ड होकर सब पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीर योद्धाओंको अपने अस्त्रोंके बलसे जलाते देखने लगे ॥ तिसके अनन्तर राजा दुर्योधनने अपनी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंसे कहा, कि " तुम लोग सब भांतिसे अर्जुनपर आक्रमण करो ॥ धर्मात्मा भीष्म तुम सब लोगोंकी रक्षा

भीष्ममेवाऽभिदुद्राव सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
विजितस्तव पुत्रोऽपि भीष्मबाहुव्यपाश्रयः ॥ २० ॥
पुनः पुनः समाश्वस्य प्रायुध्यत मदोत्कटः ।
अर्जुनस्तु रणे राजन्योधयन्संव्यराजत ॥ २१ ॥
शिखण्डी तु रणे राजन्विव्याधैव पितामहम् ।
शरैरशनिसंस्पर्शैस्तथा सर्पविषोपमैः ॥ २२ ॥
न च स्म ते रुजं चक्रुः पितुस्तव जनेश्वर ।
स्मयमानस्तु गाङ्गेयस्तान्बाणाञ्जगृहे तदा ॥ २३ ॥
उष्णार्तो हि नरो यद्वज्जलधाराः प्रतीच्छति ।
तथा जग्राह गाङ्गेयः शरधाराः शिखण्डिनः ॥ २४ ॥
तं क्षत्रिया महाराज ददृशुर्घोरमाहवे ।
भीष्मं दहन्तं सैन्यानि पाण्डवानां महात्मनाम् ॥ २५ ॥
ततोऽब्रवीत्तव सुतः सर्वसैन्यानि मारिष ।
अभिद्रवत संग्रामे फाल्गुनं सर्वतो रणे ॥ २६ ॥
भीष्मो वः समरे सर्वान्पालयिष्यति धर्मवित् ।

हे राजन् ! विजय नाम युद्धमें प्रसिद्ध अर्जुन सब पुरुषोंके सामने ही दुःशासनको पराजित करके वेगपूर्वक भीष्मकी ओर बढ़े । तुम्हारे पुत्र दुःशासन पराजित होकर भी महा बलवान् भीष्मके बाहुबलका आसरा करके अपनी सेनाके पुरुषोंको धीरज देते हुए फिर अर्जुनके सङ्ग क्रुद्ध होकर युद्ध करने लगे। २०-२१

शिखण्डी विषधर सर्प और वज्रके समान स्पर्श करनेवाले बाणोंसे भीष्म पितामहको विद्ध करने लगे; परन्तु शिखण्डीके धनुषसे छूटे हुए उन सम्पूर्ण बाणोंसे भीष्म पितामहको तनिक भी पीड़ा न हुई, वरं हँसते हँसते शिखण्डीके बाणोंको ग्रहण करने लगे ॥ जैसे गर्मीसे दुःखित मनुष्य जलधाराको ग्रहण करनेकी इच्छा करता है, उसी प्रकारसे गङ्गानन्दन भीष्म शिखण्डीके बाणोंको ग्रहण करने लगे ॥ (२२-२४)

महाराज ! उस समय सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धा महात्मा भीष्मको अग्निके समान प्रचण्ड होकर सब पाण्डवोंकी सेनाके शूरवीर योद्धाओंको अपने अस्त्रोंके तेजसे जलाते देखने लगे ॥ तिसके अनन्तर राजा दुर्योधनने अपनी सेनाके सम्पूर्ण योद्धाओंसे कहा, कि " तुम लोग सब ओरसे अर्जुनपर आक्रमण करो । धर्मात्मा भीष्म तुम सब लोगोंकी रक्षा

ते भयं सुमहत्त्यक्त्वा पाण्डवान्प्रतियुध्यत ॥ २७ ॥
हेमतालेन महता भीष्मस्तिष्ठति पालयन् ।
सर्वेषां धार्तराष्ट्राणां समरे शर्म वर्म च ॥ २८ ॥
त्रिदशोऽपि समुद्युक्ता नाऽलं भीष्मं समासितुम् ।
किमु पार्था महात्मानं मर्त्यभूता महाबलाः ॥ २९ ॥
तस्माद् द्रवत मा योधाः फाल्गुनं प्राप्य संयुगे ।
अहमद्य रणे यत्तो योधयिष्यामि पाण्डवम् ॥ ३० ॥
सहितः सर्वतो यत्तैर्भवद्भिर्वसुधाधिपैः ।
तच्छ्रुत्वा तु वचो राजंस्तव पुत्रस्य धन्विनः ॥ ३१ ॥
सर्वे योधाः सुसंरब्धा बलवन्तो महाबलाः ।
ते विदेहाः कलिङ्गाश्च दाशेरकगणाश्च ह ॥ ३२ ॥
अभिपेतुर्निषादाश्च सौवीराश्च महारणे ।
बाह्लीका दरदाश्चैव प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥ ३३ ॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिबयोऽथ वसातयः ।
शाल्वाः शकास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह ॥ ३४ ॥
अभिपेतू रणे पार्थं पतङ्गा इव पावकम् ।

फेरो, इससे तुम सब लोग महाभय त्यागकर पाण्डवोंकी सेनाके सङ्ग युद्ध करनेके निमित्त आगे बढ़ो। (२५-२७)

और अजित योद्धा हैं, इससे सावधान होकर सब दृढ़ होकर युद्ध करो। मैं आज सन्नद्ध होके तुम सब लोगोंके सङ्ग

शलभा इव राजेन्द्र पार्थमप्रतिमं रणे।
एतान्सर्वान्सहानीकान्महाराज महारथान् ॥ ३५ ॥
दिव्यान्यस्त्राणि सञ्चिन्त्य प्रसन्धाय धनञ्जयः।
स तैरस्त्रैर्महावेगैर्ददाह सुमहाबलः ॥ ३६ ॥
शरप्रतापैर्बीभत्सुः पतङ्गानिव पावकः।
तस्य बाणसहस्राणि सृजतो दृढधन्विनः ॥ ३७ ॥
दीप्यमानमिवाऽऽकाशे गाण्डीवं समदृश्यत।
ते शरार्ता महाराज विप्रकीर्णमहाध्वजाः ॥ ३८ ॥
नाऽभ्यवर्तन्त राजानः सहिता वानरध्वजम्।
सध्वजा रथिनः पेतुर्हयारोहा हयैः सह ॥ ३९ ॥
सगजाश्च गजारोहाः किरीटिशरताडिताः।
ततोऽर्जुनभुजोत्सृष्टैरावृताऽऽसीद्वसुन्धरा ॥ ४० ॥
विद्रवद्भिश्च बहुधा बलै राज्ञां समन्ततः।
अथ पार्थो महाराज द्रावयित्वा वरूथिनीम् ॥ ४१ ॥

संमुख शीघ्रताके सहित आके उपस्थित हुए॥ (३१–३५)

हे भारत! महारथ अर्जुनने उन सब महारथियोंको सम्पूर्ण सेनाके सहित संमुख आया हुआ देख कर चिन्ता करके दिव्य अस्त्रोंको चलाया, उन अस्त्रोंसे अनेक बाण उत्पन्न हुए, और उन्हीं सब बाणोंसे दुर्योधनकी सेनाके सब योद्धा इस प्रकारसे भस्म हो गये, जैसे पतङ्ग अग्निमें जाकर जलके मर जाते है। महाधनुर्धारी अर्जुन जब सहस्रों बाणोंको अपने दिव्य अस्त्रोंसे उत्पन्न करके चलाने लगे, तब उनका गाण्डीव धनुष आकाशमें प्रकाशित होने लगा। (३५—३८)

महाराज! उन सब क्षत्रियोंके पीडित होने पर उनकी ध्वजा भी इधर उधर बाणोंसे कटके गिर पडी; वे सब लोग इकट्ठे होकर भी कपिध्वज अर्जुनके संमुख न होसके। रथी योद्धा लोग रथकी उत्तम ध्वजाके सहित, घुडसवार घोडोंके सङ्ग और गजपति योद्धा हाथियोंके सहित अर्जुनके बाणोंसे पीडित होके पृथ्वी पर गिरने लगे॥ अनन्तर अर्जुनकी भुजाओंसे छूटे हुए बाणोंसे अनेक राजाओंकी सेना चारों ओर भागती हुई दिखाई देने लगी॥ (३८–४१)

हे राजन्! अर्जुनने उस सम्पूर्ण सेनाको स्थिर [illegible] करके [illegible]

दुःशासनाय सुबहून्प्रेषयामास सायकान् ।
ते तु भित्त्वा नव सुतं दुःशासनमयोमुखाः ॥ ४२ ॥
धरणीं विविशुः सर्वे वल्मीकमिव पन्नगाः ।
हयांश्चाऽस्य ततो जघ्ने सारथिं च न्यपातयत् ॥ ४३ ॥
विविंशतिं च विंशत्या विरथं कृतवान्प्रभुः ।
आजघान भृशं चैव पञ्चभिर्नतपर्वभिः ॥ ४४ ॥
कृपं विकर्णं शल्यं च विद्ध्वा बहुभिरायसैः ।
चकार विरथांश्चैव कौन्तेयः श्वेतवाहनः ॥ ४५ ॥
एवं ते विरथाः सर्वे कृपः शल्यश्च मारिष ।
दुःशासनो विकर्णश्च तथैव च विविंशतिः ॥ ४६ ॥
सम्प्राद्रवन्त समरे निर्जिताः सव्यसाचिना ।
पूर्वाह्णे भरतश्रेष्ठ पराजित्य महारथान् ॥ ४७ ॥
प्रजज्वाल रणे पार्थो विधूम इव पावकः ।
तथैव शरवर्षेण भास्करो रश्मिवानिव ॥ ४८ ॥
अन्यानपि महाराज तापयामास पार्थिवान् ।
पराङ्मुखीकृत्य तथा शरवर्षैर्महारथान् ॥ ४९ ॥
प्रावर्तयत संग्रामे शोणितोदां महानदीम् ।

मध्येन कुरुसैन्यानां पाण्डवानां च भारत ॥ ५० ॥
गजाश्च रथसङ्घाश्च बहुधा रथिभिर्हताः ।
रथाश्च निहता नागैर्हयाश्चैव पदातिभिः ॥ ५१ ॥
अन्तरा च्छिद्यमानानि शरीराणि शिरांसि च ।
निपेतुर्दिक्षु सर्वासु गजाश्वरथयोधिनाम् ॥ ५२ ॥
छन्नमायोधनं राजन्कुण्डलाङ्गदधारिभिः ।
पतितैः पात्यमानैश्च राजपुत्रैर्महारथैः । ॥ ५३ ॥
रथनेमिनिकृत्तैश्च गजैश्चैवाऽवपोथितैः ।
पादाताश्चाऽप्यधावन्त साश्वाश्च हययोधिनः ॥ ५४ ॥
गजाश्च रथयोधाश्च परिपेतुः समन्ततः ।
विकीर्णाश्च रथा भूमौ भग्नचक्रयुगध्वजाः ॥ ५५ ॥
तद्गजाश्वरथौघानां रुधिरेण समुक्षितम् ।
छन्नमायोधनं रेजे रक्ताभ्रमिव शारदम् ॥ ५६ ॥
श्वानः काकाश्च गृध्राश्च वृका गोमायुभिः सह ।
प्रणेदुर्भक्ष्यमासाद्य विकृताश्च मृगद्विजाः ॥ ५७ ॥

उन्होंने महारथ वीरोंको अपने वाणों से पराजित करके संग्राम भूमिमें कुरु पाण्डवोंकी सेनाके बीच रुधिरकी नदी बहा दी ॥ हाथी घोडे और रथियोंका समूह बाजे बाजे स्थानों में अस्त्रोंसे मरके पृथ्वीमें गिर पडा. कितने ही रथी योद्धा हाथियोंसे और कितने ही घुडसवार शूरवीर पैदल चलनेवाले योद्धाओंके अस्त्रोंसे मरके पृथ्वीमें गिरे ॥ बहुतेरे हाथी, घोडे और रथियोंके शरीर और सिर बीचों बीच कटकर चारों ओर रण-भूमिमें पडे हुए दिखाई देते थे। (५० ५२)

हे राजन्! रुधिरसे कीचडमें हुए अनेक मरे हुए हाथी घोडे और रथके चक्रसे कटे हुए, तथा अस्त्र शस्त्रोंसे गिरते हुए मनुष्योंसे रणभूमि छिप गई॥ पैदल चलनेवाले शूरवीर योद्धा और घुडसवार चारों ओर दौडने लगे ॥ बहुतेरे रथी घुडसवार और गजपति चारों ओर वीरोंके अस्त्र शस्त्रोंसे मर कर पृथ्वीमें गिर पडे, और बहुतसे रथोंके चक्र, धुरे और ध्वजा टूट गई, वे सब टूटे हुए रथ इधर उधर पृथ्वीमें पडे हुए दीख पडते थे। (५३ ५६)

जैसे शरद् ऋतुमें लाल रङ्गके बादल आकाशमें शोभा पाते हैं, उसी भांति युद्धभूमि रथियोंके रुधिरसे लाल रङ्ग होकर प्रकाशित होने लगी। कौए, गिद्ध,

वबुर्बहुविधाश्चैव दिक्षु सर्वासु मारुताः ।
दृश्यमानेषु रक्षःसु भूतेषु च नदत्सु च ॥ ५८ ॥
काञ्चनानि च दामानि पताकाश्च महाधनाः ।
धूयमाना व्यदृश्यन्त सहसा मारुतेरिताः ॥ ५९ ॥
श्वेतच्छत्रसहस्राणि सध्वजाश्च महारथाः ।
विकीर्णाः समदृश्यन्त शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ६० ॥
सपताकाश्च मातङ्गा दिशो जग्मुः शरातुराः ।
क्षत्रियाश्च मनुष्येन्द्र गदाशक्तिधनुर्धराः ॥ ६१ ॥
समन्ततश्च दृश्यन्ते पतिता धरणीतले ।
ततो भीष्मो महाराज दिव्यमस्त्रमुदीरयन् ॥ ६२ ॥
अभ्यधावत कौन्तेयं मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
तं शिखण्डी रणे यान्तमभ्यद्रवत दंशितः ॥ ६३ ॥
ततः समाहरद्भीष्मस्तदस्त्रं पावकोपमम् ।
त्वरितः पाण्डवो राजन्मध्यमः श्वेतवाहनः ॥ ६४ ॥
निजघ्ने तावकं सैन्यं मोहयित्वा पितामहम् ॥ ६५ ॥[५५०७]

सञ्जय उवाच— समं व्यूढेष्वनीकेषु भूमिष्ठेष्वनिवर्तिनः ।
ब्रह्मलोकपराः सर्वे समपद्यन्त भारत ॥ १ ॥
नह्यनीकमनीकेन समसज्जत संकुले ।
रथा न रथिभिः सार्धं पादाता न पदातिभिः ॥ २ ॥
अश्वा नाऽश्वैरयुध्यन्त गजा न गजयोधिभिः ।
उन्मत्तवन्महाराज युध्यन्ते तत्र भारत ॥ ३ ॥
महान्व्यतिकरो रौद्रः सेनयोः समपद्यत ।
नरनागगणेष्वेवं विकीर्णेषु च सर्वशः ॥ ४ ॥
क्षये तस्मिन्महारौद्रे निर्विशेषमजायत ।
ततः शल्यः कृपश्चैव चित्रसेनश्च भारत ॥ ५ ॥
दुःशासनो विकर्णश्च रथानास्थाय भास्वरान् ।
पाण्डवानां रणे शूरा ध्वजिनीं समकम्पयन् ॥ ६ ॥
सा वध्यमाना समरे पाण्डुसेना महात्मभिः ।

तुम्हारी सेनाके योद्धाओं का वध करने लगा। (६२-६५) [५०२७]

भीष्मपर्वमें पचासवां अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें एकावनवां अध्याय।

सञ्जय बोले, हे राजन् ! दोनों सेना समानरूपसे व्यूह बद्ध हुई थीं सेनाके सब योद्धा युद्धमें पीछे न हटके ब्रह्मलोकमें गमन करनेकी इच्छा करके युद्ध करने लगे। जब महा घोर संग्राम उपस्थित हुआ, तब सेनाके शूरवीरोंने अपने समान पुरुषोंके सङ्ग युद्ध करने का विचार न किया; नहीं रथी रथी योंके साथ नहीं पैदल चलने वाले पैदल चलनेवालोंके साथ, न अश्व अश्वोंसे और न हाथी हाथियोंसे, सब योद्धा उन्मत्तकी समान होकर इधर उधर युद्ध करने लगे। (१-३)

दोनों सेनाका अत्यन्त भयङ्कर मर्यादा रहित विपरीत युद्ध होने लगा, उस महा घोर युद्धमें मनुष्य और हाथी घोड़े चारों ओर तितर बितर होके लड़ने लगे, तब पैदल चलनेवाले योद्धा, गजपति, रथी तथा घुड़सवारोंमें कोई विशेषता न रही; जिसने जिसको जहां अपने घातपर पाया, वहांपर ही उसका वध किया। (४-५)

इधर शल्य, कृपाचार्य, चित्रसेन दुःशासन और विकर्ण ये पांचों महारथी योद्धा अपने प्रकाशमान रथोंपर चढके पाण्डवोंकी सेना को कंपाने लगे॥ पाण्डवोंकी सेना इन पांचों महारथियों से [illegible] होकर रणभूमिमें

भ्राम्यते बहुधा राजन्मारुतेनेव नौर्जले ॥ ७ ॥
यथा हि शैशिरः कालो गवां मर्माणि कृन्तति ।
तथा पाण्डुसुतानां वै भीष्मो मर्माणि कृन्तति ॥ ८ ॥
तथैव तव सैन्यस्य पार्थेन च महात्मना ।
नवमेघप्रतीकाशाः पातिता बहुधा गजाः ॥ ९ ॥
मृद्यमानाश्च दृश्यन्ते पार्थेन नरयूथपाः ।
इषुभिस्ताड्यमानाश्च नाराचैश्च सहस्रशः ॥ १० ॥
पेतुरार्तस्वरं घोरं कृत्वा तत्र महागजाः ।
आनद्धाभरणैः कायैर्निहतानां महात्मनाम् ॥ ११ ॥
छन्नमायोधनं रेजे शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।
तस्मिन्नेव महाराज महावीरवरक्षये ॥ १२ ॥
भीष्मे च युधि विक्रान्ते पाण्डवे च धनञ्जये ।
ते पराक्रान्तमालोक्य राजन्युधि पितामहम् ॥ १३ ॥
अभ्यवर्तन्त ते पुत्राः सर्वे सैन्यपुरस्कृताः ।
इच्छन्तो निधनं युद्धे स्वर्गं कृत्वा परायणम् ॥ १४ ॥
पाण्डवानभ्यवर्तन्त तस्मिन्वीरवरक्षये ।

व्याकुल होके इस प्रकार चारो ओर घूमने लगी, जैसे वायुके प्रबल वेगसे समुद्रमे नौका चारो ओर घूमने लगती है ॥ जैसे शिशिर कालमें गौ आदि पशु शीतसे अत्यन्त दुःखित होते है वैसे ही पराक्रमी भीष्मके बाणोंसे पाण्डवों-की सेना अत्यन्त ही पीडित और दुःखित हुई ॥ (५-८)

उधर महात्मा अर्जुन भी तुम्हारी महासेनाके काले बादलोंकी घटाके समान अनेक हाथियोंको मारकर रथ यूथपतियोंको पीडित करने लगे। कितने ही महा बलवान् हाथी मरकों नाराच बाणोंसे पीडित होकर आर्त्तनाद करते हुए पृथ्वी पर गिर पडे। कितने ही शूरवीर महात्मा योद्धा मर गये, उनके सुन्दरभूषणोंसे भूषित शरीर और कुण्डलो से युक्त शिरोंसे पृथ्वी छिप गई। ९-१२

बडे बडे वीरोंको नष्ट करनेवाले उस महा घोर युद्धमे जब भीष्म और अर्जुन अपने पराक्रमको प्रकाशित कर रहे थे, तब तुम्हारे सब पुत्र सम्पूर्ण सेनाको आगे करके भीष्मके निकट उपस्थित हुए और स्वर्ग गमनकी अभिलाषा करके प्राणकी आशा त्यागकर पाण्डवोंकी ओर दौडे ॥ (१३-१५)

पाण्डवाऽपि महाराज स्मरन्तो विविधान्बहून् ॥ १५ ॥
क्लेशान्कृतान्सपुत्रेण त्वया पूर्वं नराधिप ।
भयं त्यक्त्वा रणे शूरा ब्रह्मलोकाय तत्पराः ॥ १६ ॥
तावकांस्तव पुत्रांश्च योधयन्ति प्रहृष्टवत् ।
सेनापतिस्तु समरे प्राह सेनां महारथः ॥ १७ ॥
अभिद्रवत गाङ्गेयं सोमकाः सृञ्जयैः सह ।
सेनापतिवचः श्रुत्वा सोमकाः सृञ्जयाश्च ते ॥ १८ ॥
अभ्यद्रवन्त गाङ्गेयं शरवृष्ट्या समाहताः ।
वध्यमानस्ततो राजन्पिता शान्तनवस्तव ॥ १९ ॥
अमर्षवशमापन्नो योधयामास सृञ्जयान् ।
तस्य कीर्तिमतस्तात पुरा रामेण धीमता ॥ २० ॥
सम्प्रदत्तास्त्रशिक्षा वै परानीकविनाशनी ।
स तां शिक्षामधिष्ठाय कुर्वन्परबलक्षयम् ॥ २१ ॥
अहन्यहनि पार्थानां वृद्धः कुरुपितामहः ।
भीष्मो दशसहस्राणि जघान परवीरहा ॥ २२ ॥
तस्मिंस्तु दशमे प्राप्ते दिवसे भरतर्षभ ।

हे राजन् ! पराक्रमी पाण्डव लोग भी तुम्हारे पुत्रोंके पहिले समयके दिये हुए दुःखोंका स्मरण करके भय त्याग-कर ब्रह्म लोकमें गमन करनेका निश्चय करके क्रोधपूर्वक हर्षके सहित तेरे पक्षके सैनिक और तेरे पुत्रोंके साथ युद्ध करने लगे । सेनापति महारथ धृष्टद्युम्नने गा-ध्वनिसे अपनी सेनाके योद्धाओंसे कहा, कि तुम लोग सोमक और सृञ्जयोंके सहित मिलकर गङ्गानन्दन भीष्मपर आक्रमण करो । सोमक क्षत्रिय और सृञ्जय सूरवीर योद्धा सेनापति धृष्टद्यु-म्नके इसवचनको सुनकर चारों ओरसे अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करते हुए भीष्मकी ओर दौड़े ॥ (१५-१९)

हे राजन् ! तुम्हारे पिता भीष्म उन सब वीरोंके अस्त्र शस्त्रोंसे पीडित होके क्रोध पूर्वक उस सम्पूर्ण सेनाके सङ्ग युद्ध करने लगे । यशस्वी भीष्म पितामहको पहिले बुद्धिमान परशुरामने जो शत्रुओंकी सेनाका नाश करने वाले अस्त्रोंकी शिक्षा दी थी, भीष्मने उन्हीं अस्त्रशस्त्रोंकी शिक्षाके बलसे इस महासंग्राममें नित्य ही दस हजार योद्धाओंका वध किया था, परन्तु दसवें दिन परम पराक्रमी शान्त-नुनन्दन भीष्मने अकेले ही मत्स्य और

भीष्मेणैकेन मत्स्येषु पञ्चालेषु च संयुगे ॥ २३ ॥
गजाश्वममितं हत्वा हताः सप्त महारथाः ।
हत्वा पञ्च सहस्राणि रथानां प्रपितामहः ॥ २४ ॥
नराणां च महायुद्धे सहस्राणि चतुर्दश ।
दन्तिनां च सहस्राणि हयानामयुतं पुनः ॥ २५ ॥
शिक्षाबलेन निहतं पित्रा तव विशाम्पते ।
ततः सर्वमहीपानां क्षपयित्वा वरूथिनीम् ॥ २६ ॥
विराटस्य प्रियो भ्राता शतानीको निपातितः ।
शतानीकं च समरे हत्वा भीष्मः प्रतापवान् ॥ २७ ॥
सहस्राणि महाराज राज्ञां भल्लैरपातयत् ।
उद्विग्नाः समरे योधा विक्रोशन्ति धनञ्जयम् ॥ २८ ॥
ये च केचन पार्थानामभियाता धनञ्जयम् ।
राजानो भीष्ममासाद्य गतास्ते यमसादनम् ॥ २९ ॥
एवं दश दिशो भीष्मः शरजालैः समन्ततः ।
अतीत्य सेनां पार्थानामवतस्थे चमूमुखे ॥ ३० ॥
स कृत्वा सुमहत्कर्म तस्मिन्वै दशमेऽहनि ।
सेनयोरन्तरे तिष्ठन्प्रगृहीतशरासनः ॥ ३१ ॥

पाञ्चाल देशीय अगणित हाथी घोडोंको मारकर सात महारथियोंका वध किया; और फिर दूसरी बार पांच हजार रथी, चौदह हजार पैदल चलनेवाले मनुष्य, छः हजार हाथी और दश हजार घोडों का वध किया। (१९-२६)

तिसके अनन्तर सब राजाओंकी सेनाको तितर बितर करके राजा विराटके प्यारे सहोदर भाई शतानीकका वध करके पृथ्वीमें गिरा दिया। महा प्रतापी भीष्मने रणभूमिमें शतानीकको मारकर एक हजार राजाओंको अपने तीक्ष्ण बाणोंसे पीडित किया. पाण्डवोंकी ओरके जो सब क्षत्रिय योद्धा अर्जुनके अनुगामी हुए थे. सब भीष्मके संमुख पहुंचके उनके अस्त्रोंसे मरकर यमलोक को सिधारे ॥ (२६-२९)

भीष्मने इसी प्रकारसे दशों दिशामें अपने बाणोंको चलाकर पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंका वध किया और कितनोंको बाणोंसे पीडित करके कुरुसेनाके आगे स्थित हुए ॥ इस भीष्म पितामह युद्धमें कठिन कर्म करके हाथमें धनुष लेकर दोनों सेनाके बीचमें स्थित

न चैनं पार्थिवाः केचिच्छक्ता राजन्निरीक्षितुम्।
मध्यं प्राप्तं यथा ग्रीष्मे तपन्तं भास्करं दिवि ॥ ३२ ॥
यथा दैत्यचमूं शक्रस्तापयामास संयुगे।
तथा भीष्मः पाण्डवेयांस्तापयामास भारत ॥ ३३ ॥
तथा चैनं पराक्रान्तमालोक्य मधुसूदनः।
उवाच देवकीपुत्रः प्रीयमाणो धनञ्जयम् ॥ ३४ ॥
एष शान्तनवो भीष्मः सेनयोरन्तरे स्थितः।
सन्निहन्य बलादेनं विजयस्ते भविष्यति ॥ ३५ ॥
बलात्संस्तम्भयस्वैनं यत्रैषा भिद्यते चमूः।
नहि भीष्मशरानन्यः सोढुमुत्सहते विभो ॥ ३६ ॥
ततस्तस्मिन्क्षणे राजंश्चोदितो वानरध्वजः।
सध्वजं सरथं साश्वं भीष्ममन्तर्दधे शरैः ॥ ३७ ॥
स चापि कुरुमुख्यानामृषभः पाण्डवेरितान्।
शरव्रातैः शरव्रातान्बहुधा विदुधाव तान् ॥ ३८ ॥

हुए, तब उस समयमें सम्पूर्ण योद्धा उनको और इस प्रकारसे न देख सके; जैसे ग्रीष्मकालके तपते हुए मध्याह्न समयके सूर्यको कोई नहीं देख सकता है॥ हे भारत! जैसे देवताओंके राजा इन्द्रने दानवोंकी सेनाको भस्म किया था, उसी प्रकारसे भीष्म पाण्डवोंकी सेनाको अपने अस्त्रोंके बलसे जलाने लगे। (३०-३३)

देवकीनन्दन कृष्ण महात्मा भीष्मको इस प्रकारसे पराक्रम प्रकाशित करके दोनों ओर विचरते देखके प्रीतिपूर्वक अर्जुनसे बोले, हे अर्जुन! यह शान्तनुनन्दन भीष्म दोनों सेनाके बीच इस समय स्थित हैं, तुम बलपूर्वक इनका वध करके युद्धमें विजय लाभ करो॥ जहांपर वह सम्पूर्ण सेनाको अपने बाणोंसे पीडित कर रहे हैं, वहां पर ही तुम अपने पराक्रमको प्रकाशित करके उनका निवारण करो। हे अर्जुन! तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा कोई भी पराक्रमी भीष्मके बाणोंको सहनेका उत्साह नहीं कर सकता। (३४-३६)

हे राजन्! कपिध्वज अर्जुनने कृष्णके वचनको सुनकर उसी समय अपने बाणोंकी वर्षासे भीष्मको ध्वजा, रथ और घोडोंके सहित छिपा दिया॥ कुरुश्रेष्ठ भीष्म अर्जुनके चलाये हुए बाणोंसे ही कितने स्थानोंसे पाण्डवोंकी सेनाको छिन्न भिन्न करने लगे। (३७-३८)

ततः पञ्चालराजश्च धृष्टकेतुश्च वीर्यवान् ।
पाण्डवो भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ ३९ ॥
यमौ च चेकितानश्च केकयाः पञ्च चैव ह ।
सात्यकिश्च महाबाहुः सौभद्रोऽथ घटोत्कचः ॥ ४० ॥
द्रौपदेयाः शिखण्डी च कुन्तिभोजश्च वीर्यवान् ।
सुशर्मा च विराटश्च पाण्डवेया महाबलाः ॥ ४१ ॥
एते चाऽन्ये च बहवः पीडिता भीष्मसायकैः ।
समुद्धृताः फाल्गुनेन निमग्नाः शोकसागरे ॥ ४२ ॥
ततः शिखण्डी वेगेन प्रगृह्य परमायुधम् ।
भीष्ममेवाऽभिदुद्राव रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥ ४३ ॥
ततोऽस्याऽनुचरान्हत्वा सर्वान्रणविभागवित् ।
भीष्ममेवाऽभिदुद्राव बीभत्सुरपराजितः ॥ ४४ ॥
सात्यकिश्चेकितानश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
विराटो द्रुपदश्चैव माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥ ४५ ॥
दुद्रुवुर्भीष्ममेवाऽऽजौ रक्षिता दृढधन्वना ।
अभिमन्युश्च समरे द्रौपद्याः पञ्च चाऽऽत्मजाः ॥४६॥
दुद्रुवुः समरे भीष्मं समुद्यतमहायुधाः ।

तिसके अनन्तर राजा द्रुपद, पराक्रमी धृष्टकेतु, पाण्डुपुत्र भीमसेन, पृषतनन्दन धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, चेकितान, केकयराजके पाचों भ्राता सात्यकि, अभिमन्यु, घटोत्कच, द्रौपदीके पांचों पुत्र, शिखण्डी, पराक्रमी कुन्तिभोज, सुशर्मा, विराट और पाण्डवोंकी ओरके महाबली पराक्रमी योद्धा और दूसरे अनेक शूरवीर योद्धा लोग जो भीष्मके बाणोंसे पीडित होकर शोकरूपी समुद्रमें डूब रहे थे; उन लोगोंके वास्ते अर्जुन तारा स्वरूप होकर भीष्म के सम्मुख आपहुंचे । (३९-४२)

तब शिखण्डी अर्जुनसे रक्षित होकर परम अस्त्रशस्त्रोंको ग्रहण करके भीष्म पितामहकी ओर दौडे ॥ युद्धविभागको जानने वाले अपराजित, अर्जुनने पितामह भीष्मके सब अनुयायियोंको मारकर उनकी ओर बढे । तथा सात्यकि चेकितान, पृषतनन्दन धृष्टद्युम्न, विराट, द्रुपद, नकुल, सहदेव, ये वीर अर्जुन से रक्षित होकर भीष्मकी ओर दौडे ॥ अभिमन्यु और द्रौपदीके पाचों पुत्र महा अस्त्रोंको ग्रहण करके भीष्मकी ओर

ते सर्वे दृढधन्वानः संयुगेष्वपलायिनः ॥ ४७ ॥
बहुधा भीष्ममानर्छुर्मार्गणैः क्षतमार्गणैः ।
विधूय तान्बाणगणान्ये मुक्ताः पार्थिवोत्तमैः ॥ ४८ ॥
पाण्डवानामदीनात्मा व्यगाहत वरूथिनीम् ।
चक्रे शरविघातं च क्रीडन्निव पितामहः ॥ ४९ ॥
नाऽभिसन्धत्त पाञ्चाल्ये स्मयमानो मुहुर्मुहुः ।
स्त्रीत्वं तस्याऽनुसंस्मृत्य भीष्मो बाणाञ्छिखण्डिने ॥५०॥
जघान द्रुपदानीके रथान्सप्त महारथः ।
ततः किलकिलाशब्दः क्षणेन समभूत्तदा ॥ ५१ ॥
मत्स्यपाञ्चालचेदीनां तमेकमभिधावताम् ।
ते नराश्वरथव्रातैर्मार्गणैश्च परन्तप ॥ ५२ ॥
तमेकं छादयामासुर्मेघा इव दिवाकरम् ।
भीष्मं भागीरथीपुत्रं प्रतपन्तं रणे रिपून् ॥ ५३ ॥
ततस्तस्य च तेषां च युद्धे देवासुरोपमे ।
किरीटी भीष्ममानर्छत्पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ॥५४॥ ५५८१

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि
[illegible] ऽध्यायः ॥ ११८॥

दोहे। (४३–४९)

युद्धसे पीछे न हटनेवाले दृढ धनुर्धारी सब [illegible] महारथ भीष्मकी ओर उनके बाणोंको चलाने लगे। अदीनात्मा भीष्म उन सब [illegible] राजाओंके बाणोंको निवारण करके पाण्डवोंकी सेनामें घुसके बाणोंसे [illegible] करते हुए और मानो क्रीडा करते हुए उन सब [illegible] बाणोंको [illegible] करने लगे। [illegible] [illegible] शिखण्डीको [illegible] [illegible] और बाण नहीं चलाया। (४३–५०)

जब महात्मा भीष्मने राजा द्रुपदकी सेनाके सात रथियोंका वध किया, तब क्षणभरके बीच मत्स्य, पाञ्चाल और चेदिदेशीय योद्धा सिंहनाद करते हुए भीष्मकी ओर दौड़े। हे राजन्! उन सब योद्धाओंने हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सेनाके सहित महारथ भागीरथीनन्दन भीष्मको इस प्रकार घेर लिया, जैसे बादलोंका समूह सूर्यको छिपा देता है। [illegible] अनन्तर देवासुर [illegible] [illegible] युद्धमें अर्जुन शिखण्डीको आगे करके भीष्मके [illegible]

सञ्जय उवाच— एवं ते पाण्डवाः सर्वे पुरस्कृत्य शिखण्डिनम् ।
विव्यधुः समरे भीष्मं परिवार्य समन्ततः ॥ १ ॥
शतघ्नीभिः सुघोराभिः परिघैश्च परश्वधैः ।
मुद्गरैर्मुसलैः प्रासैः क्षेपणीयैश्च सर्वशः ॥ २ ॥
शरैः कनकपुङ्खैश्च शक्तितोमरकम्पनैः ।
नाराचैर्वत्सदन्तैश्च भुशुण्डीभिश्च सर्वशः ॥ ३ ॥
अताडयन्रणे भीष्मं सहिताः सर्वसृञ्जयाः ।
स विशीर्णतनुत्राणः पीडितो बहुभिस्तदा ॥ ४ ॥
न विव्यथे तदा भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु ।
सन्दीप्तशरचापाग्निरस्त्रप्रसृतमारुतः ॥ ५ ॥
नेमिनिर्ह्रादसन्तापो महास्त्रोदयपावकः ।
चित्रचापमहाज्वालो वीरक्षयमहेन्धनः ॥ ६ ॥
युगान्ताग्निसमप्रख्यः परेषां समपद्यत ।

विद्ध करने लगे॥ (५१–५४) [५५८१]

भीष्मपर्वमें एकसौ अठारह अध्याय समाप्त ।

भीष्मपर्वमें एकसौ उन्नीस अध्याय ।

सञ्जय बोले हे राजन् ! पाण्डव लोग इसी प्रकार शिखण्डीको आगे करके भीष्मको घेरकर चारों ओरसे विद्ध करने लगे । वे सब सृञ्जयोंके सहित एकत्रित होकर महा भयङ्कर शतघ्नी, परिघ, परशु, मुद्गर, मूसल, प्रास, सुवर्ण दण्डयुक्त बाण शक्ति तोमर, लोह मय बाण वत्सदन्त और भुशुण्डी आदि अस्त्रोंसे भीष्मके ऊपर प्रहार करने लगे। (१–४)

उन सब महारथियोंके शस्त्रोंके प्रहार से महात्मा भीष्मका तनुत्राण कट गया और उनके मर्मस्थान बाणोंसे विद्ध होने लगे ॥ भीष्म पितामह उन सब महारथियोंके बाणोंसे विद्ध होकर भी दुःखित न हुए, बल्कि उस समय रण भूमिमें प्रलयकालकी अग्निके समान प्रकाशित होकर चारों ओर घूमने लगे। धनुष बाण तथा दूसरे सम्पूर्ण महा अस्त्रोंमें उनका अधिक प्रकाश बढा; उन के धनुषसे जो सब बाण छूटते थे, वे अग्निके सहायक वायु रूपी दीख पडते थे, रथका शब्द अग्निके समान सबको तपा रहा था, उनका धनुष अग्निकी महाशिखारूप और वीर शरीर ही उस अग्निमें काष्ठरूपी बोध होता था। शत्रुओंके निमित्त इस प्रकारके अग्निरूपी भीष्म कभी उन सब राजाओंके समूहके मध्यमें निकल कर बाहर हो जाते थे,

विवृत्य रथसङ्घानामन्तरेण विनिःसृतः ॥ ७ ॥
दृश्यते स्म नरेन्द्राणां पुनर्मध्यगतश्चरन् ।
ततः पञ्चालराजं च धृष्टकेतुमचिन्त्य च ॥ ८ ॥
पाण्डवानीकिनीमध्यमाससाद विशाम्पते ।
ततः सात्यकिभीमौ च पाण्डवं च धनञ्जयम् ॥ ९ ॥
द्रुपदं च विराटं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
भीमघोषैर्महावेगैर्मर्मावरणभेदिभिः ॥ १० ॥
षडेतानशितैर्भीष्मः प्रविव्याधोत्तमैः शरैः ।
तस्य ते निशितान्बाणान्संनिवार्य महारथाः ॥ ११ ॥
दशभिर्दशभिर्भीष्ममर्दयामासुरोजसा ।
शिखण्डी तु महाबाणान्यान्मुमोच महारथः ॥ १२ ॥
न चक्रुस्ते रुजं तस्य स्वर्णपुङ्खाः शिलाशिताः ।
ततः किरीटी संरब्धो भीष्ममेवाऽभ्यधावत ॥ १३ ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चाऽस्य समाच्छिनत् ।
भीष्मस्य धनुषश्छेदं नाऽमृष्यन्त महारथाः ॥ १४ ॥
द्रोणश्च कृतवर्मा च सैन्धवश्च जयद्रथः ।
भूरिश्रवाः शलः शल्यो भगदत्तस्तथैव च ॥ १५ ॥

सर्वैते परमक्रुद्धाः किरीटिनमभिद्रुताः ।
तत्र शस्त्राणि दिव्यानि दर्शयन्तो महारथाः ॥ १६ ॥
अभिपेतुर्भृशं क्रुद्धाश्छादयन्तश्च पाण्डवम् ।
तेषामापततां शब्दः शुश्रुवे फाल्गुनं प्रति ॥ १७ ॥
उद्धृतानां यथा शब्दः समुद्राणां युगक्षये ।
घ्नताऽऽनयत गृह्णीत विध्यध्वमवकर्तत ॥ १८ ॥
इत्यासीत्तुमुलः शब्दः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
तं शब्दं तुमुलं श्रुत्वा पाण्डवानां महारथाः ॥ १९ ॥
अभ्यधावन्परीप्सन्तः फाल्गुनं भरतर्षभ ।
सात्यकिर्भीमसेनश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥ २० ॥
विराटद्रुपदौ चोभौ राक्षसश्च घटोत्कचः ।
अभिमन्युश्च संक्रुद्धः सप्तैते क्रोधमूर्छिताः ॥ २१ ॥
समभ्यधावंस्त्वरिताश्चित्रकार्मुकधारिणः
तेषां समभवद्युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ॥ २२ ॥
संग्रामे भरतश्रेष्ठ देवानां दानवैरिव ।
शिखण्डी तु रणे श्रेष्ठो रक्ष्यमाणः किरीटिना ॥ २३ ॥
अविध्यद्दशभिर्भीष्मं छिन्नधन्वानमाहवे ।
सारथि दशभिश्चास्य ध्वज चैकेन चिच्छिदे ॥ २४ ॥

अपने दिव्य अस्त्रोंको प्रकाशित करते हुए शीघ्रताके सहित अर्जुनके सम्मुख आपहुंचे और उनको अपने अस्त्र शस्त्रोंमे छिपा दिया॥ जैसे प्रलयकालके समयमें समुद्रकी लहरका महाभयङ्कर शब्द होता है, वैसे ही उन सब महारथियोंके अर्जुनके निकट उपस्थित होने पर महा घोर शब्द सुनाई देने लगा। १६-१८

अर्जुनके रथके समीप "मारो पकड़ो, शस्त्रोंसे विद्ध करो काटो" इसी प्रकारसे चारों ओर महाघोर शब्द होने लगा। हे भारत! उस शब्दको सुनकर पाण्डवोंकी ओरके महारथ सात्यकी, भीमसेन, धृष्टद्युम्न विराट, द्रुपद, राक्षस घटोत्कच और अभिमन्यु विचित्र धनुषों को ग्रहण करके क्रोधपूर्वक अर्जुनकी रक्षा करनेके वास्ते भीष्मकी ओर दौड़े। जैसे देव और दानवोंका संग्राम हुआ था, वैसे ही कुरुपाण्डवोंका महाघोर रोंगटे खड़ा करनेवाला संग्राम होने लगा। (१८-२३)

इधर अर्जुनसे रक्षित शिखण्डीने धनुष कटे हुए महात्मा भीष्मको और उनके

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय गाङ्गेयो वेगवत्तरम् ।
तदप्यस्य शितैर्बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद फाल्गुनः ॥ २५ ॥
एवं स पाण्डवः क्रुद्ध आत्तमात्तं पुनः पुनः ।
धनुश्चिच्छेद भीष्मस्य सव्यसाची परन्तपः ॥ २६ ॥
स च्छिन्नधन्वा संक्रुद्धः सृक्किणी परिसंलिहन् ।
शक्तिं जग्राह तरसा गिरीणामपि दारणीम् ॥ २७ ॥
तां च चिक्षेप संक्रुद्धः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
तामापतन्तीं सम्प्रेक्ष्य ज्वलन्तीमशनीमिव ॥ २८ ॥
समादत्त शितान्भल्लान्पञ्च पाण्डवनन्दनः ।
तस्य चिच्छेद तां शक्तिं पञ्चधा पञ्चभिः शरैः ॥ २९ ॥
संक्रुद्धो भरतश्रेष्ठ भीष्मबाहुप्रवेरिताम् ।
सा पपात तथा छिन्ना संक्रुद्धेन किरीटिना ॥ ३० ॥
मेघवृन्दपरिभ्रष्टा विच्छिन्नेव शतह्रदा ।
छिन्नां तां शक्तिमालोक्य भीष्मः क्रोधसमन्वितः ॥ ३१ ॥
अचिन्तयद्रणे वीरो बुद्ध्या परपुरञ्जयः ।

शक्तोऽहं धनुषैकेन निहन्तुं सर्वपाण्डवान् ॥ ३२ ॥
यद्येषां न भवेद्गोप्ता विष्वक्सेनो महाबलः ।
कारणद्वयमास्थाय नाऽहं योत्स्यामि पाण्डवान् ॥ ३३ ॥
अवध्यत्वाच्च पाण्डूनां स्त्रीभावाच्च शिखण्डिनः ।
पित्रा तुष्टेन मे पूर्वं यदा कालीमुदावहम् ॥ ३४ ॥
स्वच्छन्दमरणं दत्तमवध्यत्वं रणे तथा ।
तस्मान्मृत्युमहं मन्ये प्राप्तकालमिवाऽऽत्मनः ॥ ३५ ॥
एवं ज्ञात्वा व्यवसितं भीष्मस्याऽमिततेजसः ।
ऋषयो वसवश्चैव वियत्स्था भीष्ममब्रुवन् ॥ ३६ ॥
यत्ते व्यवसितं तात तदस्माकमपि प्रियम् ।
तत्कुरुष्व महाराज युद्धे बुद्धिं निवर्तय ॥ ३७ ॥
अस्य वाक्यस्य निधने प्रादुरासीच्छिवोऽनिलः ।
अनुलोमः सुगन्धी च पृषतैश्च समन्वितः ॥ ३८ ॥
देवदुन्दुभयश्चैव सम्प्रणेदुर्महास्वनाः ।
पपात पुष्पवृष्टिश्च भीष्मस्योपरि मारिष ॥ ३९ ॥

लगे, कि यदि महाबलवान् जनार्दन कृष्ण पाण्डवोंके रक्षाकर्त्ता न होते, तो मैं एक धनुष लेकर ही उन सबको वध कर सकता और भी पाण्डवोंकी अवध्यता और शिखण्डीके स्त्री भावके कारणसे मैं पाण्डवोंके सङ्ग युद्ध न करूंगा। (३१-३४)

पहिले समयमें मेरे पिता शान्तनुने सत्यवतीके सङ्ग विवाह करनेके समय मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझे यह वरदान दिया था, कि "तुम जब मरनेकी इच्छा करोगे, तभी तुम्हारी मृत्यु होगी।" यदि मैं मरनेकी इच्छा न करूं, तो रणभूमिमें मेरी मृत्यु भी नहीं हो सकती है इससे अब इस अवसरमें मरनेकी इच्छा करना ही मेरा कर्तव्य कार्य है, यही मेरी मृत्युके योग्य समय उपस्थित हुआ है ॥ (३४-३५)

अत्यन्त तेजस्वी भीष्म पितामहके इस अभिप्रायको आकाशमें विमानोंपर बैठे हुए ऋषि लोग और वसुओंने जानकर उनसे कहा, हे तात! तुमने जो विचार किया है, वह हम लोगोंका भी प्रिय है, हे महा धनुर्द्धारी भीष्म! तुम ऐसा ही कार्य करो; युद्धसे निवृत्त होजाओ॥ उनके वचनोंको समाप्त होनेपर जलकणोंसे युक्त शीतल, मन्द, सुगन्धित वायु बहने लगी॥ तब देवताओंने आनन्दित होके स्वर्गमें दुन्दुभी बजाकर भीष्मके

न च तच्छुश्रुवे कश्चित्तेषां संवदतां नृप।
ऋते भीष्मं महाबाहुं मां चापि मुनितेजसा ॥ ४० ॥
सम्भ्रमश्च महानासीत्त्रिदशानां विशाम्पते।
पतिष्यति रथाद्भीष्मे सर्वलोकप्रिये तदा ॥ ४१ ॥
इति देवगणानां च वाक्यं श्रुत्वा महातपाः।
ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नाऽभ्यवर्तत ॥ ४२ ॥
भिद्यमानः शितैर्बाणैः सर्वावरणभेदिभिः।
शिखण्डी तु महाराज भरतानां पितामहम् ॥ ४३ ॥
आजघानोरसि क्रुद्धो नवभिर्निशितैः शरैः।
स तेनाऽभिहतः संख्ये भीष्मः कुरुपितामहः ॥ ४४ ॥
नाऽकम्पत महाराज क्षितिकम्पे यथाऽचलः।
ततः प्रहस्य बीभत्सुर्व्याक्षिपन्गाण्डिवं धनुः ॥ ४५ ॥
गाङ्गेयं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत्।
पुनः पुनः शतैरेनं त्वरमाणो धनञ्जयः ॥ ४६ ॥
सर्वगात्रेषु संक्रुद्धः सर्वमर्मस्वताडयत्।
एवमन्यैरपि भृशं विध्यमानः सहस्रशः ॥ ४७ ॥

तानप्याशु शरैर्भीष्मः प्रविव्याध महारथः ।
तैश्च मुक्तांच्छरान्भीष्मो युधि सत्यपराक्रमः ॥ ४८ ॥
निवारयामास शरैः समं सन्नतपर्वभिः ।
शिखण्डी तु रणे बाणान्यान्मुमोच महारथः ॥ ४९ ॥
न चक्रुस्ते रुजं तस्य रुक्मपुङ्खाः शिलाशिताः ।
ततः किरीटी संक्रुद्धो भीष्ममेवाऽभ्यवर्तत ॥ ५० ॥
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य धनुश्चाऽस्य समाच्छिनत् ।
अथैनं नवभिर्विध्वा ध्वजमेकेन चिच्छिदे ॥ ५१ ॥
सारथिं विशिखैश्चाऽस्य दशभिः समकम्पयत् ।
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय गाङ्गेयो बलवत्तरम् ॥ ५२ ॥
तदप्यस्य शितैर्भल्लैस्त्रिधा त्रिभिरघातयत् ।
निमेषार्धेन कौन्तेय आत्तमात्तं महारणे ॥ ५३ ॥
एवमस्य धनूंष्याजौ चिच्छेद सुबहून्यथ ।
ततः शान्तनवो भीष्मो बीभत्सुं नाऽभ्यवर्तत ॥ ५४ ॥
अथैनं पञ्चविंशत्या क्षुद्रकाणां समार्पयत ।

अत्यन्त विद्ध होकर उन सबको शीघ्रता के सहित विद्ध करने लगे, और उनके चलाये हुए बाणों को अपने तीक्ष्ण नतपर्व बाणों से निवारण करने लगे। (४५-४९)

महारथ शिखण्डीने शिलापर घिसे हुए सुवर्ण दण्डयुक्त जितने बाण भीष्म के ऊपर चलाये, उससे उन्हें तनिकभी पीडा न हुई। अनन्तर अर्जुन अत्यन्त क्रुद्ध होकर शिखण्डीको आगे करके भीष्मके सम्मुख उपस्थित हुए और उन के धनुषको अपने बाणोंसे काट दिया। अनन्तर अर्जुनने नौ बाणोंसे भीष्मको विद्ध कर एक बाणसे उनके रथकी ध्वजा काट दी और दश बाणोंसे उन-के सारथीको पीडित किया ॥ ४९-५२

गङ्गानन्दन भीष्मने एक दूसरा दृढ धनुष ग्रहण किया, अर्जुनने उसे भी अपने बाणोंसे तीन खण्ड काट दिया। इसी प्रकारसे पल भरमें भीष्म जितने धनुष ग्रहण करते थे, अर्जुन उसी समय उसे अपने बाणोंसे काट देते थे; इसी प्रकार अर्जुनने भीष्मके बहुतसे धनुषों-को काट डाला। तिस के अनन्तर शान्तनुपुत्र भीष्म युद्ध करनेके निमित्त अर्जुनकी ओर नहीं हटे ॥ ५२-५४)

परन्तु अर्जुनने भीष्मके ऊपर पचीस क्षुद्रक बाण चलाये। तब महाधनुर्धारी

नाशयन्तीव मे प्राणान्यमदूता इवाऽऽहिताः ॥ ६३ ॥
गदापरिघसंस्पर्शा नेमे बाणाः शिखण्डिनः ।
भुजगा इव संक्रुद्धा लेलिहाना विषोल्बणाः ॥ ६४ ॥
समाविशन्ति मर्माणि नेमे बाणाः शिखण्डिनः ।
अर्जुनस्य इमे बाणा नेमे बाणाः शिखण्डिनः ॥ ६५ ॥
कृन्तन्ति मम गात्राणि माघमासे गवा इव ।
सर्वे ह्यपि न मे दुःखं कुर्युरन्ये नराधिपाः ॥ ६६ ॥
वीरं गाण्डीवधन्वानमृते जिष्णुं कपिध्वजम् ।
इति ब्रुवञ्छान्तनवो दिधक्षुरिव पाण्डवान् ॥ ६७ ॥
शक्तिं भीष्मः स पार्थाय ततश्चिक्षेप भारत ।
तामस्य विशिखैश्छित्वा त्रिधा त्रिभिरपातयत् ॥ ६८ ॥
पश्यतां कुरुवीराणां सर्वेषां तव भारत ।
चर्माऽथाऽऽदत्त गाङ्गेयो जातरूपपरिष्कृतम् ॥ ६९ ॥
खड्गं चाऽन्यतरप्रेप्सुर्मृत्योरग्रे जयाय वा ।

अत्यन्त पीडित कर रहे हैं, ये शिखण्डीके चलाये बाण नहीं हैं। (५९-६३)

गदा और परिघके समान स्पर्श करके ये सब बाण मानो यमदूतोंके समान मेरे प्राणका नाश किया चाहते हैं, ये सब बाण शिखण्डीके चलाये हुए नहीं हैं। ये सब बाण विषधारी सर्पके समान मेरे मर्मस्थानोंके बीच प्रवेश कर रहे हैं, इससे ये शिखण्डीके बाण नहीं हैं। जैसे किलकरीके बालक उत्पत्तिके समय उसके शरीरको विदीर्ण करते हैं, वैसे ही ये सब बाण मेरे शरीरको पीड़ित कर रहे हैं, इससे इन सब बाणोंको अर्जुन ही चला रहा है, ये बाण शिखण्डीके नहीं हैं। (६३-६६)

गाण्डीवधारी कपिध्वजासे युक्त श्रेष्ठ अर्जुनके अतिरिक्त दूसरे सम्पूर्ण क्षत्रिय एकत्रित होकर भी युद्धमें मुझे पीडित नहीं कर सकते। हे भारत! शान्तनुपुत्र भीष्मने ऐसे ही वचनोंको कहते हुए मानो अर्जुनको भस्म करनेकी इच्छा करके उनकी ओर एक महाभयङ्कर शक्ति चलाई। अनन्तर अर्जुनने भीष्मकी चलाई हुई शक्तिको सब कुरुवीरोंके सम्मुख ही तीन बाणोंसे तीन टुकडे करके पृथ्वीमें गिरा दिया। (६६-६९)

तिसके अनन्तर गङ्गानन्दन भीष्मने मृत्युसे पहले गमन करनेकी अथवा विजयकी इच्छा करके सुवर्ण भूषित ढाल और तलवारको ग्रहण किया, उन्हें

समं च विषमं चैव न प्राज्ञायत किञ्चन ।
योधानामयुतं हत्वा तस्मिन्स दशमेऽहनि ॥ ७८ ॥
अतिष्ठदाहवे भीष्मो भिद्यमानेषु मर्मसु ।
ततः सेनामुखे तस्मिन्स्थितः पार्थो धनुर्धरः ॥ ७९ ॥
मध्येन कुरुसैन्यानां द्रावयामास वाहिनीम् ।
वयं श्वेतहयाद्भीताः कुन्तीपुत्राद्धनञ्जयात् ॥ ८० ॥
पीड्यमानाः शितैः शस्त्रैः प्राद्रवाम रणे तदा ।
सौवीराः कितवाः प्राच्याः प्रतीच्योदीच्यमालवाः ॥ ८१ ॥
अभीषाहाः शूरसेनाः शिवयोऽथ वसातयः ।
शाल्वाश्रयास्त्रिगर्ताश्च अम्बष्ठाः केकयैः सह ॥ ८२ ॥
सर्व एते महात्मानः शरार्ता व्रणपीडिताः ।
संग्रामे न जहुर्भीष्मं युध्यमानं किरीटिना ॥ ८३ ॥
ततस्तमेकं बहवः परिवार्य समन्ततः ।
परिकाल्य कुरून्सर्वाञ्शरवर्षैरवाकिरन् ॥ ८४ ॥
निपातयत गृह्णीत युध्यध्वमवकृन्तत ।
इत्यासीत्तुमुलः शब्दो राजन्भीष्मरथं प्रति ॥ ८५ ॥

है, वैसे ही दोनों सेना युद्ध भूमिमें शोभित हुई। उस समय रक्तसे युक्त भूमि घोररूप और समविषमभावसे शून्य दीखने लगी। उस समय भीष्मके सम्पूर्ण मर्मस्थान अर्जुनके बाणोंसे विद्ध हुए थे, तो भी वह दश हजार पाण्डवोंकी सेनाके योद्धाओंको मार कर कुरु सेनाके आगे स्थित हुए। (७६–७९)

अनन्तर धनुर्द्धारी अर्जुन अपनी सेनाके आगे होकर कुरु सेनाको तितर बितर करने लगे। उस समय हम लोग; अर्जुनके तीक्ष्ण-बाणोंसे पीडित होकर भागने लगे. सौवीर, कितव, प्राच्य, प्रतीच्य मालव, अभीषाह, शूरसेन, शिवि, वसाति. शाल्व, त्रिगर्त, अम्बष्ठ और केकय इन सब देशोंके शूरवीर योद्धाओंने अर्जुनके सहित भीष्मको रण-भूमिमें त्यागके वहांसे पलायन नहीं किया। (७९–८३)

अनन्तर बहुतसे शूरवीर योद्धा सम्पूर्ण कौरवोंको अपने बाणोंसे पीडित करके चारों ओरसे एक भीष्मको ही घेरकर उनके ऊपर अपने बाणोंकी वर्षा करने लगे। "गिराओ, पकडो तथा सहस्रों बाणोंसे एक ही बार सम्पूर्ण योद्धा ओंको काट डालो " इत्यादि शब्द ...

पतन्स ददृशे चापि दक्षिणेन दिवाकरम् ॥ ९३ ॥
संज्ञां चोपालभद्वीरः कालं सञ्चिन्त्य भारत ।
अन्तरिक्षे च शुश्राव दिव्या वाचः समन्ततः ॥ ९४ ॥
कथं महात्मा गाङ्गेयः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
कालकर्ता नरव्याघ्रः सम्प्राप्ते दक्षिणायने ॥ ९५ ॥
स्थितोऽस्मीति च गाङ्गेयस्तच्छ्रुत्वा वाक्यमब्रवीत् ।
धारयामास च प्राणान्पतितोऽपि महीतले ॥ ९६ ॥
उत्तरायणमन्विच्छन्भीष्मः कुरुपितामहः ।
तस्य तन्मतमाज्ञाय गङ्गा हिमवतः सुता ॥ ९७ ॥
महर्षीन्हंसरूपेण प्रेषयामास तत्र वै ।
ततः सम्पातिनो हंसास्त्वरिता मानसौकसः ॥ ९८ ॥
आजग्मुः सहिता द्रष्टुं भीष्मं कुरुपितामहम् ।
यत्र शेते नरश्रेष्ठः शरतल्पे पितामहः ॥ ९९ ॥
ते तु भीष्मं समासाद्य ऋषयो हंसरूपिणः ।
अपश्यञ्छरतल्पस्थं भीष्मं कुरुकुलोद्वहम् ॥ १०० ॥
ते तं दृष्ट्वा महात्मानं कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।

वह रथसे गिरते समय सूर्यको दक्षिणायन मार्गसे गमन करता हुआ देखकर चिन्ता करके फिर सावधान हुए। इसके अनन्तर चारों ओरसे अंतरिक्षमें उन्होंने यह देववाणी सुनी, कि "पुरुषसिंह गङ्गानन्दन भीष्म सूर्यके दक्षिणायन रहनेपर क्यों प्राणत्याग करेंगे ?" देववाणी सुनकर भीष्म पितामह बोले, "मै जीवित हूं।" कुरुपितामह भीष्म रथसे पृथ्वीपर गिरकर भी सूर्यके उत्तरायण आनेकी प्रतीक्षा करते हुए प्राण धारण करके शरशय्या पर शयन करने लगे। (९३—९७)

हिमालयपुत्री गङ्गाने भीष्मका अभिप्राय समझकर महर्षियोंको हंस रूपसे उनके निकटमें भेज दिया। जिस स्थान पर पुरुषसिंह भीष्म शरशय्यापर शयन कर रहे थे, मानससरोवरनिवासी हंसरूपी सब ऋषि लोगोंने मिलकर शीघ्रताके सहित वहां पर आकाशसे उतरकर उनके निकटमें गमन किया॥ अनन्तर उन सब ऋषियोंने भीष्मको शरशय्यापर शयन किये हुए देखा। (९८-१००)

वे सब मनीषी महर्षि लोग महात्मा भीष्मको प्रदक्षिण कर सूर्यको दक्षिणायन मार्गसे गमन करते देख चिन्ता करके

एवं कुरूणां पतिते शृङ्गे भीष्मे महौजसि ॥ १०९ ॥
पाण्डवाः सृञ्जयाश्चैव सिंहनादं प्रचक्रिरे ।
तस्मिन्हते महासत्वे भरतानां पितामहे ॥ ११० ॥
न किञ्चित्प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्ते भरतर्षभ ।
सम्मोहश्चैव तुमुलः कुरूणामभवत्तदा ॥ १११ ॥
कृपदुर्योधनमुखा निःश्वस्य रुरुदुस्ततः ।
विषादाच्च चिरं कालमतिष्ठन्विगतेन्द्रियाः ॥ ११२ ॥
दध्युश्चैव महाराज न युद्धे दधिरे मनः ।
ऊरुग्राहगृहीताश्च नाऽभ्यधावन्त पाण्डवान् ॥ ११३ ॥
अवध्ये शान्तनोः पुत्रे हते भीष्मे महौजसि ।
अभावः सहसा राजन्कुरुराजस्य तर्कितः ॥ ११४ ॥
हतप्रवीरास्तु वयं निकृत्ताश्च शितैः शरैः ।
कर्तव्यं नाऽभिजानीमो निर्जिताः सव्यसाचिना ११५ ॥
पाण्डवाश्च जयं लब्ध्वा परत्र च परां गतिम् ।

शरशय्या पर पडे हुए भीष्मने ऐसा वचन कहके फिर शयन किया। कुरुकुलके शृङ्गस्वरूपी महातेजस्वी भीष्म पितामह को इस प्रकारसे गिरा हुआ देखकर पाण्डव और सृञ्जय सिंहनाद करने लगे ॥ हे भारत ! कुरु पितामह महा तेजस्वी भीष्मको रथसे पृथ्वीपर गिरे हुए देख कर तुम्हारे सब पुत्र अपने कर्त्तव्य कर्म से विमूढ हुए और सम्पूर्ण कौरवोंको उस समयमें मोह उत्पन्न हुआ। (१०९-१११)

कृपाचार्य दुर्योधन आदि सम्पूर्ण कौरव लम्बी सांसोंको छोडने लगे। और विषाद युक्त सम्पूर्ण शरीर और इन्द्रियोंसे शिथिल होकर बहुत समयतक स्थिर होके चिन्ता करने लगे; उस समय युद्ध करनेमें किसी की भी इच्छा नहीं हुई। उनके हाथ पैरोंने मानो मगर घडियालरूपी होकर उन्हें पकड रक्खा, युद्धमें पाण्डवोंकी ओर गमन करनेमें भी समर्थ नहीं हुए ॥ महाराज ! शान्तनु पुत्र महातेजस्वी भीष्म जब सब पुरुषों से अवध्य होकर भी युद्धमें मारे गये तब हम लोगोंके मनमें यही वितर्क उपस्थित हुआ, कि अब कुरुराज दुर्योधन जीवित नहीं हैं ॥ (११२-११४)

हम लोग अर्जुनके सम्मुखमें पराजित और उनके बाणोंसे छिन्न विछिन्न शरीर होके निज कर्त्तव्य कर्मसे विमूढ होकर व्याकुल होगये। हे राजन् ! महाबाहु पराक्रमी पाण्डवोंका युद्धमें विजय और

बलिना देवकल्पेन गुर्वर्थे ब्रह्मचारिणा ॥ १ ॥
तदैव निहतान्मन्ये कुरूनन्यांश्च पाण्डवैः ।
न प्राहरद्यदा भीष्मो घृणित्वाद् द्रुपदात्मजम् ॥ २ ॥
ततो दुःखतरं मन्ये किमन्यत्प्रभविष्यति ।
अद्याऽहं पितरं श्रुत्वा निहतं स्म सुदुर्मतिः ॥ ३ ॥
अश्मसारमयं नूनं हृदयं मम सञ्जय ।
श्रुत्वा विनिहतं भीष्मं शतधा यन्न दीर्यते ॥ ४ ॥
यदन्यान्निहतेनाऽऽजौ भीष्मेण जयमिच्छता ।
चेष्टितं कुरुसिंहेन तन्मे कथय सुव्रत ॥ ५ ॥
पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं देवव्रतं रणे ।
न हतो जामदग्न्येन दिव्यैरस्त्रैरयं पुरा ॥ ६ ॥
स हतो द्रौपदेयेन पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ।
सञ्जय उवाच —सायाह्ने निहतो भूमौ धार्तराष्ट्रान्विषादयन् ॥ ७ ॥
पञ्चालानां ददौ हर्षं भीष्मः कुरुपितामहः ।

पिताके निमित्त ब्रह्मचारी हुए थे, उन देवताओंके समान पराक्रमी भीष्मसे हीन मेरी सेनाके योद्धाओंने उस समय क्या किया? ॥ जब भीष्मने द्रुपदपुत्र शिखण्डीके ऊपर घृणा करके उनके वधके निमित्त अपने अस्त्रोंको नहीं चलाया, उसी समयमें मैंने सम्पूर्ण कौरव तथा उनके अनुयायी समस्त योद्धाओंको पाण्डवोंके अस्त्रोंसे मरे हुए समझ लिया है ॥ अपनी दुर्बुद्धिके कारण मैंने आज पिता भीष्मके मरनेका वृत्तान्त सुनके जो दुःख पाया है, इससे बढ़कर और दूसरा क्या दुःख हो सकता है? (१-३)

हे सञ्जय! निश्चय ही मेरा हृदय पाषाणसे निर्मित है, नहीं तो भीष्मका मरना सुन कर हृदय सौ टुकडे होके क्यों न फट गया? ॥ हे तात सञ्जय! जयकी अभिलाष करनेवाले कुरुसिंह भीष्मने युद्धमें घायल होकर जो कुछ किया था, वह वृत्तान्त तुम मेरे निकट वर्णन करो ॥ युद्धमें जो भीष्म मारे गये, वह मुझसे बार बार नहीं सहा जाता है। पहिले जमदग्निपुत्र परशुरामजी अपने दिव्य-अस्त्रोंको चला कर भी जिनका वध न कर सके, वह महातेजस्वी भीष्म युद्धमें द्रुपदपुत्र शिखण्डीके अस्त्रोंसे मारे गये! (४-७)

सञ्जय बोले, हे राजन्! कुरुपितामह भीष्मने सन्ध्याके समय घायल होके धार्तराष्ट्रोंको विषादित और पांचालोंको

न किञ्चित्प्रत्यपद्यन्त पुत्रास्तव हि मारिष ॥ १६ ॥
विषण्णवदनाश्चाऽऽसन्हतश्रीकाश्च भारत ।
अतिष्ठन्व्रीडिताश्चैव ह्रिया युक्ता ह्यधोमुखाः ॥ १७ ॥
पाण्डवाश्च जयं लब्ध्वा संग्रामशिरसि स्थिताः ।
सर्वे दध्मुर्महाशङ्खान्हेमजालपरिष्कृतान् ॥ १८ ॥
हर्षात्तूर्यसहस्रेषु वाद्यमानेषु चाऽनघ ।
अपश्याम महाराज भीमसेनं महाबलम् ॥ १९ ॥
विक्रीडमानं कौन्तेयं हर्षेण महता युतम् ।
निहत्य तरसा शत्रुं महाबलसमन्वितम् ॥ २० ॥
सम्मोहश्चापि तुमुलः कुरूणामभवत्ततः ।
कर्णदुर्योधनौ चापि निःश्वसेतां मुहुर्मुहुः ॥ २१ ॥
तथा निपतिते भीष्मे कौरवाणां पितामहे ।
हाहाभूतमभूत्सर्वं निर्मर्यादमवर्तत ॥ २२ ॥
दृष्ट्वा च पतितं भीष्मं पुत्रो दुःशासनस्तव ।
उत्तमं जवमास्थाय द्रोणानीकमुपाद्रवत् ॥ २३ ॥
भ्रात्रा प्रस्थापितो वीरः स्वेनाऽनीकेन दंशितः ।
प्रययौ पुरुषव्याघ्रः स्वसैन्यं सविषादयन् ॥ २४ ॥

ऐसी चिन्ता करके कुछ भी निश्चय न कर सके॥ उन सब लोगोंका मुख मलिन होगया; और उन सब लोगोंने तेज रहित तथा लज्जित होके सिर नीचा कर लिया॥ (१४-१७)

पाण्डवलोग युद्धमें विजय पाके सुवर्ण भूषित शङ्ख और तूर्यके सहस्रों बाजों-को बजाने लगे॥ हे महाराज! उस समय महाबलवान् कुन्तीपुत्र भीमसेनको बलपूर्वक अपने शत्रुओंको मारकर हर्ष-से क्रीडा करते हुए मैंने निरीक्षण किया। कौरव लोग चेतरहित होगये कर्ण और दुर्योधन बार बार लम्बी सांस छोडते चिन्ता करने लगे। (१८-२१)

कुरुपितामह भीष्मको इस प्रकारसे पृथ्वी पर गिरा हुआ देख सम्पूर्ण सेना के बीच निर्मर्याद हाहाकार मच गया॥ तुम्हारे पुत्र दुःशासन भीष्मको पृथ्वीपर गिरा हुआ देखकर वेगपूर्वक द्रोणाचार्य की सेनाकी ओर दौडे॥ दुर्योधनकी आज्ञासे अपनी सेनाको साथ लेकर सेना के पुरुषों को विषादित कर के दुःशासनने द्रोणाचार्यके समीप गमन किया। (२२-२४)

अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः शान्तनवस्तदा ॥ ३२ ॥
स्वागतं वो महाभागा स्वागतं वो महारथाः ।
तुष्यामि दर्शनाच्चाऽहं युष्माकममरोपमाः ॥ ३३ ॥
अभिमन्त्र्याऽथ तानेवं शिरसा लम्बताऽब्रवीत् ।
शिरो मे लम्बतेऽत्यर्थमुपधानं प्रदीयताम् ॥ ३४ ॥
ततो नृपाः समाजह्रुस्तनूनि च मृदूनि च ।
उपधानानि मुख्यानि नैच्छत्तानि पितामहः ॥ ३५ ॥
अथाऽब्रवीन्नरव्याघ्रः प्रहसन्निव तान्नृपान् ।
नैतानि वीरशय्यासु युक्तरूपाणि पार्थिवाः ॥ ३६ ॥
ततो वीक्ष्य नरश्रेष्ठमभ्यभाषत पाण्डवम् ।
धनञ्जयं दीर्घबाहुं सर्वलोकमहारथम् ॥ ३७ ॥
धनञ्जय महाबाहो शिरो मे तात लम्बते ।
दीयतामुपधानं वै यद्युक्तमिह मन्यसे ॥ ३८ ॥

सञ्जय उवाच— समारोप्य महच्चापमभिवाद्य पितामहम् ।

देखकर प्रणाम करके उनके संमुख खडे होगये ॥ तब धर्मात्मा शान्तनुनन्दन भीष्म उन सब लोगोंसे यह वचन बोले.- "हे महाभाग पुरुषो ! तुम्हारा स्वागत हो ! हे देवताओंके समान शूरवीर पुरुषो ! तुम सब लोगोंके दर्शनसे मैं सन्तुष्ट हुआ हूं।" भीष्म पितामह सिर नीचे लट-कते हुए शरशय्यापर शयन करके सम्पूर्ण पुरुषोंका इसी प्रकारसे स्वागत करके तुम्हारे पुत्रोंको अपने निकट चारों ओर खडे देखकर उनसे यह वचन बोले.- "मेरा सिर नीचे लटक रहा है, तुम लोग मेरे सिरके नीचे तकिया लगा दो।" (३१-३४)

यह वचन सुनके राजा लोग महीन और कोमल वस्त्रोंसे बने हुए तकिये लेकर वहां उपस्थित हुए, परन्तु पुरुष सिंह भीष्म उन वस्तुओंको ग्रहण करनेकी इच्छा न करके हंस कर उन लोगोंसे बोले, "हे राजा लोगो ! ये सब वस्तु वीरशय्याके योग्य नहीं है।" (३५-३६)

तिसके अनन्तर सब लोगोंके बीच महारथ पुरुष सिंह लम्बी भुजावाले पाण्डुपुत्र अर्जुनकी ओर देखकर महात्मा भीष्म पितामह यह वचन बोले ॥ "हे तात ! हे महाबाहु अर्जुन ! मेरा सिर तकियेके बिना लटक रहा है, इससे तुम्हारे विचारमें जैसा वस्त्र मेरे सिरके नीचे देनेके योग्य होवे, वह तुम मेरे सिरके नीचे लगा दो।" (३६-३८)

प्राह सर्वान्समुद्वीक्ष्य भरतान्भारतं प्रति ।
कुन्तीपुत्रं युधां श्रेष्ठं सुहृदां प्रीतिवर्धनम् ॥ ४७ ॥
शयनस्याऽनुरूपं मे पाण्डवोपहितं त्वया ।
यद्यन्यथा प्रपद्येथाः शपेयं त्वामहं रुषा ॥ ४८ ॥
एवमेव महाबाहो धर्मेषु परितिष्ठता ।
स्वप्तव्यं क्षत्रियेणाऽऽजौ शरतल्पगतेन वै ॥ ४९ ॥
एवमुक्त्वा तु बीभत्सुं सर्वांस्तानब्रवीद्वचः ।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च पाण्डवानभिसंस्थितान् ॥ ५० ॥
पश्यध्वमुपधानं मे पाण्डवेनाऽभिसन्धितम् ।
शिश्येऽहमस्यां शय्यायां यावदावर्तनं रवेः ॥ ५१ ॥
ये तदा मां गमिष्यन्ति ते च प्रेक्ष्यन्ति मां नृपाः ।
दिशं वैश्रवणाक्रान्तां यदा गन्ता दिवाकरः ॥ ५२ ॥
नूनं सप्ताश्वयुक्तेन रथेनोत्तमतेजसा ।
विमोक्ष्येऽहं तदा प्राणान्सुहृदः सुप्रियानिव ॥ ५३ ॥
परिखाः खन्यतामत्र ममाऽऽवसथे नृपाः ।

सह आनन्दित हुए। उन्होंने अपने शरशय्याके योग्य तकिया पाकर अर्जुनको आनन्दित किया, और सम्पूर्ण भरत-वंशीय सन्तानोंकी ओर देखके अर्जुनसे यह वचन बोले, "हे कुन्तीपुत्र ! हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ ! हे इष्टमित्रोंके आनन्द और प्रीतिके बढानेवाले पाण्डुपुत्र अर्जुन ! तुमने मेरे वीरशय्याके योग्य तकिया प्रदान किया है, यदि तुम इसके विपरीत कार्य करते, तो मैं रुष्ट होकर तुम्हें शाप देता ॥ हे महाबाहो ! धर्ममें निष्ठा करनेवाले क्षत्रियोंको युद्धमें इसी भांतिकी शरशय्या पर शयन करना योग्य है ।" (४६-४९)

भीष्म पितामह अर्जुनसे ऐसा कहके अपने समीप खडे हुए सम्पूर्ण राजा और राजपुत्रोंसे तथा समीपमें स्थित पाण्डवोंसे बोले, आप सब लोगोंने देखा, अर्जुनने मेरे शिरके नीचे कैसा उपधान प्रदान किया है ? जब तक सूर्य सात घोडोंसे युक्त उत्तम तेजस्वी रथसे उत्तरायण मार्गमें गमन नहीं करेंगे, तब तक मैं इसी शरशय्या पर शयन किये रहूंगा ॥ जो सब क्षत्रिय पुरुष उस समय मेरे समीप आवेंगे। वे लोग मुझे उस समय प्राण त्याग करते हुए देखेंगे। हे राजा लोगो ! इस स्थान पर मेरे निमित्त परिखा खुदवा

नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३९ ॥
आज्ञापय कुरुश्रेष्ठ सर्वशस्त्रभृतां वर।
प्रेष्योऽहं तव दुर्धर्ष क्रियतां किं पितामह ॥ ४० ॥
तमब्रवीच्छान्तनवः शिरो मे तात लम्बते।
उपधानं कुरुश्रेष्ठ फाल्गुनोपदधत्स्व मे ॥ ४१ ॥
शयनस्याऽनुरूपं वै शीघ्रं वीर प्रयच्छ मे।
त्वं हि पार्थ समर्थो वै श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥ ४२ ॥
क्षत्रधर्मस्य वेत्ता च बुद्धिसत्वगुणान्वितः।
फाल्गुनोऽपि तथेत्युक्त्वा व्यवसायमरोचयत्॥ ४३ ॥
गृह्याऽनुमन्त्र्य गाण्डीवं शरान्सन्नतपर्वणः।
अनुमान्य महात्मानं भरतानां महारथम् ॥ ४४ ॥
त्रिभिस्तीक्ष्णैर्महावेगैरन्वगृह्णाच्छिरः शरैः।
अभिप्राये तु विदिते धर्मात्मा सव्यसाचिना ॥ ४५ ॥
अतुष्यद्भरतश्रेष्ठो भीष्मो धर्मार्थतत्त्ववित्।
उपधानेन दत्तेन प्रत्यनन्दद्धनञ्जयम् ॥ ४६ ॥

सञ्जय बोले, अर्जुन भीष्म पितामह को प्रणाम कर अपने धनुष पर रोदा चढा आंखोंमें आंसू भरके उनसे बोले, "हे शस्त्रधारियोंमें अग्रणी पितामह! मैं तुम्हारा दास यहां पर उपस्थित हूं, कहो, मुझे क्या करना होगा?" ३९-४०

अर्जुनकी बात सुनके शान्तनुनन्दन भीष्म फिर बोले, हे तात! कुरुश्रेष्ठ अर्जुन! मेरा सिर नीचे लटका जाता है, इससे तुम मेरे सिरके नीचे कोई योग्य वस्तु प्रदान करो। हे वीर अर्जुन! तुम इस कार्यके करनेमें समर्थ हो, तुम सब धनुर्द्धारियोंमें श्रेष्ठ हो; इससे मेरे वीर शय्याके योग्य मेरे सिरके नीचे तकिया लगा दो॥ (४१-४२)

क्षत्रिय धर्मके जानने वाले बुद्धि और पराक्रमसे युक्त अर्जुन भीष्मकी आज्ञा मान उनके अभिप्रायके अनुसार कार्य करनेके निमित्त तैयार हुए। उन्होंने महात्मा कुरु पितामह भीष्मकी अनुमति पाकर गाण्डीवधनुष पर सन्नत पर्व युक्त तीन तीक्ष्ण बाणोंको चढाके अभिमन्त्रित कर वेगपूर्वक चलाया, और उन तीनों बाणोंसे ही भीष्म पितामहके सिरको धारण किया। (४३-४५)

जब सव्यसाची अर्जुनने भीष्मकी इच्छाके अनुसार कार्य किया, तब धर्म अर्थके तत्त्वको जाननेवाले भीष्म पिता-

प्राह सर्वान्समुद्वीक्ष्य भरतान्भारतं प्रति ।
कुन्तीपुत्रं युधां श्रेष्ठं सुहृदां प्रीतिवर्धनम् ॥ ४७ ॥
शयनस्याऽनुरूपं मे पाण्डवोपहितं त्वया ।
यद्यन्यथा प्रपद्येथाः शपेयं त्वामहं रुषा ॥ ४८ ॥
एवमेव महाबाहो धर्मेषु परितिष्ठता ।
स्वप्तव्यं क्षत्रियेणाऽऽजौ शरतल्पगतेन वै ॥ ४९ ॥
एवमुक्त्वा तु बीभत्सुं सर्वांस्तानब्रवीद्वचः ।
राज्ञश्च राजपुत्रांश्च पाण्डवानभिसंस्थितान् ॥ ५० ॥
पश्यध्वमुपधानं मे पाण्डवेनाऽभिसन्धितम् ।
शिश्येऽहमस्यां शय्यायां यावदावर्तनं रवेः ॥ ५१ ॥
ये तदा मां गमिष्यन्ति ते च प्रेक्ष्यन्ति मां नृपाः ।
दिशं वैश्रवणाक्रान्तां यदा गन्ता दिवाकरः ॥ ५२ ॥
नूनं सप्ताश्वयुक्तेन रथेनोत्तमतेजसा ।
विमोक्ष्येऽहं तदा प्राणान्सुहृदः सुप्रियानिव ॥ ५३ ॥
परिखाः खन्यतामत्र ममाऽवसदने नृपाः ।

मह आनन्दित हुए। उन्होंने अपने शरशय्याके योग्य तकिया पाकर अर्जुनको आनन्दित किया, और सम्पूर्ण भरतवंशीय सन्तानोंकी ओर देखके अर्जुनसे यह वचन बोले, "हे कुन्तीपुत्र! हे योद्धाओंमें श्रेष्ठ! हे इष्टमित्रोंके आनन्द और प्रीतिके बढानेवाले पाण्डुपुत्र अर्जुन! तुमने मेरे वीरशय्याके योग्य तकिया प्रदान किया है, यदि तुम इसके विपरीत कार्य करते, तो मैं रुष्ट होकर तुम्हें शाप देता॥ हे महाबाहो! धर्ममें निष्ठा करनेवाले क्षत्रियोंको युद्धमें इसी भांतिकी शरशय्या पर शयन करना योग्य है॥" (४६-४९)

भीष्म पितामह अर्जुनसे ऐसा कहके अपने समीप खडे हुए सम्पूर्ण राजा और राजपुत्रोंसे तथा समीपमें स्थित पाण्डवोंसे बोले, आप सब लोगोंने देखा, अर्जुनने मेरे शिरके नीचे कैसा उपधान प्रदान किया है? जब तक सूर्य सात घोडोंसे युक्त उत्तम तेजस्वी रथसे उत्तरायण मार्गमें गमन नहीं करेंगे, तब तक मैं इसी शरशय्या पर शयन किये रहूंगा॥ जो सब क्षत्रिय एहद उस समय मेरे समीप आवेंगे। वे लोग मुझे उस समय प्राण त्याग करते हुए देखेंगे। हे राजा लोगो! इस स्थान पर मेरे निमित्त परिखा खुदवा

उपासिष्ये विवस्वन्तमेवं शरशताचितः ॥ ५४ ॥
उपारमध्वं संग्रामाद्वैरमुत्सृज्य पार्थिवाः ।

सञ्जय उवाच— उपातिष्ठन्नथो वैद्याः शल्योद्धरणकोविदाः ॥ ५५ ॥
सर्वोपकरणैर्युक्ताः कुशलैः साधु शिक्षिताः ।
तान्दृष्ट्वा जाह्नवीपुत्रः प्रोवाच तनयं तव ॥ ५६ ॥
धनं दत्वा विसृज्यन्तां पूजयित्वा चिकित्सकाः ।
एवङ्गते मयेदानीं वैद्यैः कार्यमिहाऽस्ति किम् ॥ ५७ ॥
क्षत्रधर्मे प्रशस्तां हि प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् ।
नैष धर्मो महीपालाः शरतल्पगतस्य मे ॥ ५८ ॥
एभिरेव शरैश्चाऽहं दग्धव्योऽस्मि नराधिपाः ।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य पुत्रो दुर्योधनस्तव ॥ ५९ ॥
वैद्यान्विसर्जयामास पूजयित्वा यथार्हतः ।
ततस्ते विस्मयं जग्मुर्नानाजनपदेश्वराः ॥ ६० ॥
स्थितिं धर्मे परां दृष्ट्वा भीष्मस्याऽमिततेजसः ।

दो, मैं यहां पर ही अनेक बाणोंसे व्याप्त रह कर सूर्यकी उपासना करूंगा॥ हे राजसत्तम ! तुम लोग इस समय आपसकी शत्रुताको त्यागके युद्धसे शान्त होजाओ। (५०–५५)

सञ्जय बोले, हे राजन् ! अनन्तर शरीरके घावोंको चङ्गा करनेके निमित्त उत्तम शिक्षा और चिकित्सामें निपुण कई एक वैद्य सम्पूर्ण औषधियोंको लेकर भीष्म पितामहके निकट उपस्थित हुए। गङ्गानन्दन भीष्म उन वैद्योंको देखकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधनसे बोले ॥ हे दुर्योधन ! तुम चिकित्सकोंको सम्मानित करके उन्हें धन देकर विदा करो; इस समय मेरी ऐसी अवस्थामें वैद्यका कुछ भी प्रयोजन नहीं है ॥ क्योंकि मैंने क्षत्रिय धर्मके अनुसार परम श्रेष्ठ गतिको प्राप्त किया। हे राजा लोगो ! इस समय अब मै शरशय्या पर हूं, अब मेरे वास्ते वैद्यकी क्या आवश्यकता है ? अब जो मैं इन सम्पूर्ण तीक्ष्ण-बाणोंकी अग्निसे भस्म होऊंगा यही मेरे वास्ते परम धर्म है। (५५–५९)

राजा दुर्योधनने भीष्मके एसे वचन सुन वैद्योंको यथायोग्य धन देके उन सबको मान पूर्वक विदा किया। अनन्तर नाना देशोंके इकट्ठे हुए सम्पूर्ण राजा लोग अत्यन्त तेजस्वी भीष्म पितामहकी धर्म विषयमें परम निष्ठा देखकर विस्मित हुए॥ महारथ पाण्डव

उपधानं ततो दत्वा पितुस्ते मनुजेश्वराः ॥ ६१ ॥
सहिताः पाण्डवाः सर्वे कुरवश्च महारथाः ।
उपगम्य महात्मानं शयानं शयने शुभे ॥ ६२ ॥
तेऽभिवाद्य ततो भीष्मं कृत्वा च त्रिःप्रदक्षिणम् ।
विधाय रक्षां भीष्मस्य सर्व एव समन्ततः ॥ ६३ ॥
वीराः स्वशिबिराण्येव ध्यायन्तः परमातुराः ।
निर्वशायाऽभ्युपागच्छन्सायाह्ने रुधिरोक्षिताः ॥ ६४ ॥
निविष्टान्पाण्डवांश्चैव प्रीयमाणान्महारथान् ।
भीष्मस्य पतने हृष्टानुपगम्य महाबलः ॥ ६५ ॥
उवाच माधवः काले धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
दिष्ट्या जयसि कौरव्य दिष्ट्या भीष्मो निपातितः ॥६६॥
अवध्यो मानुषैरेव सत्यसन्धो महारथः ।
अथवा दैवतैः सार्धं सर्वशास्त्रस्य पारगः ॥ ६७ ॥
त्वां तु चक्षुर्हणं प्राप्य दग्धो घोरेण चक्षुषा ।
एवमुक्तो धर्मराजः प्रत्युवाच जनार्दनम् ॥ ६८ ॥

और कौरवोंने तुम्हारे पिता भीष्मको इस प्रकारसे तकिया प्रदान किया; अनन्तर सबने मिल शरशय्या पर सोये हुए महात्मा भीष्मके निकट जाकर तीन बार उनको प्रदक्षिणा किया ॥ रुधिरसे युक्त शरीरवाले सम्पूर्ण वीर योद्धाओंने भीष्मकी रक्षाका विधान करके बहुत ही कातर चित्तसे चिन्ता करते हुए विश्रामके निमित्त अपने अपने शिविरोंमें प्रवेश किया ॥ (५९-६४)

महाबलशाली कृष्ण भीष्मके पृथ्वी-पर गिरनेके अनन्तर, पाण्डवोंको प्रसन्न चित्तसे शिविरोंमें पहुंचा देख उचित समय जान कर उन सबके निकट जाकर धर्म पुत्र युधिष्ठिरसे यह वचन बोले,—हे भारत! तुम प्रारब्धसे ही युद्धमें जयी हुए हो, सत्य पराक्रमी भीष्म मनुष्योंमें अथवा देवताओंमें अवध्य थे, तुमने प्रारब्धसे ही उन्हें निपातित किया है; अथवा तुम अपनी कोपदृष्टिसे जिसकी ओर देखो, वह कभी जीवित नहीं रह सकता। इससे भीष्म सब शस्त्रोंके जानने वाले होकर भी प्रारब्धके अनुसार तुम्हारे सङ्ग युद्ध करके तुम्हारी कोपदृष्टिसे ही भस्म होते होंगे ॥ (६५-६८)

जब कृष्णने धर्मराज युधिष्ठिरसे ऐसा वचन कहा, तब राजा युधिष्ठिर उनसे बोले, हे कृष्ण! तुम जिस पर प्रसन्न

तव प्रसादाद्विजयः क्रोधात्तव पराजयः ।
त्वं हि नः शरणं कृष्ण भक्तानामभयङ्करः ॥ ६९ ॥
अनाश्चर्यो जयस्तेषां येषां त्वमसि केशव ।
रक्षिता समरे नित्यं नित्यं चाऽपि हिते रतः ॥ ७० ॥
सर्वथा त्वां समासाद्य नाऽश्चर्यमिति मे मतिः ।
एवमुक्तः प्रत्युवाच स्मयमानो जनार्दनः
त्वय्येवैतद्युक्तरूपं वचनं पार्थिवोत्तम ॥ ७१ ॥ [५७७४]

इति श्रीमहाभारते० भीष्मपर्वणि भीष्मोपधानदाने विंशाधिकशततमोऽध्याय ॥ १२०॥

सञ्जय उवाच— व्युष्टायां तु महाराज शर्वर्यां सर्वपार्थिवाः ।
पाण्डवा धार्तराष्ट्राश्च उपातिष्ठन्पितामहम् ॥ १ ॥
तं वीरशयने वीरं शयानं कुरुसत्तम ।
अभिवाद्योपतस्थुर्वै क्षत्रियाः क्षत्रियर्षभम् ॥ २ ॥
कन्याश्चन्दनचूर्णैश्च लाजैर्माल्यैश्च सर्वशः ।
अवाकिरञ्छान्तनवं तत्र गत्वा सहस्रशः ॥ ३ ॥

रहते हो, उस ही का जय होता है; और तुम जिसके ऊपर क्रोध करते हो, उसहीका युद्धमें पराजय होता है। हे कृष्ण! जो लोग तुम्हारे भक्त और शरणागत हैं, उन्हें कुछभी भय नहीं होता; हम लोग तुम्हारे शरणमें हैं। तुम युद्ध में सदा जिसकी रक्षा करते हो, जिसके तुम सदा ही हितैषी हो; उसके विजय-का होना कुछ आश्चर्यका विषय नहीं है। मेरे विचारमें जब हम लोगोंने तुमको सब प्रकारसे अपना सहाय पाया है, तब युद्धमें विजय प्राप्त करेंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या है? (६८—७१)

जब धर्मराज युधिष्ठिर कृष्णसे ऐसा वचन बोले, तब जनार्दन कृष्णने हंस के कहा, हे राजसत्तम! तुमने जैसा वचन कहा है, वह तुम्हारे लिये ही अतियोग्य है। (७१) [५७७४]

भीष्मपर्वमें एकसौ वीस अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें एकसौ इक्कीस अध्याय।

सञ्जय बोले, महाराज! रात्रिके बीतने पर जब सम्पूर्ण राजा पाण्डव और तुम्हारे पुत्रोंने भीष्म पितामहकी उपासना करनेके निमित्त उनके समीप गमन किया॥ सम्पूर्ण क्षत्रिय पुरुष वीर-शय्यापर शयन किये हुए भीष्मको प्रणाम करके उनके निकट खडे होगये॥ सहस्रो कन्याएं वहां जाकर शान्तनुनन्दन भीष्म के निमित्त चन्दनचूर्ण, लाज और माला को वहां रखने लगी। बालक, बूढे, स्त्री

स्त्रियो वृद्धास्तथा बालाः प्रेक्षकाश्च पृथग्जनाः ।
समभ्ययुः शान्तनवं भूतानीव तमोनुदम् ॥ ४ ।
तूर्याणि शतसंख्यानि तथैव नटनर्तकाः ।
शिल्पिनश्च तथाऽऽजग्मुः कुरुवृद्धं पितामहम् ॥ ५ ॥
उपारम्य च युद्धेभ्यः सन्नाहान्विप्रमुच्य ते ।
आयुधानि च निक्षिप्य सहिताः कुरुपाण्डवाः ॥ ६॥
अन्वासन्त दुराधर्षं देवव्रतमरिन्दमम् ।
अन्योन्यं प्रीतिमन्तस्ते यथापूर्वं यथावयः ॥ ७ ॥
सा पार्थिवशताकीर्णा समितिर्भीष्मशोभिता ।
शुशुभे भारती दीप्ता दिवीवाऽऽदित्यमण्डलम् ॥ ८ ॥
विबभौ च नृपाणां सा गङ्गासुतमुपासताम् ।
देवानामिव देवेशं पितामहमुपासताम् ॥ ९ ॥
भीष्मस्तु वेदनां धैर्यान्निगृह्य भरतर्षभ ।
अभितप्तः शरैश्चैव निःश्वसन्नुरगो यथा ॥ १० ॥
शराभितप्तकायोऽपि शस्त्रसम्पातमूर्छितः ।

और सर्वसाधारण लोग भीष्मको देखने की इच्छासे उनके निकट इस भांतिसे उपस्थित हुए जैसे सम्पूर्ण प्राणी अन्धकारका नाश करनेवाले सूर्यके अनुगामी होते हैं ॥ (१-४)

बहुतेरे बाजा बजानेवाले, नट, नाच करनेवाले और शिल्पी लोगोंने शरशय्या पर शयन किये हुए भीष्मके निकट गमन किया ॥ कुरु- पाण्डवोंकी सेनाके सब वीर योद्धाओंने कवच तथा अस्त्र-शस्त्रोंको त्याग कर महातेजस्वी शत्रुनाशन भीष्म पितामहके निकट गमन किया ॥ वह सब पहिलेकी भांति वहां परस्पर प्रीतिपूर्वक यथा योग्य रीतिसे भीष्मके निकट बैठ गये ॥ जैसे आकाशमें सूर्यमण्डलकी शोभा दीख पडती है, वैसे ही सैकडों राजाओंसे युक्त वह सभा भीष्म और भरत वंशीय राजाओं से प्रकाशित होकर शोभित होने लगी ॥ (५-८)

जैसे ब्रह्माकी उपासना करनेके समय देवताओंकी सभा शोभित होती है, वैसे ही गङ्गानन्दन भीष्मकी उपासना करनेवाले उन राजाओंकी सभा भी प्रकाशित होने लगी ॥ हे भारत ! भीष्म बाणोंसे अत्यन्त पीडित होकर सर्पके समान लम्बी सांस छोडते हुए धीरज धारण कर वेदनाओंको सम्पूर्ण

पानीयमिति सम्प्रेक्ष्य राज्ञस्तान्प्रत्यभाषत ॥ ११ ॥
ततस्ते क्षत्रिया राजन्नुपाजह्नुः समन्ततः ।
भक्ष्यानुच्चावचान्राजन्वारिकुम्भांश्च शीतलान्॥१२॥
उपानीतं तु पानीयं दृष्ट्वा शान्तनवोऽब्रवीत् ।
नाऽद्याऽतीता मया शक्या भोगाः केचन मानुषाः १३॥
अपक्रान्तो मनुष्येभ्यः शरशय्यां गतो ह्यहम् ।
प्रतीक्षमाणस्तिष्ठामि निवृत्तिं शशिसूर्ययोः ॥ १४ ॥
एवमुक्त्वा शान्तनवो निन्दन्वाक्येन पार्थिवान् ।
अर्जुनं द्रष्टुमिच्छामीत्यभ्यभाषत भारत ॥ १५ ॥
अथोपेत्य महाबाहुरभिवाद्य पितामहम् ।
अतिष्ठत्प्राञ्जलिः प्रह्वः किं करोमीति चाऽब्रवीत्॥१६॥
तं दृष्ट्वा पाण्डवं राजन्नभिवाद्याऽग्रतः स्थितम् ।
अभ्यभाषत धर्मात्मा भीष्मः प्रीतो धनञ्जयम् ॥१७॥
दह्यतीव शरीरं मे संवृतस्य तवेषुभिः ।

पीडा सह रहे थे ॥ उनका शरीर बाणोंकी चोटसे भस्म होरहा था; उन्होंने बाणोंकी पीडासे मूर्छितप्राय होकर सम्पूर्ण राजाओंको अपने निकटमें उपस्थित देखकर पानी पीनेकी इच्छा की ॥ (९–११)

अनन्तर उन सब राजाओंने चारों ओरसे भोजन करने योग्य बहुतसे व्यंजन और अत्यन्त ही उत्तम तथा मीठे और ठण्डे कई एक पानीके घडोंको लाकर उपस्थित किया ॥ उसे देखकर शान्तनुपुत्र भीष्म बोले, हे पुत्रों ! इस समय मैं किसी प्रकारसे मनुष्योंके योग्य भोगोंको नहीं ग्रहण करूंगा ॥ मैं इस समय शरशय्या पर पड कर मनुष्योंके योग्य भोगोंसे रहित होगया हूं; केवल सूर्य-चन्द्रमाके उत्तरायण मार्गसे गमन करनेकी प्रतीक्षासे जीवन धारण कर रहा हूं ॥ (१२—१४)

हे भारत ! शान्तनुपुत्र भीष्मने ऐसा वचन कहके क्षत्रियोंकी निन्दा करके अर्जुनको देखनेकी इच्छा की । अनन्तर महाबाहु अर्जुनने उनके समीप जा हाथ जोडके उन्हें प्रणाम किया और उनके संमुख खडे होगये । अर्जुनने भीष्मसे निवेदन किया, कि कहिये पितामह ! क्या आज्ञा है, मुझे कौनसा कार्य करना होगा ? (१५—१६)

धर्मात्मा भीष्म पाण्डुपुत्र अर्जुनको प्रणाम करते और संमुख खडे देखकर प्रसन्न हो यह वचन बोले, हे अर्जुन !

मर्माणि परिदूयन्ते मुखं च परिशुष्यति ॥ १८ ॥
वेदनार्तशरीरस्य प्रयच्छाऽपो ममाऽर्जुन ।
त्वं हि शक्तो महेष्वास दातुमापो यथाविधि ॥ १९ ॥
अर्जुनस्तु तथेत्युक्त्वा रथमारुह्य वीर्यवान् ।
अधिज्यं बलवत्कृत्वा गाण्डीवं व्याक्षिपद्धनुः ॥ २० ॥
तस्य ज्यातलनिर्घोषं विस्फूर्जितमिवाऽशनेः ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि सर्वे श्रुत्वा च पार्थिवाः ॥ २१ ॥
ततः प्रदक्षिणं कृत्वा रथेन रथिनां वरः ।
शयानं भरतश्रेष्ठं सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥ २२ ॥
सन्धाय च शरं दीप्तमभिमन्त्र्य स पाण्डवः ।
पर्जन्यास्त्रेण संयोज्य सर्वलोकस्य पश्यतः ॥ २३ ॥
अविध्यत्पृथिवीं पार्थः पार्श्वे भीष्मस्य दक्षिणे ।
उत्पपात ततो धारा वारिणो विमला शुभा ॥ २४ ॥
शीतस्याऽमृतकल्पस्य दिव्यगन्धरसस्य च ।
अतर्पयत्ततः पार्थः शीतया जलधारया ॥ २५ ॥

तुम्हारे बाणोंसे मैं अत्यन्त ही विद्ध हो-गया हूं, मेरा सब शरीर भस्म हुआ जाता है, मर्म स्थानोंमें पीडा होरही है, मुख सूखा जाता है ॥ मेरा सम्पूर्ण शरीर अस्त्र-शस्त्रोंकी चोटसे अत्यन्त पीडित होरहा है. हे महाधनुर्द्धारी अर्जुन! तुम ही इस अवस्थामें मुझे यथा उचित विधिपूर्वक पानी पिलानेमें समर्थ हो-ओगे; इससे तुम मुझे पीनेके वास्ते जल प्रदान करो। (१७—१९)

पराक्रमी अर्जुनने भीष्मकी आज्ञा सुनके रथ पर चढके बलपूर्वक धनुष पर रोदा चढा कर धनुष्टङ्कार किया। सम्पूर्ण राजा और दूसरे सब पुरुष वज्रके समान अर्जुनके गाण्डीव धनुषके शब्दको सुनकर भयभीत होगये। पाण्डुपुत्र रथियोंमें श्रेष्ठ अर्जुनने शरशय्या पर सोये हुए भीष्म पितामहको रथ पर चढके प्रदक्षिण किया॥(२०–२२)

अनन्तर एक प्रकाशमान बाणको अभिमन्त्रित और पार्जन्यअस्त्रसे युक्त कर धनुष पर चढाके भीष्मके दाहिनी ओर पृथ्वीको विद्ध किया। तिसके अनन्तर दिव्य सुगन्ध और रससे युक्त अमृतके समान शीतल जलकी धारा पृथ्वीसे उत्पन्न हुई ॥ अर्जुनने उसी जलधारासे दिव्य कर्म करनेवाले, दिव्य पराक्रमी, कुरुश्रेष्ठ भीष्मको तृप्त किया।(२३-२५)

भीष्मं कुरूणामृषभं दिव्यकर्मपराक्रमम्।
कर्मणा तेन पार्थस्य शक्रस्येव विकुर्वतः ॥ २६ ॥
विस्मयं परमं जग्मुस्ततस्ते वसुधाधिपाः।
तत्कर्म प्रेक्ष्य बीभत्सोरतिमानुषविक्रमम् ॥ २७ ॥
सम्प्रावेपन्त कुरवो गावः शीतार्दिता इव।
विस्मयाच्चोत्तरीयाणि व्याविध्यन्सर्वतो नृपाः ॥ २८ ॥
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषस्तुमुलः सर्वतोऽभवत्।
तृप्तः शान्तवश्चाऽपि राजन्बीभत्सुमब्रवीत् ॥ २९ ॥
सर्वपार्थिववीराणां सन्निधौ पूजयन्निव।
नैतच्चित्रं महाबाहो त्वयि कौरवनन्दन ॥ ३० ॥
कथितो नारदेनाऽसि पूर्वर्षिरमितद्युते।
वासुदेवसहायस्त्वं महत्कर्म करिष्यसि ॥ ३१ ॥
यन्नोत्सहति देवेन्द्रः सह देवैरपि ध्रुवम्।
विदुस्त्वां निधनं पार्थ सर्वक्षत्रस्य तद्विदः ॥ ३२ ॥
धनुर्धराणामेकस्त्वं पृथिव्यां प्रवरो नृषु ॥ ३३ ॥
मनुष्या जगति श्रेष्ठाः पक्षिणां पतगेश्वरः।

तब सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धा इन्द्रके समान अर्जुनका यह पराक्रम देखकर अत्यन्त ही विस्मित हुए। कौरवलोग अर्जुनका अलौकिक कर्म देखकर शीतसे जकडे हुए गौओंके समान कांपने लगे। सम्पूर्ण राजा अर्जुनका यह कर्म देखकर उत्तरीयोंको उडाने लगे, तब चारों ओरसे शंख और नगाडे बजने लगे॥ (२६-२९)

शान्तनुपुत्र भीष्म तृप्त होकर सम्पूर्ण क्षत्रियोंके सम्मुख अर्जुनकी प्रशंसा करके यह वचन कहने लगे; हे कुरुवंशके आनन्दको बढानेवाले अत्यन्त तेजस्वी महाबाहु अर्जुन! यह कर्म तुम्हारे निमित्त कुछ विचित्र नहीं है, तुम जो पुरातन ऋषि हो, उसे देवऋषि नारदने मेरे समीप वर्णन किया था। सम्पूर्ण देवताओंके सहित इन्द्र भी जिस बृहत् कर्मके करनेका उत्साह नहीं कर सकते तुम कृष्णकी सहायतासे उस कर्मको पूर्ण करोगे। ज्ञानी पुरुष तुमको सम्पूर्ण क्षत्रियोंका नाश करनेवाला समझते हैं॥ तुम पृथ्वीके बीच सम्पूर्ण धनुर्द्धारियोंमें प्रधान हो और समस्त पुरुषोंमें भी श्रेष्ठ हो॥ (२९-३३)

इस पृथ्वीमें जैसे सब जीवोंके बीच मनुष्य श्रेष्ठ हैं, पक्षियोंमें गरुड श्रेष्ठ हैं,
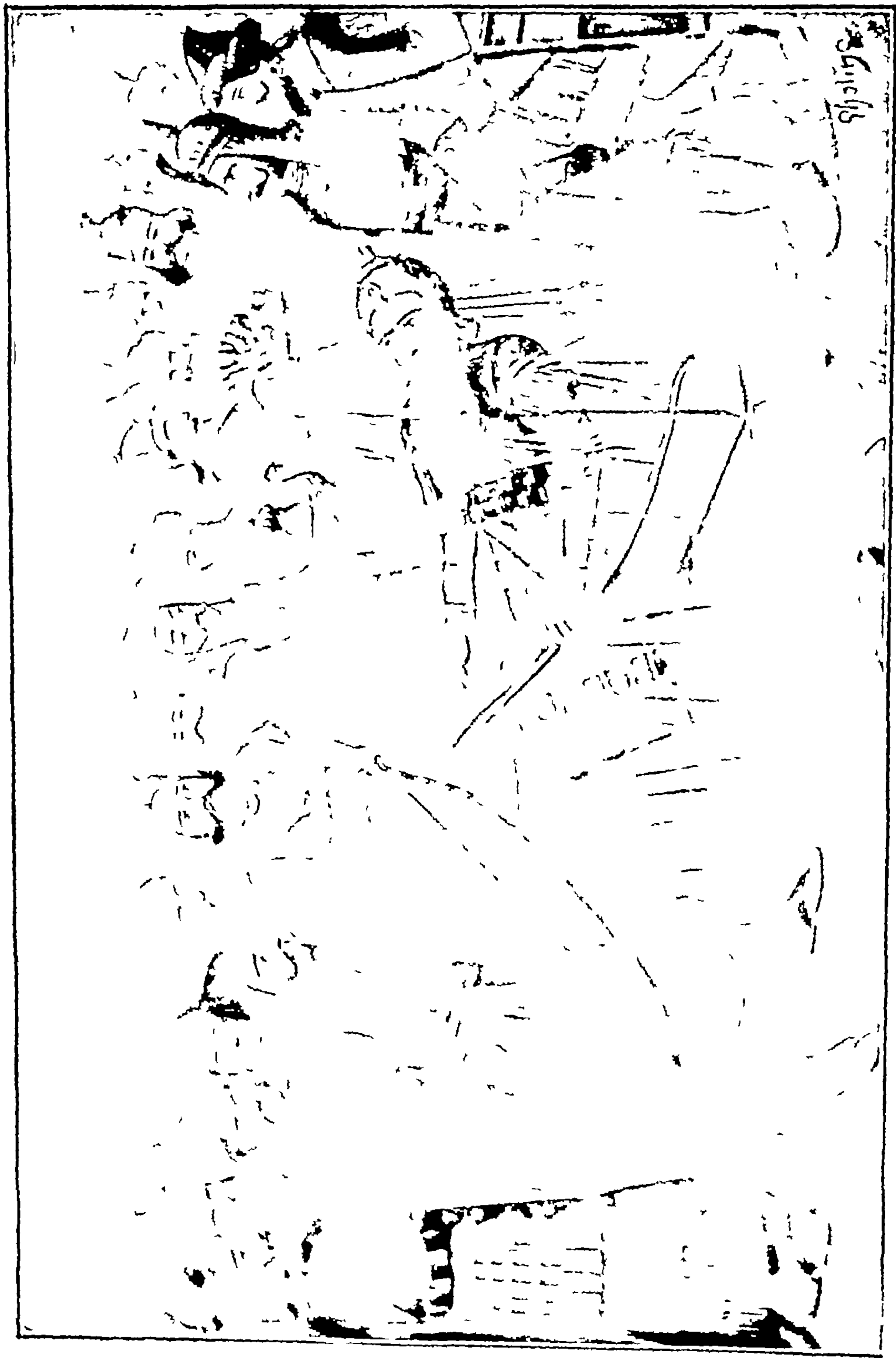
भीष्मकी शरशय्या

(व. सा. मुद्रणालय-अहमदाबाद)

(भीष्मपर्व अ० १२१)

सरितां सागरः श्रेष्ठो गौर्वरिष्ठा चतुष्पदाम् ॥ ३४ ॥
आदित्यस्तेजसां श्रेष्ठो गिरीणां हिमवान्वरः ।
जातीनां ब्राह्मणः श्रेष्ठः श्रेष्ठस्त्वमसि धन्विनाम् ॥३५॥
न वै श्रुतं धार्तराष्ट्रेण वाक्यं सम्बोध्यमानं विदुरेण चैव ।
द्रोणेन रामेण जनार्दनेन मुहुर्मुहुः सञ्जयेनापि चोक्तम् ॥ ३६ ॥
परीतबुद्धिर्हि विसंज्ञकल्पो दुर्योधनो न च तच्छ्रद्दधाति ।
स शेष्यते वै निहतश्चिराय शास्त्रातिगो भीमबलाभिभूतः ॥ ३७ ॥
एतच्छ्रुत्वा तद्वचः कौरवेन्द्रो दुर्योधनो दीनमना बभूव ।
तमब्रवीच्छान्तनवोऽभिवीक्ष्य निबोध राजन्भव वीतमन्युः ॥३८॥
दृष्टं दुर्योधनैतत्ते यथा पार्थेन धीमता ।
जलस्य धारा जनिता शीतस्याऽमृतगन्धिनः ॥ ३९ ॥
एतस्य कर्ता लोकेऽस्मिन्नाऽन्यः कश्चन विद्यते ।
आग्नेयं वारुणं सौम्यं वायव्यमथ वैष्णवम् ॥ ४० ॥
ऐन्द्रं पाशुपतं ब्राह्मं पारमेष्ठ्यं प्रजापतेः ।
धातुस्त्वष्टुश्च सवितुर्वैवस्वतमथाऽपि वा ॥ ४१ ॥

चतुष्पाद प्राणियोंमे गौ श्रेष्ठ है, और सरितोंमें समुद्र श्रेष्ठ है, वैसे ही धनुर्द्धारियोंके बीच तुम श्रेष्ठ हो। जैसे तेजस्वियोंमे सूर्य, पर्वतोंमें हिमालय और जातियोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ है; उसी प्रकारसे तुम धनुर्द्धारियोंमें श्रेष्ठ हो ॥ मैं विदुर, द्रोणाचार्य, जमदग्निके पुत्र परशुराम, जनार्दन कृष्ण और सञ्जय आदि हम सब लोगोंने पृथक् रूपसे दुर्योधनको युद्धसे निवारण किया था; परन्तु बुद्धिहीन दुर्योधनने अज्ञान पुरुषके समान होकर हम लोगोंके वचनोंमे श्रद्धा नहीं की। वह सदा ही शासनसे बाहर रहता है, इससे शीघ्र ही भीमसेनके बलसे मरकर पृथ्वीमें सोवेगा ॥ (३४-३७)

अनन्तर भीष्मकी बात सुनकर दुर्योधन दीनचित्त होकर दुःखित हुए। दुर्योधनको दुःखित देखकर भीष्म पितामह बोले, हे राजन! क्रोधको त्यागकर मेरे वचनोंको सुनो। बुद्धिमान अर्जुनने जो दिव्य गन्धयुक्त अमृतके समान पृथ्वीमे जलधारा उत्पन्न की, उसे तुमने नेत्रोंसे देखा; ऐसा कर्म कर सके इस प्रकारका कोई भी पुरुष इस पृथ्वीपर नहीं है ॥ (३८-४०)

आग्नेय, वारुण, सौम्य, वायव्य, ऐन्द्र, पाशुपत, ब्राह्म, पारमेष्ठ्य और प्राजापत्य, त्वष्टा ब्रह्म और विधाता,

सर्वस्मिन्मानुषे लोके वेत्त्येको हि धनञ्जयः।
कृष्णो वा देवकीपुत्रो नाऽन्यो वेदेह कश्चन ॥ ४२ ॥
अशक्यः पाण्डवस्तात युद्धे जेतुं कथञ्चन।
अमानुषाणि कर्माणि यस्यैतानि महात्मनः ॥ ४३ ॥
तेन सत्त्ववता संख्ये शूरेणाऽऽहवशोभिना।
कृतिना समरे राजन्सन्धिर्भवतु मा चिरम् ॥ ४४ ॥
यावत्कृष्णो महाबाहुः स्वाधीनः कुरुसत्तम।
तावत्पार्थेन शूरेण सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४५ ॥
यावन्न ते चमूः सर्वाः शरैः सन्नतपर्वभिः।
नाशयत्यर्जुनस्तावत्सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४६ ॥
यावत्तिष्ठन्ति समरे हतशेषाः सहोदराः।
नृपाश्च बहवो राजंस्तावत्सन्धिः प्रयुज्यताम् ॥ ४७ ॥
न निर्दहति ते यावत्क्रोधदीप्तेक्षणश्चमूम्।
युधिष्ठिरो रणे तावत्सन्धिस्ते तात युज्यताम् ॥ ४८ ॥
नकुलः सहदेवश्च भीमसेनश्च पाण्डवः।
यावच्चमूं महाराज नाशयन्ति न सर्वशः ॥ ४९ ॥

त्वष्टा और सविताके सम्पूर्ण अस्त्र इस मर्त्य लोकके बीच एक अर्जुन और देवकी-पुत्र कृष्ण ही जानते है, दूसरा कोई भी नहीं जानता है ॥ (४०-४२)

हे दुर्योधन! जिस महात्माका तुमने ऐसा अलौकिक कर्म देखा है, उसको तुम युद्धमें कैसे पराजित कर सकोगे? ॥ इससे युद्धके सब कार्योंको जाननेवाले पराक्रमी अर्जुनके सङ्ग तुम्हारी शीघ्र ही सन्धि होनी उचित है॥ हे कुरुसत्तम! जबतक महाबाहु कृष्ण क्रुद्ध नहीं होते हैं, उतने ही समयमे तुम शूरवीर पाण्डवोंके सङ्गमें संधि स्थापन करो॥ जबतक अर्जुन अपने तीक्ष्ण बाणोंसे तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाको नहीं जलाते है, तभी तक तुम पाण्डवोंके सङ्गमें सन्धि स्थापन करो। (४३-४६)

जबतक तुम्हारे बचे हुए सहोदर भ्राता और बहुतसे राजा इस युद्धमें जीवित हैं; तभीतक पाण्डवोंके सङ्ग तुम सन्धि कर लो॥ जबतक राजा युधिष्ठिर क्रोधपूरित नेत्रसे तुम्हारी सेनाको नहीं जलाते है, तभीतक तुमको पाण्डवोंके सङ्ग सन्धि करनी उचित है॥ जबतक नकुल, सहदेव और भीमसेन तुम्हारी सम्पूर्ण सेनाका नाश नहीं करते हैं,

तावत्ते पाण्डवैर्वीरैः सौहार्दं मम रोचते ।
युद्धं मदन्तमेवाऽस्तु तात संशाम्य पाण्डवैः ॥ ५० ॥
एतत्तु रोचतां वाक्यं यदुक्तोऽसि मयाऽनघ ।
एतत्क्षममहं मन्ये तव चैव कुलस्य च ॥ ५१ ॥
त्यक्त्वा मन्युं व्युपशाम्यस्व पार्थैः पर्याप्तमेतद्यत्कृतं फाल्गुनेन ।
भीष्मस्याऽन्तादस्तु वः सौहृदं च जीवन्तु शेषाः साधु राजन्प्रसीद ॥ ५२ ॥
राज्यस्यार्धं दीयतां पाण्डवानामिन्द्रप्रस्थं धर्मराजोऽभियातु ।
मा मित्रध्रुक्पार्थिवानां जघन्यः पापां कीर्तिं प्राप्स्यसे कौरवेन्द्र ॥ ५३ ॥
ममाऽवसानाच्छान्तिरस्तु प्रजानां सङ्गच्छन्तां पार्थिवाः प्रीतिमन्तः ।
पिता पुत्रं मातुलं भागिनेयो भ्राता चैव भ्रातरं प्रैतु राजन् ॥ ५४ ॥
न चेदेवं प्राप्तकालं वचो मे मोहाविष्टः प्रतिपत्स्यस्यबुद्ध्या ।
तप्स्यस्यन्ते एतदन्ताः स्थ सर्वे सत्यामेतां भारतीमीरयामि ॥ ५५ ॥

तभीतक वीर पाण्डवोंके सङ्ग तुम्हारी मित्रता होनी चाहिये, यही मेरी इच्छा है । हे पुत्र ! तुम पाण्डवोंके सहित शान्तिभाव अवलम्बन करो, मेरे विनाश तक ही युद्धकी शेष करो । (४७–५०)

हे पापरहित ! मैंने जो कुछ वचन तुमसे कहा है, उसमें तुमको सम्मत होना योग्य है. यही मैं तुम्हारे और इस वंशके लिए मंगलमय और कल्याणकारी समझता हूं ॥ हे पुत्र ! क्रोध त्यागकर पाण्डवोंके सङ्ग मेल कर लो, अर्जुनने यहां ही तक युद्धमें जो कुछ कर्म किया है वहां तक ही इस युद्धकी समाप्ति करो । भीष्मके निपातित होनेपर अब तुम लोगोंमें मित्रता स्थापित होवे, बचे हुए सब क्षत्रिय जीवित रहें. इससे तुम प्रसन्न चित्तसे पाण्डवोंको आधा राज्य प्रदान करो; धर्मराज युधिष्ठिर हस्तिनापुरमें गमन करें । हे कुरुराज! ऐसा होनेसे सब क्षत्रियोंके बीच पापी और मित्रद्रोही कहके तुम्हारी अकीर्त्ति नहीं होवेगी । (५१–५३)

मेरे मरनेतक ही सब प्रजाओंके बीच शान्ति स्थापित होवे; राजा लोग प्रीतिपूर्वक अपने अपने स्थानोंपर गमन करें पिता पुत्रको, भानजे मामाको और भ्राता अपने भाईको जीवित पावेंगे । यदि समयके अनुसार मेरे इस वचनको तुम अपनी नीच बुद्धिके वशमें होकर नहीं मानोगे, तो तुमको अन्त समयमें पश्चात्ताप करना पड़ेगा । मैंने यह सब तुम लोगोंसे सत्य ही कहा है, इससे तुम लोग यहांतक युद्ध करके अब शान्त होकर आपसमें सन्धि कर लो ॥ (५४-५५)

एतद्वाक्यं सौहृदादापगेयो मध्ये राज्ञां भारतं श्रावयित्वा।
तूष्णीमासीच्छल्यसन्तप्तमर्मा योऽत्याऽऽत्मानं वेदनां संनियम्य॥५६॥

सञ्जय उवाच- धर्मार्थसहितं वाक्यं श्रुत्वा हितमनामयम्।
नाऽरोचयत पुत्रस्ते मुमूर्षुरिव भेषजम्॥ ५७॥ [५८३१]

इति श्रीमहा०भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि दुर्योधन प्रति भीष्मवाक्ये एकविंशाधिकशततमोऽध्याय॥१२१॥

सञ्जय उवाच- ततस्ते पार्थिवाः सर्वे जग्मुः स्वानालयान्पुनः।
तूष्णीम्भूते महाराज भीष्मे शान्तनुनन्दने ॥ १ ॥
श्रुत्वा तु निहतं भीष्मं राधेयः पुरुषर्षभः।
ईषदागतसन्त्रासस्त्वरयोपजगाम ह ॥ २ ॥
स ददर्श महात्मानं शरतल्पगतं तदा।
जन्मशय्यागतं वीरं कार्त्तिकेयमिव प्रभुम् ॥ ३ ॥
निमीलिताक्षं तं वीरं साश्रुकण्ठस्तदा वृषः।
भीष्म भीष्म महाबाहो इत्युवाच महाद्युतिः॥ ४ ॥
राधेयोऽहं कुरुश्रेष्ठ नित्यमक्षिगतस्तव।

सञ्जय बोले, गङ्गानन्दन भीष्मने सम्पूर्ण क्षत्रियोंके बीच दुर्योधनको इसी प्रकारके वचन सुनाये; उनके सम्पूर्ण मर्मस्थान तीक्ष्ण-बाणोंसे अत्यन्त क्षत विक्षत होकर पीडित हो रहे थे, उसकी पीडा सहते हुए उन्होंने आत्माको स्थिर किया॥ उनके कहे हुए हितकारी धर्म अर्थसे युक्त उत्तम वचनोंको सुनकर राजा दुर्योधनकी उसमें इस प्रकारसे रुचि नहीं हुई, जैसे कालके वशमें हुआ पुरुष औषधि ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं करता॥ (५६-५७) [५८३१]

भीष्मपर्वमें एकसौ इक्कीस अध्याय समाप्त।

भीष्मपर्वमें एकसौ बाईस अध्याय।

सञ्जय बोले, हे महाराज! तिसके अनन्तर शान्तनुनन्दन भीष्मके मौनावलम्बन करने पर सम्पूर्ण क्षत्रिय योद्धाओंने फिर अपने अपने शिबिरों पर गमन किया॥ तब पुरुषश्रेष्ठ राधानन्दन कर्णने भीष्मका वध सुनकर अत्यन्त विस्मित हो शीघ्रताके सहित उनके निकट गमन किया॥ (१-२)

महातेजस्वी कर्ण वहां पर पहुंचे और भीष्म पितामहको शरशय्या पर पडे तथा बाणोंसे ही उत्पन्न हुए स्वामिकार्त्तिकके समान शरशय्या पर शयन किये और नेत्रोंको मूंदे हुए देखा, अनन्तर आंखोंमें आंसू भर दुःखित चित्तसे भीष्मके समीप जाकर उनसे यह वचन बोले, हे महाभाग कुरुश्रेष्ठ भीष्म! मैं वही

द्वेष्योऽहं तव सर्वत्र इति चैनमुवाच ह ॥ ५ ॥
तच्छ्रुत्वा कुरुवृद्धो हि वलीसंवृतलोचनः ।
शनैरुद्वीक्ष्य सस्नेहमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ६ ॥
रहितं धिष्ण्यमालोक्य समुत्सार्य च रक्षिणः ।
पितेव पुत्रं गाङ्गेयः परिरभ्यैकपाणिना ॥ ७ ॥
एह्येहि मे विप्रतीप स्पर्धसे त्वं मया सह ।
यदि मां नाऽधिगच्छेथा न ते श्रेयो ध्रुवं भवेत् ॥ ८ ॥
कौन्तेयस्त्वं न राधेयो न तवाऽधिरथः पिता ।
सूर्यजस्त्वं महाबाहो विदितो नारदान्मया ॥ ९ ॥
कृष्णद्वैपायनाच्चैव तच्च सत्यं न संशयः ।
न च द्वेषोऽस्ति मे तात त्वयि सत्यं ब्रवीमि ते ॥ १० ॥
तेजोवधनिमित्तं तु परुषं त्वाऽहमब्रुवम् ।
अकस्मात्पाण्डवान्सर्वानवाक्षिपसि सुव्रत ॥ ११ ॥
येनाऽसि बहुशो राज्ञा चोदितः सूतनन्दन ।

राधापुत्र कर्ण हूं, जिसको तुम सदा सर्वदा सब स्थलों पर द्वेष भावसे देखते थे ॥ (३-५)

कौरवोंमें वृद्ध भीष्म पितामहके दोनों नेत्र जरा अवस्थाके पलकोंके चमडोंसे ढके थे. उन्होंने कर्णका वचन सुनकर धीरे धीरे अपने नेत्रोंको खोला; फिर सम्पूर्ण रक्षकोंको वहांसे पृथक् करा कर निर्जन स्थान देख, उन्होंने अपने एक हाथसे कर्णको इस प्रकारसे आलिंगन किया, जैसे पिता पुत्रको आलिंगन करता है। अनन्तर भीष्म पितामह प्रीतिपूर्वक कर्णसे यह वचन बोले। हे कर्ण! आओ आओ, तुम शत्रु भावसे सदा हमारे ईर्षा करते हो। परन्तु यदि तुम इस समय मेरे निकट न आते, तो तुम्हारा किसी प्रकारसे कल्याण न होता॥ ५-८

हे महाबाहो! तुम कुन्तीके पुत्र हो राधा तेरी माता नहीं है, और अधिरथ तेरा पिता भी नहीं है, तुम सूर्यसे उत्पन्न हुए हो. यह मुझसे देवऋषि नारदने कहा था. मैंने इस विषयको उनके और कृष्ण द्वैपायन व्यासके निकट सुना था; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। हे पुत्र! तुमसे मैं सत्य कहता हूं, तुम्हारे ऊपर मेरा कुछ भी द्वेष नहीं है। तुम्हारे तेजका नाश करनेके निमित्त मैंने तुमको कठोर वचन कहा था। हे उत्तम व्रत धारनेवाले कर्ण! तुम बिना कारणके ही पाण्डवोंकी निन्दा किया करते हो

जातोऽसि धर्मलोपेन ततस्ते बुद्धिरीदृशी ॥ १२ ॥
नीचाश्रयान्मत्सरेण द्वेषिणी गुणिनामपि ।
तेनाऽसि बहुशो रूक्षं श्रावितः कुरुसंसदि ॥ १३ ॥
जानामि समरे वीर्यं शत्रुभिर्दुःसहं भुवि ।
ब्रह्मण्यतां च शौर्यं च दाने च परमां स्थितिम्॥ १४ ॥
न त्वया सदृशः कश्चित्पुरुषेष्वमरोपम ।
कुलभेदभयाच्चाऽहं सदा परुषमुक्तवान् ॥ १५ ॥
इष्वस्त्रे चाऽस्त्रसन्धाने लाघवेऽस्त्रबले तथा ।
सदृशः फाल्गुनेनाऽसि कृष्णेन च महात्मना ॥ १६ ॥
कर्ण काशिपुरं गत्वा त्वयैकेन धनुष्मता ।
कन्यार्थे कुरुराजस्य राजानो मृदिता युधि ॥ १७ ॥
तथा च बलवान्राजा जरासन्धो दुरासदः ।
समरे समरश्लाघिन्न त्वया सदृशोऽभवत् ॥ १८ ॥
ब्रह्मण्यः सत्त्वयोधी च तेजसा च बलेन च ।
देवगर्भसमः संख्ये मनुष्यैरधिको युधि ॥ १९ ॥

तुम कुन्तीसे कुमारी अवस्थामें उत्पन्न होने के कारण तुम्हारा जन्म धर्मलोप से हुआ है, तथा राजा दुर्योधनसे प्रेरित होकर कुकर्म करते हो इससे नीचाश्रयसे तेरी बुद्धि गुणी जनोंका द्वेष और मत्सर करनेवाली बनी है, इसीसे मैंने तुमको कुरुसभामें अत्यन्त रूखा वचन सुनाया था ॥ (९-१३)

मै तुम्हारी ब्रह्मनिष्ठा, वीरता और दानमें परम निष्ठा तथा युद्धमें शत्रुओं के न सहने योग्य पराक्रमको जानता हूं ॥ हे देवताओंके समान कर्ण ! पुरुषों में तुम्हारे समान कोई भी नहीं है ; मै केवल कुलभेदके भयसे ही सदा तुमको कठोर वचन कहता था । अस्त्र शस्त्र, बाण और अस्त्रोंके सन्धान करने, हस्तलघुता तथा अस्त्रोंके बलसे तुम महात्मा कृष्ण और अर्जुनके समान ही हो । (१४-१६)

हे कर्ण ! तुमने अकेले ही धनुष धारण करके कुरुराजके विवाहके निमित्त काशीनगरीमें गमन करके सम्पूर्ण राजाओंको पराजित किया था, युद्ध में प्रशंसित महाबलवान् राजा जरासन्ध तुम्हारे समान न होसका ॥ तुम द्विजोंमें निष्ठावान् और सत्यवादी हो । युद्धके कार्य, तेज और बलमे तुम देवपुत्रके समान और युद्धभूमि में अलौकिक कर्मोंके करनेवाले हो ॥ तुम्हारे ऊपर मेरा जो

व्यपनीतोऽद्य मन्युर्मे यस्त्वां प्रति पुरा कृतः ।
दैवं पुरुषकारेण न शक्यमतिवार्तितुम् ॥ २० ॥
सोदर्याः पाण्डवा वीरा भ्रातरस्तेऽरिसूदन ।
सङ्गच्छ तैर्महाबाहो मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ २१ ॥
मया भवतु निर्वृत्तं वैरमादित्यनन्दन ।
पृथिव्यां सर्वराजानो भवन्त्वद्य निरामयाः ॥ २२ ॥
कर्ण उवाच— जानाम्येव महाबाहो सर्वमेतन्न संशयः ।
यथा वदसि मे भीष्म कौन्तेयोऽहं न सूतजः ॥ २३ ॥
अवकीर्णस्त्वहं कुन्त्या सूतेन च विवर्धितः ।
भुक्त्वा दुर्योधनैश्वर्यं न मिथ्या कर्तुमुत्सहे ॥ २४ ॥
वसुदेवसुतो यद्वत्पाण्डवाय दृढव्रतः ।
वसु चैव शरीरं च पुत्रदारं तथा यशः ॥ २५ ॥
सर्वं दुर्योधनस्यार्थे त्यक्तं मे भूरिदक्षिण ।
मा चैतद्व्याधिमरणं क्षत्रं स्यादिति कौरव ॥ २६ ॥

क्रोध था वह आज दूर होगया, जो होना था वह हुआ है पुरुषार्थसे कोई प्रारब्धको नहीं अतिक्रम कर सकता ॥ (१७-२०)

हे शत्रुनाशन महाबाहो ! पाण्डव तुम्हारे सहोदर भाई हैं। इससे यदि तुम मेरे प्रियकार्यको करने की इच्छा करते हो, तो उन लोगोंसे मिलो ॥ हे सूर्य-पुत्र कर्ण ! मेरे ही वध पर्यन्त पाण्डवोंके सङ्ग शत्रुताका शेष होवे, जिससे पृथ्वीके सम्पूर्ण राजा जीवित रहके अपने स्थानोंपर गमन करें ॥ (२१-२२)

कर्ण बोले, हे महा तेजस्वी महाबाहो पितामह ! तुम जो कहते हो, वह सब मैं जानता हूं। मैं सूतपुत्र नहीं हूं, कुन्तीका पुत्र हूं, यही ठीक है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ परन्तु कुन्तीने जब मुझे त्याग दिया, तब अधिरथ सूतने मेरा प्रतिपालन करके मुझे बडा किया है। इसके अतिरिक्त मैं दुर्योधनका ऐश्वर्य उपभोग कर रहा हूं, उसके ऐश्वर्यको भोग करते हुए मैंने उसके निकट जो कुछ कार्य स्वीकार किया है, उसको मिथ्या करनेका उन्माद नहीं कर सकता हूं ॥ हे बहुतसी दक्षिणा देनेवाले दृढव्रती भीष्म ! वसुदेवपुत्र कृष्ण जिस प्रकारसे पाण्डवोंकी रक्षाके निमित्त दृढ निश्चय करके स्थित हैं, मैं भी उसी भांतिसे दुर्योधनके निमित्त धन, पुत्र, स्त्री और यश आदि सम्पूर्ण वस्तुओंके त्यागनेकी अभिलाष करता हूं।

कोपिताः पाण्डचा नित्यं समाश्रित्य सुयोधनम् ।
अवश्यभावी ह्यर्थोऽयं यो न शक्यो निवर्तितुम्॥२७॥
दैवं पुरुषकारेण को निवर्तितुमुत्सहेत् ।
पृथिवीक्षयशंसीनि निमित्तानि पितामह ॥ २८ ॥
भवद्भिरुपलब्धानि कथितानि च संसदि ।
पाण्डवा वासुदेवश्च विदिता मम सर्वशः ॥ २९ ॥
अजेयाः पुरुषैरन्यैरिति तांश्चोत्सहामहे ।
विजयिष्ये रणे पाण्डूनिति मे निश्चितं मनः ॥ ३० ॥
न च शक्यमवस्रष्टुं वैरमेतत्सुदारुणम् ।
धनञ्जयेन योत्स्येऽहं स्वधर्मप्रीतमानसः ॥ ३१ ॥
अनुजानीष्व मां तात युद्धाय कृतनिश्चयम् ।
अनुज्ञातस्त्वया वीर युद्धयेयामिति मे मतिः ॥ ३२ ॥
दुरुक्तं विप्रतीपं वा रभसाच्चापलात्तथा ।
यन्मयेह कृतं किञ्चित्तन्मे त्वं क्षन्तुमर्हसि ॥ ३३ ॥
भीष्म उवाच— न चेच्छक्यमवस्रष्टुं वैरमेतत्सुदारुणम् ।

क्यों कि क्षत्रियों को व्याधिसे मरना उत्तम और उपकारक नहीं है। २३-२६

विशेष करके मैने दुर्योधनका आसरा करके पाण्डवोंको कुपित किया है; जो अवश्यम्भावी होनहार है, उसके निवारण करनेकी किसीको भी सामर्थ नहीं है॥ कौन पुरुष पुरुषार्थसे दैवी घटनाओंके निवारण करनेका उत्साह कर सकता है? हे पितामह ! तुमने पृथ्वीके नाश की सूचना देनेवाले सम्पूर्ण निमित्तोंको देखा था, जिनको तुमने कुरुसभामें वर्णन किया था। (२७-२९)

पाण्डव लोग और कृष्ण जो किसी प्रकारसे भी दूसरे किसी पुरुषसे पराजित नहीं होनेवाले हैं, उसे जानकर भी मैं उनके सङ्ग युद्ध करनेका उत्साह करता हूं, कि उन लोगोंको युद्धमें पराजित करूंगा; यह मेरा निश्चित विचार है॥ मुझमें इस महा घोर शत्रुताचरणको त्यागनेकी सामर्थ नहीं है। हे तात! मैं प्रीतियुक्त चित्तसे अर्जुनके सङ्ग युद्ध करूंगा। मैं युद्धके निमित्त निश्चय कर चुका हूं, अब तुम युद्ध करनेके निमित्त मुझे आज्ञा दो। मै तुम्हारी अनुमति ग्रहण करके युद्ध करूं, यही मेरी इच्छा है॥ मैंने क्रोध और चपलताके कारण जो तुम्हारे विरुद्ध कुछ आचरण किया हो, तो उसे तुम क्षमा करो॥ २९-३३

अनुजानामि कर्ण त्वां युद्ध्यस्व स्वर्गकाम्यया ॥३४॥
निर्मन्युर्गतसंरम्भः कृतकर्मा रणे स ह ।
यथाशक्ति यथोत्साहं सतां वृत्तेषु वृत्तवान् ॥ ३५ ॥
अहं त्वामनुजानामि यदिच्छसि तदाप्नुहि ।
क्षत्रधर्मजिताँल्लोकानवाप्स्यसि धनञ्जयात् ॥ ३६ ॥
युध्यस्व निरहङ्कारो बलवीर्यव्यपाश्रयः ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥३७॥
प्रशमे हि कृतो यत्नः सुमहान्सुचिरं मया ।
न चैव शकितः कर्तुं कर्ण सत्यं ब्रवीमि ते ॥ ३८ ॥

सञ्जय उवाच— इत्युक्तवति गाङ्गेये अभिवाद्योपमन्त्र्य च ।
राधेयो रथमारुह्य प्रायात्तव सुतं प्रति ॥ ३९ ॥ [५८७०]

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां भीष्मपर्वणि भीष्मवधपर्वणि भीष्मकर्णसंवादे द्विशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥ समाप्तं भीष्मवधपर्व

इति भीष्मपर्व समाप्तम् ।

भीष्म बोले, हे कर्ण ! यदि तुम इस कठोर शत्रुभावको त्यागनेमें असमर्थ हो तो मैं तुमको युद्धके निमित्त अनुमति देता हूं; स्वर्ग प्राप्तिकी कामना करके युद्ध करो ॥ क्रोध और अभिमानको त्यागकर साधु पुरुषोंके समान उत्तम चरितसे युक्त होकर अपनी शक्ति और उत्साहके अनुसार राजाओंके योग्य कर्म युद्ध करो ॥ मैं तुमको आज्ञा देता हूं, तुम जो इच्छा करोगे उसे सिद्ध करोगे; तुम क्षत्रिय धर्म द्वारा प्राप्त होने योग्य सम्पूर्ण लोकोंको अवश्य प्राप्त करोगे ॥ (३४–३६)

धर्मियोंका धर्म युद्धकी अपेक्षा दूसरा कोई कुछ भी उत्तम नहीं है । इससे अपने बल, वीर्य और पराक्रमके अनुसार अहङ्काररहित होकर युद्ध करो ॥ हे कर्ण ! मैंने इस वैर भावको छुडानेके निमित्त बहुत दिनोंतक अत्यन्त ही यत्न किया; परन्तु कृतकार्य नहीं हो सका ॥ (३७–३८)

सञ्जय बोले, जब गङ्गानन्दन भीष्मने ऐसा वचन कहा तब राधापुत्र कर्णने भीष्म पितामहको प्रणाम कर, क्षमा मांगते हुए रथपर चढके तुम्हारे पुत्र दुर्योधनके समीप जानेके निमित्त प्रस्थान किया । (३९) [५८७०]

[illegible]

भीष्मवधपर्व समाप्त ।

भीष्मपर्व समाप्त ।

❀

❀ ❀

अस्याऽनन्तरं द्रोणपर्व भविष्यति ।
तस्याऽयमाद्यः श्लोकः-
तमप्रतिमसत्वौजोबलवीर्यसमन्वितम् ।
हतं देवव्रतं श्रुत्वा पाञ्चाल्येन शिखण्डिना ॥ १ ॥

आदितः श्लोकसंख्या ।

आदिपर्व	—	८७०९
सभापर्व	—	२७६२
वनपर्व	—	११८९२
विराटपर्व	—	२२६२
उद्योगपर्व	—	६५९०
भीष्मपर्व	—	५८७०
सर्वयोगः		३८०८५

भीष्मपर्वकी विषयसूची।

भीष्मपर्व की विषयसूची

समाप्त।